श्री

वामनपुराणम्

हिन्दीभाषाऽनुवादसहितम्

सर्वभारतीयकाशिराजन्यासः
दुर्ग रामनगर, वाराणसी
सं० वि० २०२५ शकाब्द १८९०
१९६८ ई०

श्री

वामनपुराण

हिन्दी अनुवाद सहित

अनुवादक

श्री गोपाल चन्द्र, वेदान्तशास्त्री

श्री चौधरी श्रीनारायण सिंह, एम. ए

डा० गंगासागर राय, एम ए, पी-एच. डी.

सम्पादक

आनन्दस्वरूप गुप्त, एम ए, शास्त्री

उपनिदेशक, पुराणविभाग, काशिराजन्यास

सर्वभारतीय काशिराजन्यास

दुर्ग रामनगर, वाराणसी

सं० वि० २०२५, शक १८९०

१९६८ ई०

विषयसूची

परिशिष्ट

सर्वभारतीय काशिराज न्यास

का

न्यासिमण्डल

भारत सरकार द्वारा नियुक्त सदस्य

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नियुक्त सदस्य

महामहिम महाराज काशीनरेश द्वारा नियुक्त सदस्य

पुराण-समिति के सदस्य

प्राक्कथन

१५ अगस्त, १९४७ ई०, को भारत स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित हुआ। जिससे इसके दीर्घकालीन विदेशी शासन का अन्त हुआ। भारत की यह दीर्घकालीन पराधीनता किसी देश के इतिहास में सम्भवतः सबसे अधिक रही। भारत देश स्वतन्त्र तो हुआ, परन्तु भारत की यह स्वतन्त्रता विदेशी साम्राज्य की अनेक स्मृतियों से युक्त तथा भारत विभाजन के फलस्वरूप असख्य रक्तरंजित घटनाओं से परिपूर्ण थी।

ऐसी स्थिति में देश के ४८ प्रतिशत भाग पर राज्य करने वाले देशी राजाओं के लिये, अपना सर्वस्व दान कर, एक अखण्ड प्रभुता सम्पन्न भारतीय प्रजातन्त्र राज्य के निर्माण में पूर्ण सहयोग देने का अवसर प्राप्त हुआ।

फलतः स्वर्गीय श्री सरदार वल्लभभाई पटेल के आह्वान पर इन सभी राजाओं ने भारतमाता के महान् हित को ध्यान में रखते हुए अपने राज्यों के विलयन की सहर्ष स्वीकृति दे दी। युगों से ये शासक अपनी प्रजा पर शासन करते आए थे, इनमें से अनेक राज्यों की राज्य परम्परा तो अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत के चिर अतीत से सम्बद्ध थी। इन राजाओं ने आक्रमण के समय अपने राज्यों की रक्षा की सघर्ष के समय इन्हें सचालित किया तथा सामान्यतः अपनी पुत्रवत् प्रजा का पितृवत् सरक्षण किया। अब ये ही राजा भारतीय जनता के हाथों में स्वायत्त शासन की बागडोर देकर एव उन्हें स्वेच्छा से राजनीतिक व्यवस्था करने का तथा अपने भविष्य के निर्माण का अभूतपूर्व अवसर प्रदान कर एव राष्ट्र निर्माण के कार्यों में उन्हीं के साथ कधे से कधा मिलाकर सक्रिय सहयोग करने को प्रस्तुत हुए। इस प्रकार ५७६ राज्यों के विलय का महान् कार्य केवल ढाई वर्षों में सम्पन्न हो गया, अन्यथा उसे पूरा करने में कई दशक लग जाना भी सम्भव था।

भारत के राजवश अब समय की गति के अनुसार अपने कार्यक्षेत्र को परिवर्तित कर देश के उत्थान के लिए राष्ट्रजीवन के विविध क्षेत्रों में लग गए। मैंने स्वयं भी सस्कृत-विद्या और उसकी सस्कृति के पुनर्निर्माण के कार्य को अपनाया जो मेरे राजवश की चिर स्थापित परम्परा के अनुकूल है।

भारत सरकार ने सर्वभारतीय काशिराज न्यास की स्थापना में मेरी सहायता की। इस न्यास का प्रमुख उद्देश्य है सस्कृत विद्या की उन्नति एव भारतीय संस्कृति का पोषण करना। न्यास की स्थापना में भारत के उपप्रधान मन्त्री स्वर्गीय श्री वल्लभभाई पटेल, तथा भूतपूर्व न्याय मन्त्री श्री के० एम० मुशी ने जो सहयोग एव पथप्रदर्शन किया है उसके लिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

मैंने यह कार्य विशाल पुराण वाङ्मय के सम्पादन एव प्रकाशन की योजना से प्रारम्भ किया है क्योंकि सस्कृत साहित्य के क्षेत्र में ये पुराण प्रतिपाद्य विषयों की विविधता तथा गम्भीरता और चार लाख से भी अधिक श्लोकों के विशाल ग्रन्थ समुदाय के कारण अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन पुराणों में आदिकाल से लेकर मध्यकाल तक के भारत के विभिन्न विकासशील कार्यों और विचारों की सास्कृतिक प्रवृत्तियों के धार्मिक एव सामाजिक इतिहास का अद्वितीय वर्णन मिलता है। अनेक कालों और स्थलों में सगृहीत तत्त्वों को समन्वयात्मक रूप देकर उन्हें दार्शनिक, सामाजिक और धार्मिक विचारधाराओं की एकात्मकता के साँचे में ढालने के फलस्वरूप ये हमारे राष्ट्र साहित्य का रूप ग्रहण कर चुके हैं। धर्म और कर्मकाण्ड के पोषण में समाज की व्यवस्थाओं के तथा लोगों के विश्वास एवं मान्यताओं तथा उनकी धार्मिक प्रक्रियाओं एवं नियक्रियों के प्रतिपादन में पुराण समान रूप से समृद्ध हैं।

पुराणों में भौगोलिक एवं स्थानीय वर्णन भी विशद रूप में मिलते हैं। इनमें भारत के पर्वत, नदी, देश, जनपद तीर्थ, तथा पहाड़ी और जगली प्रदेश भी वर्णित हैं।

पुराण आध्यात्मिक तथ्यों को आख्यानों के द्वारा सरलतया प्रतिपादित करने की विशेष शैली अपनाते हैं। इनका लक्ष्य सक्षीप्तीकरण नहीं बल्कि विशदीकरण है, ये विषय की स्पष्टता, सरलता तथा सर्वसाधारण की समझ और रुचि की ओर विशेष ध्यान देते हैं।

इस विशाल एव महत्त्वपूर्ण साहित्य के गम्भीर अध्ययन की विशेष आवश्यकता है। भारतीय विद्या के उपासकों एव स्नातकों तथा भारत के दार्शनिक और धार्मिक सम्प्रदायों में रुचि रखनेवाले अन्य विद्वानों को चाहिए कि वे पुराणों का विस्तृत अध्ययन एव उनमें निहित विविध विचारप्रवृत्तियों का विश्लेषण करें तथा उनकी समालोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करें। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत के सास्कृतिक इतिहास में शोधकार्य के लिए पुराण हमें पर्याप्त क्षेत्र प्रदान करते हैं। विद्वानों का ध्यान भारत के दो महान् इतिहासों—रामायण तथा महाभारत—की ओर तो पहले ही आकर्षित हो चुका है, जिसके कारण उनका वैज्ञानिक पद्धति से समीक्षात्मक अध्ययन एव सम्पादन हुआ है, किन्तु भारत का विश्वकोष जैसा पुराण साहित्य इस दृष्टि से अभी तक उपेक्षित ही रहा।

जब काशिराजन्यास द्वारा पुराणों का इस प्रकार का वैज्ञानिक पाठसशोधनात्मक सम्पादन प्रारम्भ किया गया तो ऐसा लगा कि पुराणों का मूलपाठ बहुधा प्रक्षेपों तथा पाठान्तरों से प्रभावित है। कुछ विद्वानों ने मत व्यक्त किया कि हमें उपलब्ध पाठ के सस्करणों का विशेष अध्ययन कर उन्हें ही पुन प्रकाशित करना चाहिए। परन्तु हम लोग विचार-पूर्वक इस निर्णय पर पहुँचे कि सर्वप्रथम सम्भावित मूलपाठ का सम्पादन एव प्रकाशन प्राप्य हस्तलेखों तथा अन्य पाठसमीक्षोपयोगी सामग्रियों के समीक्षात्मक विश्लेषण के बाद ही सावधानी से होना चाहिये। यद्यपि पुराणों के मूलपाठ के, जो अनिश्चित एव अस्थिर दशा में है, अक्षरश मौलिक रूप का पुनर्निर्माण किया जाना असम्भव है, तथापि कम से कम, प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उनके पर्याप्त प्राचीनतम पाठ का निर्धारण तो किया ही जा सकता है। अन्ततोगत्वा सभी (अट्ठारह) पुराणों का समीक्षित सस्करण तथा उनका हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद निकालने का निश्चय किया गया है। यह एक विस्तृत योजना है। जिसके लिए अत्यधिक व्यय भी अपेक्षित है। तथापि हमने इस कठिन कार्यभार को उठाया है।

विश्व-प्राच्यविद्या अन्तर-राष्ट्रीय-सम्मेलन के प्रति हम बहुत कृतज्ञ हैं कि उसने १९६१ के अपने मास्को (रूस) अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव को पारित कर हमारी योजना का अनुमोदन किया —

"प्राच्यविद्या के विद्वानों के अन्तर राष्ट्रीय सम्मेलन का यह पचीसवाँ अधिवेशन इस बात पर सतोष व्यक्त करता है कि पूना में स्थित भण्डारकर प्राच्यशोधसंस्थान द्वारा प्रकाशित महाभारत तथा बड़ौदा के प्राच्य-शोध संस्थान द्वारा सम्पादित रामायण के सदृश ही वाराणसी के काशिराजन्यास द्वारा पुराणों का समीक्षित सस्करण सम्पादित एव प्रकाशित किया जा रहा है, और आशा करता है कि इस महत्त्वपूर्ण कार्य के सफल सम्पादन में अन्तरराष्ट्रिय सहयोग प्राप्त होता रहेगा"।

पुन इस सम्मेलन ने अपने १९६४ में हुए दिल्ली के अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास कर इसकी पुष्टि की —

"प्राच्यविद्या विदों के अन्तर-राष्ट्रिय-सम्मेलन का यह छब्बीसवाँ अधिवेशन बनारस के सर्व भारतीय-काशिराज-न्यास द्वारा सभी पुराणों के समीक्षात्मक सम्पादन तथा पुराण सम्बन्धी सर्वतोमुखी समालोचनात्मक अध्ययन के लिए

सुनिर्धारित योजना का स्वागत करता है, तथा आशा करता है कि प्राच्यविद्या के शोध-कार्यों में रुचि रखनेवाले व्यक्ति तथा संस्थाएं, इस प्रयास में अपनी सहायता और सहयोग प्रदान करेंगे।"

हमें बहुत प्रसन्नता है कि पुराणों के सम्पादन एवं प्रकाशन की इस योजना का सर्वप्रथम प्रकाशन वामनपुराण का पाठसमीक्षात्मक संस्करण है जिसको संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के मिशिगनप्रदेशान्तर्गत आन आर्बर नगर में प्राच्यविद्याविद् विद्वानों के अन्तरराष्ट्रिय सम्मेलन के अट्ठाइसवें अधिवेशन में समर्पित किया गया। इस अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया —

"यह सम्मेलन केन्द्रीय भारत सरकार, राज्य सरकारों तथा भारतीय विद्या में अभिरुचि रखनेवाले सभी विद्वानों से सिफारिश करता है कि महाराज-बनारस के सुयोग्य पथप्रदर्शन में काशिराज न्यास द्वारा पुराणों के संशोधित संस्करणों को प्रकाशित करने का बहुत ही उपयोगी कार्य किया जा रहा है। इस योजना के अन्तर्गत श्री आनन्द-स्वरूप गुप्त द्वारा सुयोग्यतया सम्पादित वामनपुराण का पाठसमीक्षात्मक संशोधित संस्करण काशिराजन्यास के सदस्य डा० सुनीति कुमार चटर्जी द्वारा इस अधिवेशन में प्रस्तुत किया जा रहा है जिसे विशेष रूप से न्यास के सदस्य डा० रायगोविन्द चन्द्र वाराणसी से यहाँ लाये हैं।"

हम आशा करते हैं कि इस संस्करण के सम्बन्ध में विद्वान् लोग अपना बहुमूल्य सुझाव देने की कृपा करेंगे जिससे आगामी संस्करणों में हम उन्हें अपना सकें। हम सर्वथा आशान्वित हैं कि पुराण सम्पादन के इस कार्य से पुराणों के पठन पाठन में एक नवीन प्रेरणा मिल सकेगी एवं इस दिशा में अभिरुचि जागरित होगी।

अब काशिराजन्यास द्वारा वामनपुराण के इस संस्करण का मूलसंस्कृतपाठसहित एवं अनेक उपयोगी परिशिष्टों से युक्त हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद भी पृथक् पृथक् प्रकाशित कर दिये गये हैं। आशा है वामन-पुराण के अध्ययनादि में इन अनुवादों से पर्याप्त सहायता मिलेगी।

भारत सरकार, उत्तरप्रदेश सरकार तथा मैसूर सरकार के प्रति उनके द्वारा की गई उदार आर्थिक सहायता के लिए, जो हमारे लिये बड़े प्रोत्साहन की बात है, हम अपना आभार प्रदर्शित करते हैं।

विजयदशमी
सं० वि० २०२५
(१ अक्टूबर, १९६८)

विभूतिनारायणसिंह
(काशिनरेश)

भूमिका

१—पुराण वाङ्मय

भारतीय साहित्य में पुराणों का स्थान

यद्यपि धर्म का मूलस्रोत वेद माना जाता है[1] परन्तु हिन्दुसमाज का धर्म प्रधानतया पौराणिक ही रहा है। अत प्राचीन भारतीय वाङ्मय में पुराणों का अपना एक विशिष्ट स्थान है। वेदों का पठन पाठन तो उच्च वर्ग के व्यक्तियों अर्थात् द्विजों तक ही सीमित था, निम्न वर्ग के लोगों के लिये वेदों का अध्ययन अथवा श्रवण सभव नहीं था।[2] परन्तु पुराण-वाङ्मय दोनों ही प्रकार के वर्गों के लिये विहित तथा सुलभ था, लोक शिक्षा के माध्यम के रूप में भी पुराणों की उपयोगिता सदा ही बनी रही। पुराण वाङ्मय को पञ्चमवेद माना जाता था—"इतिहासपुराण पञ्चम वेदाना वेदम्" (छान्दोग्योपनिषद् ७ १.२), "पुराण पञ्चमो वेद इति ब्रह्मानुशासनम्" (स्कन्द पु०, रेवाखण्ड) इत्यादि। अत वेदों के समकक्ष ही पुराणों का स्थान था। 'वेदसमितम्" ऐसा वचन पुराणों में अनेक स्थानों पर मिलता है। इतना ही नहीं, कहीं कहीं तो वेदों से भी अधिक पुराणों को मान्यता प्रदान की गई —

वेदार्थादधिक मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदा प्रतिष्ठिता सर्वे पुराणे नात्र सशय ॥ (नारदीय पु०, २ २४ १७)

भारतीय जनता में धार्मिक विचारों तथा विधानों के लिये एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक कृत्यों के लिये मुख्य प्रेरणा पुराणों से ही प्राप्त होती रही है, अत भारत की धार्मिक एव सास्कृतिक इतिहास परम्परा को समझने के लिए पुराणों का अध्ययन एव ज्ञान आवश्यक है, और उनमें उल्लिखित प्राचीन भारतीय राजवशावलियों तथा वशानुचरितों के कारण भारत के प्राचीन राजनैतिक इतिहास के निर्माण में पुराणों का प्रधान भाग रहा है। पुराणों में वर्णित भुवनकोश की सहायता के विना भारत के प्राचीन भूगोल का ज्ञान भी सभव नहीं है। इस प्रकार पुराण वाङ्मय निर्विवाद रूप से अनेक विद्याओं का स्रोत है। वेदों की सम्यग् व्याख्या के लिए भी पुराणों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि महाभारतादि इतिहास तथा पुराणो के द्वारा ही वेदों का उपबृंहण हुआ है, जैसा कि महाभारत तथा पुराणों में कहा है—

इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामय प्रहरिष्यति ॥
(महाभारत १ १ २६७ वायु पु० १ २०१, इत्यादि)

पुराण और इतिहास

प्राचीन वैदिक काल से ही पुराण और इतिहास का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध रहा है, वे दोनों एक दूसरे के

संकेत—

दे = देखिये
तु = तुलना कीजिये

१ दे—वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। (मनुस्मृ० २ ६ मत्स्य-पु०, ५२ ७)
२ तु—स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा। (भागवत पु० १ ४ २५)

पूरक माने गये हैं। 'पुराण' और 'इतिहास' ये दोनों शब्द कभी तो भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते रहे और कभी एक ही अभिन्न अर्थ में दोनों का प्रयोग होता था। शंकराचार्य के अनुसार 'इतिहास' ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णित उर्वशी पुरूरवा के संवादादि का नाम है तथा 'पुराण' "असद्वा इदमग्र आसीत्" इत्यादि सृष्टिविषयक वचनों का नाम है—"इतिहास इति-उर्वशीपुरूरवसो संवादादि। पुराणम्-असद्वा इदमग्र आसीदित्यादि।" (बृहदारण्यकोपनिषद् २.४.१०, शांकरभाष्य)। परन्तु सायण (शतपथब्राह्मण १३.४.३, भाष्य) के मतानुसार इतिहास का अर्थ सृष्टिविषयक इसप्रकार के वचन हैं जैसे "आरम्भ में जल के अतिरिक्त कुछ नहीं था" और पुराण का अर्थ उर्वशी पुरूरवा इत्यादि का आख्यान है। इसप्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में भी इतिहास तथा पुराण का अर्थ एक दूसरे के लिये बदला जा सकता था, अर्थात् वे दोनों एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते थे। परन्तु कभी कभी उनका एक दूसरे से पृथक् अर्थ में भी प्रयोग मिलता है।

विशेषण के रूप में 'पुराण' शब्द का अर्थ है 'पुराना, पुरातन, प्राचीन तथा संज्ञा के रूप में इसका अर्थ है—'पुरातन आख्यानों से संयुक्त ग्रन्थ'। इस अर्थ में 'पुराण' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग हमें अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है।[३] 'इतिहास शब्द का निर्वचन है-'इति ह आस' अर्थात् 'यह ऐसा था' या 'ऐसा हुआ'। इस निर्वचन के अनुसार किसी तथ्यात्मक कथानक या आख्यान को इतिहास कहा जाता था। यास्क ने अपने निरुक्त में 'इतिहास' शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है-"तत्रेतिहासमाचक्षते—'देवापिश्चार्ष्टिषेण शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतु'।" (निरुक्त २.३.१)। बाद में पुराणों में भी 'इतिहास' शब्द का इस अर्थ में प्रयोग पाया जाता है—"अत्राप्युदाहरन्तीममितिहास पुरातनम्" (मत्स्य पु १७६), इत्यादि। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि 'पुराण' शब्द किसी समय दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता था। कोई भी आख्यान चाहे वह रूपकात्मक हो या तथ्यात्मक हो 'पुराण' कहा जाता था। 'पुराण' शब्द का इस प्रकार का प्रयोग हमें अथर्ववेद (११ ७ २४) तथा पुराणों में भी मिलता है।

जैसा कि पहले कहा गया है केवल 'पुराण' शब्द ही पुराण तथा इतिहास दोनों के लिये प्रयुक्त पाया जाता है, अतः 'पुराण' शब्द का अर्थ 'इतिहास' शब्द के अर्थ से अधिक विस्तृत था तथा 'पुराण' के अन्तर्गत पुराण और इतिहास दोनों ही आ जाते थे, याज्ञवल्क्य स्मृति में धर्म के चौदह स्थानों (स्रोतों) में केवल पुराण की गणना की है, इतिहास या इतिहास पुराण की नहीं, यथा—

> पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिता।
> वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥ (याज्ञ० स्मृ० १ ३)

यहाँ याज्ञवल्क्य ने पुराण में इतिहास का भी अन्तर्भाव किया है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि महाभारतादि इतिहास भी धर्मशास्त्र अर्थात् धर्मप्रतिपादक ग्रन्थ माना गया है।[४] इसी प्रकार विष्णुपुराण (३ ६.२८) में भी चौदह (या अठारह) विद्याओं में केवल पुराण की गणना है जिसमें इतिहास का भी अन्तर्भाव मानना चाहिये।

३ दे—ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ (अथर्ववेद ११ ७ २४)
तथा "अथ नवमेऽहन् तानुपदिशति पुराणं वेदः, सोऽयमिति किंचित्पुराणमाचक्षीत (शतपथ-ब्रा०, १३ ४ ३ १३) इत्यादि।

४ दे.—जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।
अर्थशास्त्रमिदं पुण्यं धर्मशास्त्रमिदं परम्।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना॥
(महाभा० समीक्षित संस्करण, पूना, १ ५६ १९,२१)

इस प्रकार 'पुराण' तथा 'इतिहास' ये दोनों ही शब्द एक दूसरे के अर्थ में प्रयुक्त होने लगे और पुराण तथा इतिहास ये दोनों विषय यद्यपि प्राचीन काल में कभी अलग अलग माने जाते थे परन्तु बाद में ये दोनों अभिन्नार्थक माने जाने लगे, जिसके कारण इन दोनों की व्याख्या या परिभाषा में भी कोई भेद न रह गया। अमरकोश ने इतिहास का जो लक्षण दिया है महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ ने वही लक्षण पुराण का दिया है, यथा—

इतिहास पुरावृत्तम् (अमरकोश १.५ ४)

पुराण पुरावृत्तम् (नीलकण्ठटीका—महाभा० १.५ १)

और ज्यों-ज्यों पुराण विश्वकोश का रूप धारण करते गये और अपने में मानवोपयोगी सभी विषयों का समावेश करने लगे, त्यों-त्यों इतिहास तथा धर्मशास्त्र आदि विषयों का समावेश भी पुराण में होने लगा। महाभारत ने स्वय अपने आपको 'पुराण' कहा है—"द्वैपायनेन यत्प्रोक्त पुराण परमर्षिणा" (१.१ १७) इत्यादि, और रामायण का भी बहुत कुछ अश वस्तुत पुराण ही है। अत पुराण में इतिहास भी समाविष्ट है। इस प्रकार पुराण के विशाल वाङ्मय में अठारह महापुराणों का, अठारह या इससे भी अधिक उपपुराणों का तथा रामायण और महाभारत इन दोनों भारत के राष्ट्रीय इतिहास ग्रन्थों का समावेश हो जाता है। केवल अठारह महापुराणों की ही श्लोकसंख्या चार लाख मानी गई है, महाभारत की श्लोकसख्या एक लाख है तथा रामायण की पचीस हजार, इस तरह सब मिलाकर सवा पाँच लाख श्लोक सख्या इस विशाल वाङ्मय की है। सवा पाँच लाख श्लोकों का यह समग्र वाङ्मय एकत्रित 'पुराण' नाम से अभिहित होता है, जैसा कि मत्स्य पुराण में माना गया है —

एव सपादा पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिता।

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधा ॥ (मत्स्य पु० ५३ ७१)

अठारह महापुराणों के अतिरिक्त जो अठारह या और भी अधिक उपपुराण हैं वे इन महापुराणों के ही परिशिष्ट रूप माने गये हैं उनकी सख्या इस सवा पाँच लाख से अलग है इस प्रकार भारत का यह विशाल इतिहास-पुराण या पुराण वाङ्मय परिमाण तथा विषय के विस्तार की दृष्टि से ससार में अद्वितीय है।

वर्त्तमान पुराण ग्रन्थों का स्वरूप और महत्त्व

पुराण और हिन्दुधर्म एक दूसरे के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं, एक के परिवर्त्तन से दूसरे में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। पुराणों ने अपने प्रामाण्य को सदा अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयत्न किया है। अतएव जब जब हिन्दु जाति में कोई सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनैतिक परिवर्त्तन या विप्लव हुआ तब तब पुराणों ने भी अपने स्वरूप में तदनुरूप परिवर्त्तन करने की चेष्टा की है और तत्कालीन नवीन विचारधाराओं को अपना कर अपने साचे में ढालने का प्रयत्न किया है, अत पुराणों में समय समय पर अनेक सशोधन एव परिवर्धन होते रहे। पुराणों में जो अनेक प्रक्षेप या पाठभेद मिलते हैं उनमें से सब नहीं तो कुछ अवश्य इस प्रकार की चेष्टा के फलस्वरूप हुए हैं, परन्तु इतना होने पर भी उनमें कुछ परम्परायें ऐसी भी सुरक्षित हैं जो अत्यन्त प्राचीन काल से कदाचित् प्राग्वैदिक काल से, भारत में चलती आ रही थीं और जो परम्परायें वर्त्तमान पुराणों के प्राचीन संस्करणों में भी निबद्ध रहीं होंगी। अतएव वर्त्तमान पुराणों में उनके प्राचीन स्वरूप में से बहुत कुछ सुरक्षित माना जाना चाहिये, और जो कुछ परवर्त्ती काल में नवीन सशोधनादि हुए हैं उनमें से अधिकतर देश और काल की आवश्यकता के अनुसार ही हुए हैं और उनसे हमें प्रगतिशील हिन्दुधर्म के तत्तत्कालीन स्वरूप की झाँकी मिलती है। वर्त्तमान पुराण ग्रन्थों को प्राचीन पुराणों के सशोधित सस्करण ही समझना चाहिये, और कुछ प्रक्षिप्तांशों को छोड़ कर उनमें से कोई भी पुराण ग्रन्थ ११वीं शताब्दी के बाद का नहीं है, क्योंकि अरबविद्वान्

अल्बेरूनी ने १०३० ई० मे अपने ग्रन्थ में इन सभी अठारह महापुराणों का तथा कुछ उपपुराणों का भी उल्लेख किया है।[५] उनमें से कुछ पुराण ७वीं शताब्दी से भी पूर्व के हैं क्योंकि उनमें से किसी में भी गुप्तकाल के पश्चात् की किसी भी राजवंशावली का उल्लेख नहीं मिलता, यहाँ तक कि हर्षवर्धन सम्राट् का उल्लेख भी पुराणों में नहीं है, अत वे पुराण हर्षवर्धन-काल से पूर्व के ही होने चाहिये। विंटरनिट्ज़ ने अपने 'भारतीय साहित्य के इतिहास' (History of Indian Literature) भाग १, पृष्ठ ५२५, में कहा है कि प्राचीन पुराण-ग्रन्थ अपने वर्तमान रूप में ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में ही आ चुके थे क्योंकि वर्तमान पुराणों में तथा प्रथम शताब्दी के ललितविस्तर, सद्धर्मपुण्डरीक आदि बौद्ध ग्रन्थों में शैली इत्यादि के विचार से बहुत कुछ साम्य पाया जाता है।

पुराणों की अनुवाद परम्परा का उद्भव तथा विकास

पुराणों की प्रसिद्धि तथा लोकप्रियता के कारण तथा उनके धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व के कारण दोनों इतिहास-ग्रन्थों का तथा अनेक पुराणों का भारत की प्राय सभी समृद्ध भाषाओं में तथा बहुत सी विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है। पूरे ग्रन्थों के अनुवाद के अतिरिक्त इनके कुछ प्रसिद्ध आख्यानों का, दार्शनिक सदर्भों का तथा माहात्म्यों और स्तोत्रों का भारत में तथा यूरोप में अलग भी अनुवाद हुआ है। सामान्यत जितना ही प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय कोई ग्रन्थ रहा है उसके उतने ही अधिक अनुवाद भी हुए हैं। दोनों इतिहास-ग्रन्थों पर तथा कुछ पुराणों पर (जैसे भागवतपुराण, विष्णुपुराण, लिङ्गपुराण आदि पर) उच्चकोटि की अनेक सस्कृत टीकायें भी लिखी गईं, जिनका विद्वद्वर्ग में बहुत अधिक समादर है, और बहुत से देशी तथा विदेशी अनुवादों में उनसे सहायता ली गई है।

(१) भारत मे पुराणों की अनुवाद परम्परा

पुराण वाङ्मय दोनों इतिहास ग्रन्थों सहित भारत में लोक शिक्षा का माध्यम सदा से रहा है यह पहले ही कहा जा चुका है। सूतों और व्यासों द्वारा इनका पाठ तथा प्रवचन जगह जगह जनता के समक्ष किया जाता था, इससे भारत के निरक्षर लोगों को भी उच्चकोटि की धार्मिक तथा सास्कृतिक शिक्षा अनायास ही मिल जाती थी। पुराण-साहित्य सस्कृत में होने के कारण इतिहास तथा पुराण साधारण पढ़े लिखे लोगों की पहुँच के बाहर थे। उन पर सस्कृत में जो टीकायें

५ दे—'अल्बेरूनि का भारत (Alberuni's India, translated by E C. Sachau, भाग १, पृष्ठ १३०-१३१)

अल्बेरूनि ने इस ग्रन्थ में पुराणों की दो सूचिया दी हैं—एक तो वह जो विष्णुपुराण (३ ६ २१-२४) म दी हुई है, यथा—

(१) ब्राह्म, (२) पाद्म, (३) वैष्णव (४) शैव (५) भागवत, (६) नारदीय, (७) मार्कण्डेय, (८) आग्नेय, (९) भविष्य (१०) ब्रह्मवैवर्त्त, (११) लैङ्ग, (१२) वाराह (१३) स्कान्द, (१४) वामन, (१५) कूर्म, (१६) मात्स्य, (१७) गारुड, (१८) ब्रह्माण्ड

तथा दूसरी सूची वह है जो किसी तत्कालीन पुराणज्ञ से उसने सुनी—

(१) आदिपुराण, (२) मत्स्यपुराण, (३) कूर्मपुराण, (४) वाराह पुराण, (५) नरसिंह पुराण, (६) वामनपुराण, (७) वायुपुराण, (८) नन्दपुराण, ( ) स्कन्दपुराण, (१०) आदित्यपुराण, (११) सोमपुराण, (१२) साम्बपुराण, (१३) ब्रह्माण्डपुराण, (१४) मार्कण्डेयपुराण, (१५) तार्क्ष्य (= गारुड) पुराण, (१६) विष्णुपुराण, (१७) ब्रह्मपुराण, (१८) भविष्यपुराण।

यह सूची विष्णुपुराणोक्त सूची से कुछ भिन्न है इसमें विष्णुपुराणोक्त कुछ पुराणों का उल्लेख न होकर कई उपपुराण माने जाने वाले पुराणों का उल्लेख है और इस प्रकार १८ सख्या पूरी हो गई है। सभव है यह सूची भी उस समय प्रचलित रही हो।

थीं ये केवल विद्वानों के ही काम की थीं, साधारण जनता का उनसे काम चलना संभव नहीं था। साधारण जन-समाज में भी पुराण वाङ्मय तथा महाभारत-रामायण के अध्ययन तथा अनुशीलन की इच्छा का जागरित होना स्वाभाविक था। अतः उनके अनुवादों की परम्परा का जन्म भारत में हुआ। रामायण-महाभारत तथा पुराणों के साररूप में भी अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इनके आधार पर अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों का भी निर्माण होने लगा। मध्यकालीन भक्तकवियों का इसमें प्रधान हाथ रहा है। हिंदी में तुलसीदास का रामचरितमानस, तेलुगु में रंगनाथ-रामायण तथा तामिल में कम्बन-रामायण इसी प्रकार का प्रयास कहा जा सकता है। सूरदास का सूरसागर भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर स्वतन्त्र रचना है। महाभारत के आधार पर भी अनेक ग्रन्थ देशी भाषाओं में लिखे गये। अन्य पुराणों के आधार पर भी अनेक रचनाएं भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं में हुई हैं। भारत में निर्मित इन अनुवादों, सार ग्रन्थों तथा अन्य पुराण विषय-सम्बन्धी स्वतन्त्र रचनाओं की भारत की विभिन्न प्रदेशीय भाषाओं—हिंदी, बंगला, उड़िया, गुजराती, मराठी, तेलुगु, तामिल आदि—में इतनी अधिक संख्या है कि स्थानाभाव के कारण यहाँ उनका उल्लेख करना शक्य नहीं हैं। विभिन्न भाषाओं में लिखे गये पुराण सम्बन्धी इन अनुवादों तथा सार-ग्रन्थों का परिचय पृथक् पृथक् लेखों के रूप में 'पुराण'-पत्रिका में प्रकाशित करने की योजना है और 'पुराण' में इस प्रकार के कुछ लेखों का प्रकाशन भी हुआ है, जैसे 'तामिल में पुराण' ('पुराण' भाग २, जुलाई १९६०, पृष्ठ २२५-२४२), 'तेलुगु में पुराण' ('पुराण' भाग ४, अङ्क २, जुलाई १९६२, पृष्ठ ३८७-४०७) तथा कन्नड में 'पुराण' ('पुराण' भाग ६, अङ्क १, जुलाई १९६४, पृष्ठ १४७-१७३)।

देशी भाषाओं के अतिरिक्त भारत में फारसी में भी रामायण, महाभारत तथा कुछ पुराणों के अनुवाद हुए हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

(१) रामायण—रामायण का फारसी अनुवाद अकबर के समय में फैजी द्वारा किया गया था। रामायण का एक अन्य फारसी अनुवाद १८वीं शताब्दी के अन्त में बनारस में गोस्वामी आनन्दघन द्वारा किया गया, जिसे बनारस के महाराजा श्री महीपनारायण सिंह जी के समय में नियुक्त बनारस के रेजिडेंट जोनेथन डंकन (Jonathan Duncan) ने करवाया था। रामायण के फारसी अनुवाद की एक पाण्डुलिपि लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है जिसकी संख्या OR 5087 है।[६]

(२) महाभारत—महाभारत का फारसी अनुवाद सम्राट् अकबर के आदेशानुसार विद्वानों के एक समूह ने किया। इस फारसी अनुवाद (रज्मनामा, चित्रों सहित) की एक पाण्डुलिपि (OR 12076) ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है। १८वीं शती का एक अन्य फारसी अनुवाद भी ब्रिटिश म्यूजियम में है (OR 5746, पर्व १–४; OR. 5748, पर्व ६–१०, OR 5861, पर्व १२-१६)[७]

(३) हरिवंश—हरिवंश का एक फारसी रूपान्तर १६८० ई० का ब्रिटिश म्यूजियम में प्राप्य है संख्या (OR 5747).

(४) मत्स्य-पुराण—गोस्वामी आनन्दघन द्वारा मत्स्यपुराण का भी फारसी अनुवाद ९ भागों में किया गया है। यह स्वतन्त्र भाषानुवाद है तथा इसमें अन्य पुराणों के अंश भी मिले हुए हैं। इस अनुवाद का आरम्भ जानेथन डंकन के आदेशानुसार १८४८ वि० (१७९२ ई०) में किया गया। इसकी एक पाण्डुलिपि इटली के

६–७ ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित इन फारसी अनुवादों की सूचना वहीं के अधिकारियों द्वारा काशीराज न्यास के पास भेजे हुए उनके १० जनवरी १९६३ के एक पत्र में दी गई है, जिसके लिये हम उनके आभारी हैं।

रोमस्थानीय एक संस्थान (Italian Institute) में सुरक्षित है। इसके प्रथम भाग की माइक्रोफिल्म प्रति काशिराज-न्यास द्वारा रोम से प्राप्त की गई है। इस फारसी अनुवाद का अंग्रेजी अनुवाद 'पुराण' पत्रिका में यथा समय प्रकाशित किया जायेगा।

(५) भागवत-पुराण—अखिलभारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन (All-India Oriental Conference) के अलीगढ अधिवेशन के समय मैंने भागवत पुराण के फारसी अनुभव के कुछ हस्तलेख अलीगढ़ विश्वविद्यालय के ग्रन्थागार मे देखे थे ऐसा मुझे स्मरण है। संभवत कुछ अन्यपुराणों के तथा हरिवंश के भी फारसी अनुवाद वहाँ हों।

(आ) अन्य एशियाई देशों मे इतिहास पुराण के अनुवादादि

भारतीय हिन्दू धर्म का प्रचार तथा प्रसार भारत से बाहर भी अन्य एशियाई देशों में–विशेषत दक्षिण पूर्व एशिया में–प्राचीन काल से ही पाया जाता है। तिब्बत, चीन, जापान, इन्डोचाइना तथा इन्डोनेशिया में शैव तथा वैष्णव धर्म का विशेष प्रचार हुआ। रामायण, महाभारत तथा पुराण (विशेषतया ब्रह्माण्ड-पुराण) वहाँ बहुत लोकप्रिय हो गये। बालि द्वीप में शैव उपासकों का अत्यन्त प्रिय ग्रन्थ तद्देशीय ब्रह्माण्डपुराण है ऐसा एक पाश्चात्य विद्वान्[८] का कथन है। इन्हीं विद्वान् (आर फेडरिक) ने १८४७ ई० में प्रथम बार पुरानी जावा भाषा मे लिखे हुए ब्रह्माण्ड पुराण की ओर तथा अन्य अनेक मूल संस्कृत ग्रन्थों के पुरानी जावा भाषा में रचित रूपान्तरों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। एक डच विद्वान् (Dr H N. Van der Tuuk) ने इस पुराण के अनेक हस्तलेखों (पाण्डुलिपियों) का संग्रह किया जो १८९४ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् हालैंड भेज दिये गये। इस प्राचीन जावाई ब्रह्माण्ड पुराण को हालैंड के प्रसिद्ध विद्वान् डा० गोंडा ने सम्पादित तथा डच भाषा में अनूदित किया है। जावाद्वीपीय यह ब्रह्माण्ड पुराण मूल संस्कृत ग्रन्थ का अथवा ब्रह्माण्ड-पुराण के किसी सक्षिप्त संस्करण का पुरानी जावा भाषा में गद्यानुवाद है। इस अनुवाद में बीच बीच में मूल संस्कृत ग्रन्थ के अनेक श्लोक या उनके पाद ज्यों के त्यों संस्कृत में दिये गये हैं और ऐसे बहुत से श्लोकों या श्लोक पादों का जावा भाषा में साथ साथ अनुवाद भी दिया है।[९]

तिब्बत, जापान, इन्डोचाइना तथा इन्डोनेशिया में रामायण के भी अनेक रूपान्तर (अनुवाद अथवा सार रूप में अथवा तद्देशीय कथाओं के रूप में) उपलब्ध थे, और कुछ अब भी उपलब्ध हैं। प्राचीन जावाद्वीपीय रामायण (कैकविन) के सबन्ध में एक विद्वान्[१०] का यह भी मत है कि इसके कुछ अंश तो भट्टिकाव्य से अनूदित हैं तथा शेष अंश भट्टिकाव्य के कुछ अंशों के भावरूप हैं। रामायण का प्रभाव केवल जावा तथा बालि द्वीपों मे ही नहीं था, परन्तु कम्बोडिया, लाओस, थाईलैंड तथा कुछ अन्य भागों में और चीन में भी था।

प्राचीन जावा भाषा में प्रस्तुत महाभारत के रूपान्तर का कुछ विशेषरूप से विवरण डा० सुकथकर ने स्वसंपादित महाभारत-आदिपर्व की भूमिका (Prolegomena) में दिया है। इस जावाद्वीपीय महाभारत ग्रन्थ में सर्वत्र बीच बीच में संस्कृत के श्लोक भी दिये हुए हैं, जिन्हें भाण्डारकर प्राच्यसंस्थान, पूना, से प्रकाशित महाभारत के पर्वों में परिशिष्ट रूप में दिया है।

८ आर फैडरिक, 'जनरल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी', १८७६ पृ० १७१

९ दे०—डा जे गोंडा का जावाद्वीपीय ब्रह्माण्डपुराणविषयक लेख, 'पुराण', वर्ष २, जुलाई १९६०, पृ० २५१–२६७

१० एम घोष जनरल आफ दि ग्रेटर इण्डिया सोसाइटी, कलकत्ता ३ १ दे०—ए डी पुसाल्कर, स्टडीज इन दि एपिक्स एण्ड दि पुराणज् पृ० १२५

(इ) यूरोप में रामायण महाभारत एवं पुराणों की अनुवाद परम्परा[11]

यूरोप के साहित्य पर भारत के इतिहास-पुराण वाङ्मय का जो प्रभाव पड़ा है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है तथा अध्ययन करने योग्य है। यूरोप का कथा साहित्य प्राय भारत के कथा साहित्य पर आधारित है। १९वीं शताब्दी के आरम्भ से यूरोपीय साहित्य भारतीय इतिहास पुराण साहित्य से विशेष प्रभावित होने लगा। मध्ययुग से ही यूरोप में इस प्रभाव का आभास मिलता है। भारत के कुछ ग्रन्थ अरबी तथा फारसी अनुवादों के द्वारा यूरोप म पहुँच गये। उदाहरणार्थ, पञ्चतन्त्र का अनुवाद पहले ईरान की प्राचीन भाषा पहलवी में हुआ। पुन इस पहलवी रूपान्तर का सीरियाई (५७० ई०) तथा अरबी (लगभग ७६० ई०) भाषाओं में अनुवाद हुआ। इस अरबी अनुवाद पर आधारित युरोपीय भाषाओं में पञ्चतन्त्र के अनेक रूपान्तर हुए। भारत में आनेवाले कुछ यात्रियों तथा ईसाई मिशनरियों ने भी प्राचीन भारतीय साहित्य से यूरोप को अवगत कराया। १६५१ ई० म डच यात्री अब्राहम रोजर (Abraham Roger) ने भर्तृहरि की सूक्तियों का प्रकाशन किया जिनका पुर्तगाली भाषा में एक ब्राह्मण ने उसके लिये अनुवाद कर दिया था। उपनिषदों का फारसी अनुवाद औरंगजेब के भाई दाराशिकोह ने किया था। उपनिषदों के इस फारसी अनुवाद का फ्रांस के एक विद्वान् (Anquetil du Perron) ने १९वीं शताब्दी के आरम्भ में लैटिन में अनुवाद किया। यद्यपि यह लैटिन अनुवाद बहुत शुद्ध नही था फिर भी इसने जर्मन दार्शनिक शोपेनहार को अत्यन्त प्रभावित किया।

पञ्चतन्त्र के सीरियाई तथा अरबी अनुवादों के यूरोपीय रूपान्तरों ने, उपनिषदों के फारसी रूपान्तर के लैटिन अनुवाद ने, भर्तृहरिसुभाषितों के पुर्तगाली अनुवाद के प्रकाशन ने, तथा संस्कृतज्ञ अंग्रेजी विद्वानों द्वारा भारत में किये हुए कुछ महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवादों ने—यथा, चार्ल्स विल्किन्स Charles Wilkins) द्वारा सन् १७८५ में किये हुये भगवद्गीता के अंग्रेजी अनुवाद ने (जो मूल संस्कृत ग्रन्थ से यूरोपीय भाषा में किया हुआ सर्वप्रथम अनुवाद था), १७८७ ई० में इसी विद्वान् द्वारा किये हुए 'हितोपदेश' के अनुवाद ने, १७८९ ई० में विलियम जॉन्स (William Jones) द्वारा किये हुए कालिदासकृत शकुन्तला नाटक के अंग्रेजी अनुवाद ने (इस अंग्रेजी अनुवाद का जर्मन भाषान्तर भी जॉर्ज फास्टर द्वारा १७९१ ई० में किया गया), १७९४ ई० में विलियम जान्स द्वारा किये हुए 'मनुस्मृति' के अंग्रेजी अनुवाद ने (जिसका जर्मन अनुवाद भी १७९७ ई० म प्रकाशित हुआ), तथा 'विवादार्णवसेतु' नामक धर्मनिबन्ध के फारसी अनुवाद के नैथेनील ब्रेसी हालहेड (Nathaniel Brassey Halhed) द्वारा १७७६ ई० में किये हुए अंग्रेजी अनुवाद ने यूरोपीय विद्वानों को संस्कृत के अध्ययन की ओर तथा भारत के प्राचीन संस्कृत साहित्य के अन्वेषण की ओर आकर्षित एवं प्रवृत्त किया।

कुछ यूरोपीय विद्वान् इस अध्ययन के लिए स्वय भारत भी आये। इनमें ग्रीक विद्वान् गैलेनौस का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जो १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बनारस आया तथा यहाँ संस्कृत का अध्ययन किया और

११ भूमिका का यह अंश अधिकतर एम विंटरनित्जकृत हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, भाग १, के निम्नलिखित अंशों पर आधारित है —

इण्ट्रोडक्शन के पृष्ठ १-२४, वैदिक लिटरेचर नामक अंश के पृ० ५२-१७०, तथा एपिक्स एण्ड पुराणाज सम्बन्धी अंश के पृ० ३११-५७८ अन्य ग्रन्थों तथा सूचनाओं का भी आधार लिया गया है जिनका निर्देश यथासम्भव उन स्थानों पर कर दिया गया है।

४० वर्ष तक बनारस में रहकर अनेक संस्कृत ग्रन्थों का (देवी माहात्म्य का भी) ग्रीक भाषा में अनुवाद किया ।[१२] आस्ट्रिया के एक ईसाई पादरी फ्रा पाओलिनो (Fra Paolino) ने भारतीय संस्कृतवाङ्मय का यूरोप में सबसे पहले उद्घाटन किया, वह मलाबार तट पर १७७६ से १७८९ ई० तक रहा और उसने अपने ग्रन्थ (Systema Brahmanicum) के द्वारा यूरोप को भारत के ब्राह्मण धर्म के साहित्य से परिचित कराया।

यूरोप में संस्कृत का पहले पहल प्रवेश एक अंग्रेजी विद्वान् एलेक्जैण्डर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) के द्वारा किया गया। उसने विलियम जॉन्स तथा कॉलब्रूक के समान ही वारेन हेस्टिंग्ज के समय में भारत में संस्कृत का अध्ययन किया तथा १८०२ ई० में फ्रांस में होता हुआ यूरोप लौटा, परन्तु उस समय इंगलैंड तथा फ्रांस के बीच युद्ध आरम्भ हो गया और हैमिल्टन को बीच में ही पेरिस में रोक लिया गया। तभी जर्मन विद्वान् फ्रैडरिक श्लैगल (Friedrich Schlegel) भी १८०७ तक रहने के लिए पेरिस आया हुआ था। श्लैगल ने हैमिल्टन से परिचय किया तथा उससे संस्कृत का अध्ययन किया। श्लैगल ने ही जर्मनी में भारतीय भाषा-विज्ञान की नींव डाली। उसके ग्रन्थ में, जो १८०८ ई० में प्रकाशित हुआ, रामायण, मनुस्मृति, भगवद्गीता और महाभारत के शाकुन्तलोपाख्यान के कुछ अंशों का जर्मन में अनुवाद भी दिया हुआ था और ये संस्कृत के मूल ग्रन्थों से जर्मन भाषा में किए हुये प्रथम अनुवाद थे। श्लैगल के इस जर्मन ग्रन्थ ने जर्मन विद्वानों के हृदयों में संस्कृत के अध्ययन के लिए और भी अधिक उत्साह तथा प्रेरणा जागरित करने का श्रेय प्राप्त किया परन्तु यूरोप में संस्कृत साहित्य के इस प्रचार में सैन्ट पीटर्स बर्ग में प्रकाशित संस्कृत जर्मन कोश ने जिसका सम्पादन बाथलिंक (Otto Bohtlıgk) तथा रॉथ (Rudolph Roth) ने किया था और जो सात भागों में १८५७ १८७५ ई० में प्रकाशित हुआ, बहुत अधिक सहायता प्रदान की।

१८३० ई० तक तो यूरोप में वेदों से भिन्न अन्य संस्कृत साहित्य का ही विशेषरूप से अध्ययन तथा अनुसंधान हुआ। उस समय तक वेदों की ओर विद्वानों का विशेष ध्यान नहीं गया था। यद्यपि कॉलब्रूक (H T Colebrooke) ने १८०५ में अपने वेद परिचयात्मक निबन्ध (On the Veda) में यूरोप को वेदों का प्रथम बार परिचय दिया था। संस्कृत का यह अध्ययन तुलनात्मक भाषा-विज्ञान से संबद्ध था, जिसकी नींव जर्मन विद्वान् फ्रैंज बाप्प (Franz Bopp) ने १८१६ में प्रकाशित अपने ग्रन्थ Conjugations system' के द्वारा डाली थी। परन्तु वेदों का भाषाविज्ञानात्मक दृष्टि से अध्ययन एवं अनुसंधान १८३८ से आरंभ हुआ जब फ्रैडरिक रोजन (Friederich Rosen) ने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का लंदन से प्रकाशन किया।

परन्तु वेदों के अध्ययन की वास्तविक नींव फ्रेंच विद्वान् यू बर्नफ (Eugene Burnouf) ने डाली, उसके दो शिष्य रुडॉल्फ रॉथ तथा मैक्समुलर वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् हुए। रॉथ ने वेदों के साहित्य तथा इतिहास का परिचय १८४६ ई० में प्रकाशित अपने ग्रन्थ में दिया। और मैक्समूलर ने सायण भाष्य सहित ऋग्वेद के सम्पूर्ण ग्रन्थ का १८४९-१८७५ ई० में प्रकाशन किया। तभी से यूरोप के अनेक विद्वान् वेदों के अध्ययन में जुट गये। और फलस्वरूप यूरोप में चारों वेदों की संहिताओं के अनेक संपूर्ण अनुवाद, अनुवाद सहित उनके अनेक संकलन तथा वेदों के व्याख्यात्मक अनेक अध्ययन प्रकाशित हुये हैं।

वेद संहिताओं के अनुवादों में विल्सन (H. Wilson) द्वारा किया हुआ ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद (जो

१२ इस सूचना के लिये मैं वाशिंगटन (अमेरिका) का कैथलिक यूनिवर्सिटी के प्राध्यापक डा० सीगफ्रीड शुल्टज का आभारी हूँ (निर्देश—उनका ७ अक्टूबर १९६४ का पत्र)

सायण-भाष्य पर आधारित हैं), एच. ग्रैसमन (H. Grassmann) द्वारा किया हुआ ऋग्वेद का जर्मन अनुवाद (जो सायण-भाष्य से बिल्कुल स्वतन्त्र है) तथा अल्फ्रैड लुडविग् (Alfred Ludwig) द्वारा किया हुआ ऋग्वेद का जर्मन-अनुवाद (जिसमें सायण भाष्य से तथा अन्य आधुनिक साधनों से भी सहायता ली गई है) विशेष उल्लेखनीय हैं। ग्रिफिथ R. T. H. Griffith) ने तो सम्पूर्ण ऋग्वेद, शुक्लयजुर्वेद तथा अथर्ववेद के अंग्रेजी अनुवाद किये जो बनारस से प्रकाशित हुए। यजुर्वेद की तैत्तिरीयसंहिता का अंग्रेजी अनुवाद कीथ (A. B. Keith) ने किया, तथा सामवेद की राणायनीय संहिता का सम्पादन तथा अनुवाद स्टीवनसन (J Stevenson) ने किया। ऋग्वेद के मन्त्रों के अनेक संकलन भी अनुवाद सहित प्रकाशित हुए जिनमें से मैक्समुलर (Max Muller), ओल्डनबर्ग (Oldenberg) गैल्डनर (R. F. Geldner), मैकडानल (A. A. Macdonell) आदि विद्वानों द्वारा प्रकाशित सानुवाद संकलन उल्लेखनीय हैं।

पञ्चतन्त्र, भर्तृहरि-सुभाषित, उपनिषद्, भगवद्गीता, मनुस्मृति, धर्मशास्त्र-निबन्ध, तथा शकुन्तला के अनुवादों ने और विशेषकर वेदों के अनुवादों तथा अध्ययनों ने यूरोप में रामायण-महाभारत तथा पुराण वाङ्मय के अध्ययन के प्रति विद्वानों को प्रेरित किया, क्योंकि पुराणों में इन्हीं के जैसे समान विषयों का प्रतिपादन किया गया है। यूरोप में पुराण का प्रथम परिचय भागवत पुराण के तामिल रूपान्तर के फ्रैंच अनुवाद द्वारा हुआ यह अनुवाद १७८८ ई० में पेरिस में प्रकाशित हुआ। इस फ्रैंच अनुवाद का एक जर्मन अनुवाद भी ज्यूरिक में १७९१ ई० में प्रकाशित हुआ। बाद में पुराण-ग्रन्थों के तथा रामायण-महाभारत के अनेक यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद होने लगे। इन अनुवादों में से कुछ का परिचय नीचे दिया जा रहा है[13] :—

लैटिन अनुवाद

महाभारत के 'नलोपाख्यान' का लैटिन अनुवाद फ्रैंज बाप्प द्वारा १८१९ ई० में प्रकाशित किया गया। भगवद्गीता का एक लैटिन अनुवाद ए. डब्ल्यू. श्लैगल (August Wilhelm von Schlegel) ने १८२३ ई० में प्रकाशित किया। देवीमाहात्म्य का लैटिन अनुवाद लुडोविकस पोले (Ludovicus Poley) ने बर्लिन से १८३१ में प्रकाशित किया।

इटालियन अनुवाद

रामायण का इटालियन अनुवाद गोरेसियो (G. Gorresio) ने १८४७-५८ में प्रकाशित किया।

फ्रैंच अनुवाद

रामायण का फ्रैंच भाषा में एक अनुवाद Fauche द्वारा १८५४-५८ में तथा दूसरा अनुवाद A. Roussel द्वारा १९०५ ई० में प्रकाशित किया गया।

महाभारत के १-१० पर्वों का अनुवाद भी H. Fauche द्वारा पेरिस से १८५३ में प्रकाशित किया गया।

महाभारत के दो प्रसिद्ध उपाख्यानों—शकुन्तलोपाख्यान तथा नलोपाख्यान—का अनुवाद भी फ्रैंच में क्रमशः A. Chezy (१८३० ई०) तथा S. Levi (१९२० ई०) ने प्रकाशित किये।

भागवतपुराण का फ्रैंच अनुवाद E. Burnouf द्वारा पेरिस से १८४०-४७ में प्रकाशित किया गया। भागवत के तामिल रूपान्तर के फ्रैंच अनुवाद का पहले ही उल्लेख कर दिया गया है।

१३ पुराणों के तथा रामायण महाभारत के यूरोपीय भाषाओं में किये हुए अनुवादों का कुछ अधिक विस्तृत परिचय वामनपुराण के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में दे दिया है।

जर्मन अनुवाद

रामायण के प्रथम काण्ड का अनुवाद J Menrad द्वारा १८९७ में तथा द्वितीय काण्ड का स्वतन्त्र पद्यात्मक अनुवाद A Holtzmann द्वारा किया गया।

महाभारत के अनेक उपाख्यानों के जर्मन अनुवाद प्रकाशि हुए, जैसे शाकुन्तलोपाख्यान का १८३३ में, नलोपाख्यान का १८६३ तथा १९२९ में, मत्स्योपाख्यान का १८२९ तथा १८९९ में एव सावित्र्युपाख्यान का १८८९, १८३६ एव १८९५ में जर्मन विद्वानों द्वारा अनुवाद प्रकाशित किये गये।

भागवत पुराण के तामिल रूपान्तर वाले फ्रेंच अनुवाद का जर्मन भाषा में १७९१ ई० में अनुवाद किया गया इसका उल्लेख किया जा चुका है। गरुडपुराण के प्रेतकल्प (सारोद्धार) का E Abegg ने जर्मन में अनुवाद किया।

मार्कण्डेय पुराण के हरिश्चन्द्रोपाख्यान का F Ruokert द्वारा १८५४ में अनुवाद किया गया।

विष्णुपुराण के 'पुरूरवा तथा उर्वशी' आख्यान का जर्मन अनुवाद Geldner द्वारा किया गया तथा कृष्णलीला विषयक ५ वें अश का अनुवाद A Paul द्वारा १९१५ में प्रकाशित किया गया।

अँग्रेजी अनुवाद

रामायण का पद्यात्मक अंग्रेजी अनुवाद R T Griffith द्वारा ५ भागों में बनारस से १८७० ७४ ई० में प्रकाशित किया गया। रामायण का एक अंग्रेजी अनुवाद एम० एन० दत्त द्वारा कलकत्ते से १८९२-९४ में प्रकाशित किया गया।

महाभारत के सपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद किशोरी मोहन गांगोली ने अंग्रेजी में किया जो कलकत्ते से १८८४ ९६ में प्रकाशित हुआ। एम० एन० दत्त द्वारा महाभारत का दूसरा अंग्रेजी अनुवाद १८९५-१९०५ में कलकत्ते से प्रकाशित किया गया। नलोपाख्यान का एक अंग्रेजी अनुवाद Monier Williams द्वारा १८६० में प्रकाशित किया गया। सावित्र्युपाख्यान का अंग्रेजी अनुवाद Griffith द्वारा १८५२ में तथा J Muir द्वारा १८८० में प्रकाशित किया।

विष्णुपुराण का अंग्रेजी अनुवाद प्रथम बार विल्सन (H H Wilson) द्वारा लन्दन से १८४० में प्रकाशित किया गया। इस अनुवाद का एक नवीन सस्करण पुथी पुस्तकालय द्वारा १९६१ में प्रकाशित किया गया है। इस पुराण का एक अन्य अंग्रेजी अनुवाद एम एन दत्त ने कलकत्ते से १८९४ में प्रकाशित कराया।

मार्कण्डेयपुराण का प्रसिद्ध अंग्रेजी अनुवाद पार्जिटर (F E Pargiter) द्वारा १८८८-१९०५ में प्रकाशित किया गया।

मार्कण्डेयपुराण के हरिश्चन्द्रोपाख्यान का अंग्रेजी अनुवाद भी J Muir द्वारा Original Sanskrit Texts में किया गया।

देवीमाहात्म्य का एक अंग्रेजी अनुवाद वेंकट राय स्वामी द्वारा १८२३ ई० में कलकत्ते में प्रकाशित किया गया। इसका एक अंग्रेजी अनुवाद सांस्कृतिक अध्ययन सहित डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी किया है, जो सर्वभारतीय काशिराज-न्यास द्वारा १९६३ में प्रकाशित किया गया है।

अग्निपुराण का अंग्रेजी अनुवाद M N Dutt द्वारा १९०१ में कलकत्ते से प्रकाशित किया गया।

भागवतपुराण के कुछ अंग्रेजी अनुवाद भारतीय विद्वानों द्वारा १८९५ में, १९२१ २३ में, १९२८ में तथा १९३० ३४ में प्रकाशित किये गये।

देवीभागवत का एक अंग्रेजी अनुवाद पाणिनि आफिस (इलाहाबाद) द्वारा १९२२ में प्रकाशित किया गया।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का भी एक अंग्रेजी अनुवाद पाणिनि आफिस द्वारा प्रकाशित किया किया गया।

गरुडपुराण का अंग्रेजी अनुवाद M N Dutt द्वारा कलकत्ते से १९०८ में प्रकाशित किया गया। गरुडपुराण के 'प्रेतकल्प' (सारोद्धार) का अंग्रेजी अनुवाद E Wood द्वारा १९११ में S B H ग्रन्थमाला के नवें भाग में प्रकाशित किया गया।

मत्स्यपुराण का अंग्रेजी अनुवाद पाणिनि आफिस द्वारा दो भागों में प्रकाशित किया गया।

अन्य यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद

महाभारत के नलोपाख्यान का यूरोप की प्राय सभी भाषाओं में जैसे—इटालियन, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी स्वेडिश, ग्रीक, जैक, पोलिश, रूसी, आधुनिक ग्रीक तथा हंगेरियन में—अनुवाद हुआ है। यह प्रसिद्ध उपाख्यान यूरोप के प्राय सभी विश्वविद्यालयों के संस्कृतपाठ्यक्रम में निर्धारित है।

इन अनुवादों से यूरोप में इतिहास पुराण की अनुवाद परम्परा का इतने अल्प काल में ही कितना अधिक विकास हुआ यह स्पष्ट है। यह विकास यूरोपीय विद्वानों की तथा कुछ अंग्रेजीवेत्ता भारतीय विद्वानों की इस महत्त्वपूर्ण साहित्य की ओर प्रवृत्ति का तथा इसकी व्याख्या के लिए उनके किये हुये प्रयत्नों का ही परिणाम है। इन अनुवादों तथा अध्ययनों से पुराणों का महत्त्व पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में बहुत अधिक बढ़ गया है, और अब तो भारत के समान यूरोप में भी पुराणों पर अनेक प्रकार के अध्ययन तथा अनुसंधान किये जा रहे हैं।

पुराणों के अनुवाद की कुछ समस्याएँ

किसी भी अनुवाद के सम्बन्ध में यह सामान्य प्रश्न उपस्थित होता है कि वह अनुवाद मूल के भावों का कहा तक प्रतिनिधित्व करता है और साथ में अनुवाद की भाषा के सौष्ठव को भी कहा तक सुरक्षित रखता है। परन्तु पुराणों के अनुवाद के सम्बन्ध में इस बात के अतिरिक्त और भी अनेक समस्याएँ उपस्थित होती हैं जिनका दिग्दर्शन यहाँ नीचे कराया जा रहा है —

(१) पुराणों में मानवोपयोगी सभी ज्ञान क्षेत्रों का समावेश पाया जाता है जैसा कि पुराणों ने स्वय दावा किया है—'पुराणमखिलं सर्वशास्त्रमयं ध्रुवम्' (स्कन्द पु०, ७ १ २ ४)। इनमें धर्म, दर्शन, आचारनीति, व्यवहारनीति, राजनीति, सृष्टिविद्या, भुवनकोश, राजवंशावली, वंशानुचरित, तीर्थ माहात्म्य, व्रत, उपवास, अनेकविध आख्यान, देवों तथा असुरों इत्यादि का वर्णन तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक विषय मिलते हैं। अत पुराण के अनुवादक के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह पुराणों के इन सभी विषयों से भली प्रकार परिचित हो।

(२) पुराण भी अन्य विद्याओं के समान एक अलग विद्या है। याज्ञवल्क्य तथा विष्णुपुराण ने १४ विद्याओं में पुराण विद्या का भी अन्तर्भाव किया है इसका निर्देश पहले किया जा चुका है। सभी शास्त्रों के अपने अपने विशेष विषय भी होते हैं। पुराण के दो अपने विशेष विषय हैं—सृष्टिनिर्माणादि का विवेचन, तथा पुराण आख्यान (Mythology)। जिस प्रकार पुराणों के सृष्टिविषयक सिद्धान्तों को ठीक ठीक समझने के लिए इस विषय के उन विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है जिनका प्रतिपादन षड्दर्शन शास्त्रों में किया गया है। इसी प्रकार पुराणों के पुराणाख्यानों को समझने के लिए तुलनात्मक पुराणाख्यान शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है।

पुराणों के अनेक आख्यानों का बीज वेदों में मिलता है; जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों के विविध आख्यानों से भी पुराणों के अनेक आख्यानों का साम्य है। यही नहीं, अपितु ग्रीस तथा रोम देश के विविध आख्यानों से भी पुराणों के अनेक आख्यानों का साम्य है इसका उल्लेख जोन्स विलियम ने भी किया है।[१४] अतः पुराण के अनुवादक को पौराणिक सृष्टि विज्ञान तथा तुलनात्मक पुराणाख्यान-शास्त्र (Science of Comparative Mythology) के आधार पर पुराणों के आख्यानों का सही ज्ञान अपेक्षित है, अन्यथा अनुवाद में अनेक भूलों का हो जाना सम्भव है।

(३) पुराणों में हमें बहुधा संक्षिप्त तथा अस्पष्ट वचन भी मिलते हैं। अनुवादक का कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के संक्षिप्त तथा अस्पष्ट अंशों की स्पष्ट व्याख्या टिप्पणी के रूप में अथवा अनुवाद में ही करे। ऐसे अंशों को स्पष्ट करने के लिए उसे प्राचीन संस्कृत टीकाओं एवं व्याख्याओं का सहारा आवश्यक है। यदि वही वचन अन्यत्र भी किसी पुराण में अथवा महाभारतादि में मिल सके तो उसका अन्वेषण करके तब अर्थ को स्पष्ट करना चाहिए। उदाहरणार्थ, वामनपुराण का निम्नलिखित श्लोक देखिये—

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तुभ्यं होत्रात्मने नमः॥

(वाम०-पु०, सरो-माहात्म्य, ५-१)

यह श्लोक कश्यप द्वारा की हुई विष्णु-स्तुति का है। किन्तु इसका अर्थ अस्पष्ट है। यही श्लोक महाभारत शान्तिपर्व के भीष्मस्तवराज में भी दिया हुआ है। (४७. ४३)। नीलकण्ठ ने महाभारत की अपनी टीका में इसका अर्थ इस प्रकार किया है—

"चतुर्भिरिति। आश्रावयेति, चतुरक्षरम्। अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम्। यजेति द्व्यक्षरम्। ये यजामहे इति पञ्चाक्षरम्। द्व्यक्षरो वषट्कार इति सप्तदशभिरक्षरैर्योहूयते तस्मै होत्रात्मने नमः॥"

इस व्याख्या से उपर्युक्त अस्पष्ट श्लोक का स्पष्टीकरण हो जाता है। इसी प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से अर्थ को स्पष्ट करते हुये पुराणों का अनुवाद करना उचित है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के श्लोकों के अर्थानुसंधान के लिये वैदिक यज्ञ-विधा का ज्ञान भी अपेक्षित है और इसी तरह अन्य अस्पष्ट वचनों के अर्थानुसंधान के लिये उन वचनों में लक्षित विद्याओं का ज्ञान आवश्यक है।

(४) सभी पुराण संस्कृत भाषा में रचित हैं, जिसके कारण पुराणों की भाषा की समस्या भी अनुवाद में आ खड़ी होती है। इस भाषा समस्या के निम्नलिखित पक्ष यहाँ विचारणीय हैं :—

(क) संस्कृत अत्यन्त संहत या सश्लिष्ट भाषा है। संस्कृत का एक छोटा-सा वाक्य अनुवाद में अनेक वाक्यों की अपेक्षा रख सकता है और फिर भी मूल के भाव का चमत्कार एवं सौष्ठव अनुवाद में आ ही जाय यह भी निश्चित नहीं है। महाभारत के सावित्री-उपाख्यान के अनुवाद के संबन्ध में विंटरनित्ज़ का कथन है कि "यह काव्य यूरोप की भाषाओं में अनूदित हुआ है, जर्मन में भी इसका अनुवाद हुआ है, परन्तु ये सभी अनुवाद अथवा रूपान्तर इस भारतीय काव्य के अनुपम चमत्कार की झाँकी मात्र दे सकते हैं।" (पृ० ३९९).

(ख) अन्य संस्कृत काव्यों के समान पुराणों में भी हमें स्थल स्थल पर स्थानों, दृश्यों इत्यादि के उच्चकोटि के काव्यात्मक वर्णन मिलते हैं जिनमें श्लेष तथा परिसंख्या आदि अलंकारों का भी खूब प्रयोग होता है। संस्कृत के

१४ हि०—विंटरनिट्ज़, पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृ० १२.

श्लेष तथा परिसंख्या का अन्य भाषा में अनुवाद करते ही उनका चमत्कार तथा काव्य-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और उनका पूरा पूरा भाव भी अनुवाद में लाना दुष्कर हो जाता है।

(ग) संस्कृत के कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके समानार्थक या पर्याय शब्दों का अन्य भाषाओं में मिलना संभव नहीं है, उदाहरणार्थ, 'धर्म', 'यज्ञ' 'ब्रह्मचर्य' आदि ऐसे शब्द हैं, जिनका वह पूर्ण भाव जिनके साथ भारतीय मानस जुड़ा हुआ है अन्य भाषाओं के किन्हीं भी पर्याय शब्दों में आना संभव नहीं उनकी अधूरी व्याख्या अवश्य की जा सकती है, परन्तु उससे अनुवाद का प्रवाह बाधित हो जाता है। विंटरनिट्ज ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है वे कहते हैं—"यूरोप की किसी भी भाषा में ऐसा शब्द नहीं है जो संस्कृत-शब्द 'धर्म' का पर्यायवाचक कहा जा सके।" (पृष्ठ ३५२, पादटिप्पणी २)। अत ऐसे शब्दों का अनुवाद हो ही नहीं सकता।

(घ) पुराणों की संस्कृत-भाषा प्राकृत भाषा के प्रभाव के कारण यथा छन्दोऽनुरोध के कारण बहुधा अपाणिनीय हो गई है। पुराणों के इस प्रकार के अपाणिनीय प्रयोगों से अनुवादक का परिचित होना आवश्यक है नहीं तो अर्थ का अनर्थ हो सकता है, उदाहरणार्थ, प्राकृत के समान पुराणों में भी द्वितीया के स्थान में प्रथमा का प्रयोग मिलता है, जैसे—

रुद्रमौशनस प्रादात् ततोऽन्ये मातरो ददु ।

(वामन पु०, समीक्षात्मक संस्करण, ३१.९१)

इस श्लोकार्ध में 'मातरो' शब्द प्रथमा विभक्ति में होते हुए भी वस्तुतः कर्मकारक को द्वितीया में है परन्तु इस बात को न समझते हुए लेखकों ने इस पुराण की प्राचीन पाण्डुलिपियों में अनेक अशुद्ध पाठभेद कर दिये हैं। जैसे 'अन्ये' के स्थान में 'अन्यान्' आदि, जो प्रसंग के अनुसार ठीक नहीं बैठते।

(ङ) प्राय कोई भी संपूर्ण पुराण किसी एक ही ग्रन्थकार का प्रणीत नहीं है। पुराण के पाठ की वृद्धि तथा उसमें परिवर्तन देशकाल के अनुसार सदा से होता आया है। अत उनमें कुछ ऐसे भी शब्द आ गये हैं जो उस काल तथा देश में भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते थे और जिनका वह अर्थ संस्कृतसाहित्य में प्रचलित नहीं है। उदाहरणार्थ, क्रिया-योगसार में, जो पद्मपुराण का एक खण्ड माना जाता है और जिसका निर्माण पूर्वी बंगाल में ९वीं या १०वीं शताब्दी में हुआ, 'प्रस्ताव' शब्द (६.१२४) कथा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा 'कल्लोल' शब्द (१०.२१; २०.९०) 'कुल्ले' अर्थात् आचमन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार बृहद्धर्मपुराण में जिसका निर्माण भी बंगाल में ही १३वीं शताब्दी में हुआ, संस्कृत धातु 'वस्' का प्रयोग 'बैठने' के अर्थ में (२.१४.१६) तथा 'विलक्षण' शब्द का प्रयोग 'पर्याप्त' के अर्थ में (२.१४.५०) हुआ है।[१५]

(च) पुराणों के अस्थिर पाठ के कारण उनमें कुछ ऐसे श्लोक भी होने संभव हैं जिनका कोई सुनिश्चित तथा संतोषजनक अर्थ नहीं किया जा सकता ऐसे संदिग्धार्थात्मक श्लोकों का संभावित अर्थ करने के अतिरिक्त अनुवाद में उनका पृथक् निर्देश भी कर देना उचित है, जिससे आगे विद्वानों को उन पर विचार करने का अवसर मिले।

पुराणों के अनुवाद की कतिपय समस्याओं का उल्लेख यहाँ किया गया है। इस प्रकार की अन्य समस्याएँ भी अनुवाद में उपस्थित हो सकती हैं जिनका समाधान विद्वान् तथा अनुभवी अनुवादक के लिए सर्वथा संभव है।

१५. दे०—आर. सी. हाजरा, स्टडीज़ इन दि उपपुराणाज, भाग १, पृ. २७५, एवं भाग २ पृ, ४४६–५०.

३—वामनपुराण

महापुराणों की सूची में वामनपुराण का १४वाँ स्थान है। वामन अवतार का सविस्तर प्रतिपादन करने के कारण इस पुराण का नाम 'वामनपुराण' रक्खा गया है। इस पुराण में अनेक महत्त्वपूर्ण पौराणिक विषयों का वर्णन है, यथा भुवनकोष, शिव और विष्णु की भक्ति एवं पूजाविधि, देवीमाहात्म्य-आख्यान, स्कन्दोत्पत्ति, देवासुरसंग्राम, कुरुक्षेत्र तथा इसके तीर्थों का वर्णन, व्रत, उपवास तथा अनेक महत्त्वपूर्ण आख्यान और उपाख्यान। इनके अतिरिक्त वामनपुराण में कुछ ऐसे भी विषय आ गये हैं जिनका अन्य पुराणों में अभाव है—जैसे शिव के विभिन्न अंगों के भूषणों के रूप में सर्पों के नामों का उल्लेख, प्रह्लाद का बदरिकाश्रम में नर-नारायण से युद्ध, देवों और असुरों के पृथक् पृथक् वाहनों का वर्णन, सुकेशिचरित, त्रिविक्रम द्वारा धुन्धुवध, प्रह्लाद की तीर्थयात्रा तथा वामन के विविध स्वरूपों एवं निवास-स्थानों का वर्णन।

वामन-पुराण में संकुचित साम्प्रदायिक भावना का नितान्त अभाव है। इसमें तान्त्रिक पूजा विधियों का भी कहीं उल्लेख नहीं है जैसा कि अन्य कई पुराणों में है इससे इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। ग्रन्थ परिमाण की दृष्टि से यह पुराण बड़ा नहीं है इसमें केवल ६००० के लगभग श्लोक हैं। परन्तु यह पुराण महत्त्वपूर्ण पुराणों में से अन्यतम है। इसने भारत के स्वर्णयुग में प्रचलित प्राय सभी आध्यात्मिक एवं धार्मिक विचारधाराओं को अपने कलेवर में सुरक्षित किया है। इसमें स्तोत्रों की संख्या भी २८ के लगभग है जो इसके लघु कलेवर को देखते हुए बहुत कही जा सकती है। इसके नैतिक धर्म का मूल इसमें वर्णित अष्टाङ्ग धर्म (२३, २५, २८) है जिससे सिद्ध है कि यह पुराण कोई धार्मिक विधि-विधानों को आवश्यकता से अधिक महत्त्व नहीं देता। इस पुराण में प्रह्लाद, बलि, सुकेशि आदि असुरों को भी धर्माचरण के क्षेत्र में महत्ता प्रदान की है। इन सब बातों से इस पुराण की धार्मिक उदारता प्रकट होती है।

वामन पुराण के नाम से ही प्रकट है कि यह पुराण प्रधानतया भागवत-वैष्णव धर्म से सबद्ध है। इसके उपक्रम तथा उपसंहार से भी यही बात सूचित होती है। इस पुराण के आरम्भ में 'नारायणं नमस्कृत्य···' वैष्णवधर्म का प्रसिद्ध मंगलाचरणरूप श्लोक दिया हुआ है जो वामन-पुराण के प्राय सभी काश्मीरी और दक्षिण भारतीय हस्तलेखों में पाया जाता है। महाभारत और प्राय. प्रत्येक वैष्णव ग्रन्थ के आरम्भ में यह श्लोक पढ़ा जाता है। उसके पश्चात् वामन पुराण का मंगलाचरण श्लोक 'त्रैलोक्यराज्यमाक्षिप्य ······' आता है जिसमें श्रीधर अर्थात् विष्णु को नमस्कार किया गया है। तदनन्तर वामन पुराण के आरम्भिक श्लोकों में भी विष्णु और वैष्णव का उल्लेख है। उपसंहार में भी विष्णु और विष्णु भक्तों की एवं विष्णुमन्दिरों के निर्माणकर्त्ताओं की प्रशंसा है तथा भिन्न भिन्न पत्रों और पुष्पों द्वारा विष्णु पूजा का विस्तृत विधान है। इसके अतिरिक्त इस पुराण में १७ स्तोत्र विष्णु और वामन-के हैं तथा ११ स्तोत्र शिव के हैं, जिनमें से भी ५ शिवस्तोत्र सरोमाहात्म्य में पठित हैं और वामन पुराण में संनिविष्ट सरोमाहात्म्य का प्रामाण्य संदिग्ध ही है जैसा कि आगे विचार किया गया है। सरोमाहात्म्य में वेनकृत शिवस्तोत्र बहुत बड़ा है उसमें १०० से भी अधिक श्लोक हैं परन्तु वह स्तोत्र महाभारत के शान्तिपर्व (अ० २८४, श्लो० ७४-१८६) में दिये हुए दक्षकृत शिवस्तोत्र के बिल्कुल समान ही है।

वामन पुराण प्रधानत वैष्णव पुराण होते हुए भी वैष्णव और शैव धर्मों के सामञ्जस्य से परिपूर्ण है। विल्सन ने विष्णु-पुराण के अपने अंग्रेजी-अनुवाद की भूमिका में कहा है कि 'यह पुराण अन्य पुराणों की अपेक्षा धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति अधिक उदार है। यह बिना किसी पक्षपात के शिव और विष्णु के प्रति समानरूप से आदर प्रदर्शित करता है अत यह पुराण किसी भी सम्प्रदाय-विशेष के साथ अपने को विशेष सम्बद्ध नहीं करता।"

परन्तु वामन-पुराण प्रधानतया वैष्णव पुराण होने पर भी राजस-पुराण माना जाता है। वैष्णव-पुराण प्राय सात्त्विक ही माने गये हैं, जैसा कि पद्म-पुराण (आनन्दा० संस्करण, ६ २६३ ८१ ८५) तथा भविष्य पुराण (३ ३ २८ १० १५) उल्लेख किया है।

उपर्युक्त निर्देशानुसार पद्म पुराण तथा भविष्य-पुराण में पुराणों के सात्त्विक राजस तथा तामस ये तीन विभाग निम्नलिखित हैं —

पद्म पुराण	भविष्य-पुराण
(१) सात्त्विक-पुराण	(१) सात्त्विक-पुराण
१ वैष्णव	१ ब्रह्मवैवर्त
२ नारदीय	२ स्कान्द
३ भागवत	३ पाद्म
४ गरुड	४ भागवत
५ पाद्म	५ ब्राह्म
६ वाराह	६ गारुड
(२) राजस पुराण	(२) राजस-पुराण
१ ब्रह्माण्ड	१ मात्स्य
२ ब्रह्मवैवर्त	२ कूर्म
३ मार्कण्डेय	३ नृसिंह
४ भविष्य	४ वामन
५ वामन	५ शिव
६ ब्राह्म	६ वायु
(३) तामस पुराण	(३) तामस-पुराण
१ मात्स्य	१ मार्कण्डेय
२ कौर्म	२ वाराह
३ लैङ्ग	३ आग्नेय
४ शैव	४ लिङ्ग
५ स्कान्द	५. ब्रह्माण्ड
६ आग्नेय	६ भविष्य

पद्म-पुराण के अनुसार सात्त्विक-पुराण मोक्षप्रद हैं, राजस-पुराण स्वर्गप्रद हैं, तथा तामस-पुराण नरकप्रद हैं —

सात्त्विका मोक्षदा प्रोक्ता राजसा स्वर्गदा शुभा ।
तथैव तामसा देवि निरयप्राप्तिहेतव ॥
(पद्म० पु० ६ २६३ ८५)

परन्तु भविष्य पुराण के अनुसार राजस-पुराणों में प्रायेण कर्मकाण्ड का प्रतिपादन होता है, तथा तामस-पुराण शाक्तधर्म परायण होते हैं —

राजसाः षट् स्मृता वीर कर्मकाण्डमथा भुवि ।
तामसाः षट् स्मृता प्राज्ञै शक्तिधर्मपरायणा ॥
(भविष्य पु० ३ ३ २८।१३, १५)

मत्स्य पुराण के अनुसार सात्त्विक पुराणों में अधिकतर हरि का माहात्म्य होता है, राजस पुराणों मे ब्रह्मा का माहात्म्य अधिक होता है तथा तामस पुराणों में अग्नि और शिव का माहात्म्य अधिक रहता है और संकीर्ण पुराणों में सरस्वती तथा पितरों का माहात्म्य विशेषरूप से रहता है —

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः ॥
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च ।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां च निगद्यते ॥
(मत्स्यपु०, ५३ ६७-६८)

परन्तु मत्स्यपुराण में तीस कल्पों का भी यही वर्गीकरण दिया हुआ है, और सात्त्विक, राजस, तामस तथा संकीर्ण कल्पों में क्रमशः इन्हीं हरि, ब्रह्मादि देवों का विशेष माहात्म्य रहता है ऐसा कहा गया है (अ० २९)। पर मत्स्य-पुराण में न तो सात्त्विकादि कल्पों के और न सात्त्विकादि पुराणों के अलग अलग नाम दिये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्स्यपुराण का यह वर्गीकरण पूर्वकाल में कल्पों का ही रहा होगा और बाद में इस वर्गीकरण को पुराणों के साथ भी जोड़ दिया गया होगा। चाहे जो भी स्थिति रही हो, मत्स्य पुराण के अनुसार वामन पुराण कौन से वर्ग में है यह सूचित नहीं होता। सभव है मत्स्य पुराण के समय में भी वामनपुराण राजस ही माना जाता रहा हो। इस दृष्टि से इसमें ब्रह्मा का माहात्म्य अधिक रहना चाहिये था।

स्कन्दपुराण की शङ्करसंहिता के शिवरहस्य खण्ड (२ ३०—५) में वामन पुराण का उन दश पुराणों में अन्तर्भाव किया है जो शिव माहात्म्य का प्रतिपादन करते हैं। ये दश पुराण शैव, मार्कण्डेय, लैङ्ग, वाराह, स्कन्द, मात्स्य, कौर्म, वामन तथा ब्रह्माण्ड हैं[16]। परन्तु ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि वामनपुराण जो मूल में वैष्णव पुराण था कालान्तर में अथवा शिव रहस्य खण्ड के समय में शिवपरक बना दिया गया होगा। अस्तु ॥

पद्मपुराण (आन संस्करण, १ ६२ २—७) में हरि की पुराणावयव पुरुष के रूप में कल्पना की गई है और भिन्न भिन्न पुराणों को हरि के भिन्न भिन्न शरीरावयव माने हैं। इस कल्पना में वामनपुराण को हरि विष्णु की त्वचा कहा गया है। जिस प्रकार संपूर्ण शरीर को त्वचा ढके हुए है उसी प्रकार कदाचित् वामन पुराण को भी विष्णु के सम्पूर्ण महात्म्य का प्रतिपादन करने वाला माना जाता था।

वामनपुराण में कुरुक्षेत्र तथा इसके तीर्थों क माहात्म्य के प्रतिपादन पर विशेष जोर दिया गया है। सरोमाहात्म्य प्रकरण मे सूत और ऋषियों का संवाद का स्थान भी कुरुजाङ्गल ही कहा गया है। बलि का यज्ञ भी कुरुक्षेत्र में ही

१६ दे०—आर. सी हाजरा स्टडीज इन दि जिनुइन आग्नेयपुराण, अवर हेरिटेज, भाग १ १९५३, पृष्ठ २१०
शिवरहस्यखण्ड का हस्तलेख इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में है
दे०—जे रागलिङ्ग कैटेलाग आफ द घृत मैनुस्क्रिप्ट्स, भाग ६, संख्या ३६७१—७२

रक्खा गया है जहाँ भगवान् वामन जाकर उसको छलते हैं (६२ ५२), यद्यपि पद्मपुराण (सृष्टिख २५ १५१६) में बलि का यह यज्ञ पुष्कर में, अग्निपुराण (४ ७) में गङ्गाद्वार में, स्कन्दपुराण (प्रभासखण्ड, वस्त्रापथक्षेत्र माहात्म्य, १४ ७८ प्रभृति) के अनुसार प्रभास के समीप वस्त्रापथ क्षेत्र में एवं भागवत पुराण (७ १८ २१ प्रभृ) के अनुसार नर्मदा के उत्तरी तट पर होता हुआ कहा गया है। अत वामनपुराण के अनुसार कुरुक्षेत्र को तथा कुरुक्षेत्र के पृथूदकतीर्थ को सर्वश्रेष्ठ माना गया है (१२.४५)।

क्या वामन महापुराण है अथवा उपपुराण ?

प्राय सभी पुराणों में महापुराण-सूचो में वामन पुराण का नाम दिया हुआ है, केवल गरुडपुराण (१ २१५ १५-१६) तथा बृहद्धर्मपुराण (१ २५ २० २२) की सूची में महापुराणों के अन्तर्गत वामनपुराण का उल्लेख नहीं पाया जाता, परन्तु उनकी उपपुराणों की सूची में वामनपुराण का नाम दिया है। कूर्मपुराण (१' १' १३-२०) में महापुराण सूची में तथा उपपुराण-सूची इन दोनों में ही वामनपुराण के नाम का उल्लेख है। डा० हाजरा ने अपने 'स्टडीज इन दि उपपुराणाज्' भाग १ के पृष्ठ ४१३ पर उपपुराणों की २३ विभिन्न सूचियाँ दी हैं जिसमें से केवल चार सूचियों में ही वामनपुराण का उपपुराण के रूप में कथन है। हाजरा भी अपनी पुस्तक 'रिकार्ड्स आन हिन्दु राइट्स एण्ड कस्टम्स' के पृ० ७७ पर कहते हैं कि वर्तमान वामनपुराण को उपपुराण कहा जा सकता है।

हमें अब यह विचार करना है कि वर्तमान वामनपुराण महापुराण है अथवा उपपुराण। वामनपुराण के महत्त्व तथा विषय को दृष्टि से यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है।

पहले हम बृहद्धर्म तथा गरुडपुराण की महापुराण सूचियों में वामनपुराण के नाम के अभाव पर विचार करेंगे।

पुराणों में दी हुई प्राचीन महापुराण सूचियों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है —

वर्ग १—

(i) विष्णुप (३, ६ २१-२४) (ii) अग्नि (२७२ १-२३), (iii) भागवत (१२ १३ ४ ८), (iv) भविष्य (ब्रह्मपर्व, ६१ ६४) (v) ब्रह्मवैवर्त (४ १३३ ११ प्रभृति), (vi) मार्कण्डेय (वेंकटे सस्करण, १३४. ८-१५), (vii) मत्स्य (५३ १३-५६), (viii) नारदीय (१.९२ २१ २८), (ix) पद्म (आनन्दा स, १ ६२ २-७), (x) स्कन्द (७ १ २ २८-७७) तथा (xi) वाराह (११२ ६९-७२) इस वर्ग की सूचियों में पुराणों के नामों का क्रम विष्णुपुराण के क्रम के अनुसार है।

वर्ग २—

(१) कूर्म १ १ १३-१५, (२) पद्म, आनन्दा संस्करण, उत्तरखण्ड, २१९ २५ २७, (३) सौर उपपुराण ९ ६ १२, (४) स्कन्द, प्रभासखण्ड, १.२.५ ७

यह वर्ग कूर्मपुराण के क्रम का अनुसरण करता है, इसमें केवल निम्नलिखित किंचित् भेद है —

कूर्म पुराण	८ मार्कण्डेय, ९ आग्नेय
सौर पुराण	८ आग्नेय, ९ मार्कण्डेय

वर्ग ३—

(१) लिङ्ग-पुराण १.३९ ६१-६४, (२) शिव-पुराण, वेंकटे सस्क, उमासंहिता, ४४ १२० १२२

यह वर्ग लिङ्ग-पुराण के क्रम का अनुसरण करता है।

इन तीनों वर्गों में १८ महापुराणों के नाम समान हैं, केवल क्रम में कुछ भेद है; यथा—

वर्ग १ (=विष्णुपुराण-क्रम)	वर्ग २ (=कूर्मपुराण-क्रम)		वर्ग ३ (=लिङ्ग पुराण-क्रम)	
१. ब्राह्म	१. ब्राह्म	= विष्णुपु०-क्रम (१–५)	१. ब्राह्म	= कूर्मपु०-क्रम (१–९)
२. पाद्म	२. पाद्म		२. पाद्म	
३. वैष्णव	३. वैष्णव		३. वैष्णव	
४. शैव[१७]	४. शैव[१७]		४. शैव[१७]	
५. भागवत	५. भागवत		५. भागवत	
६. नारदीय	६. भविष्य		६. भविष्य	
७. मार्कण्डेय	७. नारदीय		७. नारदीय	
८. आग्नेय	८. मार्कण्डेय		८. मार्कण्डेय	
९. भविष्य	९. आग्नेय		९. आग्नेय	
१०. ब्रह्मवैवर्त	१०. ब्रह्मवैवर्त		१०. ब्रह्मवैवर्त	= विष्णुपु०-क्रम (१०–१३)
११. लैङ्ग	११. लैङ्ग	= विष्णुपु०-क्रम (११–१८)	११. लैङ्ग	
१२. वाराह	१२. वाराह		१२. वाराह	
१३. स्कान्द	१३. स्कान्द		१३. वामन	
१४. वामन	१४. वामन		१४. कूर्म	
१५. कौर्म	१५. कौर्म		१५. मात्स्य	
१६. मात्स्य	१६. मात्स्य		१६. गारुड	
१७. गारुड	१७. गारुड		१७. स्कान्द	
१८. ब्रह्माण्ड	१८. वायवीय (=ब्रह्माण्ड)		१८. ब्रह्माण्ड	

वर्ग ४—

(१) भागवत १२.७.२३-२४; (२) देवीभागवत १.३.२-१२; (३) पद्म, पाताल-खण्ड, १११.९०-९४; (४) पद्म, उत्तरखण्ड, २६३.७७-८१ इस वर्ग के प्रत्येक पुराण में दिये हुए महापुराणों के नामों का क्रम एक दूसरे से भिन्न है और प्रथम तीनों वर्गों में से किसी वर्ग का भी अनुसरण नहीं करता।

इन उपर्युक्त चारों वर्गों के सभी पुराणों में वामनपुराण का नाम महापुराणों की सूची में उल्लिखित है, और अधिकतर सूचियों में वामनपुराण की क्रम-संख्या १४वीं है, स्वयं वामनपुराण ने भी अपने लिये इसी क्रम-संख्या को माना है ('चतुर्दशं वामनमाहुरग्र्यम्' ६९.११ b)।

१७. वर्ग १ में मत्स्यपुराण, नारदीयपुराण तथा अग्निपुराण, एवं वर्ग २ में सौरपुराण चौथी संख्या पर 'शैव' के स्थान में 'वायु' का उल्लेख करते हैं। इनके अतिरिक्त अलबेरूनि की दूसरी सूची (१०३० ई०) में तथा कवीन्द्राचार्य-सूचीपत्र में भी 'शैव' के स्थान पर 'वायु' का ही उल्लेख है।

वस्तुतः, वायुपुराण का ही शिवभक्तिप्रतिपादन के कारण दूसरा नाम शैवपुराण भी है, यथा—चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमिति स्मृतम्। शिवभक्तिसमायोगात् शैवं तच्चापराख्यया। (वेंकटेश्वर प्रेस मुद्रित—अष्टादशपुराणदर्पण में रेवा-माहात्म्य से उद्धृत।

इन उपर्युक्त प्राचीन महापुराण सूचियों के अतिरिक्त कुछ परवर्तिकालीन सूचियाँ भी हैं जिनमें महापुराणों के नामों में भी भेद है। उनमें विष्णु पुराण की सूची में उल्लिखित महापुराणों में से कुछ का अभाव है और उनके स्थान में १८ सख्या पूर्ति के लिये ऐसे उपपुराणों का नाम दिया है, जिनकी प्रसिद्धि तथा प्रतिष्ठा उन सूचियों के निर्माण-काल में रही होगी। ये सूचियाँ निम्नलिखित हैं—

सूची-स्थल	महापुराणों का अनुल्लेख	महापुराणों के स्थान में उपपुराणों का उल्लेख
(१) भविष्य पुराण	१. नारदीय पुराण	१. नृसिंह
(३.३.२८.१०–१४)	२ ब्रह्मवैवर्त्त	२ शैव ('वायु' के अतिरिक्त)
(२) गरुड पुराण	१. वामन	१. शैव ('वायु' के अतिरिक्त)
(१ २१५.१५-१६)		
(३) वायु-पुराण	१. आग्नेय	१. आदिक
(२.४२.१–११)	२. लिङ्ग	
(४) एकाम्र पुराण[18]	१. नारदीय	१. शैव
(१ २०–२३)	२. गरुड	२. नरसिंह
(५) बृहद्धर्म पुराण	१. वामन	१. शैव ('वायु' के अतिरिक्त)
(१.२५ २०–२२)		
(६) अल्बेरुनि की सूची[19]	१. अग्नि	१. आदि पुराण
(विष्णु-पुराण से भिन्न)	२. भागवत	२. आदित्य पुराण
	३ ब्रह्मवैवर्त्त	३ नन्द पुराण
	४. लिङ्ग	४ नृसिंह-पुराण
	५ नारदीय	५ साम्ब पुराण
	६ पद्म	६ सोम पुराण
(७) कवीन्द्राचार्य सूचीपत्र[20]	१. भागवत	१ देवी भागवत
	२ नारदीय	२ नन्दि पुराण

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि केवल गरुड पुराण तथा बृहद्धर्म पुराण की महापुराण सूचियों में हो वामन पुराण के नाम का अभाव है, शेष सभी सूचियों में (अल्बेरुनि की दोनों सूचियों में भी) वामन पुराण का महापुराणों के अन्तर्गत उल्लेख है। अत केवल इन दो पुराणों में वामन पुराण के नाम का महापुराणों की सूची में अनुल्लेख वामन पुराण के महापुराणत्व के निराकरण में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं माना जा सकता। अन्य कई महापुराणों के नाम भी कुछ परवर्तिकालीन महापुराण-सूचियों में नहीं मिलते, जैसे आग्नेय, ब्रह्मवैवर्त्त और लिङ्ग पुराणों का (जैसा कि उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है), और ये पुराण किसी उपपुराणों के नामों की सूची में भी उल्लिखित नहीं हैं। वस्तुत, यह प्रतीत होता है कि परिवर्तिकालीन इन सूचियों को इनके निर्माताओं ने महापुराण तथा उप पुराण विषयक अपनी-अपनी

१८ दे०—हाजरा, 'स्टडीज् इन दि उपपुराणाज्' भाग १, पृष्ठ १३, पादटिप्पणी २०-२१

१९ दे०—पादटिप्पणी

२० दे०—कवीन्द्राचार्य सूचीपत्र, गायकवाड ओरियटल सिरीज (बडोदा), संख्या १७, १९२१ ई०।

मान्यताओं तथा धारणाओं के अनुसार निर्माण किया अथवा उनके समय मे पुराणों के नामों के विषय में जैसी मान्यताएँ प्रचलित थीं उन्हीं के अनुसार तत्कालीन सूची निर्माताओं ने उन सूचियों का निर्माण किया, उस बात मे कुछ महापुराणों का महत्त्व घट गया होगा तथा उनके स्थान में कुछ उप पुराणों का महत्त्व बढ़ा होगा। कभी-कभी किसी महापुराण का नाम दोनों प्रकार की सूचियों में (महापुराण सूची में तथा उपपुराण सूची में) दिया हुआ मिलता है, जैसे कि ब्रह्माण्ड पुराण का नाम अनेक उप पुराण-सूचियों में भी दिया है। वामन पुराण का नाम भी इसी प्रकार कूर्म पुराण में महा पुराण सूची में तथा उप पुराण सूची में दिया हुआ है। तो क्या कूर्म पुराण के कथनानुसार वामन-महापुराण के अतिरिक्त कोई वामन उपपुराण भी था और क्या वर्तमान वामन पुराण अन्य वही या उसी के समान अन्य कोई वामन उपपुराण है? यह प्रश्न यहाँ विचारणीय है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है हाजरा द्वारा उद्धृत तेईस उप पुराण सूचियों में से केवल चार सूचियों में ही वामन-उपपुराण का उल्लेख है। शेष अन्य सभी सूचियों मे 'वामन' के स्थान में 'मानव' उपपुराण का ही उल्लेख है और वामन उपपुराण का उल्लेख करने वाली चार उपपुराण सूचियों मे से भी दो सूचियाँ कूर्मपुराण से ही उद्धृत हैं (एक तो वेंकटेश्वर प्रेस सस्करण से, तथा दूसरी सूची नृसिंह वाजपेयी के 'नित्याचारप्रदीप', भाग १, पृष्ठ १९, से उद्धृत है), परन्तु कूर्म पुराण की अन्य तीन उपपुराण सूचियों में (जो रघुनन्दन के 'मलमासतत्त्व' में तथा हेमाद्रि के 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' में उद्धृत है) 'वामन' के स्थान में 'मानव' का ही उल्लेख है। यहाँ काशिराजन्यास के पुराण विभाग में भी अब तक कूर्म पुराण के जिन चार हस्तलेखों का पाठसवाद (Collati n) किया गया है उनमें से दो मे भी 'वामन' के स्थान में 'मानव ही पाठ है, इनमें से एक हस्तलेख तो विश्वेश्वरानन्द सस्थान (होशियारपुर) का सख्या 5589 वाला है, तथा दूसरा हस्तलेख अड्यार लाइब्रेरी (मद्रास) का P M 2418 है। अत, हाजरा द्वारा दी हुई जिन चार उप पुराण सूचियों में 'वामन' पाठ है वह शुद्ध 'मानव' पाठ का लेखकों की भूल अथवा रुचि के कारण वर्णक्रम व्यत्यय जनित अशुद्ध पाठ है। डा० हाजरा को स्वय भी इस 'वामन' पाठ की शुद्धता में सदेह है ऐसा उनके इस कथन से सूचित होता है —"इन सूचियों में 'मानव' के स्थान पर जो 'वामन' पाठ है वह या तो तत्कालीन जनता के इस उप-पुराणविषयक अज्ञान का सूचक है क्योंकि कभी तो वह इसे 'मानव' उपपुराण कहती होगी और कभी 'वामन' उप-पुराण, या फिर 'मानव' उप पुराण ही कालान्तर में 'वामन' उप पुराण के नाम से विख्यात हो गया होगा अथवा इसके विपरीत हुआ होगा।" ('स्टडीज इन दि उप पुराणाज्' भाग २, पृष्ठ ५१२), इसके अतिरिक्त वामन पुराण से भिन्न अन्य किसी वामन उपपुराण के वचनों का उद्धरण किसी भी निबन्ध ग्रन्थ में नहीं मिलता और न किसी ग्रन्थकार ने ही वामन उप पुराण के किसी वचन का उद्धरण दिया है और न वामन उपपुराण का अभी तक कोई हस्तलेख ही प्राप्त हुआ है। अत सभवत यही परिणाम निकलता है कि *'वामन उपपुराण' का कभी कोई अस्तित्व नहीं रहा होगा।* 'मानव' उपपुराण के भी किसी वचन अथवा हस्तलेख का अभी तक कोई पता नहीं चला है अत इसके विषय मे भी अभी तक कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। फिर भी वामन-उपपुराण की अपेक्षा मानव उपपुराण के अस्तित्व की अधिक सभावना है क्योंकि इसका उल्लेख अधिकतर उपपुराण सूचियों में मिलता है।

इसपर भी यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि वर्तमान वामन-पुराण पूर्वोक्त वामन-उपपुराण नहीं भी हो, तो भी क्या यह स्वयं महापुराण की अपेक्षा उप-पुराण की कोटि में आने योग्य नहीं है? डा० हाजरा ने भी अपने 'पुराणिक

रिकार्ड्स' ग्रन्थ (पृ० ७७) में वर्तमान वामन पुराण उप पुराण के रूप में अधिक उपयुक्त माना है। वर्तमान वामन पुराण को उप पुराण मानने के लिए निम्नलिखित दो हेतु दिये जाते हैं —

(१) इसमें महा पुराणों के पाँच लक्षणों (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुचरित की तथा मन्वन्तर विषयों) का अभाव है।

(२) इस पुराण का जो लक्षण मत्स्य पुराण (अध्याय ५३) तथा स्कन्द पुराण (प्रभास खण्ड १ २ ६३–६४) में दिया हुआ है उससे इसका मेल नहीं बैठता। मत्स्यपुराण तथा स्कन्दपुराणमें वामन पुराण को ब्रह्मा द्वारा अभिहित कहा गया है तथा कूर्म कल्प सम्बन्धी वर्णन का होना बताया गया है, परन्तु वर्तमान वामन पुराण में ये दोनों ही बातें नहीं मिलती। इसमें वक्ता पुलस्त्य है, ब्रह्मा नहीं, और न इसमें कूर्म कल्प का ही कोई कथन या वर्णन मिलता है। अत यह वर्तमान वामन-पुराण मत्स्य तथा स्कन्द पुराण में कथित वामन महा पुराण नहीं है।

नीचे इन दोनों हेतुओं पर कुछ विचार किया जाता है।

(१) पुराणों का विकास देश काल के अनुसार होता रहा है। प्राचीन पुराण ग्र थों में सृष्टि की उत्पत्ति आदि का प्रतिपादन तथा धर्मशास्त्रसम्बन्धी विषयों का और तत्सम्बन्धी आख्यानों का ही प्राधान्य था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (१ ६ १९ १३ आदि) में कुछ पुराण श्लोकों को उद्धृत किया गया है जिनमें धर्मशास्त्र सम्बन्धी विषयों का ही उल्लेख है। ब्रह्माण्ड (२ ३४ ८१) वायु (६० २१) तथा विष्णु पुराण (३ ६ १५) में निम्नलिखित श्लोक दिया है

आख्यानैश्चोपाख्यानैर्गाथाभि कल्पजोक्तिभि ।
पुराणसहिता चक्रे पुराणार्थविशारद ।

(पाठभेद—कल्पजोक्तिभि, ब्रह्माण्डपु कल्पशुद्धिभि, विष्णपु कुलकर्मभि, वायुपु)

इस श्लोक से भी यही निर्देश मिलता है कि पुराणवाङ्मय में मूल में सृष्टि प्रतिपादन तथा स्मृति विषय ही साख्यान रहे होंगे। राजवंशावलि तथा वंशानुचरित पौराणिक सूतों द्वारा सगृहीत किये गये तथा पुराणों के विकास की परवर्ति अवस्था में उनमें सम्मिलित कर दिये गये। परन्तु कौटिल्य के समय में ही पौराणिक सूत का अभाव मिलता है क्योंकि उन्होंने अपने अर्थशास्त्र (५ ३) में पौराणिक को सूत तथा मागध से भिन्न माना है। उस समय पौराणिक का यही कर्त्तव्य था कि वह राजा को अपराह्न में पुराण सुनाये। अत कौटिल्य के समय के लगभग या उसके पश्चात् जिन महापुराणों को पुन सस्कृत अथवा सशोधित किया गया उनमें से कुछ में इन वंशावलियों तथा वंशानुचरितों की उपेक्षा भी कर दी गई होगी। यही कारण है कि कुछ महापुराणों में सभी पञ्च लक्षण प्राप्य नहीं है। फिर भी वामन पुराण में सृष्टि प्रतिपादन, प्रलय-स्वरूप वर्णन, सप्त मरुद्गणों की उत्पत्ति के प्रसग में सातो मनुओं तथा मन्वतरों का कुछ वर्णन तथा अरजोपाख्यान में इक्ष्वाकुवंश के कुछ राजाओं का वर्णन मिलता है। परन्तु पुराणों का मुख्य ध्येय तो आख्यानादि के द्वारा धर्म का प्रतिपादन है। पञ्चलक्षणों का समावेश भी धर्म के अंग के रूप में ही हुआ है, विष्णुपुराण (४ २४–१२३) से यह स्पष्ट हो जाता है अतएव भविष्य पुराण (१ १ ६५) में पुराणों को धर्मशास्त्र भी कहा गया है।

(२) यद्यपि वर्तमान वामनपुराण में मत्स्य पुराण तथा स्कन्दपुराण में कहा हुआ लक्षण कुछ अंश में घटित नहीं होता है, इसम ब्रह्मा के स्थान में पुलस्त्य वक्ता हैं केवल इतना ही भेद है। पुराणों में कथित आख्यानादि का सम्बन्ध किसी न किसी पुरातन कल्प से जोड़ा जाता है जैसा कि मत्स्य पुराण के इस वचन से सिद्ध होता है —

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधा । (५३ ७२)।

मत्स्यपुराण तथा स्कन्दपुराण में वामनपुराण का निम्नलिखित स्वरूप दिया है —

त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुख

त्रिवर्गमभ्यधात् तच्च वामन परिकीर्तितम् ।

पुराण दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुग शिवम् ॥

(मत्स्य ५३ ४४ ४५, स्कन्द ७ १ २.६३-६४)

इसी से मिलता जुलता लक्षण नारदीय पुराण में भी दिया है, यथा—

शृणु तात प्रवक्ष्यामि पुराण वामनाभिधम् ।

त्रिविक्रमचरित्राढ्य दशसाहस्रसख्यकम् ।

कूर्मकल्पसमाख्यान वर्गत्रयकथानकम् ॥

(नारदीय पु० १ १०५ १–२)

इन लक्षणों में कूर्मकल्पानुग (मत्स्य, स्कन्द) तथा कूर्मकल्पसमाख्यान (नारदीय-पु०) इन दोनों ही का यही अर्थ अधिक सगत प्रतीत होता है कि वामनपुराण में कूर्मकल्पसम्बन्धी विषयों तथा आख्यानों का कथन है, स्वयं कूर्मकल्प का निर्देश या वर्णन होना आवश्यक नहीं। सभी पुराणों में किसी न किसी पुरातन कल्प के विषय तथा आख्यानादि रहते हैं यही पुराणों का मत है, जैसा कि पूर्वोक्त मत्स्यपुराण (५३ ७२) के वचन से सिद्ध होता है।

पुन मत्स्य पुराण (अ० ५३) तथा अग्निपुराण (अ० २७२) में नारदीयपुराण का निम्नलिखित लक्षण दिया है —

यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयानिह ।

पञ्चविंशतिसहस्राणि नारदीय तदुच्यते ॥

इसमें 'बृहत्कल्पाश्रयान् धर्मान्' इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि नारदीय पुराण में बृहत्कल्प सबन्धी धर्मों का उल्लेख है न कि बृहत्कल्प का। इसी प्रकार वामन के सम्बन्ध में भी यही समझना अधिक उचित है कि इसमें जिन धर्मों तथा आख्यानों का वर्णन है वे कूर्मकल्पसम्बन्धी है।

नारदीय पुराण में वामनपुराण की निम्नलिखित विषयानुक्रमणी दी हुई है —

पुराणप्रश्न प्रथम ब्रह्मशीर्षच्छिदा तत ।

कपालमोचनाख्यानं दक्षयज्ञविहिंसनम् ॥ ३ ॥

हरस्य कालरूपाख्या कामस्य दहन तत ।

प्रह्लादनारायणयोर्युद्ध देवासुराहव ॥ ४ ॥

सुकेश्यर्कसमाख्यान ततो भुवनकोशकम् ।

तत काम्यव्रताख्यान श्रीदुर्गाचरित तत ॥ ५ ॥

तपतीचरित पश्चात् कुरुक्षेत्रस्य वर्णनम् ।

सत्या माहात्म्यमतुल पार्वतीजन्मकीर्तनम् ॥ ६ ॥

तपस्तस्या विवाहश्च गौर्युपाख्यानक तत ।

तत कौशिक्युपाख्यान कुमारचरित तत ॥ ७ ॥

ततोऽन्धकवधाख्यानं साध्योपाख्यानक तत ।

जाबालिचरितं पश्चादरजाया कथाऽद्भुता ॥ ८ ॥
अन्धकेश्वरयोर्युद्धं गणत्वं चान्धकस्य च ।
मरुतां जन्मकथनं बलेश्च चरितं तत ॥ ९ ॥
ततस्तु लक्ष्म्याश्चरितं त्रैविक्रमम तः परम् ।
प्रह्लादतीर्थयात्रायां प्रोच्यतेऽथ कथा शुभा ॥१०॥
ततश्च धुन्धुचरितं प्रेतोपाख्यानकं ततः ।
नक्षत्रपुरुषाख्यानं श्रीदामचरितं ततः ॥११॥
त्रिविक्रमचरित्रान्ते ब्रह्मप्रोक्तः स्तवोत्तमः ।
प्रह्लादबलिसंवादे सुतले हरिशंसनम् ॥१२॥
इत्येष पूर्वभागोऽस्य पुराणस्य तवोदितः ।
शृण्वतोऽस्योत्तरं भागं बृहद्वामनसंज्ञकम् ॥१३॥
माहेश्वरी भागवती सौरी गाणेश्वरी तथा ।
चतस्रः संहिताश्चात्र पृथक् साहस्रसंख्यया ॥१४॥
इत्येतद्वामनं नाम पुराणं सुविचित्रकम् ।
पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने ॥१७॥

(नारदीय पुराण १ १०५ ३–१४,१७)

नारदीय पुराणोक्त वामनपुराण की इस विषय सूची में जिन विषयों का जिस क्रम से उल्लेख है उन सभी विषयों का उसी क्रम से वर्णन वर्तमान वामनपुराण में प्राप्य है। और नारदीय पुराण के कथनानुसार इसका वक्ता भी पुलस्त्य है तथा प्रश्नकर्ता और श्रोता नारद है। अतः यह सिद्ध होता है नारदीय पुराणोक्त वामन महापुराण यही वर्तमान वामनपुराण है। नारदीय पुराण में इसके उत्तर भाग (बृहद्वामन) की चारों संहिताओं की श्लोक संख्या मिलाकर ४००० कही गई है। जैसा कि उपर्युक्त १४वें श्लोक से प्रकट है। वामनपुराण का चार संहिताओं का बृहद्वामनसंज्ञक उत्तरभाग अब प्राप्य नहीं है केवल उसका पूर्वभाग ही वर्तमान वामनपुराण के रूप में प्राप्य है। जिसकी संख्या उपर्युक्त हिसाब से ६००० बैठती है और यही संख्या वर्तमान वामनपुराण में प्राप्य है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि कम से कम नारदीय पुराण के समय से जो ८०० ई० से १००० ई० तक माना जाता है[21] वर्तमान वामनपुराण महापुराण के रूप में माना जाता रहा है। मत्स्यपुराण के समय में जो वामनपुराण रहा होगा उसका वक्ता ब्रह्मा होगा। परन्तु नारदीय पुराण के समय से पूर्व ही उसका पुनः संस्करण हुआ होगा जिसके अनुसार उसका वक्ता ब्रह्मा न रहकर पुलस्त्य हो गया और अभी तक पुलस्त्य नारद के उसी संवाद रूप में वर्तमान वामनपुराण हमें प्राप्य है।

वामनपुराण का ग्रन्थ परिमाण

वेंकटेश्वर प्रेस मुद्रित वामनपुराण के प्रचलित पाठ में ९५ अध्याय तथा ५८१५ श्लोक हैं और कुछ गद्यांश भी है। परन्तु पाठनिर्धारणार्थ जिन हस्तलेखों का हमने पाठसंवाद (Collation) किया है, उनके अनुसार स्थिति इस प्रकार है —

(अ) सभी कश्मीरी हस्तलेखों में वेंकटे संस्करण के २३–३१ अध्याय लुप्त हैं। इन अध्यायों में प्रथम या

21 दे०—हाजरा, 'पुराणिक रिकार्ड्स्' पृ १३२

गौण वामन-चरित है जिसे सूत रोमहर्षण ने कुरुजाङ्गल-स्थित ऋषियों से कहा है। यह वामन-चरित प्रचलित वामनपुराण के 'सरोमाहात्म्य' (वेंकटे. २२. ४७-४९. ५१) का अंग है, इसलिये यह वामन-चरित उस मुख्य वामन चरित की अपेक्षा, जिसका वर्णन वामनपुराण के अन्तिम अध्यायों (वेंकटे. अ. ७६-९३ हैं; पाठसमीक्षात्मक संस्क. अ० ५०-६६) में है और जिसको वामनपुराण के मुख्य वक्ता पुलस्त्य ने नारद से कहा है, गौण कहा जा सकता है।

(आ) संवादित (Collated) बंगाली तथा दक्षिण भारतीय हस्तलेखों में सूत रोमहर्षण तथा ऋषियों का पूरा संवाद (जो सरोमाहात्म्य विषयक है) लुप्त है। यहा यह बतला देना उचित है कि दक्षिण-भारत से मलयालम तथा ग्रन्थ लिपियों में लिखा हुआ वामनपुराण का कोई भी हस्तलेख प्राप्त नहीं हो सका। सरस्वती-महल ग्रन्थागार से हमने वहाँ के कुछ देवनागरी हस्तलेखों—D 10419, D. 10421, D. 10422 तथा D 10423—का अध्याय-विवरण मंगवाया जिसके अनुसार इन हस्तलेखों का अन्तिम अध्याय वेंकटे. संस्करण के अन्तिम अध्याय (९५) से मिलता है। परन्तु इन हस्तलेखों में से दो में इस अन्तिम अध्याय की संख्या ६५ (पञ्चषष्टितमोऽध्यायः) तथा दो में ६७ (सप्तषष्टितमोऽध्याय) है, जिससे स्पष्ट है कि चारों ही दक्षिण भारतीय हस्तलेखों में भी 'सरोमाहात्म्य' के २७ अध्याय नहीं हैं।

सूत ऋषिसंवादात्मक इस सरोमाहात्म्यप्रकरण (वेंकटे० २२. ४७-४९-५१) में निम्नलिखित विषय हैं:—

(१) २२.४७-६०—इस अंश में कुरुक्षेत्र के पृथूदकतीर्थ का वर्णन—उत्पत्ति आदि—तथा माहात्म्य है।

(२) अ. २३-३१. इन अध्यायों में प्रथम अर्थात् गौण वामन-चरित का वर्णन है। यह प्रथम वामन चरित प्रायः मत्स्यपुराण (अ. २४४-२४६) के वामन-चरित से तथा कुछ अंश में हरिवंश (भविष्यपर्व, अ. ६६-७२) के वामन चरित से मिलता है, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि वामनपुराण का यह गौण वामनचरित इन दोनों पुराणो के वामन चरितों पर आधारित है।

(३) अ० ३२-४२ इन अध्यायों में कुरुक्षेत्र के विविध तीर्थों का वर्णन तथा माहात्म्य दिया हुआ है। यह वर्णन तथा माहात्म्य महाभारत (पाठसमीक्षात्मकसंस्करण) के आरण्यक पर्व अ. ८१ तथा शल्यपर्व, अ. ३७-४२ में कहे हुए कुरुक्षेत्र-तीर्थों के वर्णन के समान है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि यह पूरे का पूरा माहात्म्य सूत रोमहर्षण ने ऋषियों से कहा है परन्तु महाभारत के आरण्यकपर्व (अ. ८१) में वर्णित यह माहात्म्य पुलस्त्य के द्वारा भीष्म से कहा गया है।

महाभारत के इस प्रकरण मे पुलस्त्य द्वारा भीष्मके प्रति 'नरव्याघ्र' (८१. ८३ a), 'राजन्' (८१. २१०), 'धर्मज्ञ' (८१. ४६ b) इत्यादि संबोधनों का प्रयोग किया जाना उचित है, परन्तु प्रचलित वामन पुराण के इस सरोमाहात्म्यप्रकरण मे, तथा उसके सवादित लेखों में बिल्कुल ये ही सबोधन—'नरव्याघ्र' (वेंकटे. ३५.२८), 'राजन्' (वेंकटे. ३४.४२८), 'धर्मज्ञ' (वेंकटे. ३५. ४२ b)—सूत द्वारा ऋषियों के प्रति भी प्रयुक्त हुए हैं, जिनका हेतु यही प्रतीत होता है कि वामन पुराण का यह भाग महाभारत के उक्त अंश पर आधारित है, नहीं तो अन्य किसी भी प्रकार से वामन पुराण के इस प्रकार के पाठों का समर्थन नहीं किया जा सकता। बाद में वामन-पुराण के इस प्रकार के पाठों का कुछ हस्तलेखों में संशोधन किया गया प्रतीत होता है।

(४) अ. ४३-४९. इनमें स्थाणुतीर्थ में और उसके चारो ओर प्रतिष्ठापित विविध शिवलिङ्गों का वर्णन तथा माहात्म्य सनत्कुमार द्वारा मार्कण्डेय से कहा गया है। ये अध्याय अन्यत्र कहीं भी—महाभारत तथा पुराणों में—

नहीं मिल सके। परन्तु महाभारत (आरण्यकपर्व, ८१.१२७) में पृथूदकतीर्थ के माहात्म्य के प्रसङ्ग में यह वचन है '—"गीतं सनत्कुमारेण व्यासेन च महात्मना", क्या इससे यह तो सूचित नहीं होता कि यह प्रकरण कदाचित् स्कन्द-पुराण की सनत्कुमार-संहिता में भी रहा हो जो अब प्राप्य नहीं है।

'सरोमाहात्म्य' के ये सारे-के सारे अध्याय पूर्वागत मुख्य कथानक से असंबद्ध हैं जिसमें हरि ने देवों से कुरुक्षेत्र में जाकर पृथूदकतीर्थ में पितरों की आराधना करने को कहा है, जिससे उन्हें हिमालय की पत्नी के रूप में उनकी मानसी कन्या मेना प्राप्त हो, तथा उसकी कन्या से शिवजी द्वारा उत्पन्न पुत्र महिषासुर का वध करे। वस्तुत, इस मुख्य कथानक का सूत्र बीच में प्रक्षिप्त 'सरोमाहात्म्य' से विच्छिन्न-सा हो गया है, तथा सरोमाहात्म्य के अन्त में उससे आगे के अध्याय (वेंकटे. अ. ५०) में पुन वह कथा सूत्र विच्छिन्न पूर्वप्रसङ्ग से पुन जोडा गया है। किन्तु यह पूरा सरोमाहात्म्य सभी उत्तरभारतीय देवनागरी हस्तलेखों में तथा दक्षिण-भारत के एक तेलुगु हस्तलेख (मद्रास की ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स-लाइब्रेरी का हस्तलेख D २२६८) में दिया हुआ है।

कश्मीरी हस्तलेखों में उत्तर भारतीय देवनागरी हस्तलेखों के समान ही सूत-ऋषि-संवाद के आरम्भ में वामन की उत्पत्ति के संबध में प्रश्न तो मिलता है ('उत्पत्तिं वामनस्य च', वेंकटे. २२.४८०) परन्तु उसके उत्तर के रूप में वामनचरित नहीं मिलता जिससे अनुमान होता है कि कश्मीरी हस्तलेखों में या तो सरोमाहात्म्यान्तर्गत इस वामनचरित का लेखकों की असावधानता आदि के कारण लोप हो गया या फिर पुलस्त्य द्वारा हुए मुख्य वामनचरित को दृष्टि में रखते हुए जान बूझ कर इस पूर्व वामनचरित का त्याग कर दिया गया हो। (वामनपुराण का मुख्य वामन-चरित सभी हस्तलेखों में मिलता है, परन्तु सरोमाहात्म्यान्तर्गत वामनचरित कश्मीरी, बंगाली तथा दक्षिणभारतीय हस्त लेखों में नहीं मिलता)

अब, वामनपुराण के ग्रन्थ परिमाण की स्थिति इस प्रकार हमारे सामने आती है —या तो हमें सूत-ऋषि-संवादात्मक पूरे का पूरा सरोमाहात्म्य-पाठ वामनपुराण के निर्धारित पाठ में रखना चाहिए, जैसा कि उत्तरभारतीय देवनागरी हस्तलेखों में है, अथवा सम्पूर्ण सरोमाहात्म्य का त्याग करना चाहिये जैसा कि बंगाली और दक्षिण भारतीय हस्तलेखों में किया गया है। परन्तु जब तक हमें मलयालम और ग्रन्थलिपियों में लिखे हुए वामनपुराण के कुछ हस्तलेख नहीं प्राप्त हो जाते तब तक वामनपुराण के दक्षिण भारतीय ग्रन्थ परिमाण के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। पुनः कुछ प्राचीन धर्मशास्त्र-निबन्धों में (जैसे १२वीं शताब्दी के लक्ष्मीधरकृत 'कृत्यकल्पतरु' में) सरोमाहात्म्य के अनेक श्लोक उद्धृत मिलते हैं। दक्षिणभारतीय वैद्यनाथ दीक्षित कृत स्मृतिमुक्ताफल के आह्निकप्रकरण (१७०० ई०) में भी सरोमाहात्म्य के कुछ श्लोक उद्धृत हैं। ऐसी स्थिति में वामनपुराण ग्रन्थ से सरोमाहात्म्य-प्रकरण को सर्वथा निकाल देना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। और केवलमात्र प्रथम वामन चरित का भी त्याग नहीं किया जा सकता जैसा कि कश्मीरी हस्तलेखों में किया गया है, क्योंकि कश्मीरी हस्तलेखों का प्रमाण इस विषय में असंदिग्ध नहीं है।

पुन. नारदीयपुराण में सूत ऋषि संवादात्मक वामनपुराण के अस्तित्व का भी निर्देश मिलता है, यथा—

इत्येतद् वामनं नाम पुराणं सुविचित्रकम्।
पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मना॥
ततो नारदतः प्राप्तं व्यासेन सुमहात्मना।
व्यासात्तु लब्धवाश्चैतद् तच्छिष्यो रोमहर्षणः।

स चाख्यास्यति विप्रेभ्यो नैमिषेयेभ्य एव च।
एव परम्पराप्राप्तं पुराण वामन शुभम् ॥
(ना० पु० १.१०५ १७-१९)

इससे अनुमान किया जा सकता है कि किसी समय में सूत-ऋषि-सवादात्मक वामन-पुराण भी रहा होगा और उसी का एक अग यह सूत-ऋषि सवादात्मक सरोमाहात्म्य हो, तथा बाद में किसी कारण से वह वामन पुराण लुप्त हो गया हो तथा उसका अवशेष सरोमाहात्म्य पुलस्त्य नारद-सवादात्मक इस वामन पुराण में प्रविष्ट हो गया हो। पुलस्त्य-नारद सवादात्मक इस वामन पुराण का कुछ अंश भी लुप्त हो गया ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि वामन पुराण के अनेक ऐसे श्लोक निबन्ध ग्रन्थों में उद्धृत मिलते हैं जो अब न तो वामन पुराण की मुद्रित पुस्तकों में ही प्राप्य है, और न वामनपुराण के किसी हस्तलेख में ही। (निबध ग्रन्थों में उद्धृत इस प्रकार के श्लोकों का संग्रह वामन पुराण के पाठसमीक्षात्मकसस्करण के परिशिष्ट (२ B) में दे दिया गया है।

पुराण सदा से ही हिन्दुधर्म के विश्वकोश माने जाते हैं। देशकाल के अनुसार उनका समय समय पर सशोधन एव परिवर्धन आदि होता रहा है इसका उल्लेख किया जा चुका है। इससे हिन्दुधर्म तथा समाज के लिये पुराण एक जीवित साहित्य के रूप में प्राप्त है। पुराणकारों ने जहाँ 'पुरातन' का त्याग न करके देश-काल के अनुसार उसकी व्याख्या करने का प्रयत्न किया है, वहाँ उन्होंने युग-युग में प्रचलित अनेक नवीन विचारधाराओं का भी पुराणों में उचित संनिवेश किया है और इसी के कारण पुराणवाङ्मय का परिमाण दो लाख श्लोक से बढ़कर चार लाख श्लोक हो गया[22], जो 'पुराणों का दूषण नहीं, अपितु भूषण ही है और पुराणों की यह सामग्री उपेक्षित न होकर सग्राह्य है। इसलिये पुराणों के प्रचलित अशों का सर्वथा त्याग अभीष्ट नहीं है जब तक कि इस प्रकार के अंश लेखों या वाचकों द्वारा उनकी अज्ञानता के कारण या साम्प्रदायिक कुत्सित प्रवृत्ति के कारण प्रक्षिप्त प्रमाणित न हो जायें।

मत्स्यपुराण, स्कन्द पुराण, अग्नि पुराण तथा नारदीयपुराण में वामनपुराण का ग्रन्थ परिमाण १०,००० श्लोक कहा गया है ('दशसाहस्रसख्यकम्' इत्यादि)। नारदीयपुराण के अनुसार वामनपुराण का बृहद्‌वामनसञ्ज्ञक एक उत्तर भाग भी था जिसमें एक एक हजार श्लोकों वाली चार सहिताएँ थीं (१.१०५ १३ १६, पूर्व उद्धृत)। परन्तु बृहद्‌वामन नामक यह उत्तर भाग अब नहीं मिलता यद्यपि इसके कुछ श्लोक वीरमित्रोदय नामक निबन्धग्रन्थ के पूजाप्रकाश में तथा जीवगोस्वामी और रूपगोस्वामी के कृष्णभक्तिविषयक ग्रन्थों में[23] उद्धृत मिलते हैं, इनके अतिरिक्त लघुभागवतामृत' नामक ग्रन्थ में भी बृहद्‌वामन के ६ श्लोक उद्धृत हैं[24]। नारदीयपुराणोक्त वामनपुराण का पूर्वभाग ही अब वर्त्तमान 'वामनपुराण' ग्रन्थ के रूप में प्राप्य है, जिसका परिमाण उत्तरभाग के ४००० श्लोकों को निकाल कर ६००० श्लोक बैठता है, और यही परिमाण वर्त्तमान 'वामनपुराण' ग्रन्थ का है।

२२ दे०—मेरा लेख 'Puranas and their Referencing', 'पुराण, ७ २ (जुलाई, १९६५) पृ ३२१-३५१

२३ जीवगोस्वामी के 'षटसदर्भ' (या 'भागवतसन्दर्भ) मे कृष्णलोक के वर्णन के प्रसग मे बृहद्वामनपुराण से उद्धृत कुछ श्लोक मिलते हैं जिनका उपन्यास 'इम च बृहद्वामनपुराण प्रसिद्धि' वाक्य से किया गया है, इसी प्रकार रूपगोस्वामी कृत 'उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ में मुनियों के भावी गोपीभाव विषयक प्रसग मे बृहद्वामनपुराण का निर्देश मिलता है। इसकी लोचन रोचनी टीका मे जीवगोस्वामी का वचन है—"पौराणी बृहद्वामनोक्ता। सा च यथा—इत्यादि (उज्ज्वलनीलमणि, लो० रो०, कारिका ४६) इस मूल्यवान सूचना के लिये मैं वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, के शिक्षाविभाग के अध्यक्ष श्रीकरुणापति त्रिपाठी का आभारी हूँ।

२४ दे०—हाजरा, 'स्टडीज इन दि उपपुराणाज', भाग १, पृ० ३५१-५२

वामनपुराण के निर्धारित पाठ के अध्याय—

बीस हस्तलेखों के पाठसंवाद (Collation) के आधार पर निर्धारित वामनपुराण के मुख्य पाठ (मु. पा., Main Text) में 'सरोमाहात्म्य' को छोड़ कर ६९ अध्याय हैं।

'सरोमाहात्म्य' पाठ मुख्यपाठ के २३ तथा २४ अध्यायों के बीच में है, जैसा कि उत्तरभारतीय देवनागरी हस्तलेखों में तथा मद्रास के तेलुगुहस्तलेख में है, केवल इसकी अध्याय संख्या पृथक् है। इस प्रकार 'सरोमाहात्म्य' को परिशिष्ट में न देकर मुख्यपाठ के अन्तर्गत ही यथास्थान रक्खा है।

हस्तलेखों के आधार पर वेंकटे. संस्करण के १४वें अध्याय को १४ तथा १५ दो अध्यायों में बाँटा गया है, और वेंकटे के ८३ तथा ८४ अध्यायों को मिलाकर एक (अ० ५७) किया गया है। वेंकटे. के ९५ अध्याय को दो अध्यायों (६८,६९) में बाँटा गया है, अन्तिम अध्याय (६९) में 'फलश्रुति' है।

निर्धारित पाठ में गद्यांश—

स. मा. अध्याय ५	५४१ अक्षर
„ „ अध्याय २३	५६४ अक्षर
मु. पा, अध्याय ३९	४०० अक्षर
„ „ अध्याय ४३	५९ अक्षर
„ „ अध्याय ४४	१६३ अक्षर
„ „ अध्याय ६६	११०४ अक्षर
	योग २७३१ अक्षर

(३२ अक्षरों के १ श्लोक के हिसाब से कुल ८६ श्लोक)

निर्धारित पाठ की श्लोकसंख्या—

मुख्य पाठ (अ० १–६९)	४५६३ श्लोक
सरोमाहात्म्य पाठ	१२२८ श्लोक
गद्यपाठ	८६ श्लोक
	योग=५८७७ श्लोक

वामनपुराण के अध्ययन तथा अनुवाद

अध्ययन—

वामनपुराण के कुछ अध्ययन, जिनमें इन पुराण के विविध पक्षों पर विचार किया गया है, पुस्तकों तथा लेखों के रूप में प्रकाशित हुए हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है —

१. 'वामनपुराण—ए स्टडी' (वामनपुराणानुशीलनम्), स्वर्गीय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (प्रोफेसर बनारस हिन्दुयूनिवर्सिटी) द्वारा लिखित, तथा पृथ्वीप्रकाशन, वाराणसी ५ द्वारा प्रकाशित, १९६४। इसमें वामनपुराण के विषयों का विश्लेषण तथा सांस्कृतिक अध्ययन किया गया है।

२. डा. आर० सी० हाजरा कृत 'स्टडीज इन दि पुराणिक रिकार्डस एण्ड कस्टमस्' में पृष्ठ ७७ प्रभृति में वामनपुराण के काल तथा स्मृति विषयों का विचार किया गया है।

३ पॉल हैकर ने इस पुराण के विषयों का विश्लेषण तथा इसके अनेक श्लोकों पर विचार किया है।[२५]

४ ए होहनबर्गर ने अपने लेख 'Das Vāmana Purana' में, जो इंडो इरानियन जरनल, भाग ७ (१९६३), अंक १ में (पृष्ठ १–५७) में प्रकाशित हुआ है वामनपुराण के अनेक पक्षों पर विचार किया है।

५ वे० राघवन् 'दि वामनपुराण', 'पुराण' ४ १ (जनवरी १९६८) १८४–१९२

इसमें वामनपुराण के हस्तलेखों की सूची दी गई है तथा वामनपुराण एव कुमारसभव के समान श्लोकों का निर्देश किया गया है।

६ बी० एच० कपाडिया का लेख, पुराण, ७ १ (जनवरी, १९६५) पृष्ठ १७०–१८२ पर प्रकाशित—

७ आ० स्व० गुप्त, पुराण-अध्याय विषयक लेख, 'पुराण' ५ २ (जुलाई १९६३) के पृष्ठ ३६०–३६६ पर प्रकाशित।

अनुवाद—

१ वामनपुराण का एक हिन्दी अनुवाद वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से शाके १८८५ (सन् १९०३) में प्रकाशित हुआ। इसे श्री श्यामसुन्दर त्रिपाठी ने किया है। इसमें प्रत्येक अध्याय का प्रथम तथा अन्तिम श्लोक दिया है और अनुवाद में श्लोकाक भी दिये हैं।

२ मूल सस्कृत पाठ सहित बगला अनुवाद, जो महेश चन्द्र पाल द्वारा किया गया हैं तथा कलकत्ते से सवत् १९५० (१८९३ई०) में निरपेक्ष धर्म सञ्चारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

३ एक दूसरा बंगला अनुवाद मूलसस्कृतपाठसहित बगवासी प्रेस से बगाली सन् १३१४ (सन् ई० १९०८) में प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद श्री पचाननतर्करत्न द्वारा किया गया है।

इन दोनों बगाली अनुवादों में सस्कृत पाठ भी बगाक्षरों में ही है।

४ मूल सस्कृत पाठ सहित एक कन्नड अनुवाद श्री जयचामराजेन्द्र ग्रन्थावली में प्रकाशित हुआ है (सख्या २५) इसे श्री वेंकटाचार्य ने किया है। इसमें सस्कृतपाठ कन्नड अक्षरों में है।

५ ६ प्रस्तुत अग्रेजी तथा हिन्दी के अनुवाद जो काशिराजन्यास द्वारा पृथक् पृथक् प्रकाशित कराये जा रहे हैं और जिनमें गवेषणोपयोगी भूमिका तथा अनेक परिशिष्ट भी दिये हैं और श्लोक सूची भी अन्त में दी हुई हैं।

वामन पुराण में भी अन्य पुराणों के समान, कुछ श्लोक ऐसे हैं जिनका अर्थ सदिग्ध है अत उनका अनुवाद भी प्राय सदिग्ध ही है। अच्छा होता यदि उपर्युक्त अनुवादों में इस प्रकार के श्लोकों का एक सूची के रूप में एकत्र निर्देश कर दिया गया होता। परन्तु अभी तक कहीं कोई ऐसी सूची नहीं दी गई है, "जिसका कारण प्राय यही है कि अनुवादकों को अनुवाद्य ग्रन्थ के केवल उन्हीं अंशों का अनुवाद करने में सतोष नहीं होता जिनका अर्थ बोधगम्य और निश्चित है, परन्तु वे यह समझते हैं कि उन्हें प्रत्येक अश का अनुवाद करना आवश्यक है चाहे उस अंश का अर्थ अभी तक अनिर्णीत ही रहा हो।"[२६]

• * •

वामनपुराण के हिन्दी अनुवाद सहित इस सस्करण के निर्माण में जिन अनेक ग्रन्थागारों, सस्थाओं तथा विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना एक पवित्र कर्तव्य हो जाता है। वामनपुराण के महत्त्वपूर्ण

२५ दे०—बी० एच० कपाडिया का लेख पुराण' ७ १ (जनवरी, १९६५) में पृ० १७० १८२ पर प्रकाशित।

२६ विटरनिट्ज, पूर्वोक्त ग्रन्थ पृष्ठ ६६

हस्तलेख हमें (१) इंडिया अफिस लाइब्रेरी, लन्दन, (२) ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन, (३) बोडलियन लाइब्रेरी आक्सफोर्ड, (४) पैनसिल्वेनिया लाइब्रेरी, अमेरिका, (५) रणवीरसंस्कृतशोधसंस्थान, जम्मू, (६) एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, (७) वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, (८) भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान, पूना, (९) भारतीय इतिहास संशोधक मंडल, पूना, (१०) शृंगेरी मठ, मैसूर, (११) प्राच्यशोध संस्थान, मैसूर, (१२) ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास, (१३) अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास, (१४) सरस्वती महल लाइब्रेरी, तंजौर, (१५) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, वाराणसी, (१६) सरस्वती भवन लाइब्रेरी, वाराणसेय संस्कृतविश्वविद्यालय तथा (१७) सरस्वती भण्डार, रामनगर, ने पाठसंवादार्थ प्रदान किये, तथा सरस्वती महल लाइब्रेरी, तंजौर ने अपने यहां के कुछ हस्तलेखों का विवरण भेजकर हमें सहायता प्रदान की। इन सब संस्थाओं के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

पाठसमीक्षात्मक संस्करण के निर्माण में जिन विद्वानों ने अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है (और जिनके नामों का निर्देश कृतज्ञता प्रकाशन सहित उस संस्करण की भूमिका में तथा वर्तमान अंग्रेजी अनुवाद वाले संस्करण में कर दिया गया है) उनके प्रति पुनः हम अपना आभार प्रदर्शित करते हैं। पुराण विभाग के विद्वद्वर्ग डा० गंगासागर राय, श्री अनन्त प्रसाद मिश्र, प० हीरामणिशास्त्री, श्री रामचन्द्रपाण्डेय, श्री रामायणद्विवेदी, श्री चौ० विजय शंकर सिंह, तथा श्री मध्वाचार्य आय, श्री जनार्दनपाण्डेय, पं० ठाकुर प्रसाद द्विवेदी, श्री कामदेव झा, तथा श्री सुरेश प्रसाद गुप्त ने इस पुण्य कार्य में हमें अपना पूर्ण सहयोग दिया है। इनके प्रति भी हम आभारी हैं। प्रेस कापी के टाइप करने में श्री अनन्त प्रसाद त्रिपाठी तथा श्री रविशंकर उपाध्याय ने पूर्ण सहयोग दिया है। वे दोनों भी धन्यवाद के पात्र है।

वामनपुराण का यह हिन्दी अनुवाद वेंकटेश्वर संस्करण से श्री गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री (वाराणसी) ने किया था। पाठ-समीक्षात्मक संस्करण के निर्मित होने पर उसके निर्धारित पाठ के अनुसार पुनः पूर्व अनुवाद का संशोधन तथा नवीन अंश का अनुवाद श्री चौधरी श्रीनारायण सिंह (रामनगर) ने किया और पुराणविभागस्थ श्री डा० गङ्गासागर राय ने उस अनुवाद को अन्तिम रूप में दोहराया। इस प्रकार इन विद्वानों के सहयोग से यह अनुवाद पुराणोपासक विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। इसके अन्त में परिशिष्ट रूप में जो सामग्री जोड़ी गयी है वह पुराणों के अध्ययन तथा शोधकार्य में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसी आशा है। परिशिष्टों में वनस्पति-सूची तथा जन्तु सूची में वैज्ञानिक लैटिन नाम क्रमशः काशी विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर आयुर्वेदीय विभाग के प्राध्यापक श्री के० सी० चुनेकर ने तथा जन्तु विज्ञान विभाग के प्राध्यापक डा० बी० प्रसाद ने दिये हैं जिनके लिये हम अत्यन्त आभारी हैं।

परन्तु इन सब कार्यों के मूल में जिनका निरन्तर हाथ तथा नेतृत्व रहा उन महामहिम महाराज काशीनरेश श्री डा० विभूतिनारायण सिंह जी के प्रति आभार तो शब्दों में प्रकट करना शक्य ही नहीं है। इस पुराण यज्ञ के वस्तुतः वे ही यजमान तथा ऋत्विक् हैं। काशीराज न्यास के महामन्त्री श्री रमेशचन्द्र देव तथा ताराप्रेस के प्रबन्धक श्री रमाशङ्कर पण्ड्या ने इस संस्करण के समय पर प्रकाशन में अत्यधिक परिश्रम किया है। इसके लिए वे परम धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है यह संस्करण विद्वानों एवं पुराणप्रेमीजनों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

रामनगर (वाराणसी) — आनन्दस्वरूप गुप्त

१० अक्टूबर, १९६८ ई०

अध्यायविषयसूची

निर्धारित पाठ के अध्यायों का वेंकटेश्वर सस्करण के अध्यायों से साम्यनिर्देश

निर्धारित पाठ	वेंकटेश्वर सस्करण
१–१४	१–१४ ५७
१५	१४ ५८–१४ १२२
१६–२२	१५–२१
२३	२२ १–४६
सभा १	२२ ४७–६०
सभा. २–२८	२३–४९
२४	५०
२५–५६	५१–८२
५७ १–३३ab	८३ १–३२ef
५७ ३३cd–७४	८४ १०ab–५०
५८ ६१	८५–८८
(६२ १–९)	(८४ १–९)
६२	८९
६३–६७	९०–९४
६८ १–२७	९५ १–२८ab
६८ २८–७१	९५ ३८–८४
६९ १–३	९५ ८५–८७
६९ ४–१२	९५ २८cd–३७
६९ १३–१६	९५ ८८–९२

अथ श्रीवामनपुराणम्

१

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

त्रैलोक्यराज्यमाक्षिप्य बलेरिन्द्राय यो ददौ ।
श्रीधराय नमस्तस्मै छद्मवामनरूपिणे ॥ १
पुलस्त्यमृषिमासीनमाश्रमे वाग्विदां वरम् ।
नारदः परिपप्रच्छ पुराणं वामनाश्रयम् ॥ २
कथं भगवता ब्रह्मन् विष्णुना प्रभविष्णुना ।
वामनत्वं धृतं पूर्वं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ३
कथं च वैष्णवो भूत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः ।
त्रिदशैर्युयुधे सार्धमत्र मे संशयो महान् ॥ ४
श्रूयते च द्विजश्रेष्ठ दक्षस्य दुहिता सती ।
शंकरस्य प्रिया भार्या बभूव वरवर्णिनी ॥ ५
किमर्थं सा परित्यज्य स्वशरीरं वरानना ।
जाता हिमवतो गेहे गिरीन्द्रस्य महात्मनः ॥ ६
पुनश्च देवदेवस्य पत्नीत्वमगमच्छुभा ।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्ववित् त्वं मतोऽसि मे ॥ ७
तीर्थानां चैव माहात्म्यं दानानां चैव सत्तम ।
व्रतानां विविधानां च विधिमाचक्ष्व मे द्विज ॥ ८
एवमुक्तो नारदेन पुलस्त्यो मुनिसत्तमः ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो नारदं तपसो निधिम् ॥ ९

पुलस्त्य उवाच ।

पुराणं वामनं वक्ष्ये क्रमान्निखिलमादितः ।
अवधानं स्थिरं कृत्वा शृणुष्व मुनिसत्तम ॥ १०
पुरा हैमवती देवी मन्दरस्थं महेश्वरम् ।

१

नारायण, नरों में श्रेष्ठ नर, देवी सरस्वती और व्यास
को नमस्कार करने के अनन्तर जय (पुराणादि) को पढ़े ।

जिन्होंने बलि से त्रैलोक्य (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) के राज्य को छीन कर इन्द्र को दे दिया था, छल से वामनरूप धारण करने वाले उन श्रीधर विष्णु को नमस्कार है। (१)

विद्वानों में श्रेष्ठ महर्षि पुलस्त्य आश्रम में बैठे थे। देवर्षि नारद ने उनसे वामन से सम्बद्ध पुराण की कथा पूछी— (२)

हे ब्रह्मन् , सामर्थ्यशाली भगवान विष्णु ने कैसे पूर्व काल में वामन-शरीर ग्रहण किया था, इसे आप मुझ प्रश्न कर्त्ता को बताइये। (३)

दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लाद, वैष्णव होकर भी देवताओं के साथ संग्राम में क्यों प्रवृत्त हुए थे, इस विषय में मुझे बड़ा संदेह है। (४)

हे द्विजश्रेष्ठ, ऐसा सुनने में आता है कि प्रजापति दक्ष की परम सुन्दरी कन्या सती शङ्कर की प्रिय पत्नी हुई थीं। (५)

वह सुन्दर मुखवाली (सती) क्यों अपने शरीर को छोड़ कर पर्वतराज महात्मा हिमाचल के घर में उत्पन्न हुईं। (६)

और पुन वह कल्याणी देवदेव (महादेव) की पत्नी बनीं। मेरे विचार से आप सर्वज्ञ हैं, अत इस संशय को आप दूर करें। (७)

हे सत्पुरुषों मे श्रेष्ठ, हे द्विज, तीर्थों तथा दानों की महिमा तथा विविध व्रतों की अनुष्ठान विधि भी मुझे बताइये। (८)

नारद के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मुनियों में मुख्य तथा वक्ताओं में श्रेष्ठ पुलस्त्य, तपोधन नारद से कहने लगे— (९)

पुलस्त्य ने कहा—मैं आदि से प्रारम्भ करके क्रमश सम्पूर्ण वामन पुराण का वर्णन करूँगा। हे मुनिश्रेष्ठ, आप ध्यान लगाकर सुनिये। (१०)

प्राचीन समय मे देवी हैमवती (सती) ने ग्रीष्म ऋतु का आगमन देखकर मन्दर पर्वत पर बैठे हुए महेश्वर से यह वचन कहा— (११)

उवाच वचनं दृष्ट्वा ग्रीष्मकालमुपस्थितम् ॥ ११
ग्रीष्मः प्रवृत्तो देवेश न च ते विद्यते गृहम् ।
यत्र वातातपौ ग्रीष्मे स्थितयोर्नौ गमिष्यतः ॥ १२
एवमुक्तो भवान्या तु शंकरो वाक्यमब्रवीत् ।
निराश्रयोऽहं सुदति सदाऽरण्यचरः शुभे ॥ १३
इत्युक्ता शंकरेणाथ वृक्षच्छायासु नारद ।
निदाघकालमनयत् समं शर्वेण सा सती ॥ १४
निदाघान्ते समुद्भूतो निर्जनाचरितोऽद्भुत ।
घनान्धकारिताशो वै प्रावृट्कालोऽतिरागवान् ॥ १५
तं दृष्ट्वा दक्षतनुजा प्रावृट्कालमुपस्थितम् ।
प्रोवाच वाक्यं देवेशं सती सप्रणय तदा ॥ १६

विशन्ति वाता हृदयावदारणा
गर्जन्त्यमी तोयधरा महेश्वर ।
स्फुरन्ति नीलाभ्रगणेषु विद्युतो
वाशन्ति केकारवमेव बर्हिणः ॥ १७
पतन्ति धारा गगनात् परिच्युता
बका बलाकाश्च सरन्ति तोयदान् ।
कदम्बसर्जार्जुनकेतकीद्रुमाः
पुष्पाणि मुञ्चन्ति सुमारुताहताः ॥ १८
श्रुत्वैव मेघस्य दृढं तु गर्जितं
त्यजन्ति हंसाश्च सरांसि तत्क्षणात् ।
यथाश्रयान् योगिगणाः समन्तात्
प्रवृद्धमूलानपि सत्यजन्ति ॥ १९
इमानि यूथानि वने मृगाणां
चरन्ति धावन्ति रमन्ति शंभो ।
तथाऽचिराभा. सुतरा स्फुरन्ति
पश्येह नीलेषु घनेषु देव ।
नूनं समृद्धिं सलिलस्य दृष्ट्वा
चरन्ति शूरास्तरुणद्रुमेषु ॥ २०
उद्वृत्तवेगाः सहसैव निम्नगा
जाताः शशाङ्काङ्कितचारुमौले ।
किमत्र चित्रं यदनुज्ज्वलं जनं
निषेव्य योषिद् भवति स्वशीला ॥ २१
नीलैश्च मेघैश्च समावृतं नभः
पुष्पैश्च सर्ज्जा मुकुलैश्च नीपा. ।
फलैश्च बिल्वा. पयसा तथापगा.

हे देवेश, ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ हो गया है किन्तु आपका कोई घर नहीं है जहाँ रहते हुए हम दोनों ग्रीष्म के वायु प्रवाह और ताप को बिता सकें।' (१२)

भवानी के ऐसा कहने पर शकर ने कहा – 'हे शुभे, हे सुन्दर दाँतों वाली, मैं गृहहीन और सदा वन मे विचरण करने वाला हूँ'। (१३)

हे नारद, शंकर के इस प्रकार कहने पर उन सती ने शकर के साथ वृक्षों की छाया मे ग्रीष्मकाल बिताया। (१४)

ग्रीष्म ऋतु के अन्त में अद्भुत वर्षाऋतु का आगमन हुआ जो अत्यधिक राग को बढाने वाला था। इससे लोगों का आना जाना रुक गया तथा मेघों के द्वारा आच्छन्न हो जाने से दिशायें अन्धकारमय हो गईं। (१५)

उस वर्षाकाल को उपस्थित देखकर दक्ष पुत्री सती ने प्रेमपूर्वक महादेव से यह बात कही— (१६)

"हे महेश्वर, हृदयविदीर्णकारी वायु वेग से चल रहे हैं, ये मेघ गर्जन कर रहे हैं, नील मेघ मडली मे बिजलियाँ चमक रही हैं और मोर केका शब्द कर रहे हैं। (१७)

गगनमडल से छूटी हुई जलधारायें गिर रही हैं, बगुले और सारस मेघों का अनुगमन कर रहे हैं। प्रबल वायु द्वारा आहत कदम्ब सर्ज, अर्जुन तथा केतकी के वृक्ष पुष्प गिरा रहे हैं। (१८)

मेघ का गम्भीर गर्जन सुनकर हंस तुरन्त जलाशयों को छोड़कर चले जा रहे हैं, जिस प्रकार योगिजन अपने सब प्रकार से समृद्ध घर को भी सर्वथा छोड देते हैं। (१९)

हे शम्भो, वन में मृगों के ये झुण्ड आनन्दित होकर इतस्तत दौड रहे हैं। और हे देव, देखिये—काले-काले मेघों मे विद्युत् भलीभाँति चमक रही है। मानो जल की वृद्धि को देखकर शूरगण तरुण वृक्षों पर विचरण कर रहे हैं। (२०)

नदियाँ एकाएक वेग से प्रवाहित हो रही हैं। हे चन्द्रशेखर! इसमें क्या आश्चर्य है कि चरित्रहीन व्यक्ति को प्राप्त कर स्त्री दु शील हो जाती है। (२१)

नीलमेघों के द्वारा आकाश आच्छन्न हो गया है, पुष्पों के द्वारा सर्ज, मुकुलों के द्वारा कदम्ब, फलों के द्वारा बिल्व वृक्ष, जल के द्वारा नदियाँ, तथा कमलों से युक्त पत्रों के

पद्मैः सपद्मैश्च महासरांसि ॥ २२
इतीदृशे शंकर दुःसहेऽद्भुते
काले सुरौद्रे ननु ते ब्रवीमि।
गृहं कुरुष्वात्र महाचलोत्तमे
सुनिर्वृता येन भवामि शंभो ॥ २३
इत्थं त्रिनेत्रः श्रुतिरामणीयकं
श्रुत्वा वचो वाक्यमिदं बभाषे।
न मेऽस्ति वित्तं गृहसंचयार्थे
मृगारिचर्मावरणं मम प्रिये ॥ २४
ममोपवीतं भुजगेश्वरः शुभे
कर्णेऽपि पद्मश्च तथैव पिङ्गलः।
केयूरमेकं मम कम्बलस्त्वहि-
र्द्वितीयमन्यो भुजगो धनंजयः ॥ २५
नागस्तथैवाश्वतरो हि कङ्कणं
सव्येतरे तक्षक उत्तरे तथा।
नीलोऽपि नीलाञ्जनतुल्यवर्णः
श्रोणीतटे राजति सुप्रतिष्ठः ॥ २६

पुलस्त्य उवाच।
इति वचनमथोग्रं शंकरात्सा मृडानी
ऋतमपि तदसत्यं श्रीमदाकर्ण्य भीता।
अवनितलमवेक्ष्य स्वामिनो वासकृच्छ्रात्
परिवदति सरोषं लज्जयोच्छ्वस्य चोष्णम् ॥२७
देव्युवाच।
कथं हि देवदेवेश प्रावृट्कालो गमिष्यति।
वृक्षमूले स्थिताया मे सुदुःखेन वदाम्यतः ॥ २८
शंकर उवाच।
घनावस्थितदेहायाः प्रावृट्कालः प्रयास्यति।
यथाम्बुधारा न तव निपतिष्यन्ति विग्रहे ॥ २९
पुलस्त्य उवाच।
ततो हरस्तद्घनखण्डमुन्नत-
मारुह्य तस्थौ सह दक्षकन्यया।
ततोऽभवन्नाम तदेश्वरस्य
जीमूतकेतुस्त्विति विश्रुतं दिवि ॥ ३०

इति श्रीवामनपुराणे प्रथमोऽध्याय ॥१॥

द्वारा बड़े-बड़े सरोवर आच्छन्न हो गए हैं। (२२)

हे शंकर, इसीलिए मैं कहती हूँ कि ऐसे दु सह, अद्भुत तथा भयकर समय में आप इस महान् तथा उत्तम पर्वत पर गृहनिर्माण कीजिए, हे शभो, जिससे मैं निश्चिन्त हो जाऊँ। (२३)

सती के इन मधुर वाक्यों को सुनकर त्रिनेत्र शकर ने कहा—'हे प्रिये, गृह निर्माण के लिये मेरे पास धन नहीं है। मैं व्याघ्र का चर्म पहनता हूँ। (२४)

हे शुभे, सर्पराज मेरा जनेऊ है। पद्म और पिंगल नामक दो सर्प मेरे दोनों कानों मे हैं। कबल और धनजय नामक दो सर्प मेरी दोनों बाहों के बाजूबन्द हैं। (२५)

मेरे दाहिने हाथ में अश्वतर नाग और बाएँ हाथ मे तक्षक नाग कगन बने हैं। मेरे कटिप्रदेश मे नीलाजन के समान वर्णवाला नील नामक सर्प अवस्थित होकर सुशोभित हो रहा है। (२६)

पुलस्त्य ने कहा—महादेव के इस प्रकार कठोर तथा ओजस्वी एव सत्य होने पर भी असत्य प्रतीत हो रहे वचन को सुनकर सती अत्यन्त भयभीत हो गईं और स्वामी के निवासकष्ट के कारण क्रोध और लज्जा से गरम साँस छोड़कर भूमि की ओर देखती हुई कहने लगीं— (२७)

देवी ने कहा—'हे देवदेवेश! वृक्ष के मूल मे दु ख पूर्वक रहकर मेरा किस प्रकार वर्षाकाल बीतेगा? अत मैं (गृह निर्माण के लिये) कहती हूँ। (२८)

शकर ने कहा—हे देवि, मेघमडली के ऊपर शरीर स्थित कर तुम वर्षाऋतु बिता सकोगी, जिससे वृष्टि की जलधारा तुम्हारे शरीर पर नहीं गिरेगी।' (२९)

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर महादेव दक्ष कन्या सती के साथ उस उन्नत घनखड के ऊपर चढकर बैठ गये। अत तब से उनका नाम स्वर्ग में 'जीमूतकेतु' ऐसा विख्यात हुआ।' (३०)

श्रीवामनपुराण मे प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

२

पुलस्त्य उवाच ।

ततस्त्रिनेत्रस्य गतः प्रावृट्कालो घनोपरि ।
लोकानन्दकरी रम्या शरत् समभवन्मुने ॥ १

त्यजन्ति नीलाम्बुधरा नभस्तलं
वृक्षांश्च कङ्काः सरितस्तटानि ।
पद्माः सुगन्धं निलयानि वायसा
रुरुर्विषाणं कलुषं जलाशयाः ॥ २

विकासमायान्ति च पङ्कजानि
चन्द्रांशवो भान्ति लताः सुपुष्पाः ।
नन्दन्ति हृष्टान्यपि गोकुलानि
सन्तश्च संतोषमनुव्रजन्ति ॥ ३

सरस्सु पद्मा गगने च तारका
जलाशयेष्वेव तथा पयांसि ।
सतां च चित्तं हि दिशां मुखैः समं
वैमल्यमायान्ति शशाङ्ककान्तयः ॥ ४

एतादृशे हरः काले मेघपृष्ठाधिवासिनीम् ।
सतीमादाय शैलेन्द्रं मन्दरं समुपाययौ ॥५

ततो मन्दरपृष्ठेऽसौ स्थितः समशिलातले ।
रराम शंभुर्भगवान् सत्या सह महाद्युतिः ॥ ६

ततो व्यतीते शरदि प्रतिबुद्धे च केशवे ।
दक्षः प्रजापतिश्रेष्ठो यष्टुमारभत क्रतुम् ॥ ७

द्वादशैव स चादित्याञ् शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
सकश्यपान् समामन्त्र्य सदस्यान् समचीकरत् ॥ ८

अरुन्धत्या च सहितं वसिष्ठं शंसितव्रतम् ।
सहानसूययाऽत्रिं च सह धृत्या च कौशिकम् ॥ ९

अहल्यया गौतमं च भरद्वाजममायया ।
चन्द्रया सहितं ब्रह्मन्नृषिमङ्गिरसं तथा ॥ १०

आमन्त्र्य कृतवान्दक्षः सदस्यान् यज्ञसंसदि ।
विद्वान् गुणसंपन्नान् वेदवेदाङ्गपारगान् ॥ ११

धर्मं च स समाहूय भार्ययाऽहिंसया सह ।

२

पुलस्त्य ने कहा—तत्पश्चात् त्रिनेत्र महादेव का वर्षाकाल मेघों के ऊपर व्यतीत हो गया। तदुपरान्त हे मुने, लोकों की आनन्दकारिणी रमणीय शरद् प्रारंभ हुई। (१)

(शरदागम होने पर) नील मेघों ने आकाश का, बगुलों ने वृक्षों का और नदियों ने तट का त्याग कर दिया। कमल सुगन्ध छोड़ने लगे, काकों ने घोसलों का परित्याग कर दिया। रुरुमृगों के शृङ्ग गिर गए और जलाशय मलिनता से रहित हो गए। (२)

कमल विकसित होने लगे, शुभ्र ज्योत्स्ना प्रभासित होने लगी, लताएँ पुष्पित हो गयीं, गोकुल सुपुष्ट एवं आनंदित हो गए तथा सज्जन लोगों को सन्तोष की प्राप्ति हुई। (३)

जलाशयों में कमल, गगन में तारे, जलाशयों में जल दिशाओं के साथ-साथ सज्जनों का चित्त तथा चन्द्रमा की कान्ति विमल हो गई। (४)

ऐसे समय शंकर जी मेघ के ऊपर स्थित सती को लेकर श्रेष्ठ मन्दर पर्वत पर पहुँचे। (५)

तदनन्तर महाद्युतिमान् भगवान् शंकर मन्दराचल के ऊपर एक समतल शिला पर अवस्थित होकर सती के साथ रमण करने लगे। (६)

तदुपरान्त शरद्काल के बीतने पर तथा केशव (विष्णु) के जागृत होने पर प्रजापति-श्रेष्ठ दक्ष ने यज्ञ करना आरंभ किया। (७)

उन्होंने द्वादश आदित्यों तथा कश्यपादि (ऋषियों) के साथ इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओं को निमन्त्रित कर उन्हें यज्ञ का सदस्य बनाया। (८)

हे ब्रह्मन्, उन्होंने अरुन्धती के साथ प्रशस्तव्रतधारी वसिष्ठ को, अनसूया के साथ अत्रि को, धृति के साथ कौशिक को, अहल्या के साथ गौतम को, अमाया के साथ भरद्वाज को तथा चन्द्रा के साथ अङ्गिरा ऋषि को (यज्ञ में) निमन्त्रित किया। (९-१०)

इन गुणसम्पन्न वेदवेदाङ्गपारगामी विद्वान् ऋषियों को

निमन्त्र्य यज्ञवाटस्य द्वारपालत्वमादिशत् ॥ १२
अरिष्टनेमिनं चक्रे इध्माहरणकारिणम् ।
भृगुं च मन्त्रसंस्कारे सम्यग् दक्षः प्रयुक्तवान् ॥ १३
तथा चन्द्रमसं देवं रोहिण्या सहितं शुचिम् ।
धनानामाधिपत्ये च युक्तवान् हि प्रजापतिः ॥ १४
जामातृदुहितॄंश्चैव दौहित्रांश्च प्रजापतिः ।
सशंकरां सतीं मुक्त्वा मखे सर्वान् न्यमन्त्रयत् ॥ १५

नारद उवाच ।

किमर्थं लोकपतिना धनाध्यक्षो महेश्वरः ।
ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि न निमन्त्रितः ॥ १६

पुलस्त्य उवाच ।

ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि भगवाञ्छिवः ।
कपालीति विदित्वेशो दक्षेण न निमन्त्रितः ॥ १७

नारद उवाच ।

किमर्थं देवताश्रेष्ठः शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
कपाली भगवाञ्जातः कर्मणा केन शंकरः ॥ १८

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
प्रोक्तामादिपुराणे च ब्रह्मणाऽव्यक्तमूर्त्तिना ॥ १९
पुरा त्वेकार्णवं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
नष्टचन्द्रार्कनक्षत्रं प्रणष्टपवनानलम् ॥ २०
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं भावाभावविवर्जितम् ।
निमग्नपर्वततरु तमोभूतं सुदुर्दशम् ॥ २१
तस्मिन् स शेते भगवान् निद्रां वर्षसहस्रिकीम् ।
रात्र्यन्ते सृजते लोकान् राजसं रूपमास्थितः ॥ २२
राजसः पञ्चवदनो वेदवेदाङ्गपारगः ।
स्रष्टा चराचरस्यास्य जगतोऽद्भुतदर्शनः ॥ २३
तमोमयस्तथैवान्यः समुद्भूतस्त्रिलोचनः ।
शूलपाणिः कपर्दी च अक्षमालां च दर्शयन् ॥ २४
ततो महात्मा ह्यसृजदहकारं सुदारुणम् ।
येनाक्रान्तावुभौ देवौ तावेव ब्रह्मशंकरौ ॥ २५
अहंकारावृतो रुद्रः प्रत्युवाच पितामहम् ।

निमन्त्रित कर दक्ष ने उन्हें यज्ञ मे सदस्य बनाया। (११)

धर्म को उनकी पत्नी अहिंसा के साथ निमन्त्रित कर उन्हें यज्ञमण्डप या द्वारपाल बनाया। (१२)

दक्ष ने अरिष्टनेमि को समिधा लाने का कार्य दिया तथा भृगु को मन्त्रसंस्कार के कार्य मे भलीभाँति नियुक्त किया। (१३)

तथा प्रजापति दक्ष ने रोहिणी के साथ शुचि चन्द्रदेव को धनाधिपति के पद पर नियुक्त किया। (१४)

प्रजापति ने सती एव शङ्कर को छोड़कर अपने सभी जामाताओं, पुत्रियों एव दौहित्रों को यज्ञ मे आमन्त्रित किया। (१५)

नारद ने कहा—लोकपति दक्ष ने महेश्वर के ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ, आद्य एव धनाध्यक्ष होने पर भी उन्हें क्यों निमन्त्रित नहीं किया ? (१६)

पुलस्त्य ने कहा—"ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ तथा आद्य होते हुए भी भगवान् शिव को कपाली जान कर प्रजापति दक्ष ने उन्हें निमन्त्रित नही किया।" (१७)

"देवश्रेष्ठ नारद ने कहा—शूलपाणि त्रिलोचन भगवान् शंकर क्यों एव किस कर्म से कपाली बने" (१८)

पुलस्त्य ने कहा—

"आप सावधान होकर सुनें, मैं आदिपुराण में अव्यक्तमूर्ति ब्रह्मा जी द्वारा कही गई इस प्राचीन कथा को कहता हूँ।" (१९)

प्राचीन समय में समस्त स्थावरजङ्गमात्मक जगत् एकार्णव था। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, वायु एवं अग्नि तिरोहित थे। तत्कालीन जगत् की अवस्था अप्रतर्क्य, अविज्ञेय तथा भाव अभाव से रहित थी। सभी पर्वत एवं वृक्ष जल मे निमग्न थे तथा सम्पूर्ण जगत् तमोभूत एव दुर्दशाग्रस्त था। (२०-२१)

उस एकार्णव में भगवान् विष्णु सहस्र वर्षों की निद्रा में शयन करते हैं एव रात्रि के अंत में राजसिक रूप का आश्रय कर वे समस्त लोकों की सृष्टि करते हैं। (२२)

उनका राजस स्वरूप इस चराचरात्मक जगत् का स्रष्टा, अद्भुतदर्शन, पञ्चमुख एवं वेदवेदाङ्गपारङ्गत था। (२३)

उसी प्रकार एक अन्य पुरुष प्रादुर्भूत हुआ जो तमोमय, त्रिलोचन, शूलपाणि, कपर्दी तथा रुद्राक्षमालाधारी था (२४)

तदनन्तर परमात्मा ने अतिदारुण अहंकार की सृष्टि की जिससे ब्रह्मा तथा शंकर दोनों ही देवता आक्रान्त हुए। (२५)

को भवानिह संप्राप्तः केन सृष्टोऽसि मां वद ॥ २६
पितामहोऽप्यहंकारात् प्रत्युवाचाथ को भवान् ।
भवतो जनकः कोऽत्र जननी वा तदुच्यताम् ॥ २७
इत्यन्योन्यं पुरा ताभ्यां ब्रह्मेशाभ्यां कलिप्रिय ।
परिवादोऽभवत् तत्र उत्पत्तिर्भवतोऽभवत् ॥ २८
भवानप्यन्तरिक्षं हि जातमात्रस्तदोत्पतत् ।
धारयन्नतुलां वीणां कुर्वन् किलकिलाध्वनिम् ॥ २९
ततो विनिर्जितः शंभुर्मानिना पद्मयोनिना ।
तस्थावधोमुखो दीनो ग्रहाक्रान्तो यथा शशी ॥ ३०
पराजिते लोकपतौ देवेन परमेष्ठिना ।
क्रोधान्धकारितं रुद्रं पञ्चमोऽथ मुखोऽब्रवीत् ॥ ३१
अहं ते प्रतिजानामि तमोमूर्ते त्रिलोचन ।
दिग्वासा वृषभारूढो लोकक्षयकरो भवान् ॥ ३२
इत्युक्तः शंकरः क्रुद्धो वदनं घोरचक्षुषा ।
निर्दग्धुकामस्त्वनिशं ददर्श भगवानजः ॥ ३३
ततस्त्रिनेत्रस्य समुद्भवन्ति
वक्त्राणि पञ्चाथ सुदर्शनानि ।
श्वेतं च रक्तं कनकावदातं
नीलं तथा पिङ्गजटं च शुभ्रम् ॥ ३४
वक्त्राणि दृष्ट्वार्कसमानि सद्यः
पैतामहं वक्त्रमुवाच वाक्यम् ।
समाहतम्याथ जलस्य बुद्बुदा
भवन्ति किं तेषु पराक्रमोऽस्ति ॥ ३५
तच्छ्रुत्वा क्रोधयुक्तेन शंकरेण महात्मना ।
नखाग्रेण शिरश्छिन्नं ब्राह्मं परुषवादिनम् ॥ ३६
तच्छिन्नं शंकरस्यैव सव्ये करतलेऽपतत् ।
पतते न कदाचिच्च तच्छंकरकराच्छिरः ॥ ३७
अथ क्रोधावृतेनापि ब्रह्मणाऽद्भुतकर्मणा ।
सृष्टस्तु पुरुषो धीमान् कवची कुण्डली शरी ॥ ३८
धनुष्पाणिर्महाबाहुर्बाणशक्तिधरोऽव्ययः ।
चतुर्भुजो महातूणी आदित्यसमदर्शनः ॥ ३९
स प्राह गच्छ दुर्बुद्धे मा त्वां शूलिन् निपातये ।

अहङ्कारावृत शकर ने पितामह से कहा—"आप कौन यहाँ आये हैं ? मुझे बतलाओ कि किसने तुम्हारी सृष्टि की है ?" (२६)

पितामह ने भी अहकार से उत्तर दिया—"यह बताइये कि आप कौन हैं तथा आपके जनक एव जननी कौन हैं ?" (२७)

हे कलिप्रिय नारद, इस प्रकार प्राचीन काल मे ब्रह्मा और शकर के मध्य पारस्परिक विवाद हुआ। वहीं आपकी उत्पत्ति हुई थी। (२८)

और आप भी उत्पन्न होते ही अनुपम वीणा धारण किये किलकिल ध्वनि करते हुए ऊपर अन्तरिक्ष की ओर चले गये। (२९)

तदुपरान्त मानी पद्मयोनि (ब्रह्मा) द्वारा विजित होकर ग्रहाक्रान्त चन्द्रमा के सदृश दीन शकर अधोमुख होकर स्थित हुए। (३०)

परमेष्ठि देव (ब्रह्मा) के द्वारा लोकपति (शकर) के पराजित होने पर क्रोधान्धकारित रुद्र से (श्री ब्रह्मा जी के) पाँचवें मुख ने कहा— (३१)

हे तमोमूर्ति त्रिलोचन ! मैं आपको पहचानता हूँ कि आप दिगम्बर, वृषारोही एवं लोकसंहारक हैं। (३२)

ऐसा कहे जाने पर अजन्मा भगवान् शंकर ने भस्म करने की कामना से अपने भयङ्कर नेत्र द्वारा (ब्रह्मा के उस) मुख का निरन्तर अवलोकन किया। (३३)

तदनन्तर श्री शकर के श्वेत, रक्त, स्वर्णिम नील एव पिंगल वर्ण के सुन्दर पाँच मुख समुद्भूत हुए। (३४)

सूर्य सदृश सद्य (समुद्भूत) मुखों को देखकर पितामह के मुख ने कहा "समाहत जल में बुद्बुद् तो उत्पन्न होते हैं किन्तु क्या उनमे पराक्रम भी होता है ?" (३५)

यह सुनकर क्रोधयुक्त महात्मा शंकर ने नख के अग्र भाग से ब्रह्मा के परुषभाषी शिर को काट दिया। (३६)

वह कटा हुआ शिर शकर के ही वाम हथेली पर गिरा एव वह कपाल श्री शंकर के उस हथेली से किसी प्रकार भी नहीं गिरा। (३७)

तदनन्तर अद्भुतकर्मा क्रोधावृत ब्रह्मा ने भी कवच कुण्डल एवं शर धारण करने वाले, धनुर्धर, महाबाहु, बाणशक्तिधर, अव्यय, चतुर्भुज, महातूणीर युक्त, आदित्य के समान दिखलाई पड़ने वाले एक बुद्धिमान् पुरुष की सृष्टि की। (३८-३९)

उन्होंने कहा—"हे दुर्बुद्धि शूलधारी शकर, तुम चले

भवान् पापममायुक्तः पापिष्ठं को जिघांसति ॥ ४०
इत्युक्तः शंकरस्तेन पुरुषेण महात्मना ।
अपायुक्तो जगामाथ रुद्रो बदरिकाश्रमम् ॥ ४१
नरनारायणस्थानं पर्वते हि हिमाश्रये ।
सरस्वती यत्र पुण्या स्यन्दते सरितां वरा ॥ ४२
तत्र गत्वा च तं दृष्ट्वा नारायणमुवाच ह ।
भिक्षां प्रयच्छ भगवन् महाकापालिकोऽस्मि भोः ॥ ४३
इत्युक्तो धर्मपुत्रस्तु रुद्र वचनमब्रवीत् ।
सव्यं भुजं ताडयस्व त्रिशूलेन महेश्वर ॥ ४४
नारायणवचः श्रुत्वा त्रिशूलेन त्रिलोचनः ।
सव्यं नारायणभुजं ताडयामास वेगवान् ॥ ४५
त्रिशूलाभिहतान्मार्गात् तिस्रो धारा विनिर्ययुः ।
एका गगनमाक्रम्य स्थिता ताराभिमण्डिता ॥ ४६
द्वितीया न्यपतद् भूमौ तां जग्राह तपोधनः ।
अत्रिस्तस्मात् समुद्भूतो दुर्वासाः शंकरांशतः ॥ ४७
तृतीया न्यपतद् धारा कपाले रौद्रदर्शने ।
तस्माच्छिशुः समभवत् संनद्धकवचो युवा ॥ ४८

श्यामावदातः शरचापपाणि
गर्जन्यथा प्रावृषि तोयदोऽसौ ।
इत्थं ब्रुवन् कस्य विशातयामि
स्कन्धाच्छिरस् तालफलं यथैव ॥ ४९
तं शंकरोऽभ्येत्य वचो बभाषे
नरं हि नारायणबाहुजातम् ।
निपातयैनं नर दुष्टवाक्य
ब्रह्मात्मजं सूर्यशतप्रकाशम् ॥ ५०
इत्येवमुक्तः स तु शंकरेण
आद्यं धनुस्त्वाजगवं प्रसिद्धम् ।
जग्राह तूणानि तथाऽक्षयाणि
युद्धाय वीरः स मतिं चकार ॥ ५१
ततः प्रयुद्धौ सुभृशं महाबलौ
ब्रह्मात्मजो बाहुभवश्च शार्व. ।
दिव्यं सहस्र परिवत्सराणां
ततो हरोऽभ्येत्य विरञ्चिमूचे ॥ ५२
जितस्त्वदीयः पुरुषः पितामह

जाओ, मैं तुम्हें नहीं मारूँगा। तुम पापयुक्त हो, पापिष्ठ को कौन मारना चाहता है ? ४०

उस महापुरुष ने शकर से इस प्रकार कहा तब रुद्र लज्जित होकर बदरिकाश्रम को चले गए। (४१)

हिमालय पर्वत पर (वह बदरिकाश्रम) नर नारायण का स्थान है जहाँ नदियों में श्रेष्ठ पवित्र सरस्वती नदी प्रवाहित होती हैं। (४२)

वहाँ जाकर और उन नारायण को देखकर शकर ने कहा—"हे भगवन्! मैं महाकापालिक हूँ। आप मुझे भिक्षा दें। (४३)

ऐसा कहे जाने पर धर्मपुत्र (नारायण) ने रुद्र से कहा—"हे महेश्वर! तुम त्रिशूल के द्वारा मेरी बायीं भुजा को ताडित करो। (४४)

नारायण के वचन को सुन कर वेगवान् त्रिलोचन ने त्रिशूल से उनकी वाम भुजा को ताडित किया। (४५)

त्रिशूलाहत मार्ग से तीन धाराएँ निकलीं। एक धारा आकाश में जाकर ताराओं से अभिमण्डित हुई। दूसरी धारा पृथ्वी पर गिरी जिसे तपोधन अत्रि ने ग्रहण किया। उससे शङ्कर के अंश से दुर्वासा का प्रादुर्भाव हुआ। तृतीय धारा भयानक दिखाई पडने वाले कपाल पर गिरी जिससे एक शिशु उत्पन्न हुआ, वह (तत्काल) कवच बाँधे, श्यामवर्ण का, हाथों में धनुषबाण धारण किए एक युवक हो गया। वर्षा काल में जिस प्रकार मेघ गर्जन करते हैं उसी प्रकार वह (युवा पुरुष) यह कह रहा था "मैं तालफल के सदृश किसके स्कन्ध से शिर को काटूँ।" (४६–४९)

श्री नारायण के बाहु से उत्पन्न पुरुष के समीप जाकर श्रीशकर ने कहा—"हे नर! शत सूर्यसदृश प्रकाशमान कटु भाषी ब्रह्मा से उत्पन्न इस पुरुष को तुम मारो।" (५०)

शकर के ऐसा कहने पर उस वीर पुरुष ने प्रसिद्ध आद्य अजगव (नामक) धनुष एव अक्षय तूणीर ग्रहण कर युद्ध का निश्चय किया। (५१)

तदनन्तर ब्रह्मात्मज एव बाहुजात शकर पुरुष-दोनों महाबलवान् पुरुषों ने सहस्र दिव्य वर्षों तक प्रबल युद्ध किया। तत्पश्चात् श्रीशकर ने ब्रह्मा के पास जाकर कहा— (५२)

"हे पितामह! यह एक अद्भुत बात है कि दिव्य प

नरेण दिव्याद्भुतकर्मणा बली ।
महाप्रपत्कैरभिपत्य ताडित-
स्तदद्भुतं चेह दिशो दशैव ॥ ५३
ब्रह्मा तमीशं वचनं बभाषे
नेहास्य जन्मान्यजितस्य शंभो ।
पराजितश्चेष्यतेऽसौ त्वदीयो
नरो मदीयः पुरुषो महात्मा ॥ ५४
इत्येवमुक्तो वचनं त्रिनेत्रश्-
चिक्षेप सूर्ये पुरुषं विरिञ्चेः ।
नरं नरस्यैव तदा स विग्रहे
चिक्षेप धर्मप्रभवस्य देवः ॥ ५५

इति श्रीवामनपुराणे द्वितीयोऽध्याय ॥२॥

३

पुलस्त्य उवाच ।
ततः करतले रुद्रः कपाले दारुणे स्थिते ।
संतापमगमद् ब्रह्मंश्चिन्तया व्याकुलेन्द्रियः ॥ १
ततः समागता रौद्रा नीलाञ्जनचयप्रभा ।
संरक्तमूर्द्धजा भीमा ब्रह्महत्या हरान्तिकम् ॥ २
तामागतां हरो दृष्ट्वा पप्रच्छ विकरालिनीम् ।
काऽसि त्वमागता रौद्रे केनाप्यर्थेन तद्वद ॥ ३
कपालिनमथोवाच ब्रह्महत्या सुदारुणा ।
ब्रह्मवध्याऽस्मि संप्राप्ता मां प्रतीच्छ त्रिलोचन ॥ ४
इत्येवमुक्त्वा वचनं ब्रह्महत्या विवेश ह ।
त्रिशूलपाणिनं रुद्रं संप्रतापितविग्रहम् ॥ ५
ब्रह्महत्याभिभूतश्च शर्वो बदरिकाश्रमम् ।
आगच्छन्न ददर्शाथ नरनारायणावृषी ॥ ६
अदृष्ट्वा धर्मतनयौ चिन्ताशोकसमन्वितः ।
जगाम यमुनां स्नातुं साऽपि शुष्कजलाऽभवत् ॥ ७
कालिन्दीं शुष्कसलिलां निरीक्ष्य वृषकेतनः ।

अद्भुत कर्म वाले नर ने दसों दिशाओं में व्याप्त महान् बाणों के प्रहार से ताडित कर आपके पुरुष को जीत लिया।" (५३)

ब्रह्मा ने उस ईश से कहा कि—इस अजित का जन्म यहाँ दूसरों से हारने के लिये नहीं हुआ है। यदि किसी को पराजित कहा जाना अभीष्ट है तो यह मेरा ही नर है। मेरा पुरुष तो महाबली है। (५४)

ऐसा कहे जाने पर श्रीशंकर जी ने विरिञ्चि के पुरुष को सूर्यमण्डल मे फेंका तथा उन्हीं शंकर ने उस नर को धर्म पुत्र नर के शरीर म फेंक दिया। (५५)

श्री वामन पुराण में द्वितीय अध्याय समाप्त ॥२॥

३

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन्! तदनन्तर करतल में दारुण कपाल के सस्थित रहने पर रुद्र चिन्ता के कारण व्याकुलेन्द्रिय होने से सन्तप्त हुए। (१)

तदुपरान्त नीलाञ्जन समूह के समान कान्तिवाली, रक्त केशवाली, रौद्र एवं भयंकर ब्रह्महत्या महादेव के निकट आई। (२)

उस विकराल मूर्ति को आयी देख कर श्री शंकर ने पूछा—"हे रौद्रे, यह बतलाओ कि तुम कौन हो एवं किस लिये आयी हो? (३)

तब उस अत्यन्त दारुण ब्रह्महत्या ने कपाली से कहा—"मैं ब्रह्महत्या यहाँ आयी हूँ। हे त्रिलोचन! आप मुझे स्वीकार करें।" (४)

ऐसा कह कर ब्रह्महत्या सन्तप्त शरीरवाले त्रिशूलपाणि रुद्र में प्रविष्ट हुई। (५)

ब्रह्महत्या से अभिभूत श्री शंकर बदरिकाश्रम मे आए, किन्तु वहाँ नर एव नारायण ऋषियों को नहीं देखा। (६)

धर्मतनय ऋषिद्वय को न देखकर चिन्ता और शोक से युक्त वे यमुना में स्नान करने गए, किन्तु उसका भी जल सूख गया। (७)

कालिन्दी नदी को शुष्कसलिला हुई देख कर वृषकेतन

प्लक्षना स्नातुमगमदन्तर्द्धानं च सा गता ॥ ८
ततोनु पुष्करारण्यं मागधारण्यमेव च ।
सैन्धवारण्यमेवासौ गत्वा स्नातो यथेच्छया ॥ ९
तथैव नैमिषारण्यं धर्मारण्यं तथेश्वरः ।
स्नातो नैव च सा रौद्रा ब्रह्महत्या व्यमुञ्चत ॥ १०
सरित्सु तीर्थेषु तथाश्रमेषु
पुण्येषु देवायतनेषु शर्वः ।
समायुतो योगयुतोऽपि पापा
न्नावाप मोक्षं जलदध्वजोऽसौ ॥ ११
ततो जगाम निर्विण्णः शंकरः कुरुजाङ्गलम् ।
तत्र गत्वा ददर्शाथ चक्रपाणिं खगध्वजम् ॥ १२
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हरः स्तोत्रमुदीरयत् ॥ १३
हर उवाच ।
नमस्ते देवतानाथ नमस्ते गरुडध्वज ।
शङ्खचक्रगदापाणे वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥ १४
नमस्ते निर्गुणानन्त अप्रतर्क्याय वेधसे ।
ज्ञानाज्ञान निरालम्ब सर्वालम्ब नमोऽस्तु ते ॥ १५
रजोयुक्त नमस्तेऽस्तु ब्रह्ममूर्ते सनातन ।
त्वया सर्वमिदं नाथ जगत्सृष्टं चराचरम् ॥ १६
सत्त्वाधिष्ठित लोकेश विष्णुमूर्ते अधोक्षज ।
प्रजापाल महाबाहो जनार्दन नमोऽस्तु ते ॥ १७
तमोमूर्ते अहं ह्येष त्वदंशक्रोधसंभवः ।
गुणाभियुक्त देवेश सर्वव्यापिन् नमोऽस्तु ते ॥ १८
भूरियं त्वं जगन्नाथ जलाम्बरहुताशनः ।
वायुर्बुद्धिर्मनश्चापि शर्वरी त्वं नमोऽस्तु ते ॥ १९
धर्मो यज्ञस्तपः सत्यमहिंसा शौचमार्जवम् ।
क्षमा दानं दया लक्ष्मीर्ब्रह्मचर्यं त्वमीश्वर ॥ २०
त्वं साङ्गाश्चतुरो वेदास्त्वं वेद्यो वेदपारगः ।
उपवेदा भवानीश सर्वोऽसि त्वं नमोऽस्तु ते ॥ २१
नमो नमस्तेऽच्युत चक्रपाणे
नमोऽस्तु ते माधव मीनमूर्ते ।
लोके भवान् कारुणिको मतो मे
त्रायस्व मां केशव पापबन्धात् ॥ २२

(शंकर) प्लक्षजा (सरस्वती) नदी में स्नान करने गए। किंतु वह भी अन्तर्द्धान हो गई। (८)

तदुपरान्त पुष्करारण्य, मगधारण्य और सैन्धवारण्य में जाकर उन्होंने इच्छानुसार स्नान किया। (९)

इसी प्रकार शंकर ने नैमिषारण्य तथा धर्मारण्य में भी जाकर स्नान किया किन्तु उस भयंकर ब्रह्महत्या ने उन्हें नहीं छोड़ा। (१०)

जलदध्वज शंकर ने अनेक नदियों, तीर्थों, आश्रमों एवं पवित्र देवायतनों की यात्रा की तथापि योगी होने पर भी वे पाप से मुक्ति न प्राप्त कर सके। (११)

तदनन्तर खिन्न शंकर जी कुरुजाङ्गल में गये। वहाँ जाकर उन्होंने गरुडध्वज चक्रपाणि (विष्णु) को देखा। (१२)

उन शंख-चक्र-गदाधारी पुण्डरीकाक्ष (श्री नारायण) का दर्शन कर शंकर हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। (१३)

हर ने कहा—"हे देवताओं के नाथ! आपको नमस्कार है, हे गरुडध्वज! आपको प्रणाम है, हे शंखचक्रगदाधारी वासुदेव! आपको नमस्कार है।" (१४)

"हे निर्गुण, अनन्त, अप्रतर्क्य, विधाता! आपको नमस्कार है। हे ज्ञानाज्ञानस्वरूप, निरालम्ब एवं सर्वालम्ब! आपको नमस्कार है।" (१५)

हे रजोयुक्त, हे सनातन, हे ब्रह्ममूर्ति! आपको नमस्कार है। हे नाथ, आप ने इस सम्पूर्ण चराचर जगत् की सृष्टि की है। (१६)

हे सत्त्वगुण के आश्रय, हे लोकेश! हे विष्णुमूर्ति, हे अधोक्षज!, हे प्रजापालक, हे महाबाहु!, हे जनार्दन! आपको नमस्कार है। (१७)

हे तमोमूर्ति! मैं आपके अंशभूत क्रोध से उत्पन्न हूँ। हे गुणाभियुक्त सर्वव्यापी देवेश! आपको नमस्कार है। (१८)

हे जगन्नाथ! आप ही पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु, बुद्धि, मन एवं रात्रि हैं, आप को नमस्कार है। (१९)

हे ईश्वर! आप ही धर्म, यज्ञ, तपस्या, सत्य, अहिंसा, पवित्रता, सरलता, क्षमा, दान, दया, लक्ष्मी एवं ब्रह्मचर्य हैं। (२०)

हे ईश! आप अङ्गों सहित चतुर्वेदस्वरूप, वेद्य एवं वेदपारगामी हैं। आप ही उपवेद तथा सभी कुछ आप ही हैं। आपको नमस्कार है। (२१)

ममाशुभं नाशय विग्रहस्थं
यद् ब्रह्महत्याऽभिभवं बभूव ।
दग्धोऽस्मि नष्टोऽस्म्यसमीक्ष्यकारी
पुनीहि तीर्थोऽसि नमो नमस्ते ॥२३

पुलस्त्य उवाच ।

इत्थं स्तुतश्चक्रधरः शंकरेण महात्मना ।
प्रोवाच भगवान् वाक्यं ब्रह्महत्याक्षयाय हि ॥ २४

हरिरुवाच ।

महेश्वर शृणुष्वेमां मम वाच कलस्वनाम् ।
ब्रह्महत्याक्षयकरीं शुभदां पुण्यवर्धनीम् ॥ २५
योऽसौ प्राङ्मण्डले पुण्ये मदंशप्रभवोऽव्ययः ।
प्रयागे वसते नित्यं योगशायीति विश्रुतः ॥ २६
चरणाद् दक्षिणात्तस्य विनिर्याता सरिद्वरा ।
विश्रुता वरणेत्येव सर्वपापहरा शुभा ॥ २७
सव्यादन्या द्वितीया च असिरित्येव विश्रुता ।
ते उभे तु सरिच्छ्रेष्ठे लोकपूज्ये बभूवतुः ॥ २८

ताभ्यां मध्ये तु यो देशस्तत्क्षेत्रं योगशायिनः ।
त्रैलोक्यप्रवरं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम् ।
न तादृशोऽस्ति गगने न भूम्यां न रसातले ॥ २९
तत्रास्ति नगरी पुण्या ख्याता वाराणसी शुभा ।
यस्यां हि भोगिनोऽपीश प्रयान्ति भवतो लयम् ॥ ३०

विलासिनीनां रशनास्वनेन
श्रुतिस्वनैर्ब्राह्मणपुंगवानाम् ।
शुचिस्वरत्वं गुरवो निशम्य
हास्यादशासन्त मुहुर्मुहुस्तान् ॥ ३१
व्रजत्सु योषित्सु चतुष्पथेषु
पदान्यलक्तारुणितानि दृष्ट्वा ।
ययौ शशी विस्मयमेव यस्या
किंस्वित् प्रयाता स्थलपद्मिनीयम् ॥ ३२
तुङ्गानि यस्यां सुरमन्दिराणि
रुन्धन्ति चन्द्रं रजनीमुखेषु ।
दिवाऽपि सूर्यं पवनाप्लुताभि-

हे अच्युत ! हे चक्रपाणि ! आपको बारंबार नमस्कार है। हे मीनमूर्तिधारी माधव ! आपको नमस्कार है। मैं आपको लोक में दयालु मानता हूँ। हे केशव ! मुझे आप पाप-बन्धन से मुक्त करें। (२२)

मेरे शरीर में स्थित ब्रह्महत्या जन्य अशुभ को आप नष्ट करें। विना विचार किये कार्य करने वाला मैं दग्ध एवं नष्ट हो गया हूँ। आप तीर्थ हैं। अतः आप मुझे पवित्र करें। आपको बारंबार नमस्कार है। (२३)

पुलस्त्य ने कहा—महात्मा शङ्कर द्वारा इस प्रकार स्तुति की जाने पर चक्रधर (भगवान् विष्णु) ने ब्रह्महत्या के क्षय के हेतु कहा— (२४)

हरि ने कहा—"हे महेश्वर ! आप श्रुतिमधुर, ब्रह्महत्या क्षयकारी, शुभप्रद एवं पुण्य को बढ़ाने वाली मेरी बात सुनें। (२५)

पवित्र प्राङ्मण्डलान्तर्गत प्रयाग मे मेरे अंश से उत्पन्न योगशायी नाम से प्रसिद्ध अव्यय पुरुष नित्य निवास करते हैं। (२६)

उनके दक्षिण चरण से वरणा नाम से विश्रुत श्रेष्ठ नदी निकली है वह सर्वपापहारिणी तथा पवित्र है। (२७)

एवं उनके वाम (पाद) से असि नाम से प्रसिद्ध एक दूसरी नदी निकली है। ये दोनों श्रेष्ठ नदियाँ लोकपूज्य हुई हैं। (२८)

उन दोनों के मध्य का प्रदेश योगशायी का क्षेत्र है वह त्रैलोक्य मे सर्वश्रेष्ठ तथा सभी पापों से मुक्त करनेवाला तीर्थ है। उसके सदृश अन्य कोई तीर्थ आकाश, पृथ्वी एवं रसातल मे नहीं है। (२९)

हे ईश ! वहाँ पवित्र शुभप्रद विख्यात वाराणसी नगरी है जिसमे भोगी लोग भी आप के स्थान को प्राप्त करते हैं। (३०)

श्रेष्ठ ब्राह्मणों की वेदध्वनि विलासिनियों की रशनाध्वनि से मिश्रित होकर कल्याणप्रद स्वर का रूप धारण करती है। इस ध्वनि को सुन कर गुरुजन बारंबार हास्यपूर्वक उनका शासन करते हैं। (३१)

चतुष्पथों पर भ्रमण करने वाली स्त्रियों के अलक्त से अरुणित पदों को देख कर चन्द्रमा को यह विस्मय हो गया कि क्या स्थल कमलिनी इस मार्ग से गई है। (३२)

जिसमें रात्रि का आरंभ होने पर ऊँचे-ऊँचे देवमन्दिर चन्द्रमा का अवरोध करते हैं एवं दिन में पवनान्दोलित दीर्घ पताकाओं से सूर्य को तिरोहित किया करते हैं। (३३)

दीर्घाभिरेवं सुपताकिकाभिः ॥ ३३
भृङ्गाश्च यस्यां शशिकान्तभित्तौ
प्रलोभ्यमानाः प्रतिबिम्बितेषु ।
आलेख्ययोषिद्विमलाननाब्जे-
ष्वीयुर्भ्रमान्नैव च पुष्पकान्तरम् ॥ ३४
परिश्रमश्चापि पराजितेषु
नरेषु संमोहनखेलनेन ।
यस्यां जलक्रीडनसंगतासु
न स्त्रीषु शंभो गृहदीर्घिकासु ॥ ३५
न चैव कश्चित् परमन्दिराणि
रुणद्धि शंभो सहसा ऋतेऽक्षान् ।
न चाबलानां तरसा पराक्रमं
करोति यस्यां सुरतं हि मुक्त्वा ॥ ३६
पाशग्रन्थिर्गजेन्द्राणां दानच्छेदो मदच्युतौ ।
यस्यां मानमदौ पुंसां करिणां यौवनागमे ॥ ३७
प्रियदोषाः सदा यस्यां कौशिका नेतरे जनाः ।
तारागणेऽकुलीनत्वं गद्ये वृत्तच्युतिर्विभो ॥ ३८
भूतिलुब्धा विलासिन्यो भुजंगपरिवारिताः ।
चन्द्रभूषितदेहाश्च यस्यां त्वमिव शंकर ॥ ३९
ईदृशायां सुरेशान वाराणस्यां महाश्रमे ।
वसते भगवाँल्लोलः सर्वपापहरो रविः ॥ ४०
दशाश्वमेधं यत्रोक्तं मदंशो यत्र केशवः ।
तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठ पापमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ४१
इत्येवमुक्तो गरुडध्वजेन
वृषध्वजस्तं शिरसा प्रणम्य ।
जगाम वेगाद् गरुडो यथाऽसौ
वाराणसीं पापविमोचनाय ॥ ४२
गत्वा सुपुण्यां नगरीं सुतीर्थां
दृष्ट्वा च लोलं सदशाश्वमेधम् ।
स्नात्वा च तीर्थेषु विमुक्तपापः
स केशवं द्रष्टुमुपाजगाम ॥ ४३
केशवं शंकरो दृष्ट्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत् ।
त्वत्प्रसादाद् हृषीकेश ब्रह्महत्या क्षयं गता ॥ ४४

जिस (वाराणसी) मे चित्र मे निर्मित स्त्रियों के विमल मुख कमलों को चन्द्रकान्त मणि की भित्तियों पर प्रतिबिम्बित देखकर भ्रमवश उनपर लुब्ध भ्रमर दूसरे पुष्पों की ओर नहीं जाते। (३४)

और हे शम्भो ! जिस (वाराणसी) में समोहन खेलों से पराजित पुरुषों मे तथा गृह की बावलियों में जलक्रीड़ा के लिए एकत्र हुई स्त्रियों में ही परिश्रम होता है, अन्यत्र नहीं। (३५)

जहाँ पासों के अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरे के घरों को सहसा नहीं रोकता तथा सुरत काल के अतिरिक्त कोई स्त्रियों के साथ आवेगयुक्त पराक्रम नहीं करता। (३६)

जहाँ हाथियों के बन्धन में ही पाशग्रन्थि, उनकी मदच्युति में ही दानच्छेद एवं नर हाथियों के यौवनागम मे ही मान और मद होते हैं (अन्यत्र नहीं)। (३७)

हे विभो ! जहाँ उलूकही सदा दोषा (रात्रि) प्रिय होते हैं अन्य लोग दोषोंके प्रेमी नहीं हैं। तारागणों मे ही अकुलीनत्व (पृथ्वी में न छिपना) है लोगों मे अकुलीनता नहीं, गद्य में ही वृत्तच्युति (छन्दोभङ्ग) है अन्यत्र वृत्त (चरित्र) च्युति नहीं है। (३८)

हे शंकर ! जहाँ की विलासिनियाँ आप के सदृश 'भूतिलुब्धा' 'भुजंगपरिवारिता' एवं 'चन्द्रभूषितदेहा' होती हैं। (यहाँ 'भूति' पद 'भस्म' और 'धन' के अर्थ में 'भुजङ्ग' पद 'सर्प' एवं 'जार' के अर्थ में तथा 'चन्द्र' पद 'चन्द्राभूषण' के अर्थ मे प्रयुक्त है।) (३९)

हे सुरेशान ! इस प्रकार की वाराणसी के महान् आश्रम में सर्वपापहारी भगवान् लोल रवि निवास करते हैं। (४०)

हे सुरश्रेष्ठ ! जहाँ दशाश्वमेध कहे जाने वाले स्थान पर, जहाँ मेरे अंशस्वरूप केशव स्थित हैं, जाकर आप पाप से छुटकारा प्राप्त करेंगे। (४१)

गरुडध्वज के ऐसा कहने पर वृषध्वज उन्हें शिर से प्रणाम कर पापविमोचनार्थ गरुड के सदृश वेग से वाराणसी गए। (४२)

उस परमपवित्र तथा तीर्थभूत नगरी में जाकर दशाश्वमेध के साथ भगवान् लोल का दर्शन किया तथा (वहाँ के) तीर्थों मे स्नान कर तथा पापमुक्त हो कर (उसके बाद) वे केशव का दर्शन करने गये। (४३)

शंकर ने केशव को देख कर प्रणाम करने के उपरान्त

नेदं कपालं देवेश मद्धस्तं परिमुञ्चति।
कारणं वेद्मि न च तदेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥ ४५

पुलस्त्य उवाच।

महादेववचः श्रुत्वा केशवो वाक्यमब्रवीत्।
निमित्ते कारणं रुद्र तत्सर्वं कथयामि ते ॥ ४६
योऽसौ ममाग्रतो दिव्यो ह्रदः पद्मोत्पलैर्युतः।
एष तीर्थवरः पुण्यो देवगन्धर्वपूजितः ॥ ४७
एतस्मिन्प्रवरे तीर्थे स्नानं शंभो समाचर।
स्नातमात्रस्य चाद्यैव कपालं परिमोक्ष्यति ॥ ४८
ततः कपाली लोके च ख्यातो रुद्र भविष्यसि।
कपालमोचनेत्येवं तीर्थं चेदं भविष्यति ॥ ४९

पुलस्त्य उवाच।

एवमुक्तः सुरेशेन केशवेन महेश्वरः।
कपालमोचने सस्नौ वेदोक्तविधिना मुने ॥ ५०
स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य
परिच्युतं हस्ततलात् कपालम्।
नाम्ना बभूवाथ कपालमोचनं
तत्तीर्थवर्यं भगवत्प्रसादात् ॥ ५१

इति श्रीवामनपुराणे तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

४

पुलस्त्य उवाच।

एवं कपाली संजातो देवर्षे भगवान्हरः।
अनेन कारणेनासौ दक्षेण न निमन्त्रितः ॥ १
कपालिजायेति सतीं विज्ञायाथ प्रजापतिः।
यज्ञे चाहूतापि दुहिता दक्षेण न निमन्त्रिता ॥ २
एतस्मिन्नन्तरे देवीं द्रष्टुं गौतमनन्दिनी।
जया जगाम शैलेन्द्रं मन्दरं चारुकन्दरम् ॥ ३
तामागतां सती दृष्ट्वा जयामेकामुवाच ह।

यह कहा—हे हृषीकेश! आपके प्रसाद से ब्रह्महत्या नष्ट हो गयी। (४४)

(किन्तु) हे देवेश, यह कपाल मेरे हाथ को नहीं छोड़ रहा है। उसका कारण मैं नहीं जानता। आप ही मुझे यह बतला सकते हैं। (४५)

पुलस्त्य ने कहा—महादेव का वचन सुन कर केशव ने यह वाक्य कहा—"हे रुद्र! इसके समस्त कारणों को मैं तुम्हें बतलाता हूँ। (४६)

मेरे सामने जो कमलों से युक्त यह दिव्य ह्रद है वह पवित्र तथा तीर्थश्रेष्ठ है एवं देवताओं तथा गन्धर्वों से पूजित है। (४७)

हे शम्भु! तुम इस परम श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करो। स्नान करने मात्र से आज ही यह कपाल (आप के हाथ को) छोड़ देगा। (४८)

इससे हे रुद्र! संसार में तुम 'कपाली' नाम से प्रसिद्ध होगे तथा यह तीर्थ भी कपालमोचन नाम से प्रख्यात होगा। (४९)

पुलस्त्य ने कहा—हे मुने! सुरेश्वर केशव के ऐसा कहने पर महेश्वर ने कपालमोचन तीर्थ में वेदोक्तविधि से स्नान किया। (५०)

तीर्थ में स्नान करते ही त्रिपुरान्तक के करतल से कपाल गिर गया। तदुपरान्त भगवान् की कृपा से उस तीर्थश्रेष्ठ का नाम कपालमोचन पड़ा। (५१)

श्री वामनपुराण म तृतीय अध्याय समाप्त ॥३॥

४

पुलस्त्य ने कहा—हे देवर्षे! इस प्रकार भगवान् हर कपाली हुए थे। इसी कारण वे दक्ष के द्वारा निमन्त्रित नहीं हुए। (१)

प्रजापति दक्ष ने सती को कपाली की भार्या समझ कर योग्य तथा अपनी कन्या होने पर भी यज्ञ में निमन्त्रित नहीं किया। (२)

इसी बीच देवी का दर्शन करने के लिये गौतम नन्दिनी जया सुन्दर कन्दरा वाले पर्वत श्रेष्ठ मन्दर पर गई। (३)

उस जया को अकेली आई देख कर सती ने कहा—

किमर्थं विजया नागाज्जयन्ती चापराजिता ॥ ४
सा देव्या वचनं श्रुत्वा उवाच परमेश्वरीम् ।
गता निमन्त्रिताः सर्वा मखे मातामहस्य वः ॥ ५
समं पित्रा गौतमेन मात्रा चैवाप्यहल्यया ।
अहं समागता द्रष्टुं त्वां तत्र गमनोत्सुका ॥ ६
किं त्वं न व्रजसे तत्र तथा देवो महेश्वरः ।
नामन्त्रिताऽसि तातेन उताहोस्विद् व्रजिष्यसि ॥ ७
गतास्तु ऋषयः सर्वे ऋषिपत्न्यः सुरास्तथा ।
मातृष्वसः शशाङ्कश्च सपत्नीको गतः क्रतुम् ॥ ८
चतुर्दशसु लोकेषु जन्तवो ये चराचराः ।
निमन्त्रिताः क्रतौ सर्वे किं नासि त्वं निमन्त्रिता ॥ ९

पुलस्त्य उवाच ।

जयायास्तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातसमं सती ।
मन्युनाऽभिप्लुता ब्रह्मन् पञ्चत्वमगमत् ततः ॥१०
जया मृतां सतीं दृष्ट्वा क्रोधशोकपरिप्लुता ।
मुञ्चती वारि नेत्राभ्यां सस्वरं विललाप ह ॥ ११
आक्रन्दितध्वनिं श्रुत्वा शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
आः किमेतदितीत्युक्त्वा जयाभ्याशमुपागतः ॥ १२
आगतो ददृशे देवीं लतामिव वनस्पतेः ।
कृत्तां परशुना भूमौ श्लथाङ्गीं पतितां सतीम् ॥ १३
देवीं निपतितां दृष्ट्वा जयां पप्रच्छ शंकरः ।
किमियं पतिता भूमौ निकृत्तेव लता सती ॥ १४
सा शंकरवचः श्रुत्वा जया वचनमब्रवीत् ।
श्रुत्वा मखस्थां दक्षस्य भगिन्यः पतिभिः सह ॥ १५
आदित्याद्यास्त्रिलोकेश समं शक्रादिभिः सुरैः ।
मातृष्वसा विपन्नेयमन्तर्दुःखेन दह्यती ॥ १६

पुलस्त्य उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचो रौद्रं रुद्रः क्रोधाप्लुतो बभौ ।
क्रुद्धस्य सर्वगात्रेभ्यो निश्चेरुः सहसार्चिषः ॥ १७
ततः क्रोधात् त्रिनेत्रस्य गात्ररोमोद्भवा मुने ।
गणाः सिंहमुखा जाता वीरभद्रपुरोगमाः ॥ १८
गणैः परिवृतस्तस्मान्मन्दराद्धिमसाह्वयम् ।

"विजया, जयन्ती और अपराजिता क्यों नहीं आयी ?" (४)

देवी के वचन को सुन कर उन्होंने परमेश्वरी से कहा—पिता गौतम और माता अहल्या के साथ वे सब मातामह के यज्ञ मे निमन्त्रित होकर गयी हैं। वहाँ जाने के लिये उत्सुक मैं आप को देखने आयी हूँ। (५ ६)

क्या आप तथा महेश्वर वहाँ नहीं जा रहे हैं ? क्या पिता ने आपको निमन्त्रित नहीं किया है ? अथवा आप वहाँ जायेंगी ? (७)

सभी ऋषि, ऋषिपत्नियाँ तथा देवगण वहाँ गये हैं। हे मातृष्वसे (मौसी)! सपत्नीक शशाङ्क भी उस यज्ञ में गये हैं। (८)

चौदहों लोकों के समस्त चराचर जन्तु उस यज्ञ में निमन्त्रित हुए हैं। क्या आप निमन्त्रित नहीं हैं ? (९)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जया के वज्रपात-सदृश उस वचन को सुन कर क्रोधाभिप्लुत सती पञ्चत्व को प्राप्त हो गईं। (१०)

सती को मृत देखकर क्रोध और शोक से परिप्लुत जया नेत्रों से आँसू बहाते हुए सस्वर विलाप करने लगी। (११)

रोने की ध्वनि सुनकर शूलपाणि त्रिलोचन "अरे यह क्या है" ऐसा कह कर जया के पास गए। (१२)

वहाँ पहुँचकर उन्होंने परशु से काटी हुई वृक्ष की लता के सदृश शिथिलाङ्गी सती को भूमि पर पड़ी हुई देखा। (१३)

भूमि पर पड़ी हुई देवी को देख कर शंकर ने जया से पूछा—"सती छिन्न लता की तरह भूमि पर क्यों पड़ी हुई है।" (१४)

शंकर के वचन को सुन कर उस जया ने कहा "हे त्रिलोकेश ! दक्ष के यज्ञ में अपने पतियों के साथ बहनों का एवं इन्द्रादि देवों के साथ आदित्यादि का उपस्थित होना सुनकर आन्तरिक दुःख से दग्ध होती हुई यह (मेरी) मौसी विपन्न हो गई। (१५ १६)

पुलस्त्य ने कहा—इस भयंकर वचन को सुनकर रुद्र अत्यन्त क्रोधान्वित हो गए। क्रुद्ध (शंकर) के शरीर से सहसा ज्वालायें निकलने लगीं। (१७)

तदनन्तर हे मुने ! क्रोध के कारण त्रिनेत्र के शरीर के रोमों से सिंह के सदृश मुखवाले गण उत्पन्न हुए जिनमें वीरभद्र प्रमुख थे। तब अपने गणों से परिवेष्टित होकर वे

गतः कनखलं तस्माद् यत्र दक्षोऽयजत् क्रतुम् ॥ १९
ततो गणानामधिपो वीरभद्रो महानलः।
दिशि प्रतीच्युत्तरायां तस्थौ शूलधरो मुने ॥ २०
जया क्रोधाद् गदां गृह्य पूर्वदक्षिणतः स्थिता।
मध्ये त्रिशूलधृक् शर्वस्तस्थौ क्रोधान्महामुने ॥ २१
मृगारिवदनं दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः।
ऋषयो यक्षगन्धर्वाः किमिदं त्वित्यचिन्तयन् ॥ २२
ततस्तु धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान्।
द्वारपालस्तदा धर्मो वीरभद्रमुपाद्रवत् ॥ २३
तमापतन्तं सहसा धर्मं दृष्ट्वा गणेश्वरः।
करेणैकेन जग्राह त्रिशूलं वह्निसन्निभम् ॥ २४
कार्मुकं च द्वितीयेन तृतीयेनाथ मार्गणान्।
चतुर्थेन गदां गृह्य धर्ममभ्यद्रवद् गणः ॥ २५
ततश्चतुर्भुजं दृष्ट्वा धर्मराजो गणेश्वरम्।
तस्थावष्टभुजो भूत्वा नानायुधधरोऽव्ययः ॥ २६
खड्गचर्मगदाप्रासपरश्वधवराङ्कुशैः।
चापमार्गणभृत्तस्थौ हन्तुकामो गणेश्वरम् ॥ २७
गणेश्वरोऽपि संक्रुद्धो हन्तुं धर्मं सनातनम्।
ववर्ष मार्गणांस्तीक्ष्णान् यथा प्रावृषि तोयदः ॥ २८
तावन्योन्यं महात्मानौ शरचापधरौ मुने।
रुधिरारुणसिक्ताङ्गौ किंशुकाविव रेजतुः ॥ २९
ततो वरास्त्रैर्गणनायकेन
जितः स धर्मः तरसा प्रसह्य।
पराङ्मुखोऽभूद्विमना मुनीन्द्र
स वीरभद्रः प्रविवेश यज्ञम् ॥ ३०
यज्ञवाटं प्रविष्टं त वीरभद्रं गणेश्वरम्।
दृष्ट्वा तु सहसा देवा उत्तस्थुः सायुधा मुने ॥ ३१
वसवोऽष्टौ महाभागा ग्रहा नव सुदारुणाः।
इन्द्राद्या द्वादशादित्या रुद्रास्त्वेकादशैव हि ॥ ३२
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च सिद्धगन्धर्वपन्नगाः।
यक्षाः किंपुरुषाश्चैव खगाश्चक्रधरास्तथा ॥ ३३
राजा वैवस्वताद्वंशाद् धर्मकीर्तिस्तु विश्रुतः।

मन्दर पर्वत से हिमालय पर गये और वहाँ से कनखल गए जहाँ दक्ष यज्ञ कर रहे थे। (१८-१९)

हे मुने! तदनन्तर गणाधिप महाबली वीरभद्र शूल धारण किये पश्चिमोत्तर दिशा में स्थित हुए। (२०)

हे महामुने! क्रोध से गदा लेकर जया पूर्वदक्षिण दिशा में खड़ी हो गई और मध्य में क्रोधित त्रिशूलधारी शंकर स्थित हुए। (२१)

सिंहवदन (वीरभद्र) को देखकर इन्द्रादि देवता, ऋषि, यक्ष एवं गन्धर्व लोग सोचने लगे कि यह क्या है? (२२)

तदनन्तर द्वारपाल धर्म धनुष एवं सर्प के समान बाणों को लेकर वीरभद्र की ओर दौड़े। (२३)

सहसा धर्म को आता हुआ देखकर गणेश्वर एक हाथ में अग्नि के सदृश त्रिशूल, दूसरे हाथ में धनुष, तीसरे हाथ में बाण और चतुर्थ हाथ में गदा लेकर उनकी ओर दौड़े। (२४-२५)

तदुपरान्त अव्यय धर्मराज ने चतुर्भुज गणेश्वर को देखकर नानाप्रकार के आयुधों से युक्त अष्टभुज होकर उनका सामना किया और गणेश्वर को मारने की इच्छा से (अपने हाथों में) खड्ग, चर्म (ढाल), गदा, प्रास (भाला), परश्वध (फरसा), उत्तम अंकुश, धनुष एवं बाण धारण कर खड़े हो गये। (२६-२७)

गणेश्वर वीरभद्र भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर सनातन धर्म को मारने के लिये वर्षाकालिक मेघ के सदृश उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। (२८)

हे मुने! शरचापधारी वे दोनों रुधिर से लाल तथा सिक्त शरीर वाले महात्मा किंशुक पुष्प के सदृश सुशोभित होने लगे। (२९)

हे मुनीन्द्र! तदनन्तर गणनायक द्वारा श्रेष्ठ शस्त्रास्त्रों से बलपूर्वक विजित धर्मराज उदास होकर पीछे हट गये एवं वीरभद्र यज्ञ में प्रविष्ट हुए। (३०)

हे मुने! गणेश्वर वीरभद्र को यज्ञमण्डप में प्रविष्ट हुआ देखकर देवतागण अस्त्र-शस्त्र लेकर सहसा उठ खड़े हुए। (३१)

महाभाग आठों वसु, अति दारुण नवग्रह, इन्द्रादि, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, विश्वेदेव, साध्यगण, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग, यक्ष, किंपुरुष (किन्नर), भूत, विहंगम, चक्रधर, वैवस्वत-वंशीय प्रसिद्ध राजा धर्मकीर्ति, चन्द्रवंशीय राजा उग्रबलशाली भोजकीर्ति, दैत्य, दानव तथा

सोमवंशोद्भवश्चोग्रो भोजकीर्तिर्महाभुजः ॥ ३४
दितिजा दानवाश्चान्ये येऽन्ये तत्र समागताः ।
ते सर्वेऽभ्यद्रवन् रौद्रं वीरभद्रमुदायुधाः ॥ ३५
तानापतत एवाशु चापबाणधरो गणः ।
अभिदुद्राव वेगेन सर्वानेव शरोत्करैः ॥ ३६
ते शस्त्रवर्षमतुलं गणेशाय समुत्सृजन् ।
गणेशोऽपि वरास्त्रैस्तान् प्रचिच्छेद बिभेद च ॥ ३७
शरैः शस्त्रैश्च सततं वध्यमाना महात्मना ।
वीरभद्रेण देवाद्या अवहारमकुर्वत ॥ ३८
ततो विवेश गणपो यज्ञमध्यं सुविस्तृतम् ।
जुह्वाना ऋषयो यत्र हवींषि प्रवितन्वते ॥ ३९
ततो महर्षयो दृष्ट्वा मृगेन्द्रवदनं गणम् ।
भीता होत्रं परित्यज्य जग्मुः शरणमच्युतम् ॥ ४०
तानार्तांश्चक्रभृद् दृष्ट्वा महर्षींस्त्रस्तमानसान् ।
न भेतव्यमितीत्युक्त्वा समुत्तस्थौ वरायुधः ॥ ४१
समानम्य ततः शार्ङ्गं शरानग्निशिखोपमान् ।
मुमोच वीरभद्राय कायावरणदारणान् ॥ ४२
ते तस्य कायमासाद्य अमोघा वै हरेः शराः ।
निपेतुर्भुवि भग्नाशा नास्तिकादिव याचकाः ॥ ४३
शरांस्त्वमोघान्मोघत्वमापन्नान्वीक्ष्य केशवः ।
दिव्यैरस्त्रैर्वीरभद्रं प्रच्छादयितुमुद्यतः ॥ ४४
तानस्त्रान्वासुदेवेन प्रक्षिप्तान्गणनायकः ।
वारयामास शूलेन गदया मार्गणैस्तथा ॥ ४५
दृष्ट्वा विपन्नान्यस्त्राणि गदां चिक्षेप माधवः ।
त्रिशूलेन समाहत्य पातयामास भूतले ॥ ४६
मुशलं वीरभद्राय प्रचिक्षेप हलायुधः ।
लाङ्गलं च गणेशोऽपि गदया प्रत्यवारयत् ॥ ४७
मुशलं सगदं दृष्ट्वा लाङ्गलं च निवारितम् ।
वीरभद्राय चिक्षेप चक्रं क्रोधात् खगध्वजः ॥ ४८
तमापतन्तं शतसूर्यकल्पं
सुदर्शनं वीक्ष्य गणेश्वरस्तु ।
शूलं परित्यज्य जगार चक्रं

वहाँ आये हुए अन्य सभी आयुध लेकर रौद्र वीरभद्र की ओर दौड़े। (३२-३५)

धनुष बाणधारी गण ने उन सभी के आते ही उन पर वेगपूर्वक बाण प्रहार से प्रत्याक्रमण किया। (३६)

उन सभी ने वीरभद्र के ऊपर अतुलनीय बाणों की वर्षा की। गणपति ने भी उत्तम अस्त्रों से उन्हें छिन्न भिन्न कर डाला। (३७)

महात्मा वीरभद्र द्वारा विविध बाणों और अस्त्रों से आहत होकर देवतादि युद्ध से निवृत्त हो गये। (३८)

तब गणपति वीरभद्र सुविस्तृत यज्ञ के मध्य में प्रविष्ट हुए जहाँ यज्ञरत ऋषि लोग अग्नि मे हवि की आहुति दे रहे थे। (३९)

तदुपरान्त महर्षि लोग सिंहमुख गण को देखकर भय से हवन छोड़कर अच्युत की शरण में गये। (४०)

चक्रधारी अच्युत त्रस्तमानस उन महर्षियों को आर्त देख-कर 'डरो मत' ऐसा कह कर श्रेष्ठ आयुध लेकर खड़े हुए। (४१)

तदनन्तर वे शार्ङ्ग धनुष को झुका कर वीरभद्र के ऊपर शरीरावरण को विदारित करने वाले अग्निशिखा के तुल्य बाणों का वर्षण करने लगे। (४२)

श्री हरि के वे अमोघ बाण उसके (वीरभद्र के) शरीर पर पहुँच कर पृथ्वी पर इस प्रकार गिर पड़े जैसे याचक नास्तिक के पास से निराश होकर लौटता है। (४३)

अमोघ बाणों को व्यर्थ होते देख कर केशव वीरभद्र को दिव्य अस्त्रों से आच्छादित करने के लिये उद्यत हुए। (४४)

वासुदेव के द्वारा प्रक्षिप्त उन बाणों को गणनायक ने शूल, गदा और बाणों से निवारित कर दिया। (४५)

माधव ने अपने अस्त्रों को विनष्ट हुआ देखकर गदा फेंकी। किंतु (वीरभद्र ने) त्रिशूल से आघात कर उसे भूतल पर गिरा दिया। (४६)

हलायुध ने वीरभद्र की ओर मुशल और लाङ्गल फेंका जिसे गणाधिप ने गदा से निवारित कर दिया। (४७)

गदा के सहित मुशल और हल को निवारित हुआ देख कर गरुडध्वज ने क्रोध से वीरभद्र के ऊपर चक्र फेंका। (४८)

किंतु गणेश्वर ने सैकड़ों सूर्य के सदृश सुदर्शन को आते देख शूल छोड कर चक्र को इस प्रकार निगल

यथा मधुं मीनवपु. सुरेन्द्रः ॥ ४९
चक्रे निगीर्णे गणनाथकेन
क्रोधाविरक्तोऽसितचारुनेत्रः ।
मुरारिरभ्येत्य गणाधिपेन्द्र-
मुत्क्षिप्य वेगाद् भुवि निष्पिपेष ॥ ५०
हरिबाहूरुवेगेन विनिष्पिष्टस्य भूतले ।
सहितं रुधिरोद्गारैर्मुखाच्चक्रं विनिर्गतम् ॥ ५१
ततो निःसृतमालोक्य चक्रं कैटभनाशनः ।
समादाय हृषीकेशो वीरभद्रं मुमोच ह ॥ ५२
हृषीकेशेन मुक्तस्तु वीरभद्रो जटाधरम् ।
गत्वा निवेदयामास वासुदेवात्पराजयम् ॥ ५३
ततो जटाधरो दृष्ट्वा गणेशं शोणिताप्लुतम् ।
निश्वसन्तं यथा नागं क्रोधं चक्रे तदाव्ययः ॥ ५४
ततः क्रोधाभिभूतेन वीरभद्रोऽथ शंभुना ।
पूर्वोद्दिष्टे तदा स्थाने सायुधस्तु निवेशितः ॥ ५५
वीरभद्रमथादिश्य भद्रकालीं च शंकरः ।
विवेश क्रोधताम्राक्षो यज्ञवाटं त्रिशूलभृत् ॥ ५६
ततस्तु देवप्रवरे जटाधरे
त्रिशूलपाणौ त्रिपुरान्तकारिणि ।
दक्षस्य यज्ञं विशति क्षयंकरे
जातो ऋषीणां प्रवरो हि साध्वसः ॥५७

इति श्रीवामनपुराणे चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

लिया जैसे मीनशरीरधारी सुरेन्द्र मधु को निगल गए थे। (४९)

गणनायक द्वारा चक्र निगले जाने पर मुरारि के सुन्दर काले नेत्र क्रोध से अत्यन्त लाल हो गये। वे गणाधिप के निकट गए और उन्हें वेग से उठा लिया तथा पृथ्वी पर पटक कर पीसने लगे। (५०)

हरि की भुजाओं और जाघों के प्रबल वेग से भूतल में पटके गए वीरभद्र के मुख से रुधिरोद्गार के साथ चक्र निकल आया। (५१)

तदनन्तर कैटभनाशन हृषीकेश ने चक्र को निकला देख कर उसे ले लिया और वीरभद्र को छोड दिया। (५२)

हृषीकेश द्वारा मुक्त वीरभद्र जटाधर शंकर के निकट जाकर वासुदेव से हुई अपनी पराजय निवेदित किये। (५३)

तदनन्तर गणेश्वर को शोणिताप्लुत तथा नाग के सदृश निःश्वास लेते देख अव्यय जटाधर ने क्रोध किया। (५४)

तदुपरान्त क्रोधाभिभूत शंकर ने सायुध वीरभद्र को पूर्वोद्दिष्ट स्थान पर निविष्ट कर दिया। (५५)

वीरभद्र तथा भद्रकाली को आदेश देकर क्रोध से रक्तनेत्र वाले त्रिशूलधर शंकर यज्ञमण्डप में प्रविष्ट हुए। (५६)

तदनन्तर त्रिपुरान्तकारी, त्रिशूलपाणि, क्षयकारी, देवश्रेष्ठ जटाधर के दक्ष यज्ञ में प्रवेश करने पर ऋषियों में महान् भय उत्पन्न हुआ। (५७)

श्री वामनपुराण म चतुर्थ अध्याय समाप्त ।।४।।

५

पुलस्त्य उवाच ।

जटाधरं हरिर्दृष्ट्वा क्रोधादारक्तलोचनम् ।
तस्मात् स्थानादपाक्रम्य कुब्जाम्रेऽन्तर्हितः स्थितः ॥ १
वसवोऽष्टौ हरं दृष्ट्वा सुस्रुवुर्वेगतो मुने ।
सा तु जाता सरिच्छ्रेष्ठा सीता नाम सरस्वती ॥ २
एकादश तथा रुद्रास्त्रिनेत्रा वृषकेतनाः ।
कान्दिशीका लयं जग्मुः समभ्येत्यैव शंकरम् ॥ ३
विश्वेऽश्विनौ च साध्याश्च मरुतोऽनलभास्कराः ।
समासाद्य पुरोडाशं भक्षयन्तो महामुने ॥ ४
चन्द्रः सममृक्षगणैर्निशां समुपदर्शयन् ।
उत्पत्यारुह्य गगनं स्वमधिष्ठानमाश्रितः ॥ ५
कश्यपाद्याश्च ऋषयो जपन्तः शतरुद्रियम् ।
पुष्पाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रणताः संस्थिता मुने ॥ ६
असकृद् दक्षदयिता दृष्ट्वा रुद्रं बलाधिकम् ।
शक्रादीनां सुरेशानां कृपणं विललाप ह ॥ ७
ततः क्रोधाभिभूतेन शंकरेण महात्मना ।
तलप्रहारैरमरा बहवो विनिपातिताः ॥ ८
पादप्रहारैरपरे त्रिशूलेनापरे मुने ।
दृष्ट्यग्निना तथैवान्ये देवाद्याः प्रलयीकृताः ॥ ९
ततः पूषा हरं वीक्ष्य विनिघ्नन्तं सुरासुरान् ।
क्रोधाद् बाहू प्रसार्याथ प्रदुद्राव महेश्वरम् ॥ १०
तमापतन्तं भगवान् संनिरीक्ष्य त्रिलोचनः ।
बाहुभ्यां प्रतिजग्राह करेणैकेन शंकरः ॥ ११
कराभ्यां प्रगृहीतस्य शंभुनांशुमतोऽपि हि ।
कराङ्गुलिभ्यो निश्चेरुरसृग्धाराः समन्ततः ॥ १२
ततो वेगेन महता अंशुमन्तं दिवाकरम् ।
भ्रामयामास सततं सिंहो मृगशिशुं यथा ॥ १३
भ्रामितस्यातिवेगेन नारदांशुमतोऽपि हि ।

५

क्रोध से आरक्त नेत्रवाले जटाधर को देखकर हरि उस स्थान से हट कर कुब्जाम्र में छिप कर बैठ गये। (१)

हे मुने! हर को देखकर आठ वसु वेग से बह (पिघल) गये। इससे सीता नामकी श्रेष्ठ नदी उत्पन्न हुई। (२)

तथा वृषकेतन त्रिनेत्रधारी एकादश रुद्र भय से भागते हुए शंकर के निकट जाकर उनमें लीन हो गये। (३)

हे महामुने! विश्वेदेवगण, अश्विनीकुमार, साध्यवृन्द, वायु, अग्नि एवं सूर्य शंकर को निकट पाकर पुरोडाश खाते हुए भाग गये। (४)

तारागण के साथ चन्द्रमा रात्रि को प्रकट करते हुए आकाश में ऊपर जाकर अपने स्थान पर स्थित हो गये। (५)

हे मुने! कश्यप आदि ऋषि शतरुद्रिय (मन्त्र) का जप करते हुए अञ्जलि में पुष्प लेकर विनम्र भाव से खड़े हो गये। (६)

इन्द्रादिक देवताओं में रुद्र को सर्वाधिक बली देख कर दक्ष की पत्नी अत्यन्त दीनतापूर्वक बार-बार विलाप करने लगी। (७)

तदनन्तर क्रोधाभिभूत महात्मा शंकर ने (हाथ के) तलवे के प्रहार से अनेक देवताओं को मार डाला। (८)

हे मुने! इसी प्रकार कुछ देवादिकों को पद प्रहार से कुछ को त्रिशूल से कुछ को नेत्राग्नि द्वारा नष्ट कर दिया। (९)

तदनन्तर सुरों एवं असुरों का संहार करते हुए शंकर को देखकर पूषा-सूर्य क्रोधपूर्वक दोनों भुजाएँ प्रसारित कर महेश्वर की ओर दौड़े। (१०)

भगवान् त्रिलोचन शंकर ने उन्हें आते देख एक ही हाथ से उनकी दोनों भुजाओं को पकड़ लिया। (११)

शंभु द्वारा सूर्य के प्रगृहीत दोनों हाथों की अङ्गुलियों से चतुर्दिक् रुधिर की धारा प्रवाहित होने लगी। (१२)

तदनन्तर वे अंशुमान् दिवाकर को अत्यन्त वेग से निरन्तर इस प्रकार घुमाने लगे जैसे सिंह मृगशावक को घुमाता है। (१३)

हे नारद! अत्यन्त वेग से घुमाये गए सूर्य की भुजाओं

भुजौ ह्रस्वत्वमापन्नौ त्रुटितस्नायुबन्धनौ ॥ १४
रुधिराप्लुतसर्वाङ्गमंशुमन्तं महेश्वरः ।
संनिरीक्ष्योत्ससर्जैनमन्यतोऽभिजगाम ह ॥ १५
ततस्तु पूषा विहसन् दशनानि विदर्शयन् ।
प्रोवाचैह्येहि कापालिन् पुनः पुनरथेश्वरम् ॥ १६
ततः क्रोधाभिभूतेन पूष्णो वेगेन शंभुना ।
मुष्टिनाहत्य दशनाः पातिता धरणीतले ॥ १७
भग्नदन्तस्तथा पूषा शोणिताभिप्लुताननः ।
पपात भुवि निःसंज्ञो वज्राहत इवाचलः ॥ १८
भगोऽभिवीक्ष्य पूषाणं पतितं रुधिरोक्षितम् ।
नेत्राभ्यां घोररूपाभ्यां वृषध्वजमवैक्षत ॥ १९
त्रिपुरघ्नस्ततः क्रुद्धस्तलेनाहत्य चक्षुषी ।
निपातयामास भुवि क्षोभयन्सर्वदेवताः ॥ २०
ततो दिवाकराः सर्वे पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ।
मरुद्भिश्च हुताशैश्च भयाज्जग्मुर्दिशो दश ॥ २१
प्रतियातेषु देवेषु प्रह्लादाद्या दितीश्वराः ।
नमस्कृत्य ततः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयो मुने ॥ २२
ततस्तं यज्ञवाटं तु शंकरो घोरचक्षुषा ।
ददर्श दग्धुं कोपेन सर्वांश्चैव सुरासुरान् ॥ २३
ततो निलिल्यिरे वीराः प्रणेमुर्दुद्रुवुस्तथा ।
भयादन्ये हरं दृष्ट्वा गता वैवस्वतक्षयम् ॥ २४
त्रयोऽग्नयस्त्रिभिर्नेत्रैर्दुःसहं समवैक्षत ।
दृष्टमात्रास्त्रिनेत्रेण भस्मीभूताभवन् क्षणात् ॥ २५
अग्नौ प्रणष्टे यज्ञोऽपि भूत्वा दिव्यवपुर्मृगः ।
दुद्राव विक्लवगतिर्दक्षिणासहितोऽम्बरे ॥ २६
तमेवानुससारेशश्चापमानम्य वेगवान् ।
शरं पाशुपतं कृत्वा कालरूपी महेश्वरः ॥ २७
अर्द्धेन यज्ञवाटान्ते जटाधर इति श्रुतः ।
अर्द्धेन गगने शर्वः कालरूपी च कथ्यते ॥ २८

नारद उवाच ।

कालरूपी त्वयाख्यातः शंभुर्गगनगोचरः ।
लक्षणं च स्वरूपं च सर्वं व्याख्यातुमर्हसि ॥ २९

पुलस्त्य उवाच ।

स्वरूपं त्रिपुरघ्नस्य वदिष्ये कालरूपिणः ।

के स्नायुबन्ध टूट गए एवं वे छोटी हो गईं । (१४)

दिवाकर को सर्वाङ्ग में रुधिराप्लुत हुआ देख उन्हें छोड़ कर महेश्वर अन्यत्र चले गए । (१५)

तदनन्तर हँसते एवं दाँत दिखलाते हुए पूषा बारंबार कहने लगे, "हे कपाली ! आओ आओ ।" (१६)

तदुपरान्त क्रोधाभिभूत शम्भु ने वेगपूर्वक मुक्के से मारकर पूषा के दाँतों को धरती पर गिरा दिया । (१७)

इस प्रकार भग्नदन्त एवं रुधिराप्लुतमुख पूषा वज्र से मारे गये पर्वत के सदृश निःसंज्ञ होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । (१८)

गिरे हुए रुधिराप्लुत पूषा को देख कर भग भयङ्कर नेत्रों से वृषध्वज को देखने लगे । (१९)

तदनन्तर क्रुद्ध त्रिपुरहन्ता ने सभी देवताओं को क्षुब्ध करते हुए करतल के प्रहार से (भग) के दोनों नेत्रों को पृथ्वी पर गिरा दिया । (२०)

तत्पश्चात् आदित्यगण, इन्द्र को आगे कर, मरुद्गणों तथा अग्नियों के साथ भय से दशों दिशाओं में भाग गये । (२१)

हे मुने ! देवताओं के चले जाने पर प्रह्लाद आदि दैत्य महेश्वर को प्रणाम कर अञ्जलि बाँध कर खड़े हो गए । (२२)

तदनन्तर शंकर उस यज्ञमडप को तथा सभी देवासुरों को दग्ध करने के लिये क्रोधपूर्ण घोर दृष्टि से देखने लगे । (२३)

तत्पश्चात् महादेव को देखकर कुछ वीर भय से छिप गए, कई प्रणाम करने लगे, कुछ भाग गये और कोई-कोई यमपुरी पहुँच गये । (२४)

तदनन्तर महेश्वर ने तीन नेत्रों से तीनों अग्नियों को देखा, उनके देखते ही तीनों अग्नियाँ क्षणभर में भस्मीभूत हो गयीं । (२५)

अग्नि के नष्ट होने पर यज्ञ भी दिव्य शरीर वाला मृग होकर दक्षिणा के साथ आकाश में व्यग्रगति से भाग गया । (२६)

कालरूपी वेगवान् महेश्वर धनुष को झुका कर उसमें पाशुपत शर संयुक्त कर उसी के पीछे दौड़े । (२७)

यज्ञशाला में अर्द्धांश से स्थित शंकर जी 'जटाधर' नाम से प्रसिद्ध हुए एवं आकाश में अर्द्धांश से स्थित उनको 'कालरूपी' कहा जाता है । (२८)

नारद ने कहा—"आपने आकाशचारी शंकर को

येनाम्बरं मुनिश्रेष्ठ व्याप्तं लोकहितेप्सुना ॥ ३०
यत्राश्विनी च भरणी कृत्तिकायास्तथांशकः ।
मेषो राशिः कुजक्षेत्रं तच्छिरः कालरूपिणः ॥ ३१
आग्नेयांशास्त्रयो ब्रह्मन् प्राजापत्यं कवेर्गृहम् ।
सौम्यार्द्धं वृषनामेदं वदनं परिकीर्तितम् ॥ ३२
मृगार्द्धमार्द्रादित्यांशास्त्रयः सौम्यगृहं त्विदम् ।
मिथुनं भुजयोस्तस्य गगनस्थस्य शूलिनः ॥ ३३
आदित्यांशश्च पुष्यं च आश्लेषा शशिनो गृहम् ।
राशिः कर्कटको नाम पार्श्वे मखविनाशिनः ॥ ३४
पित्र्यर्क्षं भगदैवत्यमुत्तरांशश्च केसरी ।
सूर्यक्षेत्रं विभोर्ब्रह्मन् हृदयं परिगीयते ॥ ३५
उत्तरांशास्त्रयः पाणिश्चित्रार्धं कन्यका त्वियम् ।
सोमपुत्रस्य सद्मैतद् द्वितीयं जठरं विभोः ॥ ३६
चित्रांशद्वितयं स्वातिर्विशाखायांशकत्रयम् ।
द्वितीयं शुक्रसदनं तुला नाभिरुदाहृता ॥ ३७
विशाखांशमनूराधा ज्येष्ठा भौमगृहं त्विदम् ।
द्वितीयं वृश्चिको राशिर्मेढ्रं कालस्वरूपिणः ॥ ३८
मूलं पूर्वोत्तरांशश्च देवाचार्यगृहं धनुः ।
ऊरुयुगलमीशस्य अमरर्षे प्रगीयते ॥ ३९
उत्तरांशास्त्रयो ऋक्षं श्रवणं मकरो मुने ।
धनिष्ठार्धं शनिक्षेत्रं जानुनी परमेष्ठिनः ॥ ४०
धनिष्ठार्धं शतभिषा प्रौष्ठपद्यांशकत्रयम् ।
सौरेः सद्मापरमिदं कुम्भो जङ्घे च विश्रुते ॥ ४१
प्रौष्ठपद्यांशमेकं तु उत्तरा रेवती तथा ।
द्वितीयं जीवसदनं मीनस्तु चरणावुभौ ॥ ४२

एवं कृत्वा कालरूपं त्रिनेत्रो
यज्ञं क्रोधान्मार्गणैराजघान ।
विद्धश्चासौ वेदनाबुद्धिमुक्तः

कालरूपी कहा है। आप उनके सम्पूर्ण स्वरूप और लक्षण की व्याख्या करें।" (२९)

पुलस्त्य ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ, मैं त्रिपुरनाशक कालरूपी उन शंकर के स्वरूप को बतलाता हूँ जिन्होंने लोकहित की कामना से आकाश को व्याप्त किया। (३०)

पूरी अश्विनी तथा भरणी एवं कृत्तिका के एक पाद से युक्त, मंगल का क्षेत्र मेष राशि कालरूपी महादेव का शिर है। (३१)

हे ब्रह्मन्! कृत्तिका के तीन अंश, पूरी रोहिणी एवं मृगशिरा के दो पूर्व पादों वाला, शुक्र का क्षेत्र वृष राशि उनका मुख है। (३२)

मृगशिरा के शेष दो पाद, पूरी आर्द्रा और पुनर्वसु के तीन पाद वाला बुध का क्षेत्र मिथुन राशि गगनस्थ शूली की दो भुजाएँ हैं। (३३)

पुनर्वसु का एक पाद पूरा पुष्य और अश्लेषा नक्षत्रों वाला चन्द्रमा का क्षेत्र कर्कट राशि यज्ञविनाशक शंकर के दो पार्श्व हैं। (३४)

हे ब्रह्मन्! पूरी मघा, पूरी पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी के एक पाद वाला, सूर्य का क्षेत्र सिंहराशि शंकर का हृदय कहा जाता है। (३५)

उत्तराफाल्गुनी के तीन पाद, पूरा हस्त एवं चित्रा के दो पूर्व पादों वाला, बुध का द्वितीय क्षेत्र कन्या राशि शंकर का जठर है। (३६)

चित्रा के शेष दो पाद, पूरी स्वाति एवं विशाखा के तीन पादों वाला, शुक्र का दूसरा क्षेत्र तुला राशि महादेव की नाभि कहलाता है। (३७)

विशाखा के एक पाद, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रों वाला, मंगल का द्वितीय क्षेत्र वृश्चिक राशि कालरूपी महादेव का लिंग है। (३८)

पूरा मूल, पूरा पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा के एक पाद वाला बृहस्पति का क्षेत्र धनुराशि महेश्वर का ऊरुयुगल है। (३९)

हे मुने! उत्तराषाढा के शेष तीन पाद, पूरा श्रवण और धनिष्ठा के दो पूर्व पाद वाला, शनि का क्षेत्र मकर राशि परमेष्ठी महेश्वर के दो जानु हैं। (४०)

धनिष्ठा के अपरार्ध पूरी शतभिषा, पूर्व भाद्रपद के तीन पादवाला शनि का द्वितीय गृह कुम्भ राशि उनकी दो जंघाएँ हैं। (४१)

पूर्वभाद्रपद का एक पाद, पूरा उत्तरभाद्रपद और रेवती नक्षत्रों वाला, बृहस्पति का द्वितीय गृह मीन राशि उनके दो चरण हैं। (४२)

इस प्रकार त्रिनेत्र ने कालरूप धारण कर क्रोधपूर्वक यज्ञ को बाणों से मारा। तदनन्तर बाणविद्ध वेदनानुभूतिरहित

खे संतस्थौ तारकाभिश्चिताङ्गः ॥ ४३

नारद उवाच ।

राशयो गदिता ब्रह्मंस्त्वया द्वादश वै मम ।
तेषां विशेषतो ब्रूहि लक्षणानि स्वरूपतः ॥ ४४

पुलस्त्य उवाच ।

स्वरूपं तव वक्ष्यामि राशीनां शृणु नारद ।
यादृशा यत्र संचारा यस्मिन् स्थाने वसन्ति च ॥ ४५
मेषः समानमूर्तिश्च अजाविकधनादिषु ।
संचारस्थानमेवास्य धान्यरत्नाकरादिषु ॥ ४६
नवशाद्वलसंछन्नवसुधायां च सर्वशः ।
नित्यं चरति फुल्लेषु सरसां पुलिनेषु च ॥ ४७
वृषः सदृशरूपो हि चरते गोकुलादिषु ।
तस्याधिवासभूमिस्तु कृषीवलधराश्रयः ॥ ४८
स्त्रीपुंसयोः समं रूपं शय्यासनपरिग्रहः ।
वीणावाद्यधृङ् मिथुनं गीतनर्तकशिल्पिषु ॥ ४९
स्थितः क्रीडारतिर्नित्यं विहारावनिरस्य तु ।
मिथुनं नाम विख्यातं राशिर्द्वैधात्मकः स्थितः ॥ ५०
कर्किः कुलीरेण समः सलिलस्थः प्रकीर्तितः ।
केदारवापीपुलिने विविक्तावनिरेव च ॥ ५१
सिंहस्तु पर्वतारण्यदुर्गकन्दरभूमिषु ।
वसते व्याधपल्लीषु गह्वरेषु गुहासु च ॥ ५२
व्रीहिप्रदीपिककरा नावारूढा च कन्यका ।
चरते स्त्रीरतिस्थाने वसते नड्वलेषु च ॥ ५३
तुलापाणिश्च पुरुषो वीथ्यापणविचारकः ।
नगराध्वानशालासु वसते तत्र नारद ॥ ५४
श्वभ्रवल्मीकसंचारी वृश्चिको वृश्चिकाकृतिः ।
विषगोमयकीटादिपाषाणादिषु संस्थितः ॥ ५५
धनुस्तुरङ्गजघनो दीप्यमानो धनुर्धरः ।
वाजिशूरास्त्रविद्वीरः स्थायी गजरथादिषु ॥ ५६
मृगास्यो मकरो ब्रह्मन् वृषस्कन्धेक्षणाङ्गजः ।

वह तारिकाओं से आवृत शरीर होकर आकाश में स्थित हो गया। (४३)

नारद ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपने मुझ से द्वादश राशियों का कथन किया। अब विशेष रूप से उनके स्वरूप के अनुसार लक्षण का वर्णन करें। (४४)

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद! आपको मैं राशियों का स्वरूप बतलाता हूँ, सुनिये। वे जैसे हैं तथा जहाँ सचार और निवास करते हैं वह सभी वर्णन करता हूँ। (४५)

मेषराशि मेष के सदृश मूर्तिवाला है। बकरी, भेड़, धन धान्य एव रत्नाकरादि इसके सञ्चार स्थान हैं। (४६)

तथा नवीन दूर्वा से आच्छन्न समग्र पृथ्वी एव पुष्पित वनस्पतियों से युक्त सरोवर के पुलिनों में यह नित्य सञ्चरण करता है। (४७)

वृष के तुल्य रूपयुक्त वृषराशि गोकुलादि मे विचरण करता है तथा कृषकों की भूमि इसका निवास स्थान है। (४८)

मिथुन राशि स्त्री और पुरुष के समान रूप से युक्त है। शय्या और आसन इसके आश्रय हैं। अपने हाथों में इसने वीणा एव वाद्य धारण कर रक्खे हैं। गायकों, नर्तकों एव शिल्पियों मे यह सञ्चरण करता है। (४९)

इस द्वैधात्मक राशि को मिथुन कहते हैं। यह राशि क्रीडा प्रेमी एवं विहारभूमियों में निवास करने वाला है। (५०)

कर्कट राशि केकड़े के सदृश रूपयुक्त एवं जल में रहने वाला कहा जाता है। जल से पूर्ण क्यारी एव पुलिन (नदी-तीर) तथा एकान्त भूमि इसके सञ्चार के स्थान हैं। (५१)

सिंह राशि पर्वत, अरण्य, दुर्गमस्थान, कन्दरा, व्याधों (आखेटकों) के स्थान, गह्वर एवं गुफाओं में निवास करता है। (५२)

कन्या राशि व्रीहि एव दीपक हाथ में लिये हुए है तथा नौमारूढ है, वह स्त्रियों के रतिस्थान और सरपतों मे विचरण करता है। (५३)

हे नारद! तुला राशि हाथ मे तुला लिये हुए पुरुष के रूप में गलियों और बाजारों मे विचरण करता है तथा नगरों, मार्गों एव भवनों में निवास करता है। (५४)

वृश्चिक के आकार की वृश्चिक राशि, गड्ढे एव वल्मीक (दीमकों की बाँबी) मे विचरण करता है। विष, गोबर, कीट एवं पाषाण आदि इसके निवास स्थान हैं। (५५)

धनुष राशि की जघा अश्व के सदृश है। यह प्रकाशमान तथा धनुषधारी है। यह घुड़सवारी, शूरकर्म एव अस्त्र का ज्ञाता तथा वीर है। गज एव रथ आदि में उसका स्थान है। (५६)

हे ब्रह्मन्! मकर राशि का मुख मृग के सदृश, एव

मकरोऽमौ नदीचारी वसते च महोदधौ ॥ ५७
रिक्तकुम्भश्च पुरुषः स्कन्धधारी जलाप्लुतः ।
द्यूतशालाचरः कुम्भः स्थायी शौण्डिकसद्मसु ॥ ५८
मीनद्वयमथासक्तं मीनस्तीर्थाब्धिसंचरः ।
वसते पुण्यदेशेषु देवब्राह्मणसद्मसु ॥ ५९
लक्षणा गदितास्तुभ्यं मेषादीनां महामुने ।
न कस्यचित् त्वयाख्येयं गुह्यमेतत्पुरातनम् ॥ ६०
एतन् मया ते कथितं सुरर्षे
यथा त्रिनेत्रः प्रममाथ यज्ञम् ।
पुण्यं पुराणं परमं पवित्र-
माख्यातवान्पापहरं शिवं च ॥ ६१

इति श्रीवामनपुराणे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

६

पुलस्त्य उवाच ।
हृद्गो ब्रह्मणो योऽसौ धर्मो दिव्यवपुर्मुने ।
दाक्षायणी तस्य भार्या तस्यामजनयत्सुतान् ॥ १
हरिं कृष्णं च देवर्षे नारायणनरौ तथा ।
योगाभ्यासरतौ नित्यं हरिकृष्णौ बभूवतुः ॥ २
नरनारायणौ चैव जगतो हितकाम्यया ।
तप्येतां च तपः सौम्यौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥ ३
प्रालेयाद्रिं समागम्य तीर्थे बदरिकाश्रमे ।
गृणन्तौ तत्परं ब्रह्म गङ्गाया विपुले तटे ॥ ४
नरनारायणाभ्यां च जगदेतच्चराचरम् ।
तापितं तपसा ब्रह्मन् शक्रः क्षोभं तदा ययौ ॥ ५
संक्षुब्धस्तपसा ताभ्यां क्षोभणाय शतक्रतुः ।
रम्भाद्याप्सरसः श्रेष्ठाः प्रेषयत्स महाश्रमम् ॥ ६
कन्दर्पश्च सुदुर्धर्षश्चूताङ्कुरमहायुधः ।
समं सहचरेणैव वसन्तेनाश्रमं गतः ॥ ७
ततो माधवकन्दर्पौ ताश्चैवाप्सरसो वराः ।

स्कन्धधूप के तुल्य तथा नेत्र गज तुल्य हैं। यह राशि नदी में विचरण करती तथा समुद्र में रहती है। (५७)

कुम्भ राशि रिक्त कुम्भ को स्कंध पर धारण करने वाले जलाप्लुत पुरुष के आकार से युक्त है। इसका सचार स्थानद्यूतशाला एवं निवास स्थान मद्यशाला है। (५८)

मीनराशि दो परस्पर सयुक्त मछलियों के आकार से युक्त है। तीर्थस्थान एवं समुद्र इसके सचार-स्थान हैं। यह पवित्र देशों एवं देव मन्दिरों तथा ब्राह्मणों के घरों में निवास करता है। (५९)

हे महामुने! मैंने आपको मेषादि राशियों का लक्षण बतलाया। आप इस पुरातन रहस्य को किसी से न कहिये। (६०)

हे देवर्षे! त्रिलोचन ने जिस प्रकार यज्ञ को प्रमथित किया उसका वर्णन मैंने आपसे कर दिया। इस प्रकार मैंने आपको श्रेयस्कर, पुरातन, परम पवित्र, पापहारी एवं कल्याण प्रद आख्यान सुनाया। (६१)

श्रीवामनपुराण में पञ्चम अध्याय समाप्त ॥५॥

६

पुलस्त्य ने कहा—हे मुने, ब्रह्म के हृदय से उत्पन्न दिव्यदेहधारी जो धर्म था उसने दाक्षायणी नाम की अपनी भार्या से हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। हे देवर्षे! हरि और कृष्ण दोनों नित्य योगाभ्यास में निरत हो गए। तथा पुरातन और ऋषियों में श्रेष्ठ शान्तमना नर और नारायण ससार के कल्याण की कामना से हिमालय पर्वत पर जाकर बदरिकाश्रम तीर्थ में गंगा के प्रशस्त तट पर उस परं ब्रह्म का जप करते हुए तपस्या करने लगे। (१-४)

हे ब्रह्मन्, नर-नारायण की तपस्या से यह चराचर जगत् तप्त हो गया। तब इन्द्र व्याकुल हो गए। (५)

उन दोनों की तपस्या से अत्यन्त क्षुब्ध इन्द्र ने उन्हें क्षुब्ध करने के लिये रम्भा आदि श्रेष्ठ अप्सराओं को महान् आश्रम में भेजा। (६)

आम्र के अकुर रूप महान् आयुधवाला अत्यन्त दुर्धर्ष कन्दर्प भी अपने सहचर वसन्त के साथ आश्रम में गया। (७)

तदनन्तर वसन्त, कन्दर्प तथा वे श्रेष्ठ अप्सराएँ बदरिका

बदर्याश्रममागम्य निचिक्रीडुर्यथेच्छया ॥ ८
ततो वसन्ते संप्राप्ते किंशुका ज्वलनप्रभाः ।
निष्पत्राः सततं रेजुः शोभयन्तो धरातलम् ॥ ९
शिशिरं नाम मातङ्गं निदार्य नखरैरिव ।
वसन्तकेसरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मुने ॥ १०
मया तुषारौघकरी निर्जितः स्वेन तेजसा ।
तमेव हसतेत्युच्चैः वसन्तः कुन्दकुड्मलैः ॥ ११
वनानि कर्णिकाराणां पुष्पितानि विरेजिरे ।
यथा नरेन्द्रपुत्राणि कनकाभरणानि हि ॥ १२
तेषामनु तथा नीपाः किङ्करा इव रेजिरे ।
स्वामिसंलब्धसंमाना भृत्या राजसुतानिव ॥ १३
रक्ताशोकवना भान्ति पुष्पिताः सहसोज्ज्वलाः ।
भृत्या वसन्तनृपतेः संग्रामेऽसृक्प्लुता इव ॥ १४
मृगवृन्दाः पिञ्जरिता राजन्ते गहने वने ।
पुलकाभिवृता यद्वत् सज्जनाः सुहृदागमे ॥ १५
मञ्जरीभिर्विराजन्ते नदीकूलेषु वेतसाः ।
वक्तुकामा इवाङ्गुल्या कोऽस्माकं सदृशो नगः ॥ १६
रक्ताशोककरा तन्वी देवर्षे किंशुकाऽङ्घ्रिका ।
नीलाशोककचा श्यामा विकासिकमलानना ॥ १७
नीलेन्दीवरनेत्रा च ब्रह्मन् बिल्वफलस्तनी ।
प्रफुल्लकुन्ददशना मञ्जरीकरशोभिता ॥ १८
बन्धुजीवाधरा शुभ्रा सिन्दुवारनखाङ्किता ।
पुंस्कोकिलस्वना दिव्या अङ्कोलवसना शुभा ॥ १९
बर्हिवृन्दकलापा च सारसस्वरनूपुरा ।
प्राग्वंशरसना ब्रह्मन् मत्तहंसगतिस्तथा ॥ २०
पुत्रजीवांशुका भृङ्गरोमराजिविराजिता ।
वसन्तलक्ष्मीः संप्राप्ता ब्रह्मन् बदरिकाश्रमे ॥ २१
ततो नारायणो दृष्ट्वा आश्रमस्यानवद्यताम् ।
समीक्ष्य च दिशः सर्वास्ततोऽनङ्गमपश्यत ॥ २२

नारद उवाच ।

कोऽसावनङ्गो ब्रह्मर्षे तस्मिन् बदरिकाश्रमे ।
यं ददर्श जगन्नाथो देवो नारायणोऽव्ययः ॥ २३

श्रम में आकर इच्छानुसार क्रीडा करने लगीं । (८)

तदुपरान्त वसन्त ऋतु के आने पर अग्नि के सदृश कान्तिवाले पत्रहीन पलाशवृक्ष वसुधा की शोभा बढाते हुए निरन्तर सुशोभित हुए । (९)

हे मुने ! वसन्तरूप केसरी पलाश कुसुम रूप नखों से शिशिर रूप मातङ्ग को मानों विदीर्ण कर वहाँ प्रकट हुआ । (१०)

मैंने अपने तेज से तुषार समूह रूपी हस्ती को जीत लिया है इस भाव से वसन्त, कुन्द की कलियों के द्वारा जोर से उसका उपहास करने लगा । (११)

स्वर्णाभरणधारी राजपुत्रों के सदृश पुष्पित कर्णिकारों (अमलतास) के वन सुशोभित होने लगे । (१२)

उनके पीछे कदम्ब वृक्ष इस प्रकार सुशोभित होते थे जैसे राजपुत्रों के पीछे स्वामी से सम्मानित सेवक शोभा पाते हैं । (१३)

रक्त अशोक के वन इस प्रकार सहसा कुसुमित तथा उज्ज्वल हो शोभित हो उठे मानों वसन्त राजा के भृत्य युद्ध में रक्त से परिप्लुत हो रहे हैं । (१४)

गहनवन में पिञ्जरित मृगवृन्द इस प्रकार विराजित होने लगे जैसे सुहृद् के आने से सज्जन पुलकित हो जाते हैं । (१५)

नदी के कूलों पर अपनी मञ्जरियों के द्वारा वेतस इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानों वे अंगुलियों के द्वारा यह कहना चाहते हैं कि 'हमारे सदृश अन्य कौन वृक्ष है' । (१६)

हे देवर्षे ! हे ब्रह्मन् ! रक्ताशोक रूपी हाथ, पलाश रूपी पद, नीलाशोक रूपी केश-कलाप, विकसित कमलरूपी मुख, नील कमल रूपी नेत्र, बिल्वफल रूपी स्तन, विकसित कुन्द फूल रूपी दन्त, मञ्जरी रूपी कर बन्धुजीव रूपी अधर, सिन्दुवार रूपी नख, नर कोयल की काकली रूपी स्वर, अकोल रूपी वस्त्र, मयूर समूह रूपी आभरण, सारस के स्वर रूपी नूपुर, प्राग्वंशरूपी करधनी, मत्त हंस रूप गति, पुत्रजीव रूपी अंशुक (वस्त्र) और भ्रमर रूपी रोमावली से विराजित दिव्य, शुभ, तन्वी एवं तरुणी वसन्त लक्ष्मी उस बदरिकाश्रम में प्रकट हुई । (१७–२१)

तदनन्तर नारायण ने आश्रम की पवित्रता देख कर तथा सभी दिशाओं की ओर देखकर अनंग (कामदेव) को देखा । (२२)

नारद ने कहा—"हे ब्रह्मर्षे ! वह अनङ्ग कौन है ? जिसे अव्यय जगन्नाथ नारायण ने बदरिकाश्रम में देखा ।" (२३)

पुलस्त्य उवाच ।

कन्दर्पो हर्षतनयो योऽसौ कामो निगद्यते ।
स शंकरेण संदग्धो ह्यनङ्गत्वमुपागतः ॥ २४

नारद उवाच ।

किमर्थं कामदेवोऽसौ देवदेवेन शंभुना ।
दग्धस्तु कारणे कस्मिन्नेतद्व्याख्यातुमर्हसि ॥ २५

पुलस्त्य उवाच ।

यदा दक्षसुता ब्रह्मन् सती याता यमक्षयम् ।
विनाश्य दक्षयज्ञं तं विचचार त्रिलोचनः ॥ २६
ततो वृषध्वजं दृष्ट्वा कन्दर्पः कुसुमायुधः ।
अपत्नीकं तदाऽस्त्रेण उन्मादेनाभ्यताडयत् ॥ २७
ततो हरः शरेणाथ उन्मादेनाशु ताडितः ।
विचचार तदोन्मत्तः काननानि सरांसि च ॥ २८
स्मरन् सतीं महादेवस्तथोन्मादेन ताडितः ।
न शर्म लेभे देवर्षे बाणविद्ध इव द्विपः ॥ २९
ततः पपात देवेशः कालिन्दीसरितं मुने ।
निमग्ने शंकरे आपो दग्धाः कृष्णत्वमागताः ॥ ३०
तदाप्रभृति कालिन्द्या भृङ्गाञ्जननिभं जलम् ।
आस्यन्दत् पुण्यतीर्था सा केशपाशमिवावनेः ॥ ३१
ततो नदीषु पुण्यासु सरस्सु च नदेषु च ।
पुलिनेषु च रम्येषु वापीषु नलिनीषु च ॥ ३२
पर्वतेषु च रम्येषु काननेषु च सानुषु ।
विचरन् स्वेच्छया नैव शर्म लेभे महेश्वरः ॥ ३३
क्षणं गायति देवर्षे क्षणं रोदिति शंकरः ।
क्षणं ध्यायति तन्वङ्गीं दक्षकन्यां मनोरमाम् ॥ ३४
ध्यात्वा क्षणं प्रस्वपिति क्षणं स्वप्नायते हरः ।
स्वप्ने तथेदं गदति तां दृष्ट्वा दक्षकन्यकाम् ॥ ३५
निर्घृणे तिष्ठ किं मूढे त्यजसे मामनिन्दिते ।
मुग्धे त्वया विरहितो दग्धोऽस्मि मदनाग्निना ॥ ३६
सति सत्यं प्रकुपिता मा कोपं कुरु सुन्दरि ।
पादप्रणामावनतमभिभाषितुमर्हसि ॥ ३७
श्रूयसे दृश्यसे नित्यं स्पृश्यसे वन्द्यसे प्रिये ।

पुलस्त्य ने कहा—कन्दर्प हर्ष का पुत्र है। उसे ही काम कहा जाता है। शंकर (के नेत्रानल) द्वारा दग्ध होकर वह अनङ्ग हो गया है। (२४)

नारद ने कहा—"आप यह बतलाएँ कि देवाधिदेव शंकर ने कामदेव को क्यों और किस कारण से भस्म किया। (२५)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन्! दक्ष दुहिता सती के प्राण त्याग करने पर त्रिलोचन दक्ष-यज्ञ का ध्वंस कर विचरण करने लगे। (२६)

तदनन्तर वृषध्वज को अपत्नीक देखकर कुसुमायुध कन्दर्प ने उन्हें उन्माद नामक अस्त्र के द्वारा आहत किया। (२७)

तदुपरान्त उन्माद शर से ताड़ित शंकर उन्मत्त होकर वनों और सरोवरों में विचरण करने लगे। (२८)

हे देवर्षे! बाणविद्ध गज के सदृश उन्माद शर से इस प्रकार ताड़ित महादेव सती का स्मरण करते हुए शान्ति नहीं प्राप्त कर सके। (२९)

हे मुने! तदनन्तर देवेश शंकर कालिन्दी नदी में गिर पड़े। शंकर के निमग्न होने पर (नदी का) जल दग्ध होकर काला हो गया। (३०)

उस समय से कालिन्दी नदी का जल भृंग और अंजन के सदृश काला हो गया एवं वह पवित्र तीर्थोंवाली नदी पृथ्वी के केशपाश के सदृश प्रवाहित होने लगी। (३१)

तदनन्तर पवित्र नदियों, सरोवरों, नदों, रमणीय नदी-तटों, वापियों, कमलवनों, पर्वतों, मनोहर काननों तथा पर्वत शृङ्गों पर स्वेच्छ पूर्वक विचरण करते हुए महेश्वर कहीं भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सके। (३२-३३)

हे देवर्षे! शंकर कभी गाते, कभी रोते और कभी कृशाङ्गी मनोरमा दक्षकन्या का ध्यान करते थे। (३४)

ध्यान करके कभी सोते और कभी स्वप्न देखने लगते थे, स्वप्नकाल में दक्ष की उस कन्या को देखकर वह इस प्रकार कहते थे (३५)

हे निर्दये! रुको, हे मूढे! मुझे क्यों छोड़ रही हो? हे अनिन्दिते! हे मुग्धे! तुम्हारे विरह में मैं कामाग्नि के द्वारा दग्ध हो रहा हूँ। (३६)

हे सति! क्या तुम वस्तुतः क्रुद्ध हो? हे सुन्दरि! क्रोध मत करो। मैं तुम्हारे चरणों में अवनत होकर प्रणाम करता हूँ। मेरे साथ तुम्हें सम्भाषण करना चाहिये। (३७)

"हे प्रिये! मैं सतत तुम्हारी बात सुनता हूँ, तुम्हें देखता हूँ, तुम्हारा स्पर्श करता हूँ, तुम्हारी वन्दना करता हूँ

आलिङ्गयसे च सततं किमर्थं नाभिभाषसे ॥ ३८
विलपन्तं जनं दृष्ट्वा कृपा कस्य न जायते ।
विशेषतः पतिं बाले ननु त्वमतिनिर्घृणा ॥ ३९
त्वयोक्तानि वचांस्येवं पूर्वं मम कृशोदरि ।
विना त्वया न जीवेयं तदसत्यं त्वया कृतम् ॥ ४०
एह्येहि कामसंतप्तं परिष्वज सुलोचने ।
नान्यथा नश्यते तापः सत्येनापि शपे प्रिये ॥ ४१
इत्थं विलप्य स्वप्नान्ते प्रतिबुद्धस्तु तत्क्षणात् ।
उत्कूजति तथाऽरण्ये मुक्तकण्ठं पुनः पुनः ॥ ४२

तं कूजमानं विलपन्तमारात्
समीक्ष्य कामो वृषकेतनं हि ।
विव्याध चापं तरसा विनाम्य
संतापनाम्ना तु शरेण भूयः ॥ ४३
संतापनास्त्रेण तदा स विद्धो
भूयः स संतप्ततरो बभूव ।
संतापयंश्चापि जगत्समग्रं
फूत्कृत्य फूत्कृत्य विवासते स्म ॥ ४४
तं चापि भूयो मदनो जघान
विजृम्भणास्त्रेण ततो विजृम्भे ।
ततो भृशं कामशरैर्वितुन्नो
विजृम्भमाणः परितो भ्रमंश्च ॥ ४५
ददर्श यक्षाधिपतेस्तनूजं
पाञ्चालिकं नाम जगत्प्रधानम् ।
दृष्ट्वा त्रिनेत्रो धनदस्य पुत्रं
पार्श्वं समभ्येत्य वचो बभाषे ।
भ्रातृव्य वक्ष्यामि वचो यदद्य
तत् त्वं कुरुष्वामितविक्रमोऽसि ॥ ४६

पाञ्चालिक उवाच ।

यन्नाथ मां वक्ष्यसि तत्करिष्ये
सुदुष्करं यद्यपि देवसंघैः ।
आज्ञापयस्वातुलवीर्य शंभो
दासोऽस्मि ते भक्तियुतस्तथेश ॥ ४७

ईश्वर उवाच ।

नाशं गतायां वरदाम्बिकायां
कामाग्निना प्लुष्टसुविग्रहोऽस्मि ।

तथा तुम्हें आलिङ्गित करता हूँ। तुम क्यों बात नहीं कर रही हो ?" (३८)

"हे बाले ! विलाप करने वाले व्यक्ति को देखकर किसे दया नहीं उत्पन्न होती ? विशेषत अपने पति को विलाप करता देखकर किसे दया नहीं आती ? निश्चय ही तुम अति निर्दयी हो। (३९)

हे कृशोदरि ! तुमने पहले मुझसे कहा था कि तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रहूँगी। इसे तुमने असत्य कर दिया। (४०)

"हे सुलोचने ! आओ आओ। कामसन्तप्त मुझ आलिङ्गित करो। हे प्रिये ! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि अन्य किसी प्रकार मेरा ताप नहीं शान्त होगा।' (४१)

इस प्रकार विलाप कर वे स्वप्न के अंत में तत्क्षण उठ कर अरण्य में मुक्त कण्ठ से रोने लगे। (४२)

मुक्तकण्ठ से विलाप करते हुए वृषकेतन को दूर से देख काम ने वेगपूर्वक धनुष झुका कर पुनः उन्हें सन्ताप नामक बाण से आविद्ध किया। (४३)

तब सन्तापनास्त्र से विद्ध होकर वे और भी अधिक सन्तप्त हो गये एवं मुख से बारम्बार फूत्कार कर समस्त जगत् को सन्तप्त करते हुये समय व्यतीत करने लगे। (४४)

तदनन्तर मदन ने उन्हें पुनः विजृम्भण नामक अस्त्र से आहत किया जिससे उन्हें जम्हाई आने लगी। तदुपरान्त काम के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर विजृम्भण करते हुए तथा चतुर्दिक् परिभ्रमण करते हुए उन्होंने यक्षाधिपति के जगत् में प्रधान पाञ्चालिक नामक पुत्र को देखा। धनद के पुत्र को देख उसके पास जाकर त्रिनेत्र ने यह वचन कहा—हे भ्रातृव्य ! तुम अमित विक्रमशाली हो, मैं जो आज बात कहता हूँ उसे तुम करो। (४५-४६)

पाञ्चालिक ने कहा—"हे नाथ ! आप जो कहेंगे देवताओं द्वारा सुदुष्कर होने पर भी उसे मैं करूँगा। हे अतुलशक्तिशाली शंभो ! आदेश दीजिये। हे ईश ! मैं आपका भक्तियुक्त दास हूँ।" (४७)

महेश्वर ने कहा—वरदायिनी अम्बिका के विनष्ट होने पर मेरा सुन्दर शरीर कामाग्नि से अत्यन्त दग्ध हो रहा है।

विजृम्भणोन्मादशरैर्विभिन्नो
धृतिं न विन्दामि रतिं सुखं वा ॥ ४८
विजृम्भणं पुत्र तथैव ताप-
मुन्मादमुग्रं मदनप्रणुन्नम् ।
नान्यः पुमान् धारयितुं हि शक्तो
मुक्त्वा भवन्त हि ततः प्रतीच्छ ॥ ४९
पुलस्त्य उवाच ।
इत्येवमुक्तो वृषभध्वजेन
यक्षः प्रतीच्छत् स विजृम्भणादीन् ।
तोषं जगामाशु ततस्त्रिशूली
तुष्टस्तदैवं वचनं बभाषे ॥ ५०
हर उवाच ।
यस्मात्त्वया पुत्र सुदुर्धराणि
विजृम्भणादीनि प्रतीच्छितानि ।
तस्माद्वरं त्वां प्रतिपूजनाय
दास्यामि लोकस्य च हास्यकारि ॥ ५१
यस्त्वां यदा पश्यति चैत्रमासे
स्पृशेन्नरो वार्चयते च भक्त्या ।
वृद्धोऽथ बालोऽथ युवाथ योषित्
सर्वे तदोन्मादधरा भवन्ति ॥ ५२
गायन्ति नृत्यन्ति रमन्ति यक्ष
वाद्यानि यत्नादपि वादयन्ति ।
तवाग्रतो हास्यवचोऽभिरक्ता
भवन्ति ते योगयुतास्तु ते स्युः ॥ ५३
ममैव नाम्ना भविताऽसि पूज्यः
पाञ्चालिकेशः प्रथितः पृथिव्याम् ।
मम प्रसादाद् वरदो नराणां
भविष्यसे पूज्यतमोऽभिगच्छ ॥ ५४
इत्येवमुक्तो विभुना स यक्षो
जगाम देशान् सहसैव सर्वान् ।
कालञ्जरस्योत्तरतः सुपुण्यो
देशो हिमाद्रेरपि दक्षिणस्थः ॥ ५५
तस्मिन् सुपुण्ये विषये निविष्टो
रुद्रप्रसादादभिपूज्यतेऽसौ ।
तस्मिन् प्रयाते भगवांस्त्रिनेत्रो
देवोऽपि विन्ध्यं गिरिमभ्यगच्छत् ॥ ५६
तत्रापि मदनो गत्वा ददर्श वृषकेतनम् ।
दृष्ट्वा प्रहर्त्तुकामं च ततः प्राद्रवदीश्वरः ॥ ५७

विजृम्भण और उन्माद शरों से विद्ध होने से मुझे धैर्य, रति या सुख नहीं प्राप्त हो रहा है। (४८)

"हे पुत्र! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष, कामदेव से प्रेरित विजृम्भण, सतापन और उन्माद नामक उग्र अस्त्र धारण करने में समर्थ नहीं है। अतः तुम इन्हें ग्रहण करो।" (४९)

पुलस्त्य ने कहा—वृषभध्वज के ऐसा कहने पर उस यक्ष ने विजृम्भण आदि सभी अस्त्रों को ग्रहण कर लिया। इस से त्रिशूली को तत्काल सतोष प्राप्त हो गया और सन्तुष्ट होकर उन्होंने उससे इस प्रकार वचन कहा— (५०)

महादेव ने कहा—हे पुत्र! क्योंकि तुमने अति भयङ्कर विजृम्भण आदि अस्त्रों को ग्रहण कर लिया अतः प्रतिपूजार्थ मैं तुम्हें सब लोगों के लिये आनन्ददायक वर दूँगा। (५१)

चैत्र मास में जो वृद्ध, बालक, युवक या स्त्री तुम्हारा स्पर्श या भक्ति पूर्वक पूजन करेंगे वे सभी तत्क्षण उन्माद-ग्रस्त हो जायेंगे। (५२)

हे यक्ष! वे गायेंगे, नाचेंगे, आनन्दित होंगे और निपुणता के साथ बाजे बजाएँगे। तुम्हारे सम्मुख हँसी की बात करते हुए भी वे योगयुक्त रहेंगे। (५३)

"मेरे ही नाम से तुम पूज्य होगे। ससार में तुम्हारा पाञ्चालिकेश नाम प्रसिद्ध होगा। मेरे प्रसाद से तुम लोगों के वरदाता और पूज्यतम होगे। जाओ।" (५४)

महेश्वर के ऐसा कहने पर वह यक्ष सहसा सब देशों में गया। कालञ्जर के उत्तर और हिमालय के दक्षिण जो परम पवित्र देश है— (५५)

उस पुण्यभूमि में वह अधिष्ठित हो गया। रुद्र के प्रसाद से वह पूजित हुआ। उसके चले जाने पर भगवान् त्रिनेत्र भी विन्ध्यगिरि पर गए। (५६)

वहाँ भी मदन ने जाकर वृषकेतन को देखा। प्रहार

ततो दारुवनं घोरं मदनाभिसृतो हरः।
विवेश ऋषयो यत्र सपत्नीका व्यवस्थिताः॥ ५८
ते चापि ऋषयः सर्वे दृष्ट्वा मूर्ध्ना नताभवन्।
ततस्तान् प्राह भगवान् भिक्षा मे प्रतिदीयताम्॥ ५९
ततस्ते मौनिनस्तस्थुः सर्व एव महर्षयः।
तदाश्रमाणि सर्वाणि परिचक्राम नारद॥ ६०
तं प्रविष्टं तदा दृष्ट्वा भार्गवात्रेययोषितः।
प्रक्षोभमगमन् सर्वा हीनसत्त्वाः समन्ततः॥ ६१
ऋते त्वरुन्धतीमेकामनसूयां च भामिनीम्।
एताभ्यां भर्तृपूजासु तच्चिन्तासु स्थितं मनः। ६२
ततः संक्षुभिताः सर्वा यत्र याति महेश्वरः।
तत्र प्रयान्ति कामार्त्ता मदविह्वलितेन्द्रियाः॥ ६३
त्यक्त्वाश्रमाणि शून्यानि स्वानि ता मुनियोषितः।
अनुजग्मुर्यथा मत्तं करिण्य इव कुञ्जरम्॥ ६४
ततस्तु ऋषयो दृष्ट्वा भार्गवाङ्गिरसो मुने।
क्रोधान्वितास्त्रुवन्सर्वे लिङ्गोऽस्य पततां भुवि॥ ६५
ततः पपात देवस्य लिङ्गं पृथ्वीं विदारयन्।
अन्तर्द्धानं जगामाथ त्रिशूली नीललोहितः॥ ६६
ततः स पतितो लिङ्गो विभिद्य वसुधातलम्।
रसातलं विवेशाशु ब्रह्माण्डं चोर्ध्वतोऽभिनत्॥ ६७
ततश्चचाल पृथिवी गिरयः सरितो नगाः।
पातालभुवनाः सर्वे जङ्गमाजङ्गमैर्वृताः॥ ६८
संक्षुब्धान् भुवनान् दृष्ट्वा भूर्लोकादीन् पितामहः।
जगाम माधवं द्रष्टुं क्षीरोदं नाम सागरम्॥ ६९
तत्र दृष्ट्वा हृषीकेशं प्रणिपत्य च भक्तितः।
उवाच देव भुवनाः किमर्थं क्षुभिता विभो॥ ७०
अथोवाच हरिर्ब्रह्मन् शार्वो लिङ्गो महर्षिभिः।
पातितस्तस्य भारार्त्ता संचचाल वसुंधरा॥ ७१
ततस्तदद्भुततमं श्रुत्वा देवः पितामहः।
तत्र गच्छाम देवेश एवमाह पुनः पुनः॥ ७२

की कामनावाले उस (कामदेव) को देख हर भागने लगे। (५७)

तदनन्तर कामदेव के द्वारा पीछा किये जाते हुये महादेव घोर दारुवन में प्रविष्ट हुए जहाँ सपत्नीक ऋषिगण निवास करते थे। (५८)

उन ऋषियों ने भी उन्हें देखकर सिर झुका कर प्रणाम किया। तदनन्तर भगवान् ने उनसे कहा—'मुझे भिक्षा दीजिए।" (५९)

इस पर सभी महर्षि मौन रह गये। हे नारद! तदुपरान्त महादेव समस्त आश्रमों में भ्रमण करने लगे। (६०)

उस समय उन्हें प्रविष्ट हुआ देख अरुन्धती एवं सुन्दरी अनुसूया को छोड़कर, क्योंकि इनका मन पति की पूजा एवं ध्यान में लगा था, भार्गव और आत्रेय की समस्त पत्नियाँ प्रक्षुब्ध एवं सत्त्वहीन हो गईं। (६१ ६२)

तदनन्तर महेश्वर जहाँ जाते वहीं वे संक्षुभित, कामार्त एवं मद से विकल इन्द्रियों वाली सभी स्त्रियाँ भी जाने लगीं। (६३)

अपने आश्रमों को शून्य छोड़ मुनियों की वे स्त्रियाँ इस प्रकार उनका अनुसरण करने लगीं जैसे हथिनियाँ मतवाले कुञ्जर का अनुसरण करती हैं। (६४)

हे मुने! यह देखकर क्रोधान्वित भार्गव एवं आङ्गिरस ऋषियों ने कहा कि इनका लिंग भूमि पर गिर जाय। (६५)

तदनन्तर महादेव का लिंग पृथ्वी को विदीर्ण करता हुआ गिर गया। एवं नीललोहित त्रिशूली वहाँ से अन्तर्धान हो गये। (६६)

तदुपरान्त वह गिरा हुआ लिंग पृथ्वी का भेदन कर शीघ्र रसातल में प्रविष्ट हो गया एवं ऊपर की ओर उसने ब्रह्माण्ड का भेदन कर दिया। (६७)

तत्पश्चात् पृथ्वी, पर्वत, नदियाँ, पादप, तथा चराचर से पूर्ण समस्त पाताल एवं लोक काँप उठे। (६८)

पितामह ब्रह्मा भूर्लोक आदि भुवनों को संक्षुब्ध देख कर माधव को देखने क्षीरसागर पहुँचे। (६९)

वहाँ हृषीकेश को देख भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उन्होंने कहा—"हे देव! हे विभो! समस्त भुवन क्यों विक्षुब्ध हो गये हैं?" (७०)

तदनन्तर हरि ने कहा—"हे ब्रह्मन्! महर्षियों ने शम्भु के लिंग को गिरा दिया है उसके भार से आर्त वसुन्धरा विचलित हो रही है।" (७१)

तत्पश्चात् देव पितामह इस अद्भुत बात को सुनकर बारबार कहने लगे—"हे देवेश! वहाँ चलें।" (७२)

ततः पितामहो देवः केशवश्च जगत्पतिः।
आजग्मतुस्तमुद्देशं यत्र लिङ्गं भवस्य तत् ॥ ७३
ततोऽनन्तं हरिर्लिङ्गं दृष्ट्वारुह्य खगेश्वरम्।
पातालं प्रविवेशाथ विस्मयान्तरितो विभु. ॥ ७४
ब्रह्मा पद्मविमानेन ऊर्ध्वमाक्रम्य सर्वतः।
नैवान्तमलभद् ब्रह्मन् विस्मितः पुनरागत. ॥ ७५
विष्णुर्गत्वाऽथ पातालान् सप्त लोकपरायणः।
चक्रपाणिर्विनिष्क्रान्तो लेभेऽन्तं न महामुने ॥ ७६
विष्णुः पितामहश्चोभो हरलिङ्ग ममेत्य हि।
कृताञ्जलिपुटौ भूत्वा स्तोतुं देवं प्रचक्रतुः ॥ ॥ ७७
हरिब्रह्माणावूचतुः।
नमोऽस्तु ते शूलपाणे नमोऽस्तु वृषभध्वज।
जीमूतवाहन कवे शर्व त्र्यम्बक शंकर ॥ ७८
महेश्वर महेशान सुवर्णाक्ष वृषाकपे।
दक्षयज्ञक्षयकर कालरूप नमोऽस्तु ते ॥ ७९
त्वमादिरस्य जगतस्त्वं मध्य परमेश्वर।
भवानन्तश्च भगवान् सर्वगस्त्व नमोऽस्तु ते ॥ ८०
पुलस्त्य उवाच।
एव संस्तूयमानस्तु तस्मिन् दारुवने हरः।
स्वरूपी ताविदं वाक्यमुवाच वदतां वरः ॥ ८१
हर उवाच।
किमर्थं देवतानाथौ परिभूतक्रमं त्विह।
मां स्तुवाते भृशाम्वस्थं कामतापितविग्रहम् ॥ ८२
देवावूचतुः
भवत. पातितं लिङ्गं यदेतद् भुवि शंकर।
एतत् प्रगृह्यतां भूय अतो देव स्तुवावहे ॥ ८३
हर उवाच
यद्यर्चयन्ति त्रिदशा मम लिङ्गं सुरोत्तमौ।
तदेतत्प्रतिगृह्णीयां नान्यथेति कथंचन ॥ ८४
तत. प्रोवाच भगवानेवमस्त्विति केशवः।
ब्रह्मा स्वयं च जग्राह लिङ्ग कनकपिङ्गलम् ॥ ८५
ततश्चकार भगवांश्चातुर्वर्ण्यं हरार्चने।

तदुपरान्त देव पितामह और जगत्पति केशव वहाँ पहुँचे जहाँ शकर का वह लिंग था। (७३)

तदनन्तर उस अनन्त लिंग को देख कर विस्मयान्वित हरि गरुड पर सवार हो पाताल में प्रविष्ट हुए। (७४)

पद्मविमान के द्वारा ब्रह्मा सम्पूर्ण ऊर्ध्व देश को आक्रान्त करने पर भी उस लिंग का अन्त नहीं पा सके अत हे ब्रह्मन्! आश्चर्यान्वित होकर वे लौट आये। (७५)

लोकरक्षक चक्रपाणि विष्णु सातों पातालों में जाकर (पुन) बाहर निकले। हे महामुने! वे भी (उसका) अन्त नहीं पा सके। (७६)

विष्णु और पितामह दोनों हर के लिंग के पास जाकर हाथ जोड़कर देव की स्तुति करने लगे। (७७)

हरि और ब्रह्मा ने कहा—"हे शूलपाणे! आपको नमस्कार है। हे वृषभध्वज! हे जीमूतवाहन! हे कवि! हे शर्व! हे त्र्यम्बक! हे शकर! आपको नमस्कार है। (७८)

हे महेश्वर! हे महेशान! हे सुवर्णाक्ष! हे वृषाकपे! हे दक्षयज्ञ के विध्वंसक! हे कालरूप! आपको नमस्कार है। (७९)

हे परमेश्वर! आप इस जगत् के आदि मध्य एव अन्त हैं। आप भगवान् (षडैश्वर्यपूर्ण) और सर्वव्यापी हैं। आपको नमस्कार है। (८०)

पुलस्त्य ने कहा—"उस दारुवन में इस प्रकार स्तुति किये जाने पर वक्ताओं में श्रेष्ठ हर ने अपने स्वरूप मे आविर्भूत होकर (अर्थात् मूर्तिमान् होकर) उन दोनों से कहा— (८१)

हर ने कहा—'हे युगलदेवनानाथ! थकी गति वाले, कामानल से दग्ध एव अत्यन्त अस्वस्थ मेरी यहाँ आप क्यों स्तुति कर रहे हैं? (८२)

दोनों देवों ने कहा—"हे शंकर! पृथ्वी पर आपका जो यह लिंग गिराया गया है उस पुन आप ग्रहण करें। इसी लिए हम आपकी स्तुति कर रहे हैं। (८३)

हर ने कहा—"हे युगल सुरोत्तम! यदि देवता मेरे लिंग की अर्चना करें तभी मैं इसे पुन ग्रहण करूँगा अन्य किसी प्रकार नहीं।' (८४)

तब भगवान् केशव ने कहा—"ऐसा ही हो।" ब्रह्मा ने स्वय उस स्वर्ण के सदृश पिंगल लिंग को ग्रहण किया। (८५)

तब भगवान् ने चारों वर्णों को हर लिंग की अर्चना का

शास्त्राणि चैषां मुख्यानि नानोक्तिविदितानि च ॥८६
आद्यं शैवं परिख्यातमन्यत्पाशुपतं मुने ।
तृतीयं कालवदनं चतुर्थं च कपालिनम् ॥ ८७
शैवश्चासीत्स्वयं शक्तिर्वसिष्ठस्य प्रियः सुत. ।
तस्य शिष्यो बभूवाथ गोपायन इति श्रुत ॥ ८८
महापाशुपतश्चासीद्भरद्वाजस्तपोधनः ।
तस्य शिष्योऽप्यभूद्राजा ऋषभः सोमकेश्वरः ॥ ८९
कालास्यो भगवानासीदापस्तम्बस्तपोधनः ।
तस्य शिष्योभवद्वैश्यो नाम्ना क्राथेश्वरो मुने ॥ ९०
महाव्रती च धनदस्तस्य शिष्यश्च वीर्यवान् ।
कर्णोदर इति ख्यातो जात्या शूद्रो महातपाः ॥ ९१
एवं स भगवान्ब्रह्मा पूजनाय शिवस्य तु ।
कृत्वा तु चातुराश्रम्य स्वमेव भवन गत ॥ ९२
गते ब्रह्मणि शर्वोऽपि उपसंहृत्य त तदा ।
लिङ्गं चित्रवने सूक्ष्मं प्रतिष्ठाप्य चचार ह ॥ ९३

अधिकारी बनाया। इनके मुख्य शास्त्र नाना प्रकार के वचनों से प्रख्यात हैं। (८६)

हे मुने! (उन हरभक्तों का) प्रथम सम्प्रदाय) शैव, द्वितीय पाशुपत, तृतीय कालवदन, और चतुर्थ कपाली नाम से विख्यात है। (८७)

वसिष्ठ के प्रियपुत्र शक्ति स्वय शैव थे एव उनका गोपायन नाम से प्रसिद्ध शिष्य था। (८८)

तपोधन भरद्वाज महापाशुपत थे और सोमकेश्वर राजा ऋषभ उनके शिष्य हुए। (८९)

हे मुने! ऐश्वर्ययुक्त तपोधन आपस्तम्ब, कालवदन सम्प्रदाय के आचार्य थे। क्राथेश्वर नाम का उनका एक वैश्य शिष्य था। (९०)

धनद (नाम का) महाव्रती (कपाली) था। शूद्र जाति का महातपस्वी कर्णोदर नामक उनका एक प्रसिद्ध शिष्य था। (९१)

इस प्रकार भगवान् ब्रह्मा शिव की पूजा के लिये चार आश्रमों का विधान कर अपने भवन को चले गए। (९२)

ब्रह्मा के चले जाने पर महादेव ने भी उस लिंग को उपसंहृत कर लिया एव चित्रवन में सूक्ष्म लिंग प्रतिष्ठापित कर विचरण करने लगे। (९३)

विचरन्तं तदा भूयो महेश कुसुमायुधः ।
आरात्स्थित्वाऽग्रतो धन्वी सतापयितुमुद्यतः ॥ ९४
ततस्तमग्रतो दृष्ट्वा क्रोधाध्मातदृशा हरः ।
स्मरमालोकयामास शिखाग्राच्चरणान्तिकम् ॥ ९५
आलोकितस्त्रिनेत्रेण मदनो द्युतिमानपि ।
प्रादह्यत तदा ब्रह्मन् पादादारभ्य कक्षवत् ॥ ९६
प्रदह्यमानौ चरणौ दृष्ट्वाऽसौ कुसुमायुधः ।
उत्ससर्ज धनुः श्रेष्ठ तज्जगामाथ पञ्चधा ॥ ९७
यदासीन्मुष्टिबन्धं तु रुक्मपृष्ठं महाप्रभम् ।
स चम्पकतरुर्जात. सुगन्धाढ्यो गुणाकृतिः ॥ ९८
नाहस्थान शुभाकारं यदासीद्वज्रभूषितम् ।
तज्जात केसरारण्य बकुल नामतो मुने ॥ ९९
या च कोटी शुभा ह्यासीदिन्द्रनीलविभूषिता ।
जाता सा पाटला रम्या भृङ्गराजिविभूषिता ॥ १००
नाहोपरि तथा मुष्टौ स्थानं शशिमणिप्रभम् ।

उस समय महेश को विचरण करते देख पुष्पधन्वा कामदेव पुन उनके सम्मुख निकट स्थित होकर उन्हें सन्तापित करने को उद्यत हुआ। (९४)

तदुपरान्त महादेव ने उस कामदेव को सामने देखकर क्रोधपूर्ण दृष्टि से शिखा से चरण तक उसे देखा। (९५)

हे ब्रह्मन्! त्रिनेत्र द्वारा आलोकित होने पर द्युतिमान् होने पर भी कामदेव पैर से लेकर कक्ष पर्यन्त दग्ध हो गया। (९६)

कुसुमायुध मदन ने अपने चरणों को जलते हुए देख श्रेष्ठ धनुष को फेंक दिया जिसके पाँच टुकडे हो गए। (९७)

उस धनुष का परमप्रभायुक्त रुक्मपृष्ठ मुष्टिबन्ध सुगन्ध से भरा सुन्दर चम्पक वृक्ष हो गया। (९८)

हे मुने! उस धनुष का वज्रभूषित सुन्दर आकार वाला नाह-स्थान केसरारण्य वकुल नाम का वृक्ष बना। (९९)

इन्द्रनील से विभूषित उसकी सुन्दर कोटि भृंगों से विभूषित रमणीय पाटला (गुलाब) के रूप में परिणत हो गयी। (१००)

नाह के ऊपर मुष्टि में स्थित चन्द्रकान्तमणि की प्रभा से युक्त स्थान, शशिकिरण के समान उज्ज्वल पञ्चगुल्मा जाती (जूही) बन गया। (१०१)

पञ्चगुल्माऽभवज्जाती शशाङ्ककिरणोज्ज्वला ॥ १०१
ऊर्ध्वं मुष्ट्या अधः कोट्योः स्थानं विद्रुमभूषितम्।
तस्माद्बहुपुटा मल्ली संजाता विविधा मुने ॥ १०२
पुष्पोत्तमानि रम्याणि सुरभीणि च नारद।
जातिपुक्तानि देवेन स्वयमाचरितानि च ॥ १०३
मुमोच मार्गणान् भूम्यां शरीरे दह्यति स्मरः।
फलोपगानि वृक्षाणि संभूतानि सहस्रशः ॥ १०४
चूतादीनि सुगन्धीनि स्वादूनि विविधानि च।
हरप्रसादाज्जातानि भोज्यान्यपि सुरोत्तमैः ॥ १०५
एवं दग्ध्वा स्मरं रुद्रः संयम्य स्वतनुं विभुः।
पुण्यार्थी शिशिराद्रिं स जगाम तपसेऽव्ययः ॥ १०६

एवं पुरा देववरेण शंभुना
कामस्तु दग्धः सशरः सचाप.।
ततस्त्वनङ्गेति महाधनुर्द्धरो
देवैस्तु गीत. सुरपूर्वपूजितः ॥ १०७

इति श्रीवामनपुराणे षष्ठोऽध्याय ॥६॥

हे मुने! मुष्टि के ऊपर और दोनों कोटियों के नीचे वाले विद्रुममणि विभूषित स्थान से अनेक पुटों वाली मल्लिका (मालती) उत्पन्न हुई। (१०२)

हे नारद! देव के द्वारा जाती (जूही) के साथ अन्य सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्पों की सृष्टि हुई। शरीर के दग्ध होते समय कामदेव ने अपने बाणों को पृथ्वी पर फेंका जिससे सहस्रों प्रकार के फलयुक्त वृक्ष उत्पन्न हुए। (१०३-१०४)

श्री हर के प्रसाद से श्रेष्ठ देवताओं द्वारा भी भोज्य अनेक प्रकार के सुगन्धित एवं स्वादिष्ट आम्रादि फल उत्पन्न हुए। (१०५)

इस प्रकार मदन को भस्म कर एवं अपने शरीर को सयत कर विभु अव्यय रुद्र पुण्य की कामना से हिमालय पर तपस्या हेतु चले गए। (१०६)

पूर्व समय में इस प्रकार देवताओं में श्रेष्ठ शम्भु ने धनुष बाण सहित काम को दग्ध कर दिया। तत्पश्चात् देवताओं में प्रथम पूजित वह महाधनुर्धर देवों द्वारा "अनङ्ग" कहा गया। (१०७)

॥श्रीवामनपुराण में षष्ठ अध्याय समाप्त ॥६॥

७

पुलस्त्य उवाच ।
ततोऽनङ्गं विभुर्दृष्ट्वा ब्रह्मन् नारायणो मुनिः ।
प्रहस्यैवं वचः प्राह कन्दर्प इह आस्यताम् ॥ १
तदक्षुब्धत्वमीक्ष्यास्य कामो विस्मयमागतः ।
वसन्तोऽपि महाचिन्तां जगामाशु महामुने ॥ २
ततश्चाप्सरसो दृष्ट्वा स्वागतेनाभिपूज्य च ।
वसन्तमाह भगवानेह्येहि स्थीयतामिति ॥ ३
ततो विहस्य भगवान् मञ्जरीं कुसुमावृताम् ।
आदाय प्राक्सुवर्णाङ्गीमूर्वोर्बालां विनिर्ममे ॥ ४
ऊरूद्भवां स कन्दर्पो दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ।
अमन्यत तदाऽनङ्गः किमियं सा प्रिया रतिः ॥ ५
तदेव वदनं चारु स्वक्षिभ्रूकुटिलालकम् ।
सुनासावंशाधरोष्ठमालोकनपरायणम् ॥ ६
तावेवाहार्यविरलौ पीवरौ मग्नचूचुकौ ।
राजेतेऽस्याः कुचौ पीनौ सज्जनाविव संहतौ ॥ ७
तदेव तनु चार्वङ्ग्या वलित्रयविभूषितम् ।
उदरं राजते श्लक्ष्णं रोमावलिविभूषितम् ॥ ८
रोमावली च जघनाद् यान्ती स्तनतटं त्वियम् ।
राजते भृङ्गमालेव पुलिनात् कमलाकरम् ॥ ९
जघनं त्वतिविस्तीर्णं भात्यस्या रशनावृतम् ।
क्षीरोदमथने नद्धं भुजंगेनेव मन्दरम् ॥ १०
कदलीस्तम्भसदृशैरूर्ध्वमूलैरथोरुभिः ।
विभाति सा सुचार्वङ्गी पद्मकिञ्जल्कसन्निभा ॥ ११
जानुनी गूढगुल्फे च शुभे जङ्घे त्वरोमशे ।
विभातोऽस्यास्तथा पादावलक्तकसमत्विषौ ॥ १२
इति संचिन्तयन् कामस्तामनिन्दितलोचनाम् ।

७

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इसके अनन्तर विभु नारायण मुनि ने अनंग को देखकर हँसते हुए इस प्रकार वचन कहा—"हे कन्दर्प ! यहाँ बैठो।" (१)

काम उनकी उस अक्षुब्धता को देख कर विस्मयान्वित हुआ। हे महामुने ! वसन्त को भी तत्काल महती चिन्ता हुई। (२)

तदनन्तर अप्सराओं को देख कर स्वागत द्वारा उनकी पूजा कर भगवान् ने वसन्त से कहा—"आओ आओ बैठो।" (३)

तदुपरान्त भगवान् नारायण मुनि ने हँस कर एक कुसुमावृत मञ्जरी ली और अपने ऊरु पर एक सुवर्णाङ्गी बाला की सृष्टि की। (४)

ऊरु से उत्पन्न उस सर्वांग-सुन्दरी को देखकर कन्दर्प मन में सोचने लगा—'क्या यह मेरी प्रिया रति है ?' (५)

वैसे ही सुन्दर नेत्र, भौंह एवं कुटिल अलकों से युक्त, सुन्दर नासिका का वंश एवं अधरोष्ठ वाला तथा देखने में अत्यन्त आकर्षक यह मुख है। (६)

इसके वे ही मनोहर, अत्यन्त तथा मग्नचूचुक वाले पीन कुच सज्जन पुरुषों के सदृश परस्पर संहत हैं। (७)

इस सुन्दराङ्गी का वही कृश, त्रिवली विभूषित, कोमल तथा रोमावलि युक्त उदर शोभित हो रहा है। (८)

जघा से स्तनतट की ओर जाती हुई इसकी यह रोमावलि पुलिन से कमलाकर की ओर जाती हुई भ्रमरमाला के सदृश सुशोभित हो रही है। (९)

करधनी से आवृत अतिविस्तीर्ण इसका नितम्ब प्रदेश इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानों क्षीरसागर के मन्थन काल में भुजङ्गवेष्टित मन्दर पर्वत हो। (१०)

कमल के केसर के समान गौरवर्ण वाली यह सुन्दरी कदली स्तम्भ के समान ऊर्ध्वमूल ऊरुओं के द्वारा शोभित हो रही है। (११)

इसके दोनों घुटने, गूढगुल्फ, रोमहीन सुन्दर जघायें तथा आलक्तक के समान कान्ति वाले दोनों पाद अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। (१२)

हे मुने ! उस सुन्दर नेत्रवाली के विषय में इस प्रकार

कापातुरोऽसौ संजातः किमुतान्यो जनो मुने ॥ १३
माधवोऽप्युर्वशीं दृष्ट्वा संचिन्तयत नारद ।
किंस्वित् कामनरेन्द्रस्य राजधानी स्वयं स्थिता ॥ १४
आयाता शशिनो नूनमियं कान्तिर्निशाक्षये ।
रविरश्मिप्रतापार्तिभीता शरणमागता ॥ १५
इत्थं संचिंतयन्नेव अवष्टभ्याप्सरोगणम् ।
तस्थौ मुनिरिव ध्यानमास्थित. स तु माधवः ॥ १६
तत. स त्रिस्मितान् सर्वान् कन्दर्पादीन् महामुने ।
दृष्ट्वा प्रोवाच वचनं स्मितं कृत्वा शुभव्रतः ॥ १७
इयं ममोरुसंभूता कामाप्सरस माधव ।
नीयतां सुरलोकाय दीयतां वासवाय च ॥ १८
इत्युक्ताः कम्पमानास्ते जग्मुर्गृह्योर्वशीं दिवम् ।
सहस्राक्षाय तां प्रादाद् रूपयौवनशालिनीम् ॥ १९
आचक्षुश्चरितं ताभ्यां धर्मजाभ्यां महामुने ।
देवराजाय कामाद्यास्ततोऽभूद् विस्मयः परः ॥ २०

एतादृशं हि चरितं ख्यातिमग्र्यां जगाम ह ।
पातालेषु तथा मर्त्ये दिक्ष्वष्टासु जगाम च ॥ २१
एकदा निहते रौद्रे हिरण्यकशिपौ मुने ।
अभिषिक्तस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम दानवः ॥ २२
तस्मिञ्शासति दैत्येन्द्रे देवब्राह्मणपूजके ।
मखानि भुवि राजानो यजन्ते विधिवत्तदा ॥ २३
ब्राह्मणाश्च तपो धर्मं तीर्थयात्राश्च कुर्वते ।
वैश्याश्च पशुवृत्तिस्थाः शूद्राः शुश्रूषणे रताः ॥ २४
चातुर्वर्ण्यं ततः स्वे स्वे आश्रमे धर्मकर्मणि ।
आवर्त्तत ततो देवा वृत्त्या युक्ताभवन् मुने ॥ २५
ततस्तु च्यवनो नाम भार्गवेन्द्रो महातपाः ।
जगाम नर्मदां स्नातुं तीर्थे चैवाकुलीश्वरम् ॥ २६
तत्र दृष्ट्वा महादेवं नदीं स्नातुमवातरत् ।
अवतीर्णं प्रजग्राह नागः केकरलोहितः ॥ २७
गृहीतस्तेन नागेन सस्मार मनसा हरिम् ।

सोचते हुए जब यह कामदेव ही काममोहित हो गया तो फिर अन्य पुरुषों की क्या बात है। (१३)

हे नारद! वसन्त भी उस उर्वशी को देखकर सोचने लगा—"क्या यह कामनरेश की स्वयं राजधानी अवस्थित है ? (१४)

अथवा रात्रि का अन्त होने पर सूर्य की किरणों के ताप के भय से चन्द्रमा की कान्ति शरणागत हुई है। (१५)

इस प्रकार सोचते हुए अप्सराओं को रोक कर वसन्त, मुनि के सदृश ध्यानस्थ हो गया। (१६)

हे महामुने! तदुपरान्त शुभव्रत नारायण मुनि ने कन्दर्पादि सभी को विस्मयान्वित देख कर हँसते हुए कहा— (१७)

"हे काम, हे अप्सराओं, हे वसन्त, मेरे ऊरु से उत्पन्न इस बाला को सुरलोक मे ले जाओ और इन्द्र को दे दो।" (१८)

ऐसा कहे जाने पर वे सभी काँपते हुए उर्वशी को लेकर स्वर्ग में गए और इन्द्र को वह रूप यौवन शालिनी बाला दे दिया। (१९)

हे महामुने! कामादि ने इन्द्र से उन धर्मजों—(नर और नारायण) का चरित्र कहा जिससे उन्हें अत्यन्त विस्मय हुआ। (२०)

(नर और नारायण का) ऐसा चरित्र सर्वोच्च ख्याति को प्राप्त हुआ तथा वह पाताल, मर्त्यलोक एव आठों दिशाओं में व्याप्त हो गया। (२१)

हे मुने! प्राचीन काल में अति भयकर हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर प्रह्लाद नामक दानव राज्याभिषिक्त हुआ। (२२)

देवता और ब्राह्मण के पूजक उस दैत्येन्द्र के शासनकाल में पृथ्वी पर राजा लोग विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान करते थे। (२३)

ब्राह्मण लोग तपस्या, धर्मकार्य और तीर्थयात्रा, वैश्य लोग पशुपालन तथा शूद्र लोग शुश्रूषा करने लगे। (२४)

हे मुने! इस प्रकार चारों वर्ण अपने आश्रम मे अवस्थित रह कर धर्मकार्यों के अनुष्ठान में तत्पर हुए। इससे देवता भी वृत्ति से युक्त हो गये। (२५)

तदनन्तर भार्गवश्रेष्ठ महातपस्वी च्यवन नामक ऋषि नर्मदा के अकुलीश्वर तीर्थ मे स्नान करने गये। (२६)

वहाँ महादेव का दर्शन कर वे नदी में स्नान करने के लिये उतरे। जल में अवतीर्ण ऋषि को केकरलोहित साँप ने पकड लिया। (२७)

संस्मृते पुण्डरीकाक्षे निर्विषोऽभून्महोरगः ॥ २८
नीतस्तेनातिरौद्रेण पन्नगेन रसातलम् ।
निर्विषश्चापि तत्याज च्यवनं भुजगोत्तमः ॥ २९
संत्यक्तमात्रो नागेन च्यवनो भार्गवोत्तमः ।
चचार नागकन्याभिः पूज्यमानः समन्ततः ॥ ३०
विचरन् प्रविवेशाथ दानवानां महत् पुरम् ।
संपूज्यमानो दैत्येन्द्रैः प्रह्लादोऽथ ददर्श तम् ॥ ३१
भृगुपुत्रे महातेजाः पूजां चक्रे यथार्हतः ।
संपूजितोपविष्टश्च पृष्टश्चागमनं प्रति ॥ ३२
स चोवाच महाराज महातीर्थं महाफलम् ।
स्नातुमेवागतोऽस्म्यद्य द्रष्टुञ्चैवाकुलीश्वरम् ॥ ३३
नद्यामेवावतीर्णोऽस्मि गृहीतश्चाहिना बलात् ।
समानीतोऽस्मि पाताले दृष्टश्चात्र भवानपि ॥ ३४
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं च्यवनस्य दितीश्वरः ।
प्रोवाच धर्मसंयुक्तं स वाक्यं वाक्यकोविदः ॥ ३५

प्रह्लाद उवाच ।
भगवन् कानि तीर्थानि पृथिव्यां कानि चाम्बरे ।
रसातले च कानि स्युरेतद् वक्तुं ममार्हसि ॥ ३६
च्यवन उवाच ।
पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम् ।
चक्रतीर्थं महाबाहो रसातलतले विदुः ॥ ३७
पुलस्त्य उवाच ।
श्रुत्वा तद्भार्गववचो दैत्यराजो महामुने ।
नैमिषं गन्तुकामस्तु दानवानिदमब्रवीत् ॥ ३८
प्रह्लाद उवाच ।
उत्तिष्ठध्वं गमिष्यामः स्नातुं तीर्थं हि नैमिषम् ।
द्रक्ष्यामः पुण्डरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम् ॥ ३९
पुलस्त्य उवाच ।
इत्युक्ता दानवेन्द्रेण सर्वे ते दैत्यदानवाः ।
चक्रुरुद्योगमतुलं निर्जग्मुश्च रसातलात् ॥ ४०

उस साँप द्वारा गृहीत ऋषिने मन में हरि का स्मरण किया। पुण्डरीकाक्ष का स्मरण करने पर वह महान् नाग विषहीन हो गया। (२८)

उस महाभयकर विषहीन महानाग ने च्यवन ऋषि को रसातल में ले जाकर छोड दिया। (२९)

नाग से मुक्त होते ही भार्गवश्रेष्ठ च्यवन वहाँ चारों ओर से नागकन्याओं द्वारा पूजित होते हुए विचरण करने लगे। (३०)

विचरण करते हुए वे दानवों के विशाल नगर में प्रविष्ट हुए। वहाँ श्रेष्ठ दैत्यों द्वारा पूजित प्रह्लाद ने उन्हें देखा। (३१)

महातेजस्वी प्रह्लाद ने भृगुपुत्र की यथायोग्य पूजा की। पूजोपरान्त उनके बैठने पर उनसे आगमन का कारण पूछा। (३२)

उन्होंने कहा—हे महाराज! आज मैं महाफलदायक श्रेष्ठतीर्थ में स्नान करने तथा अकुलीश्वर का दर्शन करने आया था। (३३)

नदी में उतरते ही एक नाग ने मुझे हठात् पकड़ लिया। वह मुझे पाताल में लाया और मैंने यहाँ आप को भी देखा। (३४)

च्यवन की इस बात को सुन कर वाक्य-कोविद दितीश्वर ने यह धर्मसयुक्त वाक्य कहा। (३५)

प्रह्लाद ने कहा—हे भगवन्! कृपया मुझसे यह कहिये कि पृथ्वी, आकाश और पाताल में कौन कौन से तीर्थ हैं? (३६)

च्यवन ने कहा—हे महाबाहो! पृथ्वी में नैमिष, अन्तरिक्ष में पुष्कर और रसातल में चक्रतीर्थ प्रसिद्ध हैं। (३७)

पुलस्त्य ने कहा—हे महामुने! भार्गव की इस बात को सुन कर नैमिष तीर्थ में जाने के लिए इच्छुक दैत्यराज ने दानवों से यह कहा— (३८)

प्रह्लाद ने कहा—"उठो, हम सभी नैमिषतीर्थ में स्नान करने जायेंगे तथा वहाँ पीताम्बरधारी अच्युत पुण्डरीकाक्ष के दर्शन करेंगे।" (३९)

पुलस्त्य ने कहा—दानवेन्द्र के ऐसा कहने पर वे सभी दैत्य और दानव विपुल उद्योग किए एवं रसातल से बाहर निकले। (४०)

ते समभ्येत्य दैतेया दानवाश्च महाबलाः ।
नैमिषारण्यमागत्य स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः ॥ ४१
ततो दितीश्वरः श्रीमान् मृगव्यां स चचार ह ।
चरन् सरस्वतीं पुण्यां ददर्श विमलोदकाम् ॥ ४२
तस्यादूरे महाशाखं शालवृक्षं शरैश्चितम् ।
ददर्श बाणानपरान् मुखे लग्नान् परस्परम् ॥ ४३
ततस्तानद्भुताकारान् बाणान् नागोपवीतकान् ।
दृष्ट्वाऽतुलं तदा चक्रे क्रोधं दैत्येश्वरः किल ॥ ४४
स ददर्श ततोऽदूरात्कृष्णाजिनधरौ मुनी ।
समुन्नतजटाभारौ तपस्यासक्तमानसौ ॥ ४५
तयोश्च पार्श्वयोर्दिव्ये धनुषी लक्षणान्विते ।
शार्ङ्गमाजगवं चैव अक्षय्यौ च महेषुधी ॥ ४६
तौ दृष्ट्वाऽमन्यत तदा दाम्भिकाविति दानवः ।
ततः प्रोवाच वचनं तावुभौ पुरुषोत्तमौ ॥ ४७
किं भवद्भ्यां समारब्धं दम्भं धर्मविनाशनम् ।
क्व तपः क्व जटाभारः क्व चेमौ प्रवरायुधौ ॥ ४८
अथोवाच नरो दैत्यं का ते चिन्ता दितीश्वर ।
सामर्थ्ये सति यः कुर्यात् तत्संपद्येत तस्य हि ॥ ४९
अथोवाच दितीशस्तौ का शक्तिर्युवयोरिह ।
मयि तिष्ठति दैत्येन्द्रे धर्मसेतुप्रवर्तके ॥ ५०
नरस्तं प्रत्युवाचाथ आवाभ्यां शक्तिरूर्जिता ।
न कश्चिच्छक्नुयाद् योद्धुं नरनारायणौ युधि ॥ ५१
दैत्येश्वरस्ततः क्रुद्धः प्रतिज्ञामारुरोह च ।
यथा कथंचिज्जेष्यामि नरनारायणौ रणे ॥ ५२
इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा
दितीश्वरः स्थाप्य बलं वनान्ते ।
वितत्य चापं गुणमाविकृष्य
तलध्वनिं घोरतरं चकार ॥ ५३
ततो नरस्त्वाजगवं हि चाप-
मानम्य बाणान् सुबहूञ्शिताग्रान् ।

उन महाबलवान् दितिनन्दनों एवं दानवों ने नैमिषारण्य में आकर आनन्द से स्नान किया। (४१)

तदनन्तर दितीश्वर श्रीमान् प्रह्लाद मृगया करने के लिये विचरण करने लगे। भ्रमण करते हुए उन्होंने पवित्र एवं निर्मल जलवाली सरस्वती नदी को देखा। (४२)

वहाँ से थोड़ी दूर पर बाणों से विद्ध बड़ी बड़ी शाखाओं वाले एक शाल वृक्ष को देखा। अन्य बाण एक दूसरे के मुख से संलग्न थे। (४३)

तदनन्तर उन अद्भुत आकार वाले नागोपवीत बाणों को देख कर दैत्येश्वर को भयकर क्रोध हुआ। (४४)

तदुपरान्त उन्होंने दूर से ही कृष्णाजिनधारी, समुन्नत जटायुक्त तथा तपस्या मे तल्लीन दो मुनियों को देखा। (४५)

उन दोनों के पार्श्व में शार्ङ्ग और आजगव नामक सुलक्षणयुक्त दिव्य दो धनुष और दो अक्षय तथा बड़े तरकस वर्तमान थे। (४६)

उन्हें देखकर दानव प्रह्लाद ने उनको दाम्भिक समझा। तदनन्तर उन्होंने उन दोनों श्रेष्ठ पुरुषों से कहा— (४७)

"तुम दोनों धर्मविनाशक दम्भ को क्यों कर रहे हो? कहाँ तुम्हारी तपस्या, कहाँ तुम्हारा जटाभार और कहाँ ये दोनों श्रेष्ठ आयुध ?" (४८)

तदनन्तर नर ने दैत्य से कहा—"हे दितीश्वर! तुम क्यों चिन्ता कर रहे हो? सामर्थ्य रहने पर व्यक्ति जो कर्म करता है उसका वह कार्य उसको शोभा देता है। (४९)

तदुपरान्त दितीश्वर प्रह्लाद ने उन दोनों से कहा— धर्मसेतुप्रवर्तक मुझ दैत्येन्द्र के रहते यहाँ तुम दोनों की क्या शक्ति है? (५०)

तदनन्तर नर ने उन्हें प्रत्युत्तर दिया—"हम प्रचण्ड शक्ति से युक्त हैं। हम दोनों नर और नारायण से समर में कोई भी युद्ध नहीं कर सकता। (५१)

तदुपरान्त दैत्येश्वर ने क्रुद्ध होकर प्रतिज्ञा की—"मैं युद्ध में जिस किसी भी प्रकार नर और नारायण को जीतूँगा।" (५२)

ऐसा वचन कह कर महात्मा दितीश्वर ने वन की सीमा पर अपने सैन्य को स्थापित कर धनुष को फैलाया और प्रत्यञ्चा चढ़ा कर घोरतर तलध्वनि की। (५३)

तदनन्तर नर ने आजगव धनुष को झुका कर अनेक सुतीक्ष्ण बाणों को छोड़ा। किन्तु दैत्यपति ने अनेक स्वर्ण-

मुमोच बाणप्रतिमैः पृषत्कै-
श्चिच्छेद दैत्यस्तपनीयपुङ्खैः ॥ ५४

छिन्नान् समीक्ष्याथ नरः पृषत्कान्
दैत्येश्वरेणाप्रतिमेन संख्ये।
क्रुद्धः समानम्य महाधनुस्ततो
मुमोच चान्यान् विविधान् पृषत्कान् ॥ ५५

एकं नरो द्वौ दितिजेश्वरश्च
त्रीन् धर्मसूनुश्चतुरो दितीशः।
नरस्तु बाणान् प्रमुमोच पञ्च
षड् दैत्यनाथो निशितान् पृषत्कान् ॥ ५६

सप्तर्षिमुख्यो द्विचतुश्च दैत्यो
नरस्तु षट् त्रीणि च दैत्यमुख्ये।
षट्त्रीणि चैकं च दितीश्वरेण
मुक्तानि बाणानि नराय विप्र ॥ ५७

एकं च षट् पञ्च नरेण मुक्ता-
स्त्वष्टौ शराः सप्त च दानवेन।
षट् सप्त चाष्टौ नव षण्नरेण
द्विसप्ततिं दैत्यपतिः ससर्ज ॥ ५८

शतं नरस्त्रीणि शतानि दैत्यः
षड् धर्मपुत्रो दश दैत्यराजः।
ततोऽप्यसंख्येयतरान् हि बाणान्
मुमोचतुस्तौ सुभृशं हि कोपात् ॥ ५९

ततो नरो बाणगणैरसंख्यै-
रवास्तरद्भूमिमथो दिशः खम्।
स चापि दैत्यप्रवरः पृषत्कै-
श्चिच्छेद वेगात् तपनीयपुङ्खैः ॥ ६०

ततः पतत्रिभिर्वीरौ सुभृशं नरदानवौ।
युद्धे वरास्त्रैर्युध्येतां घोररूपैः परस्परम् ॥ ६१

ततस्तु दैत्येन वरास्त्रपाणिना
चापे नियुक्तं तु पितामहास्त्रम्।
महेश्वरास्त्रं पुरुषोत्तमेन
समं समाहत्य निपेततुस्तौ ॥ ६२

ब्रह्मास्त्रे तु प्रशमिते प्रह्लादः क्रोधमूर्छितः।
गदां प्रगृह्य तरसा प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ६३

गदापाणिं समायान्तं दैत्यं नारायणस्तदा।
दृष्ट्वाऽथ पृष्ठतश्चक्रे नरं योद्धुमनाः स्वयम् ॥ ६४

पुंख वाले अप्रतिम बाणों से उन बाणों को छिन्न भिन्न कर दिया। (५४)

तदुपरान्त नर ने युद्ध में अप्रतिम दैत्येश्वर के द्वारा बाणों को छिन्न हुआ देख क्रुद्ध होकर अपने महान् धनुष को झुकाते हुए अन्य अनेक बाणों को छोड़ा। (५५)

नर के एक बाण छोड़ने पर दितीश्वर ने दो बाण छोड़ा, धर्मपुत्र के तीन बाणों पर दितीश ने चार बाण छोड़ा। तदनन्तर नर के पाँच बाण छोड़ने पर दैत्यश्रेष्ठ ने छ तीव्र बाणों को छोड़ा। (५६)

हे विप्र! ऋषिमुख्य के सात बाण छोड़ने पर दैत्य ने आठ बाण छोड़ा। नर के द्वारा दैत्य पर नव बाण छोड़े जाने पर दैत्यपति ने नर पर दश बाण छोड़ा। (५७)

नर के बारह बाण छोड़ने पर दानव ने पन्द्रह बाण छोड़ा। नर के छत्तीस बाण छोड़ने पर दैत्यपति ने बहत्तर बाण चलाया। (५८)

नर के सौ बाणों पर दैत्य ने तीन सौ बाण चलाया। धर्मपुत्र के छ सौ बाण पर दैत्यराज ने एक हजार बाण छोड़ा। तदनन्तर उन दोनों ने अत्यन्त क्रोध से असंख्य बाण छोड़े। (५९)

तदनन्तर नर ने असंख्य बाणों से पृथ्वी, आकाश और दिशाओं को आच्छन्न कर दिया। उस दैत्यप्रवर ने भी बड़े वेग से स्वर्णपुंख वाले बाणों द्वारा उनके बाणों को काट दिया। (६०)

तदुपरान्त नर और दानव दोनों वीर बाणों तथा भयंकर श्रेष्ठ अस्त्रों से परस्पर संग्राम करने लगे। (६१)

तदनन्तर दैत्य ने श्रेष्ठ अस्त्र हाथ में लेकर धनुष पर ब्रह्मास्त्र नियोजित किया एवं पुरुषोत्तम नर ने माहेश्वरास्त्र का प्रयोग किया। वे दोनों अस्त्र परस्पर एक दूसरे को समाहत कर गिर गए। (६२)

ब्रह्मास्त्र व्यर्थ होने पर क्रोधमूर्छित प्रह्लाद वेग से गदा लेकर उत्तम रथ से कूद पड़े। (६३)

तवो दितीशः सगदः समाद्रवत्
सशार्ङ्गपाणिं तपसां निधानम्।
ख्यातं पुराणर्षिमुदारविक्रमं
नारायणं नारद लोकपालम्॥ ६५

इति श्रीवामनपुराणे सप्तमोऽध्याय ॥७॥

८

पुलस्त्य उवाच ।

शार्ङ्गपाणिनमायान्तं दृष्ट्वाऽग्रे दानवेश्वरः।
परिभ्राम्य गदां वेगात् मूर्ध्नि साध्यमताडयत्॥ १
ताडितस्याथ गदया धर्मपुत्रस्य नारद।
नेत्राभ्यामपतद् वारि वह्निवर्षनिभं भुवि॥ २
मूर्ध्नि नारायणस्यापि सा गदा दानवार्पिता।
जगाम शतधा ब्रह्मञ्शैलश्रृङ्गे यथाऽशनिः॥ ३
ततो निवृत्य दैत्येन्द्रः समास्थाय रथं द्रुतम्।
आदाय कार्मुकं वीरस्तूणाद् बाणं समाददे॥ ४
आनम्य चापं वेगेन गार्ध्रपत्राञ्शिलीमुखान्।
मुमोच साध्याय तदा क्रोधान्धकारिताननः॥ ५
तानापतत एवाशु बाणांश्चन्द्रार्द्धसन्निभान्।
चिच्छेद बाणैरपरैर्निर्बिभेद च दानवम्॥ ६
ततो नारायणं दैत्यो दैत्यं नारायणः शरैः।
आविध्येतां तदाऽन्योन्यं मर्मभिद्भिरजिह्मगैः॥ ७
ततोऽम्बरे संनिपातो देवानामभवन्मुने।

उस समय नारायण ने गदापाणि दैत्य को आते देख कर स्वयं युद्ध करने की इच्छा से नर को पीछे कर दिया। (६४)

तदनन्तर हे नारद! गदायुक्त दैत्यपति, तपोनिधान शार्ङ्गधनुर्धारी प्रसिद्ध पुरातन ऋषि महापराक्रमशाली लोकपति नारायण की ओर दौड़े। (६५)

श्रीवामनपुराण में सप्तम अध्याय समाप्त ॥७॥

८

पुलस्त्य ने कहा—दानवेश्वर ने शार्ङ्गपाणि साध्य (नारायण) को सामने आते देख गदा को घुमाकर वेग से उनके सिर पर प्रहार किया। (१)

हे नारद! गदा से ताडित धर्मपुत्र के नेत्रों से अग्नि वर्षा के सदृश अश्रुजल भूमि पर गिर पड़ा। (२)

हे ब्रह्मन्! शैलशृङ्ग पर गिर कर जैसे वज्र टूट जाता है उसी प्रकार दानव द्वारा नारायण के सिर पर चलायी गयी गदा सैकड़ों टुकड़े हो गई। (३)

तदनन्तर शीघ्रतापूर्वक लौट कर वीर दैत्येन्द्र ने रथ पर आरूढ हो धनुष लेकर तरकस से बाण निकाला। (४)

तदुपरान्त क्रोधान्ध दैत्येन्द्र ने वेग से धनुष को झुका कर गृध्र के पंख वाले अनेक बाणों को साध्य की ओर चलाया। (५)

नारायण ने शीघ्रतापूर्वक आ रहे उन अर्धचन्द्र तुल्य बाणों को बाणों से काट डाला और अन्य बाणों से दानव का भेदन किया। (६)

तदनन्तर दैत्य ने नारायण को और नारायण ने दैत्य को परस्पर मर्मभेदी एवं सीधे चलने वाले बाणों से विद्ध किया। (७)

हे मुने! उस समय शीघ्रतापूर्वक हो रहे इस लघु, विचित्र

दिदृक्षूणां तदा युद्धं लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥ ८
ततः सुराणां दुन्दुभयस् त्ववाद्यन्त महास्वनाः ।
पुष्पवर्षमनौपम्यं मुमुचुः साध्यदैत्ययोः ॥ ९
ततः पश्यत्सु देवेषु गगनस्थेषु तावुभौ ।
अयुध्येतां महेष्वासौ प्रेक्षकप्रीतिवर्द्धनम् ॥ १०
बबन्धतुस्तदाकाशं तावुभौ शरवृष्टिभिः ।
दिशश्च विदिशश्चैव छादयेतां शरोत्करैः ॥ ११
ततो नारायणश्चापं समाकृष्य महामुने ।
बिभेद मार्गणैस्तीक्ष्णैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥ १२
तथा दैत्येश्वरः क्रुद्धश्चापमानम्य वेगवान् ।
बिभेद हृदये बाह्वोर्वदने च नरोत्तमम् ॥ १३
ततोऽस्यतो दैत्यपतेः कार्मुकं मुष्टिबन्धनात् ।
चिच्छेदैकेन बाणेन चन्द्रार्धाकारवर्चसा ॥ १४
अपास्यत धनुश्छिन्नं चापमादाय चापरम् ।
अधिज्यं लाघवात् कृत्वा ववर्ष निशिताञ्शरान् ॥ १५
तानप्यस्य शरान् साध्यश्छित्त्वा बाणैरवारयत् ।
कार्मुकं च क्षुरप्रेण चिच्छेद पुरुषोत्तमः ॥ १६
छिन्नं छिन्नं धनुर्दैत्यस्त्वन्यदन्यत्समाददे ।
समादत्तं तदा साध्यो मुने चिच्छेद लाघवात् ॥ १७
संछिन्नेष्वथ चापेषु जग्राह दितिजेश्वरः ।
परिघं दारुणं दीर्घं सर्वलोहमयं दृढम् ॥ १८
परिगृह्याथ परिघं भ्रामयामास दानवः ।
भ्राम्यमाणं स चिच्छेद नाराचेन महामुनिः ॥ १९
छिन्ने तु परिघे श्रीमान् प्रह्लादो दानवेश्वरः ।
मुद्गरं भ्राम्य वेगेन प्रचिक्षेप नराग्रजे ॥ २०
तमापतन्तं बलवान् मार्गणैर्दशभिर्मुने ।
चिच्छेद दशधा साध्यः स छिन्नो न्यपतद् भुवि ॥ २१
मुद्गरे वितथे जाते प्रासमाविध्य वेगवान् ।
प्रचिक्षेप नराग्र्याय तं च चिच्छेद धर्मजः ॥ २२
प्रासे छिन्ने ततो दैत्यः शक्तिमादाय चिक्षिपे ।

एवं सुन्दर युद्ध को देखने की इच्छा वाले देवताओं का समूह आकाश में एकत्रित हो गया। (८)

तदनन्तर महान् शब्दकारी दुन्दुभियों को बजाकर देवताओं ने साध्य और दैत्य पर अनुपम पुष्प-वर्षा की। (९)

तदुपरान्त उन दोनों महाधनुर्धारियों ने आकाशस्थ देवों के सामने प्रेक्षकों की प्रीति बढ़ाने वाला युद्ध किया। (१०)

उस समय उन दोनों ने बाणों की वृष्टि से आकाश को आवृत कर दिया तथा बाणों के समूह से दिशाओं एवं विदिशाओं को आच्छादित कर दिया। (११)

हे महामुने! तदनन्तर नारायण ने धनुष को खींच कर तीक्ष्ण बाणों से प्रह्लाद के सभी मर्मस्थलों में प्रहार किया तथा वेगवान् दैत्येश्वर ने क्रोधपूर्वक धनुष को झुकाकर नरोत्तम के हृदय, दोनों बाहों और मुख में भेदन किया। (१२-१३)

तदनन्तर (नारायण ने) एक चन्द्रार्धाकार तेजस्वी बाण से बाण चला रहे दैत्यपति के धनुष को मुष्टिबन्ध से काट दिया। (१४)

(दैत्यपति ने) कटे धनुष को फेंक कर दूसरा धनुष ले लिया और शीघ्र ही उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की। (१५)

उसके उन शरों को भी साध्य ने बाणों से छिन्न कर निवारित कर दिया एवं पुरुषोत्तम ने तीक्ष्ण बाण से उसके धनुष को भी काट डाला। (१६)

हे मुने! धनुष के छिन्न होने पर दैत्यराज ने बारम्बार दूसरा धनुष ग्रहण किया किन्तु साध्य ने लिये गये उन धनुषों को भी लाघव से काट दिया। (१७)

तदनन्तर धनुषों के कट जाने पर दितिजेश्वर ने भयङ्कर दृढ एवं दीर्घ लौहमय परिघ को ग्रहण किया। (१८)

दानव ने परिघ को लेकर उसे घुमाया। घुमाए जा रहे परिघ को महामुनि (नारायण) ने बाण से काट डाला। (१९)

परिघ के कट जाने पर श्रीमान् दानवेश्वर प्रह्लाद ने वेग से मुद्गर को घुमा कर नारायण के ऊपर फेंका। (२०)

हे मुने! उस आ रहे मुद्गर को बलवान् साध्य ने दश बाणों से दश भागों में काट दिया और वह कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। (२१)

मुद्गर के व्यर्थ हो जाने पर वेगवान् दैत्य ने प्रास लेकर नरश्रेष्ठ के ऊपर फेंका। धर्मनन्दन ने उसे भी काट दिया। (२२)

तां च चिच्छेद बलवान् क्षुरप्रेण महातपाः ॥ २३
छिन्नेषु तेषु शस्त्रेषु दानवोऽन्यन्महद्धनुः ।
समादाय ततो बाणैरवतस्तार नारद ॥ २४
ततो नारायणो देवो दैत्यनाथं जगद्गुरुः ।
नाराचेन जघानाथ हृदये सुरतापसः ॥ २५
संभिन्नहृदयो ब्रह्मन् देवेनाद्भुतकर्मणा ।
निपपात रथोपस्थे तमपोवाह सारथिः ॥ २६
स संज्ञां सुचिरेणैव प्रतिलभ्य दितीश्वरः ।
सुदृढं चापमादाय भूयो योद्धुमुपागतः । २७
तमागतं सनिरीक्ष्य प्रत्युवाच नराग्रजः ।
गच्छ दैत्येन्द्र योत्स्यामः प्रातस्त्वाह्निकमाचर ॥ २८
एवमुक्तो दितीशस्तु साध्येनाद्भुतकर्मणा ।
जगाम नैमिषारण्यं क्रियां चक्रे तदाऽऽह्निकीम् ॥२९
एवं युध्यति देवे च प्रह्लादो ह्यसुरो मुने ।
रात्रौ चिन्तयते युद्धे कथं जेष्यामि दाम्भिकम् ॥ ३०
एवं नारायणेनाऽसौ सहायुध्यत नारद ।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु दैत्यो देवं न चाजयत् ॥ ३१
ततो वर्षसहस्रान्ते ह्यजिते पुरुषोत्तमे ।
पीतवाससमभ्येत्य दानवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३२
किमर्थं देवदेवेश साध्यं नारायणं हरिम् ।
विजेतुं नाऽद्य शक्नोमि एतन्मे कारणं वद ॥ ३३

पीतवासा उवाच ।

दुर्जयोऽसौ महाबाहुस्त्वया प्रह्लाद धर्मज्ञः ।
साध्यो विप्रवरो धीमान् मृधे देवासुरैरपि ॥ ३४

प्रह्लाद उवाच ।

यद्यसौ दुर्जयो देव मया साध्यो रणाजिरे ।
तत्कथं यत्प्रतिज्ञातं तदसत्यं भविष्यति ॥ ३५
हीनप्रतिज्ञो देवेश कथं जीवेत मादृशः ।
तस्मात्तवाग्रतो विष्णो करिष्ये कायशोधनम् । ३६

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा वचनं देवाग्रे दानवेश्वरः ।

प्रास के छिन्न होने पर दैत्य ने शक्ति लेकर फेंकी। बलवान् महातपा नारायण ने क्षुरप्र द्वारा उसे भी काट दिया। (२३)

हे नारद ! उन अस्त्रों के छिन्न होने पर दानव ने अन्य महाधनुष लेकर बाणों की वर्षा की। (२४)

तदनन्तर सुरतापस जगद्गुरु नारायण देव ने दैत्यपति के हृदय में नाराच से प्रहार किया। (२५)

हे ब्रह्मन् ! अद्भुतकर्मा देव द्वारा छिदे हृदय वाला वह दैत्य रथ के मध्य भाग मे गिर पड़ा। उसे सारथी वहाँ से हटा ले गया। (२६)

बहुत देर बाद चेतना प्राप्त कर सुदृढ धनुष लेकर दितीश्वर पुन युद्ध करने के लिए आया। (२७)

उसे आया देख नराग्रज ने कहा—"हे दैत्येन्द्र ! हम प्रात काल युद्ध करेंगे, जाओ इस समय आह्निक कर्म करो। (२८)

अद्भुतकर्मा साध्य के ऐसा कहने पर दितीश नैमिषारण्य मे गया और वहाँ उसने आह्निक कर्म किया। (२९)

हे मुने ! देव के ऐसा युद्ध करने पर असुर प्रह्लाद रात्रि मे यह विचार करता था कि युद्ध में दाम्भिक को कैसे जीतूँगा ? (३०)

हे नारद ! इस प्रकार दैत्य ने नारायण के साथ दिव्य सहस्र वर्षों तक युद्ध किया, परन्तु वह देव को नहीं जीत सका। (३१)

तदनन्तर सहस्र वर्षों के उपरान्त भी पुरुषोत्तम नारायण के अपराजित रहने पर दानव ने पीताम्बरधारी विष्णु के पास जाकर कहा— (३२)

"हे देवदेवेश ! मैं साध्य नारायण हरि को आज तक क्यों नहीं जीत सका ? मुझे इसका कारण बतलाएँ।" (३३)

पीताम्बरधारी ने कहा—"हे प्रह्लाद ! महाबाहु धर्मज्ञ तुम्हारे द्वारा दुर्जेय है। विप्रवर धीमान् साध्य देवासुरों द्वारा भी युद्ध मे अजेय है।" (३४)

प्रह्लाद ने कहा—"हे देव ! यदि वह साध्य देव रणांगण मे मेरे द्वारा दुर्जेय है तो मैंने जो प्रतिज्ञा की है उसका क्या होगा ? वह तो मिथ्या होगी।" (३५)

"हे देवेश ! मेरे जैसा व्यक्ति हीनप्रतिज्ञ होकर कैसे जीवित रहेगा ? इसलिये हे विष्णु ! मैं आप के सामने अपना शरीर शोधन करूँगा।" (३६)

पुलस्त्य ने कहा—विष्णु के सामने ऐसा वचन कह कर

शिरःस्नातस्तदा तस्थौ गृणन् ब्रह्म सनातनम् ॥ ३७
ततो दैत्यपतिं विष्णुः पीतवासाऽब्रवीद्वचः ।
गच्छ जेष्यसि भक्त्या तं न युद्धेन कथंचन ॥ ३८

प्रह्लाद उवाच ।

मया जितं देवदेव त्रैलोक्यमपि सुव्रत ।
जितोऽयं त्वत्प्रसादेन शक्रः किमुत धर्मजः ॥ ३९
असौ यद्यजयो देव त्रैलोक्येनापि सुव्रतः ।
न स्थातुं त्वत्प्रसादेन शक्यं किमु करोम्यज ॥ ४०

पीतवासा उवाच ।

सोऽहं दानवशार्दूल लोकानां हितकाम्यया ।
धर्मं प्रवर्त्तापयितुं तपश्चर्यां समास्थितः ॥ ४१
तस्माद्यदिच्छसि जयं तमाराधय दानव ।
तं पराजेष्यसे भक्त्या तस्माच्छुश्रूष धर्मजम् ॥ ४२

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तः पीतवासेन दानवेन्द्रो महात्मना ।
अब्रवीद्वचनं हृष्टः समाहूयाऽन्धकं मुने ॥ ४३

प्रह्लाद उवाच ।

दैत्याश्च दानवाश्चैव परिपाल्यास्त्वयान्धक ।
मयोत्सृष्टमिदं राज्यं प्रतीच्छस्व महाभुज ॥ ४४
इत्येवमुक्तो जग्राह राज्यं हैरण्यलोचनिः ।
प्रह्लादोऽपि तदाऽगच्छत् पुण्यं बदरिकाश्रमम् ॥ ४५
दृष्ट्वा नारायणं देवं नरं च दितिजेश्वरः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ववन्दे चरणौ तयोः ॥ ४६
तमुवाच महातेजा वाक्यं नारायणोऽव्ययः ।
किमर्थं प्रणतोऽसीह मामजित्वा महासुर ॥ ४७

प्रह्लाद उवाच ।

कस्त्वां जेतुं प्रभो शक्तः कस्त्वत्तः पुरुषोऽधिकः ।
त्वं हि नारायणोऽनन्तः पीतवासा जनार्दनः ॥ ४८
त्वं देवः पुण्डरीकाक्षस्त्वं विष्णुः शार्ङ्गचापधृक् ।
त्वमव्ययो महेशानः शाश्वतः पुरुषोत्तमः ॥ ४९
त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति चार्चयन्ति मनीषिणः ।
जपन्ति स्नातकास्त्वां च यजन्ति त्वां च याज्ञिकाः ॥ ५०

दानवेश्वर शिरःस्नात होकर सनातन ब्रह्म का जप करते हुए बैठ गए। (३७)

तदनन्तर पीताम्बरधारी विष्णु ने दैत्यपति से यह वचन कहा—"जाओ, उन्हें भक्ति से जीत सकोगे, युद्ध से कथमपि नहीं।" (३८)

प्रह्लाद ने कहा—"हे देवदेव! हे सुव्रत! आपकी कृपा से मैंने त्रैलोक्य तथा इन्द्र को जीता है। इस धर्मनन्दन की क्या बात है?" (३९)

'हे अजन्मा! यदि वह सुव्रत त्रैलोक्य से भी अजेय है तथा आपके प्रसाद से भी मैं उसके सामने नहीं ठहर सकता तो मैं क्या करूँ?' (४०)

पीताम्बरधारी ने कहा—हे दानवश्रेष्ठ! वह मैं ही हूँ जो जगत् की हितकामना से धर्मप्रवर्तनार्थ तपश्चर्या कर रहा हूँ। (४१)

अतः हे दानव! यदि तुम विजय चाहते हो तो उनकी आराधना करो। तुम उन्हें भक्ति द्वारा पराजित कर सकोगे अतः धर्मनन्दन की सेवा करो। (४२)

पुलस्त्य ने कहा—हे मुने! महात्मा पीताम्बरधारी के ऐसा कहने पर प्रसन्न दानवेन्द्र ने अन्धक को बुला कर यह वाक्य कहा— (४३)

प्रह्लाद ने कहा—"हे अन्धक! तुम दैत्यों और दानवों का प्रतिपालन करो। हे महाभुज! मेरे द्वारा त्यक्त यह राज्य तुम ग्रहण करो। (४४)

इस प्रकार कहने पर हिरण्याक्ष के पुत्र ने राज्य ग्रहण किया। तदनन्तर प्रह्लाद भी पवित्र बदरिकाश्रम चले गये। (४५)

दितिजेश्वर ने नारायण देव तथा नर को देख हाथ जोड़ कर उनके चरणों में प्रणाम किया। (४६)

महातेजस्वी अव्यय नारायण ने उससे कहा—"हे महासुर! मुझे विना जीते तुम क्यों यहाँ प्रणत हुए हो?" (४७)

प्रह्लाद ने कहा—हे प्रभो! आपको कौन जीत सकता है? कौन पुरुष आप से बढ़कर हो सकता है? आप ही अनन्त नारायण पीताम्बरधारी जनार्दन हैं। (४८)

आपही देव पुण्डरीकाक्ष तथा शार्ङ्गधनुषधारी विष्णु हैं। आप अव्यय, महेश्वर तथा शाश्वत पुरुषोत्तम हैं।" (४९)

'योगी आपका ध्यान करते हैं, मनीषी आपकी पूजा करते हैं, स्नातक आपके नाम का जप करते हैं तथा याज्ञिक आपका यजन करते हैं।" (५०)

त्वमच्युतो हृषीकेशश्चक्रपाणिर्धराधरः।
महामीनो हयशिरास्त्वमेव वरकच्छपः ॥ ५१
हिरण्याक्षरिपुः श्रीमान् भगवानथ सूकरः।
मत्पितुर्नाशनकरो भवानपि नृकेसरी ॥ ५२
ब्रह्मा त्रिनेत्रोऽमरराड् हुताशः
प्रेताधिपो नीरपतिः समीरः।
सूर्यो मृगाङ्कोऽचलजङ्गमाद्यो
भवान् विभो नाथ खगेन्द्रकेतो ॥ ५३
त्वं पृथ्वी ज्योतिराकाशं जलं भूत्वा सहस्रशः।
त्वया व्याप्तं जगत्सर्वं कस्त्वां जेष्यति माधव ॥ ५४
भक्त्या यदि हृषीकेश तोषमेषि जगद्गुरो।
नान्यथा त्वं प्रशक्योऽसि जेतुं सर्वगताव्यय ॥ ५५
भगवानुवाच।
परितुष्टोऽस्मि ते दैत्य स्तवेनानेन सुव्रत।
भक्त्या त्वनन्यया चाहं त्वया दैत्य पराजितः ॥ ५६
पराजितश्च पुरुषो दैत्य दण्डं प्रयच्छति।
दण्डार्थं ते प्रदास्यामि वरं वृणु यमिच्छसि ॥ ५७

प्रह्लाद उवाच।
नारायण वरं याचे यं त्वं मे दातुमर्हसि।
तन्मे पापं लयं यातु शारीरं मानसं तथा ॥ ५८
वाचिकं च जगन्नाथ यत्त्वया सह युध्यतः।
नरेण यद्यप्यभवद् वरमेतत्प्रयच्छ मे ॥ ५९
नारायण उवाच।
एवं भवतु दैत्येन्द्र पापं ते यातु संक्षयम्।
द्वितीयं प्रार्थय वरं तं ददामि तवासुर ॥ ६०
प्रह्लाद उवाच।
या या जायेत मे बुद्धिः सा सा विष्णो त्वदाश्रिता।
देवार्चने च निरता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा ॥ ६१
नारायण उवाच।
एवं भविष्यत्यसुर वरमन्यं यमिच्छसि।
तं वृणीष्व महाबाहो प्रदास्याम्यविचारयन् ॥ ६२
प्रह्लाद उवाच।
सर्वमेव मया लब्धं त्वत्प्रसादादधोक्षज।
त्वत्पादपङ्कजाभ्यां हि ख्यातिरस्तु सदा मम ॥ ६३

"आप अच्युत, हृषीकेश, चक्रपाणि, धराधर, महामत्स्य, हयग्रीव तथा श्रेष्ठ कच्छप (कूर्मावतार) हैं।" (५१)

"आप श्रीमान्, हिरण्याक्ष रिपु, तथा भगवान् सूकर हैं। आप ही मेरे पिता के नाशक भगवान् नृसिंह हैं। (५२)

"आप ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, अग्नि, यमराज, वरुण और वायु हैं। हे विभो! हे नाथ! हे खगेन्द्रकेतु (गरुड़ध्वज)! आप सूर्य, चन्द्र तथा स्थावर और जंगम में आदि हैं।" (५३)

आप पृथ्वी, अग्नि, आकाश, जल हैं। सहस्रों रूपों से आप ने समस्त जगत् को व्याप्त किया है। हे माधव! कौन आप को जीतेगा? (५४)

"हे जगद्गुरो! हे हृषीकेश! आप भक्ति से ही सन्तुष्ट हो सकते हैं। हे सर्वगत! हे अविनाशी! आप दूसरे किसी प्रकार से नहीं जीते जा सकते।" (५५)

भगवान् ने कहा—हे सुव्रत! हे दैत्य! तुम्हारे इस स्तव से मैं सन्तुष्ट हूँ। हे दैत्य! इस अनन्य भक्ति से तुम्हारे द्वारा मैं पराजित हो गया हूँ। (५६)

"हे दैत्य! पराजित पुरुष दण्ड देता है। अस्तु, दण्ड के निमित्त मैं तुम्हें वर दूँगा। इच्छित वर माँगो।" (५७)

प्रह्लाद ने कहा—"हे नारायण! मैं वर माँगता हूँ जिसे आप दे सकते हैं। हे जगन्नाथ! आपके तथा नर के साथ युद्ध करने में मेरे शरीर, मन और वाणी से जो भी पाप हुआ हो वह नष्ट हो जाय। मुझे यही वर दें। (५८-५९)

नारायण ने कहा—"हे दैत्येन्द्र! ऐसा ही हो। तुम्हारा पाप नष्ट हो जाय। हे असुर! दूसरा वर माँगो। उसे भी मैं तुम्हें दूँगा।" (६०)

प्रह्लाद ने कहा—"हे विष्णु! मेरे भीतर जो जो बुद्धि उत्पन्न हो वह आपके ही आश्रित, देवार्चन में निरत और आपके चिन्तन में लगी रहे। (६१)

नारायण ने कहा—"हे असुर! ऐसा ही होगा। हे महाबाहो! अन्य जो वर तुम चाहो माँगो। मैं बिना विचारे तुम्हें दूँगा। (६२)

प्रह्लाद ने कहा—"हे अधोक्षज! आपके अनुग्रह से मुझे सब कुछ मिल गया। आपके चरणकमलों से मेरी प्रसिद्धि सदा बनी रहे।" (६३)

नारायण उवाच ।
एवमस्त्वपरं चास्तु नित्यमेवाक्षयोऽव्ययः ।
अजरश्चामरश्चापि मत्प्रसादाद् भविष्यसि ॥ ६४
गच्छस्व दैत्यशार्दूल स्वमावासं क्रियारत. ।
न कर्मबन्धो भवतो मच्चित्तस्य भविष्यति ॥ ६५
प्रशासयदमून् दैत्यान् राज्यं पालय शाश्वतम् ।
स्वजातिसदृशं दैत्य कुरु धर्ममनुत्तमम् ॥ ६६
पुलस्त्य उवाच ।
इत्युक्तो लोकनाथेन प्रह्लादो देवमब्रवीत् ।
कथं राज्यं समादास्ये परित्यक्तं जगद्गुरो ॥ ६७
तमुवाच जगत्स्वामी गच्छ त्वं निजमाश्रयम् ।
हितोपदेष्टा दैत्यानां दानवाना तथा भव ॥ ६८

नारायणेनैवमुक्तः स तदा दैत्यनायकः ।
प्रणिपत्य विभुं तुष्टो जगाम नगरं निजम् ॥ ६९
दृष्टः सभाजितश्चापि दानवैरन्धकेन च ।
निमन्त्रितश्च राज्याय न प्रत्यैच्छत्स नारद ॥ ७०
राज्यं परित्यज्य महाऽसुरेन्द्रो
नियोजयन् सत्पथि दानवेन्द्रान् ।
ध्यायन् स्मरन् केशवमप्रमेय
तस्थौ तदा योगविशुद्धदेहः ॥ ७१
एवं पुरा नारद दानवेन्द्रो
नारायणेनोत्तमपूरुषेण ।
पराजितश्चापि विमुच्य राज्यं
तस्थौ मनो धातरि सन्निवेश्य ॥ ७२

इति श्रीवामनपुराणे अष्टमोऽध्याय ॥८॥

नारायण ने कहा—"ऐसा ही होगा । इसके अतिरिक्त मेरे प्रसाद से तुम अक्षय, अविनाशी, अजर और अमर होगे । (६४)

"हे दैत्यशार्दूल ! अपने घर जाओ । सदा (धर्म) कार्य में रत रहो । मुझ में चित्त लगाये रखने से तुम्हें कर्म बन्धन नहीं होगा । (६५)

"इन दैत्यों का शासन करते हुए शाश्वत राज्य का पालन करो । हे दैत्य ! अपनी जाति के अनुकूल श्रेष्ठ धर्मों का अनुष्ठान करो ।" (६६)

पुलस्त्य ने कहा—लोकनाथ के ऐसा कहने पर प्रह्लाद ने भगवान् से कहा—"हे जगद्गुरो, परित्यक्त राज्य को कैसे ग्रहण करूँ ?" (६७)

जगत्स्वामी ने उससे कहा—"तुम अपने घर जाओ तथा दैत्यों एव दानवों क हितोपदेशक बनो । (६८)

नारायण के एसा कहने पर वे दैत्यनायक (प्रह्लाद) विभुको प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर चले गये । (६९)

हे नारद ! अन्धक तथा दानवों ने प्रह्लाद को देखा तथा सम्मान किया और उन्हें राज्य स्वीकार करने के लिए निमन्त्रित किया, किन्तु उन्होंने राज्य नहीं स्वीकार किया । (७०)

महासुरेन्द्र (प्रह्लाद) राज्य को छोड़, दानवेन्द्रों को शुभ मार्ग मे नियोजित कर तथा अप्रमेय केशव का ध्यान और स्मरण करते हुए योग के द्वारा विशुद्ध शरीर होकर अव स्थित हुए । (७१)

हे नारद ! इस प्रकार, प्राचीन समय मे पुरुषोत्तम नारायण द्वारा पराजित दानवेन्द्र प्रह्लाद राज्य छोड़ कर विधाता नारायण में चित्त सलग्न कर अवस्थित हुए । (७२)

श्रीवामनपुराण म अष्टम अध्याय समाप्त ॥८॥

९

नारद उवाच ।
नेत्रहीनः कथं राज्ये प्रह्लादेनान्धको मुने ।
अभिषिक्तो जानताऽपि राजधर्मं सनातनम् ॥ १
पुलस्त्य उवाच ।
लब्धचक्षुरसौ भूयो हिरण्याक्षेऽपि जीवति ।
ततोऽभिषिक्तो दैत्येन प्रह्लादेन निजे पदे ॥ २
नारद उवाच ।
राज्येऽन्धकोऽभिषिक्तस्तु किमाचरत सुव्रत ।
देवादिभिः सह कथं समास्ते तद् वदस्व मे ॥ ३
पुलस्त्य उवाच ।
राज्येऽभिषिक्तो दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः ।
तपसाराध्य देवेशं शूलपाणिं त्रिलोचनम् ॥ ४
अजेयत्वमवध्यत्वं सुरसिद्धर्षिपन्नगैः ।
अदाह्यत्वं हुताशेन अक्लेद्यत्वं जलेन च ॥ ५
एवं स वरलब्धस्तु दैत्यो राज्यमपालयत् ।
शुक्रं पुरोहितं कृत्वा समध्यास्ते ततोऽन्धकः ॥ ६
ततश्चक्रे समुद्योग देवानामन्धकोऽसुरः ।
आक्रम्य वसुधां सर्वां मनुजेन्द्रान् पराजयत् ॥ ७
पराजित्य महीपालान् सहायार्थे नियोज्य च ।
तैः समं मेरुशिखरं जगामाद्भुतदर्शनम् ॥ ८
शक्रोऽपि सुरसैन्यानि समुद्योज्य महागजम् ।
समारुह्यामरावत्यां गुप्तिं कृत्वा विनिर्ययौ ॥ ९
शक्रस्यानु तथैवान्ये लोकपाला महौजसः ।
आरुह्य वाहनं स्वं स्वं सायुधा निर्ययुर्बहिः ॥ १०
देवसेनाऽपि च समं शक्रेणाद्भुतकर्मणा ।
निर्जगामातिवेगेन गजवाजिरथादिभिः ॥ ११
अग्रतो द्वादशादित्याः पृष्ठतश्च त्रिलोचनाः ।
मध्येऽष्टौ वसवो विश्वे साध्याश्विमरुतां गणाः ।

९

नारद ने कहा—"हे मुने ! सनातन राजधर्म जानते हुए भी प्रह्लाद ने नेत्रहीन अन्धक को क्यों राज्याभिषिक्त किया ? (१)

पुलस्त्य ने कहा—हिरण्याक्ष के जीवित रहने के समय ही पुन उसे दृष्टि प्राप्त हो गई थी। इसी से दैत्य प्रह्लाद ने अपने पद पर इसे अभिषिक्त किया। (२)

नारद ने कहा—"हे सुव्रत ! मुझे यह बतलाइये कि अन्धक ने राज्याभिषिक्त होकर क्या किया तथा देवादिकों के साथ कैसा व्यवहार किया ? (३)

पुलस्त्य ने कहा—हिरण्याक्षतनय दैत्येन्द्र अन्धक ने राज्याभिषिक्त होकर तपस्या द्वारा देवेश शूलपाणि त्रिलोचन की आराधना कर उनसे सुर, सिद्ध, ऋषि एवं पन्नगों द्वारा अजेयत्व तथा अवध्यत्व, अग्नि के द्वारा अदाह्यत्व (जलाया न जाना) और जल से अक्लेद्यत्व (भिगोया न जाना) रूप वरदान प्राप्त कर राज्य का पालन किया और शुक्राचार्य को पुरोहित पद पर नियुक्त कर निवास करने लगा। (४-६)

तदनन्तर अन्धकासुर ने देवताओं को जीतने का उद्योग किया तथा सम्पूर्ण पृथ्वी को आक्रान्त कर श्रेष्ठ राजाओं को पराजित कर दिया। (७)

राजाओं को पराजित कर तथा उन्हें अपनी सहायता मे नियुक्त कर उनके साथ वह मेरु पर्वत के देखने मे अद्भुत शिखर पर पहुँचा। (८)

इन्द्र भी देव सेना को सजा कर महागज ऐरावत पर आरूढ होकर अमरावती मे सुरक्षा की व्यवस्था कर बाहर निकले। (९)

अन्यान्य महातेजस्वी आयुधधारी लोकपालगण अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर इन्द्र के पीछे-पीछे बाहर निकल पड़े। (१०)

अद्भुतकर्मा इन्द्र के साथ हाथी घोड़े रथ आदि से युक्त देवसेना भी बडे वेग से निकल पड़ी। (११)

अग्रभाग में द्वादश आदित्य, पृष्ठभाग में त्रिलोचन,

यक्षविद्याधराद्याश्च स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥ १२

नारद उवाच ।

रुद्रादीनां वदस्वेह वाहनानि च सर्वशः ।
एकैकस्यापि धर्मज्ञ परं कौतूहलं मम ॥ १३

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुष्व कथयिष्यामि सर्वेषामपि नारद ।
वाहनानि समासेन एकैकस्यानुपूर्वशः ॥ १४
रुद्रहस्ततलोत्पन्नो महावीर्यो महाजवः ।
श्वेतवर्णो गजपतिर्देवराजस्य वाहनम् ॥ १५
रुद्रोरुसंभवो भीमः कृष्णवर्णो मनोजवः ।
पौण्ड्को नाम महिषो धर्मराजस्य नारद ॥ १६
रुद्रकर्णमलोद्भूतः श्यामो जलधिसंज्ञकः ।
शिशुमारो दिव्यगतिः वाहनं वरुणस्य च ॥ १७
रौद्रः शकटचक्राक्षः शैलाकारो नरोत्तमः ।
अम्बिकापादसम्भूतो वाहनं धनदस्य तु ॥ १८
एकादशानां रुद्राणां वाहनानि महामुने ।
गन्धर्वाश्च महावीर्या भुजगेन्द्राश्च दारुणाः ।
श्वेतानि सौरमेयाणि वृषाण्युग्रजवानि च ॥ १९
रथं चन्द्रमसश्चार्द्धसहस्रं हंसवाहनम् ।
हरयो रथवाहाश्च आदित्या मुनिसत्तम ॥ २०
कुञ्जरस्थाश्च वसवो यक्षाश्च नरवाहनाः ।
किन्नरा भुजगारूढा हयारूढौ तथाश्विनौ ॥ २१
सारङ्गाधिष्ठिता ब्रह्मन् मरुतो घोरदर्शनाः ।
शुकारूढाश्च कवयो गन्धर्वाश्च पदातिनः ॥ २२
आरुह्य वाहनान्येवं स्वानि स्वान्यमरोत्तमाः ।
सन्नह्य निर्ययुर्हृष्टा युद्धाय सुमहौजसः ॥ २३

नारद उवाच ।

गदितानि सुरादीनां वाहनानि त्वया मुने ।
दैत्यानां वाहनान्येव यथावद् वक्तुमर्हसि ॥ २४

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुष्व दानवादीनां वाहनानि द्विजोत्तम ।
कथयिष्यामि तत्त्वेन यथावच्छ्रोतुमर्हसि ॥ २५

(रुद्रगण), मध्य में आठोंवसु, विश्वेदेव, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, यक्ष, विद्याधर आदि अपने-अपने वाहन पर अधिष्ठित होकर चलने लगे । (१२)

नारद ने कहा—"हे धर्मज्ञ ! रुद्र आदि के वाहनों का एक एक कर पूर्णतया वर्णन कीजिये । इस विषय में मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है । (१३)

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद ! सुनो, मैं एक एक करके क्रमश सभी के वाहनों का सक्षेप में वर्णन करता हूँ । (१४)

रुद्र के करतल से उत्पन्न महावीर्ययुक्त एवं अति वेगवान् शुक्लवर्ण वाला गजपति (ऐरावत) देवराज का वाहन है । (१५)

हे नारद ! रुद्र के ऊरु से उत्पन्न भयकर, कृष्णवर्ण वाला एव मन के सदृश वेगवान् पौण्ड्रक नामक महिष धर्मराज का वाहन है । (१६)

रुद्र के कर्ण-मल से उत्पन्न श्यामवर्ण वाला दिव्यगति शील जलधि नामक शिशुमार वरुण का वाहन है । (१७)

अम्बिका के चरणों से उत्पन्न भयकर, गाड़ी के चक्रवत् चक्षुवाला, पर्वताकार नरोत्तम कुबेर का वाहन है । (१८)

हे महामुने ! एकादश रुद्रों के वाहन महावीर्यशाली गन्धर्वगण, दारुण भुजगेन्द्रगण तथा सुरभि के अश से उत्पन्न तीव्रगति वाले श्वेत वृषभ हैं । (१९)

हे मुनिश्रेष्ठ ! चन्द्रमा के रथ के वाहक अर्ध सहस्र (पाँच सौ) हस हैं । आदित्यों के रथ के वाहक घोडे हैं । (२०)

वसुओं के वाहन कुजर, यक्षों के वाहन नर, किन्नरों के वाहन सर्प एव अश्विनीकुमारों के वाहन अश्व हैं । (२१)

हे ब्रह्मन् ! भयंकर दीखने वाले मरुद्गणों के वाहन सारङ्ग हैं, कवियों (भृगुओं) के वाहन शुक हैं तथा गन्धर्वलोग पदाति हैं । (२२)

इस प्रकार अतितेजस्वी श्रेष्ठ देवगण अपने-अपने वाहनों पर आरूढ एव सन्नद्ध होकर हर्षपूर्वक युद्धार्थ निकले । (२३)

नारद ने कहा—हे मुने ! आपने देवादिकों के वाहनों का वर्णन किया । इसी प्रकार अब दैत्यों के वाहनों का यथा वत् वर्णन करें । (२४)

पुलस्त्य ने कहा—हे द्विजोत्तम ! दानवों के वाहन को सुनो ! मैं तत्त्वत यथावत् वर्णन करता हूँ । (२५)

अन्धकस्य रथो दिव्यो युक्तः परमवाजिभिः ।
कृष्णवर्णैः सहस्रारस् त्रिनल्वपरिमाणवान् ॥ २६

प्रह्लादस्य रथो दिव्यश्चन्द्रवर्णैर्हयोत्तमैः ।
उह्यमानस्तथाऽष्टाभिः श्वेतरुक्ममयः शुभः ॥ २७

विरोचनस्य च गजः कुजम्भस्य तुरंगमः ।
जम्भस्य तु रथो दिव्यो हयैः काञ्चनसन्निभैः ॥ २८

शङ्कुकर्णस्य तुरगो हयग्रीवस्य कुञ्जरः ।
रथो मयस्य विख्यातो दुन्दुभेश्च महोरगः ।
शम्बरस्य विमानोऽभूदयःशङ्कोर्मृगाधिपः ॥ २९

बलवृत्रौ च बलिनौ गदामुसलधारिणौ ।
पद्भ्यां दैवतसैन्यानि अभिद्रवितुमुद्यतौ ॥ ३०

ततो रणोऽभूत् तुमुलः संकुलोऽतिभयंकरः ।
रजसा संवृतो लोको पिङ्गवर्णेन नारद ॥ ३१

नाज्ञासीच पिता पुत्रं न पुत्रः पितरं तथा ।
स्वानेवान्ये निजघ्नुर्वै परानन्ये च सुव्रत ॥ ३२

अभिद्रुतो महावेगो रथोपरि रथस्तदा ।
गजो मत्तगजेन्द्रं च सादी सादिनमभ्यगात् ॥ ३३

पदातिरपि संक्रुद्धः पदातिनमथोल्बणम् ।
परस्परं तु प्रत्यघ्नन्नन्योन्यजयकाङ्क्षिणः ॥ ३४

ततस्तु संकुले तस्मिन् युद्धे दैवासुरे मुने ।
प्रावर्तत नदी घोरा शमयन्ती रणाद्रजः ॥ ३५

शोणितोदा रथावर्त्ता योधसंघट्टवाहिनी ।
गजकुम्भमहाकूर्मा शरमीना दुरत्यया ॥ ३६

तीक्ष्णाग्रप्रासमकरा महासिग्राहवाहिनी ।
अन्त्रशैवालसंकीर्णा पताकाफेनमालिनी ॥ ३७

गृध्रकङ्कमहाहंसा श्येनचक्राह्वमण्डिता ।
वनवायसकादम्बा गोमायुश्वापदाकुला ॥ ३८

पिशाचमुनिसंकीर्णा दुस्तरा प्राकृतैर्जनैः ।
रथप्लवैः संतरन्तः शूरास्तां प्रजगाहिरे ॥ ३९

आगुल्फादवमज्जन्तः सूदयन्तः परस्परम् ।

अन्धक का अलौकिक रथ कृष्णवर्ण के श्रेष्ठ अश्वों से परिचालित है एवं सहस्र अरों (पहिये की नाभि और नेमि के बीच की लकड़ियों) से युक्त और बारह सौ हाथ परिमाण वाला है। (२६)

प्रह्लाद का श्वेतरुक्ममय सुन्दर दिव्य रथ चन्द्रवर्ण-वाले आठ उत्तम अश्वों से वाहित होता है। (२७)

विरोचन का वाहन हाथी एवं कुजम्भ का घोडा है तथा जम्भ का दिव्य रथ काञ्चन तुल्य अश्वों से युक्त है। (२८)

शंकुकर्ण का वाहन अश्व, हयग्रीव का वाहन हाथी, मय दानव का विख्यात रथ एवं दुन्दुभि का वाहन विशाल उरग है। शम्बर का वाहन विमान तथा अय शंकु का वाहन सिंह है। (२९)

गदा और मुसलधारी बलवान बल और वृत्र पैदल ही देवताओं की सेना पर चढाई करने के लिये उद्यत थे। (३०)

तदनन्तर अति भयकर घमासान युद्ध हुआ। हे नारद! समस्त लोक पीली धूल से आवृत हो गया जिससे पिता पुत्र को तथा पुत्र पिता को पहचान नहीं पाते थे। हे सुव्रत! कुछ लोग अपने ही पक्ष के लोगों को तथा कुछ लोग विरोधी पक्ष के लोगों को मारने लगे। (३१-३२)

रथ के ऊपर रथ वेग से आक्रमण करने लगे। हाथी मतवाले हाथी के ऊपर तथा घुड़सवार घुड़सवारों की ओर बढे। पैदल सैनिक ने क्रुद्ध होकर अन्य बलशाली पैदल पर आक्रमण किया एवं इस प्रकार ये एक दूसरे को जीतने की इच्छा से परस्पर प्रहार करने लगे। (३३-३४)

हे मुने! तदनन्तर देवों और असुरों के उस घोर संग्राम में युद्ध से उत्पन्न धूलि का शमन करती हुई शोणित रूपी जल एवं रथ रूपी आवर्त्त से युक्त तथा योद्धाओं के समूह को बहाने वाली एव गजकुम्भ रूपी महान कूर्म तथा शर रूपी मीन से युक्त अगम्य नदी प्रवर्तित हुई। (३५-३६)

(यह नदी) तेज धार वाले प्रास रूपी मकर, महान् असि रूपी ग्राह, आँत रूपी शैवाल, पताका रूपी फेन, गृध्र एव कङ्क रूपी महाहंस, श्येन रूपी चक्रवाक, वन वायस रूपी कलहंस, शृगाल रूपी हिंस्र एव पिशाच रूपी मुनियों से सकीर्ण थी तथा साधारण मनुष्यों से दुस्तर थी। जयरूप धन की इच्छा वाले शूर योद्धा लोग घुटनों तक डूबने उतराते, एक दूसरे को मारते हुये

सञ्चरन्तो वेगेन योधा जयधनेप्सवः ॥ ४०

ततस्तु रौद्रे सुरदैत्यसादने
महाहवे भीरुभयंकरेऽथ ।
रक्षांसि यक्षाश्च सुसंप्रहृष्टाः
पिशाचयूथास्त्वभिरेमिरे च ॥ ४१

पिबन्त्यसृग्गाढतरं भटाना-
मालिङ्ग्य मांसानि च भक्षयन्ति ।
वसां विलुम्पन्ति च विस्फुरन्ति
गर्जन्त्यथान्योन्यमयो वयांसि ॥ ४२

मुञ्चन्ति फेत्काररवाञ्छिवाश्च
क्रन्दन्ति योधा भुवि वेदनार्ताः ।
शस्त्रप्रतप्ता निपतन्ति चान्ये
युद्धं श्मशानप्रतिमं बभूव ॥ ४३

तस्मिञ्छिवाघोररवे प्रवृत्ते
सुरासुराणां सुभयंकरे ह ।
युद्धं बभौ प्राणपणोपविद्धं
द्वन्द्वेऽतिशस्त्राक्षगतो दुरोदरः ॥ ४४

हिरण्यचक्षुस्तनयो रणेऽन्धको
रथे स्थितो वाजिसहस्रयोजिते ।
मत्तेभपृष्ठस्थितमुग्रतेजसं
समेयिवान् देवपतिं शतक्रतुम् ॥ ४५

समापतन्तं महिषाधिरूढं
यमं प्रतीच्छद् बलवान् दितीशः ।
प्रह्लादनामा तुरगाष्टयुक्तं
रथं समास्थाय समुद्यतास्त्रः ॥ ४६

विरोचनश्चापि जलेश्वरं त्वगा-
ज्जम्भस्त्वथागाद् धनदं बलाढ्यम् ।
वायुं समभ्येत्य च शम्बरोऽथ
मयो हुताशं युयुधे मुनीन्द्र ॥ ४७

अन्ये हयग्रीवमुखा महाबला
दितेस्तनूजा दनुपुंगवाश्च ।
सुरान् हुताशार्कवसूरगेश्वरान्
द्वन्द्वं समासाद्य महाबलान्विताः ॥ ४८

गर्जन्त्यथान्योन्यमुपेत्य युद्धे
चापानि कर्षन्त्यतिवेगिताश्च ।
मुञ्चन्ति नाराचगणान् सहस्रश

रथ रूपी नौकाओं द्वारा इस नदी को वेग से पार कर रहे थे। (३७-४०)

इस प्रकार भीरु जनों के लिए भयकारी देवों एवं दैत्यों के संहारक अत्यन्त भयंकर युद्ध होने पर राक्षस और यक्ष लोग अत्यन्त आनन्दित हुए तथा पिशाचों का समूह भी प्रसन्न हुआ। वे वीरों के गाढ़े रुधिर का पान करते थे तथा आलिंगन कर मांस का भक्षण करते थे। पक्षी चर्बी को नोंचते और उछलते थे एवं एक दूसरे के प्रति गर्जन करते थे। (४१-४२)

शृगालियाँ फेत्कार शब्द करने लगीं, भूमि पर पड़े हुए वेदना से दुःखी योद्धा क्रन्दन करने लगे। कुछ लोग शस्त्रा हत होकर गिरने लगे तथा युद्धभूमि श्मशान तुल्य हो गई। (४३)

शृगालियों के भयंकर शब्द से युक्त देवासुर संग्राम इस प्रकार हुआ मानों द्वन्द्व में निपुण योद्धा लोग शस्त्र रूपी पासा फेंककर तथा प्राण की बाजी लगा कर द्यूत में संलग्न हुए हों। (४४)

हिरण्याक्ष-तनय अन्धक सहस्र-अश्वों से युक्त रथ पर आरूढ़ हो कर मत्त मातंग की पीठ पर स्थित महातेजस्वी देवराज इन्द्र के साथ युद्ध करने गया। (४५)

आठ घोड़ों से युक्त रथ पर आरूढ़ अस्त्र उठाये बलवान् दैत्यराज प्रह्लाद ने महिषारूढ आक्रमणकारी यम का सामना किया। (४६)

हे मुनीन्द्र! विरोचन जलेश्वर (वरुण) से युद्ध के लिए आगे बढ़ा तथा जम्भ बलशाली धनद (कुबेर) की ओर गया। शम्बर वायु के सम्मुख गया एवं मय अग्नि के साथ युद्ध करने लगा। (४७)

हयग्रीव आदि अन्यान्य महाबलवान् दैत्य तथा दानव अग्नि, सूर्य, आठ वसु तथा उरगेश्वर आदि देवताओं के साथ द्वन्द्व युद्ध करने लगे। (४८)

युद्ध में एक दूसरे का सामना कर वे गर्जन करते हुए अतिवेग पूर्वक धनुष खींच कर सहस्रों बाणों को

आगच्छ हे तिष्ठसि किं ब्रुवन्तः ॥ ४९
शैलैस्तु तीक्ष्णैरतितापयन्तः
शस्त्रैरमोघैरभिताडयन्तः ।
मन्दाकिनीवेगनिभां वहन्तीम्
प्रवर्तयन्तो भयदां नदीं च ॥ ५०
त्रैलोक्यमाकांक्षिभिरुग्रवेगैः
सुरासुरैर्नारद संप्रयुद्धे ॥

पिशाचरक्षोगणपुष्टिवर्धनी-
मुत्तर्तुमिच्छद्भिरसृग्नदी बभौ ॥ ५१
वाद्यन्ति तूर्याणि सुरासुराणाम्
पश्यन्ति खस्था मुनिसिद्धसंघाः ।
नयन्ति तानप्सरसां गणाग्र्या
हता रणे येऽभिमुखास्तु शूराः ॥ ५२

इति श्रीवामनपुराणे नवमोऽध्यायः ॥९॥

पुलस्त्य उवाच ।
ततः प्रवृत्ते संग्रामे भीरूणां भयवर्धने।
सहस्राक्षो महाचापमादाय व्यसृजच्छरान् ॥ १
अन्धकोऽपि महावेगं धनुराकृष्य भास्वरम् ।
पुरंदराय चिक्षेप शरान् बर्हिणवाससः ॥ २
तावन्योन्यं सुतीक्ष्णाग्रैः शरैः संनतपर्वभिः ।
रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराजघ्नतुरुभावपि ॥ ३
ततः क्रुद्धः शतमखः कुलिशं भ्राम्य पाणिना ।
चिक्षेप दैत्यराजाय तं ददर्श तथान्धकः ॥ ४
आजघान च बाणौघैरस्त्रैः शस्त्रैः स नारद ।

छोड़ने तथा यह कहने लगे कि 'अरे! आओ आओ क्यों रुके हो?' (४९)

तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करते हुए तथा अमोघ शस्त्रों से प्रहार करते हुए उन लोगों ने मन्दाकिनी के वेग सदृश प्रवाहित होने वाली भयकर (रण) नदी को प्रवर्तित किया। (५०)

हे नारद! उस युद्ध में त्रैलोक्य की आकांक्षा वाले उग्र वेगशाली सुर एवं असुरगण पिशाचों एवं राक्षसों की पुष्टि बढ़ाने वाली शोणित-सरिता को पार करने की इच्छा कर रहे थे। (५१)

(उस समय) देव और असुरों के बाजे बज रहे थे आकाशमें स्थित मुनियों और सिद्धों के समूह उस युद्ध को देख रहे थे तथा जो वीर सम्मुख युद्ध में मारे गये थे उन्हें अप्सरायें (स्वर्ग में) ले जा रही थीं। (५२)

श्रीवामनपुराण में नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

१०

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर भीरुओं के लिये भयवर्धक संग्राम आरम्भ होने पर सहस्राक्ष (इन्द्र) महान् धनुष लेकर बाणों को छोड़ने लगे। (१)

अन्धक ने भी वेगशाली तथा तेजस्वी धनुष लेकर मयूर के पंख वाले अनेक बाणों को पुरन्दर (इन्द्र) के ऊपर छोड़ा। (२)

उन दोनों ने एक दूसरे को झुके हुए पर्वों वाले, स्वर्णपुंखयुक्त तथा महावेगवान् तीक्ष्ण बाणों से आहत किया। (३)

तदनन्तर क्रुद्ध इन्द्र ने हाथ से वज्र को घुमा कर दैत्यराज के ऊपर फेंका। अन्धक ने उसे देखा और— (४)

तान् भस्मसात्तदा चक्रे नगानिव हुताशनः ॥ ५
ततोऽतिवेगिनं वज्रं दृष्ट्वा बलवतां वरः ।
समाप्लुत्य रथात्तस्थौ भुवि बाहुसहायवान् ॥ ६
रथं सारथिना सार्धं साश्वध्वजसकूवरम् ।
भस्म कृत्वाथ कुलिशमन्धकं समुपाययौ ॥ ७
तमापतन्तं वेगेन मुष्टिनाहत्य भूतले ।
पातयामास बलवान् जगर्ज च तदाऽन्धकः ॥ ८
तं गर्जमानं वीक्ष्याथ वासवः सायकैर्दृढम् ।
ववर्ष तान् वारयन् स समभ्यायाच्छतक्रतुम् ॥ ९
आजघान तलेनेभं कुम्भमध्ये पदा करे ।
जानुना च समाहत्य विषाणं प्रबभञ्ज च ॥ १०
वाममुष्ट्या तथा पार्श्वे समाहत्यान्धकस्त्वरन् ।
गजेन्द्रं पातयामास प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ॥ ११
गजेन्द्रात् पतमानाच्च अवप्लुत्य शतक्रतुः ।
पाणिना वज्रमादाय प्रविवेशामरावतीम् ॥ १२
पराङ्मुखे सहस्राक्षे तद् दैवतबलं महत् ।
पातयामास दैत्येन्द्रः पादमुष्टितलादिभिः ॥ १३
ततो वैवस्वतो दण्डं परिभ्राम्य द्विजोत्तम ।
समभ्यधावत् प्रह्लादं हन्तुकामः सुरोत्तमः ॥ १४
तमापतन्तं बाणौघैर्ववर्ष रविनन्दनम् ।
हिरण्यकशिपोः पुत्रश्चापमानम्य वेगवान् ॥ १५
तां बाणवृष्टिमतुलां दण्डेनाहत्य भास्करिः ।
शातयित्वा प्रचिक्षेप दण्डं लोकभयंकरम् ॥ १६
स वायुपथमास्थाय धर्मराजकरे स्थितः ।
जज्वाल कालाग्निनिभो यद्वद् दग्धुं जगत्त्रयम् ॥ १७
जाज्वल्यमानमायान्तं दण्डं दृष्ट्वा दितेः सुताः ।
प्राक्रोशन्ति हतः कष्टं प्रह्लादोऽयं यमेन हि ॥ १८
तमाक्रन्दितमाकर्ण्य हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः ।
प्रोवाच मा भैष्ट मयि स्थिते कोऽयं सुराधमः ॥ १९
इत्येवमुक्त्वा वचनं वेगेनाभिससार च ।

हे नारद ! उसने भी बाणों, अस्त्रों और शस्त्रों से प्रहार किया। अग्नि जिस प्रकार वृक्षों को भस्म करती है उसी प्रकार उस वज्र ने उन्हें भस्म कर डाला। (५)

तब बलवानों में श्रेष्ठ अन्धक अति वेगवान् वज्र को आते देख कर रथ से कूद कर बाहुबल का आश्रय लेकर पृथ्वी पर खड़ा हो गया। (६)

वह वज्र सारथि, अश्व, ध्वजा एवं कूबर के साथ रथ को भस्म कर अन्धक के पास आया। (७)

वेगपूर्वक आते हुए उस (वज्र) को बलवान् अन्धक ने मुष्टि से प्रहार कर भूमि पर गिरा दिया और गर्जन करने लगा। (८)

उसे गर्जन करते देख वासव (इन्द्र) ने उसके ऊपर दृढ़ बाणों की वर्षा की। उनको निवारित करते हुए वह शतक्रतु के पास आया। (९)

उसने करतल से ऐरावत के कुम्भमध्य में एवं पैर से सूँड़ पर प्रहार किया तथा जानु से दाँत पर प्रहार कर उसे तोड़ दिया। (१०)

तथा अन्धक ने वाममुष्टि से पार्श्व में शीघ्रतापूर्वक प्रहार करने से जर्जर हुए गजेन्द्र को गिरा दिया। (११)

गिर रहे गजेन्द्र पर से कूद कर एवं हाथ में वज्र ग्रहण कर इन्द्र अमरावती में चले गए। (१२)

इन्द्र के पराङ्मुख हो जाने पर उस महती देव-सेना को दैत्येन्द्र ने पद, मुष्टि एवं करतल आदि द्वारा (प्रहार कर) गिरा दिया। (१३)

हे द्विजोत्तम ! तदनन्तर देवश्रेष्ठ यम दण्ड घुमाते हुए प्रह्लाद को मारने की इच्छा से दौड़ पड़े। (१४)

रविनन्दन (यम) को आते देख हिरण्यकशिपु के वेगवान् पुत्र प्रह्लाद ने धनुष खींच कर बाणों की वर्षा की। (१५)

भास्करनन्दन यमराज ने दण्ड के आघात से उस अतुलनीय बाण-वृष्टि को नष्ट कर लोकभयकारी दण्ड चलाया। (१६)

धर्मराज के हाथ में स्थित वह दण्ड वायुपथ में जाकर मानों त्रैलोक्य को दग्ध करने हेतु कालाग्नितुल्य प्रज्वलित होने लगा। (१७)

जाज्वल्यमान दण्ड को आते देख दैत्य लोग चिल्लाने लगे, "हाय ! हाय ! यमराज द्वारा प्रह्लाद मारे गये।" (१८)

उस आक्रन्दन को सुन कर हिरण्याक्ष-तनय अन्धक ने कहा—"डरो मत। मेरे रहते यह सुराधम क्या है ?" (१९)

हे नारद ! ऐसा कह कर वह वेग से दौड़ा और हँसते

जग्राह पाणिना दण्डं हसन् सव्येन नारद ॥ २०
तमादाय ततो वेगाद् भ्रामयामास चान्धकः।
जगर्ज च महानादं यथा प्रावृषि तोयदः ॥ २१
प्रह्लादं रक्षितं दृष्ट्वा दण्डाद् दैत्येश्वरेण हि।
साधुवादं ददुर्हृष्टा दैत्यदानवयूथपाः ॥ २२
भ्रामयन्तं महादण्डं दृष्ट्वा भानुसुतो मुने।
दुःसहं दुर्धरं मत्वा अन्तर्धानमगाद् यमः ॥ २३
अन्तर्हिते धर्मराजे प्रह्लादोऽपि महामुने।
दारयामास बलवान् देवसैन्यं समन्ततः ॥ २४
वरुणः शिशुमारस्थो बद्ध्वा पाशैर्महाऽसुरान्।
गदया दारयामास तमभ्यागाद् विरोचनः ॥ २५
तोमरैर्वज्रसंस्पर्शैः शक्तिभिर्मार्गणैरपि।
जलेशं ताडयामास मुद्गरैः कणपैरपि ॥ २६
ततस्तं गदयाऽभ्येत्य पातयित्वा धरातले।
अभिद्रुत्य बबन्धाथ पाशैर्मत्तगजं बली ॥ २७
तान् पाशाञ्शतधा चक्रे वेगाच्च दनुजेश्वरः।
वरुणं च समभ्येत्य मध्ये जग्राह नारद ॥ २८

ततो दन्ती च शृङ्गाभ्यां प्रचिक्षेप तदाऽव्ययः।
ममर्द च तथा पद्भ्यां सवाहं सलिलेश्वरम् ॥ २९
तं मर्द्यमानं वीक्ष्याथ शशाङ्कः शिशिरांशुमान्।
अभ्येत्य ताडयामास मार्गणैः कायदारणैः ॥ ३०

स ताड्यमानः शिशिरांशुबाणै-
रवाप पीडां परमां गजेन्द्रः।
दुष्टश्च वेगात् पयसामधीशं
मुहुर्मुहुः पादतलैर्ममर्द ॥ ३१
स मृद्यमानो वरुणो गजेन्द्रं
पद्भ्यां सुगाढं जगृहे महर्षे।
पादेषु भूमिं करयोः स्पृशंश्च
मूर्द्धानमुत्क्षिप्य बलान्महात्मा ॥ ३२
गृह्याङ्गुलीभिश्च गजस्य पुच्छं
कृत्वेह बन्धं भुजगेश्वरेण।
उत्पाट्य चिक्षेप विरोचनं हि
सकुञ्जरं खे सनियन्तृवाहम् ॥ ३३

हुए बायें हाथ से उस दण्ड को पकड़ लिया। (२०)

तदनन्तर अन्धक ने उसे लेकर घुमाया और वर्षाकालीन मेघ के सदृश महानाद करते हुए गर्जन किया। (२१)

दैत्येश्वर (अन्धक) के द्वारा दण्ड से प्रह्लाद को रक्षित देख दैत्यों एवं दानवों के यूथपति प्रसन्न होकर साधुवाद देने लगे। (२२)

हे मुने ! घुमाए जाते महादण्ड को देख सूर्यतनय यम उसे दु सह और दुर्धर समझकर अन्तर्धान हो गये। (२३)

हे महामुने ! धर्मराज के अन्तर्हित होने पर बलवान् प्रह्लाद भी चारों ओर से देवसेना को विदीर्ण करने लगे। (२४)

शिशुमार (सूंस) पर स्थित वरुण महान् असुरों को पाशों से बाँध कर गदा द्वारा विदीर्ण करने लगे। तब विरोचन ने उनका सामना किया। (२५)

(उसने) वज्र के सदृश तोमरों, शक्तियों, बाणों, मुद्गरों, कणपों एवं भालों से जलेश को ताडित किया। (२६)

तदनन्तर उसके निकट जाकर गदा के आघात से उसे भूतल पर गिराने के उपरान्त दौड़ कर पाशों द्वारा बलवान् वरुण ने हाथी को बाँध लिया। (२७)

दनुजेश्वर ने वेगपूर्वक उन पाशों को सैकड़ों खण्डों मे तोड़ दिया। हे नारद ! वरुण के निकट जाकर उसने उनको मध्य भाग मे पकड़ लिया। (२८)

तदनन्तर अव्यय दन्ती ने सींगों (दाँतों) द्वारा वरुण को फेंक दिया और अपने पैरों से वाहन सहित वरुण को कुचल डाला। (२९)

उन्हें मर्दित होते हुए देख शीत किरणों वाले शशाङ्क ने उसके निकट जाकर शरीर विदीर्ण करने वाले बाणों से उसे ताडित किया। (३०)

चन्द्र के बाणों से ताडित गजेन्द्र को अत्यन्त पीड़ा हुई और दुष्ट गजेन्द्र वरुण को वेगपूर्वक पैरों से पुन पुनः मर्दित करने लगा। (३१)

हे महर्षे ! कुचले जाते हुए महात्मा वरुण ने दृढ़तापूर्वक हाथी के दोनों पैरों को पकड़ लिया एवं अपने हाथों तथा पैरों से भूमि का स्पर्श करते हुए बलपूर्वक मस्तक उठा कर अंगुलियों से उस हाथी की पूंछ पकड़ सर्पराज से विरोचन

क्षिप्तो जलेशेन विरोचनस्तु
सकुञ्जरो भूमितले पपात।
साट्टं सन्यत्रार्गलहर्म्यभूमि
पुर सुकेशेरिव भास्करेण ॥ ३४

ततो जलेशः सगदः सपाशः
समभ्यधावद् दितिज निहन्तुम्।
ततः समाक्रन्दमनुत्तमं हि
मुक्तं तु दैत्यैर्घनरावतुल्यम् ॥ ३५

हा हा हतोऽसौ वरुणेन वीरो
विरोचनो दानवसैन्यपालः।
प्रह्लाद हे जम्भकुजम्भकाद्या
रक्षध्वमभ्येत्य सहान्धकेन ॥ ३६

अहो महात्मा बलवाञ्जलेशः
संचूर्णयन् दैत्यभटं सवाहम्।
पाशेन बद्ध्वा गदया निहन्ति
यथा पशु वाजिमखे महेन्द्रः ॥ ३७

श्रुत्वाथ शब्दं दितिजैः समीरितं
जम्भप्रधाना दितिजेश्वरास्ततः।
समभ्यधावंस्त्वरिता जलेश्वरं
यथा पतङ्गा ज्वलित हुताशनम् ॥ ३८

तानागतान् वै प्रसमीक्ष्य देवः
प्राह्लादिमुत्सृज्य वितत्य पाशम्।
गदा समुद्भ्राम्य जलेश्वरस्तु
दुद्राव तान् जम्भमुखानरातीन् ॥ ३९

जम्भं च पाशेन तथा निहत्य
तार तलेनाशनिसंनिभेन।
पादेन वृत्रं तरसा कुजम्भं
निपातयामास बल च मुष्ट्या ॥ ४०

तेनार्दिता देववरेण दैत्याः
संप्राद्रवन् दिक्षु विमुक्तशस्त्राः।
ततोऽन्धकः सत्वरितोऽभ्युपेयाद्
रणाय योद्धुं जलनायकेन ॥ ४१

तमापतन्त गदया जघान
पाशेन बद्ध्वा वरुणोऽसुरेशम्।
तं पाशमाविध्य गदां प्रगृह्य
चिक्षेप दैत्यः स जलेश्वराय ॥ ४२

को बाँध कर उसके हाथी, नियन्ता एवं वाहन के साथ उठाकर आकाश में फेंक दिया। (३२-३३)

वरुण द्वारा फेंका गया विरोचन हाथी सहित पृथ्वी पर इस प्रकार गिरा जैसे भास्कर द्वारा सुकेशी राक्षस का अट्टालिकाओं, यन्त्रों, अर्गलाओं एवं प्रासादों से युक्त नगर गिराया गया था। (३४)

तदनन्तर वरुण, गदा और पाश लेकर दैत्य को मारने के लिये दौड़े। तब दैत्यगण मेघ के गर्जन के सदृश आक्रन्दन करने लगे— (३५)

"हाय! हाय! राक्षस सेना के रक्षक वीर विरोचन वरुण द्वारा मारे जा रहे हैं। हे प्रह्लाद! जम्भ! कुजम्भादि! अन्धक के साथ आकर उन्हें बचाओ। (३६)

हाय! महात्मा बलवान् वरुण वाहन सहित दैत्यवीर को चूर्ण करते हुए पाश से बाँधकर गदा द्वारा इस प्रकार मार रहे हैं जैसे अश्वमेध यज्ञ में इन्द्र पशु का वध करते हैं। (३७)

तदनन्तर दैत्यों के द्वारा कहे गये शब्द को सुन कर जम्भ प्रमुख दैत्य गण वरुण की ओर इस प्रकार शीघ्रता से दौड़े जैसे पतङ्ग प्रज्वलित अग्नि की ओर झपटते हैं। (३८)

उन्हें आया देख वरुण प्रह्लाद-पुत्र (विरोचन) को छोड़ पाश फैला कर और गदा घुमा कर उन जम्भप्रभृति शत्रुओं की ओर दौड़े। (३९)

उन्होंने जम्भ को पाश से, तार-दैत्य को वज्र तुल्य कर तल के प्रहार से, वृत्रासुर को पैर से, वेगपूर्वक कुजम्भ को और बल नामक असुर को मुक्के से गिरा दिया। (४०)

उन देवप्रवर द्वारा मर्दित दैत्य शस्त्रों को छोड़ कर दिशाओं में भाग गए। तदनन्तर अन्धक वरुण के साथ युद्ध करने के लिये शीघ्रतापूर्वक वहाँ आया। (४१)

उस आ रहे असुरेश्वर को वरुण ने पाश से बाँध कर गदा से मारा। उस पाश और गदा को छीन कर दैत्य ने वरुण पर फेंका। (४२)

समाजघानाथ हुताशनं हि
वरायुधेनाथ वराङ्गमध्ये ।
समाहतोऽग्निः परिमुच्य शम्बरं
तथाऽन्धकं स त्वरितोऽभ्यधावत् ॥ ५२

तमापतन्तं परिघेण भूयः
समाहनन्मूर्ध्नि तदान्धकोऽपि ।
स ताडितोऽग्निर्दितिजेश्वरेण
भयात् प्रदुद्राव रणाजिराद्धि ॥ ५३

ततोऽन्धको मारुतचन्द्रभास्करान्
साध्यान् सरुद्राश्विवसून् महोरगान् ।
यान् यान्शरेण स्पृशते पराक्रमी
पराङ्मुखांस्तान्कृतवान् रणाजिरात् ॥ ५४

ततो विजित्यामरसैन्यमुग्र
सेन्द्रं सरुद्रं सयमं ससोमम् ।
संपूज्यमानो दनुपुंगवैस्तु
तदाऽन्धको भूमिमुपाजगाम ॥ ५५

आसाद्य भूमिं करदान् नरेन्द्रान्
कृत्वा वशे स्थाप्य चराचरं च ।
जगत्समग्रं प्रविवेश धीमान्
पातालमग्र्यं पुरमश्मकाह्वम् ॥ ५६

तत्र स्थितस्यापि महाऽसुरस्य
गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ।
सहाप्सरोभिः परिचारणाय
पातालमभ्येत्य समावसन्त ॥ ५७

इति श्रीवामनपुराणे दशमोऽध्याय ॥१०॥

उसने श्रेष्ठ आयुध के द्वारा अग्नि के शिर पर प्रहार किया। इस प्रकार आहत अग्नि शम्बर को छोड कर तत्काल अन्धक की ओर दौड़े। (५२)

अन्धक ने आ रहे अग्नि के मस्तक पर पुन परिघ से प्रहार किया। दितिजेश्वर द्वारा ताडित अग्निदेव भयभीत हो रणक्षेत्र से भाग गए। (५३)

तदनन्तर पराक्रमी अन्धक ने वायु, चन्द्र, भास्कर, साध्य, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु और महानागों में जिन-जिनको बाण से स्पर्श किया वे सभी युद्धभूमि से पराङ्मुख हो गये। (५४)

तदनन्तर इन्द्र, रुद्र, यम, सोम सहित देवताओं की उग्र सेना को जीत कर अन्धक श्रेष्ठ दानवों के द्वारा पूजित होते हुए भूतल पर आ गया। (५५)

भूमि पर आकर, नरपतियों को करद बना कर तथा समस्त चराचर जगत् को वशीभूत कर धीमान् (अन्धक) पाताल में स्थित अपने अश्मक नामक उत्तम नगर में प्रविष्ट हुआ। (५६)

वहाँ पर स्थित महासुर की सेवा करने के लिए अप्सराओं के साथ गन्धर्व, विद्याधर एवं सिद्धों के समूह पाताल में आकर निवास करने लगे। (५७)

श्रीवामनपुराण में दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

११

नारद उवाच ।

यदेतद् भवता प्रोक्तं सुकेशिनगरोऽम्बरात् ।
पातितो भुवि सूर्येण तत्कदा कुत्र कुत्र च ॥ १

सुकेशीति च कश्चासौ केन दत्तः पुरोऽस्य च ।
किमर्थं पातितो भूम्यामाकाशाद् भास्करेण हि ॥ २

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
यथोक्तवान् स्वयंभूर्मां कथ्यमानां मयाऽनघ ॥ ३

आसीन्निशाचरपतिर्विद्युत्केशीति विश्रुतः ।
तस्य पुत्रो गुणज्येष्ठः सुकेशिरभवत्ततः ॥ ४

तस्य तुष्टस्त्वयेशानः पुरमाकाशचारिणम् ।
प्रादादजेयत्वमपि शत्रुभिश्चाप्यवध्यताम् ॥ ५

स चापि शंकरात् प्राप्य वरं गगनगं पुरम् ।
रेमे निशाचरैः सार्द्धं सदा धर्मपथि स्थितः ॥ ६

स कदाचिद् गतोऽरण्यं मागधं राक्षसेश्वरः ।
तत्राश्रमांस्तु ददृशे ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ ७

महर्षीन् स तदा दृष्ट्वा प्रणिपत्याभिवाद्य च ।
प्रत्युवाच ऋषीन् सर्वान् कृतासनपरिग्रहः ॥ ८

सुकेशिरुवाच ।

प्रष्टुमिच्छामि भवतः संशयोऽयं हृदि स्थितः ।
कथयन्तु भवन्तो मे न चैवाज्ञापयाम्यहम् ॥ ९

किंस्विच्छ्रेयः परे लोके किमु चेह द्विजोत्तमाः ।
केन पूज्यस्तथा सत्सु केनासौ सुखमेधते ॥ १०

पुलस्त्य उवाच ।

इत्थं सुकेशिवचनं निशम्य परमर्षयः ।
प्रोचुर्विमृश्य श्रेयोऽर्थमिह लोके परत्र च ॥ ११

ऋषय ऊचुः ।

श्रूयतां कथयिष्यामस्तव राक्षसपुंगव ।

११

नारद ने कहा—"आपने जो यह कहा था कि सूर्यने सुकेशी के नगर को आकाश से पृथ्वी पर गिरा दिया था, तो यह घटना कब और कहाँ हुई? (१)

"यह सुकेशी कौन था? उसे नगर किसने दिया था? तथा भास्कर ने आकाश से पृथ्वी पर उसको क्यों गिरा दिया था?" (२)

पुलस्त्य ने कहा—हे अनघ! ब्रह्मा ने मुझसे जिस प्रकार इस प्राचीन कथा को कहा था उसे मैं कह रहा हूँ आप सावधान होकर सुनें। (३)

विद्युत्केशी नाम का निशाचरों का एक प्रसिद्ध राजा था। उसके गुणों से वरिष्ठ सुकेशी नाम का पुत्र हुआ। (४)

उस पर प्रसन्न होकर शिव ने उसे एक आकाशचारी नगर और शत्रुओं से अजेय तथा अवध्य होने का वर भी दिया। (५)

वह शंकर से श्रेष्ठ आकाशचारी नगर पाकर राक्षसों के साथ सदा धर्म पथ पर रहते हुये आनन्द मनाने लगा। (६)

एक समय मगधारण्य में जाकर उस राक्षसेश्वर ने वहाँ ध्यान परायण ऋषियों के आश्रमों को देखा। (७)

उस समय महर्षियों को देखकर अभिवादन और प्रणाम करने के उपरान्त आसन पर बैठकर उसने समस्त ऋषियों से कहा। (८)

सुकेशी ने कहा—मैं आपको आज्ञा नहीं दे रहा हूँ, अपि तु, मेरे हृदय में यह संदेह है उसे मैं आपसे पूछना चाहता हूँ। आप मुझसे कहिये। (९)

हे द्विजोत्तमो! इस लोक और परलोक में श्रेय क्या है? मनुष्य सज्जनों में कैसे पूज्य होता है और कैसे उसे सुख की उपलब्धि होती है? (१०)

पुलस्त्य ने कहा—सुकेशी के इस प्रकार के वचन को सुनकर श्रेष्ठ ऋषियों ने इसलोक और परलोक में श्रेय वस्तु का विचार कर कहा। (११)

ऋषियों ने कहा—"हे राक्षस-श्रेष्ठ! हे वीर! इस लोक

यदि श्रेयो भवेद् वीर इह चामुत्र चाव्ययम् ॥ १२

श्रेयो धर्मः परे लोके इह च क्षणदाचर ।
तस्मिन् समाश्रितः सत्सु पूज्यस्तेन सुखी भवेत् ॥ १३

सुकेशिरुवाच ।

किंलक्षणो भवेद् धर्मः किमाचरणसत्क्रियः ।
यमाश्रित्य न सीदन्ति देवाद्यास्तु तदुच्यताम् ॥ १४

ऋषय ऊचुः ।

देवानां परमो धर्मः सदा यज्ञादिकाः क्रियाः ।
स्वाध्यायवेदवेत्तृत्वं विष्णुपूजारतिः स्मृता ॥ १५

दैत्यानां बाहुशालित्वं मात्सर्यं युद्धसत्क्रिया ।
वेदनं नीतिशास्त्राणां हरभक्तिरुदाहृता ॥ १६

सिद्धानामुदितो धर्मो योगयुक्तिरनुत्तमा ।
स्वाध्यायं ब्रह्मविज्ञानं भक्तिर्द्वाभ्यामपि स्थिरा ॥ १७

उत्कृष्टोपासनं ज्ञेयं नृत्यवाद्येषु वेदिता ।
सरस्वत्यां स्थिरा भक्तिर्गान्धर्वो धर्म उच्यते ॥ १८

विद्याधरत्वमतुलं विज्ञानं पौरुषे मतिः ।
विद्याधराणां धर्मोऽयं भवान्यां भक्तिरेव च ॥ १९

गन्धर्वविद्यावेदित्वं भक्तिर्भानौ तथा स्थिरा ।
कौशल्यं सर्वशिल्पानां धर्मः किंपुरुषः स्मृतः ॥ २०

ब्रह्मचर्यममानित्वं योगाभ्यासरतिर्दृढा ।
सर्वत्र कामचारित्वं धर्मोऽयं पैतृकः स्मृतः ॥ २१

ब्रह्मचर्यं यताशित्वं जप्यं ज्ञानं च राक्षस ।
नियमाद्धर्मवेदित्वमार्षो धर्मः प्रचक्ष्यते ॥ २२

स्वाध्यायं ब्रह्मचर्यं च दानं यजनमेव च ।
अकार्पण्यमनायास दयाऽहिंसा क्षमा दमः ॥ २३

जितेन्द्रियत्वं शौचं च माङ्गल्यं भक्तिरच्युते ।
शंकरे भास्करे देव्यां धर्मोऽयं मानवः स्मृतः ॥ २४

धनाधिपत्यं भोगानि स्वाध्यायं शंकरार्चनम् ।
अहंकारमशौण्डीर्यं धर्मोऽयं गुह्यकेष्विति ॥ २५

परदारावमर्शित्वं पारक्येऽर्थे च लोलुपा ।
स्वाध्यायं त्र्यम्बके भक्तिर्धर्मोऽयं राक्षसः स्मृतः ॥ २६

और परलोक में जो श्रेय तथा अव्यय वस्तु है उसके विषय में हम कहते हैं। उसे सुनो। (१२)

हे निशाचर! इस लोक और परलोक मे धर्म श्रेय है। उसमे आश्रित व्यक्ति सज्जनों में पूज्य होता है तथा सुखी होता है। (१३)

सुकेशी ने कहा—"धर्म का लक्षण क्या है? उसमें कौन से आचरण एव सत्कर्म होते हैं जिनका आश्रय लेकर देवादि कभी दुःखी नहीं होते। कृपया उसका वर्णन करें। (१४)

ऋषियों ने कहा—सदा यज्ञादि कार्य, स्वाध्याय, वेदज्ञान और विष्णु पूजा मे रति—यह देवताओं का परम धर्म है। (१५)

बाहुबल, ईर्ष्याभाव, युद्धकार्य, नीतिशास्त्र का ज्ञान और हर भक्ति-ये दैत्यों के धर्म कहे गये हैं। (१६)

श्रेष्ठ योगसाधन, वेदाध्ययन, ब्रह्मविज्ञान और इन दोनों (विष्णु और शिव) में स्थिर भक्ति यह सिद्धों का धर्म कहा गया है। (१७)

उत्कृष्ट उपासना, नृत्य और वाद्य का ज्ञान तथा सरस्वती के प्रति स्थिर भक्ति-यह गन्धर्वों का धर्म कहा जाता है। (१८)

अतुलनीय विद्वत्ता, विज्ञान, पौरुषबुद्धि और भवानी के प्रति भक्ति-यह विद्याधरों का धर्म है। (१९)

गन्धर्वविद्या का ज्ञान, सूर्य के प्रति स्थिर भक्ति और सभी शिल्प कलाओं मे कुशलता-यह किम्पुरुषों का धर्म माना जाता है। (२०)

ब्रह्मचर्य, अमानित्व, योगाभ्यास मे दृढ़ रति एव सर्वत्र इच्छानुसार भ्रमण-यह पितरों का धर्म कहलाता है। (२१)

हे राक्षस! ब्रह्मचर्य, नियताहार, जप, आत्मज्ञान, और नियमानुसार धर्मज्ञान यह ऋषियों का धर्म कहा जाता है। (२२)

स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, दान, यजन, अकार्पण्य, परिश्रम-राहित्य, दया, अहिंसा, क्षमा, दम, जितेन्द्रियता, शौच, माङ्गल्य, तथा विष्णु, शंकर, भास्कर और देवी में भक्ति-यह मनुष्यों का धर्म है। (२३-२४)

धनाधिपत्य, भोग, स्वाध्याय, शंकरार्चन, अहंकार एवं अशौण्डीर्य (अवीरता) यह गुह्यकों का धर्म है। (२५)

परस्त्रीगमन, दूसरे के धन में लोलुपता, स्वाध्याय और शिवभक्ति-यह राक्षसों का धर्म कहा जाता है। (२६)

अविवेकमथाज्ञानं शौचहानिरसत्यता ।
पिशाचानामयं धर्मः सदा चामिषगृध्नुता ॥ २७
योनयो द्वादशैवास्तासु धर्मांश्च राक्षस ।
ब्रह्मणा कथिताः पुण्या द्वादशैव गतिप्रदाः ॥ २८
सुकेशिरुवाच ।
भवद्भिरुक्ता ये धर्माः शाश्वता द्वादशाव्ययाः ।
तत्र ये मानवा धर्मास्तान् भूयो वक्तुमर्हथ ॥ २९
ऋषय ऊचुः ।
शृणुष्व मनुजादीनां धर्मास्तु क्षणदाचर ।
ये वसन्ति महीपृष्ठे नरा द्वीपेषु सप्तसु ॥ ३०
योजनानां प्रमाणेन पञ्चाशत्कोटिरायता ।
जलोपरि महीयं हि नौरिवास्ते सरिज्जले ॥ ३१
तस्योपरि च देवेशो ब्रह्मा शैलेन्द्रमुत्तमम् ।
कर्णिकाकारमत्युच्चं स्थापयामास सत्तम ॥ ३२
तस्येमां निर्ममे पुण्यां प्रजां देवश्चतुर्दिशम् ।
स्थानानि द्वीपसंज्ञानि कृतवांश्च प्रजापतिः ॥ ३३
तत्र मध्ये च कृतवाञ्जम्बूद्वीपमिति श्रुतम् ।
तल्लक्षं योजनानां च प्रमाणेन निगद्यते ॥ ३४
ततो जलनिधी रौद्रो बाह्यतो द्विगुणः स्थितः ।
तस्यापि द्विगुणः प्लक्षो बाह्यतः संप्रतिष्ठितः ॥ ३५
ततस्त्विक्षुरसोदश्च बाह्यतो वलयाकृतिः ।
द्विगुणः शाल्मलिद्वीपो द्विगुणोऽस्य महोदधेः ॥ ३६
सुरोदो द्विगुणस्तस्य तस्माच्च द्विगुणः कुशः ।
घृतोदो द्विगुणश्चैव कुशद्वीपात् प्रकीर्तितः ॥ ३७
घृतोदाद् द्विगुणः प्रोक्तः क्रौञ्चद्वीपो निशाचर ।
ततोऽपि द्विगुणः प्रोक्तः समुद्रो दधिसंज्ञितः ॥ ३८
समुद्राद् द्विगुणः शाकः शाकाद् दुग्धाब्धिरुत्तमः ।
द्विगुणः संस्थितो यत्र शेषपर्यङ्कगो हरिः ।
एते च द्विगुणाः सर्वे परस्परमपि स्थिताः ॥ ३९
चत्वारिंशदिमाः कोट्यो लक्षाश्च नवतिः स्मृताः ।
योजनानां राक्षसेन्द्र पञ्च चाति सुविस्तृताः ।
जम्बूद्वीपात् समारभ्य यावत्क्षीराब्धिरन्ततः ॥ ४०

अविवेक, अज्ञान, शौचहीनता, असत्यता एवं सदा मांस लोलुपता यह पिशाचों का धर्म है। (२७)

हे राक्षस! ये द्वादश योनियाँ हैं। पितामह ब्रह्मा ने उनके द्वादश पवित्र तथा उत्तम गतिदायक धर्मों को कहा है। (२८)

सुकेशी ने कहा—आपने जिन शाश्वत एवं अव्यय बारह धर्मों को कहा है उनमें मनुष्यों के धर्मों को पुन कहें। (२९)

ऋषियों ने कहा—हे निशाचर! पृथ्वी के सात द्वीपों में निवास करनेवाले मनुष्य आदि के धर्मों को सुनो। (३०)

पचास करोड़ योजन[1] के विस्तारवाली यह पृथ्वी जल के ऊपर इस प्रकार स्थित है जैसे नदी पर नौका। (३१)

हे सज्जनश्रेष्ठ! उसके ऊपर देवेश ब्रह्मा ने कर्णिका के आकार वाले अत्यन्त ऊंचे शैलेन्द्र को स्थापित किया है। (३२)

तदनन्तर उस पर ब्रह्मा ने चतुर्दिक् पवित्र प्रजाओं का निर्माण तथा द्वीप सज्ञक स्थानों को भी बनाया। (३३)

उसके मध्य में जम्बूद्वीप बनाया। इसका प्रमाण एक लक्ष योजन का कहा जाता है। (३४)

उसके बाहर द्विगुण परिमाण में रौद्र समुद्र है तथा उसके उपरान्त उसका द्विगुण प्लक्ष द्वीप स्थित है। (३५)

उसके बाहर द्विगुण प्रमाण वाला वलयाकार इक्षु रस सागर है। इस महोदधि का दुगुना शाल्मलि द्वीप है। (३६)

उससे दुगुना सुरासागर है तथा उससे दुगुना कुश द्वीप है। कुशद्वीप से दुगुना घृतसागर है। (३७)

हे निशाचर! घृत सागर से दुगुना क्रौञ्चद्वीप कहा गया है तथा उससे दुगुना दधि नामक समुद्र है। (३८)

दधिसागर से दुगुना शाकद्वीप है। एवं शाकद्वीप से द्विगुण उत्तम क्षीरसागर है जिसमें शेष पर्यङ्कशायी श्री हरि स्थित हैं। ये सभी परस्पर एक दूसरे से द्विगुण प्रमाण में स्थित हैं। (३९)

हे राक्षसेन्द्र! जम्बूद्वीप से लेकर क्षीरसागर के अन्त तक का विस्तार चालीस करोड़ नब्बे लाख पाँच योजन है। (४०)

---

१. योजन के अनेक परिमाण विभिन्न शास्त्रों में मिलते हैं, जिनमें बहुत अल्प परिमाण भी है।

तस्माच्च पुष्करद्वीपः स्वादूदस्तदनन्तरम् ।
कोट्यश्चतस्रो लक्षाणां द्विपञ्चाशच्च राक्षस ॥ ४१

पुष्करद्वीपमानोऽयं तावदेव तथोदधिः ।
लक्षमण्डकटाहेन समन्तादभिपूरितम् ॥ ४२

एवं द्वीपास्त्विमे सप्त पृथग्धर्माः पृथक्क्रियाः ।
गदिष्यामस्तव वय शृणुष्व त्वं निशाचर ॥ ४३

प्लक्षादिषु नरा वीर ये वसन्ति सनातनाः ।
शाकान्तेषु न तेष्वस्ति युगावस्था कथंचन ॥ ४४

मोदन्ते देववत्तेषां धर्मो दिव्य उदाहृतः ।
कल्पान्ते प्रलयस्तेषां निगद्येत महाभुज ॥ ४५

ये जनाः पुष्करद्वीपे वसन्ते रौद्रदर्शने ।
पैशाचमाश्रिता धर्मं कर्मान्ते ते विनाशिनः ॥ ४६

सुकेशिरुवाच ।

किमर्थं पुष्करद्वीपो भवद्भिः समुदाहृतः ।
दुर्दर्शः शौचरहितो घोरः कर्मान्तनाशकृत् ॥ ४७

ऋषय ऊचुः ।

तस्मिन् निशाचर द्वीपे नरकाः सन्ति दारुणाः ।
रौरवाद्यास्ततो रौद्रः पुष्करो घोरदर्शनः ॥ ४८

सुकेशिरुवाच ।

कियन्त्येतानि रौद्राणि नरकाणि तपोधनाः ।
कियन्मात्राणि मार्गेण का च तेषु स्वरूपता ॥ ४९

ऋषय ऊचुः ।

शृणुष्व राक्षसश्रेष्ठ प्रमाणं लक्षण तथा ।
सर्वेषां रौरवादीनां संख्या या त्वेकविंशतिः ॥ ५०

द्वे सहस्रे योजनानां ज्वलिताङ्गारविस्तृते ।
रौरवो नाम नरकः प्रथमः परिकीर्त्तितः ॥ ५१

तप्तताम्रमयी भूमिरधस्ताद्वह्नितापिता ।
द्वितीयो द्विगुणस्तस्मान्महारौरव उच्यते ॥ ५२

ततोऽपि द्विःस्थितश्चान्यस्तामिस्रो नरकः स्मृतः ।
अन्धतामिस्रको नाम चतुर्थो द्विगुणः परः ॥ ५३

हे राक्षस ! इसके बाद पुष्करद्वीप एवं तदनन्तर सुस्वादु जल का सागर है। चार करोड बावन लाख योजन पुष्कर द्वीप का परिमाण है। तदुपरान्त उसी परिमाण का समुद्र भी है। इसका एक लक्ष योजन चतुर्दिक् अण्डकटाह से परिपूर्ण है। (४१-४२)

इस प्रकार ये सात द्वीप पृथक धर्मों और पृथक क्रियाओं से युक्त हैं। हे निशाचर ! हम इनका वर्णन करते हैं। उसे तुम सुनो। (४३)

हे वीर ! प्लक्ष से शाक तक के द्वीपों में जो सनातन पुरुष निवास करते हैं उनमें किसी प्रकार की युग की व्यवस्था नहीं है। (४४)

हे महाबाहो ! वे देवताओं के समान आनन्द करते हैं। उनका धर्म दिव्य कहा जाता है। कल्प के अन्त में उनका प्रलय होना वर्णित है। (४५)

भयङ्कर दीखने वाले पुष्करद्वीप में जो लोग रहते हैं वे पैशाचिक धर्मों के आश्रित होते हैं। कर्म के अन्त में उनका नाश होता है। (४६)

सुकेशी ने कहा—आप लोगों ने पुष्करद्वीप को क्यों भयकरदर्शन, पवित्रतारहित, घोर एव कर्म के अन्त में नाश करने वाला कहा है। (४७)

ऋषियों ने कहा—हे निशाचर ! उस द्वीप में रौरव आदि भयानक नरक हैं। इसी से रौद्र पुष्कर द्वीप देखने में भयङ्कर है। (४८)

सुकेशी ने कहा—हे तपस्वीगण ! वे रौद्र नरक कितने हैं ? उनका मार्ग कितना है ? उनका स्वरूप कैसा है ? (४९)

ऋषियों ने कहा—हे राक्षसश्रेष्ठ ! उन समस्त रौरव आदि नरकों का लक्षण और प्रमाण सुनो। उनकी सख्या इक्कीस है। (५०)

प्रथम रौरव नामक नरक कहा जाता है। यह दो हजार योजन विस्तृत एव ज्वलित अङ्गार से युक्त है। (५१)

इससे द्विगुणित महारौरव नामक द्वितीय नरक है। उसकी भूमि जलते हुये तांबे से बनी है, जो नीचे से अग्नि द्वारा तापित होती रहती है। (५२)

उससे द्विगुणित विस्तृत तीसरा तामिस्र नामक नरक कहा जाता है। उससे द्विगुणित अधतामिस्र नामक चतुर्थ नरक है। (५३)

ततस्तु कालचक्रेति पञ्चमः परिगीयते ।
अप्रतिष्ठं च नरकं घटीयन्त्रं च सप्तमम् ॥ ५४
असिपत्रवनं चान्यत्सहस्राणि द्विसप्ततिः ।
योजनानां परिस्त्यातमष्टमं नरकोत्तमम् ॥ ५५
नवमं तप्तकुम्भं च दशमं कूटशाल्मलिः ।
करपत्रस्तथैवोक्तस्तथाऽन्यः श्वानभोजनः ॥ ५६
संदंशो लोहपिण्डश्च करम्भसिकता तथा ।
घोरा क्षारनदी चान्या तथान्यः कृमिभोजनः ।
तथाऽष्टादशमी प्रोक्ता घोरा वैतरणी नदी ॥ ५७
तथाऽपरः शोणितपूयभोजनः
क्षुराग्रधारो निशितश्च चक्रकः ।
संशोषणो नाम तथाप्यनन्तः
प्रोक्तास्तवैते नरकाः सुकेशिन् ॥ ५८

इति श्रीवामनपुराणे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

१२

सुकेशिरुवाच ।
कर्मणा नरकानेतान् केन गच्छन्ति वै कथम् ।
एतद् वदन्तु विप्रेन्द्राः परं कौतूहलं मम ॥ १

ऋषय ऊचुः ।
कर्मणा येन येनेह यान्ति शालकटंकट ।
स्वकर्मफलभोगार्थं नरकान् मे शृणुष्व तान् ॥ २
वेददेवद्विजातीनां यैर्निन्दा सततं कृता ।
ये पुराणेतिहासार्थान् नाभिनन्दन्ति पापिनः ॥ ३
गुरुनिन्दाकरा ये च मखविघ्नकराश्च ये ।
दातुर्निवारका ये च तेषु ते निपतन्ति हि ॥ ४
सुहृद्दम्पतिसोदर्यस्वामिभृत्यपितासुतान् ।
याज्योपाध्याययोर्यैश्च कृतो भेदोऽधमैर्मिथः ॥ ५

तदनन्तर पञ्चम नरक को कालचक्र कहते हैं। अप्रतिष्ठ नामक नरक षष्ठ और घटीयन्त्र सप्तम है। (५४)
नरकश्रेष्ठ असिपत्रवन नामक आठवाँ नरक बहत्तर हजार योजन विस्तृत कहा जाता है। (५५)
नवाँ तप्तकुम्भ, दसवाँ कूटशाल्मलि, एकादश करपत्र और बारहवाँ नरक श्वानभोजन है। (५६)
तदनन्तर क्रमशः संदंश, लोहपिण्ड, करम्भसिकता, भयंकर क्षार नदी, कृमिभोजन और अट्ठारहवें को घोर वैतरणी नदी कहा जाता है। (५७)
तदनन्तर शोणितपूयभोजन, क्षुराग्रधार, निशितचक्रक तथा संशोषण नामक अन्त रहित नरक हैं। हे सुकेशी! तुमसे इन नरकों का वर्णन किया गया। (५८)

श्रीवामनपुराण में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

१२

सुकेशी ने कहा—"हे विप्रेन्द्रगण! आप लोग यह बतलायें कि इन नरकों में मनुष्य किस कर्म से और कैसे जाते हैं? इस विषय में मुझे अत्यन्त कौतूहल है। (१)
ऋषियों ने कहा—हे शालकटंकट! (राक्षस) अपने कर्मफल का भोग करने के लिये जिन कर्मों से मनुष्य इन नरकों में जाते हैं उन्हें हमसे सुनो। (२)
वेद, देवता एवं द्विजातियों की सतत निन्दा करने वाले, पुराण एवं इतिहास के अर्थों का अभिनन्दन न करने वाले, गुरुओं के निन्दक, यज्ञों में विघ्न डालनेवाले और दाता को रोकने वाले पापी इन नरकों में गिरते हैं। (३-४)
सुहृद्, दम्पति, सहोदर, प्रभु भृत्य, पिता-पुत्र, एवं याज्योपाध्याय में परस्पर भेद उत्पन्न करनेवाले, अधम व्यक्ति तथा जो अधम व्यक्ति एक को कन्या देकर पुनः

कन्यामेकस्य दत्त्वा च ददत्यन्यस्य येऽधमाः ।
करपत्रेण पाट्यन्ते ते द्विधा यमकिंकरैः ॥ ६
परोपतापजनकाश्चन्दनोशीरहारिणः ।
बालव्यजनहर्त्तारः करम्भसिकताश्रिताः ॥ ७
निमन्त्रितोऽन्यतो भुङ्क्ते श्राद्धे दैवे सपैतृके ।
स द्विधा कृष्यते मूढस्तीक्ष्णतुण्डैः खगोत्तमैः ॥ ८
मर्माणि यस्तु साधूनां तुदन् वाग्भिर्निकृन्तति ।
तस्योपरि तुदन्तस्तु तुण्डैस्तिष्ठन्ति पत्रिणः ॥ ९
यः करोति च पैशुन्यं साधूनामन्यथामति. ।
वज्रतुण्डनखा जिह्वामाकर्षन्तेऽस्य वायसाः ॥ १०
मातापितृगुरूणां च येऽवज्ञां चक्रुरुद्धताः ।
मज्जन्ते पूयविण्मूत्रे त्वप्रतिष्ठे ह्यधोमुखाः ॥ ११
देवताऽतिथिभूतेषु भृत्येष्वभ्यागतेषु च ।
अभुक्तवत्सु येऽश्नन्ति बालपित्रग्निमातृषु ॥ १२
दुष्टासृक्पूयनिर्यासं भुञ्जते त्वधमा इमे ।
सूचीमुखाश्च जायन्ते क्षुधार्त्ता गिरिविग्रहाः ॥ १३
एकपङ्क्त्युपविष्टानां विषमं भोजयन्ति ये ।
विड्भोजनं राक्षसेन्द्र नरकं ते व्रजन्ति च ॥ १४
एकसार्थप्रयात ये पश्यन्तश्चार्थिनं नराः ।
असंविभज्य भुञ्जन्ति ते यान्ति श्लेष्मभोजनम् ॥ १५
गोब्राह्मणाग्नयः स्पृष्टा यैरुच्छिष्टैः क्षपाचर ।
क्षिप्यन्ते हि करास्तेषां तप्तकुम्भे सुदारुणे ॥ १६
सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैश्च कामतः ।
तेषां नेत्रगतो वह्निर्धम्यते यमकिंकरैः ॥ १७
मित्रजायाथ जननी ज्येष्ठो भ्राता पिता स्वसा ।
जामयो गुरवो वृद्धा यैः संस्पृष्टाः पदा नृभिः ॥ १८
बद्धाङ्घ्रयस्ते निगडैर्लोहैर्वह्निप्रतापितैः ।
क्षिप्यन्ते रौरवे घोरे ह्याजानुपरिदाहिनः ॥ १९
पायसं कृशरं मांसं वृथा भुक्तानि यैर्नरैः ।
तेषामयोगुडास्तप्ताः क्षिप्यन्ते वदनेऽद्भुताः ॥ २०

दूसरे को देते हैं वे यम दूतों द्वारा करपत्र (आरे) से दो टुकड़ों में चीरे जाते हैं। (५-६)

दूसरे को सताप देनेवाले, चन्दन और उशीर (खस) के हरणकर्त्ता और बालों से बने पखों अर्थात् चवरों के हरणकर्त्ता करम्भसिकता नामक नरक में जाते हैं। (७)

दैव या पैतृक श्राद्ध में निमन्त्रित होकर अन्यत्र भोजन करने वाले मूढ को तीक्ष्ण चोंच वाले बड़े-बड़े पक्षी दो टुकड़े करते हैं। (८)

वचनों के द्वारा चोट करते हुये जो सज्जनों के मर्मों को काटता है उसके ऊपर चोंच द्वारा प्रहार करते हुये पक्षी बैठे रहते हैं। (९)

दुष्टबुद्धियुक्त जो मनुष्य साधुओं की पिशुनता करता है उसकी जिह्वा को वज्रतुल्य चोंच और नख वाले कौए खींचते हैं। (१०)

माता, पिता एवं गुरु की अवज्ञा करने वाले उद्धत पुरुष पूय, विष्ठा एवं मूत्र से पूर्ण अप्रतिष्ठ नामक नरक में अधोमुख अवस्था में डूबते हैं। (११)

देवता, अतिथि, अन्य प्राणी, भृत्य, अभ्यागत, बालक, पिता, अग्नि एवं माताओं को बिना खिलाये खानेवाले अधम पुरुष पर्वततुल्य शरीर एवं सूची सदृश मुख से युक्त होकर क्षुधार्त रहते हुये दूषित रक्त एवं पीव का निर्यास (रस) भक्षण करते हैं। (१२-१३)

हे राक्षसेन्द्र! एक ही पंक्ति में बैठे हुये लोगों को जो समान रूप से भोजन नहीं कराते वे विड्भोजन नामक नरक में जाते हैं। (१४)

एक साथ चलनेवाले किसी इच्छुक को देखते हुये भी बिना बाँटे भोजन करने वाले श्लेष्मभोजन नामक (नरक) में जाते हैं। (१५)

हे राक्षस! उच्छिष्टावस्था में गाय, ब्राह्मण और अग्नि को स्पर्श करने वालों के हाथ भयंकर तप्तकुम्भ में डाले जाते हैं। (१६)

उच्छिष्टावस्था में स्वेच्छा से सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र को देखने वालों के नेत्रों में यमदूत अग्नि जलाते हैं। (१७)

मित्रपत्नी, जननी, ज्येष्ठभ्राता, पिता, बहन, पुत्री, गुरु और वृद्धों को पैर से छूनेवाले मनुष्यों के पैर वह्नि-जलते हुए लौहनिगड से बाँधकर इन्हें रौरव नरक में डाला जाता है जहाँ वे जानुपर्यन्त जलते रहते हैं। (१८-१९)

पायस, कृशर एवं मांस का वृथा (देवादि को बिना अर्पित किये हुए) भोजन करने वालों के मुख में अद्भुत तप्त लौहपिण्ड ठूँसा जाता है। (२०)

गुरुदेवद्विजातीनां वेदाना च नराधमैः ।
निन्दा निशामिता यैस्तु पापानामिति कुर्वताम् ॥ २१
तेषा लोहमयाः कीला वह्निवर्णाः पुनः पुनः ।
श्रवणेषु निखन्यन्ते धर्मराजस्य किंकरैः ॥ २२
प्रपादेवकुलारामान् विप्रवेश्मसभामठान् ।
कूपवापीतडागाश्च भङ्क्त्वा विध्वंसयन्ति ये ॥ २३
तेषा विलपता चर्म देहत म्रियते पृथक् ।
कर्तिकाभिः सुतीक्ष्णाभिः सुरौद्रैर्यमकिंकरैः ॥ २४
गोब्राह्मणार्कमग्निं च ये वै मेहन्ति मानवाः ।
तेषां गुदेन चान्त्राणि विनि कृन्तन्ति वायसाः ॥ २५
स्वपोषणपरो यस्तु परित्यजति मानवः ।
पुत्रभृत्यकलत्रादिबन्धुवर्गमकिञ्चनम् ।
दुर्भिक्षे सम्भ्रमे चापि स श्वभोज्ये निपात्यते ॥ २६
शरणागत ये त्यजन्ति ये च बन्धनपालकाः ।
पतन्ति यन्त्रपीडे ते ताड्यमानास्तु किंकरैः ॥ २७

पापियों द्वारा की गई गुरु, देवता, ब्राह्मण और वेदों की निन्दा को सुनने वाले नीच मनुष्यों के कानों में धर्मराज के किंकर अग्निवर्ण लोहे की कीलें बार-बार ठोंक्ते हैं। (२१-२२)

प्रपा (प्याऊ), देवमन्दिर, उद्यान, ब्राह्मणगृह, सभा, मठ, कूप, वापी (बावली) एव तडाग को तोड़कर नष्ट करनेवाले मनुष्यों के विलाप करते रहने पर भयकर यमकिंकर सुतीक्ष्ण छुरिकाओं के द्वारा उनकी देह से चर्म को पृथक् करते हैं। (२३-२४)

गाय, ब्राह्मण, सूर्य और अग्नि के सम्मुख मल-मूत्रादि का उत्सर्ग करने वालों की गुदा से कौए उनकी आँतों को नोंच-नोंच कर काटते हैं। (२५)

दुर्भिक्ष एव विप्लव के समय अकिञ्चन पुत्र, भृत्य एवं कलत्रादि बन्धुवर्ग को छोड़कर आत्मपोषण करनेवाला मनुष्य श्वभोजन नामक नरक मे डाला जाता है। (२६)

शरणागत व्यक्ति का परित्याग करनेवाले तथा बन्धन पालक (कारागार-रक्षक) मनुष्य यमदूतों के द्वारा ताड़ित होते हुये यन्त्र पीड़ नामक नरक में गिरते हैं। (२७)

अकर्मों में ब्राह्मणों को क्लेश देने वाले पापी मनुष्य

क्लेशयन्ति हि विप्रादीन् ये ह्यकर्मसु पापिनः ।
ते पिष्यन्ते शिलापेषे शोष्यन्तेऽपि च शोषकैः ॥ २८
न्यासापहारिणः पापा बध्यन्ते निगडैरपि ।
क्षुत्क्षामाः शुष्कताल्वोष्ठाः पात्यन्ते वृश्चिकाशने ॥ २९
पर्वमैथुनिनः पापाः परदाररताश्च ये ।
ते वह्नितप्ता कूटाग्रामालिङ्गन्ते च शाल्मलीम् ॥ ३०
उपाध्यायमधःकृत्य यैरधीत द्विजाधमैः ।
तेषामध्यापको यश्च स शिला शिरसा वहेत् ॥ ३१
मूत्रश्लेष्मपुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि वारिणि ।
ते पात्यन्ते च विण्मूत्रे दुर्गन्धे पूयपूरिते ॥ ३२
श्राद्धातिथेयमन्योन्य यैर्भुक्त भुवि मानवैः ।
परस्पर भक्षयन्ते मासानि स्वानि बालिशाः ॥ ३३
वेदवह्निगुरुत्यागी भार्यापित्रोस्तथैव च ।
गिरिशृङ्गादधःपात पात्यन्ते यमकिंकरैः ॥ ३४
पुनर्भूपतयो ये च कन्याविध्वसकाश्च ये ।

शिलाओं पर पीसे जाते हैं तथा अग्नि द्वारा शोषित किये जाते हैं। (२८)

न्यास का अपहरण करनेवाले पापियों को निगडबद्ध कर क्षुधाक्षीण एव शुष्क तालवोष्ठ अवस्था मे वृश्चिकाशन नामक नरक में गिराया जाता है। (२९)

पर्व मे मैथुन करनेवाले तथा परस्त्रीरत पापियों को वह्नि तप्त कीलों वाले शाल्मलि का आलिङ्गन करना पड़ता है। (३०)

उपाध्याय को स्वय की अपेक्षा निम्नासन पर बिठाकर अध्ययन करनेवाले अधम द्विजों एव उनके अध्यापकों को शिरपर शिला वहन करनी पड़ती है। (३१)

जल मे मूत्र, श्लेष्मा (कफ) एव मल का त्याग करने वालों को दुर्गन्ध युक्त विष्ठा, और पीब से पूर्ण विण्मूत्र नामक नरक मे गिराया जाता है। (३२)

इस ससार में श्राद्ध के अवसर पर अतिथि के निमित्त प्रस्तुत पदार्थों को परस्पर भक्षण करने वाले मूर्खों को परलोक में एक दूसरे का मास खाना पड़ता है। (३३)

वेद, अग्नि, गुरु, भार्या, पिता एवं माता का त्याग करने वालों को यमदूत गिरिशिखर पर से नीचे गिराते हैं। (३४)

विधवा से विवाह करनेवालों, अविवाहित कन्या को

तद्गर्भश्राद्धभुग् यश्च कृमीन्मक्षेत्पिपीलिकाः ॥ ३५
चाण्डालादन्त्यजाद्वापि प्रतिगृह्णाति दक्षिणाम् ।
याजको यजमानश्च सोऽश्मान्तः स्थूलकीटकः ॥ ३६
पृष्ठमांसाशिनो मूढास्तथैवोत्कोचजीविनः ।
क्षिप्यन्ते वृकमक्षे ते नरके रजनीचर ॥ ३७
स्वर्णस्तेयी च ब्रह्मघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।
तथा गोभूमिहर्त्तारो गोस्त्रीबालहनाश्च ये ॥ ३८
एते नरा द्विजा ये च गोषु विक्रयिणस्तथा ।
सोमविक्रयिणो ये च वेदविक्रयिणस्तथा ॥ ३९
कृटसभ्यास्त्वशौचाश्च नित्यनैमित्तनाशकाः ।
कूटसाक्ष्यप्रदा ये च ते महारौरवे स्थिताः ॥ ४०
दशवर्षसहस्राणि तावत् तामिस्रके स्थिताः ।
तावच्चैवान्धतामिस्रे असिपत्रवने ततः ॥ ४१
तावच्चैव घटीयन्त्रे तप्तकुम्भे ततः परम् ।
प्रपातो भवते तेषां यैरिदं दुष्कृतं कृतम् ॥ ४२
ये त्वेते नरका रौद्रा रौरवाद्यास्तवोदिताः ।
ते सर्वे क्रमशः प्रोक्ताः कृतघ्ने लोकनिन्दिते ॥ ४३

यथा सुराणां प्रवरो जनार्दनो
यथा गिरीणामपि शैशिराद्रिः ।
यथायुधानां प्रवरं सुदर्शनं
यथा खगानां विनतातनूजः ।
महोरगाणां प्रवरोऽप्यनन्तो
यथा च भूतेषु मही प्रधाना ॥ ४४
नदीषु गङ्गा जलजेषु पद्मं
सुरारिमुख्येषु हराङ्घ्रिभक्तः ।
क्षेत्रेषु यद्वत्कुरुजङ्गलं वरं
तीर्थेषु यद्वत् प्रवरं पृथूदकम् ॥ ४५
सरस्सु चैवोत्तरमानसं यथा
वनेषु पुण्येषु हि नन्दनं यथा ।
लोकेषु यद्वत्सदनं विरिञ्चेः
सत्यं यथा धर्मविधिक्रियासु ॥ ४६
यथाऽश्वमेधः प्रवरः क्रतूनां
पुत्रो यथा स्पर्शवतां वरिष्ठः ।
तपोधनानामपि कुम्भयोनिः
श्रुतिर्वरा यद्वदिहागमेषु ॥ ४७

दूषित करनेवालों एवं उक्त प्रकार से उत्पन्न व्यक्तियों की सन्तान के यहाँ श्राद्ध में भोजन करने वालों को कृमि तथा पिपीलिका का भक्षण करना पड़ता है। (३५)

चाण्डाल और अन्त्यज से दक्षिणा लेनेवाले याजकों एवं उनके यजमानों को पत्थरों में रहनेवाला स्थूल कीट बनना पड़ता है। (३६)

हे रजनीचर ! चुगलखोरों एवं घूसखोरों को वृकभक्ष नामक नरक में डाला जाता है। (३७)

सुवर्णचोर, ब्राह्मण का हत्याकारी, मद्यप, गुरुपत्नीगामी, गाय, तथा भूमि की चोरी करने वाले एवं स्त्री तथा बालक के मारने वाले मनुष्यों तथा गो, सोम एवं वेद का विक्रय करने वाले, कूटसभ्य तथा शौचाचारपरित्यागी, नित्यनैमित्तिककर्मों के नाशक, कूट साक्ष्य देनेवाले द्विजों को महारौरव नामक नरक में निवास करना पड़ता है। (३८-४०)

उपर्युक्त प्रकार के पापियों को दस हजार वर्ष तामिस्र नरक में तथा उतने ही वर्षों तक अन्धतामिस्र और असिपत्रवन नामक नरक में रहने के उपरान्त—उतने ही वर्षों तक घटीयन्त्र और तप्तकुम्भ नामक नरकों में रहना पड़ता है। (४१-४२)

जिन भयङ्कर रौरव आदि नरकों का वर्णन तुमसे किया गया है वे सभी लोक निन्दित कृतघ्नों को बारी-बारी से प्राप्त होते हैं। (४३)

जैसे देवताओं मे जनार्दन, पर्वतों में हिमालय, अस्त्रों में सुदर्शन, पक्षियों में गरुड़, महान् सर्पों मे अनन्त नाग तथा भूतों में पृथ्वी श्रेष्ठ है। (४४)

नदियों म गंगा, जलजों में कमल, देव शत्रु-दैत्यों में महादेव के चरणों का भक्त, क्षेत्रों में जिस प्रकार कुरुजांगल, तीर्थों में पृथूदक प्रधान है। (४५)

जलाशयों में उत्तरमानस, पवित्र वनों में नन्दन कानन, लोकों में ब्रह्मलोक, धर्म-कार्यों मे सत्यप्रधान है तथा जैसे— (४६)

यज्ञों में अश्वमेध, स्पर्श करने योग्य पदार्थों में पुत्र, तपस्वियों में अगस्त्य, आगम शास्त्रों में वेद श्रेष्ठ है। (४७)

मुख्यः पुराणेषु यथैव मात्स्यः
स्वायंभुवोक्तिस्त्वपि संहितासु ।
मनुः स्मृतीनां प्रवरो यथैव
तिथीषु दर्शो विषुवेषु दानम् ॥ ४८

तेजस्विनां यद्वदिहार्क उक्तो
ऋक्षेषु चन्द्रो जलधिर्हृदेषु ।
भवान् यथा राक्षससत्तमेषु
पाशेषु नागस्तिमितेषु बन्धः ॥ ४९

धान्येषु शालिर्द्विपदेषु विप्रः
चतुष्पदे गौः श्वपदां मृगेन्द्रः ।
पुष्पेषु जाती नगरेषु काञ्ची
नारीषु रम्भा श्रमिणां गृहस्थः ॥ ५०

कुशस्थली श्रेष्ठतमा पुरेषु
देशेषु सर्वेषु च मध्यदेशः ।
फलेषु चूतो मुकुलेष्वशोकः
सर्वौषधीनां प्रवरा च पथ्या ॥ ५१

मूलेषु कन्दः प्रवरो यथोक्तो
व्याधिष्वजीर्णं क्षणदाचरेन्द्र ।
श्वेतेषु दुग्धं प्रवरं यथैव
कार्पासिकं प्रावरणेषु यद्वत् ॥ ५२

कलासु मुख्या गणितज्ञता च
विज्ञानमुख्येषु यथेन्द्रजालम् ।
शाकेषु मुख्या त्वपि काकमाची
रसेषु मुख्यं लवणं यथैव ॥ ५३

तुङ्गेषु तालो नलिनीषु पम्पा
वनौकसेष्वेव च ऋक्षराजः ।
महीरुहेष्वेव यथा वटश्च
यथा हरो ज्ञानवतां वरिष्ठः ॥ ५४

यथा सतीनां हिमवत्सुता हि
यथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ।
यथा वृषाणामपि नीलवर्णो
यथैव सर्वेष्वपि दुःसहेषु ।
दुर्गेषु रौद्रेषु निशाचरेश
नृपातनं वैतरणी प्रधाना ॥ ५५

जैसे पुराणों मे मत्स्यपुराण, सहिताओं मे स्वयम्भू के द्वारा कथित सहिता, स्मृतियों मे मनुस्मृति, तिथियों में अमावस्या और विषुवों (मेष और तुला की सक्रान्ति) के अवसर पर किया गया दान श्रेष्ठ होता है। (४८)

तथा जैसे तेजस्वियों में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्रमा, जलाशयों मे समुद्र, राक्षसश्रेष्ठों मे आप और निश्चेष्ट करनेवाले पाशों मे नागपाश श्रेष्ठ है। (४९)

एव जैसे धानों में शालि, द्विपदों मे ब्राह्मण, चतुष्पदों मे गाय, जगली जानवरों में सिंह, फूलों में जाती, नगरों में काञ्ची, नारियों में रम्भा और आश्रमियों में गृहस्थ श्रेष्ठ हैं। (५०)

पुरों में कुशस्थली, समस्त देशों में मध्यदेश, फलों में आम, मुकुलों में अशोक, समस्त जड़ी बूटियों में पथ्या सर्व श्रेष्ठ है। (५१)

हे निशाचर! जैसे मूलों में कन्द, रोगों में अजीर्ण, श्वेत वस्तुओं मे दुग्ध और वस्त्रों में रूई के कपड़े श्रेष्ठ हैं। (तथा जैसे) (५२)

कलाओं मे गणितज्ञता, विज्ञान मे इन्द्रजाल, शाकों में काकमाची, रसों मे लवण, ऊँची वस्तुओं मे ताल, कमल-सरोवरों में पम्पा, वनौकसों में ऋक्षराज, वृक्षों में वट, ज्ञानियों में महादेव वरिष्ठ हैं। (एव) हे निशाचर! जैसे— (५३–५४)

सतियों में पार्वती, गायों में कपिला, बैलों में नील रग का बैल, सभी दुःसह कठिन एव भयकर नरकों में वैतरणी सर्वप्रधान है। उसी प्रकार हे निशाचरेन्द्र! पापियों में

चित्रोत्पला वै तमसा करमोदा पिशाचिका ।
तथान्या पिप्पलश्रोणी विपाशा वञ्जुलावती ॥ २६
सत्सन्तजा शुक्तिमती मञ्जिष्ठा कृत्तिमा वसुः ।
ऋक्षपादप्रसूता च तथान्या बलवाहिनी ॥ २७
शिवा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी सनिषधावती ।
वेणा वैतरणी चैव सिनीबाहुः कुमुद्वती ॥ २८
तोया चैव महागौरी दुर्गन्धा वाशिला तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभा. ॥ २९
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेणा सरस्वती ।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेरिरेव च ॥ ३०
दुग्धोदा नलिनी रेवा वारिसेना कलस्वना ।
एतास्त्वपि महानद्यः सह्यपादविनिर्गताः ॥ ३१
कृतमाला ताम्रपर्णी वञ्जुला चोत्पलावती ।
सिनी चैव सुदामा च शुक्तिमत्प्रभवास्त्विमाः ॥ ३२
सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः पापप्रशमनास्तथा ।
जगतो मातरः सर्वाः सर्वाः सागरयोषितः ॥ ३३
अन्याः सहस्रशश्चात्र क्षुद्रनद्यो हि राक्षस ।
सदाकालवहाश्चान्याः प्रावृट्कालवहास्तथा ।
उदङ्मध्योद्भवा देशाः पिबन्ति स्वेच्छया शुभाः ॥ ३४
मत्स्याः कुशट्टाः कुणिकुण्डलाश्च
पाञ्चालकाश्याः सह कोसलाभिः ॥ ३५
वृकाः शबरकौवीराः सभूलिङ्गा जनास्त्विमे ।
शकाश्चैव समशका मध्यदेश्या जनास्त्विमे ॥ ३६
वाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
अपरान्तास्तथा शूद्राः पह्लवाश्च सखेटकाः ॥ ३७
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ।
शातद्रवा ललित्थाश्च पारावतसमूषकाः ॥ ३८
माठरोदकधाराश्च कैकेया दशमास्तथा ।
क्षत्रियाः प्रातिवैश्याश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥ ३९
काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा ह्यङ्गलौकिकाः ।
चीनाश्चैव तुषाराश्च बहुधा बाह्यतोदराः ॥ ४०
आत्रेयाः सभरद्वाजाः प्रस्थलाश्च दशेरकाः ।
लम्पकास्तावकारामा. शूलिकास्तङ्गणैः सह ॥ ४१
औरसाश्चालिमद्राश्च किरातानां च जातयः ।
तामसाः क्रममासाश्च सुपार्श्वाः पुण्ड्रकास्तथा ॥ ४२
कुलूताः कुहुका ऊर्णास्तूणीपादाः सकुक्कुटाः ।

चित्रकूटा, अपवाहिका, चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलश्रोणी, विपाशा, वञ्जुलावती, सत्सन्तजा, शुक्तिमती, मंजिष्ठा, कृत्तिमा, वसु और बलवाहिनी—ये नदियाँ ऋक्ष पर्वत से निकली हैं । (२५-२७)

शिवा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेणा, वैतरणी, सिनीबाहु, कुमद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गन्धा तथा वाशिला—ये पवित्र जलवाली कल्याणकारिणी नदियाँ विन्ध्यपर्वत से निकली हुई हैं । (२८-२९)

गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या, कावेरी, दुग्धोदा, नलिनी, रेवा, वारिसेना तथा कलस्वना—ये महानदियाँ सह्यपर्वत के पाद से निकली हैं । (३०-३१)

कृतमाला, ताम्रपर्णी, वंजुला, उत्पलावती, सिनी तथा सुदामा—ये नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से निकली हुई हैं । (३२)

ये सभी नदियाँ पवित्र, पापों का प्रशमन करने वाली, जगत् की मातायें तथा सागर की पत्नियाँ हैं । (३३)

हे राक्षस ! इनके अतिरिक्त अन्य सहस्रों क्षुद्र नदियाँ भी यहाँ पर हैं । इनमें कतिपय सदैव प्रवाहित होने वाली हैं तथा कतिपय केवल वर्षा काल में प्रवाहित होने वाली हैं। उत्तर एवं मध्य के देशों के निवासी इन पवित्र नदियों के जल को स्वेच्छया पान करते हैं । (३४)

मत्स्य, कुशट्ट, कुणि, कुण्डल, पाञ्चाल, काशी, कोशल, वृक, शबर, कौवीर, भूलिङ्ग, शक, तथा मशक जातियों के मनुष्य मध्यदेश में रहते हैं । (३५-३६)

वाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, शूद्र पह्लव, खेटक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शातद्रव, ललित्थ, पारावत, मूषक, माठर, उदकधार, कैकेय दशम, क्षत्रिय, प्रातिवैश्य, तथा वैश्य एवं शूद्रों के कुल, काम्बोज, दरद, बर्बर, अङ्गलौकिक, चीन, तुषार, बहुध, बाह्यतोदर, आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थल, दशेरक, लम्पक, तावक, राम, शूलिक, तङ्गण, औरस, अलिमद्र, किरातों की जातियाँ, तामस, क्रममास, सुपार्श्व, पुण्ड्रक, कुलूत, कुहुक, ऊर्ण,

माण्डव्या मालवीयाश्च उत्तरापथवासिन. ॥ ४३
अङ्गा वङ्गा मुद्गरवास्त्वन्तर्गिरिर्बहिर्गिराः ।
तथा प्रवङ्गा वाङ्गेया मासादा बलदन्तिकाः ॥ ४४
ब्रह्मोत्तरा प्राविजया भार्गवाः केशवर्बरा. ।
प्राग्ज्योतिषाश्च शूद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तका. ॥ ४५
माला मगधगोनन्दा. प्राच्या जनपदास्त्विमे ।
पुण्ड्राश्च केरलाश्चैव चौडाः कुल्याश्च राक्षस ॥ ४६
जातुषा मूषिकादाश्च कुमारादा महाशकाः ।
महाराष्ट्रा माहिषिकाः कालिङ्गाश्चैव सर्वशः ॥ ४७
आभीरा. सह नैषीका आरण्या. शबराश्च ये ।
वलिन्ध्या विन्ध्यमौलेया वैदर्भा दण्डकै. सह ॥ ४८
पौरिकाः सौशिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः ।
वैषिकाः कुन्दला अन्ध्रा उद्भिदा नलकारकाः ।
दाक्षिणात्या जनपदास्त्विमे शालकटङ्कट ॥ ४९
सूर्पारका कारिवना दुर्गास्तालीकटै. सह ।
पुलीया. ससिनीलाश्च तापसास्तामसास्तथा ॥ ५०
कारस्करास्तु रमिनो नासिक्यान्तरनर्मदाः ।
भारकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैरपि ॥ ५१
वात्सेयाश्च सुराष्ट्राश्च आवन्त्याश्चार्बुदैः सह ।
इत्येते पश्चिमामाशां स्थिता जानपदा जनाः ॥ ५२
कारुषाश्चैकलव्याश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोजा. किंकवरैः सह ॥ ५३
तोशला कोशलाश्चैव त्रैपुराश्चैल्लिकास्तथा ।
तुरसास्तुम्बराश्चैव वहनाः नैषधै. सह ॥ ५४
अनूपास्तुण्डिकेराश्च वीतहोत्रास्त्ववन्तयः ।
सुकेशे विन्ध्यमूलस्थास्त्विमे जनपदा. स्मृताः ॥ ५५
अथो देशान् प्रवक्ष्याम. पर्वताश्रयिणस्तु ये ।
निराहारा हंसमार्गाः कुपथास्तङ्गणाः खशाः ॥ ५६
कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णाः पुण्याः सहूहुकाः ।
त्रिगर्त्ताश्च किराताश्च तोमराः शिशिराद्रिकाः ॥ ५७
इमे तवोक्ता विषया. सुविस्तराद्
द्वीपे कुमारे रजनीचरेश ।
एतेषु देशेषु च देशधर्मान्
संकीर्त्यमानाञ् शृणु तत्त्वतो हि ॥ ५८

इति श्रीवामनपुराणे त्रयोदशोऽध्याय ॥१३॥

तूणीपाद, कुक्कुट, माण्डव्य एव मालवीय ये जातियाँ उत्तरापथ (उत्तराखण्ड) के निवासी हैं। (३७-४३)

अग, वग, एव मुद्गरव, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्रवग, वागेय, मासाद, बलदन्तिक, ब्रह्मोत्तर, प्राविजय, भार्गव, केशवर्बर, प्राग्ज्योतिष, शूद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, माला, मगध एव गोनन्द—ये पूर्व के जनपद हैं। (४४-४६ ab)

हे राक्षस! पुण्ड्र, केरल, चौड, कुल्य, जातुष, मूषिकाद, कुमाराद, महाशक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कालिंग, आभीर, नैषीक, आरण्य, शबर, वलिन्ध्य, विन्ध्यमौलेय, वैदर्भ, दण्डक, पौरिक, सौशिक, अश्मक, भोगवर्द्धन, वैषिक, कुन्दल, अन्ध्र, उद्भिद् एव नलकारक—हे शालकटकट! ये दक्षिण के जनपद हैं। (४६ cd-४९)

शूर्पारक, कारिवन, दुर्ग, तालीकट, पुलीय, ससिनील, तापस, तामस, कारस्कर, रमी, नासिक्य, अन्तर, नर्मद, भारकच्छ, माहेय, सारस्वत, वात्सेय, सुराष्ट्र, आवत्य एव आर्बुद ये पश्चिम दिशा में स्थित जनपदों के निवासी हैं। (५०-५२)

कारूष, ऐकलव्य, मेकल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज, किंकवर, तोशल, कोशल, त्रैपुर, ऐल्लिक, तुरस, तुम्बर, वहन, नैषध, अनूप, तुण्डिकेर, वीतहोत्र एव अवन्ती—हे सुकेशी! ये सभी जनपद विन्ध्यपर्वत के मूल मे हैं। (५३-५५)

हम अब पर्वताश्रित देशों का वर्णन करेंगे (उनके नाम ये हैं—) । निराहार, हसमार्ग, कुपथ, तगण, खश, कुथ प्रावरण, ऊर्ण, पुण्य, हूहुक, त्रिगर्त, किरात, तोमर एव शिशिराद्रिक। (५६-५७)

हे राक्षस! तुम से कुमारद्वीप के इन देशों का विस्तार से हम लोगों ने वर्णन किया। अब हम इन देशों में वर्तमान देश धर्मों का यथार्थत वर्णन करेंगे। उसे सुनो। (५८)

श्रीवामन पुराण मे तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

पापीयसां तद्वदिह कृतघ्नः-
सर्वेषु पापेषु निशाचरेन्द्र।
ब्रह्मघ्नगोघ्नादिषु निष्कृतिर्हि
विद्येत नैवास्य तु दुष्टचारिणः।
न निष्कृतिश्चास्ति कृतघ्नवृत्तेः
सुहृत्कृतं नाशयतोऽब्दकोटिभिः॥ ५६

इति श्रीवामनपुराणे द्वादशोऽध्याय ॥ १२॥

१३

सुकेशिरुवाच।

भवद्भिरुदिता घोरा पुष्करद्वीपसस्थितिः।
जम्बूद्वीपस्य संस्थान कथयन्तु महर्षयः॥ १

ऋषय ऊचुः।

जम्बूद्वीपस्य संस्थानं कथ्यमानं निशामय।
नवभेदं सुविस्तीर्णं स्वर्गमोक्षफलप्रदम्॥ २
मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतोऽद्भुतः।
पूर्व उत्तरतश्चापि हिरण्यो राक्षसेश्वर॥ ३
पूर्वदक्षिणतश्चापि किंनरो वर्ष उच्यते।
भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे॥ ४
पश्चिमे केतुमालश्च रम्यकः पश्चिमोत्तरे।
उत्तरे च कुरुवर्षः कल्पवृक्षसमावृतः॥ ५
पुण्या रम्या नवैवैते वर्षाः शालकटंकट।
इलावृताद्या ये चाष्टौ वर्षं मुक्त्वैव भारतम्॥ ६
न तेष्वस्ति युगावस्था जरामृत्युभय न च।
तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः।
विपर्ययो न तेष्वस्ति नोत्तमाधममध्यमाः॥ ७
यदेतद् भारतं वर्षं नवद्वीपं निशाचर।
सागरान्तरिताः सर्वे अगम्याश्च परस्परम्॥ ८

कृतघ्न प्रधानतम पापी होता है। ब्रह्महत्या एव गोहत्या आदि पापों की निष्कृति तो होती है किन्तु दुष्टचारी एव सुहृद् के किये को नष्ट करने वाले कृतघ्न की निष्कृति करोड़ों वर्षों में भी नहीं होती। (५५-५६)

श्रीवामन पुराण में बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

१३

सुकेशी ने कहा—हे ऋषिगण, आप लोगों ने पुष्कर द्वीप की घोर सस्थिति का वर्णन किया, अब जम्बूद्वीप के सस्थान का वर्णन करें। (१)

ऋषियों ने कहा—जम्बूद्वीप की स्थिति का वर्णन हम लोगों से सुनो। यह अति विस्तीर्ण द्वीप नव भागों में विभाजित है तथा स्वर्ग मोक्ष के फल को देने वाला है। (२)

हे राक्षसेश्वर! इसके बीच में इलावृत वर्ष, पूर्व में अद्‌भुत भद्राश्व वर्ष, तथा पूर्वोत्तर में हिरण्य वर्ष है। (३)

पूर्व-दक्षिण में किंनर वर्ष, दक्षिण में भारतवर्ष तथा दक्षिण-पश्चिम में हरिवर्ष बताया गया है। (४)

पश्चिम में केतुमाल-वर्ष, पश्चिमोत्तर में रम्यक वर्ष और उत्तर में कल्पवृक्ष से समावृत कुरुवर्ष है। (५)

हे शालकटंकट! ये नव पवित्र और रमणीय वर्ष हैं। भारतवर्ष के अतिरिक्त इलावृतादि आठ वर्षों में युगावस्था तथा जरामृत्यु का भय नहीं होता। उनमें बिना प्रयत्न के स्वाभाविक तथा सुख बहुल सिद्धि होती है तथा उनमें कोई विपर्यय (परिवर्तन) तथा उत्तम, मध्यम एवं अधम का भेद भी नहीं होता। हे निशाचर! इस भारतवर्ष में नव द्वीप हैं। ये सभी द्वीप समुद्रों से व्यवहित हैं और परस्पर अगम्य हैं। (६-८)

इन्द्रद्वीपः कसेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्तथा ॥ ९
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
कुमाराख्यः परिख्यातो द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥ १०
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ।
आन्ध्रा दक्षिणतो वीर तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे ॥ ११
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तरवासिनः ।
इज्यायुद्धवणिज्याद्यैः कर्मभिः कृतपावनाः ॥ १२
तेषां संव्यवहारश्च एभिः कर्मभिरिष्यते ।
स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्च पुण्यं पापं तथैव च ॥ १३
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥ १४
तथान्ये शतसाहस्रा भूधरा मध्यवासिनः ।
विस्तारोच्छ्रायिणो रम्या विपुलाः शुभसानवः ॥ १५
कोलाहलः सवैभ्राजो मन्दरो दुर्दराचलः ।
वातंधमो वैद्युतश्च मैनाकः सरसस्तथा ॥ १६
तुङ्गप्रस्थो नागगिरिस्तथा गोवर्धनाचलः ।
उज्जायनः पुष्पगिरिरर्बुदो रैवतस्तथा ॥ १७
ऋष्यमूकः सगोमन्तश्चित्रकूटः कृतस्मरः ।
श्रीपर्वतः कोङ्कणश्च शतशोऽन्येऽपि पर्वताः ॥ १८
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छा आर्याश्च भागशः ।
तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा यास्ताः सम्यङ् निशामय ॥ १९
सरस्वती पञ्चरूपा कालिन्दी सहिरण्वती ।
शतद्रुश्चन्द्रिका नीला वितस्तैरावती कुहूः ॥ २०
मधुरा हाररावी च उशीरा धातुकी रसा ।
गोमती धूतपापा च बाहुदा सदृषद्वती ॥ २१
निश्चिरा गण्डकी चित्रा कौशिकी च वधूसरा ।
सरयूश्च सलौहित्या हिमवत्पादनिःसृताः ॥ २२
वेदस्मृतिर्वेदसिनी वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ।
पर्णाशा नन्दिनी चैव पावनी च मही तथा ॥ २३
पारा चर्मण्वती लूपी विदिशा वेणुमत्यपि ।
सिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ॥ २४
शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुरसा कृपा ।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटापवाहिका ॥ २५

भारतवर्ष के नवद्वीपों के नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल, और वारुण तथा यह सागर से युक्त कुमार नामक नवम द्वीप दक्षिण से उत्तर की ओर फैला है। (९-१०)

हे वीर! भारतवर्ष के पूर्व की सीमा पर किरात, पश्चिम में यवन, दक्षिण मे आन्ध्र तथा उत्तर मे तुरुष्क लोग स्थित हैं। (११)

इसके अन्तर्भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र लोग रहते हैं। यज्ञ, युद्ध एव वाणिज्य आदि कर्मों के द्वारा वे सभी पवित्र किये गये हैं। उनका व्यवहार, स्वर्गापवर्ग की भी प्राप्ति तथा पाप एवं पुण्य इन्हीं कर्मों द्वारा होता है। (१२-१३)

इस वर्ष में महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान् ऋक्ष, विन्ध्य एवं पारियात्र नाम वाले सात कुल (मुख्य) पर्वत हैं। (१४)

इसके मध्य में अन्य लाखों पर्वत हैं जो अत्यन्त विस्तीर्ण, उत्तुङ्ग, रम्य एवं सुन्दर शृङ्गों वाले हैं। (१५)

कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दुर्दर, वातंधम, वैद्युत, मैनाक, सरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, गोवर्धन पर्वत, उज्जायन, पुष्पगिरि, अर्बुद, रैवत, ऋष्यमूक, गोमन्त, चित्रकूट, कृतस्मर, श्रीपर्वत, कोङ्कण तथा सैकड़ों अन्य पर्वत (यहाँ हैं)। (१६-१८)

इनसे आर्यों और म्लेच्छों के विभागानुसार जनपद संयुक्त हैं। यहाँ के निवासी, जिन श्रेष्ठ नदियों का जल पीते हैं उनका वर्णन भली भाँति सुनो। (१९)

सरस्वती, पञ्चरूपा, कालिन्दी, हिरण्वती, शतद्रु, चन्द्रिका नीला, वितस्ता, ऐरावती, कुहू, मधुरा, हाररावी, उशीरा, धातुकी, रसा, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, निश्चिरा, गण्डकी, चित्रा, कौशिकी, वधूसरा, सरयू तथा लौहित्या—ये नदियाँ हिमालय के पाद से निकली हैं। (२०-२२)

वेदस्मृति, वेदसिनी, वृत्रघ्नी, सिन्धु, पर्णाशा, नन्दिनी, पावनी, मही, पारा, चर्मण्वती, लूपी, विदिशा, वेणुमती, सिप्रा तथा अवन्ती—ये नदियाँ पारियात्र पर्वत से निकली हैं। (२३-२४)

महानद शोण, नर्मदा, सुरसा, कृपा, मन्दाकिनी, दशार्णा,

ऋषय ऊचुः ।
अहिंसा सत्यमस्तेयं दानं क्षान्तिर्दमः शम. ।
अकार्पण्यं च शौच च तपश्च रजनीचर ॥ १
दशाङ्गो राक्षसश्रेष्ठ धर्मोऽसौ सार्ववर्णिकः ।
ब्राह्मणस्यापि विहिता चातुराश्रम्यकल्पना ॥ २
सुकेशिरुवाच ।
विप्राणां चातुराश्रम्यं विस्तराग्मे तपोधनाः ।
आचक्षध्वं न मे तृप्तिः शृण्वतः प्रतिपद्यते ॥ ३
ऋषय ऊचुः ।
कृतोपनयनः सम्यग् ब्रह्मचारी गुरौ वसेत् ।
तत्र धर्मोऽस्य यस्तं च कथ्यमानं निशामय ॥ ४
स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नान भिक्षाटनं तथा ।
गुरोर्निवेद्य तच्चाद्यमनुज्ञातेन सर्वदा ॥ ५
गुरोः कर्मणि सोद्योगः सम्यक्प्रीत्युपपादनम् ।
तेनाहूत. पठेच्चैव तत्परो नान्यमानसः ॥ ६
एकं द्वो सकलान् चापि वेदान् प्राप्य गुरोर्मुखात् ।
अनुज्ञातो वर दत्त्वा गुरवे दक्षिणा तत. ॥ ७
गार्हस्थ्याश्रमकामस्तु गार्हस्थ्याश्रममावसेत् ।
वानप्रस्थाश्रम वाऽपि चतुर्थं स्वेच्छयात्मनः ॥ ८
तत्रैव वा गुरोर्गेहे द्विजो निष्ठामवाप्नुयात् ।
गुरोरभावे तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुत विना ॥ ९
शुश्रूषन् निरभीमानो ब्रह्मचर्याश्रम वसेत् ।
एवं जयति मृत्युं स द्विजः शालकटङ्कट ॥ १०
उपावृत्तस्ततस्तस्माद् गृहस्थाश्रमकाम्यया ।
असमानर्षिकुलजा कन्यामुद्वहेद् निशाचर ॥ ११
स्वकर्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवातिथीनपि ।
सम्यक् संप्रीणयेद् भक्त्या सदाचाररतो द्विजः ॥ १२

१४

ऋषियों ने कहा—हे राक्षसश्रेष्ठ ! अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) दान, क्षमा, दम (इन्द्रिय निग्रह), शम, अकार्पण्य, शौच एव तप—इन दस अङ्गों वाला धर्म सभी वर्णों के लिये विहित है। ब्राह्मणों के लिये चार आश्रमों का विधान किया गया है। (१-२)

सुकेशी ने कहा—हे तपोधनो ! ब्राह्मणों के हेतु विहित चातुराश्रम्य को आप लोग विस्तार पूर्वक मुझसे कहें। मुझे सुनते हुये तृप्ति नहीं हो रही है। (३)

ऋषियों ने कहा—भलीभांति उपनयन सस्कार हो जाने पर ब्रह्मचारी गुरु के गृह पर रहे। वहाँ उसके जो धर्म हैं उन्हें बतला रहा हूँ, तुम सुनो। (४)

स्वाध्याय, अग्निकी सेवा, स्नान, भिक्षाटन, सर्वदा गुरु को निवेदित करके तथा उनसे आज्ञा प्राप्त कर भोजन करना। गुरु के कार्य हेतु उद्यत रहना, सम्यक् रूप से गुरु में प्रीति उत्पन्न करना, उनके द्वारा बुलाये जाने पर तत्पर तथा एकाग्रचित्त होकर पढ़ना। (ये उसके धर्म हैं) (५-६)

गुरु के मुख से एक, दो या सभी वेदों को प्राप्त कर गुरु को धन तथा दक्षिणा देने के पश्चात् उनसे अनुज्ञा, प्राप्त कर, गृहस्थाश्रम मे जाने का इच्छुक (शिष्य) गार्हस्थ्याश्रम में प्रवेश करे। अथवा अपनी इच्छा के अनुसार वानप्रस्थ या सन्यास का अवलम्बन करे। (७-८)

अथवा वहीं गुरु के घर में ब्राह्मण मृत्यु (नैष्ठिक ब्रह्मचर्य) प्राप्त करे अर्थात् जीवनपर्यन्त रहे। गुरु के अभाव में उनके पुत्र एव पुत्र न हो तो उनके शिष्य के समीप निवास करे। (९)

हे शालकटङ्कट ! अभिमानरहित तथा शुश्रूषा करते हुये ब्रह्मचर्याश्रम म रहे। इस प्रकार अनुष्ठान करने वाला द्विज मृत्यु को जीत लता है। (१०)

हे निशाचर ! वहाँ से उपावृत्त होकर गृहस्थाश्रम की कामना से असमान ऋषि वाले, कुल में उत्पन्न कन्या से विवाह करे। (११)

सदाचार में रत द्विज अपने कर्म द्वारा धनोपार्जन कर

सुकेशिरुवाच ।

सदाचारो निगदितो युष्माभिर्मम सुव्रताः ।
लक्षणं श्रोतुमिच्छामि कथयध्वं तमद्य मे ॥ १३

ऋषय ऊचुः ।

सदाचारो निगदितस्तव योऽस्माभिरादरात् ।
लक्षणं तस्य वक्ष्यामस्तच्छृणुष्व निशाचर ॥ १४
गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम् ।
न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र च ॥ १५
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये ।
भवन्ति यः समुल्लङ्घ्य सदाचारं प्रवर्तते ॥ १६
दुराचारो हि पुरुषो नेह नामुत्र नन्दते ।
कार्यो यत्नः सदाचारे आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १७
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामः सदाचारस्य राक्षस ।
शृणुष्वैकमनास्तच्च यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि ॥ १८

धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शाखा
पुष्पं च कामः फलमस्य मोक्षः ।
असौ सदाचारतरुः सुकेशिन्
संसेवितो येन स पुण्यभोक्ता ॥ १९
ब्राह्मे मुहूर्ते प्रथमं विबुध्ये-
दनुस्मरेद् देववरान् महर्षीन् ।
प्राभातिकं मङ्गलमेव वाच्यं
यदुक्तवान् देवपतिस्त्रिनेत्रः ॥ २०

सुकेशिरुवाच ।

किं तदुक्तं सुप्रभातं शंकरेण महात्मना ।
प्रभाते यत् पठन्मर्त्यो मुच्यते पापबन्धनात् ॥ २१

ऋषय ऊचुः ।

श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ सुप्रभातं हरोदितम् ।
श्रुत्वा स्मृत्वा पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः सह भानुजेन
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २३

पितरों, देवों एवं अतिथियों को अपनी भक्ति द्वारा सम्यक् तया तृप्त करे। (१२)

सुकेशी ने कहा—हे सुव्रतो! आप लोगों ने मुझ से सदाचार का वर्णन किया है। मैं उसका लक्षण सुनना चाहता हूँ। मुझसे अब उसका वर्णन करें। (१३)

ऋषियों ने कहा—हे निशाचर! हमने आदर के साथ तुमसे जिस सदाचार का उल्लेख किया है, उसका लक्षण कहते हैं, उसे सुनो। (१४)

गृहस्थ को आचार का सदा पालन करना चाहिये। आचारहीन व्यक्ति का इसलोक और परलोक में कल्याण नहीं होता है। (१५)

सदाचार का उल्लंघन कर व्यवहार करनेवाले पुरुष के यज्ञ, दान एवं तप कल्याणकर नहीं होते। (१६)

दुराचारी पुरुष इस लोक तथा परलोक में आनन्दित नहीं होता। अतः आचार पालन में सदा प्रयत्न करना चाहिये। आचार अलक्षण को विनष्ट करता है। (१७)

हे राक्षस! इस सदाचार का स्वरूप कहते हैं। यदि कल्याण चाहते हो तो एकाग्र चित्त होकर उसे सुनो। (१८)

हे सुकेशी! धर्म इसका मूल है, धन इसकी शाखा है, काम इसका पुष्प है एवं मोक्ष इसका फल है—ऐसे सदाचार रूपी वृक्ष का जिसने सेवन किया है वह पुण्य को भोगने वाला होता है। (१९)

ब्राह्ममुहूर्त में उठकर सर्वप्रथम श्रेष्ठ देवों एवं महर्षियों का स्मरण करे तथा देवपति महादेव द्वारा कथित प्रभात-कालीन मंगल को पढ़े। (२०)

सुकेशी ने कहा—महात्मा शंकर ने कौन सा सुप्रभात कहा है। जिसका प्रातःकाल पाठ करने से मनुष्य पाप बन्धन से मुक्त हो जाता है। (२१)

ऋषियों ने कहा—हे राक्षसश्रेष्ठ! महादेव द्वारा कथित 'सुप्रभात' सुनो! इसको सुनने, स्मरण करने और पढ़ने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (२२)

ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, तथा शनि—ये सब मेरा सुप्रभात करें। (२३)

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च
मनुः पुलस्त्यः पुलहः सगौतमः ।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनो ऋभुश्च
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २४
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च ।
सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २५
पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथाऽऽपः
स्पर्शश्च वायुर्ज्वलनः सतेजाः ।
नभः सशब्दं महता सहैव
यच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २६
सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवराश्च सप्त ।
भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त
ददन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २७
इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं
पठेत् स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या ।
दुःस्वप्ननाशोऽनघ सुप्रभातं
भवेच्च सत्यं भगवत्प्रसादात् ॥ २८
ततः समुत्थाय विचिन्तयेत
धर्मं तथार्थं च विहाय शय्याम् ।
उत्थाय पश्चाद्धरिरित्युदीर्य
गच्छेत् तदोत्सर्गविधिं हि कर्तुम् ॥ २९
न देवगोब्राह्मणवह्निमार्गे
न राजमार्गे न चतुष्पथे च ।
कुर्यादथोत्सर्गमपीह गोष्ठे
पूर्वापरां चैव समाश्रितो गाम् ॥ ३०
ततस्तु शौचार्थमुपाहरेन्मृदं
गुदे त्रयं पाणितले च सप्त ।
तथोभयोः पञ्च चतुस्तथैकां
लिङ्गे तथैकां मृदमाहरेत ॥ ३१
नान्तर्जलाद्राक्षस मूषिकस्थलात्
शौचावशिष्टा शरणात् तथान्या ।
वल्मीकमृच्चैव हि शौचनाय
ग्राह्या सदाचारविदा नरेण ॥ ३२
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वापि विद्वान्
प्रक्षाल्य पादौ भुवि संनिविष्टः ।

भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन तथा ऋभु ये सभी (ऋषि) मेरा सुप्रभात करें । (२४)

सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि, पिंगल, सातों स्वर एवं सातों रसातल—ये सभी मेरा सुप्रभात करें । (२५)

गन्धयुक्त पृथिवी, रसयुक्त जल, स्पर्शयुक्त वायु, तेजयुक्त अग्नि, शब्द युक्त आकाश एवं महत्तत्त्व ये सभी मेरा सुप्रभात करें । (२६)

सात समुद्र, सात कुलपर्वत, सात ऋषि, सात श्रेष्ठ द्वीप और भू आदि सात लोक ये सभी मुझे सुप्रभात प्रदान करें । (२७)

इस प्रकार प्रातःकाल परम पवित्र सुप्रभात स्तोत्र को भक्तिपूर्वक पढ़े, स्मरण करे अथवा सुने । हे अनघ! (ऐसा करनेसे) भगवान् की कृपा से निश्चय ही दुःस्वप्न का नाश होता है तथा सुप्रभात होता है । (२८)

तदनन्तर उठकर धर्म तथा अर्थ की चिन्ता करे और शय्या त्याग करने के उपरान्त 'हरि' का नाम लेकर उत्सर्ग विधि (शौचादि) करने के लिये जाय । (२९)

देवता, गौ, ब्राह्मण और अग्नि के मार्ग, राजपथ और चौराहे पर, गोशाला में तथा पूर्व या पश्चिम दिशा की ओर मुख करके मलत्याग न करें । (३०)

तदनन्तर शौचार्थ मिट्टी ग्रहण करे एवं मलद्वार में तीन बार, (वाम) पाणितल में सात बार तथा दोनों करतलों में दस बार एवं लिङ्ग में एक बार मिट्टी लगावे । (३१)

हे राक्षस! सदाचारविद् मनुष्य को जल के भीतर से, चूहे की बिल से, दूसरों के शौच से बची हुई एवं गृह से मिट्टी नहीं लेनी चाहिए। दीमक की बाँबी से ही शौचार्थ मिट्टी लेनी चाहिए । (३२)

विद्वान् पुरुष पैर धोने के पश्चात् उत्तर या पूर्वमुख

समाचमेदद्भिरफेनिलाभि-
रादौ परिमृज्य मुखं द्विरद्भिः ॥ ३३
ततः स्पृशेत्स्थानि शिरः करेण
संध्यामुपासीत ततः क्रमेण ।
केशांस्तु संशोध्य च दन्तधावनं
कृत्वा तथा दर्पणदर्शनं च ॥ ३४
कृत्वा शिरःस्नानमथाह्निकं वा
संपूज्य तोयेन पितॄन् सदेवान् ।
होमं च कृत्वालभनं शुभानां
कृत्वा बहिर्निर्गमनं प्रशस्तम् ॥ ३५
दूर्वादधिसर्पिरथोदकुम्भं
धेनुं सवत्सां वृषभं सुवर्णम् ।
मृद्गोमयं स्वस्तिकमक्षतानि
लाजामधु ब्राह्मणकन्यकां च ॥ ३६
श्वेतानि पुष्पाण्यथ शोभनानि
हुताशनं चन्दनमर्कबिम्बम् ।
अश्वत्थवृक्षं च समालभेत
ततस्तु कुर्यान्निजजातिधर्मम् ॥ ३७

देशानुशिष्टं कुल धर्ममग्र्यं
स्वगोत्रधर्मं न हि संत्यजेत ।
तेनार्थसिद्धिं समुपाचरेत
नासत्प्रलापं न च सत्यहीनम् ॥ ३८
न निष्ठुरं नागमशास्त्रहीनं
वाक्यं वदेत्साधुजनेन येन ।
निन्द्यो भवेन्नैव च धर्मभेदी
सगं न चासत्सु नरेषु कुर्यात् ॥ ३९
संध्यासु वर्ज्यं सुरतं दिवा च
सर्वासु योनीषु पराबलासु ।
आगारशून्येषु महीतलेषु
रजस्वलास्वेव जलेषु वीर ॥ ४०
वृथाऽटनं वृथा दानं वृथा च पशुमारणम् ।
न कर्त्तव्यं गृहस्थेन वृथा दारपरिग्रहम् ॥ ४१
वृथाऽटनान्नित्यहानिर्वृथादानाद्धनक्षयः
वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति पातकं नरकप्रदम् ॥ ४२
संतत्या हानिरश्लाघ्या वर्णसंकरतो भयम् ।
भेतव्यं च भवेल्लोके वृथादारपरिग्रहात् ॥ ४३

बैठकर पहले मुख को दो बार जल से धोने के उपरान्त फेन-रहित जल से आचमन करे। (३३)

तदनन्तर अपनी इन्द्रियों तथा शिर को हाथ से स्पर्श कर क्रमशः केश संशोधन, दन्तधावन एवं दर्पण-दर्शन करने के उपरान्त सन्ध्योपासन करे। (३४)

शिर स्नान अथवा आह्निक स्नान कर पितरों एवं देवताओं का जल से पूजन करने के पश्चात् हवन कर और मांगलिक वस्तुओं का स्पर्श कर बाहर निकलना प्रशस्त होता है। (३५)

दूर्वा, दधि, घृत,जलपूर्ण कलश, सवत्सा गौ, वृषभ, सुवर्ण, मिट्टी, गोबर, स्वस्तिक चिह्न, अक्षत, लाजा, मधु, ब्राह्मण की कन्या, सुन्दर श्वेतपुष्प, अग्नि, चन्दन, सूर्य-बिम्ब और अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष का स्पर्श कर अपने जाति के धर्मों का पालन करे। (३६-३७)

देश-विहित धर्म, श्रेष्ठ कुलधर्म और गोत्रधर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। इसी से अर्थ की सिद्धि करनी चाहिए। असत्प्रलाप, सत्यरहित, निष्ठुर और आगम शास्त्र विहीन ऐसा वाक्य कभी न कहे जिससे साधुजनों द्वारा निन्दित होना पड़े। धर्मभेद एवं असत्पुरुषों का सङ्ग भी नहीं करना चाहिये। (३८-३९)

हे वीर! सन्ध्या एवं दिन के समय रति नहीं करनी चाहिये। सभी योनियों की परस्त्रियों में, गृह हीन पृथ्वी पर, रजस्वला स्त्री में तथा जल में सुरतव्यापार वर्जित है। (४०)

गृहस्थ को व्यर्थ भ्रमण, व्यर्थ दान व्यर्थ पशु-वध तथा व्यर्थ दार परिग्रह नहीं करना चाहिये। (४१)

व्यर्थ घूमने से नित्यकर्म की हानि होती है, वृथा दान से धनक्षय होता है तथा वृथा पशुवध करने वाला नरकप्रद पातक को प्राप्त करता है। (४२)

व्यर्थ स्त्री-सम्भव से सन्तान की निन्द्य हानि, वर्ण-सङ्कर से भय तथा लोक में भी भय की प्राप्ति होती है। (४३)

परस्वे परदारे च न कार्या बुद्धिरुत्तमैः ।
परस्वं नरकायैव परदाराश्च मृत्यवे ॥ ४४
नेक्षेत् परस्त्रियं नग्नां न संभाषेत तस्करान् ।
उदक्यादर्शनं स्पर्शं संभाषं च विवर्जयेत् ॥ ४५
नैकासने तथा स्थेयं सोदर्या परजायया ।
तथैव स्याच्च मातुश्च तथा स्वदुहितुस्त्वपि ॥ ४६
न च स्नायीत वै नग्नो न शयीत कदाचन ।
दिग्वाससोऽपि न तथा परिभ्रमणमिष्यते ॥
भिन्नासनभाजनादीन् दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ४७

नन्दासु नाभ्यङ्गमुपाचरेत
क्षौरं च रिक्तासु जयासु मांसम् ।
पूर्णासु योषित्परिवर्जयेत
भद्रासु सर्वाणि समाचरेत ॥ ४८
नाभ्यङ्गमर्के न च भूमिपुत्रे
क्षौरं च शुक्रे रविजे च मांसम् ।
बुधेषु योषिन्न समाचरेत
शेषेषु सर्वाणि सदैव कुर्यात् ॥ ४९
चित्रासु हस्ते श्रवणे च तैलं
क्षौरं विशाखास्वभिजित्सु वर्ज्यम् ।
मूले मृगे भाद्रपदासु मांसं
योषिन्मघाकृत्तिकयोत्तरासु ॥ ५०
सदैव वर्ज्यं शयनमुदक्शिरास्
तथा प्रतीच्यां रजनीचरेश ।
भुञ्जीत नैवेह च दक्षिणामुखो
न च प्रतीच्यामभिभोजनीयम् ॥ ५१
देवालयं चैत्यतरुं चतुष्पथ
विद्याधिकं चापि गुरुं प्रदक्षिणम् ।
माल्यान्नपानं वसनानि यत्नतो
नान्यैर्धृतांश्चापि हि धारयेद् बुधः ॥ ५२
स्नायाच्छिरःस्नानतया च नित्यं
न कारणं चैव विना निशासु ।
ग्रहोपरागे स्वजनापयाते

उत्तमव्यक्ति परधन तथा परस्त्री में मन न लगाये। परधन नरक-कारक और परस्त्री मृत्यु का कारण होती है। (४४)

परस्त्री को नग्नावस्था में न देखे, तस्करों से सम्भाषण न करे एवं रजस्वला स्त्री को न तो देखे, न उसका स्पर्श करे और न उससे सम्भाषण करे। (४५)

अपनी बहन तथा परस्त्री के साथ एक आसन पर नहीं बैठना चाहिये। उसी प्रकार अपनी माता तथा कन्या के साथ एकासन पर न बैठे। (४६)

नग्न होकर स्नान और शयन कभी न करे। नंगा होकर भ्रमण न करे। टूटे आसन और बर्तन आदि को दूर से ही त्याग दे। (४७)

नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) तिथियों में मालिश न करे, रिक्ता (चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी) तिथियों में क्षौर कर्म न करे तथा जया (तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी) तिथियों में मांस नहीं खाना चाहिये। पूर्णा (पंचमी, दशमी और पूर्णिमा) तिथियों में स्त्री का संपर्क न करे तथा भद्रा (द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी) तिथियों में सभी कार्य करे। (४८)

रविवार एवं मङ्गलवार को मालिश, शुक्रवार को क्षौर कर्म, शनिवार को मांस तथा बुधवार को स्त्री का वर्जन करे। शेष दिनों में सभी कार्य सदैव करना चाहिये। (४९)

चित्रा, हस्त और श्रवण नक्षत्रों मे तैल तथा विशाखा और अभिजित् नक्षत्रों में क्षौर कार्य का वर्जन करना चाहिये। मूल, मृगशिरा और भाद्रपदाओं में मांस भक्षण तथा मघा, कृत्तिका और तीनों उत्तराओं (उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभद्रपदा) में स्त्री-सहवास न करे। (५०)

हे राक्षसराज! उत्तर एवं पश्चिम की ओर शिर कर शयन करना सदा वर्जनीय है। दक्षिण और पश्चिम की ओर मुख कर भोजन नहीं करना चाहिये। (५१)

देवमन्दिर, चैत्यतरु (प्रशस्त-वृक्ष), चतुष्पथ, अपने से अधिक विद्वान् तथा गुरु की प्रदक्षिणा करे। बुद्धिमान् व्यक्ति यत्नपूर्वक दूसरे के द्वारा व्यवहृत माला, अन्न और वस्त्र का व्यवहार न करे। (५२)

नित्य शिर के ऊपर से स्नान करे। ग्रहोपराग (ग्रहण-काल) और स्वजन की मृत्यु तथा जन्म नक्षत्र में चन्द्रमा

मुक्त्वा च जन्मर्क्षगते शशाङ्के ॥ ५३
नाभ्यङ्कितं कायमुपस्पृशेच्च
स्नातो न केशान् विधुनीत चापि ।
गात्राणि चैवाम्बरपाणिना च
स्नातो विमृज्याद् रजनीचरेश ॥ ५४
वसेच्च देशेषु सुराजकेषु
सुसंहितेष्वेव जनेषु नित्यम् ।
अक्रोधना न्यायपरा अमत्सराः
कृषीवला ह्योषधयश्च यत्र ॥ ५५
न तेषु देशेषु वसेत बुद्धिमान्
सदा नृपो दण्डरुचिस्त्वशक्तः ।
जनोऽपि नित्योत्सवबद्धवैरः
सदा जिगीषुश्च निशाचरेन्द्र ॥ ५६

इति श्रीवामनपुराणे चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४॥

के आने के अतिरिक्त बिना कारण रात्रि में स्नान नहीं करना चाहिये । (५३)

हे रजनीचरेश ! मालिश किये हुये शरीर का स्पर्श न करे, स्नान करने के उपरान्त (तत्काल) केशों को न झाड़े तथा स्नान करके हाथ एवं वस्त्र से शरीर को नहीं पोंछना चाहिये । (५४)

शोभन राजा से युक्त तथा एकतायुक्त मनुष्यों वाले एवं जहाँ क्रोध हीन, न्यायी, ईर्ष्याविहीन मनुष्य हों तथा कृषक एवं औषधियाँ हो-ऐसे राज्य में रहना चाहिये । (५५)

बुद्धिमान् व्यक्ति को ऐसे देश में नहीं रहना चाहिये जहाँ का राजा दण्ड में सदैव रुचि रखने वाला तथा अशक्त हो और जहाँ की जनता नित्य उत्सव मनाने वाली तथा परस्पर वैर करने वाली एवं सदैव जय की इच्छा वाली हो । (५६)

वामनपुराण में चतुर्दहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

१५

ऋषय ऊचुः ।
यच्च वर्ज्यं महाबाहो सदाधर्मस्थितैर्नरैः ।
यच्चोज्यं च समुद्दिष्टं कथयिष्यामहे वयम् ॥ १
भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसंभृतम् ।
अस्नेहा व्रीहयः श्लक्ष्णा विकाराः पयसस्तथा ॥ २
शशकः शल्यको गोधा श्वाविधो मत्स्यकच्छपौ ।
तद्वद् द्विदलकादीनि भोज्यानि मनुरब्रवीत् ॥ ३
मणिरत्नप्रवालानां तद्वन्मुक्ताफलस्य च ।
शैलदारुमयानां च तृणमूलौषधान्यपि ॥ ४
शूर्पधान्याजिनानां च संहतानां च वाससाम् ।

१५

ऋषियों ने कहा—हे महाबाहो ! धर्मनिष्ठ व्यक्तियों के लिये जो (पदार्थ) सदैव वर्जनीय हैं एवं जो भोज्य कहे गये हैं हम उनका वर्णन करेंगे । (१)

स्नेहाक्त (तैल, घृत आदि स्निग्ध पदार्थों से पकाया गया) अन्न बासी एवं बहुत समय का रखा होने पर भी भोज्य है, तथा अस्निग्ध चिकने चावल एवं दूध के विकार (दधि, घृत आदि) बासी एवं पुराने होने पर भी भक्ष्य हैं । (२)

शशक (खरहा), शल्यक (साही), गोधा (गोह), श्वाविध (पशु विशेष), मत्स्य एवं कच्छप तथा दालों को मनु ने खाने योग्य कहा है । (३)

मणि, रत्न, प्रवाल (मूँगा), मुक्ताफल (मोती), पत्थर और लकड़ी के बने बर्तन, तृण, मूल तथा औषधियाँ शूर्प-धान्य, अजिन (मृगचर्म), संहतवस्त्र (सिले हुये

वल्कलानामशेषाणामम्बुना शुद्धिरिष्यते ॥ ५
सस्नेहानामथोष्णेन तिलकल्केन वारिणा ।
कार्पासिकानां वस्त्राणां शुद्धिः स्यात्सह भस्मना ॥ ६
नागदन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ।
पुनः पाकेन भाण्डानां मृन्मयानां च मेध्यता ॥ ७
शुचि भैक्षं कारुहस्तः पण्यं योषिन्मुखं तथा ।
रथ्यागतमविज्ञातं दासवर्गेण यत्कृतम् ॥ ८
वाक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु ।
चेष्टितं बालवृद्धानां बालस्य च मुखं शुचि ॥ ९
कर्मान्ताङ्गारशालासु स्तनंधयसुताः स्त्रियः ।
वाग्विप्रुषो द्विजेन्द्राणां संतप्ताश्चाम्बुबिन्दवः ॥ १०
भूमिर्विशुध्यते खातदाहमार्जनगोक्रमैः ।
लेपादुल्लेखनात् सेकाद् वेश्म संमार्जनार्चनात् ॥ ११
केशकीटावपन्नेऽन्ने गोघ्राते मक्षिकान्विते ।

मृदम्बुभस्मक्षाराणि प्रक्षेप्तव्यानि शुद्धये ॥ १२
औदुम्बराणां चाम्लेन क्षारेण त्रपुसीसयोः ।
भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च ॥ १३
अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च ।
अन्येषामपि द्रव्याणां शुद्धिर्गन्धापहारतः ॥ १४
मातुः प्रस्रवणे वत्सः शकुनिः फलपातने ।
गर्दभो भारवाहित्वे श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥ १५
रथ्याकर्दमतोयानि नावः पथि तृणानि च ।
मारुतेनैव शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥ १६
भृतं द्रोणाढकस्यान्नममेध्याभिप्लुतं भवेत् ।
अग्रमुद्धृत्य संत्याज्यं शेषस्य प्रोक्षणं स्मृतम् ॥ १७
उपवासं त्रिरात्रं वा दूषितान्नस्य भोजने ।
अज्ञाते ज्ञातपूर्वे च नैव शुद्धिर्विधीयते ॥ १८
उदक्याश्वाननग्नांश्च सूतिकान्त्यावसायिनः ।

वस्त्र), एवं समस्त वल्कलों की शुद्धि जल से होती है। (४-५)

स्नेह (तैल-घृतादि) युक्त वस्त्रों की शुद्धि उष्ण जल तथा तिल-कल्क (खली) से एवं कपास के वस्त्रों की शुद्धि भस्म से होती है। (६)

हाथी के दाँत, हड्डी और शृङ्ग की शुद्धि तक्षण (तराशने) से होती है। मिट्टी के बर्तन पुनः आग में जलाने से शुद्ध होते हैं। (७)

भिक्षान्न, कारीगरों का हाथ, विक्रेय वस्तु, स्त्रीमुख, मार्ग से लायी हुई वस्तु, अज्ञात पदार्थ तथा नौकरों द्वारा निर्मित वस्तुएँ पवित्र होती हैं। (८)

वचन द्वारा प्रशस्त, चिरातीत (पुराना), अनेकान्तरित एवं लघु वस्तुएँ, बालकों और वृद्धों द्वारा किया गया कर्म तथा शिशु का मुख शुद्ध होता है। ९

कर्मगृह, अन्तगृह एवं अग्निशाला में दुधमुँहे पुत्रों वाली स्त्रियाँ, बोलते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों के मुख के छींटे तथा उष्ण जलबिन्दु पवित्र होते हैं। (१०)

भूमि की शुद्धि खनने से, जलाने से, झाड़ देने से, गोचारण से, लीपने से, खरोंचने से तथा सींचने से होती है और गृह की शुद्धि झाड़ू देने तथा अर्चन से होती है। (११)

केश, कीट एवं मक्षिकायुक्त तथा गोघ्रात अन्न की शुद्धि के लिये मिट्टी, जल, भस्म और क्षार छिड़कना चाहिये। (१२)

अम्ल के द्वारा औदुम्बर (ताम्रपात्र) की, क्षार के द्वारा जस्ते और शीशे की, भस्म और जल के द्वारा काँसे की वस्तुएँ तथा (कुछ अंश को) बहा देने से तरल पदार्थ शुद्ध होते हैं। (१३)

अपवित्र वस्तु से मिश्रित पदार्थ मिट्टी और जल से तथा गन्ध दूर कर देने से शुद्ध होते हैं। अन्य पदार्थों की शुद्धि भी गन्ध दूर करने से होती है। (१४)

माता के स्तन को प्रस्तुत कराने में बछड़ा, वृक्ष से फल गिराने में पक्षी, बोझा ढोने में गधा और शिकार पकड़ने में कुत्ता शुद्ध होता है। (१५)

मार्ग, कीचड़, जल, नाव, पथ पर पड़ा हुआ तृण एवं पकी हुई ईंटों की चितियाँ वायु के द्वारा ही शुद्ध होती हैं। (१६)

एक द्रोण या एक आढक के पके अन्न के अपवित्र वस्तु से संयुक्त होने पर उसके ऊपर का अंश निकाल कर फेंक देना चाहिये एवं शेष पर जल छिड़कने से शुद्धि मानी गयी है। (१७)

अज्ञात रूप से दूषित अन्न खाने पर तीन रात्रि तक उपवास करने से शुद्धि का विधान है किन्तु जानबूझ कर खाने पर शुद्धि नहीं हो सकती। (१८)

स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥ १९
सस्नेहमस्थि संस्पृश्य सवासाः स्नानमाचरेत् ।
आचम्यैव तु निःस्नेह गामालभ्यार्कमीक्ष्य च ॥ २०
न लङ्घयेत्पुरीषासृक्ष्ठीवनोद्वर्तनानि च ।
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रे पादाम्भांसि क्षिपेद् बहिः ॥ २१
पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात् परवारिणि ।
स्नायीत देवखातेषु सरोह्रदसरित्सु च ॥ २२
नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत् कदाचन ।
नालपेद् जनविद्विष्टं वीरहीनां तथा स्त्रियम् ॥ २३
देवतापितृसच्छास्त्रयज्ञवेदादिनिन्दकैः ।
कृत्वा तु स्पर्शमालापं शुद्ध्यतेऽर्कावलोकनात् ॥ २४
अभोज्याः सूतिकाषण्डमार्जाराखुश्वकुक्कुटाः ।
पतितापविद्धनग्नाश्चाण्डालाद्यधमाश्च ये ॥ २५
सुकेशिरुवाच ।
भवद्भिः कीर्तिताऽभोज्या य एते सूतिकादयः ।
अमीषां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो लक्षणानि हि ॥ २६
ऋषय ऊचुः ।
ब्राह्मणी ब्राह्मणस्यैव याऽवरोधत्वमागता ।
तावुभौ सूतिकेत्युक्तौ तयोरन्नं विगर्हितम् ॥ २७
न जुहोत्युचिते काले न स्नाति न ददाति च ।
पितृदेवार्चनाद्धीनः स षण्ढः परिगीयते ॥ २८
दम्भार्थं जपते यश्च तप्यते यजते तथा ।
न परत्रार्थमुद्युक्तो स मार्जारः प्रकीर्तितः ॥ २९
विभवे सति नैवात्ति न ददाति जुहोति च ।
तमाहुराखुं तस्यान्नं भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥ ३०
यः परेषां हि मर्माणि निकृन्तन्निव भाषते ।
नित्यं परगुणद्वेषी स श्वान इति कथ्यते ॥ ३१
सभागतानां यः सभ्यः पक्षपातं समाश्रयेत् ।
तमाहुः कुक्कुटं देवास्तस्याप्यन्नं विगर्हितम् ॥ ३२

रजस्वला स्त्री, कुत्ता, नग्न, प्रसूता स्त्री, अन्त्यावसायी (चाण्डाल) और शववाहकों को स्पर्श कर पवित्र होने के लिये स्नान करना चाहिये। (१९)

मज्जा युक्त हड्डी छू जाने पर वस्त्र सहित स्नान करे किन्तु सूखी हड्डी का स्पर्श होने पर आचमन, गो स्पर्श, तथा सूर्यदर्शन करने से ही शुद्धि होती है। (२०)

पुरीष (विष्ठा), रक्त, ष्ठीवन (थूक) एवं उद्वर्तन (उबटन) का लङ्घन नहीं करना चाहिए। उच्छिष्ट पदार्थ विष्ठा, मूत्र एवं पैर धोने के जल को घर से बाहर फेंक देना चाहिये। (२१)

दूसरे के द्वारा निर्मित बावली इत्यादि में बिना पाँच अंजलि मिट्टी निकाले स्नान न करे। देव निर्मित झीलों, तालाबों और नदियों में स्नान करे। (२२)

बुद्धिमान् व्यक्ति उद्यानादि में कदापि असमय में न रहे। लोक विद्विष्ट व्यक्ति तथा पति-पुत्रहीना स्त्री से वार्त्तालाप नहीं करना चाहिये। (२३)

देवों, पितरों, भले शास्त्रों (स्मृति आदि), यज्ञ एवं वेदादि के निन्दकों का स्पर्श और उनसे वार्त्तालाप करने पर मनुष्य सूर्यदर्शन करने से शुद्ध होता है। (२४)

सूतिका, षण्ढ, मार्जार, आखु, श्वान, कुक्कुट, पतित, अपविद्ध, नग्न तथा चाण्डाल आदि अधम प्राणियों के यहाँ नहीं खाना चाहिये। (२५)

सुकेशी ने कहा—आप ने जिन सूतिकादि का अन्न अभक्ष्य कहा है मैं तत्त्वतः उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ। (२६)

ऋषियों ने कहा—अन्य ब्राह्मण के साथ ब्राह्मणी के व्यभिचरित होने पर उन दोनों को सूतिका कहा जाता है। उन दोनों का अन्न विगर्हित होता है। (२७)

उचित समय पर हवन, स्नान और दान न करने वाला तथा पितरों एवं देवताओं की पूजा से रहित व्यक्ति को षण्ढ कहते हैं। (२८)

दम्भ के लिये जप, तप और यज्ञ करने वाले तथा परलोकार्थ उद्योग न करने वाले व्यक्ति को 'मार्जार' कहते हैं। (२९)

ऐश्वर्य रहते हुए भोग, दान एवं हवन न करने वाले को 'आखु' कहते हैं उसका अन्न खाने पर मनुष्य कृच्छ्रव्रत करने से शुद्ध होता है। (३०)

दूसरों का मर्म भेदन करते हुए वार्त्तालाप करने वाले परगुणद्वेषी को 'श्वान' कहते हैं। (३१)

सभा में आगत व्यक्तियों में जो सभ्य पक्षपात करता

स्वधर्मं यः समुत्सृज्य परधर्मं समाश्रयेत् ।
अनापदि स विद्वद्भिः पतितः परिकीर्त्यते ॥ ३३
देवत्यागी पितृत्यागी गुरुभक्त्यरतस्तथा ।
गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धः स कीर्त्यते ॥ ३४
येषां कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम् ।
ते नग्नाः कीर्तिताः सद्भिस् तेषामन्नं विगर्हितम् ॥ ३५
आशार्तानामदाता च दातुश्च प्रतिषेधकः ।
शरणागतं यस्त्यजति स चाण्डालोऽधमो नरः ॥ ३६
यो बान्धवैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि ।
कुण्डाशी यश्च तस्यान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ३७
यो नित्यकर्मणो हानिं कुर्यान्नैमित्तिकस्य च ।
भुक्त्वान्नं तस्य शुद्ध्येत त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ३८
गणकस्य निषादस्य गणिकाभिषजोस्तथा ।
कदर्यस्यापि शुद्ध्येत त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ३९
नित्यस्य कर्मणो हानिः केवलं मृतजन्मसु ।
न तु नैमित्तिकोच्छेदः कर्त्तव्यो हि कथंचन ॥ ४०
जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलस्य विधीयते ।
मृते च सर्वबन्धूनामित्याह भगवान् भृगुः ॥ ४१
प्रेताय सलिलं देयं बहिर्दग्ध्वा तु गोत्रजैः ।
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे वा सप्तमे वाऽस्थिसंचयम् ॥ ४२
ऊर्द्ध्वं संचयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते ।
सोदकैस्तु क्रिया कार्या संशुद्धैस्तु सपिण्डजैः ॥ ४३
विषोद्बन्धनशस्त्राम्बुवह्निपातमृतेषु च ।
बाले प्रव्राजि संन्यासे देशान्तरमृते तथा ॥ ४४
सद्यः शौचं भवेद्वीर तच्चाप्युक्तं चतुर्विधम् ।
गर्भस्रावे तदेवोक्तं पूर्णकालेन चेतरे ॥ ४५

है उसे देवताओं ने 'कुक्कुट' कहा है उसका भी अन्न विगर्हित है । (३२)

विपत्तिकाल के अतिरिक्त अन्य समय में अपना धर्म छोड़ कर दूसरे का धर्म ग्रहण करने वाले को विद्वानों ने 'पतित' कहा है । (३३)

देवत्यागी, पितृत्यागी, गुरुभक्ति से विमुख, तथा गौ, ब्राह्मण एवं स्त्री की हत्या करने वाले को 'अपविद्ध' कहते हैं । (३४)

जिनके कुल में वेद, शास्त्र एवं व्रत नहीं है उन्हें सज्जन लोग 'नग्न' कहते हैं । उनका अन्न निन्दित है । (३५)

आशा रखने वालों को न देने वाला, दाता को मना करने वाला तथा शरणागत का परित्याग करने वाला अधम मनुष्य 'चाण्डाल' कहा जाता है । (३६)

बान्धवों, साधुओं एवं ब्राह्मणों से परित्यक्त तथा कुण्ड (पति के जीवित रहने पर परपुरुष से उत्पन्न पुत्र) के यहाँ खाने वाले का अन्न खाकर चान्द्रायण व्रत करना चाहिये । (३७)

नित्य और नैमित्तिक कर्म न करने वाले व्यक्ति का अन्न खाने पर मनुष्य तीन रात तक उपवास करने से शुद्ध होता है । (३८)

गणक (ज्योतिषी), निषाद, वेश्या, वैद्य तथा कदर्य (कृपण) का भी अन्न खाने पर मनुष्य त्रिरात्रोपवास से शुद्ध होता है । (३९)

घर में जन्म या मृत्यु होने पर नित्य कर्म नहीं होता किन्तु नैमित्तिक कर्म का उच्छेद कभी नहीं करना चाहिये । (४०)

भगवान् भृगु ने कहा है कि पुत्र उत्पन्न होने पर पिता के लिये एवं मरण में सभी बन्धुओं के लिये वस्त्र के साथ स्नान का विधान है । (४१)

ग्राम के बाहर शवदाह करने के उपरान्त सगोत्र लोग प्रेत के उद्देश्य से जलदान करें तथा प्रथम, चतुर्थ या सप्तम दिन अस्थि संचय करें । (४२)

अस्थिसञ्चय के उपरान्त उनके अङ्ग-स्पर्श का विधान है । शुद्ध होकर सोदक (चौदह पीढ़ी के अन्तर्गत के लोग) एवं सपिण्डज (सात पीढ़ी के अन्दर के लोग) जनों को ऊर्ध्वदैहिक क्रिया करनी चाहिये । (४३)

हे वीर ! विष, बन्धन, शस्त्र, जल, अग्नि और गिरने से मृत्यु होने पर तथा बालक, परिव्राजक, सन्यासी एवं देशान्तर में मृत्यु होने पर सद्य शौच होता है । वह (सद्य शौच) भी चार प्रकार का कहा गया है । गर्भस्राव में भी वैसी ही शुद्धि होती है । अन्य अशौच पूरे समय पर शुद्ध होते हैं । (४४-४५)

ब्राह्मणानामहोरात्रं क्षत्रियाणां दिनत्रयम् ।
षड्रात्रं चैव वैश्यानां शूद्राणां द्वादशाह्निकम् ॥ ४६
दशद्वादशमासार्द्धमाससंख्यैर्दिनैश्च तैः ।
स्वाः स्वाः कर्मक्रियाः कुर्युः सर्वे वर्णा यथाक्रमम् ॥ ४७
प्रेतमुद्दिश्य कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं विधानतः ।
सपिण्डीकरणं कार्यं प्रेते आवत्सरान्नरैः ॥ ४८
ततः पितृत्वमापन्ने दर्शपूर्णादिभिः शुभैः ।
प्रीणनं तस्य कर्त्तव्य यथा श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ४९
पितुरर्थं समुद्दिश्य भूमिदानादिकं स्वयम् ।
कुर्यात्तेनास्य सुप्रीताः पितरो यान्ति राक्षस ॥ ५०
यद् यदिष्टतमं किंचिद् यच्चास्य दयितं गृहे ।
तत्तद् गुणवते देय तद्देवाक्ष्यमिच्छता ॥ ५१
अध्येतव्या त्रयी नित्यं भाव्यं च विदुषा सदा ।
धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि शक्तितः ॥ ५२

यच्चापि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति राक्षस ।
तत् कर्त्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्यं महाजने ॥ ५३
एवमाचरतो लोके पुरुषस्य गृहे सतः ।
धर्मार्थकामसंप्राप्तिः परत्रेह च शोभनम् ॥ ५४
एष तूद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थाश्रम उत्तमः ।
वानप्रस्थाश्रमं धर्मं प्रवक्ष्यामोऽवधार्यताम् ॥ ५५
अपत्यसंततिं दृष्ट्वा प्राज्ञो देहस्य चानतिम् ।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदात्मनः शुद्धिकारणम् ॥ ५६
तत्रारण्योपभोगैश्च तपोभिश्चात्मकर्षणम् ।
भूमौ शय्या ब्रह्मचर्यं पितृदेवातिथिक्रिया ॥ ५७
होमस्त्रिषवणं स्नानं जटावल्कलधारणम् ।
वन्यस्नेहनिषेवित्व वानप्रस्थविधिस्त्वयम् ॥ ५८
सर्वसङ्गपरित्यागो ब्रह्मचर्यममानिता ।
जितेन्द्रियत्वमावासे नैकस्मिन् वसतिश्चिरम् ॥ ५९

(वह सद्यः शौच) ब्राह्मणों का एक अहोरात्र का, क्षत्रियों का तीन दिनों का, वैश्यों का छ दिनों का एव शूद्रों का बारह दिनों का होता है। (४६)

सभी वर्णों के लोग यथाक्रम दश, बारह, पन्द्रह दिन एवं एक मास के अन्तर पर अपनी अपनी क्रियाएँ करें। (४७)

प्रेत के उद्देश्य से विधि के अनुसार एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। मरने के एक वर्ष बीत जाने पर मनुष्य को सपिण्डीकरण करना चाहिये। (४८)

तदनन्तर प्रेत के पितर हो जाने पर अमावस्या और पूर्णमासी के दिन वेदविहित रीति से उनका तर्पण (श्राद्ध) करना चाहिये। (४९)

हे राक्षस! पिता के उद्देश्य से स्वय भूमिदानादि करे जिससे पितृगण इस के उपर प्रसन्न होकर जांय। (५०)

व्यक्ति की जीवितावस्था में घर में जो-जो पदार्थ उसका अत्यन्त अभिलषित एवं जो उसकी प्रिय वस्तु रही हो उसे उसकी अक्षयता की कामना से गुणवान् पात्र को देना चाहिये। (५१)

सदा त्रयी (वेद) का अध्ययन करना चाहिये, विद्वान् बनना चाहिये, धर्मपूर्वक धनार्जन एवं यथाशक्ति यज्ञ करना चाहिये। (५२)

हे राक्षस! मनुष्य को ऐसा कार्य निःशङ्क होकर करना जिसके करने से उसकी आत्मा निन्दित न हो एवं जो कार्य बड़े लोगों से छिपाने योग्य न हो। (५३)

ऐसा आचरण करने वाले पुरुष के गृहस्थ होने पर भी उसे धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति होती है तथा वह व्यक्ति इसलोक और परलोक में कल्याण का भागी बनता है। (५४)

सक्षेप से हमने उत्तम गृहस्थाश्रम का वर्णन किया। अब हम लोग वानप्रस्थाश्रम के धर्म का वर्णन करेंगे। ध्यानपूर्वक सुनो। (५५)

बुद्धिमान् व्यक्ति पुत्र की संतान तथा अपने शरीर की अवनति देखकर आत्मा की शुद्धि के हेतुभूत वानप्रस्थ आश्रम में जाय। (५६)

यहाँ वन्य पदार्थों का उपभोग और तप द्वारा शरीरशोषण करे। इस आश्रम में भूमि पर शयन, ब्रह्मचर्य का पालन एव पितर, देवता तथा अतिथियों की पूजा करे। (५७)

हवन, तीन बार स्नान, जटा और वल्कल का धारण तथा वन्य फलों से निकाले स्नेह का सेवन करे। यही वानप्रस्थाश्रम की विधि है। (५८)

(चतुर्थ आश्रम के धर्म ये हैं-) सर्वसङ्ग परित्याग, ब्रह्मचर्य, अहंकार का अभाव, जितेन्द्रियता, एक आवास में बहुत

अनारम्भस्तथाहारो भैक्षान्नं नातिकोपिता ।
आत्मज्ञानावबोधेच्छा तथा चात्मावबोधनम् ॥ ६०
चतुर्थे त्वाश्रमे धर्मा अस्माभिस्ते प्रकीर्तिताः ।
वर्णधर्माणि चान्यानि निशामय निशाचर ॥ ६१
गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थं त्रयाश्रमाः ।
क्षत्रियस्यापि कथिता ये चाचारा द्विजस्य हि ॥ ६२
वैखानसत्वं गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं विशः ।
गार्हस्थ्यमुत्तमं त्वेकं शूद्रस्य क्षणदाचर ॥ ६३
स्वानि वर्णाश्रमोक्तानि धर्माणीह न हापयेत् ।
यो हापयति तस्यासौ परिकुप्यति भास्करः ॥ ६४
कुपितः कुलनाशाय ईश्वरो रोगवृद्धये ।
भानुर्वै यतते तस्य नरस्य क्षणदाचर ॥ ६५

तस्मात् स्वधर्मं न हि संत्यजेत
न हापयेच्चापि हि नात्मवंशम् ।
यः संत्यजेच्चापि निजं हि धर्मं
तस्मै प्रकुप्येत दिवाकरस्तु ॥ ६६

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्तो मुनिभिः सुकेशी
प्रणम्य तान् ब्रह्मनिधीन् महर्षीन् ।
जगाम चोत्पत्य पुरं स्वकीयं
मुहुर्मुहुर्धर्ममवेक्षमाणः ॥ ६७

इति श्रीवामनपुराणे पञ्चदशोऽध्याय ॥ १५ ॥

काल तक न रहना, उद्योगाभाव, भिक्षान्नभोजन, अतिकोप न करना, आत्मज्ञान की इच्छा तथा आत्मज्ञान। (५९-६०)

हे निशाचर! हमने तुमसे चतुर्थ आश्रम के इन धर्मों का वर्णन किया। अब अन्य वर्णधर्मों को सुनो। (६१)

क्षत्रियों के लिये भी गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ इन तीन आश्रमों एवं ब्राह्मणों के लिये विहित आचारों का विधान है। (६२)

हे राक्षस! वैश्यों के लिये वानप्रस्थ एवं गार्हस्थ्य इन दो आश्रमों का विधान है तथा शूद्र के लिये एकमात्र उत्तम गार्हस्थ्य आश्रम का विधान है। (६३)

अपने वर्णाश्रमोक्त धर्मों का इस लोक में त्याग नहीं करना चाहिये। इनका त्याग करने वाले पर सूर्य क्रुद्ध होते हैं। (६४)

हे निशाचर! क्रुद्ध भगवान् भास्कर मनुष्य की रोग-वृद्धि एवं उसके कुल का नाश करने के लिये प्रयत्न करते हैं। (६५)

अत स्वधर्म का न तो त्याग करे और न उसकी हानि होने दे तथा अपने वश की हानि न होने दे। जो मनुष्य अपने धर्म का त्याग करता है उस पर दिवाकर (सूर्य) क्रोध करते हैं। (६६)

पुलस्त्य ने कहा—मुनियों के ऐसा कहने के उपरान्त उन ब्रह्मज्ञानी महर्षियों को प्रणाम कर सुकेशी बारम्बार धर्म का चिन्तन करते हुए उड़कर अपने पुर को चला गया। (६७)

श्रीवामनपुराण में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

१६

पुलस्त्य उवाच ।

ततः सुकेशिर्देवर्षे गत्वा स्वपुरमुत्तमम् ।
समाहूयाब्रवीत् सर्वान् राक्षसान् धार्मिकं वचः ॥ १
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंयमः ।
दानं दया च क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यममानिता ॥ २
शुभा सत्या च मधुरा वाङ् नित्यं सत्क्रिया रतिः ।
सदाचारनिषेवित्वं परलोकप्रदायकाः ॥ ३
इत्यूचुर्मुनयो मह्यं धर्ममाद्यं पुरातनम् ।
सोऽहमाज्ञापये सर्वान् क्रियतामविकल्पतः ॥ ४

पुलस्त्य उवाच ।

ततः सुकेशिवचनात् सर्व एव निशाचराः ।
त्रयोदशाङ्गं ते धर्मं चक्रुर्मुदितमानसाः ॥ ५
ततः प्रवृद्धिं सुतरामगच्छन्त निशाचराः ।
पुत्रपौत्रार्थसंयुक्ताः सदाचारसमन्विताः ॥ ६
तज्ज्योतिस्तेजसस्तेषां राक्षसानां महात्मनाम् ।
गन्तुं नाशक्नुवन् सूर्यो नक्षत्राणि न चन्द्रमाः ॥ ७
ततस्त्रिभुवने ब्रह्मन् निशाचरपुरोऽभवत् ।
दिवा चन्द्रस्य सदृशः क्षणदायां च सूर्यवत् ॥ ८
न ज्ञायते गतिर्व्योम्नि भास्करस्य ततोऽम्बरे ।
शशाङ्कमिति तेजस्त्वादमन्यन्त पुरोत्तमम् ॥ ९
स्वं विकासं विमुञ्चन्ति निशामिति व्यचिन्तयन् ।
कमलाकरेषु कमला मित्रमित्यवगम्य हि ।
रात्रौ विकसिता ब्रह्मन् विभूतिं दातुमीप्सवः ॥ १०
कौशिका रात्रिसमयं बुद्धा निरगमन् किल ।
तान् वायसास्तदा ज्ञात्वा दिवा निघ्नन्ति कौशिकान् ॥ ११
स्नातकास्त्वापगास्वेव स्नानजप्यपरायणाः ।
आकण्ठमग्नास्तिष्ठन्ति रात्रौ ज्ञात्वाऽथ वासरम् ॥ १२
न व्ययुज्यन्त चक्राश्च तदा वै पुरदर्शने ।

१६

पुलस्त्य ने कहा—हे देवर्षे! तदनन्तर अपने उत्तम नगर में जाकर सुकेशी ने समस्त राक्षसों को बुलाकर उनसे धर्म की बात कही। (१)

'अहिंसा, सत्य, अचौर्य, शौच, इन्द्रियसंयम, दान, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, अहंकार का अभाव, प्रिय, सत्य और मधुरवाणी, सदा सत्कार्यों में अनुरक्ति एवं सदाचार पालन-ये सभी परलोक (में सुख-) प्रद (धर्म) हैं। मुनियों ने इस प्रकार के आद्य और पुरातन धर्म को मुझे बतलाया है। अस्तु मैं तुम लोगों को आज्ञा देता हूँ कि तुम लोग बिना विचार के इन सभी का अनुष्ठान करो। (२-४)

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर सुकेशी के वचन से सभी राक्षस प्रसन्नचित्त होकर (अहिंसादि) त्रयोदश अङ्ग वाले धर्म का आचरण करने लगे। (५)

इससे सदाचार-समन्वित राक्षस पुत्र पौत्रादिसंयुक्त होकर अतिशय प्रवृद्धि को प्राप्त किए। (६)

उन महात्मा राक्षसों के तेज से सूर्य, नक्षत्र और चन्द्रमा (अपने मार्ग में) नहीं चल सके। (७)

हे ब्रह्मन्! तदनन्तर त्रिभुवन में निशाचरों की नगरी दिन में चन्द्र के समान और रात में सूर्य के समान हो गई। (८)

तदुपरान्त आकाश में सूर्य की गति दिखाई नहीं पड़ती थी। वह श्रेष्ठ नगर तेज के कारण आकाश में चन्द्रमा के सदृश प्रतीत होता था। (९)

हे ब्रह्मन्! (दिन को) रात्रि समझ कर सरोवर के कमलों ने विकसित होना बन्द कर दिया तथा रात्रि में (सुकेशी के पुर को) सूर्य समझकर विभूति प्रदान करने की इच्छा से विकसित होने लगे। (१०)

उल्लू (दिन को) रात्रि का समय जान कर बाहर निकल आए और कौए दिन जानकर उल्लुओं को मारने लगे। (११)

स्नातक लोग रात्रि को दिन समझ आकण्ठ मग्न होकर स्नान एवं जप करते हुए जल में खड़े रहे। (१२)

उस समय नगर का दर्शन होने से चक्रवाक पक्षी

मन्यमानास्तु दिवसमिदमूचुर्भुवन्ति च ॥ १३
नूनं कान्ताविहीनेन केनचिच्चक्रपत्त्रिणा ।
उत्सृष्टं जीवितं शून्ये फूत्कृत्य सरितस्तटे ॥ १४
ततोऽनुकृपयाविष्टो विवस्वांस्तीव्ररश्मिभिः ।
संतापयञ्जगत् सर्वं नास्तमेति कथंचन ॥ १५
अन्ये वदन्ति चक्राह्वो नूनं कश्चिन् मृतो भवेत् ।
तत्कान्तया तपस्तप्तं भर्तृशोकार्त्तया बत ॥ १६
आराधितस्तु भगवांस्तपसा वै दिवाकरः ।
तेनासौ शशिनिर्जेता नास्तमेति रविर्ध्रुवम् ॥ १७
यज्विनो होमशालासु सह ऋत्विग्भिरध्वरे ।
प्रावर्त्तयन्त कर्माणि रात्रावपि महामुने ॥ १८
महाभागवताः पूजां विष्णोः कुर्वन्ति भक्तितः ।
रवौ शशिनि चैवान्ये ब्रह्मणोऽन्ये हरस्य च ॥ १९
कामिनश्चाप्यमन्यन्त साधु चन्द्रमसा कृतम् ।
यदियं रजनी रम्या कृता सततकौमुदी ॥ २०
अन्येऽब्रुवँल्लोकगुरुरस्माभिश्चक्रभृद् वशी ।
निर्व्याजेन महागन्धैरर्चितः कुसुमैः शुभैः ॥ २१
सह लक्ष्म्या महायोगी नभस्यादिचतुर्ष्वपि ।
अशून्यशयना नाम द्वितीया सर्वकामदा ॥ २२
तेनासौ भगवान् प्रीत. प्रादाच्छयनमुत्तमम् ।
अशून्यं च महाभोगैरनस्तमितशेखरम् ॥ २३
अन्येऽब्रुवन् ध्रुवं देव्या रोहिण्या शशिनः क्षयम् ।
दृष्ट्वा तप्तं तपो घोरं रुद्राराधनकाम्यया ॥ २४
पुण्यायामक्षयाष्टम्यां वेदोक्तविधिना स्वयम् ।
तुष्टेन शंभुना दत्तं वरं चास्यै यदृच्छया ॥ २५
अन्येऽब्रुवन् चन्द्रमसा ध्रुवमाराधितो हरिः ।
व्रतेनेह त्वखण्डेन तेनाखण्डः शशी दिवि ॥ २६
अन्येऽब्रुवञ्छशाङ्केन ध्रुवं रक्षा कृतात्मनः ।
पदद्वयं समभ्यर्च्य विष्णोरमिततेजसः ॥ २७
तेनासौ दीप्तिमांश्चन्द्रः परिभूय दिवाकरम् ।

रात्रि को दिन मान कर परस्पर वियुक्त नहीं हुए एवं उच्चस्वर से कहने लगे— (१३)

निश्चय ही किसी पत्नी से विहीन चक्रवाक पक्षी ने एकान्त में नदी तट पर फूत्कार करके जीवनोत्सर्ग किया है। (१४)

इसी से दयार्द्र होकर सूर्य तीव्र किरणों से जगत् को सन्ताप देते हुए किसी प्रकार अस्त नहीं हो रहे हैं। (१५)

दूसरे कहते हैं—"निश्चय ही कोई चक्रवाक मर गया है और पतिशोकार्त उसकी कान्ता ने तप किया है। (१६)

इसीलिये निश्चय ही उसकी तपस्या से प्रसन्न चन्द्रजयी भगवान् सूर्य अस्त नहीं हो रहे हैं। (१७)

हे महामुने! यज्ञशालाओं में ऋत्विजों के साथ यजमान लोग रात्रि में भी यज्ञकर्म में प्रवृत्त हो रहे हैं। (१८)

महाभागवत (विष्णुभक्त) भक्तिपूर्वक विष्णु की पूजा कर रहे हैं एवं दूसरे लोग सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा और शिव की आराधना में प्रवृत्त हो रहे हैं। (१९)

कामियों ने सोचा कि सतत चन्द्रिका-पूर्ण रम्य रात्रि की रचना कर चन्द्रमा ने एक सुन्दर कार्य किया है। (२०)

दूसरे कहने लगे कि हम लोगों ने निष्कपट भाव से अति सुगन्धित पवित्र पुष्पों के द्वारा महालक्ष्मी के साथ महायोगी चक्रधारी विष्णु की पूजा श्रावण आदि चार मासों में की। इसी अवधि में सर्वकामदा अशून्यशयना द्वादशी तिथि होती है। उसी से प्रसन्न होकर भगवान् ने अशून्य तथा महाभोगों से पूर्ण उत्तम शयन प्रदान किया है। (२१-२३)

दूसरों ने कहा कि चन्द्रमा का क्षय देख कर देवी रोहिणी ने निश्चय ही रुद्र की आराधना करने की इच्छा से परम पवित्र अक्षयाष्टमी तिथि में वेदोक्त विधान से घोर तप किया है। जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने उसे इच्छानुसार वर दिया है। (२४-२५)

दूसरे कहने लगे निश्चय ही चन्द्रमा ने भगवान् हरि की अखण्ड व्रत द्वारा आराधना की है। इससे आकाश में चन्द्रमा अखण्ड है। (२६)

दूसरों ने कहा कि अपरिमित तेजस्वी श्रीविष्णु के चरणयुगल की अर्चना कर के अवश्य ही चन्द्रमा ने अपनी रक्षा की है। (२७)

इसीसे दीप्तिमान् चन्द्रमा सूर्य को पराभूत करके इसमें

अस्माकमानन्दकरो दिवा तपति सूर्यवत् ॥ २८
लक्ष्यते कारणैरन्यैर्बहुभिः सत्यमेव हि ।
शशाङ्कनिर्जितः सूर्यो न विभाति यथा पुरा ॥ २९
यथामी कमलाः श्लक्ष्णा रणद्भृङ्गगणावृताः ।
विकचाः प्रतिभासन्ते जातः सूर्योदयो ध्रुवम् ॥ ३०
यथा चामी विभासन्ति विकचाः कुमुदाकराः ।
अतो विज्ञायते चन्द्र उदितश्च प्रतापवान् ॥ ३१
एवं संभाषतां तत्र सूर्यो वाक्यानि नारद ।
अमन्यत किमेतद्धि लोको वक्ति शुभाशुभम् ॥ ३२
एवं संचिन्त्य भगवान् दध्यौ ध्यानं दिवाकरः ।
आमयन्वाऽजगद् ग्रस्तं त्रैलोक्यं रजनीचरैः ॥ ३३
ततस्तु भगवाञ्ज्ञात्वा तेजसोऽप्यसहिष्णुताम् ।
निशाचरस्य वृद्धिं तामचिन्तयत योगवित् ॥ ३४
ततोऽज्ञासीच्च तान् सर्वान् सदाचाररतान्शुचीन् ।
देवब्राह्मणपूजासु संसक्तान् धर्मसंयुतान् ॥ ३५
ततस्तु रक्षःक्षयकृत् तिमिरद्विपकेसरी ।
महांशुनखरः सूर्यस्तद्विघातमचिन्तयत् ॥ ३६
ज्ञातवांश्च ततश्छिद्रं राक्षसानां दिवस्पतिः ।
स्वधर्मविच्युतिर्नाम सर्वधर्मविघातकृत् ॥ ३७
ततः क्रोधाभिभूतेन भानुना रिपुभेदिभिः ।
भानुभी राक्षसपुरं तद् दृष्टं च यथेच्छया ॥ ३८
स भानुना तदा दृष्टः क्रोधाध्मातेन चक्षुषा ।
निपपाताम्बराद् भ्रष्टः क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥ ३९
पतमानं समालोक्य पुरं शालकटङ्कटः ।
नमो भवाय शर्वाय इदमुच्चैरुदीरयत् ॥ ४०
तमाक्रन्दितमाकर्ण्य चारणा गगनेचराः ।
हा हेति चुक्रुशुः सर्वे हरभक्तः पतत्यसौ ॥ ४१
तच्चारणवचः शर्वः श्रुतवान् सर्वगोऽव्ययः ।
श्रुत्वा संचिन्तयामास केनासौ पात्यते भुवि ॥ ४२
ज्ञातवान् देवपतिना सहस्रकिरणेन तत् ।

आनन्द देते हुए दिन मे सूर्य के समान तप रहे हैं। (२८)

परन्तु अन्य अनेक प्रकार के कारणों से यह लक्षित हो रहा है कि चन्द्रमा के द्वारा पराजित सूर्य पूर्व के सदृश नहीं प्रतीत हो रहे हैं। (२९)

यतः गुञ्जार कर रहे भ्रमर समूह से आवृत ये सुन्दर कमल विकसित दिखलाई पड़ रहे हैं अतः निश्चय ही सूर्योदय हुआ है। (३०)

तथा च, यतः ये कुमुदवृन्द विकसित हैं अतः यह ज्ञात होता है कि प्रतापवान् चन्द्रमा उदित हुआ है। (३१)

हे नारद ! इस प्रकार वार्ता करने वालों के वाक्यों को सुन कर सूर्य सोचने लगे कि ये लोग इस प्रकार शुभाशुभ वचन क्यों बोल रहे हैं ? (३२)

भगवान् दिवाकर ऐसा विचार कर ध्यान मग्न हो गये। उन्होंने देखा कि समस्त त्रैलोक्य चारों ओर से राक्षसों द्वारा ग्रस्त हो गया है। (३३)

तदनन्तर योगी भगवान् भास्कर राक्षसों की वृद्धि तथा तेज की असहनीयता को जान कर विचार करने लगे। (३४)

तदुपरान्त उन्हें यह ज्ञात हुआ कि सभी राक्षस सदाचार-परायण, पवित्र, देवता और ब्राह्मणों की पूजा में अनुरक्त तथा धार्मिक हैं। (३५)

तदनन्तर राक्षसों के विनाशक तथा अन्धकाररूपी हाथी के लिये सिंह के सदृश तीक्ष्ण रश्मि रूपी नख वाले सूर्य उनके (राक्षसों के) विनाश के विषय में सोचने लगे। (३६)

तदुपरान्त सूर्य को राक्षसों के स्वधर्म-विच्युति रूपी छिद्र का ज्ञान हुआ जो समस्त धर्मों का विनाशक है। (३७)

तदनन्तर क्रोधाभिभूत सूर्य ने रिपुभेदी रश्मियों के द्वारा भलीभांति उस राक्षसपुर को देखा। (३८)

उस समय सूर्य द्वारा क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा गया वह पुर क्षीणपुण्य ग्रह के सदृश आकाश से गिर पड़ा। (३९)

अपने नगर को गिरते देख कर शालकटंकट (सुकेशी) ने उच्च स्वर से 'नमो भवाय शर्वाय' यह कहा। (४०)

उसके उस आक्रन्दन को सुन कर सभी आकाशचारी चारण चिल्लाने लगे—'हाय हाय ! यह हर भक्त गिर रहा है'। (४१)

सर्वगामी अव्यय शर्व (शंकर) ने चारणों के उस वचन को सुना एवं सुनकर सोचने लगे कि इसे पृथ्वी पर कौन गिरा रहा है। (४२)

उन्होंने यह जान लिया कि देवपति सहस्रकिरण

पातितं राक्षसपुरं ततः क्रुद्धस्त्रिलोचनः ॥ ४३
क्रुद्धस्तु भगवन्तं तं भानुमन्तमपश्यत ।
दृष्टमात्रस्त्रिनेत्रेण निपपात ततोऽम्बरात् ॥ ४४
गगनात् स परिभ्रष्टः पथि वायुनिषेविते ।
यदृच्छया निपतितो यन्त्रमुक्तो यथोपलः ॥ ४५
ततो वायुपथान्मुक्तः किंशुकोज्ज्वलविग्रहः ।
निपपातान्तरिक्षात् स वृतः किन्नरचारणैः ॥ ४६
चारणैर्वेष्टितो भानुः प्रविभात्यम्बरात् पतन् ।
अर्द्धपक्वं यथा तालात् फलं कपिभिरावृतम् ॥ ४७
ततस्तु ऋषयोऽभ्येत्य प्रत्यूचुर्भानुमालिनम् ।
निपतस्व हरिक्षेत्रे यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि ॥ ४८
ततोऽब्रवीत् पतन्नेव विवस्वांस्तांस्तपोधनान् ।
किं तत् क्षेत्रं हरेः पुण्यं तदृच्यं शीघ्रमेव मे ॥ ४९
तमूचुर्मुनयः सूर्यं शृणु क्षेत्रं महाफलम् ।
साम्प्रतं वासुदेवस्य भावि तच्छंकरस्य च ॥ ५०

योगशायिनमारभ्य यावत् केशवदर्शनम् ।
एतत् क्षेत्रं हरेः पुण्यं नाम्ना वाराणसी पुरी ॥ ५१
तच्छ्रुत्वा भगवान् भानुर्भवनेत्राग्नितापितः ।
वरणायास्तथैवास्यास्त्वन्तरे निपपात ह ॥ ५२
तत. प्रदह्यति तनौ निमज्ज्यास्यां लुलद् रविः ।
वरणायां समभ्येत्य न्यमज्जत यथेच्छया ॥ ५३
भूयोऽसिं वरणां भूयो भूयोऽपि वरणामसिम् ।
लुलंस्त्रिणेत्रवह्न्यार्त्तो भ्रमतेऽलातचक्रवत् ॥ ५४
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् ऋषयो यक्षराक्षसा. ।
नागा विद्याधराश्चापि पक्षिणोऽप्सरसस्तथा ॥ ५५
यावन्तो भास्कररथे भूतप्रेतादयः स्थिताः ।
तावन्तो ब्रह्मसदनं गत्वा वेदयितुं मुने ॥ ५६
ततो ब्रह्मा सुरपति. सुरैः सार्धं समभ्यगात् ।
रम्यं महेश्वरावासं मन्दरं रविकारणात् ॥ ५७
गत्वा दृष्ट्वा च देवेशं शंकरं शूलपाणिनम् ।

(सूर्य) द्वारा राक्षस का पुर गिराया गया है। इससे त्रिलोचन क्रुद्ध हो गए। (४३)

क्रुद्ध होकर उन्होंने भगवान् सूर्य को देखा। त्रिनेत्र के देखते ही वे (सूर्य) आकाश से गिर पड़े। (४४)

आकाश से च्युत सूर्य, वायुनिषेवित मार्ग में यन्त्रमुक्त पत्थर के सदृश गिरने लगे। (४५)

तदनन्तर किंशुक के सदृश उज्ज्वल शरीर वाले सूर्य वायुपथ से मुक्त होने के उपरान्त किन्नर एवं चारणों से आवृत होकर अन्तरिक्ष से नीचे गिरने लगे। (४६)

चारणों से घिरे हुए भानु आकाश से नीचे गिरते समय तालवृक्ष से गिरने वाले कपियों से आवृत अर्द्धपक्व फल के सदृश प्रतीत हो रहे थे। (४७)

तदनन्तर मुनियों ने सूर्यदेव के निकट आकर उनसे कहा कि यदि कल्याण चाहते हो तो हरि के क्षेत्र में गिरो। (४८)

गिरते हुए ही सूर्य ने उन तपस्वियों से पूछा—'हरि का वह पवित्र क्षेत्र कौन है ? मुझे शीघ्र बतलाओ।' (४९)

मुनियों ने सूर्य से कहा—महाफलदायक इस क्षेत्र का विवरण सुनो। सम्प्रति यह वासुदेव का क्षेत्र है किन्तु भविष्य में यह शंकर का क्षेत्र होगा। (५०)

योगशायी से प्रारम्भ कर केशवदर्शन तक का पवित्र क्षेत्र हरि का क्षेत्र है। इसका नाम वाराणसी पुरी है। (५१)

यह सुन कर भव (शिव) के नेत्राग्नि से तापित भगवान् सूर्य वरुणा और असि के मध्य गिरे। (५२)

तदनन्तर शरीर के प्रदग्ध होते रहने से व्याकुल रवि ने असि में निमज्जन करने के उपरान्त वरुणा में जाकर यथेच्छ निमज्जन किया। (५३)

इस प्रकार त्रिनेत्र के वह्नि से आर्त होकर वे बारंबार असि और वरुणा की ओर अलातचक्र के सदृश दौड़ने लगे। ५४

हे ब्रह्मन् ! हे मुने ! इस बीच ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, विद्याधर, पक्षी, अप्सरायें और भास्कर के रथ में जितने भूत प्रेत आदि थे वे सभी यह समाचार देने के लिये ब्रह्मा के सदन में गये। (५५-५६)

तदनन्तर सुरपति ब्रह्मा देवताओं के साथ सूर्य के लिये महेश्वर के रमणीय आवास-स्थान मन्दर पर्वत पर गए। (५७)

वहाँ जाकर एवं देवेश शूलपाणि शंकर को देख कर

प्रसाद्य भास्करार्थाय वाराणस्यामुपानयत् ॥ ५८
ततो दिवाकरं भूयः पाणिनादाय शंकरः ।
कृत्वा नामास्य लोलेति रथमारोपयत् पुनः ॥ ५९
आरोपिते दिनकरे ब्रह्माऽभ्येत्य सुकेशिनम् ।
सबान्धवं सनगरं पुनरारोपयद् दिवि ॥ ६०
समारोप्य सुकेशिं च परिष्वज्य च शंकरम् ।
प्रणम्य केशवं देवं वैराजं स्वगृहं गत. ॥ ६१
एवं पुरा नारद भास्करेण
पुरं सुकेशेर्भुवि सन्निपातितम् ।
दिवाकरो भूमितले भवेन
क्षिप्तस्तु दृष्ट्या न च संप्रदग्धः ॥ ६२
आरोपितो भूमितलाद् भवेन
भूयोऽपि भानुः प्रतिभासनाय ।
स्वयंभुवा चापि निशाचरेन्द्रस्
त्वारोपित. खे सपुरः सबन्धुः ॥ ६३

इति श्रीवामनपुराणे षोडशोऽध्याय. ॥१६॥

१७

नारद उवाच ।
यानेतान् भगवान् प्राह कामिभिः शशिनं प्रति ।
आराधनाय देवाभ्यां हरीशाभ्यां वदस्व तान् ॥ १
पुलस्त्य उवाच ।
शृणुष्व कामिभिः प्रोक्तान् व्रतान् पुण्यान् कलिप्रिय ।
आराधनाय शर्वस्य केशवस्य च धीमतः ॥ २
यदा त्वाषाढी संयाति व्रजते चोत्तरायणम् ।
तदा स्वपिति देवेशो भोगिभोगे श्रियः पतिः ॥ ३
प्रतिसुप्ते विभौ तस्मिन् देवगन्धर्वगुह्यकाः ।
देवानां मातरश्चापि प्रसुप्ताश्चाप्यनुक्रमात् ॥ ४

तथा भास्कर के लिये उन्हें प्रसन्न कर ब्रह्मा उन्हें वाराणसी में लाये । (५८)

तदनन्तर शकर ने दिवाकर को हाथ से उठाकर उनका 'लोल' नाम रखने के उपरान्त उन्हें पुन उनके रथ पर स्थापित किया । (५९)

दिनकर के अपने रथ में आरोपित हो जाने पर ब्रह्मा सुकेशी के निकट गए एव उसे पुन बान्धवों एव नगर के साथ आकाश में आरोपित किया । (६०)

सुकेशी को (आकाश में) समारोपित करने के उपरान्त शकर का आलिङ्गन कर तथा केशवदेव को प्रणाम कर ब्रह्मा अपने वैराज नाम लोक को चले गए । (६१)

हे नारद ! प्राचीन समय में इस प्रकार सूर्य ने सुकेशी के नगर को पृथ्वी पर गिराया एव महादेव ने दिवाकर को नेत्रानल से दग्ध न कर भूमितल पर गिराया था । (६२)

शंकर ने पुन सूर्य को प्रतिभासित होने के लिये भूमितल से (आकाश मे) आरोपित किया तथा ब्रह्मा ने निशाचरेन्द्र को उसके पुर और बधुओं के सहित आकाश में आरोपित किया । (६३)

श्रीवामनपुराण में सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

१७

नारद ने पूछा—आपने चन्द्रमा के विषय में कामियों द्वारा श्री हरि और शंकर की आराधना के लिये जिन व्रतों का उल्लेख किया है उनका वर्णन करें । (१)

पुलस्त्य ने कहा—हे कलिप्रिय (कलहप्रिय = नारद) ! महादेव और धीमान् केशव की आराधना के लिये कामियों द्वारा कथित पवित्र व्रतों का वर्णन सुनो । (२)

जब आषाढी पूर्णिमा आनेवाली होती है तथा उत्तरायण बीत जाता है उस समय श्रीपति देवेश भोगिभोग (शेषशय्या) पर सोते हैं । (३)

उन विभु के सो जाने पर देवता, गन्धर्व, गुह्यक एव

नारद उवाच ।
कथयस्व सुरादीनां शयने विधिमुत्तमम् ।
सर्वमनुक्रमेणैव पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥ ५

पुलस्त्य उवाच ।
मिथुनाभिगते सूर्ये शुक्लपक्षे तपोधन ।
एकादश्यां जगत्स्वामी शयनं परिकल्पयेत् ॥ ६
शेषाहिभोगपर्यङ्कं कृत्वा संपूज्य केशवम् ।
कृत्वोपवीतकं चैव सम्यक्संपूज्य वै द्विजान् ॥ ७
अनुज्ञां ब्राह्मणेभ्यश्च द्वादश्यां प्रयतः शुचिः ।
लब्ध्वा पीताम्बरधरः स्वस्ति निद्रां समानयेत् ॥ ८
त्रयोदश्यां ततः कामः स्वपते शयने शुभे ।
कदम्बानां सुगन्धानां कुसुमैः परिकल्पिते ॥ ९
चतुर्दश्यां ततो यक्षाः स्वपन्ति सुखशीतले ।
सौवर्णपङ्कजकृते सुखास्तीर्णोपधानके ॥ १०
पौर्णमास्यामुमानाथः स्वपते चर्मसंस्तरे ।
वैयाघ्रे च जटाभारं समुद्ग्रन्थ्यान्यचर्मणा ॥ ११
ततो दिवाकरो राशिं संप्रयाति च कर्कटम् ।
ततोऽमराणां रजनी भवते दक्षिणायनम् ॥ १२
ब्रह्मा प्रतिपदि तथा नीलोत्पलमयेऽनघ ।
तल्पे स्वपिति लोकानां दर्शयन् मार्गमुत्तमम् ॥ १३
विश्वकर्मा द्वितीयायां तृतीयायां गिरेः सुता ।
विनायकश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यामपि धर्मराट् ॥ १४
षष्ठ्यां स्कन्दः प्रस्वपिति सप्तम्यां भगवान् रविः ।
कात्यायनी तथाष्टम्यां नवम्यां कमलालया ॥ १५
दशम्यां भुजगेन्द्राश्च स्वपन्ते वायुभोजनाः ।
एकादश्यां तु कृष्णायां साध्या ब्रह्मन् स्वपन्ति च ॥ १६
एष क्रमस्ते गदितो नभादौ स्वपने मुने ।
स्वपत्सु तत्र देवेषु प्रावृट्कालः समाययौ ॥ १७
कङ्काः समं बलाकाभिरारोहन्ति नगोत्तमान् ।
वायसाश्चापि कुर्वन्ति नीडानि ऋषिपुंगव ।
वायसाश्च स्वपन्त्येते ऋतौ गर्भभरालसाः ॥ १८
यस्यां तिथ्यां प्रस्वपिति विश्वकर्मा प्रजापतिः ।

देवमाताएँ भी क्रमश सो जाती हैं । (४)

नारद ने पूछा—जनार्दन से प्रारम्भ कर क्रमश देवतादि के शयन की समस्त उत्तम विधि मुझे बतलाएँ । (५)

पुलस्त्य ने कहा—हे तपोधन ! (आषाढ के) शुक्ल पक्ष में सूर्य के मिथुन राशि में जाने पर एकादशी तिथि को जगत्स्वामी जनार्दन शयन करते हैं । (६)

शेषनाग के शरीर का पर्यङ्क बना कर यज्ञोपवीतयुक्त श्रीकेशव एवं द्विजों की पूजा करने के उपरान्त द्वादशी तिथि में ब्राह्मणों से अनुज्ञा लेकर संयम एवं पवित्रतापूर्वक पीताम्बरधर को सुखपूर्वक निद्रा का आश्रय ग्रहण करावे । (७-८)

तदनन्तर त्रयोदशी तिथि में सुगन्धित कदम्ब पुष्पों से निर्मित पवित्र शय्या पर कामदेव शयन करते हैं । (९)

तदुपरान्त चतुर्दशी को सुखदायकरूप में बिछाये गये एवं उपधानयुक्त सुशीतल स्वर्णपङ्कज निर्मित शय्या पर यक्षगण शयन करते हैं । (१०)

पूर्णमासी तिथि को उमानाथ शंकर एक दूसरे चर्म द्वारा जटाभार बाँध कर व्याघ्रचर्म की शय्या पर सोते हैं । (११)

तदनन्तर दिवाकर कर्कट राशि में गमन करते हैं । तब देवताओं के लिये रात्रिस्वरूप दक्षिणायन का आरम्भ होता है । (१२)

हे निष्पाप ! लोगों को उत्तम मार्ग दिखलाते हुए ब्रह्मा प्रतिपद् तिथि में नीलकमल की शय्या पर सोते हैं । (१३)

विश्वकर्मा द्वितीया को, पर्वतनन्दिनी तृतीया को, विनायक (गणेश) चतुर्थी को और धर्मराज पञ्चमी को, स्कन्द षष्ठी को, भगवान् सूर्य सप्तमी को, कात्यायनी अष्टमी को, लक्ष्मी नवमी को, वायुभोजी सर्प दशमी को, तथा हे ब्रह्मन् ! साध्यगण कृष्ण एकादशी को सोते हैं । (१४-१६)

हे मुने ! श्रावणादि में क्रमानुसार देवताओं के सोने का क्रम हम ने तुम्हें बतलाया । देवों के सो जाने पर वर्षाकाल का समागम होता है । (१७)

हे ऋषिश्रेष्ठ ! बलाकाओं के साथ कङ्क ऊँचे पर्वतों पर चढ़ जाते हैं तथा कौए घोंसले बनाने लगते हैं एवं मादा कौए इस ऋतु में गर्भ भार से आलस्य के कारण सोती हैं । (१८)

प्रजापति विश्वकर्मा जिस तिथि में सोते हैं वह कल्याण-

द्वितीया सा शुभा पुण्या अशून्यशयनोदिता ॥ १९
तस्यां तिथावर्च्य हरिं श्रीवत्साङ्कं चतुर्भुजम् ।
पर्यङ्कस्थं समं लक्ष्म्या गन्धपुष्पादिभिर्मुने ॥ २०
ततो देवाय शय्यायां फलानि प्रक्षिपेत् क्रमात् ।
सुरभीणि निवेद्येत्थं विज्ञाप्यो मधुसूदनः ॥ २१

यथा हि लक्ष्म्या न वियुज्यसे त्वं
त्रिविक्रमानन्त जगन्निवास ।
तथाऽस्त्वशून्यं शयनं सदैव
अस्माकमेवेह तव प्रसादात् ॥ २२
यथा त्वशून्यं तव देव तल्पं
समं हि लक्ष्म्या वरदाच्युतेश ।
सत्येन तेनामितवीर्य विष्णो
गार्हस्थ्यनाशो मम नास्तु देव ॥ २३

इत्युचार्य प्रणम्येशं प्रसाद्य च पुनः पुनः ।
नक्तं भुञ्जीत देवर्षे तैलक्षारविवर्जितम् ॥ २४
द्वितीयेऽह्नि द्विजाग्र्याय फलान् दद्याद् विचक्षणः ।
लक्ष्मीधरः प्रीयतां मे इत्युच्चार्य निवेदयेत् ॥ २५
अनेन तु विधानेन चातुर्मास्यव्रतं चरेत् ।
यावद् वृश्चिकराशिस्थः प्रतिभाति दिवाकरः ॥ २६
ततो विबुध्यन्ति सुराः क्रमशः क्रमशो मुने ।
तुलास्थेऽर्के हरिः कामः शिवः पश्चाद्विबुध्यते ॥ २७
तत्र दानं द्वितीयायां मूर्त्तिर्लक्ष्मीधरस्य तु ।
सशय्यास्तरणोपेता यथा विभवमात्मनः ॥ २८
एष व्रतस्तु प्रथमः प्रोक्तस्तव महामुने ।
यस्मिञ्चीर्णे वियोगस्तु न भवेदिह कस्यचित् ॥ २९
नभस्ये मासि च तथा या स्यात्कृष्णाष्टमी शुभा ।
युक्ता मृगशिरेणैव सा तु कालाष्टमी स्मृता ॥ ३०
तस्यां सर्वेषु लिङ्गेषु तिथौ स्वपिति शंकरः ।
वसते संनिधाने तु तत्र पूजाऽक्षया स्मृता ॥ ३१
तत्र स्नायीत वै विद्वान् गोमूत्रेण जलेन च ।

कारिणी पवित्र अशून्यशयना नामक द्वितीया तिथि होती है। (१९)

हे मुने! उस तिथि में लक्ष्मी के साथ पर्यङ्कस्थ श्रीवत्साङ्क चतुर्भुज हरि का गन्ध-पुष्पादि के द्वारा अर्चन कर उन देव के निमित्त शय्या पर क्रमशः फल तथा सुगन्ध निवेदित करने के उपरान्त मधुसूदन से इस प्रकार प्रार्थना करे— (२०-२१)

हे त्रिविक्रम! हे अनन्त! हे जगन्निवास! जिस प्रकार आप लक्ष्मी से पृथक् नहीं होते उसी प्रकार आपकी कृपा से हम लोगों का शयन कभी (स्त्री से) शून्य न हो। (२२)

हे देव! हे वरद! हे अच्युत! हे ईश! हे अमितवीर्य वाले विष्णो! क्योंकि आपकी शय्या लक्ष्मी से शून्य नहीं होती इसी सत्य के प्रभाव से हमारे गार्हस्थ्य का नाश न हो। (२३)

हे देवर्षे! इस प्रकार स्तुति करने के पश्चात् ईश को प्रणाम द्वारा पुनः पुनः प्रसन्न कर रात्रि में तेल एवं नमक से रहित भोजन करे। (२४)

दूसरे दिन बुद्धिमान् व्यक्ति 'लक्ष्मीधर मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह उच्चारण कर श्रेष्ठ ब्राह्मण को फल प्रदान करें। (२५)

इस विधान के द्वारा जब तक सूर्य वृश्चिक राशि पर रहते हैं तब तक चातुर्मास्य व्रत का पालन करना चाहिये। (२६)

हे मुने! तदनन्तर क्रमशः देवगण जगते हैं। सूर्य के तुलाराशिस्थ होने पर हरि प्रबुद्ध होते हैं। तत्पश्चात् काम और शिव जगते हैं। (२७)

तदनन्तर द्वितीया के दिन अपने विभव के अनुसार आस्तरण-युक्त शय्या के साथ लक्ष्मीधर की मूर्ति का दान करे। (२८)

हे महामुने! इस प्रकार मैंने आपको प्रथम व्रत बतलाया जिसका आचरण करने पर इस संसार में किसी को वियोग नहीं होता। (२९)

इसी प्रकार भाद्रपद मास में मृगशिरा नक्षत्र से युक्त पवित्र कृष्णाष्टमी को कालाष्टमी माना गया है। (३०)

उस तिथि में भगवान् शंकर समस्त लिङ्गों में सोते एवं उनके सन्निधान में निवास करते हैं। इस अवसर पर की गई शंकर की पूजा अक्षय मानी गई है। (३१)

उस तिथि में विद्वान् मनुष्य गोमूत्र और जल से स्नान

स्नातः संपूजयेत् पुष्पैर्धत्तूरस्य त्रिलोचनम् ॥ ३२
धूपं केसरनिर्यासं नैवेद्यं मधुसर्पिषी ।
प्रीयतां मे विरूपाक्षस्त्वित्युच्चार्य च दक्षिणाम् ।
विप्राय दद्यान्नैवेद्यं सहिरण्यं द्विजोत्तम ॥ ३३
तद्वदाश्वयुजे मासि उपवासी जितेन्द्रियः ।
नवम्यां गोमयस्नानं कुर्यात्पूजां तु पङ्कजैः ।
धूपयेत् सर्जनिर्यासं नैवेद्यं मधुमोदकैः ॥ ३४
कृतोपवासस्त्वष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत् ।
प्रीयतां मे हिरण्याक्षो दक्षिणा सतिला स्मृता ॥ ३५
कार्त्तिके पयसा स्नानं करवीरेण चार्चनम् ।
धूपं श्रीवासनिर्यासं नैवेद्यं मधुपायसम् ॥ ३६
सनैवेद्यं च रजतं दातव्यं दानमग्रजे ।
प्रीयतां भगवान् स्थाणुरिति वाच्यमनिष्ठुरम् ॥ ३७
कृत्वोपवासमष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत् ।
मासि मार्गशिरे स्नानं दध्नार्चा भद्रया स्मृता ॥ ३८
धूपं श्रीवृक्षनिर्यासं नैवेद्यं मधुनोदनम् ।
संनिवेद्या रक्तशालिर्दक्षिणा परिकीर्त्तिता ।
नमोऽस्तु प्रीयतां शर्वस्त्विति वाच्यं च पण्डितैः ॥ ३९
पौषे स्नानं च हविषा पूजा स्यात्तगरैः शुभैः ।
धूपो मधुकनिर्यासो नैवेद्यं मधु शष्कुली ॥ ४०
समुद्गा दक्षिणा प्रोक्ता प्रीणनाय जगद्गुरोः ।
वाच्यं नमस्ते देवेश त्र्यम्बकेति प्रकीर्तयेत् ॥ ४१
माघे कुशोदकस्नानं मृगमदेन चार्च्चनम् ।
धूपः कदम्बनिर्यासो नैवेद्यं सतिलोदनम् ॥ ४२
पयोभक्तं सनैवेद्यं सरुक्मं प्रतिपादयेत् ।
प्रीयतां मे महादेव उमापतिरितीरयेत् ॥ ४३
एवमेव समुद्दिष्टं षड्भिर्मासैस्तु पारणम् ।
पारणान्ते त्रिनेत्रस्य स्नपनं कारयेत्क्रमात् ॥ ४४

करें। स्नानोपरान्त धत्तूर के पुष्पों से शंकर की पूजा करें। (३२)

हे द्विजोत्तम! केसर के निर्यास (गोंद) का धूप तथा मधु एवं घृत का नैवेद्य अर्पण करने के अनन्तर 'विरूपाक्ष मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कह कर ब्राह्मण को दक्षिणा तथा स्वर्ण के साथ नैवेद्य प्रदान करे। (३३)

इसी प्रकार आश्विन मास में नवमी तिथि को उपवासी एवं जितेन्द्रिय होकर गोबर से स्नान करने के उपरान्त कमलों से पूजन करे तथा सर्ज वृक्ष के निर्यास का धूप एवं मधु और मोदक का नैवेद्य अर्पण करे। (३४)

अष्टमी को उपवास करके नवमी को स्नान करने के उपरान्त 'हिरण्याक्ष मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कहते हुए तिलमिश्रित दक्षिणा प्रदान करे। (३५)

कार्तिक में दुग्धस्नान तथा करवीर के पुष्प से अर्चन करे तदनन्तर श्रीवास (सरल) वृक्ष की गोंद का धूप तथा मधु एवं पायस का नैवेद्य अर्पण करने के पश्चात् नम्रता पूर्वक 'भगवान् स्थाणु मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह उच्चारण करते हुए ब्राह्मण को नैवेद्य के साथ रजत का दान करे। (३६-३७)

मार्गशीर्ष मास में अष्टमी तिथि को उपवास करके नवमी तिथि में दधि से स्नान करे। इस अवसर पर भद्रा (औषधि-विशेष) के द्वारा पूजा बताई गई है। (३८)

श्रीवृक्ष के निर्यास का धूप, एवं मधु और ओदन का नैवेद्य देकर पण्डित व्यक्ति 'शर्व को नमस्कार है, वे मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कहते हुए रक्तशालि की दक्षिणा प्रदान करे। (३९)

पौष मास में घृत का स्नान तथा सुन्दर तगर पुष्पों द्वारा पूजा करे तदनन्तर महुए के वृक्ष की गोंद से धूप देकर मधु एवं शष्कुली का नैवेद्य अर्पित करे तथा 'हे देवेश त्र्यम्बक! आपको नमस्कार है' यह कहते हुए जगद्गुरु के प्रीणनार्थ मुद्ग (मूंग) सहित दक्षिणा प्रदान करे। (४०-४१)

माघ मास में कुशोदक से स्नान तथा मृगमद (कस्तूरी) से अर्चन करे। तदनन्तर कदम्ब वृक्ष के निर्यास का धूप देकर तिल एवं ओदन का नैवेद्य अर्पित करने के उपरान्त 'महादेव उमापति मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कहते हुए स्वर्ण के साथ दूध एवं भात की दक्षिणा प्रदान करे। (४२-४३)

इस प्रकार छः मासों के अनन्तर (प्रथम) पारण का विधान कहा गया। पारण के अन्त में त्रिनेत्र महादेव का क्रम से स्नान कार्य सम्पन्न कराये। (४४)

गोरोचनायाः सहिता गुडेन
देवं समालभ्य च पूजयेत ।
प्रीयस्व दीनोऽस्मि भवन्तमीश
मच्छोकनाशं प्रकुरुष्व योग्यम् ॥ ४५

ततस्तु फाल्गुने मासि कृष्णाष्टम्यां यतव्रत ।
उपवासं समुदितं कर्तव्यं द्विजसत्तम ॥ ४६
द्वितीयेऽह्नि ततः स्नानं पञ्चगव्येन कारयेत् ।
पूजयेत्कुन्दकुसुमैर्धूपयेत् चन्दनं त्वपि ॥ ४७
नैवेद्यं सघृतं दद्यात् ताम्रपात्रे गुडोदनम् ।
दक्षिणां च द्विजातिभ्यो नैवेद्यसहितां मुने ।
वासोयुगं प्रीणयेच्च रुद्रमुच्चार्य नामत. ॥ ४८
चैत्रे चोदुम्बरफलैः स्नानं मन्दारकार्चनम् ।
गुग्गुलं महिषाख्यं च घृताक्तं धूपयेद् बुधः ॥ ४९
समोदकं तथा सर्पिः प्रीणनं विनिवेदयेत् ।
दक्षिणा च सनैवेद्यं मृगाजिनमुदाहृतम् ॥ ५०
नाट्येश्वर नमस्तेऽस्तु इदमुच्चार्य नारद ।
प्रीणनं देवनाथाय कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ ५१
वैशाखे स्नानमुदितं सुगन्धकुसुमाम्भसा ।
पूजनं शंकरस्योक्तं चूतमञ्जरिभिर्विभो ॥ ५२
धूपं सर्जाज्ययुक्तं च नैवेद्यं सफलं घृतम् ।
नामजप्यमपीशस्य कालघ्नेति विपश्चिता ॥ ५३
जलकुम्भान् सनैवेद्यान् ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
सोपवीतान् सहान्नाद्यांस्तच्चित्तैस्तत्परायणैः ॥ ५४
ज्येष्ठे स्नानं चामलकैः पूजाऽर्ककुसुमैस्तथा ।
धूपयेत्त्रिनेत्रं च आयत्या पुष्टिकारकम् ॥ ५५
सक्तूंश्च सघृतान् देवे दध्नाक्तान् विनिवेदयेत् ।
उपानद्युगलं छत्रं दानं दद्याच्च भक्तिमान् ॥ ५६
नमस्ते भगनेत्रघ्न पूष्णो दशननाशन ।
इदमुच्चारयेद्भक्त्या प्रीणनाय जगत्पतेः ॥ ५७
आषाढे स्नानमुदितं श्रीफलैरर्चनं तथा ।
धत्तूरकुसुमैः शुक्लैर्धूपयेत् सिल्हकं तथा ॥ ५८
नैवेद्याः सघृता. पूपा. दक्षिणा सघृता यवाः ।

गोरोचन के सहित गुड द्वारा महादेव की प्रतिमा का अनुलेपन कर उसकी पूजा करे तथा इस प्रकार प्रार्थना करे "हे ईश ! मैं दीन हूँ तथा आपकी शरण मे हूँ, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तथा मेरे शोक का भलीभाँति नाश करें।" (४५)

तदनन्तर हे व्रतधारी द्विजश्रेष्ठ ! फाल्गुन मास की कृष्णाष्टमी को उपवास करे। दूसरे दिन पञ्चगव्य से स्नान कराये तथा कुन्द पुष्प द्वारा अर्चन कर चन्दन का धूप और ताम्रपात्र में घृतसहित गुडोदन का नैवेद्य प्रदान करे। तदुपरान्त 'रुद्र' शब्द का उच्चारण कर ब्राह्मणों को नैवेद्य के सहित दक्षिणा तथा दो वस्त्र प्रदान कर महादेव को प्रसन्न करे। (४६-४८)

चैत्र मास में गूलर के फल के जल से स्नान कराये और मन्दार के फूलों से पूजा करे। तदनन्तर बुद्धिमान व्यक्ति घृतमिश्रित महिष नामक गुग्गुलु से धूप देकर मोदक सहित घृत प्रसन्नतार्थ अर्पण करे एवं 'नाट्येश्वर को नमस्कार है' यह कहते हुए नैवेद्य सहित मृगचर्म की दक्षिणा प्रदान करे। इस प्रकार श्रद्धायुक्त होकर देवनाथ को प्रसन्न करे। (४९-५१)

हे विभो ! वैशाख मास में सुगन्धित पुष्पों के जल से स्नान तथा आम्रमञ्जरियों से शंकर के पूजन का विधान है। इस समय घृतमिश्रित सर्ज वृक्ष के निर्यास का धूप तथा फल सहित घृत का नैवेद्य अर्पण करे। बुद्धिमान व्यक्ति को श्री शिव के 'कालघ्न' नाम का जप करना चाहिये, तथा तन्मना एव तत्परायण होकर ब्राह्मण को नैवेद्य, उपवीत एव अन्नादि के साथ जलकुम्भ की दक्षिणा प्रदान करे। (५२-५४)

ज्येष्ठ मास में आमलक के जल से स्नान कराये तथा अर्क (मन्दार) के पुष्पों से पूजन करे। तदनन्तर भविष्य में पुष्टिकारक त्रिनेत्र को धूपप्रदान करे एवं घृत तथा दधि मिश्रित सत्तू का नैवेद्य अर्पित करे। जगत्पति के प्रीत्यर्थ हे भगनेत्रघ्न एव पूषा के दाँत के नाशक आप को नमस्कार है' यह कहकर भक्तिपूर्वक छत्र एव उपानद्युगल दक्षिणा में प्रदान करे। (५५-५७)

आषाढ मास में श्रीफलसयुक्त जल से स्नान कराये तथा धत्तूर के श्वेत पुष्पों से अर्चन करे। तदनन्तर सिल्हक का धूप देकर घृत सहित पूप का नैवेद्य अर्पण करे एवं 'हे दक्षयज्ञघ्न आप को नमस्कार है', इसे उच्च स्वर से

नमस्ते दक्षयज्ञघ्न इदमुच्चैरुदीरयेत् ॥ ५९
श्रावणे मृगभोज्येन स्नानं कृत्वाऽर्चयेद्धरम् ।
श्रीवृक्षपत्रैः सफलैर्धूपं दद्यात् तथाऽगुरुम् ॥ ६०
नैवेद्यं सघृतं दद्यात् दधि पूपान् समोदकान् ।
दध्योदनं सकृसरं माषधानाः सशष्कुलीः ॥ ६१
दक्षिणां श्वेतवृषभं धेनुं च कपिलां शुभाम् ।
कनकं रक्तवसनं प्रदद्याद् ब्राह्मणाय हि ।
गङ्गाधरेति जप्तव्यं नाम शंभोश्च पण्डितैः ॥ ६२
अमीभिः षड्भिरपरैर्मासैः पारणमुत्तमम् ।
एवं संवत्सरं पूर्णं संपूज्य वृषभध्वजम् ।
अक्षयान् लभते कामान् महेश्वरवचो यथा ॥ ६३
इदमुक्तं व्रतं पुण्यं सर्वाक्षयकरं शुभम् ।
स्वयं रुद्रेण देवर्षे तत्तथा न तदन्यथा ॥ ६४

इति श्रीवामनपुराणे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

१८

पुलस्त्य उवाच ।
मासि चाश्वयुजे ब्रह्मन् यदा पद्मं जगत्पतेः ।
नाभ्या निर्याति हि तदा देवेष्वेतान्यथोऽभवन् ॥ १
कन्दर्पस्य कराग्रे तु कदम्बश्चारुदर्शनः ।
तेन तस्य परा प्रीतिः कदम्बेन विवर्द्धते ॥ २
यक्षाणामधिपस्यापि मणिभद्रस्य नारद ।
वटवृक्षः समभवत् तस्मिंस्तस्य रतिः सदा ॥ ३
महेश्वरस्य हृदये धत्तूरविटपः शुभः ।
सजातः स च शर्वस्य रतिकृत् तस्य नित्यशः ॥ ४
ब्रह्मणो मध्यतो देहाज्जातो मरकतप्रभः ।

कहते हुए घृतयुक्त जौ की दक्षिणा प्रदान करे। (५८-५९)

श्रावण मास में मृगभोज्य (?) के जल से स्नान करा कर फलयुक्त बिल्वपत्रों से महादेव की पूजा करे तथा अगुरु का धूप दे। तदनन्तर घृतयुक्त पूप, मोदक, दधि, दध्योदन, उड़द की दाल, भुना हुआ जौ एवं कचौड़ी का नैवेद्य अर्पण करने के उपरान्त बुद्धिमान् व्यक्ति ब्राह्मण को श्वेतवृषभ, शुभ कपिला गौ, स्वर्ण एवं रक्तवस्त्र की दक्षिणा दे एवं शंभु के 'गङ्गाधर' इस नाम का जप करे। (६०-६२)

इन दूसरे छः मासों के अनन्तर द्वितीय पारण होता है। इस प्रकार एक वर्ष तक वृषभध्वज का पूजन कर महेश्वर के वचनानुसार मनुष्य अक्षय कामनाओं को प्राप्त करता है। (६३)

हे देवर्षे ! यह कल्याणकारी पवित्र एवं सर्वाक्षयकर व्रत स्वयं रुद्र ने कहा है। यह जैसा कहा है वैसा ही है। यह कभी अन्यथा नहीं हो सकता। (६४)

श्रीवामनपुराण में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

१८

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आश्विन मास में जब जगत्पति (विष्णु) की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ उसी समय अन्य देवों से ये वस्तुएँ उत्पन्न हुईं— (१)

कामदेव के कराग्र में सुन्दर कदम्ब उत्पन्न हुआ। इसीलिये कदम्ब से उनकी परमप्रीति बढ़ती है। (२)

हे नारद ! यक्षों के राजा मणिभद्र से वटवृक्ष उत्पन्न हुआ। इसी से उसमें सदा उसका प्रेम है। (३)

महेश्वर के हृदय पर सुन्दर धत्तूर वृक्ष उत्पन्न हुआ। अतएव वह महादेव को सदा प्रिय है। (४)

ब्रह्मा के मध्यशरीर से मरकतमणि के समान खदिर

खदरः कण्टकी श्रेयानभवद्विश्वकर्मणः ॥ ५
गिरिजायाः करतले कुन्दगुल्मस्त्वजायत ।
गणाधिपस्य कुम्भस्थो राजते सिन्धुवारकः ॥ ६
यमस्य दक्षिणे पार्श्वे पालाशो दक्षिणोत्तरे ।
कृष्णोदुम्बरको रुद्राज्जातः क्षोभकरो वृषः ॥ ७
स्कन्दस्य बन्धुजीवस्तु रवेरश्वत्थ एव च ।
कात्यायन्याः शमीजाता बिल्वो लक्ष्म्याः करेऽभवत् ॥ ८
नागानां पतये ब्रह्मञ्छरस्तम्बो व्यजायत ।
वासुकेर्विस्तृते पुच्छे पृष्ठे दूर्वा सितासिता ॥ ९
साध्यानां हृदये जातो वृक्षो हरितचन्दनः ।
एवं जातेषु सर्वेषु तेन तत्र रतिर्भवेत् ॥ १०
तत्र रम्ये शुभे काले या शुक्लैकादशी भवेत् ।
तस्यां संपूजयेद् विष्णुं तेन खण्डोऽस्य पूर्यते ॥ ११
पुष्पैः पत्रैः फलैर्वापि गन्धवर्णरसान्वितैः ।
ओषधीभिश्च मुख्याभिर्यावत्स्याच्छरदागमः ॥ १२
घृतं तिला व्रीहियवा हिरण्यकनकादि यत् ।
मणिमुक्ताप्रवालानि वस्त्राणि विविधानि च ॥ १३
रसानि स्वादुकट्वम्लकषायलवणानि च ।
तिक्तानि च निवेद्यानि तान्यखण्डानि यानि हि ॥ १४
तत्पूजार्थं प्रदातव्यं केशवाय महात्मने ।
यदा संवत्सरं पूर्णमखण्डं भवते गृहे ॥ १५
कृतोपवासो देवर्षे द्वितीयेऽहनि संयतः ।
स्नानेन तेन स्नायीत येनाखण्डं हि वत्सरम् ॥ १६
सिद्धार्थकैस्तिलैर्वापि तेनैवोद्वर्तनं स्मृतम् ।
हविषा पद्मनाभस्य स्नानमेव समाचरेत् ।
होमे तदेव गदितं दाने शक्तिर्निजा द्विज ॥ १७
पूजयेताथ कुसुमैः पादादारभ्य केशवम् ।
धूपयेद् विविधं धूपं येन स्याद् वत्सरं परम् ॥ १८

की उत्पत्ति हुई और विश्वकर्मा के शरीर से सुन्दर कंटकी वृक्ष उत्पन्न हुआ। (५)

गिरिनन्दिनी के करतल पर कुन्द-गुल्म पैदा हुआ तथा गणपति के कुम्भ देश में सिन्धुवारक वृक्ष विराजमान है। (६)

यमराज के दाहिने पार्श्व में पालाश और दक्षिणोत्तर (वाम) पार्श्व में कृष्ण उदुम्बर का वृक्ष उत्पन्न हुआ। रुद्र से उद्वेजक वृष (वासक-अडूसा) की उत्पत्ति हुई। (७)

स्कन्द से बन्धुजीव, सूर्य से अश्वत्थ, कात्यायनी से शमी और लक्ष्मी के हाथ में बेल का वृक्ष पैदा हुआ। (८)

हे ब्रह्मन्! नागों के पति (शेष) से शरस्तम्ब (सरपत) उत्पन्न हुआ तथा वासुकि के विस्तृत पुच्छ और पीठ पर श्वेत एवं कृष्ण दूर्वा उत्पन्न हुई। (९)

साध्यों के हृदय में हरितचन्दन वृक्ष उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उत्पन्न होने से उन सभी वृक्षों में तत्तद् देवों की अनुरक्ति होती है। (१०)

उस रमणीय शुभ काल में जो शुक्ल एकादशी तिथि होती है उसमें विष्णु की पूजा करे। इससे इसकी न्यूनता दूर हो जाती है। (११)

शरत् काल के आगमन तक गन्ध, वर्ण और रसयुक्त पत्र, पुष्प एवं फलों तथा मुख्य औषधियों से विष्णु की पूजा करे। (१२)

घृत, तिल, व्रीहि, जौ, रजत, सुवर्ण, मणि, मुक्ता, प्रवाल, नाना प्रकार के वस्त्र, स्वादु, कटु, अम्ल, कषाय, लवण और तिक्त रस आदि वस्तुओं को अखण्डित रूप से महात्मा केशव की पूजा के लिये अर्पित करे। इस प्रकार पूजन करने से वर्ष के पूर्ण होने पर गृह में पूर्णता होती है। (१३–१५)

हे देवर्षे! उपवास कर दूसरे दिन संयत होकर इस प्रकार स्नान करे जिससे वर्ष अखण्डित रहे। (१६)

सफेद सरसों या तिल के द्वारा उबटन का विधान है। पद्मनाभ को घृत से स्नान कराना चाहिये। हे द्विज! होम में भी वही (अर्थात् घृत) विहित है और दान में यथाशक्ति का विधान है। (१७)

तदनन्तर पुष्पों के द्वारा चरण से आरम्भ कर केशव की पूजा करे एवं नाना प्रकार के धूपों से उन्हें धूपित करे जिससे सम्वत्सर पूर्ण हो। (१८)

हिरण्यरत्नवासोभिः पूजयेत जगद् गुरुम् ।
रागखाण्डवचोष्याणि हविष्याणि निवेदयेत् ॥ १९

ततः संपूज्य देवेशं पद्मनाभ जगद् गुरुम् ।
विज्ञापयेन्मुनिश्रेष्ठ मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ २०

नमोऽस्तु ते पद्मनाभ पद्माधव महाद्युते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणि त्वखण्डानि भवन्तु मे ॥ २१

विकासिपद्मपत्राक्ष यथाऽखण्डोसि सर्वतः ।
तेन सत्येन धर्माद्या अखण्डाः सन्तु केशव ॥ २२

एवं संवत्सरं पूर्णं सोपवासो जितेन्द्रियः ।
अखण्ड पारयेद् ब्रह्मन् व्रतं वै सर्ववस्तुषु ॥ २३

अस्मिश्चीर्णे व्रते व्यक्तं परितुष्यन्ति देवताः ।
धर्मार्थकाममोक्षाद्यास्त्वक्षयाः संभवन्ति हि ॥ २४

एतानि ते मयोक्तानि व्रतान्युक्तानि कामिभिः ।
प्रवक्ष्याम्यधुना त्वेतद्वैष्णवं पञ्जरं शुभम् ॥ २५

नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम् ।
प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ॥ २६

गदां कौमोदकीं गृह्य पद्मनाभामितद्युते ।
याम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ॥ २७

हलमादाय सौनन्दं नमस्ते पुरुषोत्तम ।
प्रतीच्यां रक्ष मे विष्णो भवन्तं शरणं गतः ॥ २८

मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम् ।
उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः ॥ २९

शार्ङ्गमादाय च धनुरस्त्रं नारायणं हरे ।
नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्यां शरण गतः ॥ ३०

पाञ्चजन्यं महाशङ्खमन्तर्बोध्यं च पङ्कजम् ।
प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां यज्ञसूकर ॥ ३१

चर्म सूर्यशतं गृह्य खड्गं चन्द्रमसं तथा ।
नैर्ऋत्यां मां च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकेसरिन् ॥ ३२

सुवर्णों, रत्नों और वस्त्रों द्वारा जगद्गुरु का पूजन करे तथा राग-खाण्डव (मिष्टान्न विशेष), चोष्य एवं हविष्यों का का नैवेद्य अर्पित करे। (१९)

हे सुव्रत! हे मुनिश्रेष्ठ! देवेश जगद्गुरु पद्मनाभ की की पूजा करने के उपरान्त इस मन्त्र से प्रार्थना करे—(२०)

हे पद्मनाभ! हे लक्ष्मी के पति! हे महाद्युतिमान्! आपको प्रणाम है। हमारे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अखण्ड हों। (२१)

हे विकसितकमलपत्र के समान नेत्र वाले! आप जिस प्रकार सर्वत्र अखण्ड हैं उसी सत्य के प्रभाव से मेरे धर्मादिक भी अखण्डित रहें। (२२)

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ष तक उपवासी और जितेन्द्रिय रहते हुए सभी वस्तुओं के द्वारा व्रत को अखण्ड रूप से पारित करे। (२३)

यह व्रत करने पर निश्चित रूप से देवता प्रसन्न होते हैं एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष अक्षय होते हैं। (२४)

कामियों द्वारा कथित इन व्रतों का मैंने तुमसे वर्णन किया। अब मैं कल्याणकारी इस वैष्णवपञ्जर का वर्णन करूँगा। (२५)

हे गोविन्द! आपको नमस्कार है। हे विष्णो! आप सुदर्शनचक्र लेकर पूर्व दिशा में मेरी रक्षा करें। मैं आपकी शरण में हूँ। (२६)

हे अमितद्युति पद्मनाभ! कौमोदकी गदा धारण कर दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरण में आया हूँ। (२७)

हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। सौनन्द नामक हल लेकर आप पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरण आया हूँ। (२८)

हे पुण्डरीकाक्ष! विनाशकारी मुसल लेकर आप उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करें। हे जगन्नाथ! मैं आपकी शरण आया हूँ। (२९)

हे हरि! शार्ङ्गधनुष एवं नारायणास्त्र लेकर ईशान कोण में मेरी रक्षा करें। हे रक्षोघ्न! आपको नमस्कार है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। (३०)

हे यज्ञसूकर विष्णु! पाञ्चजन्य नामक महाशङ्ख तथा अन्तर्बोध्य पङ्कज को ग्रहण कर अग्निकोण में मेरी रक्षा करें। (३१)

हे दिव्यमूर्तिनरकेशरी! सूर्यशत नामक ढाल तथा चन्द्रमस नामक तलवार लेकर नैऋत्य कोण में मेरी रक्षा करें। (३२)

वैजयन्तीं प्रगृह्य त्वं श्रीवत्सं कण्ठभूषणम् ।
वायव्यां रक्ष मां देव अश्वशीर्ष नमोऽस्तु ते ॥ ३३
वैनतेयं समारुह्य अन्तरिक्षे जनार्दन ।
मां त्वं रक्षाजित सदा नमस्ते त्वपराजित ॥ ३४
विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले ।
अकूपार नमस्तुभ्यं महामोह नमोऽस्तु ते ॥ ३५
करशीर्षाङ्घ्रिपर्वेषु तथाऽष्टबाहुपञ्जरम् ।
कृत्वा रक्षस्व मां देव नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ ३६
एतदुक्तं भगवता वैष्णवं पञ्जरं महत् ।
पुरा रक्षार्थमीशेन कात्यायन्या द्विजोत्तम ॥ ३७
नाशयामास सा यत्र दानवं महिषासुरम् ।
नमरं रक्तबीजं च तथान्यान् सुरकण्टकान् ॥ ३८

नारद उवाच ।

काऽसौ कात्यायनी नाम या जघ्ने महिषासुरम् ।
नमरं रक्तबीजं च तथाऽन्यान् सुरकण्टकान् ॥ ३९
कश्चासौ महिषो नाम कुले जातश्च कस्य सः ।
कश्चासौ रक्तबीजाख्यो नमरः कस्य चात्मजः ।
एतद्विस्तरतस्तात यथावद् वक्तुमर्हसि ॥ ४०

पुलस्त्य उवाच ।

श्रूयतां संप्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
सर्वदा वरदा दुर्गा येयं कात्यायनी मुने ॥ ४१
दुराऽसुरवरौ रौद्रौ जगत्क्षोभकरावुभौ ।
रम्भश्चैव करम्भश्च द्वावास्तां सुमहाबलौ ॥ ४२
तावपुत्रौ च देवर्षे पुत्रार्थं तेपतुस्तपः ।
बहून् वर्षगणान् दैत्यौ स्थितौ पञ्चनदे जले ॥ ४३
तत्रैको जलमध्यस्थो द्वितीयोऽप्यग्निपंचमी ।
करम्भश्चैव रम्भश्च यक्षं मालवटं प्रति ॥ ४४
एकं निमग्नं सलिले ग्राहरूपेण वासवः ।
चरणाभ्यां समादाय निजघान यथेच्छया ॥ ४५
ततो भ्रातरि नष्टे च रम्भः कोपपरिप्लुतः ।

हे अश्वशीर्ष देव ! वैजयन्तीमाला तथा श्रीवत्स नामक कण्ठभूषण धारण कर वायव्य कोण में मेरी रक्षा करें। आप को नमस्कार है। (३३)

हे अजित जनार्दन ! वैनतेय पर आरूढ हो कर आप अन्तरिक्ष मे मेरी रक्षा करे। हे अपराजित ! आपको सदा नमस्कार है। (३४)

हे अकूपार (महाकच्छप) ! विशालाक्ष पर आरूढ होकर आप रसातल मे मेरी रक्षा करें। हे महामोह ! आपको नमस्कार है। (३५)

हे पुरुषोत्तम ! हाथ, शिर एव जोडों आदि मे अष्ट बाहु पञ्जर करके आप मेरी रक्षा करें। हे देव ! आप को नमस्कार है। (३६)

हे द्विजोत्तम ! प्राचीन काल में भगवान् ईश (शङ्कर) ने कात्यायनी की रक्षा के हेतु इस महान् वैष्णव पञ्जर को उस स्थान पर कहा था जहाँ इन्होंने महिषासुर, नमर, रक्तबीज एव अन्यान्य देव-शत्रुओं का नाश किया था। (३७-३८)

नारद ने पूछा—"महिषासुर, नमर, रक्तबीज तथा अन्यान्य सुरकण्टकों का वध करने वाली ये कात्यायनी कौन हैं ?" (३९)

"हे तात ! यह महिष कौन है ? तथा यह किसके कुल में उत्पन्न हुआ था ? यह रक्तबीज कौन है ? तथा नमर किसका पुत्र है ? आप इसका यथावत् विस्तारपूर्वक वर्णन करें।" (४०)

पुलस्त्य ने कहा—"सुनिये मैं उस पापनाशक कथा को कहता हूँ। हे मुने ! सर्वदा वरदा दुर्गा ही ये कात्यायनी हैं।" (४१)

प्राचीन काल में रम्भ और करम्भ नामक भयंकर, जगत्क्षोभकारी, महाबलवान् दो श्रेष्ठ असुर थे। (४२)

हे देवर्षे ! पुत्रहीन उन दोनों दैत्यों ने पञ्चनद के जल में रहकर बहुत वर्षों तक पुत्रार्थ तप किया। (४३)

मालवट यक्ष के प्रति एकाग्र करम्भ और रम्भ इन दोनों में एक जल में स्थित होकर तथा दूसरा पञ्चाग्नि के मध्य बैठ कर तप कर रहा था। (४४)

ग्राहरूपधारी इन्द्र जल में निमग्न एक को पैर पकड़ कर खींच ले गया और इच्छानुसार मार डाला। (४५)

तदनन्तर भाई के नष्ट हो जाने पर क्रोधयुक्त महा बलशाली रम्भ ने अपने शिर को काट कर अग्नि में आहुति करने की इच्छा की। (४६)

तदुपरान्त केश ग्रहण कर और हाथ में सूर्य सदृश

वह्नौ स्वशीर्षं संक्षिप्य होतुमैच्छन् महाबलः ॥ ४६
ततः प्रगृह्य केशेषु खड्गं च रविसप्रभम् ।
छेत्तुकामो निजं शीर्षं वह्निना प्रतिषेधितः ॥ ४७
उक्तश्च मा दैत्यवर नाशयात्मानमात्मना ।
दुस्तरा परवध्याऽपि स्ववध्याऽप्यतिदुस्तरा ॥ ४८
यच्च प्रार्थयसे वीर तद्ददामि यथेप्सितम् ।
मा म्रियस्व मृतस्येह नष्टा भवति वै कथा ॥ ४९
ततोऽब्रवीद् वचो रम्भो वरं चेन्मे ददासि हि ।
त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्मे त्वत्तेजसाऽधिकः ॥ ५०
अजेयो दैवतैः सर्वैः पुम्भिर्दैत्यैश्च पावक ।
महाबलो वायुरिव कामरूपी कृतास्त्रवित् ॥ ५१
तं प्रोवाच कविर्ब्रह्मन् बाढमेवं भविष्यति ।
यस्यां चित्तं समालम्बि करिष्यसि ततः सुतः ॥ ५२
इत्येवमुक्तो देवेन वह्निना दानवो ययौ ।
द्रष्टुं मालवटं यक्षं यक्षैश्च परिवारितम् ॥ ५३
तेषां पद्मनिधिस्तत्र वसते नान्यचेतनः ।
गजाश्च महिषाश्चाश्वा गावोऽजाविपरिप्लुताः ॥ ५४
तान् दृष्ट्वैव तदा चक्रे भावं दानवपार्थिवः ।
महिष्यां रूपयुक्तायां त्रिहायण्यां तपोधन ॥ ५५
सा समागाच्च दैत्येन्द्रं कामयन्ती तरस्विनी ।
स चापि गमनं चक्रे भवितव्यप्रचोदितः ॥ ५६
तस्यां समभवद् गर्भस्तां प्रगृह्याथ दानवः ।
पातालं प्रविवेशाथ ततः स्वभवनं गतः ॥ ५७
दृष्टश्च दानवैः सर्वैः परित्यक्तश्च बन्धुभिः ।
अकार्यकारकेत्येवं भूयो मालवटं गतः ॥ ५८
साऽपि तेनैव पतिना महिषी चारुदर्शना ।
समं जगाम तत् पुण्यं यक्षमण्डलमुत्तमम् ॥ ५९
ततस्तु वसतस्तस्य श्यामा सा सुषुवे मुने ।
अजीजनत् सुतं शुभ्रं महिषं कामरूपिणम् ॥ ६०
एतामृतुमतीं जातां महिषोऽन्यो ददर्श ह ।

प्रभायुक्त खड्ग धारण कर अपना शिर काटने की इच्छा वाले (रम्भ) को अग्नि ने रोका और कहा "हे दैत्यवर! तुम स्वयं अपना नाश मत करो। परवध भी दुस्तर होता है, आत्महत्या तो अतिदुस्तर है। (४७-४८)

हे वीर! तुम जो माँगो वह तुम्हारी इच्छा अनुसार मैं तुम्हें दूँगा। मरो मत। इस संसार में मृत व्यक्ति की कथा नष्ट हो जाती है। (४९)

तदनन्तर रम्भ ने यह वचन कहा—'यदि आप वर देते हैं तो (यह दीजिये कि) मुझे आप से भी अधिक तेजस्वी त्रैलोक्य-विजयी पुत्र उत्पन्न हो। (५०)

हे पावक! समस्त देवताओं तथा मानवों और दैत्यों से भी वह अजेय हो। वह वायु के समान महाबलवान् तथा कामरूपी एवं सर्वास्त्रवेत्ता हो।' (५१)

हे ब्रह्मन्! अग्नि ने उससे कहा—"अच्छा ऐसा ही होगा। जिस स्त्री में तुम्हारा चित्त लग जायेगा उसी से तुम पुत्र उत्पन्न करोगे।" (५२)

अग्निदेव के ऐसा कहने पर रम्भ यक्षों से परिवेष्टित मालवट यक्ष का दर्शन करने गया। (५३)

वहाँ उन यक्षों का पद्म नामक निधि एकाग्र मन से निवास करता था। बकरे और भेड़ों से भरे हुये अश्व, महिष तथा हाथी और गौ उस स्थान पर थे। (५४)

हे तपोधन! दानवराज ने उन्हें देखकर तीन वर्षों वाली रूपवती एक महिषी में प्रेम प्रकट किया (अर्थात् आसक्त हुआ)। (५५)

कामपरायण होकर वह महिषी शीघ्र दैत्येन्द्र के समीप आ गयी। भवितव्यता से प्रेरित उसने (रम्भ ने) भी उसके (महिषी के) साथ संगम किया। (५६)

उसे गर्भ हो गया। तदनन्तर उस महिषी को लेकर दानव पाताल में प्रविष्ट हुआ और घर चला गया। (५७)

उसके दानव-बन्धुओं ने उसे देख एवं 'अकार्यकारक' जानकर उसका त्याग कर दिया। (तदनन्तर) वह पुनः मालवट के निकट गया। (५८)

वह सुन्दरी महिषी भी उसी पति के साथ उस पवित्र और उत्तम यक्ष-मण्डल में गई। (५९)

हे मुने! वहाँ उसके निवास करते समय उस श्यामा (महिषी) ने प्रसव किया। उसने एक शुभ्र तथा इच्छानुसार रूप धारण करने वाले महिष पुत्र को उत्पन्न किया। (६०)

उसके ऋतुमती होने पर किसी दूसरे महिष ने उसे

सा चाभ्यगाद् दितिवरं रक्षन्ती शीलमात्मनः ॥ ६१
तमुन्नामितनासं च महिषं वीक्ष्य दानवः ।
खड्गं निष्कृष्य तरसा महिषं समुपाद्रवत् ॥ ६२
तेनापि दैत्यस्तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्यां हृदि ताडितः ।
निर्भिन्नहृदयो भूमौ निपपात ममार च ॥ ६३
मृते भर्तरि सा श्यामा यक्षाणां शरणं गता ।
रक्षिता गुह्यकैः साध्वी निवार्य महिषं ततः ॥ ६४
ततो निवारितो यक्षैर्हयारिर्मदनातुरः ।
निपपात सरो दिव्यं ततो दैत्योऽभवन्मृतः ॥ ६५
नमरो नाम विख्यातो महाबलपराक्रमः ।
यक्षानाश्रित्य तस्थौ स कालयन् श्वापदान् मुने ॥ ६६
स च दैत्येश्वरो यक्षैर्मालवटपुरस्सरैः ।
चितामारोपितः सा च श्यामा तं चारुहत् पतिम् ॥ ६७
ततोऽग्निमध्यादुत्तस्थौ पुरुषो रौद्रदर्शनः ।
व्यद्रावयत् स तान् यक्षान् खड्गपाणिर्भयंकरः ॥ ६८
ततो हतास्तु महिषाः सर्व एव महात्मना ।
ऋते संरक्षितारं हि महिषं रम्भनन्दनम् ॥ ६९
स नामतः स्मृतो दैत्यो रक्तबीजो महामुने ।
योऽजयत् सर्वतो देवान् सेन्द्ररुद्रार्कमारुतान् ॥ ७०
एवं प्रभावा दनुपुङ्गवास्ते
तेजोऽधिकस्तत्र बभौ हयारिः ।
राज्येऽभिषिक्तश्च महाऽसुरेन्द्रै-
र्विनिर्जितैः शम्बरतारकाद्यैः ॥ ७१
अशक्नुवद्भिः सहितैश्च देवैः
सलोकपालैः सहुताशभास्करैः ।
स्थानानि त्यक्तानि शशीन्द्रभास्करै-
र्धर्मश्च दूरे प्रतियोजितश्च ॥ ७२

इति श्रीवामनपुराणे अष्टादशोऽध्याय ॥१८॥

देखा। वह अपने शील का रक्षण करती हुई दैत्यश्रेष्ठ के निकट गई। (६१)

नाक को ऊपर उठाये उस महिष को देख कर दानव ने खड्ग निकाल कर महिष पर वेग से आक्रमण किया। (६२)

उस (महिष) ने भी तीक्ष्ण शृङ्गों से दैत्य के हृदय में प्रहार किया। वह दैत्य हृदय फट जाने से भूमि पर गिर पड़ा और मर गया। (६३)

पति के मर जाने पर वह महिषी यक्षों की शरण में गई। तदनन्तर गुह्यकों ने महिष को हटा कर साध्वी महिषी की रक्षा की। (६४)

यक्षों द्वारा निवारित कामार्त हयारि (महिष) एक दिव्य सरोवर में गिर पड़ा। तदुपरान्त वह मर कर एक दैत्य हो गया। (६५)

हे मुने! वन्य पशुओं को मारते हुए यक्षों के आश्रय में रहने वाला महाबल-पराक्रम युक्त वह दैत्य नमर नाम से विख्यात हुआ। (६६)

मालवट आदि यक्षों ने उस दैत्येश्वर को चिता पर रखा। वह श्यामा भी पति के साथ (चिता पर) आरूढ हो गई। (६७)

तदनन्तर अग्नि के मध्य से हाथ में खड्ग धारण किये रौद्रदर्शन एवं भयंकर पुरुष प्रकट हुआ। उसने सभी यक्षों को भगा दिया। (६८)

तदुपरान्त उस बलवान् ने संरक्षक रम्भनन्दन महिष को छोड़कर सारे महिषों को मार डाला। (६९)

हे महामुने! वह दैत्य रक्तबीज नाम से विख्यात हुआ। उसने इन्द्र, रुद्र, सूर्य एवं मरुतादि सहित देवों को सर्वत्र जीत लिया। (७०)

वे सभी दैत्य इस प्रकार के प्रभाव से युक्त थे। किन्तु उनमें हयारि (महिष) अधिक तेजस्वी था। उसके द्वारा विजित शम्बर, तारकादि महान् असुरों ने उसका राज्याभिषेक किया। (७१)

लोकपालों के सहित अग्नि, सूर्य आदि देवों के द्वारा एक साथ मिलकर जब वह जीता नहीं गया तो चन्द्र, इन्द्र एवं सूर्य ने अपना अपना स्थान छोड़ दिया तथा धर्म भी दूर हटा दिया गया। (७२)

श्रीवामनपुराण में अठारहवां अध्याय समाप्त ॥१८॥

१९

पुलस्त्य उवाच ।

ततस्तु देवा महिषेण निर्जिताः
स्थानानि संत्यज्य सवाहनायुधाः ।
जग्मुः पुरस्कृत्य पितामहं ते
द्रष्टुं तदा चक्रधरं श्रियः पतिम् ॥ १

गत्वा त्वपश्यंश्च मिथः सुरोत्तमौ
स्थितौ खगेन्द्रासनशंकरौ हि ।
दृष्ट्वा प्रणम्यैव च सिद्धिसाधकौ
न्यवेदयंस्तन्महिषादिचेष्टितम् ॥ २

प्रभोऽश्विसूर्येन्दुनिलाग्निवेधसां
जलेशशक्रादिषु चाधिकारान् ।
आक्रम्य नाकात्तु निराकृता वयं
कृतावनिस्था महिषासुरेण ॥ ३

एतद् भवन्तौ शरणागतानां
श्रुत्वा वचो ब्रूत हितं सुराणाम् ।
न चेद् व्रजामोऽद्य रसातलं हि
संकाल्यमाना युधि दानवेन ॥ ४

इत्थं मुरारिः सह शंकरेण
श्रुत्वा वचो विप्लुतचेतसस्तान् ।
दृष्ट्वाऽथ चक्रे सहसैव कोपं
कालाग्निकल्पो हरिरव्ययात्मा ॥ ५

ततोऽनुकोपान्मधुसूदनस्य
सशंकरस्यापि पितामहस्य ।
तथैव शक्रादिषु दैवतेषु
महर्द्धि तेजो वदनाद् विनिःसृतम् ॥ ६

तच्चैकतां पर्वतकूटसन्निभं
जगाम तेजः प्रवराश्रमे मुने ।
कात्यायनस्याप्रतिमस्य तेन
महर्षिणा तेज उपाकृतं च ॥ ७

तेनर्षिसृष्टेन च तेजसा वृतं
ज्वलत्प्रकाशार्कसहस्रतुल्यम् ।
तस्माच्च जाता तरलायताक्षी

१९

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर महिष द्वारा पराजित देव गण अपने-अपने स्थानों को छोड़ कर अपने वाहनों और आयुधों के साथ पितामह को आगे कर चक्रधारी लक्ष्मी पति का दर्शन करने गए। (१)

वहाँ जाकर उन लोगों ने विष्णु एवं शंकर इन दोनों सुरोत्तमों को एक साथ बैठे देखा। उन दोनों सिद्धि-साधकों को देखने के अनन्तर प्रणाम कर उन लोगों ने उनसे महिषादि के कर्म का वर्णन किया। (२)

(उन्होंने कहा—) हे प्रभो! महिषासुर ने अश्विनी-कुमार, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र आदि (हम) देवताओं के अधिकारों पर आक्रमण कर स्वर्ग से निकाल दिया है तथा हम लोग पृथ्वी के निवासी बना दिये गये हैं। (३)

हम शरणागत देवताओं की यह बात सुन कर आप दोनों हमारे हित की बात कहें। अन्यथा दानव द्वारा युद्ध में मारे जा रहे हम लोग आज रसातल में चले जायेंगे। (४)

शंकर के साथ मुरारि ने उनके इस प्रकार के वचन को सुना तथा उन दुःखी चित्तवालों को देखा। तदनन्तर कालाग्नि-सदृश अव्ययात्मा हरि ने सहसा कोप किया। (५)

तदनन्तर मधुसूदन, शंकर, पितामह तथा शक्रादि देवताओं द्वारा कोप करने पर उनके मुख से महान् तेज प्रकट हुआ। (६)

हे मुने! अनुपम कात्यायन ऋषि के आश्रम में पर्वत शृंग तुल्य वह तेज एकत्रित हो गया। उन महर्षि ने तेज का उपकार (उपबृंहण) किया। (७)

उन महर्षि द्वारा उत्पन्न किये गए तेज से आवृत वह तेज सहस्रों सूर्य के सदृश जाज्वल्यमान हो गया। उससे

कात्यायनी योगविशुद्धदेहा ॥ ८
माहेश्वराद् वक्त्रमथो बभूव
नेत्रत्रयं पावकतेजसा च ।
याम्येन केशा हरितेजसा च
भुजास्तथाष्टादश संप्रजज्ञिरे ॥ ९
सौम्येन युग्मं स्तनयोः सुसंहतं
मध्यं तथैन्द्रेण च तेजसाऽभवत् ।
ऊरू च जङ्घे च नितम्बसंयुते
जाते जलेशस्य तु तेजसा हि ॥ १०
पादौ च लोकप्रपितामहस्य
पद्माभिकोशप्रतिमौ बभूवतुः ।
दिवाकराणामपि तेजसाऽङ्गुलीः
कराङ्गुलीश्च वसुतेजसैव ॥ ११
प्रजापतीनां दशनाश्च तेजसा
याक्षेण नासा श्रवणौ च मारुतात् ।
साध्येन च भ्रूयुगलं सुकान्तिमत्
कन्दर्पबाणासनसन्निभं बभौ ॥ १२
तथर्षितेजोत्तममुत्तमं महन्-
नाम्ना पृथिव्यामभवत् प्रसिद्धम् ।

कात्यायनीत्येव तदा बभौ सा
नाम्ना च तेनैव जगत्प्रसिद्धा ॥ १३
ददौ त्रिशूलं वरदस्त्रिशूली
चक्रं मुरारिर्वरुणश्च शङ्खम् ।
शक्तिं हुताशः श्वसनश्च चापं
तूणौ तथाक्षय्यशरौ विवस्वान् ॥ १४
वज्रं तथेन्द्रः सह घण्टया च
यमोऽथ दण्डं धनदो गदां च ।
ब्रह्माऽक्षमालां सकमण्डलुं च
कालोऽसिमुग्रं सह चर्मणा च ॥ १५
हारं च सोमः सह चामरेण
मालां समुद्रो हिमवान् मृगेन्द्रम् ।
चूडामणिं कुण्डलमर्द्धचन्द्रं
प्रादात् कुठारं वसुशिल्पकर्त्ता ॥ १६
गन्धर्वराजो रजतानुलिप्तं
पानस्य पूर्णं सदृशं च भाजनम् ।
भुजंगहारं भुजगेश्वरोऽपि
अम्लानपुष्पामृतवः स्रजं च ॥ १७
तदाऽतितुष्टा सुरसत्तमानां

योग से विशुद्ध देहवाली एवं चचल तथा विशाल नेत्रों वाली कात्यायनी आविर्भूत हुई । (८)

महेश्वर के तेज से कात्यायनी का मुख, अग्नि के तेज से उनके तीन नेत्र, यम के तेज से केश तथा हरि के तेज से उनकी अट्ठारह भुजाएँ उत्पन्न हुई । (९)

चन्द्रमा के तेज से उनके सम्यक् सटे हुये स्तनयुगल, इन्द्र के तेज से मध्य भाग तथा वरुण के तेज से ऊरु, जङ्घाएँ एवं नितम्बों की उत्पत्ति हुई । (१०)

लोकपितामह ब्रह्मा के तेज से उनके पद्मकोश तुल्य पद युगल, आदित्यों के तेज से पैर की अगुँलियाँ, तथा वसुओं के तेज से उनके हाथ की अँगुलियाँ उत्पन्न हुई । (११)

प्रजापतियों के तेज से उनके दाँत, यक्षों के तेज से नाक, वायु के तेज से दोनों कान, साध्य के तेज से कामदेव के धनुष सदृश उनकी दोनों भौंहें प्रकट हुई । (१२)

महर्षि का उत्तमोत्तम तथा महान् तेज पृथ्वी पर 'कात्यायनी' इस नाम से प्रसिद्ध हुआ और तदनन्तर वे उसी नाम से जगत् में प्रसिद्ध हुई । (१३)

वरद त्रिशूली ने इन्हें त्रिशूल, मुरारि ने चक्र, वरुण ने शङ्ख, अग्नि ने शक्ति, वायु ने धनुष तथा सूर्य ने अक्षय बाणों वाले दो तूणीर प्रदान किया । (१४)

इन्द्र ने घण्टा सहित वज्र, यम ने दण्ड, कुबेर ने गदा, ब्रह्मा ने कमण्डलु के साथ अक्षमाला तथा काल ने ढाल सहित उग्र तलवार दिया । (१५)

चन्द्रमा ने चामर सहित हार, समुद्र ने माला, हिमालय ने सिंह, विश्वकर्मा ने चूडामणि, कुण्डल, अर्धचन्द्र तथा कुठार प्रदान किया । (१६)

गन्धर्वराज ने उनके अनुरूप, रजत का पूर्ण पान (मद्य) पात्र, नागराज ने भुजङ्गहार तथा ऋतुओं ने न मुरझाने वाले पुष्पों की माला प्रदान की । (१७)

तदनन्तर श्रेष्ठ देवताओं के ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होकर त्रिनेत्रा (कात्यायनी) ने उच्च अट्टहास किया । इन्द्र, विष्णु

अट्टाट्टहासं मुमुचे त्रिनेत्रा ।
तां तुष्टुवुर्देववराः सहेन्द्राः
सविष्णुरुद्रेन्द्वनिलाग्निभास्कराः ॥ १८
नमोऽस्तु देव्यै सुरपूजितायै
या संस्थिता योगविशुद्धदेहा ।
निद्रास्वरूपेण महीं वितत्य
तृष्णा त्रपा क्षुद् भयदाऽथ कान्तिः ॥ १९
श्रद्धा स्मृतिः पुष्टिरथो क्षमा च
छाया च शक्तिः कमलालया च ।
वृत्तिर्दया भ्रान्तिरथेह माया
नमोऽस्तु देव्यै भवरूपिकायै ॥ २०
ततः स्तुता देववरैर्मृगेन्द्र-
मारुह्य देवी प्रगताऽवनीध्रम् ।
विन्ध्यं महापर्वतमुच्चशृङ्गं
चकार यं निम्नतरं त्वगस्त्यः ॥ २१

नारद उवाच ।

किमर्थमद्रिं भगवानगस्त्य-
स्तं निम्नशृङ्गं कृतवान् महर्षिः ।
कस्मै कृते केन च कारणेन
एतद् वदस्वामलसत्त्ववृत्ते ॥ २२

पुलस्त्य उवाच ।

पुरा हि विन्ध्येन दिवाकरस्य
गतिर्निरुद्धा गगनेचरस्य ।
रविस्ततः कुम्भभवं समेत्य
होमावसाने वचनं बभाषे ॥ २३
समागतोऽहं द्विज दूरतस्त्वां
कुरुष्व मामुद्धरणं मुनीन्द्र ।
ददस्व दानं मम यन्मनीषितं
चरामि येन त्रिदिवेषु निर्वृतः ॥ २४
इत्थं दिवाकरवचो गुणसंप्रयोगि
श्रुत्वा तदा कलशजो वचनं बभाषे ।
दानं ददामि तव यन्मनसस्त्वभीष्टं
नार्थी प्रयाति विमुखो मम कश्चिदेव ॥ २५
श्रुत्वा वचोऽमृतमयं कलशोद्भवस्य
प्राह प्रभुः करतले विनिधाय मूर्ध्नि ।
एषोऽद्य मे गिरिवरः प्ररुणद्धि मार्गं
विन्ध्यस्य निम्नकरणे भगवन् यतस्व ॥ २६
इति रविवचनादथाह कुम्भजन्मा

रुद्र, चन्द्रमा, वायु, अग्नि तथा सूर्य आदि श्रेष्ठ देव उनकी स्तुति करने लगे— (१८)

योग से विशुद्ध देहवाली सुरपूजित देवी को नमस्कार है। वे निद्रा रूप से पृथ्वी में व्याप्त हैं, वे ही तृष्णा, त्रपा, क्षुधा, भयदा, कान्ति, श्रद्धा, स्मृति, पुष्टि, क्षमा, छाया, शक्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, दया, भ्रान्ति तथा माया हैं। ऐसी संसाररूपिणी देवी को नमस्कार है। (१९-२०)

तदनन्तर देववरों से स्तुत देवी सिंह पर आरूढ़ होकर विन्ध्य नामक उस ऊँचे शृङ्गवाले महान् पर्वत पर गईं जिसे अगस्त्य मुनि ने अति निम्न कर दिया था। (२१)

नारद ने पूछा—हे पुलस्त्य ! यह बतलायें कि भगवान् अगस्त्य महर्षि ने उस पर्वत को किसके लिये एवं किस कारण से निम्नशृङ्ग वाला किया ? (२२)

पुलस्त्य ने कहा—प्राचीन काल में विन्ध्य ने गगनविहारी सूर्य की गति को रोक दिया। तदनन्तर सूर्य ने महर्षि अगस्त्य के पास जाकर होम के अन्त में यह वचन कहा— (२३)

हे द्विज ! मैं बहुत दूर से आपके पास आया हूँ। हे मुनीन्द्र ! आप मेरा उद्धार करें। मुझे मेरा अभीष्ट दान दें जिससे मैं निश्चिन्त होकर आकाश में विचरण करूँ। (२४)

इस प्रकार दिवाकर के गुण संयुक्त वाक्य को सुनकर अगस्त्य ने कहा—"मैं तुम्हें तुम्हारा मनोभिलषित दान दूँगा। मेरे पास से कोई भी याचक विमुख हो कर नहीं जाता।" (२५)

अगस्त्य के अमृतमय वचन को सुनकर शिर से अञ्जलि संयुक्त किये हुए प्रभु दिवाकर ने कहा—"आज यह गिरिवर मेरा मार्ग रोक रहा है अतः हे भगवन् ! आप विन्ध्याचल को नीचा करने का प्रयत्न करें। (२६)

कुम्भजन्मा अगस्त्य ने सूर्य की बात सुन कर कहा—

कृतमिति विद्धि मया हि नीचशृङ्गम् ।
तव किरणजितो भविष्यते महीध्रो
मम चरणसमाश्रितस्य का व्यथा ते ॥ २७

इत्येवमुक्त्वा कलशोद्भवस्तु
सूर्यं हि संस्तूय विनम्य भक्त्या ।
जगाम संत्यज्य हि दण्डकं हि
विन्ध्याचलं वृद्धवपुर्महर्षिः ॥ २८

गत्वा वचः प्राह मुनिर्महीध्रं
यास्ये महातीर्थवरं सुपुण्यम् ।
वृद्धोस्म्यशक्तश्च तवाधिरोढुं
तस्माद् भवान् नीचतरोऽस्तु सद्यः ॥ २९

इत्येवमुक्तो मुनिसत्तमेन
स नीचशृङ्गस्त्वभवन्महीध्रः ।
समाक्रमच्चापि महर्षिमुख्यः
प्रोल्लङ्घ्य विन्ध्यं त्विदमाह शैलम् ॥ ३०

यावच्च भूयो निजमाश्रमाग्नि
महाश्रमं धौतवपुः सुतीर्थात् ।
त्वया न तावत्त्विह वर्धितव्यं
नो चेद् विशप्स्येऽहमवज्ञया ते ॥ ३१

इत्येवमुक्त्वा भगवाञ्जगाम
दिशं स याम्यां सहसाऽन्तरिक्षम् ।
आक्रम्य तस्थौ स हि तां तदाशां
काले व्रजाम्यत्र यदा मुनीन्द्रः ॥ ३२

तत्राश्रमं रम्यतरं हि कृत्वा
संशुद्धजाम्बूनदतोरणान्तम् ।
तत्राथ निक्षिप्य विदर्भपुत्रीं
स्वमाश्रमं सौम्यमुपाजगाम ॥ ३३

ऋतावृतौ पर्वकालेषु नित्यं
तमम्बरे ह्याश्रममावसत् सः ।
शेषं च कालं स हि दण्डकस्थम्
तपश्चचारामितकान्तिमान् मुनिः ॥ ३४

विन्ध्योऽपि दृष्ट्वा गगने महाश्रमं
वृद्धिं न यात्येव भयान्महर्षेः ।
नासौ निवृत्तेति मतिं विधाय
स संस्थितो नीचतराग्रशृङ्गः ॥ ३५

एवं त्वगस्त्येन महाचलेन्द्रः

"मेरे द्वारा विन्ध्य को नीचा किया हुआ ही समझो। यह पर्वत तुम्हारी किरणों से पराजित होगा। मेरे चरणों के आश्रित तुम्हारे लिये व्यथा कैसी?" (२७)

वृद्ध शरीर वाले महर्षि अगस्त्य ऐसा कह कर विनम्रता पूर्वक भक्ति से सूर्य की स्तुति करने के उपरान्त दण्डक का त्याग कर विन्ध्यपर्वत के निकट गए। (२८)

वहाँ जाकर मुनि ने पर्वत से कहा "मैं अतिपवित्र महातीर्थ को जा रहा हूँ। मैं वृद्ध होने से तुम्हारे ऊपर चढ़ने में असमर्थ हूँ अतः आप तत्काल नीचा हो जाँय।" (२९)

मुनिश्रेष्ठ के ऐसा कहने पर पर्वत नीम्न शिखर वाला हो गया। तदनन्तर महर्षिश्रेष्ठ ने विन्ध्यपर्वत को चढ़कर पार करने के पश्चात् उससे यह कहा— (३०)

मैं जब तक पवित्र तीर्थ से स्नान करके पुनः अपने महान् आश्रम में न लौटूँ तब तक तुम्हें नहीं बढ़ना चाहिये। अन्यथा अवज्ञा करने के कारण मैं तुम्हें घोर शाप दूँगा। (३१)

ऐसा कहकर भगवान् अगस्त्य सहसा दक्षिण दिशा की ओर अन्तरिक्ष में चले गये तथा 'उचित समय से फिर आऊँगा' ऐसा कहकर उसी दिशा में वे रुक गये। (३२)

वहाँ मुनि ने विशुद्धस्वर्णमय तोरणों वाले अतिरमणीय आश्रम की रचना कर एवं उसमें विदर्भपुत्री (लोपामुद्रा) को रख कर स्वयं अपने आश्रम को चले गए। (३३)

अमितकान्तिमान् मुनि विभिन्न ऋतुओं के पर्वकाल में नित्य आकाशस्थित अपने आश्रम में निवास करने तथा शेष समय दण्डक में रह कर तप करने लगे। (३४)

विन्ध्यपर्वत भी आकाश में महान् आश्रम को देखकर महर्षि के भय से नहीं बढ़ता। वे नहीं लौटे हैं ऐसा समझ कर वह शिखर नीचा किए हुए स्थित है। (३५)

हे महर्षे! इस प्रकार अगस्त्य ने महान् पर्वतराज को

स नीचशृङ्गो हि कृतो महर्षे।
तस्योर्ध्वशृङ्गे मुनिसंस्तुता सा
दुर्गा स्थिता दानवनाशनार्थम् ॥ ३६
देवाश्च सिद्धाश्च महोरगाश्च
विद्याधरा भूतगणाश्च सर्वे।
सर्वाप्सरोभिः प्रतिरामयन्तः
कात्यायनीं तस्थुरपेतशोकाः ॥ ३७

इति श्रीवामनपुराणे एकोनविंशोऽध्याय. ॥१९॥

२०

पुलस्त्य उवाच।
ततस्तु तां तत्र तदा वसन्तीं
कात्यायनीं शैलवरस्य शृङ्गे।
अपश्यतां दानवसत्तमौ द्वौ
चण्डश्च मुण्डश्च तपस्विनीं ताम् ॥ १
दृष्ट्वैव शैलादवतीर्य शीघ्र-
माजग्मतुः स्वभवनं सुरारी।
दृष्ट्वोचतुस्तौ महिषासुरस्य
दूताविदं चण्डमुण्डौ दितीशम् ॥ २
स्वस्थो भवान् किं त्वसुरेन्द्र साम्प्रत-
मागच्छ पश्याम च तत्र विन्ध्यम्।
तत्रास्ति देवी सुमहानुभावा
कन्या सुरूपा सुरसुन्दरीणाम् ॥ ३
जितास्तया तोयधराऽलकैर्हि
जितः शशाङ्को वदनेन तन्व्या।
नेत्रैस्त्रिभिस्त्रीणि हुताशनानि
जितानि कण्ठेन जितस्तु शङ्खः ॥ ४
स्तनौ सुवृत्तावथ मग्नचूचुकौ
स्थितौ विजित्येव गजस्य कुम्भौ।
त्वां सर्वजेतारमिति प्रतर्क्य

निम्नशृंग बना दिया। उसके ऊर्ध्वशृंग पर मुनिसंस्तुता दुर्गा दानवों के विनाशार्थ स्थित हुईं। (३६)

देवता, सिद्ध, महानाग, विद्याधर एवं समस्त भूतगण अप्सराओं के सहित कात्यायनी को प्रसन्न करते हुए शोक-रहित होकर उनके निकट रहने लगे। (३७)

श्रीवामनपुराण में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

२०

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर उस श्रेष्ठ पर्वत-शिखर पर निवास करने वाली उस तपस्विनी कात्यायनी को चण्ड और मुण्ड नामक दो श्रेष्ठ दानवों ने देखा। (१)

देखने के पश्चात् पर्वत से उतर कर दोनों देवशत्रु अपने घर गए। महिषासुर के चण्ड मुण्ड नामक उन दोनों दूतों ने दैत्यराज के निकट जाकर यह कहा— (२)

हे असुरेन्द्र ! आप इस समय स्वस्थ तो हैं ? आइये, हम-लोग विन्ध्यपर्वत पर चलकर देखें। वहाँ सुरसुन्दरियों में रूपवती एक श्रेष्ठ लक्षणों वाली कन्या देवी अवस्थित है। (३)

उस कृशाङ्गी सुन्दरी ने केशपाश के द्वारा मेघों को, मुख के द्वारा शशाङ्क को, तीन नेत्रों द्वारा तीन (गार्हपत्य, दक्षिण, आहवनीय) अग्नियों को और कंठ के द्वारा शंख को जीत लिया है। (४)

उसके मग्नचूचुक वाले सुवृत्ताकार स्तन इस प्रकार स्थित हैं मानों उन्होंने हाथी के दोनों गण्डस्थलों को जीत लिया हो। यह प्रतीत होता है मानों आपको सर्वविजयी

कुचौ स्मरेणैव कृतौ सुदुर्गौ ॥ ५

पीनाः सशस्त्राः परिघोपमाश्च
भुजास्तयाऽष्टादश भान्ति तस्याः ।
पराक्रमं वै भवतो विदित्वा
कामेन यन्त्रा इव ते कृतास्तु ॥ ६

मध्यं च तस्यास्त्रिवलीतरङ्गं
विभाति दैत्येन्द्र सुरोमराजि ।
भयातुरारोहणकातरस्य
कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥ ७

सा रोमराजी सुतरां हि तस्या
विराजते पीनकुचावलग्ना ।
आरोहणे त्वद्भयकातरस्य
स्वेदप्रवाहोऽसुर मन्मथस्य ॥ ८

नाभिर्गभीरा सुतरां विभाति
प्रदक्षिणाऽस्याः परिवर्तमाना ।
तस्यैव लावण्यगृहस्य मुद्रा
कन्दर्पराज्ञा स्वयमेव दत्ता ॥ ९

विभाति रम्यं जघनं मृगाक्ष्याः
समन्ततो मेखलयाऽवजुष्टम् ।
मन्याम तं कामनराधिपस्य
प्राकारगुप्तं नगरं सुदुर्गम् ॥ १०

वृत्तावरोमौ च मृदू कुमार्याः
शोभेत ऊरू समनुत्तमौ हि ।
आगमनार्थं मकरध्वजेन
जनस्य देशाविव सन्निविष्टौ ॥ ११

तज्जानुयुग्मं महिषासुरेन्द्र
अर्द्धोन्नतं भाति तथैव तस्याः ।
सृष्ट्वा विधाता हि निरूपणाय
श्रान्तस्तया हस्ततलं ददौ हि ॥ १२

जङ्घे सुवृत्तेऽपि च रोमहीने
शोभेत दैत्येश्वर ते तदीये ।
आक्रम्य लोकानिव निर्मितायाः
रूपार्जितस्यैव कृताधरौ हि ॥ १३

पादौ च तस्याः कमलोदराभौ
प्रयत्नतस्तौ हि कृतौ विधात्रा ।
आश्चापि ताभ्यां नखरत्नमाला

समझ कर कामदेव ने ही कुचरूपी दो सुन्दर दुर्गों की रचना की है। (५)

उसकी मोटी, परिघ सदृश सशस्त्र अट्ठारह भुजाएँ इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं मानों आपका पराक्रम जान कर कामदेव ने यन्त्र के सदृश उनका निर्माण किया है। (६)

हे दैत्येन्द्र! त्रिवली से तरङ्गित तथा सुन्दर रोमावलि वाला उसका मध्यभाग इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानों वह भयार्त तथा आरोहण के लिये अधीर कामदेव का सोपान हो। (७)

हे असुर! पीनकुचावलग्न उसकी वह रोमराजि इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानों आरोहण करने में आपके भय से कातर कामदेव का स्वेद प्रवाह हो। (८)

दक्षिण की ओर घूमी हुई उसकी गंभीर नाभि इस प्रकार प्रतीत हो रही है मानों कन्दर्पनरेश ने स्वयं ही उस लावण्यगृह के ऊपर मुद्रा लगाई हो। (९)

चारों ओर मेखला से वेष्टित उस मृगाक्षी का रमणीय जघन सुशोभित हो रहा है। उसे हम कामनरेश का चहारदीवारी से सुरक्षित दुर्गम नगर मानते हैं। (१०)

उस कुमारी के वृत्ताकार, रोमरहित, कोमल तथा उत्तम ऊरु इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानों मकरध्वज ने मनुष्यों के निवासार्थ दो देशों का सन्निवेश किया है। (११)

हे महिषासुरेन्द्र! उसके अर्द्धोन्नत जानुयुगल इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं मानो उनकी रचना करने के उपरान्त श्रान्त विधाता ने निरूपणार्थ अपना करतल न्यस्त किया हो। (१२)

हे दैत्येश्वर! उसकी सुवृत्त तथा रोमहीन वे दोनों जंघाएँ इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं मानों लोकाक्रमण कर निर्मित की गई नायिका के रूप के द्वारा नीचे की गई हैं। (१३)

विधाता ने प्रयत्नपूर्वक उसके कमलोदर के समान कान्तिवाले पादयुगल का निर्माण किया है। उन्होंने नख

नक्षत्रमाला गगने यथैव ॥ १४

एवंस्वरूपा दनुनाथ कन्या
महोग्रशस्त्राणि च धारयन्ती।
दृष्ट्वा यथेष्टं न च विद्म का सा
सुताऽथवा कस्यचिदेव बाला ॥ १५

तद्भूतले रत्नमनुत्तमं स्थितं
स्वर्गं परित्यज्य महाऽसुरेन्द्र।
गत्वाऽथ विन्ध्यं स्वयमेव पश्य
कुरुष्व यत् तेऽभिमतं क्षमं च ॥ १६

श्रुत्वैव ताभ्यां महिषासुरस्तु
देव्याः प्रवृत्तिं कमनीयरूपाम्।
चक्रे मतिं नात्र विचारमस्ति
इत्येवमुक्त्वा महिषोऽपि नास्ति ॥ १७

प्रागेव पुंसस्तु शुभाशुभानि
स्थाने विधात्रा प्रतिपादितानि।
यस्मिन् यथा यानि यतोऽथ विप्र
स नीयते वा व्रजति स्वयं वा ॥ १८

ततोऽनु मुण्डं नमरं सचण्डं
विडालनेत्रं सपिशङ्गबाष्कलम्।
उग्रायुधं चिक्षुररक्तबीजौ
समादिदेशाथ महासुरेन्द्रः ॥ १९

आहत्य भेरी रणकर्कशास्ते
स्वर्गं परित्यज्य महीधरं तु।
आगम्य मूले शिबिरं निवेश्य
तस्थुश्च सज्जा दनुनन्दनास्ते ॥ २०

ततस्तु दैत्यो महिषासुरेण
संप्रेषितो दानवयूथपालः।
मयस्य पुत्रो रिपुसैन्यमर्दी
स दुन्दुभिर्दुन्दुभिनिःस्वनस्तु ॥ २१

अभ्येत्य देवीं गगनस्थितोऽपि
स दुन्दुभिर्वाक्यमुवाच विप्र।
कुमारि दूतोऽस्मि महासुरस्य
रम्भात्मजस्याप्रतिमस्य युद्धे ॥ २२

कात्यायनी दुन्दुभिमभ्युवाच

रूपी रत्नों की माला को इस प्रकार प्रकाशित किया मानों आकाश में नक्षत्रों की माला हो। (१४)

हे दनुनाथ! महान् एवं उग्र शस्त्रों को धारण करने वाली वह कन्या ऐसे स्वरूपवाली है। उसे भली-भाँति देखकर भी हम यह न जान सके कि वह कौन है तथा किसकी पुत्री या स्त्री है। (१५)

हे महासुरेन्द्र! स्वर्ग का परित्याग कर वह श्रेष्ठ रत्न भूतल में स्थित है। आप स्वयं विन्ध्याचल पर जाकर उसे देखें तथा जो आपकी इच्छा एवं सामर्थ्य हो वह करें। (१६)

उन दोनों से देवी विषयक कमनीय वार्त्ता को सुनने के उपरान्त "इस विषय में कुछ विचारणीय नहीं है" ऐसा कहकर (जाने का) निश्चय किया। अब महिष भी नहीं रहा (अर्थात् उसका भी अन्त आ गया)। (१७)

मनुष्य के शुभाशुभ को ब्रह्मा ने पहले से ही तत्तत् स्थानों पर नियत कर दिया है जिस व्यक्ति को जहाँ पर या वहाँ से जिस प्रकार जो-जो (शुभाशुभ मिलने होते) हैं वह वहाँ या तो ले जाया जाता है या स्वयं चला जाता है। (१८)

तदनन्तर महासुरेन्द्र ने मुण्ड, नमर, चण्ड, विडाल-नेत्र, पिशङ्गवाष्कल, उग्रायुध, चिक्षुर और रक्तबीज को आदेश दिया। (१९)

रणकर्कश वे सभी दानव भेरियाँ बजाने के उपरांत स्वर्ग का परित्याग कर पर्वत के निकट आकर उसके मूल में शिविर का निवेश कर तैयार होकर स्थित हो गए। (२०)

तदुपरान्त महिषासुर ने दुन्दुभि-तुल्य शब्द करने वाले रिपुसैन्यमर्दी तथा दानवों के सेनापति मयपुत्र दुन्दुभि को (देवी के पास) भेजा। (२१)

हे विप्र! दुन्दुभि ने देवी के निकट जाकर तथा आकाश में स्थित होकर यह वचन कहा "हे कुमारी! युद्ध में अप्रतिम तथा रम्भ के पुत्र महासुर का मैं दूत हूँ।" (२२)

कात्यायनी ने दुन्दुभि से कहा—"हे दैत्येन्द्र! भय को

एह्येहि दैत्येन्द्र भयं विमुच्य ।
वाक्यं च यद्रम्भसुतो बभाषे
वदस्व तत्सत्यमपेतमोह: ॥ २३

तयोक्तवाक्ये दितिजः शिवाया-
स्त्यक्त्वाम्बरं भूमितले निषण्णः ।
सुखोपविष्टः परमासने च
रम्भात्मजेनोक्तवद्युवाच वाक्यम् ॥ २४

दुन्दुभिरुवाच ।

एवं समाज्ञापयते सुरारि-
स्त्वां देवि दैत्यो महिषासुरस्तु ।
यथामरा हीनबलाः पृथिव्यां
भ्रमन्ति युद्धे विजिता मया ते ॥ २५

स्वर्गं मही वायुपथाश्च वश्याः
पातालमन्ये च महेश्वराद्याः ।
इन्द्रोऽस्मि रुद्रोऽस्मि दिवाकरोऽस्मि
सर्वेषु लोकेष्वधिपोऽस्मि बाले ॥ २६

न सोऽस्ति नाके न महीतले वा
रसातले देवभटोऽसुरो वा ।
यो मां हि संग्राममुपेयिवांस्तु
भूतो न यक्षो न जिजीविषुर्यः ॥ २७

यान्येव रत्नानि महीतले वा
स्वर्गेऽपि पातालतलेऽथ मुग्धे ।
सर्वाणि मामद्य समागतानि
वीर्यार्जितानीह विशालनेत्रे ॥ २८

स्त्रीरत्नमग्र्यं भवती च कन्या
प्राप्तोऽस्मि शैलं तव कारणेन ।
तस्माद् भजस्वेह जगत्पतिं मां
पतिस्त्वयार्होऽस्मि विभुः प्रभुश्च ॥ २९

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्ता दितिजेन दुर्गा
कात्यायनी प्राह मयस्य पुत्रम् ।
सत्यं प्रभुर्दानवराट् पृथिव्यां
सत्यं च युद्धे विजितामराश्च ॥ ३०

किं त्वस्ति दैत्येश कुलेऽस्मदीये
धर्मो हि शुल्काख्य इति प्रसिद्धः ।
तं चेत् प्रदद्यान्महिषो ममाद्य
भजामि सत्येन पतिं ह्यारिम् ॥ ३१

श्रुत्वाऽथ वाक्यं मयजोऽब्रवीच्च
शुल्कं वदस्वाम्बुजपत्रनेत्रे ।
दद्यात्स्वमूर्धानमपि त्वदर्थे

छोड़कर यहाँ आओ और रम्भपुत्र ने जो वचन कहा है उसे मोहरहित होकर सत्य-सत्य कहो। (२३)

शिवा के उक्त प्रकार के कथनोपरान्त दैत्य आकाश छोड़कर पृथ्वी पर आया एवं श्रेष्ठ आसन पर सुखपूर्वक बैठकर रम्भात्मज द्वारा कथित वाक्य को कहा। (२४)

दुन्दुभि ने कहा—हे देवि! सुरारि महिषासुर ने तुम्हें यह समाज्ञापित किया है कि मेरे द्वारा युद्ध में विजित बलहीन अमर लोग पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे हैं। (२५)

हे बाले! स्वर्ग, पृथ्वी, वायुमार्ग, पाताल और शंकर आदि सभी मेरे वश्य हो गए हैं। मैं ही इन्द्र, रुद्र, दिवाकर एवं सभी लोकों का अधिपति हूँ। (२६)

स्वर्ग, पृथ्वी या रसातल में जीवित रहने की इच्छावाला ऐसा कोई देवयोद्धा, असुर, भूत या यक्ष नहीं है जो युद्ध में मेरा सामना करे। (२७)

हे मुग्धे! हे विशालनेत्रे! पृथ्वी, स्वर्ग या पाताल में जितने भी रत्न हैं वे सभी पराक्रमार्जित होकर आज मेरे पास आ गए हैं। (२८)

आप स्त्रीरत्नों में श्रेष्ठ कन्या हैं। मैं आपके लिये पर्वत पर आया हूँ। इसलिये मुझ जगत्पति को तुम स्वीकार करो। विभु एवं प्रभु मैं तुम्हारे योग्य पति हूँ। (२९)

पुलस्त्य ने कहा—दैत्य के ऐसा कहने पर दुर्गा कात्यायनी ने मय के पुत्र से कहा—"यह सत्य है कि दानवराट् पृथ्वी में प्रभु है एवं यह भी सत्य है कि (उसने) युद्ध में देवों को जीत लिया है। (३०)

किन्तु हे दैत्येश! हमारे कुल में शुल्क नामक एक धर्म प्रसिद्ध है। यदि महिष आज मुझे वह प्रदान करे तो सत्य के द्वारा मैं उस हयारि को पति स्वीकार कर लूँगी"। (३१)

किं नाम शुल्कं यदिहैव लभ्यम् ॥ ३२
पुलस्त्य उवाच ।
इत्येवमुक्ता दनुनायकेन
कात्यायनी सस्वनमुन्नदित्वा ।
विहस्य चैतद्वचनं बभाषे
हिताय सर्वस्य चराचरस्य ॥ ३३
श्रीदेव्युवाच ।
कुलेऽस्मदीये शृणु दैत्य शुल्कं
कृतं हि यत्पूर्वतरैः प्रसह्य ।
यो जेष्यतेऽस्मत्कुलजां रणाग्रे
तस्याः स भर्त्ताऽपि भविष्यतीति ॥ ३४
पुलस्त्य उवाच ।
तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या दुन्दुभिर्दानवेश्वरः ।
गत्वा निवेदयामास महिषाय यथातथम् ॥ ३५
स चाभ्यगान्महातेजाः सर्वदैत्यपुरःसरः ।
आगत्य विन्ध्यशिखरं योद्धुकामः सरस्वतीम् ॥ ३६
ततः सेनापतिर्दैत्यो चिक्षुरो नाम नारद ।
सेनाग्रगामिनं चक्रे नमरं नाम दानवम् ॥ ३७
स चापि तेनाधिकृतश्चतुरङ्गं समूर्जितम् ।
बलैकदेशमादाय दुर्गां दुद्राव वेगितः ॥ ३८
तमापतन्तं वीक्ष्याथ देवा ब्रह्मपुरोगमाः ।
ऊचुर्वाक्यं महादेवीं वर्म ह्यावन्ध चाम्बिके ॥ ३९
अथोवाच सुरान् दुर्गा नाहं बध्नामि देवताः ।
कवचं कोऽत्र संतिष्ठेत् ममाग्रे दानवाधमः ॥ ४०
यदा न देव्या कवचं कृतं शस्त्रनिबर्हणम् ।
तदा रक्षार्थमस्यास्तु विष्णुपञ्जरमुक्तवान् ॥ ४१
सा तेन रक्षिता ब्रह्मन् दुर्गा दानवसत्तमम् ।
अवध्यं दैवतैः सर्वैर्महिषं प्रत्यपीडयत् ॥ ४२
एवं पुरा देववरेण शंभुना
तद्वैष्णवं पञ्जरमायताक्ष्याः ।
प्रोक्तं तया चापि हि पादघातै-
र्निषूदितोऽसौ महिषासुरेन्द्रः ॥ ४३

इस वाक्य को सुन कर मयपुत्र ने कहा "हे कमल-पत्र के समान नेत्रवाली! शुल्क को बताओ। वह तुम्हारे हेतु अपना मस्तक भी दे सकता है। शुल्क की तो बात ही क्या जो यहीं पर प्राप्य है। (३२)

पुलस्त्य ने कहा—दनुनायक के ऐसा कहने पर कात्यायनी ने उच्च स्वर से गर्जनकर हँसते हुए समस्त चराचर के हितार्थ यह वचन कहा। (३३)

श्रीदेवी ने कहा—"हे दैत्य! पूर्वजों ने हठपूर्वक हमारे कुल में जो शुल्क निर्धारित किया है उसे सुनो। हमारे कुल में उत्पन्न कन्या को जो युद्ध में जीतेगा वही उसका पति होगा।" (३४)

पुलस्त्य ने कहा—देवी की वह बात सुन कर दानवेश्वर दुन्दुभि ने जाकर महिषासुर से उस बात को ज्यों का त्यों निवेदित कर दिया। (३५)

सभी दैत्यों के साथ उस महातेजस्वी दैत्य ने प्रयाण किया एवं सरस्वती से युद्ध करने की इच्छा से विन्ध्यशिखर पर पहुँचा। (३६)

हे नारद! तदुपरान्त सेनापति चिक्षुर नामक दैत्य ने नमर नामक दानव को सेना का अग्रगामी बनाया। (३७)

उससे अधिकृत होने के पश्चात् वह समस्त सेना के अतिऊर्जस्वित तथा चार अंगों से युक्त एक अंश को लेकर वेगपूर्वक दुर्गा की ओर दौड़ा। (३८)

उसको आते देखकर ब्रह्मादि देवताओं ने महादेवी से कहा कि हे अम्बिके! आप कवच बाँध लीजिये। (३९)

तदनन्तर देवी ने देवताओं से कहा—"हे देवगण! मैं कवच नहीं बाँधूँगी। यहाँ मेरे सम्मुख कौन दानवाधम ठहर सकता है?" (४०)

जब देवी ने शस्त्रनिवारक कवच न पहना तो उनकी रक्षा के लिये (पूर्वोक्त) विष्णुपंजर स्तोत्र कहा गया। (४१)

हे ब्रह्मन्! उससे रक्षित होकर दुर्गा ने समस्त देवताओं के द्वारा अवध्य दानवश्रेष्ठ महिषासुर को अत्यन्त पीड़ित किया। (४२)

इस प्रकार पहले देवश्रेष्ठ शम्भु ने बड़े नेत्रों वाली (कात्यायनी) से उस वैष्णव पञ्जर को कहा था और

एवंप्रभावो द्विज विष्णुपञ्जरः
सर्वासु रक्षास्वधिको हि गीतः ।
कस्तस्य कुर्याद् युधि दर्पहानिं
यस्य स्थितश्चेतसि चक्रपाणिः ॥ ४४

इति श्रीवामनपुराणे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

२१

नारद उवाच ।
कथं कात्यायनी देवी सानुगं महिषासुरम् ।
सवाहनं हतवती तथा विस्तरतो वद ॥ १
एतच्च संशयं ब्रह्मन् हृदि मे परिवर्तते ।
विद्यमानेषु शस्त्रेषु यत्पद्भ्यां तममर्दयत् ॥ २
पुलस्त्य उवाच ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
वृत्तां देवयुगस्यादौ पुण्यां पापभयापहाम् ॥ ३
एवं स नमरः क्रुद्धः समापतत वेगवान् ।
सगजाश्वरथो ब्रह्मन् दृष्टो देव्या यथेच्छया ॥ ४
ततो बाणगणैर्दैत्यः समानम्याथ कार्मुकम् ।
ववर्ष शैलं धारौघैर्यौरिवाम्बुदवृष्टिभिः ॥ ५
शरवर्षेण तेनाथ विलोक्याद्रिं समावृतम् ।
क्रुद्धा भगवती वेगादाचकर्ष धनुर्वरम् ॥ ६
तद्धनुर्दानवे सैन्ये दुर्गया नामितं बलात् ।
सुवर्णपृष्ठं विबभौ विद्युदम्बुधरेष्विव ॥ ७
बाणैः सुररिपूनन्यान् खड्गेनान्यान् शुभव्रत ।
गदया मुसलेनान्यांश्चर्मणाऽन्यानपातयत् ॥ ८
एकोऽप्यसौ बहून् देव्याः केसरी कालसंनिभः ।
विधुन्वन् केसरसटां निषूदयति दानवान् ॥ ९

उन्होंने भी पादप्रहार द्वारा उस महिषासुर को मार डाला। (४३)

हे द्विज ! इस प्रकार के प्रभाव से युक्त विष्णुपञ्जर समस्त रक्षाकारी (वस्तुओं) में श्रेष्ठ कहा गया है। जिसके चित्त में चक्रपाणि स्थित हों युद्ध में उसके दर्प की हानि कौन कर सकता है ? (४४)

श्रीवामनपुराण में बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

२१

नारद ने कहा—"कात्यायनी देवी ने अनुचरों एवं वाहनों के साथ महिषासुर को किस प्रकार मारा। इसका विस्तार से वर्णन करें। (१)

हे ब्रह्मन् ! मेरे मन में यह संशय है कि शस्त्रों के विद्यमान होते हुए भी देवी ने पैरों द्वारा उसे क्यों मर्दित किया ?" (२)

पुलस्त्य ने कहा—"देवयुग के आदि में घटित तथा पाप एवं भय को दूर करने वाली इस पवित्र पुरातनी कथा को सावधान होकर सुनो।" (३)

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार वह क्रुद्ध नमर गज, अश्व एवं रथ के साथ वेगपूर्वक आ चढ़ा। देवी ने उसे यथेच्छरूप से देखा। (४)

तदनन्तर धनुष को झुका कर दैत्य ने शैल के ऊपर इस प्रकार बाण वर्षा की जैसे आकाश (पर्वत पर) धारा प्रवाह जलवृष्टि करता है। (५)

तदनन्तर पर्वत को बाण-वर्षा से आवृत हुआ देख कर क्रुद्धा भगवती ने वेगपूर्वक श्रेष्ठ धनुष को खींचा। (६)

दानव-सेना के मध्य दुर्गा द्वारा बलपूर्वक झुकाया गया वह सुवर्णपृष्ठ वाला धनुष मेघों में विद्युत के तुल्य चमका। (७)

हे शुभव्रत ! उन्होंने कुछ राक्षसों को बाणों के द्वारा, कुछ को खड्ग के द्वारा, कुछ को गदा के द्वारा, कुछ को मुसल के द्वारा एवं कुछ को ढाल के द्वारा मार डाला। (८)

देवी के कालतुल्य सिंह ने अपनी केसरसटा को हिलाते

कुलिशाभिहता दैत्याः शक्त्या निर्भिन्नवक्षसः ।
लाङ्गलैर्दारितग्रीवा विनिकृत्ताः परश्वधैः ॥ १०
दण्डनिर्भिन्नशिरसश्चक्रविच्छिन्नबन्धनाः ।
चेलुः पेतुश्च मम्लुश्च तत्यजुश्चापरे रणम् ॥ ११
ते वध्यमाना रौद्रया दुर्गया दैत्यदानवाः ।
कालरात्रिं मन्यमाना दुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥ १२
सैन्याग्रं भग्नमालोक्य दुर्गामग्रे तथा स्थिताम् ।
दृष्ट्वाजगाम नमरो मत्तकुञ्जरसंस्थितः ॥ १३
समागम्य च वेगेन देव्याः शक्तिं मुमोच ह ।
त्रिशूलमपि सिंहाय प्राहिणोद् दानवो रणे ॥ १४
तावापतन्तौ देव्या तु हुंकारेणाथ भस्मसात् ।
कृतावथ गजेन्द्रेण गृहीतो मध्यतो हरिः ॥ १५
अथोत्पत्य च वेगेन तलेनाहत्य दानवम् ।
गतासुः कुञ्जरस्कन्धात् क्षिप्य देव्यै निवेदितः ॥ १६

गृहीत्वा दानवं मध्ये ब्रह्मन् कात्यायनी रुषा ।
सव्येन पाणिना भ्राम्य वादयत् पटहं यथा ॥ १७
ततोऽट्टहासं मुमुचे तादृशे वाद्यतां गते ।
हास्यात् समुद्भवंस्तस्या भूता नानाविधाऽद्भुताः ॥ १८
केचिद् व्याघ्रमुखा रौद्रा वृकाकारास्तथा परे ।
हयास्या महिषास्याश्च वराहवदनाः परे ॥ १९
आखुकुक्कुटवक्त्राश्च गोऽजाविकमुखास्तथा ।
नानावक्त्राक्षिचरणा नानायुधधरास्तथा ॥ २०
गायन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये रमन्त्यन्ये तु संघशः ।
वादयन्त्यपरे तत्र स्तुवन्त्यन्ये तथाम्बिकाम् ॥ २१
सा तैर्भूतगणैर्देवी सार्द्धं तद्दानवं बलम् ।
शातयामास चाक्रम्य यथा सस्यं महाशनिः ॥ २२
सेनाग्रे निहते तस्मिन् तथा सेनाग्रगामिनि ।
चिक्षुरः सैन्यपालस्तु योधयामास देवता ॥ २३

हुए अकेले अनेक दानवों का वध किया। (९)

कुलिश से आहत, शक्ति से विदीर्ण वक्षस्थल वाले, हल से फाड़ी गयी गर्दनवाले, परश्वध से काटे गये, दण्ड से फोड़े गये शिरवाले तथा चक्र से विच्छिन्न बन्धनों वाले दैत्य विचलित हो गये, गिर गये, मूर्छित हो गये और कोई-कोई युद्ध छोड़कर भाग गये। (१०-११)

भयङ्कर दुर्गा द्वारा मारे जा रहे भय पीड़ित दैत्य एवं दानव उन्हें कालरात्रि मानकर भाग खड़े हुए। (१२)

सेना के अग्र भाग को भग्न तथा दुर्गा को सम्मुख स्थित देख कर मत्त हाथी पर आरूढ नमर आगे आया। (१३)

युद्ध में आकर दानव ने देवी के ऊपर वेगपूर्वक शक्ति से प्रहार किया एवं सिंह के ऊपर त्रिशूल चलाया। (१४)

देवी ने आ रहे उन दोनों अस्त्रों को हुङ्कार द्वारा भस्मसात् कर दिया। तदनन्तर गजेन्द्र ने सिंह के मध्य भाग को पकड़ लिया। (१५)

तदनन्तर (सिंह ने) वेगपूर्वक उछल कर दानव को थप्पड़ से मारने के उपरान्त उस निष्प्राण (दानव) को कुञ्जर के स्कन्ध से नीचे गिरा कर देवी को निवेदित किया। (१६)

हे ब्रह्मन्! देवी कात्यायनी क्रोध से उस दैत्य को मध्य में पकड़ कर तथा बायें हाथ से घुमा कर पटह के सदृश बजाने लगीं। (१७)

तदनन्तर उसके उस प्रकार वाद्यता को प्राप्त होने पर देवी ने अट्टहास किया। उनकी हँसी से अनेक प्रकार के अद्‌भुत भूत उत्पन्न हुए। (१८)

कोई कोई भयङ्कर (भूत) व्याघ्र के समान मुखवाले थे, किसी की आकृति वृक के सदृश थी, किसी का मुख घोड़े के तुल्य, किसी का महिष सदृश एवं किसी का वराह जैसा था। (१९)

किन्हीं का मुख मूषक, कुक्कुट, गाय, बकरा अथवा भेड़ के सदृश था। वे सभी नाना प्रकार के मुख, आँख एवं चरणों वाले तथा नाना प्रकार के आयुधों को धारण किये हुये थे। (२०)

उनमें कुछ समूह बनाकर गाने लगे, कुछ हँसने लगे, कुछ रमण करने लगे, कुछ वादन करने लगे तथा कुछ देवी की स्तुति करने लगे। (२१)

देवी ने उन भूतगणों के साथ उस दानव सेना पर आक्रमण कर उसे इस प्रकार नष्ट कर दिया जैसे महान् वज्र सस्य (खेती) का नाश करता है। (२२)

सेना के उस अग्र भाग तथा सेनाग्रगामी (सेनापति) के मारे जाने पर सैन्यपाल चिक्षुर ने देवताओं से युद्ध किया। (२३)

कार्मुकं दृढमाकर्णमाकृष्य रथिनां वरः ।
ववर्ष शरजालानि यथा मेघो वसुन्धराम् ॥ २४
तान् दुर्गा स्वशरैश्छित्त्वा शरसंघान् सुपर्वभिः ।
सौवर्णपुङ्खानपरान्शरान् जग्राह षोडश ॥ २५
ततश्चतुर्भिश्चतुरस्तुरङ्गानपि भामिनी ।
हत्वा सारथिमेकेन ध्वजमेकेन चिच्छिदे ॥ २६
ततस्तु सशरं चापं चिच्छेदैकेषुणाऽम्बिका ।
छिन्ने धनुषि खड्गं च चर्म चादत्तवान् बली ॥ २७
तं खड्गं चर्मणा सार्धं दैत्यस्याधुन्वतो बलात् ।
शरैश्चतुर्भिश्चिच्छेद ततः शूलं समाददे ॥ २८
समुद्भ्राम्य महच्छूलं संप्राद्रवदथाम्बिकाम् ।
क्रोष्टुको मुदितोऽरण्ये मृगराजवधूं यथा ॥ २९
तस्याभिपततः पादौ करौ शीर्षं च पञ्चभिः ।
शरैश्चिच्छेद संक्रुद्धा न्यपतन्निहतोऽसुरः ॥ ३०
तस्मिन् सेनापतौ क्षुण्णे तदोग्रास्यो महासुरः ।
समाद्रवत वेगेन करालास्यश्च दानवः ॥ ३१
बाष्कलश्चोद्धतश्चैव उदग्राख्योग्रकार्मुकः ।
दुर्द्धरो दुर्मुखश्चैव बिडालनयनोऽपरः ॥ ३२
एतेऽन्ये च महात्मानो दानवा बलिनां वराः ।
कात्यायनीमाद्रवन्त नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ ३३
तान् दृष्ट्वा लीलया दुर्गा वीणां जग्राह पाणिना ।
वादयामास हसती तथा डमरुकं वरम् ॥ ३४
यथा यथा वादयते देवी वाद्यानि तानि तु ।
तथा तथा भूतगणा नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥ ३५
ततोऽसुराः शस्त्रधराः समभ्येत्य सरस्वतीम् ।
अभ्यघ्नंस्तांश्च जग्राह केशेषु परमेश्वरी ॥ ३६

प्रगृह्य केशेषु महासुरांस्तान्
उत्पत्य सिंहात्तु नगस्य सानुम् ।
ननर्त वीणां परिवादयन्ती
पपौ च पानं जगतो जनित्री ॥ ३७
ततस्तु देव्या बलिनो महासुरा
दोर्दण्डनिर्धूतविशीर्णदर्पाः ।

रथारोहियों में श्रेष्ठ उस दैत्य ने दृढ धनुष को कानों तक खींच कर इस प्रकार बाणों की वर्षा की जैसे मेघ वसुन्धरा पर जलवर्षा करता है । (२४)

दुर्गा ने सुन्दर पर्वों वाले अपने बाणों से उन बाण समूहों को काट कर सुवर्ण पुखवाले दूसरे सोलह बाणों को लिया । (२५)

तदनन्तर क्रुद्ध दुर्गा ने चार बाणों से (उसके) चार घोड़ों को, एक से सारथी को एवं एक से ध्वज को काट डाला । (२६)

तदुपरान्त अम्बिका ने एक बाण से उसने बाणसहित धनुष को काट डाला । धनुष कट जाने पर बलवान् चिक्षुर ने खड्ग और ढाल ग्रहण किया । (२७)

देवी ने दैत्य के उस ढाल युक्त तल्वार को जिसे वह बलपूर्वक घुमा रहा था चार बाणों से काट दिया । तदुपरान्त उसने शूल धारण किया । (२८)

महान् शूल को घुमा कर वह अम्बिका की ओर इस प्रकार दौड़ा जैसे वन में शृगाल प्रसन्नमन होकर सिंहिनी की ओर दौड़ता है । (२९)

अत्यन्त क्रुद्ध देवी ने पाँच बाणों से आक्रमणकारी उस (असुर) के दोनों हाथों, दोनों पैरों एवं मस्तक को काट दिया जिससे मरकर वह असुर गिर पड़ा । (३०)

उस सेनापति के मरने पर उग्रास्य नामक महान् असुर तथा करालास्य नामक दानव वेगपूर्वक दौड़े । (३१)

बाष्कल, उद्धत, उदग्राख्य, उग्रकार्मुक, दुर्धर, दुर्मुख, तथा विडालनयन–ये तथा अन्य अनेक शस्त्रधारी, अत्यन्त बली एवं श्रेष्ठ दानवों ने कात्यायनी पर आक्रमण किया । (३२-३३)

उन्हें देख कर देवी दुर्गा ने लीलापूर्वक हाथों में वीणा एवं श्रेष्ठ डमरू लेकर हँसते हुए बजाना प्रारम्भ किया । (३४)

देवी ज्यों ज्यों उन बाजों को बजाती थी त्यों त्यों भूतगण नाचते और हँसते थे । (३५)

तदनन्तर शस्त्रधारी असुर सरस्वती के निकट जाकर प्रहार करने लगे । परमेश्वरी ने उनके केशों को पकड़ लिया । (३६)

उन महासुरों का केश पकड़ कर तथा सिंह से उछल कर पर्वत शृंग पर आयी हुयी जगज्जननी (कात्यायनी) वीणा वादन करते हुए पान करने लगीं । (३७)

तदनन्तर देवी के बाहुदण्ड से मारे गये विशीर्णदर्पवाले

विस्रस्तवस्त्रा व्यसवश्च जाताः
　　ततस्तु तान् वीक्ष्य महासुरेन्द्रान् ॥ ३८
देव्या महौजा महिषासुरस्तु
　　व्यद्रावयद् भूतगणान् खुराग्रैः।
तुण्डेन पुच्छेन तथोरसाऽन्यान्
　　निःश्वासवातेन च भूतसंघान् ॥ ३९
नादेन चैवाशनिसन्निभेन
　　विषाणकोट्या त्वपरान् प्रमथ्य।
दुद्राव सिंहं युधि हन्तुकामः
　　ततोऽम्बिका क्रोधवशं जगाम ॥ ४०
ततः स कोपादथ तीक्ष्णशृङ्गः
　　क्षिप्रं गिरीन् भूमिमशीर्णयच्च।
संक्षोभयंस्तोयनिधीन् घनांश्च
　　विध्वंसयन् प्राद्रवताथ दुर्गाम् ॥ ४१
सा चाथ पाशेन बबन्ध दुष्टं
　　स चाप्यभूत् क्लिन्नकटः करीन्द्रः।
करं प्रचिच्छेद च हस्तिनोऽग्रं
　　स चापि भूयो महिषोऽभिजातः। ४२

ततोऽस्य शूलं व्यसृजन्मृडानी
　　स शीर्णमूलो न्यपतत् पृथिव्याम्।
शक्तिं प्रचिक्षेप हुताशदत्तां
　　सा कुण्ठिताग्रा न्यपतन्महर्षे ॥ ४३
चक्रं हरेर्दानवचक्रहन्तुः
　　क्षिप्तं त्वचक्रत्वमुपागतं हि।
गदां समाविध्य धनेश्वरस्य
　　क्षिप्ता तु भग्ना न्यपतत् पृथिव्याम् ॥ ४४
जलेशपाशोऽपि महासुरेण
　　विषाणतुण्डाग्रखुरप्रणुन्नः।
निरस्य तत्कोपितया च मुक्तो
　　दण्डस्तु याम्यो बहुखण्डतां गतः ॥ ४५
वज्रं सुरेन्द्रस्य च विग्रहेऽस्य
　　मुक्तं सुसूक्ष्मत्वमुपाजगाम।
संत्यज्य सिंहं महिषासुरस्य
　　दुर्गाऽधिरूढा सहसैव पृष्ठम् ॥ ४६
पृष्ठस्थितायां महिषासुरोऽपि
　　पोप्लूयते वीर्यमदान्मृडान्याम्।

बलवान् महासुर अस्तव्यस्त वस्त्रवाले एवं विगतप्राण हो गए। तदुपरान्त उन श्रेष्ठ महासुरों को देख कर महाबलवान् महिषासुर ने अपने खुराग्र, तुण्ड, पुच्छ, वक्षःस्थल तथा निःश्वासवायु से देवी के भूतगणों को भगा दिया। (३८-३९)

वज्रतुल्य शब्द एवं सींगों की नोक से अन्यों को प्रमथित करके युद्ध में सिंह को मारने की इच्छा से वह दौड़ा। इससे अम्बिका क्रुद्ध हो गई। (४०)

तदनन्तर तीक्ष्ण शृङ्गयुक्त वह (महिष) कोपवश शीघ्रतापूर्वक पर्वतों एवं भूमि को विदीर्ण करने लगा तथा समुद्र को सक्षुब्ध करते हुए एवं मेघों को विध्वस्त करते हुए दुर्गा की ओर दौड़ा। (४१)

तदनन्तर उन्होंने उस दुष्ट को पाश से बाँध लिया। और वह मदसिक्तगण्डस्थल वाला गजराज बन गया। देवी ने हाथी का शुण्डाग्र काट दिया। तत्पश्चात् वह पुनः महिष हो गया। (४२)

हे महर्षे! तदनन्तर मृडानी ने उसके ऊपर शूल फेंका, वह (शूल) टूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने अग्नि द्वारा प्रदत्त शक्ति फेंकी, किन्तु वह भी कुण्ठिताग्र होकर गिर पड़ी। (४३)

दानव समूह को मारने वाले हरि का चक्र भी फेंके जाने पर अचक्र बन गया (निष्क्रिय हो गया)। धनेश्वर की घुमा कर फेंकी गयी गदा भग्न होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। (४४)

महासुर ने जलेश के पाश को विषाण, तुण्डाग्र एवं खुर के प्रहार से निरस्त कर दिया। कुपित (देवी द्वारा) छोड़ा गया यम का दण्ड भी कई खण्डों में टूट गया। (४५)

उसके शरीर पर चलाया गया इन्द्र का वज्र भी अति सूक्ष्म (टुकड़े टुकड़े) हो गया। तदनन्तर दुर्गा सहसा सिंह को छोड़कर महिषासुर के पृष्ठ पर आरूढ हो गईं। (४६)

मृडानी के पृष्ठस्थित होने पर महिषासुर वीर्य के मद से

सा चापि पद्भ्यां मृदुकोमलाभ्यां
मर्मर्द तं छिन्नमिवाजिनं हि ॥ ४७
स मृद्यमानो धरणीधराभो
देव्या बली हीनबलो बभूव ।
ततोऽस्य शूलेन निभेद कण्ठं
तस्मात् पुमान् खड्गधरो विनिर्गतः ॥ ४८
निष्क्रान्तमात्रं हृदये पदा तम्
आहत्य संगृह्य कचेषु कोपात् ।
शिरः प्रचिच्छेद वरासिनाऽस्य
हाहाकृतं दैत्यबलं तदाऽभूत् ॥ ४९
सचण्डमुण्डाः समयाः सताराः
सहासिलोम्ना भयकातराक्षाः ।
संताड्यमानाः प्रमथैर्भवान्याः
पातलमेवाविविशुर्भयार्ताः ॥ ५०
देव्या जयं देवगणा विलोक्य
स्तुवन्ति देवीं स्तुतिभिर्महर्षे ।
नारायणीं सर्वजगत्प्रतिष्ठां
कात्यायनीं घोरमुखीं सुरूपाम् ॥ ५१
संस्तूयमाना सुरसिद्धसंघै-
र्निषण्णभूता हरपादमूले ।
भूयो भविष्याम्यमरार्थमेव-
मुक्त्वा सुरांस्तान् प्रविवेश दुर्गा ॥ ५२

इति श्रीवामनपुराणे एकविंशोऽध्याय ॥२१॥

२२

नारद उवाच ।
पुलस्त्य कथ्यतां तावद् देव्या भूयः महुद्भवः ।
महत्कौतूहलं मेऽद्य विस्तराद् ब्रह्मवित्तम ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।
श्रूयतां कथयिष्यामि भूयोऽस्याः संभवं मुने ।
शुम्भासुरवधार्थाय लोकानां हितकाम्यया ॥ २

उछलने लगा। वे भी मृदु तथा कोमल चरणों से भीगे मृग-चर्म के सदृश उसका मर्दन करने लगीं। (४७)

देवी द्वारा मर्दन किया जाता हुआ पर्वताकार बलवान् वह (महिषासुर) बलहीन हो गया। तदनन्तर (देवी ने) शूल से उसका कण्ठ काट दिया। उससे (कटे कंठ से) एक खड्गधारी पुरुष निकला। (४८)

उसके निकलते ही (देवी ने) उसके हृदय पर चरण से आघात कर और क्रोध से उसके बालों को पकड़कर श्रेष्ठ तलवार से उसका शिर काट डाला। उस समय दैत्यों की सेना हाहाकार करने लगी। (४९)

चण्ड, मुण्ड, मय, तार और असिलोमा आदि भय से कातराक्ष होकर तथा भवानी के प्रमथों द्वारा प्रताडित होने पर भयार्त होकर पाताल में प्रविष्ट हो गये। (५०)

हे महर्षे! देवी की जय को देखकर देवगण स्तुतियों के द्वारा सर्वजगत् की आधारभूता, घोरमुखी एवं सुरूपा, नारायणी, कात्यायनी देवी की स्तुति करने लगे। (५१)

शिर के पादमूल में बैठी हुई देवों और सिद्धों द्वारा संस्तूयमान दुर्गा ने कहा कि मैं अमरों के लिये पुन आविर्भूत होऊँगी। ऐसा कहने के उपरान्त वह दुर्गा अन्तर्धान हो गईं। (५२)

श्रीवामनपुराण में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१॥

२२

नारद ने कहा—हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ पुलस्त्य! सम्प्रति देवी की उत्पत्ति मुझसे पुन: विस्तार पूर्वक कहिये। मुझे महान् कुतूहल है। (१)

पुलस्त्य ने कहा "हे मुने! सुनिये, मैं लोकहित की कामना से शुम्भासुर के वधहेतु हुई इनकी पुन उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ।" (२)

या सा हिमवतः पुत्री भवेनोढा तपोधना ।
उमा नाम्ना च तस्याः सा कोशाज्जाता तु कौशिकी ॥ ३
संभूय विन्ध्यं गत्वा च भूयो भूतगणैर्वृता ।
शुम्भं चैव निशुम्भं च वधिष्यति वरायुधैः ॥ ४
नारद उवाच ।
ब्रह्मंस्त्वया समाख्याता मृता दक्षात्मजा सती ।
सा जाता हिमवत्पुत्रीत्येवं मे वक्तुमर्हसि ॥ ५
यथा च पार्वतीकोशात् समुद्भूता हि कौशिकी ।
यथा हतवती शुम्भं निशुम्भं च महासुरम् ॥ ६
कस्य चेमौ सुतौ वीरौ ख्यातौ शुम्भनिशुम्भकौ ।
एतद् विस्तरतः सर्वं यथावद् वक्तुमर्हसि ॥ ७
पुलस्त्य उवाच ।
एतत्ते कथयिष्यामि पार्वत्याः संभवं मुने ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा स्कन्दोत्पत्तिं च शाश्वतीम् ॥ ८
रुद्रः सत्यां प्रणष्टायां ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
निराश्रयत्वमापन्नस्तपस्तप्तुं व्यवस्थितः ॥ ९
स चासीद् देवसेनानीर्दैत्यदर्पविनाशनः ।
शिवरूपत्वमास्थाय सैनापत्यं समुत्सृजत् ॥ १०
ततो निराकृता देवाः सेनानाथेन शंभुना ।
दानवेन्द्रेण विक्रम्य महिषेण पराजिताः ॥ ११
ततो जग्मुः सुरेशानं द्रष्टुं चक्रगदाधरम् ।
श्वेतद्वीपे महाहंसं प्रपन्नाः शरणं हरिम् ॥ १२
तानागतान् सुरान् दृष्ट्वा ततः शक्रपुरोगमान् ।
विहस्य मेघगम्भीरं प्रोवाच पुरुषोत्तमः ॥ १३
किं जितास्त्वसुरेन्द्रेण महिषेण दुरात्मना ।
येन सर्वे समेत्यैवं मम पार्श्वमुपागताः ॥ १४
तद् युष्माकं हितार्थाय यद् वदामि सुरोत्तमाः ।
तत्कुरुध्वं जयो येन समाश्रित्य भवेद्धि वः ॥ १५
य एते पितरो दिव्यास्त्वग्निष्वात्तेति विश्रुताः ।
अमीषां मानसी कन्या मेना नाम्नाऽस्ति देवताः ॥ १६

शङ्कर ने हिमवान् की जिस तपोधना उमा नामक पुत्री से विवाह किया था उन्हीं के कोश से वह कौशिकी उत्पन्न हुई। (३)

उत्पन्न होने के उपरान्त भूतगणों के साथ पुन विन्ध्यपर्वत पर जाकर श्रेष्ठ आयुधों से वे शुम्भ और निशुम्भ का वध करेंगी। (४)

नारद ने कहा "हे ब्रह्मन्! आपने यह कहा था कि दक्षपुत्री सती मर गईं वे पुन (कैसे) हिमवान् की पुत्री हुईं यह मुझसे कहिये। (५)

पार्वती के कोश से जिस प्रकार कौशिकी उत्पन्न हुईं, तथा उन्होंने शुम्भ और निशुम्भ नामक महान् असुरों का जिस प्रकार वध किया तथा ये शुम्भ और निशुम्भ नामक प्रसिद्ध वीर किसके पुत्र थे—इन सभी को विस्तार पूर्वक ठीक ठीक बतलाइये।" (६–७)

पुलस्त्य ने कहा—हे मुने मैं आपसे पार्वती की इस उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ। आप सावधान होकर स्कन्द की शाश्वत उत्पत्ति को सुने। (८)

सती के नष्ट हो जाने पर ब्रह्मचारिव्रत मे स्थित तथा आश्रयहीन रुद्र तप करने लगे। (९)

दैत्यों के दर्प का नाश करने वाले वे देवताओं के सेनापति थे। अब उन्होंने शिव (मंगल) स्वरूप धारण कर सेनापतित्व का परित्याग कर दिया। (१०)

तदुपरान्त सेनापति शम्भु से निराकृत (परित्यक्त) देवों को दानवेन्द्र महिष ने बलपूर्वक आक्रमण कर पराजित कर दिया। (११)

तदनन्तर (वे देवगण) सुरस्वामी महाहंस (परमात्मा) चक्रगदाधर के दर्शनार्थ श्वेतद्वीप मे गये एवं हरि के शरणापन्न हुये। (१२)

तदनन्तर उन इन्द्रादि देवों को आया हुआ देखकर पुरुषोत्तम ने हँसकर मेघ के समान गम्भीर स्वर में कहा— (१३)

क्या आप सभी लोग असुराधिप दुरात्मा महिष से पराजित हो गये हैं जिससे इस प्रकार समवेत होकर मेरे पास आये है? (१४)

हे सुरोत्तमो! आप लोगों के हितार्थ मैं जो कहता हूँ उसे करें जिसका आश्रय करने से आपकी विजय होगी। (१५)

हे देवगण! जो ये दिव्य पितर 'अग्निष्वात्त' इस नाम से प्रसिद्ध हैं उनकी मेना नामक एक मानसी कन्या है। (१६)

तामाराध्य महातिथ्यां श्रद्धया परयाऽमराः ।
प्रार्थयध्वं सतीं मेनां प्रालेयाद्रेरिहार्थतः ॥ १७
तस्यां सा रूपसंयुक्ता भविष्यति तपस्विनी ।
दक्षकोपाद् यया मुक्तं मलवज्जीवितं प्रियम् ॥ १८
सा शंकरात् स्वतेजोंऽशं जनयिष्यति यं सुतम् ।
स हनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं सपदानुगम् ॥ १९
तस्माद् गच्छत पुण्यं तत् कुरुक्षेत्रं महाफलम् ।
तत्र पृथूदके तीर्थे पूज्यन्तां पितरोऽव्ययाः ॥ २०
महातिथ्यां महापुण्ये यदि शत्रुपराभवम् ।
जिहासतात्मन. सर्वे इत्थं वै क्रियतामिति ॥ २१

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा वासुदेवेन देवाः शक्रपुरोगमाः ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पप्रच्छुः परमेश्वरम् ॥ २२

देवा ऊचुः ।

कोऽयं कुरुक्षेत्र इति यत्र पुण्यं पृथूदकम् ।
उद्भवं तस्य तीर्थस्य भगवान् प्रब्रवीतु नः ॥ २३
केय प्रोक्ता महापुण्या तिथीनामुत्तमा तिथिः ।
यस्यां हि पितरो दिव्याः पूज्याऽस्माभिः प्रयत्नतः ॥ २४
ततः सुराणां वचनान्मुरारिः कैटभार्दनः ।
कुरुक्षेत्रोद्भवं पुण्यं प्रोक्तवांस्तां तिथीमपि ॥ २५

श्रीभगवानुवाच ।

सोमवंशोद्भवो राजा ऋक्षो नाम महाबलः ।
कृतस्यादौ समभवदृक्षात् संवरणोऽभवत् ॥ २६
स च पित्रा निजे राज्ये बाल एवाभिषेचितः ।
बाल्येऽपि धर्मनिरतो मद्भक्तश्च सदाऽभवत् ॥ २७
पुरोहितस्तु तस्यासीद् वसिष्ठो वरुणात्मजः ।
स चास्याध्यापयामास साङ्गान् वेदानुदारधीः ॥ २८
ततो जगाम चारण्यं त्वनध्याये नृपात्मजः ।
सर्वकर्मसु निक्षिप्य वसिष्ठं तपसां निधिम् ॥ २९
ततो मृगयाव्याक्षेपाद् एकाकी विजनं वनम् ।
वैभ्राज स जगामाथ अथोन्मादनमभ्ययात् ॥ ३०
ततस्तु कौतुकाविष्ट. सर्वर्तुकुसुमे वने ।

हे देववृन्द ! अत्यन्त श्रद्धा से महातिथि (अमावास्या) मे सती मेना की आराधना कर उससे हिमालय (की पत्नी बनने) के निमित्त प्रार्थना कीजिये। (१७)

उन्हीं (मेना) से रूपवती वह तपस्विनी उत्पन्न होगी जिसने दक्षकोप से अपने प्रिय जीवन को मल के सदृश त्याग दिया था। (१८)

वह शकर से स्वतेज के अशस्वरूप जिस पुत्र को उत्पन्न करेगी वह दैत्येन्द्र महिष को उसके अनुचरों के साथ मारेगा। (१९)

अत आप लोग महाफलप्रद, पवित्र कुरुक्षेत्र में जाइये और वहाँ पृथूदक तीर्थ में अव्यय पितरों का पूजन करिये। (२०)

यदि आप सभी लोग अपने शत्रु का पराभव चाहते हैं तो महातिथि के दिन परम पवित्र तीर्थ में इस प्रकार का कार्य करें। (२१)

पुलस्त्य ने कहा—वासुदेव के ऐसा कहने पर शक्रादि देवों ने हाथ जोड़कर परमेश्वर से पूछा। (२२)

देवताओं ने कहा—"यह कुरुक्षेत्र कौन है जहाँ पवित्र पृथूदक तीर्थ है ? आप हमलोगों को उस तीर्थ की उत्पत्ति बतावें। (२३)

"अतिपवित्र कौन तिथि तिथियों में उत्तम कही गई है जिसमें हम प्रयत्न पूर्वक दिव्य पितरों की पूजा करें।" (२४)

तदुपरान्त कैटभार्दन मुरारि ने देवताओं के कहने पर उनसे कुरुक्षेत्र की पवित्र उत्पत्ति और उस तिथि का वर्णन किया। (२५)

श्रीभगवान् ने कहा—कृत युग के आदि में ऋक्ष नामक एक महाबलवान् राजा सोमवश में उत्पन्न हुआ। ऋक्ष से सवरण की उत्पत्ति हुई। (२६)

पिता ने उसे बाल्यकाल में ही राज्याभिषिक्त कर दिया। वह बाल्यावस्था में भी सदा धर्म निरत एवं मेरा भक्त था। (२७)

उदारचेता वरुणपुत्र वसिष्ठ उसके पुरोहित थे। उन्होंने उसे अङ्गों सहित वेदों को पढ़ाया। (२८)

तदनन्तर अनध्याय होने पर तपोनिधि वसिष्ठ को सभी कार्य सौंपकर वह राजपुत्र वन में गया। (२९)

तदनन्तर मृगयासक्त होकर वह एकाकी वैभ्राज नामक निर्जन वन में पहुँचा और फिर उन्मादग्रस्त हो गया। (३०)

अवितृप्तः सुगन्धस्य समन्ताद् व्यचरद् वनम् ॥ ३१
स वनान्तं च ददृशे फुल्लकोकनदावृतम् ।
कह्लारपद्मकुमुदैः कमलेन्दीवरैरपि ॥ ३२
तत्र क्रीडन्ति सततमप्सरोऽमरकन्यकाः ।
तासां मध्ये ददर्शाथ कन्यां संवरणोऽधिकाम् ॥ ३३
दर्शनादेव स नृपः काममार्गणपीडितः ।
जातः सा च तमीक्ष्यैव कामबाणातुराऽभवत् ॥ ३४
उभौ तौ पीडितौ मोहं जग्मतुः काममार्गणैः ।
राजा चलासनो भूम्यां निपपात तुरङ्गमात् ॥ ३५
तमभ्येत्य महात्मानो गन्धर्वाः कामरूपिणः ।
सिषिचुर्वारिणाऽभ्येत्य लब्धसंज्ञोऽभवत् क्षणात् ॥ ३६
सा चाप्सरोभिरुत्पात्य नीता पितृकुलं निजम् ।
ताभिराश्वासिता चापि मधुरैर्वचनाम्बुभिः ॥ ३७
स चाप्यारुह्य तुरगं प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम् ।
गतस्तु मेरुशिखरं कामचारी यथाऽमरः ॥ ३८
यदाप्रभृति सा दृष्टा आर्क्षिणा तपती गिरौ ।
तदाप्रभृति नाश्नाति दिवा स्वपिति नो निशि ॥ ३९
ततः सर्वविदव्यग्रो विदित्वा वरुणात्मजः ।
तपतीतापितं वीरं पार्थिवं तपसां निधिः ॥ ४०
समुत्पत्य महायोगी गगनं रविमण्डलम् ।
विवेश देवं तिग्मांशुं ददर्श स्यन्दने स्थितम् ॥ ४१
तं दृष्ट्वा भास्करं देवं प्रणमद् द्विजसत्तमः ।
प्रतिप्रणमितश्चासौ भास्करेणाविशद् रथे ॥ ४२
ज्वलज्जटाकलापोऽसौ दिवाकरसमीपगः ।
शोभते वारुणिः श्रीमान् द्वितीय इव भास्करः ॥ ४३
ततः सपूजितोऽर्घाद्यैर्भास्करेण तपोधनः ।
पृष्टश्चागमने हेतुं प्रत्युवाच दिवाकरम् ॥ ४४
समायातोऽस्मि देवेश याचितुं त्वां महाद्युते ।

तदुपरान्त सर्वऋतुओं के कुसुमों वाले वन में कौतुकाविष्ट होकर सुगन्धों से अतृप्त होने के कारण चारों ओर विचरण करने लगा। (३१)

उसने फुल्ल कोकनद, कह्लार, पद्म, कुमुद, कमल एव इन्दीवरों से आवृत वन को देखा। (३२)

वहाँ अप्सरायें एव देव कन्यायें सतत क्रीडा कर रहीं थीं। संवरण ने उनके मध्य एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या को देखा। (३३)

देखते ही वह राजा कामबाणों से पीडित हो गया और वह कन्या भी उसे देखते ही कामबाण से आतुर हो गई। (३४)

काम के बाणों से पीडित वे दोनों मूर्च्छित हो गये। राजा का आसन विचलित हो गया और वह घोड़े से पृथ्वी पर गिर पड़ा। (३५)

इच्छानुसार रूप धारण करने वाले महात्मा गन्धर्व लोग उसके पास जाकर जल से सिञ्चन करने लगे और वह क्षणमात्र में सचेत हो गया। (३६)

अप्सरायें उसे भी उठाकर उसके पिता के गृह में ले गईं एव उन्होंने उसे मधुर वचन रूपी जल से आश्वासित किया। (३७)

वह (राजा) भी घोडे पर आरूढ होकर श्रेष्ठ प्रतिष्ठान पुर को इस प्रकार चला गया जैसे कामचारी देवता मेरु-शिखर पर जाते हैं। (३८)

ऋक्ष-तनय संवरण ने जब से नेत्रों द्वारा देवकन्या तपती को पर्वत पर देखा, तब से वह दिन में न तो भोजन करता था और न रात्रि में सोता था। (३९)

तदनन्तर सर्वज्ञ, अव्यग्र, तपोनिधि एव महायोगी वरुण-पुत्र वसिष्ठ उस वीर राजाको तपती के कारण सन्तप्त जान कर आकाश में ऊपर उठे एव सूर्य मण्डल में प्रवेश कर रथ पर बैठे हुये सूर्य देव को देखा। (४०-४१)

द्विजोत्तम वसिष्ठ ने सूर्यदेव को देख कर प्रणाम किया एवं सूर्य द्वारा प्रतिप्रणाम किये जाने के उपरान्त रथ में प्रवेश किया। (४२)

भास्कर के समीप स्थित प्रज्वलित जटाकलाप युक्त वरुण-पुत्र द्वितीय भास्कर के सदृश सुशोभित हुये। (४३)

तदनन्तर भास्कर द्वारा अर्घादि से सम्पूजित होने के पश्चात् आगमन का कारण पूछे जाने पर तपोधन ने दिवाकर से कहा— (४४)

"हे महाद्युतिमान् देवेश! मैं संवरण के लिए आप से

सुतां संवरणस्यार्थे तस्य त्वं दातुमर्हसि ॥ ४५
तते वसिष्ठाय दिवाकरेण
निवेदिता सा तपती तनूजा।
गृहागताय द्विजपुंगवाय
राज्ञोऽर्थतः संवरणस्य देवाः ॥ ४६
सावित्रिमादाय ततो वसिष्ठः
स्वमाश्रमं पुण्यमुपाजगाम।
सा चापि संस्मृत्य नृपात्मजं तं
कृताञ्जलिर्वारुणिमाह देवी ॥ ४७
तपत्युवाच।
ब्रह्मन् मया खेदमुपेत्य यो हि
सहाप्सरोभिः परिचारिकाभिः।
दृष्टो ह्यरण्येऽमरगर्भतुल्यो
नृपात्मजो लक्षणतोऽभिजाने ॥ ४८
पादौ शुभौ चक्रगदासिचिह्नौ
जङ्घे तथोरू करिहस्ततुल्यौ।
कटिस्तथा सिंहकटिर्यथैव
क्षामं च मध्यं त्रिवलीनिबद्धम् ॥ ४९
ग्रीवाऽस्य शङ्खाकृतिमादधाति
भुजौ च पीनौ कठिनौ सुदीर्घौ।
हस्तौ तथा पद्मदलोद्भवाङ्कौ
छत्राकृतिस्तस्य शिरो विभाति ॥ ५०
नीलाश्च केशाः कुटिलाश्च तस्य
कर्णौ समांसौ सुसमा च नासा।
दीर्घाश्च तस्याङ्गुलयः सुपर्वाः
पद्भ्यां कराभ्यां दशनाश्च शुभ्राः ॥ ५१
समुन्नतः षड्भिरुदारवीर्य-
स्त्रिभिर्गभीरस्त्रिषु च प्रलम्बः।
रक्तस्तथा पञ्चसु राजपुत्रः
कृष्णश्चतुर्भिस्त्रिभिरानतोऽपि ॥ ५२
द्वाभ्यां च शुक्लः सुरभिश्चतुर्भिः
दृश्यन्ति पद्मानि दशैव चास्य।

कन्या की याचना करने आया हूँ। उसे आप प्रदान करें। (४५)

हे देवगण! तदनन्तर भास्कर ने गृहागत द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठ को राजा संवरण के लिये तपती नामक वह कन्या समर्पित कर दी। (४६)

तदुपरान्त सूर्यपुत्री को लेकर वसिष्ठ अपने पवित्र आश्रम में आये। उस कन्या ने भी उस राजपुत्र का स्मरण कर वसिष्ठ से हाथ जोड़कर कहा। (४७)

तपती ने कहा—हे ब्रह्मन्! खेदयुक्त होकर परिचारिका अप्सराओं के साथ मैंने वन में देवपुत्र तुल्य जिस राजपुत्र को देखा था उसको मैं लक्षणों से जानती हूँ। (४८)

उसके दोनों शुभ चरण चक्र, गदा एवं असि के चिन्हों से युक्त हैं, उसकी जङ्घायें तथा ऊरु हाथी के शुण्ड सदृश हैं, तथा उसकी कटि सिंह की कटि के समान है तथा त्रिवली निबद्ध उसका मध्य भाग अत्यन्त कृश है। (४९)

उसकी ग्रीवा शङ्ख के सदृश है, दोनों भुजायें मोटी, कठोर एवं दीर्घ हैं, दोनों करतल पद्मदल से चिह्नित हैं तथा उसका मस्तक छत्र सदृश सुशोभित है। (५०)

उसके केश नीले तथा घुँघराले हैं, दोनों कर्ण मांसल हैं, नासिका सुडौल है, उसके हाथों एवं पैरों की अँगुलियाँ सुन्दर पर्व वाली एवं दीर्घ हैं तथा उसके दाँत शुभ्र हैं। (५१)

वह महावीर्यवान् राजपुत्र छ स्थानों से उन्नत, तीन स्थानों से गभीर और तीन स्थानों से लम्बा पाँच स्थानों से लाल, चार स्थानों से काला और तीन स्थानों से नम्र है। (५२)

वह दो स्थानों से शुक्ल तथा चार स्थानों से सुगन्धित है। उसके दस स्थानों पर कमल दिखलाई पड़ते हैं[1]। हे

१. *रामचन्द्रभट्ट कृत वामनपुराण की संस्कृत टीका के अनुसार ५२वें तथा ५३वें श्लोक के पूर्वार्ध का अर्थ इस प्रकार है—*
ललाट, स्कन्ध, गण्ड, ग्रीवा, कटि तथा ऊरु—ये छ अंग उन्नत हैं, नाभि, मध्य तथा जत्रु ये तीन अंग गम्भीर हैं, दोनों भुजायें तथा अण्डकोष ये तीन अंग प्रलम्ब हैं; दोनों नेत्र-प्रान्त, अधर, हस्तद्वय, पादद्वय तथा नख ये पाँच रक्त हैं, केश, पक्ष्म और कनीनिका ये चार अंग कृष्ण हैं, भ्रूद्वय, नेत्रप्रान्तद्वय, तथा कर्णद्वय नम्र हैं, दन्त तथा नेत्र दो अंग शुक्ल वर्ण के हैं, केश, मुख तथा गण्डद्वय ये चार अंग सुगन्धित हैं।

वृतः स भर्ता भगवान् हि पूर्वं
तं राजपुत्रं भुवि संविचिन्त्य ॥ ५३
ददस्व मां नाथ तपस्विनेऽस्मै
गुणोपपन्नाय समीहिताय ।
नेहान्यकामां प्रवदन्ति सन्तो
दातुं तथाऽन्यस्य विभो क्षमस्व ॥ ५४
देवदेव उवाच ।
इत्येवमुक्तः सवितुश्च पुत्र्या
ऋषिस्तदा ध्यानपरो बभूव ।
ज्ञात्वा च तत्रार्कसुतां सकामां
मुदा युतो वाक्यमिदं जगाद ॥ ५५
स एव पुत्रि नृपतेस्तनूजो
दृष्टः पुरा कामयसे यमद्य ।
स एव चायाति ममाश्रमं वै
ऋक्षात्मजः संवरणो हि नाम्ना ॥ ५६
अथाजगाम स नृपस्य पुत्र-
स्तमाश्रमं ब्राह्मणपुंगवस्य ।
दृष्ट्वा वसिष्ठं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
स्थितस्त्वपश्यत् तपतीं नरेन्द्रः ॥ ५७
दृष्ट्वा च तां पद्मविशालनेत्रां
तां पूर्वदृष्टामिति चिन्तयित्वा ।
पप्रच्छ केयं ललना द्विजेन्द्र
स वारुणिः प्राह नराधिपेन्द्रम् ॥ ५८
इयं विवस्वद्दुहिता नरेन्द्र
नाम्ना प्रसिद्धा तपती पृथिव्याम् ।
मया तवार्थाय दिवाकरोऽर्थित:
प्रादान्मया त्वाश्रममानिनिन्ये ॥ ५९
तस्मात् समुत्तिष्ठ नरेन्द्र देव्याः
पाणिं तपत्या विधिवद् गृहाण ।
इत्येवमुक्तो नृपतिः प्रहृष्टो
जग्राह पाणिं विधिवत् तपत्याः ॥ ६०
सा तं पतिं प्राप्य मनोऽभिरामं
सूर्यात्मजा शक्रसमप्रभावम् ।
रराम तन्वी भवनोत्तमेषु
यथा महेन्द्रं दिवि दैत्यकन्या ॥ ६१

इति श्रीवामनपुराणे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

भगवन्! मैंने पृथ्वी पर उस राजपुत्र को विचारपूर्वक पहले ही पति रूप से वरण किया है। (५३)

हे नाथ! गुणोपपन्न तथा अभीष्ट उस तपस्वी के निमित्त मुझे प्रदान करें। सन्तों का यह कहना है कि अन्य की कामना करने वाली स्त्री को किसी दूसरे को नहीं देना चाहिये। हे विभो! मुझे क्षमा करें। (५४)

देव देव ने कहा—तब सूर्य-पुत्री के ऐसा कहने पर ऋषि ध्यानमग्न हो गये और सूर्य पुत्री को उस कुमार में आसक्त जानकर प्रसन्नता पूर्वक यह वचन कहे। (५५)

हे पुत्रि! जिसकी तुम आज कामना कर रही हो उसी राजपुत्र को तुमने पहले देखा था। वही संवरण नामक ऋक्ष-पुत्र मेरे आश्रम में आ रहा है। (५६)

तदनन्तर वह राजकुमार ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठ के आश्रम में आया। उस नरेन्द्र ने वसिष्ठ को देखकर शिर झुकाकर प्रणाम किया और बैठने पर तपती को देखा। (५७)

कमल के सदृश विशाल नेत्रोंवाली उसको देखकर उसने सोचा कि इसे मैंने पहले भी देखा है। उसने पूछा 'हे द्विजवर! यह ललना कौन है?' तब वरुणपुत्र ने राजेन्द्र (संवरण) से कहा— (५८)

हे नरेन्द्र! पृथ्वी में तपती नाम से प्रसिद्ध यह सूर्य की पुत्री है। तुम्हारे लिये मेरे माँगने पर दिवाकर ने इसे मुझे दे दिया और मैं आश्रम में लाया हूँ। (५९)

"अतः हे नरेन्द्र! उठो एवं विधिवत् तपती देवी का पाणिग्रहण करो। ऐसा कहे जाने पर अतिहर्षित नृपति ने तपती का विधिवत् पाणिग्रहण किया। (६०)

वह सूर्य-तनया (तपती) इन्द्र तुल्य प्रभावशाली उस मनोहर पति को पाकर उत्तम महलों में इस प्रकार रमण करने लगी जैसे स्वर्ग में महेन्द्र को पाकर दैत्यकन्या (पौलोमी) विहार करती है। (६१)

श्रीवामनपुराण में बाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

२३

देवदेव उवाच ।

तस्यां तपत्यां नरसत्तमेन
जातः सुतः पार्थिवलक्षणस्तु ।
स जातकर्मादिभिरेव संस्कृतो
विवर्द्धताज्येन हुतो यथाऽग्निः ॥ १

कृतोऽस्य चूडाकरणश्च देवा
विप्रेण मित्रावरुणात्मजेन ।
नवाब्दिकस्य व्रतवन्धनं च
वेदे च शास्त्रे विधिपारगोऽभूत् ॥ २

ततश्चतुर्भिश्च षड्भिरपीह वर्षैः
सर्वज्ञतामभ्यगमत् ततोऽसौ ।
ख्यातः पृथिव्यां पुरुषोत्तमोऽसौ
नाम्ना कुरुः संवरणस्य पुत्रः ॥ ३

ततो नरपतिर्दृष्ट्वा धार्मिकं तनयं शुभम् ।
दारक्रियार्थमकरोद् यत्नं शुभकुले ततः ॥ ४

सौदामिनीं सुदाम्नस्तु सुतां रूपाधिकां नृपः ।
कुरोरर्थाय वृतवान् स प्रादात् कुरवेऽपि ताम् ॥ ५

स तां नृपसुतां लब्ध्वा धर्मार्थावविरोधयन् ।
रेमे तन्व्या सह तया पौलोम्या मघवानिव ॥ ६

ततो नरपतिः पुत्रं राज्यभारक्षम बली ।
विदित्वा यौवराज्याय विधानेनाभ्यषेचयत् ॥ ७

ततो राज्येऽभिषिक्तस्तु कुरुः पित्रा निजे पदे ।
पालयामास स महीं पुत्रवच्च स्वयं प्रजाः ॥ ८

स एव क्षेत्रपालोऽभूत् पशुपालः स एव हि ।
स सर्वपालकश्चासीत् प्रजापालो महाबलः ॥ ९

ततोऽस्य बुद्धिरुत्पन्ना कीर्तिर्लोके गरीयसी ।
यावत्कीर्तिः सुसंस्था हि तावद्वासः सुरैः सह ॥ १०

स त्वेवं नृपतिश्रेष्ठो याथातथ्यमवेक्ष्य च ।

२३

देवदेव ने कहा—"उस तपती में नरोत्तम संवरण के द्वारा राजलक्षण युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। जातकर्म आदि संस्कारों से संस्कृत होकर वह घृत डाले हुए अग्नि के सदृश बढ़ने लगा। (१)

हे देवगण! मित्रावरुण के पुत्र विप्र वसिष्ठ ने उसका चूड़ाकरण संस्कार किया। नवें वर्ष में उसका उपनयन संस्कार हुआ और वह वेद तथा शास्त्रों का पारगामी विद्वान् हो गया। (२)

तदनन्तर वह चौबीस वर्षों में सर्वज्ञ हो गया। संसार में संवरण का वह पुत्र पुरुषश्रेष्ठ कुरु नाम से प्रसिद्ध हुआ। (३)

तदुपरान्त राजा शुभ धार्मिक पुत्र को देखकर किसी उत्तम कुल में उसके विवाह का यत्न करने लगे। (४)

राजा ने सुन्दर स्वरूप वाली सुदामा की पुत्री सौदामिनी को कुरु के लिये वरण किया और उन्होंने भी उसे कुरु के लिये प्रदान कर दिया। (५)

उस राजकुमारी को पाकर वह धर्म और अर्थ का विरोध न करते हुए उस तन्वङ्गी के साथ इस प्रकार रमण करने लगा जैसे पौलोमी (शची) के साथ इन्द्र रमण करता है। (६)

तदनन्तर बलवान् राजा ने पुत्र को राज्यभार के वहन में समर्थ जानकर विधानपूर्वक यौवराज्य पद पर उसे अभिषिक्त कर दिया। (७)

पिता द्वारा अपने राज्यपद पर अभिषिक्त होकर कुरु स्वयं ही सन्तान की भाँति प्रजा और पृथ्वी का पालन करने लगा। (८)

वही महाबलवान् क्षेत्रपाल, पशुपाल, सर्वपालक एवं प्रजापालक भी हुआ। (९)

तदनन्तर उसे यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि संसार में कीर्ति सर्वश्रेष्ठ होती है। कीर्ति जबतक भलीभाँति स्थित रहती है तभी तक देवताओं के साथ निवास होता है। (१०)

विचचार महीं सर्वां कीर्त्यर्थं तु नराधिपः ॥ ११
ततो द्वैतवनं नाम पुण्यं लोकेश्वरो बली।
तदासाद्य सुसंतुष्टो विवेशाभ्यन्तरं ततः ॥ १२
तत्र देवीं ददर्शाथ पुण्यां पापविमोचनीम्।
प्लक्षजां ब्रह्मणः पुत्रीं हरिजिह्वां सरस्वतीम् ॥ १३
सुदर्शनस्य जननीं ह्रदं कृत्वा सुविस्तरम्।
स्थितां भगवतीं कूले तीर्थकोटिभिराप्लुताम् ॥ १४
तस्यास्तज्जलमीक्ष्यैव स्नात्वा प्रीतोऽभवन्नृप।
समाजगाम च पुनः ब्रह्मणो वेदिमुत्तराम् ॥ १५
समन्तपञ्चकं नाम धर्मस्थानमनुत्तमम्।
आसमन्ताद् योजनानि पञ्च पञ्च च सर्वतः ॥ १६

देवा ऊचुः।

कियन्त्यो वेदयः सन्ति ब्रह्मणः पुरुषोत्तम।
येनोत्तरतया वेदिर्गदिता सर्वपञ्चका ॥ १७

देवदेव उवाच।

वेदयो लोकनाथस्य पञ्च धर्मस्य सेतवः।
यासु यष्टं सुरेशेन लोकनाथेन शंभुना ॥ १८
प्रयागो मध्यमा वेदिः पूर्वा वेदिर्गयाशिरः।
विरजा दक्षिणा वेदिरनन्तफलदायिनी ॥ १९
प्रतीची पुष्करा वेदिस्त्रिभिः कुण्डैरलंकृता।
समन्तपञ्चका चोक्ता वेदिरेवोत्तराऽव्यया ॥ २०
तममन्यत राजर्षिरिदं क्षेत्रं महाफलम्।
करिष्यामि कृषिष्यामि सर्वान् कामान् यथेप्सितान् ॥ २१
इति संचिन्त्य मनसा त्यक्त्वा स्यन्दनमुत्तमम्।
चक्रे कीर्त्यर्थमतुलं संस्थानं पार्थिवर्षभः ॥ २२
कृत्वा सीरं स सौवर्णं गृह्य रुद्रवृषं प्रभुः।
पौण्ड्रकं याम्यमहिषं स्वयं कर्षितुमुद्यतः ॥ २३
तं कर्षन्तं नरवरं समभ्येत्य शतक्रतुः।
प्रोवाच राजन् किमिदं भवान् कर्तुमिहोद्यतः ॥ २४
राजाऽब्रवीत् सुरवरं तपः सत्यं क्षमां दयाम्।
कृषामि शौचं दानं च योगं च ब्रह्मचारिताम् ॥ २५

इस प्रकार याथातथ्य (यथार्थता) का विचार करने के उपरान्त वह नृपतिश्रेष्ठ कीर्ति के हेतु समस्त पृथ्वी पर विचरण करने लगा। (११)

तदनन्तर वह बली लोकेश्वर पवित्र द्वैतवन पहुँचा एवं सुसन्तुष्ट होकर उसके भीतर प्रविष्ट हुआ। (१२)

वहाँ उसने पवित्र, पापनाशिनी, प्लक्ष-वृक्ष से उत्पन्न, हरिजिह्वा, ब्रह्मपुत्री, सुदर्शन की जननी, सुविस्तृत ह्रद में स्थित, कूल पर करोड़ों तीर्थों से आवृत भगवती सरस्वती को देखा। (१३-१४)

उसके जल को देखते ही स्नान करके राजा प्रसन्न हो गया एवं पुनः ब्रह्मा की उत्तर दिशा में अवस्थित वेदी (समन्तपञ्चक) पर गया। (१५)

यह समन्तपञ्चक नामक श्रेष्ठ धर्मस्थान चारों ओर से पाँच-पाँच योजन तक है। (१६)

देवताओं ने कहा—"हे पुरुषोत्तम! ब्रह्मा की कितनी वेदियाँ हैं? क्योंकि आपने सर्वपञ्चका वेदी को उत्तर वेदी कहा है। (१७)

देवदेव ने कहा—लोकनाथ ब्रह्मा की धर्म-सेतु स्वरूप पाँच वेदियाँ हैं जिन पर सुरेश लोकनाथ शम्भु ने यज्ञ किया था। (१८)

प्रयाग मध्यवेदी है, गयाशिर पूर्ववेदी है, अनन्त फलदायिनी विरजा दक्षिणवेदी है, तीन कुण्डों से अलङ्कृत पुष्कर पश्चिम वेदी है तथा अव्यय समन्तपञ्चक को उत्तर वेदी कहा गया है। (१९-२०)

राजर्षि कुरु ने सोचा कि इस क्षेत्र को महाफलदायी करूँगा (बनाऊँगा) और यहीं समस्त कामनाओं की खेती करूँगा। (२१)

अपने मन में इस प्रकार विचार कर वह राजश्रेष्ठ रथ से उतर पड़ा एवं कीर्ति के लिये अतुलनीय स्थान का निर्माण किया। (२२)

सुवर्ण निर्मित हल बनाकर उसमें शङ्कर के वृषभ एवं यमराज के पौण्ड्रक नामक महिष को संयुक्त कर वह राजा स्वयं कर्षण करने को उद्यत हुआ। (२३)

इन्द्र ने कर्षण कर रहे नरश्रेष्ठ के निकट जाकर कहा "हे राजन् आप यहाँ यह क्या करने को उद्यत हुये हैं?" (२४)

राजा ने इन्द्र से कहा कि मैं तप, सत्य, क्षमा, दया, शौच, दान, योग और ब्रह्मचर्य की कृषि कर रहा हूँ। (२५)

तम्योवाच हरिर्देवः कस्माद्वीजो नरेश्वर ।
लब्धोऽष्टाङ्गेति सहसा अवहस्य गतस्ततः ॥ २६
गतेऽपि शक्रे राजर्षिरहन्यहनि सीरधृक् ।
कृषतेऽन्यान् समन्ताच सप्तक्रोशान् महीपतिः ॥ २७
ततोऽहमब्रुवं गत्वा कुरो किमिदमित्यथ ।
तदाऽष्टाङ्गं महाधर्मं समारभ्यातं नृपेण हि ॥ २८
ततो मयाऽस्य गदित नृप बीजं क्व तिष्ठति ।
स चाह मम देहस्थं बीजं तमहमब्रुवम् ।
देह्यहं वापयिष्यामि सीरं कृषतु वै भवान् ॥ २९
ततो नृपतिना बाहुर्दक्षिणः प्रसृतः कृतः ।
प्रसृतं तं भुजं दृष्ट्वा मया चक्रेण वेगतः ॥ ३०
सहस्रधा ततश्छित्त्वा दत्तो युष्माकमेव हि ।
ततः सव्यो भुजो राज्ञा दत्तश्छिन्नोऽप्यसौ मया ॥ ३१
तथैवोरुयुगं प्रादान्मया छिन्नौ च तावुभौ ।
ततः स मे शिरः प्रादात् तेन प्रीतोऽस्मि तस्य च ।
वरदोऽस्मीत्यथेत्युक्ते कुरुर्वरमयाचत ॥ ३२

कुरुरुवाच ।

यावदेतन्मया कृष्टं धर्मक्षेत्रं तदस्तु च ।
स्नातानां च मृतानां च महापुण्यफलं त्विह ॥ ३३
उपवासं च दानं च स्नानं जप्यं च माधव ।
होमयज्ञादिकं चान्यच्छुभं वाप्यशुभं विभो ॥ ३४
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश शङ्खचक्रगदाधर ।
अक्षयं प्रवरे क्षेत्रे भवत्वत्र महाफलम् ॥ ३५
तथा भवान् सुरैः सार्धं समं देवेन शूलिना ।
वस त्वं पुण्डरीकाक्ष मन्नामव्यञ्जकेऽच्युत ।
इत्येवमुक्तस्तेनाहं राज्ञा बाढमुवाच तम् ॥ ३६
तथा च त्वं दिव्यवपुर्भव भूयो महीपते ।
तथाऽन्तकाले मामेव लयमेष्यसि सुव्रत ॥ ३७
कीर्तिश्च शाश्वती तुभ्यं भविष्यति न संशयः ।
तत्रैव याजका यज्ञान् यजिष्यन्ति सहस्रशः ॥ ३८
तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं ददौ स पुरुषोत्तमः ।
यक्षं च चन्द्रनामानं वासुकिं चापि पन्नगम् ॥ ३९

इन्द्र ने कहा—"हे नरेश्वर! इस अष्टाङ्ग बीज को आपने कहाँ से प्राप्त किया है?" ऐसा कहने के उपरान्त हँस कर इन्द्र सहसा चले गये। (२६)

इन्द्र के चले जाने पर भी प्रतिदिन हलधारी राजा चतुर्दिक् अन्य सात कोसों तक कर्षण करते रहे। (२७)

तत्पश्चात् मैंने जाकर उनसे कहा "हे कुरु! यह क्या कर रहे हो?" राजा ने कहा मैं अष्टाङ्ग महाधर्म का कर्षण कर रहा हूँ। (२८)

तदनन्तर मैंने उनसे पूछा "हे नृप! बीज कहाँ है?" राजा ने कहा "बीज मेरे शरीर में है" मैंने उनसे कहा "मुझे वह दो। मैं बोऊँगा और तुम हल चलाओ।" तब राजा ने अपना दाहिना हाथ फैला दिया। फैलाये हुये हाथ को देखकर मैंने चक्र से शीघ्र ही उसके हजारों टुकड़े कर, तुम लोगों को दे दिया। तदनन्तर राजा ने वाम बाहु दिया। उसे भी मैंने काट डाला। (२९-३१)

इसी प्रकार उसने दोनों ऊरुओं को दिया। उन दोनों को भी मैंने काट दिया। तब उसने अपना मस्तक दिया जिससे मैं उसके ऊपर प्रसन्न हो गया। 'मैं वर दूँगा' ऐसा मेरे कहने पर कुरु ने वर माँगा। (३२)

कुरु ने कहा—जितने स्थान को मैंने जोता है वह धर्मक्षेत्र हो जाय और यहाँ स्नान करने वालों तथा मरने वालों को महापुण्यफल की प्राप्ति हो। (३३)

हे माधव! हे विभो! हे शङ्खचक्रगदाधारी हृषीकेश! उपवास, दान, स्नान, जप, होम, यज्ञ आदि तथा अन्य भी शुभ या अशुभ कर्म, इस श्रेष्ठ क्षेत्र में आपकी कृपा से अक्षय एवं महाफलप्रद हों। (३४-३५)

"तथा हे पुण्डरीकाक्ष! हे अच्युत! मेरे नाम के व्यञ्जक इस क्षेत्र (कुरुक्षेत्र) में आप देवों एवं शङ्कर के साथ निवास करें।" राजा के ऐसा कहने पर 'अच्छा ऐसा ही होगा' यह कहने के उपरान्त मैंने कहा कि हे महीपति! तुम पुनः दिव्य शरीर के हो जाओ तथा हे सुव्रत! अन्तकाल में तुम मेरे में लीन हो जाओगे।" (३६-३७)

"निःसन्देह (तुम्हारी) कीर्ति शाश्वती (सर्वकालस्थायिनी) होगी। यहाँ पर सहस्रों याजक यज्ञ करेंगे।" (३८)

इस क्षेत्र की रक्षा के लिए पुरुषोत्तम ने चन्द्रनामक यक्ष, वासुकि नामक सर्प, शङ्कुकर्ण नामक विद्याधर, सुकेशी नामक

विद्याधरं शङ्कुकर्णं सुकेशिं राक्षसेश्वरम् ।
अजावनं च नृपतिं महादेवं च पावकम् ॥ ४०
एतानि सर्वतोऽभ्येत्य रक्षन्ति कुरुजाङ्गलम् ।
अमीषां बलिनोऽन्ये च भृत्याश्चैवानुयायिनः ॥ ४१
अष्टौ सहस्राणि धनुर्धराणां
ये वारयन्तीह सुदुष्कृतान् वै ।
स्नातुं न यच्छन्ति महोग्ररूपा-
स्त्वन्यस्य भूताः सचराचराणाम् ॥ ४२
तस्यैव मध्ये बहुपुण्य उक्तः
पृथूदकः पापहरः शिवश्च ।
पुण्या नदी प्राङ्मुखतां प्रयाता
यत्रौघयुक्तस्य शुभा जलाढ्या ॥ ४३
पूर्वं प्रजेयं प्रपितामहेन
सृष्टा समं भूतगणैः समस्तैः ।
मही जलं वह्निसमीरमेव
खं त्वेवमादौ विबभौ पृथूदकः ॥ ४४
तथा च सर्वाणि महार्णवानि
तीर्थानि नद्यः स्रवणाः सरांसि ।
संनिर्मितानीह महाभुजेन
तच्चैक्यमागात् सलिलं महीषु ॥ ४५

इति श्रीवामनपुराणे त्रयोविंशोऽध्याय ॥२३॥

राक्षसेश्वर, अजावन नामक नृपति एवं महादेव नामक पावक को दिया (नियुक्त किया)। (३९-४०)

ये सभी तथा इनके अन्य बली भृत्य एवं अनुयायी आकर कुरुजाङ्गल की सब ओर से रक्षा करते हैं। (४१)

आठ सहस्र धनुर्धर जो पापियों को यहाँ से निवारित करते हैं वे उग्ररूपधारी भूतगण चराचर के दूसरों (पापियों) को भी स्नान नहीं करने देते। (४२)

इसी के मध्य अति पवित्र, पापहर, कल्याणकारी पृथूदक नामक तीर्थ है। यहाँ शुभ जल से पूर्ण एक पवित्र नदी पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। (४३)

प्रपितामह ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और आकाशादि समस्त भूतों के साथ ही इसकी भी सृष्टि की। यही पृथूदक है। (४४)

महाभुज ब्रह्मा ने पृथ्वी पर जिन महासमुद्रों, तीर्थों, नदियों, स्रोतों एवं सरोवरों की रचना की वे सभी जल इस में एकत्व को प्राप्त हैं। (४५)

श्रीवामनपुराण में तेइसवाँ अध्याय समाप्त ॥

सरोमाहात्म्यम्

१

देवदेव उवाच ।

सरस्वतीदृषद्वत्योरन्तरे कुरुजाङ्गले ।
मुनिप्रवरमासीनं पुराणं लोमहर्षणम् ।
अपृच्छन्त द्विजवराः प्रभावं सरसस्तदा ॥ १
प्रमाणं सरसो ब्रूहि तीर्थानां च विशेषतः ।
देवतानां च माहात्म्यमुत्पत्तिं वामनस्य च ॥ २
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां रोमहर्षसमन्वितः ।
प्रणिपत्य पुराणर्षिरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३

लोमहर्षण उवाच ।

ब्रह्माणमग्र्यं कमलासनस्थं
विष्णुं तथा लक्ष्मिसमन्वितं च ।
रुद्रं च देवं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
तीर्थं महद् ब्रह्मसरः प्रवक्ष्ये ॥ ४
रन्तुकादौजसं यावत् पावनाच्च चतुर्मुखम् ।
सरः संनिहितं प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वमेव तु ॥ ५
कलिद्वापरयोर्मध्ये व्यासेन च महात्मना ।
सरःप्रमाणं यत्प्रोक्तं तच्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः ॥ ६
विश्वेश्वरादस्थिपुरं तथा कन्या जरद्गवी ।
यावदोघवती प्रोक्ता तावत्संनिहितं सरः ॥ ७
मया श्रुतं प्रमाणं यत् पठ्यमानं तु वामने ।
तच्छृणुध्वं द्विजश्रेष्ठाः पुण्यं वृद्धिकरं महत् ॥ ८
विश्वेश्वराद् देववरा नृपावनात् सरस्वती ।
सरः संनिहितं ज्ञेयं समन्तादर्धयोजनम् ॥ ९
एतदाश्रित्य देवाश्च ऋषयश्च समागताः ।
सेवन्ते मुक्तिकामार्थं स्वर्गार्थे चापरे स्थिताः ॥ १०
ब्रह्मणा सेवितमिदं सृष्टिकामेन योगिना ।
विष्णुना स्थितिकामेन हरिरूपेण सेवितम् ॥ ११

सरोमाहात्म्य

१

देवदेव ने कहा—सरस्वती और दृषद्वती के मध्य कुरुजाङ्गल में आसीन मुनिप्रवर वृद्ध लोमहर्षण से प्राचीनकाल में ब्राह्मणों ने सरोवर का प्रभाव पूछा— (१)

इस सरोवर के विस्तार, विशेषतः तीर्थों और देवताओं के माहात्म्य एवं वामन की उत्पत्ति का आप वर्णन करें। (२)

उनके इस वचन को सुनकर रोम हर्ष-युक्त पौराणिक ऋषि ने उन्हें प्रणाम करने के उपरान्त कहा। (३)

लोमहर्षण ने कहा—सर्वप्रथम उत्पन्न कमलासन ब्रह्मा, लक्ष्मी-सहित विष्णु और महादेव रुद्र को शिर से प्रणाम कर मैं महान् ब्रह्मसर तीर्थ का वर्णन करता हूँ। (४)

ब्रह्मा ने प्राचीन काल में यह कहा था कि यह सन्निहित सरोवर रन्तुक से औजस पर्यन्त और पावन से चतुर्मुख तक है। (५)

हे द्विजोत्तमो! कलि और द्वापर के मध्य में महात्मा व्यास ने सरोवर का जो प्रमाण बतलाया है, उसे आपलोग सुनें। (६)

विश्वेश्वर से अस्थिपुर पर्यन्त और कन्या जरद्गवी से ओघवती पर्यन्त यह सन्निहित सरोवर स्थित है। (७)

हे द्विजश्रेष्ठो! मैंने वामनपुराण में वर्णित जो प्रमाण सुना है उस पवित्र एवं अभ्युदयकारी प्रमाण को आप सुनें। (८)

विश्वेश्वर से देववर तक एवं नृपावन से सरस्वती पर्यन्त चतुर्दिक् अर्धयोजन में इस सन्निहित सर को समझना चाहिये। (९)

आये हुए देवता एवं ऋषिगण इसका आश्रय ग्रहण कर मुक्ति की कामना से इसका सेवन करते हैं, तथा अन्य लोग स्वर्ग के निमित्त यहाँ स्थित रहते हैं। (१०)

योगी ब्रह्मा ने सृष्टि की इच्छा से एवं हरिरूप धारी विष्णु ने जगत् स्थिति की कामना से इसका सेवन किया। (११)

रुद्रेण च सरोमध्यं प्रविष्टेन महात्मना ।
सेव्य तीर्थं महातेजाः स्थाणुत्वं प्राप्तवान् हरः ॥ १२
आद्यैषा ब्रह्मणो वेदिस्ततो रामह्रदः स्मृतः ।
कुरुणा च यतः कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम् ॥ १३

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं
यदन्तरं रामह्रदाचतुर्मुखम् ।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥ १४

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये प्रथमोऽध्याय ॥१॥

ऋषय ऊचुः ।
ब्रूहि वामनमाहात्म्यमुत्पत्तिं च विशेषतः ।
यथा बलिर्नियमितो दत्तं राज्यं शतक्रतोः ॥ १
लोमहर्षण उवाच ।
शृणुध्वं मुनयः प्रीता वामनस्य महात्मनः ।
उत्पत्तिं च प्रभावं च निवासं कुरुजाङ्गले ॥ २
तदेव वंशं दैत्यानां शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ।
यस्य वंशे समभवद् बलिर्वैरोचनिः पुरा ॥ ३
दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुः पुरा ।
तस्य पुत्रो महातेजाः प्रह्लादो नाम दानवः ॥ ४
तस्माद् विरोचनो जज्ञे बलिर्जज्ञे विरोचनात् ।
हते हिरण्यकशिपौ देवानुत्साद्य सर्वतः ॥ ५
राज्यं कृतं च तेनेदं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
कृतयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यतां गते ॥ ६
जये तथा बलवतोर्मयशम्बरयोस्तथा ।
शुद्धासु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि ॥ ७
संप्रवृत्ते दैत्यपथे अयनस्थे दिवाकरे ।
प्रह्लादशम्बरमयैरनुह्लादेन चैव हि ॥ ८

सरोवर के मध्य में प्रविष्ट महात्मा रुद्र ने इस तीर्थ का सेवन किया जिससे महातेजस्वी हर को स्थाणुत्व प्राप्त हुआ । (१२)

आदि में यह 'ब्रह्मवेदी' थी किन्तु कालान्तर में इसका नाम 'रामह्रद' हुआ । तदुपरान्त कुरु द्वारा कृष्ट होने से इसका 'कुरुक्षेत्र' नाम हुआ । (१३)

तरन्तुक एवं अरन्तुक के मध्य तथा रामह्रद एवं चतुर्मुख का मध्य भाग समन्तपञ्चक कुरुक्षेत्र है तथा इसे ही पितामह की उत्तरवेदी कहा जाता है । (१४)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

२

ऋषियों ने कहा—(आप) वामन के माहात्म्य और उत्पत्ति का विशेष रूप से वर्णन करें तथा यह बतलायें कि किस प्रकार बलि को बाँध कर इन्द्र को राज्य दिया गया।" (१)

लोमहर्षण ने कहा—हे मुनियो ! प्रसन्नता पूर्वक आप लोग महात्मा वामन की उत्पत्ति, प्रभाव और कुरुजाङ्गल में उनके निवास का वर्णन सुनें। (२)

हे द्विजश्रेष्ठो ! आप लोग दैत्यों के उस वंश को भी सुनें जिसमें प्राचीनकाल में विरोचन के पुत्र बलि पैदा हुए थे। (३)

पूर्व समय में दैत्यों का आदिपुरुष हिरण्यकशिपु था। प्रह्लादनामक महातेजस्वी दानव उसका पुत्र था। (४)

उससे विरोचन और विरोचन से बलि उत्पन्न हुआ। हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर सभी स्थानों से देवताओं को हटा कर चराचर सहित तीनों लोकों में बलि ने भलीभाँति राज्य किया। देवताओं के प्रयत्न करते पर भी त्रैलोक्य दैत्यों के अधीन हो गया। (५-६)

बलशाली मय और शम्बर की विजय हो गई। सर्वत्र धर्म कार्य फैल गया और दिशायें शुद्ध हो गईं। (७)

सूर्य भी दैत्यपथ वाले (दक्षिण) अयन में स्थित हो गये। प्रह्लाद, शम्बर और मय तथा अनुह्लाद दैत्य सब दिशाओं की रक्षा करने लगे। आकाश भी दैत्य पालित हो गया। देवगण

दिक्षु सर्वासु शुभ्रासु गगने दैत्यपालिते ।
देवेषु मखशोभां च स्वर्गस्थां दर्शयत्सु च ॥ ९
प्रकृतिस्थे ततो लोके वर्त्तमाने च सत्पथे ।
अभावे सर्वपापानां धर्मभावे सदोत्थिते ॥ १०
चतुष्पादे स्थिते धर्मे ह्यधर्मे पादविग्रहे ।
प्रजापालनयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ।
स्वधर्मसंप्रयुक्तेषु तथाश्रमनिवासिषु ॥ ११
अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैर्दैत्यराज्ये बलिस्तदा ।
हृष्टेष्वसुरसंघेषु नदत्सु मुदितेषु च ॥ १२
अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्मान्तरप्रभा ।
पद्मोद्यतकरा देवी वरदा सुप्रवेशिनी ॥ १३

श्रीरुवाच ।

बले बलवतां श्रेष्ठ दैत्यराज महाद्युते ।
प्रीताऽस्मि तव भद्रं ते देवराजपराजये ॥ १४
यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराज्यं पराजितम् ।
दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता ॥ १५
नाश्चर्यं दानवव्याघ्र हिरण्यकशिपोः कुले ।
प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मेदमीदृशम् ॥ १६
विशेषितस्त्वया राजन् दैत्येन्द्रः प्रपितामहः ।
येन भुक्तं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ १७
एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यनृपं बलिम् ।
प्रविष्टा वरदा सेव्या सर्वदेवमनोरमा ॥ १८
तुष्टाश्च देव्यः प्रवराः ह्री- कीर्तिर्द्युतिरेव च ।
प्रभा धृतिः क्षमा भूतिर्ऋद्धिर्दिव्या महामतिः ॥ १९
श्रुतिःस्मृतिरिडा कीर्तिः शान्तिः पुष्टिस्तथा क्रिया ।
सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्तगीतविशारदाः ॥ २०
प्रपद्यन्ते स्म दैत्येन्द्रं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
प्राप्तमैश्वर्यमतुलं बलिना ब्रह्मवादिना ॥ २१

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्याय ॥२॥

स्वर्गस्थ यज्ञ की शोभा देखने लगे । (८-९)

सारा ससार प्रकृतिस्थित हो गया तथा सन्मार्ग पर आरूढ हो गया । सभी पापों के नष्ट होने पर धर्म भाव स्थिर हो गया । (१०)

धर्म चार पादों से प्रतिष्ठित हो गया । अधर्म एक ही पाद पर स्थित हुआ । सभी राजा प्रजापालन करते हुये सुशोभित होने लगे तथा सभी आश्रमों के लोग स्वधर्म का पालन करने लगे । (११)

ऐसे समय में असुरों ने बलि को दैत्य-राज-पद पर अभिषिक्त कर दिया । हृष्ट असुर समुदाय प्रसन्न होकर निनाद करने लगा । (१२)

इसके अनन्तर कमलोदर के समान कान्ति वाली, वरदा, सुप्रवेशिनी लक्ष्मी देवी हाथ में कमल लिये हुये बलि के समीप आई । (१३)

लक्ष्मी ने कहा— हे बलवानों मे श्रेष्ठ ! महातेजस्वी दैत्यराज बलि ! देवराज के पराजय से मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । तुम्हारा मंगल हो । (१४)

क्योंकि तुमने सग्राम मे पराक्रम दिखाकर देवों के राज्य को जीत लिया है । अत तुम्हारे श्रेष्ठ बल को देखकर मैं स्वय आई हूँ । (१५)

हे दानवश्रेष्ठ ! असुरेन्द्र हिरण्यकशिपु के कुल में उत्पन्न तुम्हारे इस प्रकार के कर्म मे कोई आश्चर्य की बात नहीं है । (१६)

हे राजन् ! आप दैत्यश्रेष्ठ अपने प्रपितामह हिरण्यकशिपु से भी विशिष्ट हैं । क्योंकि ! आप इस अव्यय समग्र त्रैलोक्य का भोग कर रहे हैं । (१७)

दैत्यराज बलि से ऐसा कहने के उपरान्त सर्वदेव मनोरमा सेव्या एव वरदा वे लक्ष्मी देवी राजा बलि में प्रविष्ट हो गईं । (१८)

तब प्रसन्न होकर सभी श्रेष्ठ देवियाँ ह्री, कीर्ति, द्युति, प्रभा, धृति, क्षमा, भूति, ऋद्धि, दिव्या महामति, श्रुति, स्मृति, इडा, कीर्ति, शान्ति, पुष्टि, क्रिया तथा नृत्तगीत विशारदा दिव्य अप्सरायें दैत्येन्द्र का सेवन करने लगीं । इस प्रकार ब्रह्मवादी बलि ने सचराचर त्रैलोक्य का अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया । (१९-२१)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

३

ऋषय ऊचुः ।
देवानां ब्रूहि नः कर्म यद्वृत्तास्ते पराजिताः ।
कथं देवातिदेवोऽसौ विष्णुर्वामनतां गतः ॥ १
लोमहर्षण उवाच ।
बलिसंस्थं च त्रैलोक्यं दृष्ट्वा देवः पुरंदरः ।
मेरुप्रस्थं ययौ शक्रः स्वमातुर्निलयं शुभम् ॥ २
समीपं प्राप्य मातुश्च कथयामास तां गिरम् ।
आदित्याश्च यथा युद्धे दानवेन पराजिताः ॥ ३
अदितिरुवाच ।
यद्येवं पुत्र युष्माभिर्न शक्यो हन्तुमाहवे ।
बलिर्विरोचनसुतः सर्वैश्चैव मरुद्गणैः ॥ ४
सहस्रशिरसा शक्यः केवलं हन्तुमाहवे ।
तेनैकेन सहस्राक्ष न स ह्यन्येन शक्यते ॥ ५
तद्वत् पृच्छामि पितरं कश्यपं ब्रह्मवादिनम् ।
पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मनः ॥ ६
ततोऽदित्या सह सुराः संप्राप्ताः कश्यपान्तिकम् ।
तत्रापश्यन्त मारीचं मुनिं दीप्ततपोनिधिम् ॥ ७
आद्यं देवगुरुं दिव्यं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसा ।
तेजसा भास्कराकारं स्थितमग्निशिखोपमम् ॥ ८
न्यस्तदण्डं तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनाम्बरम् ।
वल्कलाजिनसंवीतं प्रदीप्तमिव तेजसा ॥ ९
हुताशमिव दीप्यन्तमाज्यगन्धपुरस्कृतम् ।
स्वाध्यायवन्तं पितरं वपुष्मन्तमिवानलम् ॥ १०
ब्रह्मवादिसत्यवादिसुरासुरगुरुं प्रभुम् ।
ब्राह्मण्याऽप्रतिमं लक्ष्म्या कश्यपं दीप्ततेजसम् ॥ ११
यः स्रष्टा सर्वलोकानां प्रजानां पतिरुत्तमः ।
आत्मभावविशेषेण तृतीयो यः प्रजापतिः ॥ १२
अथ प्रणम्य ते वीराः सहादित्या सुरर्षभाः ।

३

ऋषियों ने कहा—आप हमें यह बतलायें कि देवता लोग कौन कर्म करने से पराजित हुये तथा देवाधिदेव विष्णु किस प्रकार वामन बने ? (१)

लोमहर्षण ने कहा—पुरंदर (इन्द्र) देव त्रैलोक्य को बलि के अधिकार में देखकर अपनी माता के मेरुस्थित कल्याणयुक्त गृह को गये। (२)

माता के समीप जाकर उनसे उन्होंने युद्ध में देवगण दानव बलि से जिस प्रकार पराजित हुये थे उसका वर्णन किया। (३)

अदिति ने कहा—हे पुत्र! यदि ऐसा है तो समस्त मरुद्गण के साथ मिलकर भी तुमलोग युद्ध में विरोचन के पुत्र बलि को नहीं मार सकते। (४)

हे सहस्राक्ष! (उसे) युद्ध में केवल सहस्रशीर्ष (भगवान् विष्णु) ही मार सकते हैं। उनके अतिरिक्त अन्य किसी से भी वह (मारा) नहीं जा सकता। (५)

अतः उस महात्मा बलिनामक दैत्य की पराजय के लिये मैं तुम्हारे पिता ब्रह्मवादी कश्यप से पूछूँगी। (६)

तदनन्तर अदिति के साथ देवतालोग कश्यप के समीप गये। वहाँ उन लोगों ने तेजस्वी, तपोनिधि, मरीचिमुनि के पुत्र, आद्य, दिव्य, देवगुरु, ब्रह्मतेज से प्रदीप्त, तेज से भास्वर तुल्य, अग्निशिखा के सदृश, न्यस्तदण्ड, तपोयुक्त, कृष्ण मृगचर्म से आवृत, वल्कल और मृगचर्म पहने हुए, तेज से प्रदीप्त आज्यगन्ध पुरस्कृत हुताशन के सदृश प्रदीप्त, स्वाध्यायरत, शरीरधारी अग्नितुल्य, ब्रह्मवादी, सत्यवादी, सुरासुरगुरु, अप्रतिम ब्रह्मतेजयुक्त, लक्ष्मी के कारण दीप्ततेज सम्पन्न समर्थ पिता कश्यप को बैठे हुये देखा। (७–११)

वे सभी लोकों के स्रष्टा, श्रेष्ठ प्रजापति एवं आत्मभाव की विशेषता के कारण तृतीय प्रजापति हैं। (१२)

तदनन्तर अदिति के साथ समस्त देववीर प्रणाम कर (कश्यप से) इस प्रकार बोले जैसे ब्रह्मा से उनके मानस

ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्माणमिव मानसाः ॥ १३
अजेयो युधि शक्रेण बलिर्दैत्यो बलाधिकः ।
तस्माद् विधत्त नः श्रेयो देवानां पुष्टिवर्धनम् ॥ १४
श्रुत्वा तु वचनं तेषां पुत्राणां कश्यपः प्रभुः ।
अकरोद् गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकाय लोककृत् ॥ १५
कश्यप उवाच ।
शक्र गच्छाम सदनं ब्रह्मणः परमाद्भुतम् ।
तथा पराजय सर्वे ब्रह्मणः स्यातुमुद्यताः ॥ १६
सहादित्या ततो देवायाताः काश्यपमाश्रमम् ।
प्रस्थिता ब्रह्मसदनं महर्षिगणसेवितम् ॥ १७
ते मुहूर्त्तेन संप्राप्ता ब्रह्मलोकं सुवर्चसः ।
दिव्यैः कामगमैर्यानैर्यथार्हैस्ते महाबलाः ॥ १८
ब्रह्माणं द्रष्टुमिच्छन्तस्तपोराशिनमव्ययम् ।
अध्यगच्छन्त विस्तीर्णां ब्रह्मणः परमां सभाम् ॥ १९
षट्पदोद्गीतमधुरां सामगैः समुदीरिताम् ।
श्रेयस्करीममित्रघ्नीं दृष्ट्वा संजहृषुस्तदा ॥ २०
ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रोक्ताः क्रमपदाक्षराः ।
शुश्रुवुर्विबुधव्याघ्रा विततेषु च कर्मसु ॥ २१
यज्ञविद्यावेदविदः पदक्रमविदस्तथा ।
स्वरेण परमर्षीणां सा बभूव प्रणादिता ॥ २२
यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः ।
छन्दसा चैव चार्थज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः ॥ २३
लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुः स्वरमीरितम् ।
तत्र तत्र च विप्रेन्द्रा नियताः शंसितव्रताः ॥ २४
जपहोमपरा मुख्या ददृशुः कश्यपात्मजाः ।
तस्यां सभायामास्ते स ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २५
सुरासुरगुरुः श्रीमान् विद्यया वेदमायया ।
उपासन्त च तत्रैव प्रजानां पतयः प्रभुम् ॥ २६
दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमाः ।
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा ॥ २७

पुत्र कहते हैं— (१३)

बलशाली बलिदैत्य युद्ध में इन्द्र द्वारा अजेय हो गया है। अतः हम देवों के वृद्धि के लिए आप मङ्गल को सपन्न करें। (१४)

उन पुत्रों का वचन सुनकर लोककर्ता प्रभु कश्यप ने ब्रह्म लोक जाने का विचार किया। (१५)

कश्यप ने कहा—हे इन्द्र ! ब्रह्मा जी से अपनी पराजय कहने को उद्यत होकर हम उनके परम अद्भुत लोक को चलें। (१६)

तदनन्तर अदिति के साथ कश्यप के आश्रम मे आये सभी देवता महर्षिगणों से सेवित ब्रह्मसदन की ओर प्रस्थान किये। (१७)

यथायोग्य, दिव्य एव कामचारी यानों के द्वारा महा बली एव तेजस्वी वे सभी लोग मुहूर्त मात्र में ब्रह्मलोक पहुँच गये। (१८)

तपोराशि, अव्यय ब्रह्मा को देखने की इच्छा वाले वे लोग ब्रह्मा की विस्तीर्ण श्रेष्ठ सभा मे गये। (१९)

भ्रमरों के गीत से मधुर, सामगान से मुखरित, कल्याण कारिणी और शत्रुओं की विनाशिका उस सभा को देखकर वे लोग प्रसन्न हुए। (२०)

उन देव श्रेष्ठों ने अनेक विस्तृत धर्मानुष्ठानों के समय श्रेष्ठ ऋग्वेदियों के द्वारा प्रयुक्त क्रमपदादि से युक्त ऋचाओं का श्रवण किया। (२१)

वह सभा यज्ञ विद्या के जानकार और पदक्रम से युक्त वेदों के जानने वाले परमर्षियों के स्वर से प्रतिध्वनित हो रही थी। (२२)

देवों ने वहाँ यज्ञ के संस्तवों के ज्ञाताओं, शिक्षाविदों वेदमन्त्रों के अर्थ जानने वालों, सर्वविद्याविशारद द्विजों एव श्रेष्ठ लोकायतिकों द्वारा उच्चरित स्वर को सुना। कश्यप पुत्रों ने वहाँ सर्वत्र नियम पूर्वक तीक्ष्णव्रतधारी जप होमपरायण श्रेष्ठ विप्रों को देखा। उसी सभा मे लोक-पितामह ब्रह्मा बैठे हुये थे। (२३-२५)

सभा में विद्या एव वेदमायासम्पन्न श्रीमान् सुरासुरगुरु ब्रह्मा भी विराजमान थे एव वहाँ पर प्रजापतिगण उन प्रभु की उपासना कर रहे थे। (२६)

हे द्विजोत्तमो ! दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, भृगु, अत्रि वशिष्ठ, गौतम और नारद, सभी विद्यायें, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, प्रकृति, विकृति, अन्यान्यमहत् कारण, साङ्गोपाङ्ग चारो वेद, और लोकपति नीति, यज्ञ, सकल्प, प्राण, तथा अन्य अनेक लोग ब्रह्मा की उपासना कर रहे थे। हे द्विजोत्तमो ! अर्थ, धर्म, काम, क्रोध, हर्ष, शुक्र, बृहस्पति, सवर्त्त और बुध,

विद्यास्तथान्तरिक्षं च वायुस्तेजो जलं मही ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥ २८
प्रकृतिश्च विकारश्च यच्चान्यत् कारणं महत् ।
साङ्गोपाङ्गाश्च चत्वारो वेदा लोकपतिस्तथा ॥ २९
नयाश्च क्रतवश्चैव सङ्कल्पः प्राण एव च ।
एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपासते ॥ ३०
अर्थो धर्मश्च कामश्च क्रोधो हर्षश्च नित्यशः ।
शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्तोऽथ बुधस्तथा ॥ ३१
शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः ।
मरुतो विश्वकर्मा च वसवश्च द्विजोत्तमाः ॥ ३२
दिवाकरश्च सोमश्च दिवा रात्रिस्तथैव च ।
अर्द्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् च संस्थिताः ॥ ३३
तां प्रविश्य सभां दिव्यां ब्रह्मणः सर्वकामिकाम् ।
कश्यपस्त्रिदशैः सार्द्धं पुत्रैर्धर्मभृतां वरः ॥ ३४
सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम् ।
ब्राह्मया श्रिया सेव्यमानामचिन्त्यां विगतक्लमाम् ॥ ३५
ब्रह्माणं प्रेक्ष्य ते सर्वे परमासनमास्थितम् ।
शिरोभिः प्रणता देव देवा ब्रह्मर्षिभिः सह ॥ ३६
ततः प्रणम्य चरणौ नियताः परमात्मनः ।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतकल्मषाः ॥ ३७
दृष्ट्वा तु तान् सुरान् सर्वान् कश्यपेन सहागतान् ।
आह ब्रह्मा महातेजा देवानां प्रभुरीश्वरः ॥ ३८

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

ब्रह्मोवाच ।
यदर्थमिह संप्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि ।
चिन्तयाम्यहमप्यग्रे तदर्थं च महाबलाः ॥ १
भविष्यति च वः सर्वं काङ्क्षितं यत् सुरोत्तमाः ।
बलेर्दानवमुख्यस्य योऽस्य जेता भविष्यति ॥ २
न केवलं सुरादीनां गतिर्मम स विश्वकृत् ।
त्रैलोक्यस्यापि नेता च देवानामपि स प्रभुः ॥ ३
यः प्रभुः सर्वलोकानां विश्वेशश्च सनातनः ।

शनैश्चर और राहु ये सभी ग्रह भी वहाँ व्यवस्थित थे। मरुद्गण, विश्वकर्मा, वसु, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, तथा छः ऋतुएँ भी वहाँ उपस्थित थीं। (२७-३३)

अपने पुत्र देवताओं के साथ धार्मिकों में श्रेष्ठ कश्यप ने ब्रह्मा की उस सर्वकाममयी, सर्वतेजोमयी, दिव्य, ब्रह्मर्षिगण सेवित, ब्रह्मतेज से युक्त, अचिन्त्य एवं खेदरहित सभा में प्रवेश किया तथा उन सभी देवों ने श्रेष्ठ आसन पर बैठे ब्रह्मा को देखकर ब्रह्मर्षियों के साथ शिरसे प्रणाम किया। (३४-३६)

परमात्मा के चरणों में प्रणाम कर नियमधारी वे सभी सर्वपापविमुक्त, विगतकल्मष एवं शान्त हो गये। (३७)

कश्यप के साथ आये हुये उन सभी देवताओं को देखकर महातेजस्वी देवेश्वर प्रभु ब्रह्मा ने कहा— (३८)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

४

ब्रह्मा ने कहा—"हे महाबलशाली देवगण ! आप सभी जिस लिये यहाँ आये हैं मैं पहले से ही उसके विषय में विचार कर रहा हूँ। (१)

हे सुरश्रेष्ठ ! आपलोग जो चाहते हैं वह सब पूरा होगा। दानवराज बल को जीतने वाले विश्वरचयिता न केवल देवों की अपि तु मेरी भी गति हैं। वे त्रैलोक्य के भी नेता और देवों के भी प्रभु हैं। (२-३)

जो सब लोकों के प्रभु सनातन विश्वेश एवं पूर्वज हैं

पूर्वजोऽयं सदाप्याहुरादिदेवं सनातनम् ॥ ४
तं देवापि महात्मानं न विदुः कोऽप्यसाविति ।
देवानस्मान् श्रुतिं विश्वं स वेत्ति पुरुषोत्तमः ॥ ५
तस्यैव तु प्रसादेन प्रवक्ष्ये परमां गतिम् ।
यत्र योगं समास्थाय तपश्चरति दुश्चरम् ॥ ६
क्षीरोदस्योत्तरे कूले उदीच्यां दिशि विश्वकृत् ।
अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः ॥ ७
भवन्तस्तत्र वै गत्वा तपसा शंसितव्रताः ।
अमृतं स्थानमासाद्य तपश्चरत दुश्चरम् ॥ ८
ततः श्रोष्यथ संघुष्टां स्निग्धगम्भीरनिःस्वनाम् ।
उष्णान्ते तोयदस्येव तोयपूर्णस्य निःस्वनम् ॥ ९
रक्तां पुष्टाक्षरां रम्यामभयां सर्वदा शिवाम् ।
वाणीं परमसंस्कारां वदतां ब्रह्मवादिनाम् ॥ १०
दिव्यां सत्यकरीं सत्यां सर्वकल्मषनाशिनीम् ।
सर्वदेवाधिदेवस्य ततोऽसौ भावितात्मनः ॥ ११
तस्य व्रतसमाप्त्यां तु योगव्रतविसर्जने ।

उन्हें ही सनातन आदिदेव भी कहा जाता है । (४)
उन महात्मा को देवादि नहीं जानते कि ये कौन हैं किन्तु वे पुरुषोत्तम देवों को, मुझे, श्रुति एवं विश्व को भी जानते हैं । (५)

उन्हीं के प्रसाद से मैं श्रेष्ठ उपाय बतलाता हूँ । आप सभी लोग उत्तरदिशा मे क्षीरसागर के उत्तरी किनारे पर उस स्थान पर जाइये जिसे मनीषी लोग अमृत नाम का श्रेष्ठ स्थान कहते हैं । विश्वकर्ता योगधारण कर वहाँ दुश्चर तप कर रहे हैं । तीक्ष्ण व्रतधारी आप लोग उस अमृत स्थान पर जाकर कठिन तप करें । (६–८)

तदनन्तर ग्रीष्म के अन्त मे जलपूर्ण मेघ के गर्जन के समान देवाधिदेव की शब्दमयी, स्निग्ध गम्भीर ध्वनिवाली, प्रेममयी, पुष्ट अक्षरों वाली, रमणीय, अभय, सर्वदामगलमयी, उच्चारण कर रहे ब्रह्मवादियों की वाणी के समान परमसंस्कार से युक्त, दिव्य, सत्यकारिणी, सत्य एवं समस्त पापों को को नाश करनेवाली वाणी को सुनोगे । तदनन्तर भावितात्मा (आत्मज्ञ) कश्यप के योगव्रत के विसर्जन के अवसर पर व्रत की समाप्ति होने पर वे महात्मा विष्णु जिनका तेज अमोघ है आपसे कहेंगे "हे सुरश्रेष्ठो । मेरे

अमोघं तस्य देवस्य विश्वतेजो महात्मनः ॥ १२
कस्य किं वो वरं देया ददामि वरदः स्थितः ।
स्वागतं वः सुरश्रेष्ठा मत्समीपमुपागताः ॥ १३
ततोऽदितिः कश्यपश्च गृह्णीयातां वरं तदा ।
प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै देवाय धीमते ॥ १४
भगवानेव नः पुत्रो भवत्विति प्रसीद नः ।
उक्तश्च परया वाचा तथाऽस्त्विति स वक्ष्यति ॥ १५
देवा ब्रुवन्ति ते सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च ।
तथाऽस्त्विति सुराः सर्वे प्रणम्य शिरसा प्रभुम् ।
श्वेतद्वीपं समुद्दिश्य गताः सौम्यदिशं प्रति ॥ १६
तेऽचिरेणैव संप्राप्ताः क्षीरोदं सरितां पतिम् ।
यथोद्दिष्टं भगवता ब्रह्मणा सत्यवादिना ॥ १७
ते क्रान्ताः सागरान् सर्वान् पर्वतांश्च सकाननान् ।
नदीश्च विविधा दिव्याः पृथिव्यां ते सुरोत्तमाः ॥ १८
अपश्यन्त तमो घोरं सर्वसत्त्वविवर्जितम् ।
अभास्करममर्यादं तमसा सर्वतो वृतम् ॥ १९

समीप आये हुये आप लोगों का स्वागत है । मैं वरदरूप से स्थित हूँ । किसे कौन सा वर दूं । (९–१३)

तदनन्तर अदिति और कश्यप उन धीमान् देव के चरणों मे शिरसे प्रणाम कर यह वर माँगे "भगवान् ही हमारे पुत्र बनें एतदर्थ आप हमारे ऊपर प्रसन्न हों" ऐसा कहते वे परावाणी से 'ऐसा ही हो' यह कहेंगे । (१४–१५)

कश्यप, अदिति एव सभी देवता 'ऐसा ही हो' यह कहने के उपरान्त प्रभु (ब्रह्मा) को शिरसे प्रणाम कर श्वेतद्वीप के उद्देश्य से उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किये । (१६)

वे अतिशीघ्र सत्यवादी भगवान् ब्रह्मा द्वारा बताये अनुसार क्षीरसमुद्र के तट पर पहुँच गये । (१७)

उन देव श्रेष्ठों ने पृथ्वी के सभी सागरों, कानन युक्त पर्वतों एव अनेक दिव्य नदियों को पार किया । (१८)

तदनन्तर उन लोगों ने समस्त प्राणियों से विहीन, सूर्यविहीन, सीमा रहित एवं चतुर्दिक् तमस् से घिरे हुये घोर अन्धकार को देखा । (१९)

अमृतं स्थानमासाद्य कश्यपेन महात्मना ।
दीक्षिताः कामदं दिव्यं व्रतं वर्षसहस्रकम् ॥ २०
प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते ।
नारायणाय देवाय सहस्राक्षाय भूतये ॥ २१
ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थानवीरासनेन च ।
क्रमेण च सुराः सर्वे तप उग्रं समास्थिताः ॥ २२
कश्यपस्तत्र भगवान् प्रसादार्थं महात्मनः ।
उदीरयत वेदोक्तं यमाहुः परमं स्तवम् ॥ २३

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्याय ॥४॥

५

कश्यप उवाच ।
नमोऽस्तु ते देवदेव एकश्रृङ्ग वृषार्चे
सिन्धुवृष वृषाकपे सुरवृष अनादिसंभव
रुद्र कपिल विष्वक्सेन सर्वभूतपते ध्रुव
धर्माधर्म वैकुण्ठ वृषावर्त्त अनादिमध्यनिधन
धनंजय शुचिश्रवः पृश्नितेजः निजजय [5]
अमृतेशय सनातन त्रिधाम तुषित महातत्त्व
लोकनाथ पद्मनाभ विरिञ्चे बहुरूप अक्षय
अक्षर हव्यभुज खण्डपरशो शक्र मुञ्जकेश
हंस महादक्षिण हृषीकेश सूक्ष्म महानियमधर
विरज लोकप्रतिष्ठ अरूप अग्रज धर्मज्ञ धर्मनाभ [10]
गभस्तिनाभ शतक्रतुनाभ चन्द्ररथ सूर्यतेजः
समुद्रवासः अजः सहस्रशिरः सहस्रपाद
अधोमुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्रबाहो
सहस्रमूर्त्ते सहस्रास्य सहस्रसंभव सहस्रसत्त्वं
त्वामाहुः । पुष्पहास चरम त्वमेव वौषट् [15]
वषट्कारं त्वामाहुरग्र्यं मखेषु प्राशितारं सहस्रधारं
च भूश्च भुवश्च स्वश्च त्वमेव वेदवेद्य ब्रह्मशय
ब्राह्मणप्रिय त्वमेव द्यौरसि मातरिश्वाऽसि
धर्मोऽसि होता पोता मन्ता नेता होमहेतुस् त्वमेव

उस अमृत स्थान पर पहुँच कर महात्मा कश्यप ने धीमान् योगी सुरेश्वर, कल्याणस्वरूप, सहस्राक्ष, नारायण देव की प्रसन्नता हेतु (देवताओं को) सहस्रवार्षिक दिव्य कामद व्रत की दीक्षा दी। (२०-२१)

सभी देवता क्रम पूर्वक ब्रह्मचर्य, मौन एवं स्थान वीरासन (आसन विशेष) धारण कर उग्र तप करने लगे। (२२)

वहाँ भगवान् कश्यप ने महात्मा विष्णु को प्रसन्न करने के लिये वेदोक्त स्तव का पाठ किया जिसे 'परमस्तव' कहते हैं। (२३)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

५

कश्यप ने कहा—'हे देव देव एकशृङ्ग, वृषार्चि, सिन्धुवृष, वृषाकपि, सुरवृष, अनादिसंभव, रुद्रकपिल, विष्वक्सेन, सर्वभूतपति, ध्रुव, धर्माधर्म, वैकुण्ठ, वृषावर्त्त, अनादिमध्यनिधन, धनञ्जय, शुचिश्रव, पृश्नितेज, निजजय, अमृतेशय, सनातन, त्रिधाम, तुषित, महातत्त्व, लोकनाथ, पद्मनाभ, विरिञ्चि, बहुरूप, अक्षय, अक्षर, हव्यभुज, खण्डपरशु, शक्र, मुञ्जकेश, हंस, महादक्षिण, हृषीकेश, सूक्ष्म, महानियमधर, विरज, लोकप्रतिष्ठ, अरूप, अग्रज, धर्मज्ञ, धर्मनाभ, गभस्तिनाभ, शतक्रतुनाभ, चन्द्ररथ, सूर्यतेज, समुद्रवास, अज, सहस्रशिर, सहस्रपाद, अधोमुख, महापुरुष, पुरुषोत्तम, सहस्रबाहु, सहस्रमूर्ति, सहस्रास्य, सहस्रसंभव ! आपको नमस्कार है ! आपको सहस्रसत्व कहते हैं। हे पुष्पहास, चरम ! आप ही वौषट् हैं एवं आपको ही वषट् कहते हैं। आपही अग्रय, यज्ञों में प्राशिता (भोक्ता) सहस्रधार, भू, भुव एवं स्व हैं। आपही वेदवेद्य, ब्रह्मशय, ब्राह्मणप्रिय, द्यौ, मातरिश्वा, धर्म, होता, पोता, मन्ता, नेता

अग्रय विश्वधाम्ना त्वमेव दिग्भिः सुभाण्ड [20]
इज्योऽसि सुमेधोऽसि समिधस्त्वमेव मतिर् गतिर्
दाता त्वमसि। मोक्षोऽसि योगोऽसि। सृजसि।
धाता परमयज्ञोऽसि सोमोऽसि दीक्षितोऽसि दक्षि-
णाऽसि विश्वमसि। स्थविर हिरण्यनाभ नारायण
त्रिनयन आदित्यवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष [25]
पुरुषोत्तम आदिदेव सुविक्रम प्रभाकर
शम्भो स्वयंभो भूतादि. महाभूतोऽसि विश्वभूत
विश्वं त्वमेव विश्वगोप्ताऽसि पवित्रमसि विश्वभव
ऊर्ध्वकर्म अमृत दिवस्पते वाचस्पते घृतार्चे
अनन्तकर्म वंश प्राग्वंश विश्वपास्त्वमेव [30]
वरार्थिना वरदोऽसि त्वम्।
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तुभ्यं होत्रात्मने नमः॥ १

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्याय ॥५॥

६

लोमहर्षण उवाच।
नारायणस्तु भगवाञ्छ्रुत्वैवं परमं स्तवम्।
ब्रह्मज्ञेन द्विजेन्द्रेण कश्यपेन समीरितम्॥ १
उवाच वचनं सम्यक् तुष्टः पुष्पदाक्षरम्।
श्रीमान् प्रीतमना देवो यद्वदेत् प्रभुरीश्वरः॥ २
वर वृणुध्वं भद्रं वो वरदोऽस्मि सुरोत्तमाः।
कश्यप उवाच।
प्रीतोऽसि नः सुरश्रेष्ठ सर्वेषामेव निश्चयः॥ ३
वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीनां नन्दिवर्धनः।
अदित्या अपि च श्रीमान् भगवानस्तु वै सुतः॥ ४

एव होमहेतु हैं। आप ही विश्वतेज के द्वारा अग्रय हैं और दिशाओं के द्वारा सुभाण्ड हैं अर्थात् दिशायें आपमे समाविष्ट हैं। आप इज्य, सुमेध, समिधा, मति, गति एव दाता हैं। आप ही मोक्ष, योग, स्रष्टा, धाता, परमयज्ञ, सोम, दीक्षित, दक्षिणा एव विश्व हैं। आप ही स्थविर, हिरण्यनाभ, नारायण, त्रिनयन, आदित्यवर्ण, आदित्यतेज, महापुरुष, पुरुषोत्तम, आदिदेव, सुविक्रम, प्रभाकर, शम्भु, स्वयम्भू, भूतादि, महाभूत, विश्वभूत एव विश्व हैं। आप ही ससार के रक्षक, पवित्र, विश्वभव, ऊर्ध्वकर्म, अमृत, दिवस्पति, वाचस्पति, घृतार्चि, अनन्तकर्म, वश, प्राग्वश, विश्वपा तथा वरार्थियों के वरदाता हैं।

चार (आश्रावय), चार (अस्तु श्रौपड्), दो (यज) तथा पाच (ये यजामहे) और पुन दो (वषट्) अक्षरों (इस प्रकार ४+४+२+५+२=१७ अक्षरों) से जिसको हवन होता है उस होत्रात्मक को नमस्कार है।

॥ श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

६

लोमहर्षण ने कहा—इस प्रकार ब्रह्मज्ञ द्विजवर कश्यप द्वारा की गई श्रेष्ठ स्तुति को सुन कर श्रीमान्, प्रभु, ईश्वर देव भगवान् नारायण ने अत्यन्त तुष्ट होकर प्रसन्नमन से पुष्पदाक्षरों से युक्त उपयुक्त वचन कहा—हे श्रेष्ठ देवताओ! वर मागो। तुम्हारा कल्याण हो, मैं वर दूँगा। कश्यप ने कहा—'हे सुरश्रेष्ठ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हम सभी का यह निश्चय है कि आप श्रीमान् भगवान् स्वय इन्द्र के लघु भ्राता के रूप से अदिति के ज्ञातिजनों के आनन्द वर्धक पुत्र बनें।" (१-४)

अदितिर्देवमाता च एतमेवार्थमुत्तमम् ।
पुत्रार्थं वरदं प्राह भगवन्तं वरार्थिनी ॥ ५

देवा ऊचुः ।

निःश्रेयसार्थं सर्वेषां दैवतानां महेश्वर ।
त्राता भर्त्ता च दाता च शरणं भव नः सदा ॥ ६
ततस्तानब्रवीद्विष्णुर्देवान् कश्यपमेव च ।
सर्वेषामेव युष्माकं ये भविष्यन्ति शत्रवः ।
मुहूर्त्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः ॥ ७
हत्वाऽसुरगणान् सर्वान् यज्ञभागाग्रभोजिनः ।
हव्यादांश्च सुरान् सर्वान् कव्यादांश्च पितॄनपि ॥ ८
करिष्ये विबुधश्रेष्ठाः पारमेष्ठ्येन कर्मणा ।
यथायातेन मार्गेण निवर्तध्वं सुरोत्तमाः ॥ ९

लोमहर्षण उवाच ।

एवमुक्ते तु देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
ततः प्रहृष्टमनसः पूजयन्ति स्म तं प्रभुम् ॥ १०
विश्वेदेवा महात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च ।
नमस्कृत्य सुरेशाय तस्मै देवाय रंहसा ॥ ११
प्रयाताः प्राग्दिशं सर्वे विपुलं कश्यपाश्रमम् ।
ते कश्यपाश्रमं गत्वा कुरुक्षेत्रवनं महत् ॥ १२
प्रसाद्य ह्यदितिं तत्र तपसे तां न्ययोजयन् ।
सा चचार तपो घोरं वर्षाणामयुतं तदा ॥ १३
तस्या नाम्ना वनं दिव्यं सर्वकामप्रदं शुभम् ।
आराधनाय कृष्णस्य वाग्जिता वायुभोजना ॥ १४
दैत्यैर्निराकृतान् दृष्ट्वा तनयानृषिसत्तमाः ।
वृथापुत्राऽहमिति सा निर्वेदात् प्रणयाद्धरिम् ।
तुष्टाव वाग्भिरग्र्याभिः परमार्थावबोधिनी ॥ १५
शरण्यं शरणं विष्णुं प्रणता भक्तवत्सलम् ।
देवदैत्यमयं चादिमध्यमान्तस्वरूपिणम् ॥ १६

अदितिरुवाच ।

नमः कृत्यार्तिनाशाय नमः पुष्करमालिने ।
नमः परमकल्याण कल्याणायादिवेधसे ॥ १७
नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये ।
नमः पङ्कजसंभूतिसंभवायात्मयोनये ॥ १८
श्रियः कान्ताय दान्ताय दान्तदृश्याय चक्रिणे ।

वरार्थिनी देवमाता अदिति ने भी वरदाता भगवान् से पुत्रार्थ इसी उत्तम प्रयोजन को कहा । (५)

देवों ने कहा—हे महेश्वर ! सभी देवों के परम कल्याण के निमित्त आप हमारे सदा रक्षक, भरण कर्ता, दाता एवं शरण बनें । (६)

तदनन्तर भगवान् विष्णु ने उन देवताओं तथा कश्यप से कहा—आप सभी के जितने भी शत्रु होंगे वे क्षणमात्र भी मेरे सम्मुख नहीं ठहरेंगे । (७)

हे देवश्रेष्ठो ! पारमेष्ठ्य कर्म द्वारा मैं सभी असुरों को मार कर देवताओं को यज्ञभागाग्रभोजी एवं हव्यभोजी तथा पितृगणों को कव्यभोजी बनाऊँगा । हे श्रेष्ठदेवो ! आप लोग जिस मार्ग से आये हैं उसी से लौट जाय । (८-९)

लोमहर्षण ने कहा—प्रभावशाली देव विष्णु के ऐसा कहने पर सभी महात्मा देवगण, कश्यप एवं अदिति ने प्रसन्न मन से प्रभु का पूजन किया एवं सुरेश्वर को प्रणाम करने के उपरान्त पूर्व दिशा में स्थित कश्यप के विपुल आश्रम को वेगपूर्वक चले गये । कुरुक्षेत्रवन में स्थित कश्यप के महान् आश्रम में पहुँच कर उन लोगों ने अदिति को प्रसन्न करने के उपरांत उसे तप करने में नियोजित किया तदनन्तर उसने दश सहस्र वर्षों तक घोर तप किया । (१०-१३)

हे ऋषिश्रेष्ठो ! (जिस वन में उसने तप किया) उस सर्व कामनाओं को देने वाले, कल्याणकारी दिव्य वन का उस (अदिति) के नाम पर (अदितिवन) नाम पड़ा। हे ऋषिश्रेष्ठो ! दैत्यों के द्वारा अपने पुत्रों को तिरस्कृत देखकर अपने को व्यर्थपुत्रवाली समझती हुई कृष्ण की आराधना के लिए वाणी को जीतकर तथा वायु का भोजन करती हुई परमार्थ को जानने वाली अदिति ने ग्लानियुक्त तथा विनम्र होकर शरण्य, शरण, भक्तवत्सल, देवदैत्यमय, आदि मध्य अन्तस्वरूपी विष्णु की श्रेष्ठ वाणियों से स्तुति की । (१४-१६)

अदिति ने कहा—कृत्या से उत्पन्न दुःख के नाशक को नमस्कार है, पुष्कर की माला धारण करने वाले को नमस्कार है हे परम मंगलकारी ! कल्याणस्वरूप आदिविधाता आप को नमस्कार है । (१७)

पङ्कजनेत्र को नमस्कार है। पङ्कजनाभि को नमस्कार है। पङ्कजसम्भूति (ब्रह्मा) के संभव (उत्पत्तिस्थान) को एवं आत्मयोनि को नमस्कार है । (१८)

नम॰ पद्मासिहस्ताय नमः कनकरेतसे ॥ १९
तथात्मज्ञानयज्ञाय योगिचिन्त्याय योगिने।
निर्गुणाय विशेषाय हरये ब्रह्मरूपिणे ॥ २०
जगच्च तिष्ठते यत्र जगतो यो न दृश्यते।
नमः स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शार्ङ्गिणे ॥ २१
यं न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलं नरा.।
अपश्यद्भिर्जगयश्च दृश्यते हृदि संस्थित. ॥ २२
बहिर्ज्योतिरलक्ष्यो यो लक्ष्यते ज्योतिषः परः।
यस्मिन्नेव यतश्चैव यस्यैतदखिल जगत् ॥ २३
तस्मै समस्तजगताममराय नमो नमः।
आद्यः प्रजापतिः सोऽपि पितृणां परमः पतिः।
पतिः सुराणां यस्तस्मै नमः कृष्णाय वेधसे ॥ २४
यः प्रवृत्तैर्निवृत्तैश्च कर्मभिस्तु विरज्यते।
स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभृते ॥ २५
यस्तु सचिन्त्यमानोऽपि सर्वं पापं व्यपोहति।
नमस्तस्मै विशुद्धाय परस्मै हरिमेधसे ॥ २६
ये पश्यन्त्यखिलाधारमीशानमजमव्ययम्।
न पुनर्जन्ममरण प्राप्नुवन्ति नमामि तम् ॥ २७
यो यज्ञो यज्ञपरमैरिज्यते यज्ञसंस्थितः।
तं यज्ञपुरुष विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम् ॥ २८
गीयते सर्ववेदेषु वेदविद्भिर्विदां गति.।
यस्तस्मै वेदवेद्याय नित्याय विष्णवे नम. ॥ २९
यतो विश्व समुद्भूत यस्मिन् प्रलयमेष्यति।
विश्वोद्भवप्रतिष्ठाय नमस्तस्मै महात्मने ॥ ३०
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त व्याप्त येन चराचरम्।
मायाजालसमुनद्ध तमुपेन्द्र नमाम्यहम् ॥ ३१
योऽत्र तोयस्वरूपस्थो बिभर्त्यखिलमीश्वरः।
विश्वं विश्वपतिं विष्णुं त नमामि प्रजापतिम् ॥ ३२
मूर्तं तमोऽसुरमयं तद्विधो विनिहन्ति यः।
रात्रिजं सूर्यरूपी च तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ ३३

लक्ष्मीपति, इन्द्रियदमनकारी, संयमियों से दृश्य, चक्रधारी, हाथ में कमल तथा तलवार धारण करने वाले कनकरेता को नमस्कार है। (१९)

आत्मज्ञानयज्ञ, योगिचिन्त्य, योगी, निर्गुण, विशेष, हरि एव ब्रह्मरूपी को नमस्कार है। (२०)

जिनमें जगत् स्थित है किन्तु जो जगत् से दृश्य नहीं है ऐसे स्थूल तथा अति सूक्ष्म उन शार्ङ्गधारी देव को नमस्कार है। (२१)

सम्पूर्ण जगत् को देखने वाले मनुष्य जिनको नहीं देख सकते, किन्तु जगत् को न देखने वाले जिन्हें हृदय स्थित देखते हैं, जो बहिर्ज्योति एव अलक्ष्य हैं तथा ज्योति मे श्रेष्ठ *लक्षित होते हैं एव यह सम्पूर्ण जगत् जिनमें (स्थित)* है, जिनसे (उत्पन्न) है तथा जिनका है उन समस्त जगत् के देव को बार-बार नमस्कार है। जो आद्य प्रजापति, पितृगणों के श्रेष्ठ स्वामी एव देवों के पति हैं उन विधाता कृष्ण को नमस्कार। (२२-२४)

जो प्रवृत्त एव निवृत्त कर्मों से विरक्त तथा स्वर्ग और मोक्ष फल को देने वाले हैं उन गदाधारी को नमस्कार है। (२५)

जो सम्यक् स्मरण करने पर सब पापों को नष्ट कर देते हैं, उन विशुद्ध हरिमेधा परमात्मा को नमस्कार है। (२६)

अखिलाधार, ईशान, अज और अव्यय भगवान् को जो देखते हैं वे जन्म और मरण को पुन नहीं प्राप्त होते। उन भगवान् को मैं प्रणाम करती हूँ। (२७)

परम यज्ञों द्वारा आराधित होते हैं उन यज्ञस्वरूप, यज्ञसंस्थित, यज्ञपुरुष, ईश्वर, प्रभु विष्णु को मैं नमस्कार करती हूँ। (२८)

वेदज्ञों द्वारा सभी वेदों में प्रगीत, विद्वज्जनों की गति स्वरूप, वेदवेद्य, नित्यस्वरूप विष्णु को मेरा नमस्कार है। (२९)

विश्व जिनसे समुद्भूत हुआ है, जिनमें विलीन होगा तथा जो विश्व के उद्भव तथा प्रतिष्ठास्वरूप हैं उन महात्मा को नमस्कार है। *(३०)*

जिनके द्वारा मायाजाल से बधा हुआ आब्रह्मस्तम्ब चराचर (विश्व) व्याप्त है उन उपेन्द्र को मैं नमस्कार करती हूँ। (३१)

जो जल स्वरूपस्थ ईश्वर अखिल विश्वका भरण करते हैं उन विश्वपति एव प्रजापति विष्णु को मैं नमस्कार करती हूँ। (३२)

जो सूर्यरूपी उपेन्द्र असुरमय रात्रिज मूर्त्त तम का विनाश करते हैं मैं उनको प्रणाम करती हूँ। (३३)

यस्याक्षिणी चन्द्रसूर्यौ सर्वलोकशुभाशुभम् ।
पश्यतः कर्म सततं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ ३४
यस्मिन् सर्वेश्वरे सर्वं सत्यमेतन्मयोदितम् ।
नानृतं तमजं विष्णुं नमामि प्रभवाव्ययम् ॥ ३५
यथैतत्सत्यमुक्तं मे भूयश्चातो जनार्दन ।
सत्येन तेन सकलाः पूर्यन्तां मे मनोरथाः ॥ ३६

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

७

लोमहर्षण उवाच ।
एवं स्तुतोऽथ भगवान् वासुदेव उवाच ताम् ।
अदृश्यः सर्वभूतानां तस्याः संदर्शने स्थितः ॥ १
श्रीभगवानुवाच ।
मनोरथांस्त्वमदिते यानिच्छस्यभिवाञ्छितान् ।
तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे मत्प्रसादान्न संशयः ॥ २
शृणु त्वं च महाभागे वरो यस्ते हृदि स्थितः ।
मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद् भविष्यति ॥ ३
यश्चेह त्वद्वने स्थित्वा त्रिरात्रं वै करिष्यति ।
सर्वे कामाः समृध्यन्ते मनसा यानिहेच्छति ॥ ४
दूरस्थोऽपि वनं यस्तु अदित्याः स्मरते नरः ।
सोऽपि याति परं स्थानं किं पुनर्निवसन् नरः ॥ ५
यश्चेह ब्राह्मणान् पञ्च त्रीन् वा द्वावेकमेव वा ।
भोजयेच्छ्रद्धया युक्तः स याति परमां गतिम् ॥ ६
अदितिरुवाच ।
यदि देव प्रसन्नस्त्वं भक्त्या मे भक्तवत्सल ।
त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तु मम वासवः ॥ ७
हृतं राज्यं हृतश्चास्य यज्ञभाग इहासुरैः ।
त्वयि प्रसन्ने वरद तत् प्राप्नोतु सुतो मम ॥ ८

जिनकी सूर्य चन्द्रमा रूप दोनों आँखें समस्त लोकों के शुभाशुभ कर्मों को सतत देखती रहती हैं उन उपेन्द्र को मैं नमस्कार करती हूँ । (३४)

जिन सर्वेश्वर के विषय में मेरा यह समस्त कथन सत्य है तथा असत्य नहीं है उन अजन्मा, अव्यय एवं स्रष्टा विष्णु को मैं नमस्कार करती हूँ । (३५)

हे जनार्दन ! यदि मैंने यह सत्य कहा है, तो इस सत्य के प्रभाव से मेरे सब मनोरथ परिपूर्ण हों । (३६)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में छठवाँ अध्याय समाप्त ॥६॥

७

लोमहर्षण ने कहा—इस प्रकार सस्तुत समस्त प्राणियों से अदृश्य भगवान् वासुदेव उसके सम्मुख प्रत्यक्ष होकर बोले । (१)

श्रीभगवान् ने कहा—"हे धर्मज्ञ अदिति ! जिन अभिवाञ्छित मनोरथों को तुम चाहती हो उन्हें मेरी कृपा से तुम निस्सन्देह प्राप्त करोगी । (२)

हे महाभागे ! सुनो, तुम्हारे मन में जो वर है (उसे मांगो) मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होगा । (३)

तुम्हारे इस वन में रह कर जो तीन रात्रियों तक निवास करेगा उसकी सभी मनोवाञ्छित कामनायें सफल होंगी । (४)

दूर रह कर भी जो मनुष्य अदिति के वन का स्मरण करता है वह भी परम धाम को प्राप्त कर लेता है । फिर यहाँ रहने वाले मनुष्य की तो बात ही क्या है ? (५)

जो इस स्थान पर पाँच, तीन, दो या एक भी ब्राह्मण को श्रद्धा युक्त होकर भोजन करायेगा वह उत्तम गति को प्राप्त करेगा । (६)

अदिति ने कहा—हे भक्तवत्सल देव ! यदि आप मेरी भक्ति से प्रसन्न हैं तो मेरे पुत्र इन्द्र त्रैलोक्य के स्वामी बनें । (७)

असुरों ने उसके राज्य और यज्ञभाग का अपहरण कर लिया है । हे वरद ! आपके प्रसन्न होने पर मेरा पुत्र उसे

हृतं राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य केशव ।
प्रपन्नदायविभ्रंशो बाधां मे कुरुते हृदि ॥ ९

श्रीभगवानुवाच ।

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितम् ।
स्वांशेन चैव ते गर्भे संभविष्यामि कश्यपात् ॥ १०
तव गर्भे समुद्भूतस्ततस्ते ये त्वरातयः ।
तानहं च हनिष्यामि निवृत्ता भव नन्दिनि ॥ ११

अदितिरुवाच ।

प्रसीद देवदेवेश नमस्ते विश्वभावन ।
नाहं त्वामुदरे वोढुमीश शक्ष्यामि केशव ।
यस्मिन् प्रतिष्ठितं सर्वं विश्वयोनिस्त्वमीश्वरः ॥ १२

श्रीभगवानुवाच ।

अहं त्वां च वहिष्यामि आत्मानं चैव नन्दिनि ।
न च पीडा करिष्यामि स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥ १३
इत्युक्त्वान्तर्हिते देवेऽदितिर्गर्भं समादधे ।
गर्भस्थिते ततः कृष्णे चचाल सकला क्षितिः ।
चकम्पिरे महाशैला जग्मुः क्षोभं महाब्धयः ॥ १४
यतो यतोऽदितिर्याति ददाति पदमुत्तमम् ।
ततस्ततः क्षितिः खेदान्ननाम द्विजपुंगवाः ॥ १५
दैत्यानामपि सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने ।
बभूव तेजसो हानिर्यथोक्तं परमेष्ठिना ॥ १६

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये सप्तमोऽध्याय ॥७॥

प्राप्त करे। (८)

हे केशव ! पुत्र का राज्यापहरण मेरे दुःख का कारण नहीं है अपितु शरणागत के दाय (हिस्से) का छिन जाना मेरे हृदय को पीडित कर रहा है। (९)

श्रीभगवान् ने कहा—हे देवि ! तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैंने तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया है। अपने अंश से कश्यप के द्वारा तुम्हारे गर्भ से मैं जन्म धारण करूंगा। (१०)

तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होकर तुम्हारे सभी शत्रुओं को मैं मारूंगा। हे नन्दिनि ! लौट जाओ। (११)

अदिति ने कहा—हे देवदेवेश ! आप प्रसन्न हों। हे विश्वभावन ! आपको नमस्कार है। हे केशव ! हे ईश ! जिसके भीतर सभी कुछ प्रतिष्ठित हैं ऐसे आपको मैं अपने उदर में वहन न कर सकूँगी। आप विश्वयोनि एवं ईश्वर हैं। (१२)

श्रीभगवान् ने कहा—हे नन्दिनी ! मैं तुमको और अपने को भी वहन करूँगा। मैं तुम्हें कष्ट न दूँगा। तुम्हारा कल्याण हो, मैं जाता हूँ। (१३)

यह कह कर भगवान् के अन्तर्हित हो जाने पर अदिति ने गर्भधारण किया। कृष्ण के गर्भ में आने पर समस्त पृथ्वी चञ्चल हो उठी। पर्वत प्रकम्पित होने लगे एवं महासमुद्र प्रक्षुब्ध हो गए। (१४)

हे द्विजश्रेष्ठो ! अदिति जहाँ जहाँ जाती या पैर रखती थीं वहाँ वहाँ की पृथ्वी खेद के कारण नम्र हो जाती थी। (१५)

जैसा कि ब्रह्मा ने (पहले) कहा था मधुसूदन के गर्भस्थ होने पर सभी दैत्यों के तेज की हानि हो गई। (१६)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में सातवां अध्याय समाप्त ॥७॥

८

लोमहर्षण उवाच ।

निस्तेजसोऽसुरान् दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः ।
प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम् ॥ १

बलिरुवाच ।

तात निस्तेजसो दैत्या निर्दग्धा इव वह्निना ।
किमेते सहसैवाद्य ब्रह्मदण्डहता इव ॥ २
दुरिष्टं किं तु दैत्यानां किं कृत्या विधिनिर्मिता ।
नाशायैषां समुद्भूता येन निस्तेजसोऽसुराः ॥ ३

लोमहर्षण उवाच ।

इत्यसुरवरस्तेन पृष्टः पौत्रेण ब्राह्मणाः ।
चिरं ध्यात्वा जगादेदमसुरं तं तदा बलिम् ॥ ४

प्रह्लाद उवाच ।

चलन्ति गिरयो भूमिर्जहाति सहसा धृतिम् ।
सद्यः समुद्राः क्षुभिता दैत्या निस्तेजसः कृताः ॥ ५
सूर्योदये यथा पूर्वं तथा गच्छन्ति न ग्रहाः ।
देवानां च परा लक्ष्मीः कारणेनानुमीयते ॥ ६
महदेतन्महाबाहो कारणं दानवेश्वर ।
न ह्यल्पमिति मन्तव्यं त्वया कार्यं कथंचन ॥ ७

लोमहर्षण उवाच ।

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः ।
अत्यर्थभक्तो देवेशं जगाम मनसा हरिम् ॥ ८
स ध्यानपथगं कृत्वा प्रह्लादश्च मनोऽसुरः ।
विचारयामास ततो यथा देवो जनार्दनः ॥ ९
स ददर्शोदरेऽदित्याः प्रह्लादो वामनाकृतिम् ।
तदन्तश्च वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ॥ १०
साध्यान् विश्वे तथादित्यान् गन्धर्वोरगराक्षसान् ।
विरोचनं च तनयं बलिं चासुरनायकम् ॥ ११
जम्भं कुजम्भं नरकं बाणमन्यांस्तथासुरान् ।
आत्मानमुर्वीं गगनं वायुं वारि हुताशनम् ॥ १२
समुद्राद्रिसरिद्द्वीपान् सरांसि च पशून् महीम् ।

८

लोमहर्षण ने कहा—तदनन्तर असुरराज बलि ने समस्त असुरों को निस्तेज हुआ देख कर अपने पितामह प्रह्लाद से पूछा। (१)

बलि ने कहा—हे तात! अग्निदग्ध के सदृश दैत्य निस्तेज हो गए हैं। ये आज सहसा ब्रह्मदण्ड से हत के सदृश क्यों हो गये हैं? (२)

क्या दैत्यों का कोई अनिष्ट उपस्थित हुआ है? अथवा क्या इनके नाश हेतु विधिनिर्मित कृत्या समुद्भूत हुई है जिससे असुर लोग निस्तेज हो गए हैं। (३)

लोमहर्षण ने कहा हे ब्राह्मणो! पौत्र से इस प्रकार पूछे जाने पर असुरश्रेष्ठ प्रह्लाद ने देर तक ध्यान लगाने के उपरान्त असुर बलि से कहा। (४)

प्रह्लाद ने कहा—पर्वत डगमगा रहे हैं, पृथ्वी सहसा धैर्य को छोड़ रही है, समुद्र सद्यः क्षुब्ध हो रहे हैं एवं दैत्य निस्तेज कर दिये गये हैं। (५)

पहले के सदृश सूर्योदय होने पर ग्रह नहीं चल रहे हैं। कारण के द्वारा देवताओं की उत्कृष्ट लक्ष्मी का अनुमान होता है। (६)

हे महाबाहु! हे दानवेश्वर! यह कोई महान कारण है। इसे कोई छोटी बात नहीं समझनी चाहिये और इसका आपको कोई उपाय करना चाहिये (अथवा इसके कार्य (परिणाम) को आप किसी भी भांति छोटा न समझें)। (७)

लोमहर्षण ने कहा—दैत्यराज बलि से ऐसा कह कर असुरश्रेष्ठ महाभक्त प्रह्लाद मन से भगवान् के शरणागत हुए। (८)

असुर प्रह्लाद मन को ध्यानपथगामी बना कर जनार्दन देव के स्वरूप का चिन्तन करने लगे। (९)

उन्होंने अदिति के उदर में वामनाकृति (भगवान्) को देखा। उनके भीतर वसुगण, रुद्रों, दोनों अश्विनीकुमारों, मरुतों, साध्यों, विश्वेदेवगण, आदित्यों, गन्धर्वों, उरगों,

वयोमनुष्यानखिलांस्तथैव च सरीसृपान् ॥ १३
समस्तलोकस्रष्टारं ब्रह्माणं भवमेव च ।
ग्रहनक्षत्रताराश्च दक्षाद्यांश्च प्रजापतीन् ॥ १४
संपश्यन् विस्मयाविष्टः प्रकृतिस्थः क्षणात् पुनः ।
प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं बलिं वैरोचनिं ततः ॥ १५
तत्संज्ञातं मया सर्वं यदर्थं भवतामियम् ।
तेजसो हानिरुत्पन्ना शृण्वन्तु तदशेषतः ॥ १६
देवदेवो जगद्योनिरयोनिर्जगदादिजः ।
अनादिरादिर्विश्वस्य वरेण्यो वरदो हरिः ॥ १७
परावराणां परमः परापरसतां गतिः ।
प्रभुः प्रमाणं मानानां सप्तलोकगुरोर्गुरुः ।
स्थितिं कर्तुं जगन्नाथः सोऽचिन्त्यो गर्भतां गतः ॥ १८
प्रभुः प्रभूणां परमः पराणा-
मनादिमध्यो भगवाननन्तः ।
त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेकः
कर्तुं महात्माऽदितिजोऽवतीर्णः ॥ १९
न यस्य रुद्रो न च पद्मयोनि-
र्नेन्द्रो न सूर्येन्दुमरीचिमिश्राः ।
जानन्ति दैत्याधिप यत्स्वरूपं
स वासुदेवः कलयावतीर्णः ॥ २०
यमक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यं ज्ञानविधूतपापाः ।
यस्मिन् प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति
तं वासुदेवं प्रणमामि देवम् ॥ २१
भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति
यथोर्मयस्तोयनिधेरजस्रम् ।
लयं च यस्मिन् प्रलये प्रयान्ति
तं वासुदेवं प्रणतोऽस्म्यचिन्त्यम् ॥ २२
न यस्य रूपं न बलं प्रभावो
न च प्रतापः परमस्य पुंसः ।
विज्ञायते सर्वपितामहाद्यै-
स्तं वासुदेवं प्रणमामि नित्यम् ॥ २३

राक्षसों, अपने पुत्र विरोचन, असुरनायक बलि, जम्भ, कुजम्भ, नरक, बाण, अन्य अनेक असुरों एवं स्वयं को तथा पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, समुद्रों, पर्वतों, नदियों, द्वीपों, सरों, पशुओं, पृथ्वी, पक्षियों, समस्त मनुष्यों, सरीसृपों, समस्त लोकों के स्रष्टा ब्रह्मा, शिव, ग्रहों, नक्षत्रों, ताराओं तथा दक्षादि प्रजापतियों को देखने से प्रह्लाद विस्मयाविष्ट हो गए। किन्तु क्षणमात्र में पुनः प्रकृतिस्थ होकर उन्होंने विरोचनपुत्र दैत्येन्द्र बलि से कहा— (१०-१५)

तुम लोगों की यह तेज हानि जिस कारण उत्पन्न हुई है उसे मैं पूरा जान गया। तुम लोग उसे पूर्णरूपेण सुनो— (१६)

देवदेव, जगद्योनि, अयोनि, जगदादि में उत्पन्न, अनादि, विश्वके आदि, वरेण्य, वरद, हरि, परावरों में सर्वश्रेष्ठ, पर-अपर-सज्जनों की गति, मानों के प्रमाणभूत प्रभु, सप्त लोक के गुरुओं के गुरु एवं अचिन्त्य जगन्नाथ (जगत् में) स्थिति करने के निमित्त गर्भस्थ हुए हैं। (१७-१८)

प्रभुओं के प्रभु, श्रेष्ठों में श्रेष्ठ, आदि मध्य-हीन, अनन्त महात्मा भगवान् अकेले जगत् को सनाथ करने के लिये अदिति के पुत्र रूप में अवतार ग्रहण किये हैं। (१९)

हे दैत्याधिप ! रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा एवं मरीचि आदि जिनके स्वरूप को नहीं जानते वे ही वासुदेव एक कला से अवतीर्ण हुए हैं। (२०)

वेदज्ञ लोग जिन्हें अक्षर कहते हैं, ज्ञान से पापरहित हुए प्राणी जिनमें प्रविष्ट होते हैं एवं जिनके भीतर प्रविष्ट हुए लोग पुनः उत्पन्न नहीं होते ऐसे उन वासुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ। (२१)

समुद्र की तरङ्गों के सदृश जिनसे समस्त भूत सतत उत्पन्न होते तथा प्रलयकाल में जिनके भीतर विलीन होते हैं उन अचिन्त्य वासुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ। (२२)

ब्रह्मा आदि जिन परम पुरुष के रूप, बल, प्रभाव और प्रताप को नहीं जानते उन वासुदेव को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। (२३)

रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे त्वगेषा
स्पर्शग्रहित्री रसना रसस्य।
घ्राणं च गन्धग्रहणे नियुक्तं
न घ्राणचक्षुः श्रवणादि तस्य ॥ २४
स्वयंप्रकाशः परमार्थतो यः
सर्वेश्वरो वेदितव्यः स युक्त्या।
शक्यं तमीड्यमनघं च देवं
ग्राह्यं नतोऽहं हरिमीशितारम् ॥ २५
येनैकदंष्ट्रेण समुद्धृतेयं
धराऽचला धारयतीह सर्वम्।
शेते ग्रसित्वा सकलं जगद् य-
स्तमीड्यमीशं प्रणतोऽस्मि विष्णुम् ॥ २६
अंशावतीर्णेन च येन गर्भे
हृतानि तेजांसि महाऽसुराणाम्।
नमामि तं देवमनन्तमीश-
मशेषसंसारतरोः कुठारम् ॥ २७
देवो जगद्योनिरयं महात्मा
स षोडशांशेन महाऽसुरेन्द्राः।
सुरेन्द्रमातुर्जठरं प्रविष्टो
हृतानि वस्तेन बलं वपूंषि ॥ २८

बलिरुवाच।

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम्।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिकाः ॥ २९
विप्रचित्तिः शिबिः शंकुरयःशंकुस्तथैव च।
हयशिरा अश्वशिरा भङ्गकारो महाहनुः ॥ ३०
प्रतापी प्रघसः शंभुः कुक्कुराक्षश्च दुर्जयः।
एते चान्ये च मे सन्ति दैतेया दानवास्तथा ॥ ३१
महाबला महावीर्या भूभारधरणक्षमाः।
एषामेकैकशः कृष्णो न वीर्यार्द्धेन संमितः ॥ ३२

लोमहर्षण उवाच।

पौत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः।
सक्रोधश्च बलिं प्राह वैकुण्ठाक्षेपवादिनम् ॥ ३३
विनाशमुपयास्यन्ति दैत्या ये चापि दानवाः।
येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बुद्धिरविवेकवान् ॥ ३४
देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम्।
त्वामृते पापसङ्कल्प कोऽन्य एवं वदिष्यति ॥ ३५

नेत्र को रूप देखने के लिये, त्वचा को स्पर्श ग्रहण करने के लिये, जिह्वा को स्वाद लेने के लिये और नासिका को गंध सूंघने के लिये जिन्होंने नियुक्त किया है उन्हें नासिका, नेत्र और श्रवण आदि नहीं हैं। (२४)

जो वस्तुतः स्वयं प्रकाश हैं वे सर्वेश्वर युक्ति से ज्ञेय हैं। उन समर्थ, स्तुत्य, निष्पाप, ग्राह्य, ईश हरि देव को मैं प्रणाम करता हूँ। (२५)

जिनके द्वारा एक दंष्ट्रा से निकाली गई अचल धरा सभी कुछ धारण करती है तथा जो समस्त जगत् को अपने में विलीन कर शयन करते हैं उन स्तुत्य ईश विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ। (२६)

जिन्होंने अंश से गर्भ में अवतीर्ण होकर महासुरों के तेज का हरण कर लिया उन समस्त संसाररूपी वृक्ष के कुठार स्वरूप अनन्त देवेश को मैं प्रणाम करता हूँ। (२७)

हे महासुरो! जगद्योनिस्वरूप वे ही महात्मा देव अपनी षोडशांश कला से इन्द्र की माता के गर्भ में प्रविष्ट हुए हैं एवं उन्होंने ही तुम लोगों के शरीर के बल का अपहरण किया है। (२८)

बलि ने कहा—हे तात! जिनसे हमें भय प्राप्त हुआ है वे हरि कौन हैं? हमारे पास वासुदेव से अधिक बलवान् सैकड़ों दैत्य हैं। (२९)

विप्रचित्ति, शिबि, शङ्कु, अयःशङ्कु, हयशिरा, अश्वशिरा, भङ्गकार, महाहनु, प्रतापी, प्रघस, शम्भु, दुर्जय एवं कुक्कुराक्ष ये तथा अन्य भी मेरे अनेक दैत्य तथा दानव हैं। (३०-३१)

ये सभी महाबलवान् एवं महापराक्रमी तथा भूभार को धारण करने में समर्थ हैं। इनमें से एक एक के आधे बल के भी तुल्य कृष्ण नहीं हैं। (३२)

लोमहर्षण ने कहा—पौत्र के इस वचन को सुन क्रुद्ध दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद ने भगवान् पर आक्षेप करने वाले बलि से कहा— (३३)

तुझ दुर्बुद्धि एवं अविवेकी राजा से युक्त ये सभी दैत्य एवं दानव विनष्ट हो जायेंगे। (३४)

हे पापसङ्कल्प! तुम्हारे अतिरिक्त ऐसा कौन है जो देवाधिदेव महाभाग अज एवं विभु वासुदेव को ऐसा कहेगा। (३५)

य एते भवता प्रोक्ताः समस्ता दैत्यदानवाः ।
सब्रह्मकास्तथा देवाः स्थावरान्ता विभूतयः ॥ ३६
त्वं चाहं च जगच्चेदं साद्रिद्रुमनदीवनम् ।
ससमुद्रद्वीपलोकोऽयं यश्चेदं सचराचरम् ॥ ३७
यस्याभिवाद्यवन्द्यस्य व्यापिनः परमात्मनः ।
एकांशांशकलाजन्म कस्तमेवं प्रवक्ष्यति ॥ ३८
ऋते विनाशाभिमुखं त्वामेकमविवेकिनम् ।
दुर्बुद्धिमजितात्मानं वृद्धानां शासनातिगम् ॥ ३९
शोच्योऽहं यस्य मे गेहे जातस्तव पिताऽधमः ।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो देवदेवावमानकः ॥ ४०
तिष्ठत्वनेकसंसारसंघातौघविनाशिनि ।
कृष्णे भक्तिरहं तावदवेक्ष्यो भवता न किम् ॥ ४१
न मे प्रियतरः कृष्णादपि देहोऽयमात्मनः ।
इति जानात्ययं लोको भवांश्च दितिनन्दन ॥ ४२
जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम ।
निन्दां करोषि तस्य त्वमकुर्वन् गौरवं मम ॥ ४३
विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले ।
ममापि सर्वजगतां गुरुर्नारायणो हरिः ॥ ४४
निन्दां करोषि तस्मिंस्त्वं कृष्णे गुरुगुरोर्गुरौ ।
यस्मात् तस्मादिहैव त्वमैश्वर्याद् भ्रंशमेष्यसि ॥ ४५
स देवो जगतां नाथो बले प्रभुर्जनार्दनः ।
नन्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते भक्तिमानत्र मे गुरुः ॥ ४६
एतावन्मात्रमप्यत्र निन्दता जगतो गुरुम् ।
नापेक्षितस्त्वया यस्मात् तस्माच्छापं ददामि ते ॥ ४७
यथा मे शिरसश्छेदादिदं गुरुतरं बले ।
त्वयोक्तमच्युताक्षेपं राज्यभ्रष्टस्तथा पत ॥ ४८
यथा न कृष्णादपरः परित्राणं भवार्णवे ।
तथाऽचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम् ॥ ४९

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

तुम्हारे द्वारा कथित ये सभी दैत्य एवं दानव, ब्रह्मा सहित सभी देवता तथा स्थावरपर्यन्त विभूतियाँ, तुम, मैं, पर्वत, वृक्ष, नदी और वन से युक्त जगत्, तथा समुद्रों एवं द्वीपों से युक्त यह लोक तथा सचराचर जिन वन्दनीय श्रेष्ठ सर्वव्यापी परमात्मा के एकांश की अंशकला से उत्पन्न हुआ है उनके विषय में विनाशाभिमुख, अविवेकी, दुर्बुद्धि, अजितात्मा, वृद्धों के शासन का अतिक्रमण करने वाले तुम्हारे अतिरिक्त कौन ऐसा कहेगा ? (३६-३९)

मैं भी शोचनीय हूँ जिसके घर में तुम्हारा अधम पिता उत्पन्न हुआ जिसका तुम्हारे जैसा देवदेव (विष्णु) का अपमानकारी पुत्र है। (४०)

अनेक संसार समूह के प्रवाह के विनाशक कृष्ण में भक्ति करना तो अलग रहा तुम्हें क्या मेरा भी ख्याल नहीं करना चाहिये था ? (४१)

हे दितिनन्दन ! समस्त संसार एवं तुम भी यह जानते हो कि मुझे मेरी यह देह भी कृष्ण से प्रियतर नहीं है। (४२)

यह जानते हुए भी कि हरि मुझे प्राणों से भी प्रियतर हैं तुम मेरा अनादर करते हुए उनकी निन्दा कर रहे हो। (४३)

हे बलि ! तुम्हारा गुरु (पिता) विरोचन है, उसका गुरु (पिता) मैं हूँ तथा मेरे भी गुरु सर्वजगत् के स्वामी नारायण हरि हैं। (४४)

यत तुम अपने गुरु (पिता विरोचन) के गुरु (पिता मैं प्रह्लाद) के भी गुरु श्रीकृष्ण की निन्दा कर रहे हो अत तुम यहीं ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाओगे। (४५)

हे बलि ! वे प्रभु जनार्दन देव जगत् के नाथ हैं। 'इसमें मेरा गुरु (अर्थात् मैं) भक्तिवान् हूँ' यह समझकर तुझे मेरी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। (४६)

यत जगद्गुरु की निन्दा करने वाले तुमने मेरी इतनी भी अपेक्षा नहीं की अत मैं तुम्हें शाप देता हूँ। (४७)

हे बलि ! यत तुम्हारे द्वारा अच्युत के प्रति कहा गया आक्षेपयुक्त वचन मेरे शिरश्छेद से भी गुरुतर है अत तुम राज्यभ्रष्ट होकर गिर जाओ। (४८)

क्योंकि भवसागर में कृष्ण को छोड़कर दूसरा कोई परित्राण नहीं है अत शीघ्र ही मैं तुम्हें राज्य से विच्युत हुआ देखूँगा। (४९)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

६

लोमहर्षण उवाच ।

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा वचनं रौद्रमप्रियम् ।
प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ १

बलिरुवाच ।

प्रसीद तात मा कोपं कुरु मोहहते मयि ।
बलावलेपमूढेन मयैतद्वाक्यमीरितम् ॥ २
मोहापहतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोत्तम ।
यच्छप्तोऽस्मि दुराचारस्तत्साधु भवता कृतम् ॥ ३
राज्यभ्रंशं यशोभ्रंशं प्राप्स्यामीति ततस्त्वहम् ।
विषण्णोऽस्मि यथा तात तथैवाविनये कृते ॥ ४
त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नातिदुर्लभम् ।
ससारे दुर्लभास्तात गुरवो ये भवद्विधाः ॥ ५
प्रसीद तात मा कोप कर्तुमर्हसि दैत्यप ।
त्वत्कोपपरिदग्धोऽह परितप्ये दिवानिशम् ॥ ६

प्रह्लाद उवाच ।

वत्स कोपेन मे मोहो जनितस्तेन ते मया ।
शापो दत्तो विवेकश्च मोहेनापहृतो मम ॥ ७
यदि मोहेन मे ज्ञानं नाक्षिप्तं स्यान्महासुर ।
तत्कथं सर्वगं जानन् हरिं कश्चिच्छपाम्यहम् ॥ ८
यो यः शापो मया दत्तो भवतोऽसुरपुंगव ।
भाव्यमेतेन नून ते तस्मात्त्व मा विषीद वै ॥ ९
अद्यप्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ ।
भवेथा भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति ॥ १०
शाप प्राप्य च मे वीर देवेश. सस्मृतस्त्वया ।
तथा तथा वदिष्यामि श्रेयस्त्व प्राप्स्यसे यथा ॥ ११

लोमहर्षण उवाच ।

अदितिर्वरमासाद्य सर्वकामसमृद्धिदम् ।

९

लोमहर्षण ने कहा—दैत्यपति बलि ने इस प्रकार के उग्र एव अप्रिय वचन सुनकर पुन पुन प्रणाम कर गुरु (प्रह्लाद) को प्रसन्न किया । (१)

बलि ने कहा—हे तात ! आप प्रसन्न हों, मुझ मोहग्रस्त पर क्रोध न करें । बल के घमण्ड से विमूढ होकर मैंने यह वाक्य कहा था । (२)

हे दैत्यश्रेष्ठ ! मोह के कारण मेरा ज्ञान मारा गया था , मैं पापी हूँ । मुझ दुराचारी को आपने जो शाप दिया, वह बहुत अच्छा किया । (३)

हे तात! मेरे द्वारा उस प्रकार का अविनय किये जाने से यत आप विषण्ण हुए हैं अत मैं राज्यभ्रश एव यशो भ्रश को प्राप्त करूँगा । (४)

हे तात ! ससार में त्रैलोक्य का राज्य, ऐश्वर्य अथवा अन्य कोई (पदार्थ) अतिदुर्लभ नहीं है, किन्तु आप ऐसे गुरु दुर्लभ होते हैं । (५)

हे दैत्यरक्षक ! हे तात ! आप प्रसन्न हों कोप न करें । आपके क्रोध से परिदग्ध होकर मैं दिन-रात परितप्त हो रहा हूँ । (६)

प्रह्लाद ने कहा—हे वत्स ! क्रोध के कारण मुझे मोह पैदा हो गया था और मोह ने मेरा विवेक भी नष्ट कर दिया था इसी से मैंने तुम्हें शाप दिया । (७)

हे महासुर ! यदि मोह के कारण मेरा ज्ञान नष्ट नहीं हुआ होता तो भगवान् को सर्वव्यापी जानते हुए भी मैं शाप कैसे देता ! (८)

हे असुरपुङ्गव ! मैंने तुम्हें जो शाप दिया है वह निश्चय ही पूर्ण होगा । अत: तुम दु खी मत हो । (९)

आज से तुम उस देवेश्वर भगवान् अच्युत हरि के प्रति भक्तिमान् बनो । वे ही तुम्हारे त्राता होंगे । (१०)

हे वीर ! मेरा शाप पाकर तुमने देवेश्वर का स्मरण किया है । अत मैं वही कहूँगा जिससे तुम्हें श्रेय की प्राप्ति होगी । (११)

लोमहर्षण ने कहा—अदिति के, सर्वकामनाओं को

क्रमेण ह्युदरे देवो वृद्धिं प्राप्तो महायशाः ॥ १२
ततो मासेऽथ दशमे काले प्रसव आगते ।
अजायत स गोविन्दो भगवान् वामनाकृतिः ॥ १३
अवतीर्णे जगन्नाथे तस्मिन् सर्वामरेश्वरे ।
देवाश्च मुमुचुर्दुःखं देवमाताऽदितिस्तथा ॥ १४
ववुर्वाताः सुखस्पर्शा नीरजस्कमभून्नभः ।
धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत ॥ १५
नोद्वेगश्चाप्यभूद् देहे मनुजानां द्विजोत्तमाः ।
तदा हि सर्वभूतानां धर्मे मतिरजायत ॥ १६
तं जातमात्रं भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
जातकर्मादिकां कृत्वा क्रियां तुष्टाव च प्रभुम् ॥ १७

ब्रह्मोवाच ।

जयाधीश जयाजेय जय विश्वगुरो हरे ।
जन्ममृत्युजरातीत जयानन्त जयाच्युत ॥ १८
जयाजित जयाशेष जयाव्यक्तस्थिते जय ।
परमार्थार्थ सर्वज्ञ ज्ञानज्ञेयार्थनिःसृत ॥ १९
जयाशेष जगत्साक्षिञ्जगत्कर्त्तर्जगद्गुरो ।
जगतोऽजगदन्तेश स्थितौ पालयते जय ॥ २०
जयाखिल जयाशेष जय सर्वहृदिस्थित ।
जयादिमध्यान्तमय सर्वज्ञानमयोत्तम ॥ २१
मुमुक्षुभिरनिर्देश्य नित्यहृष्ट जयेश्वर ।
योगिभिर्मुक्तिकामैस्तु दमादिगुणभूषण ॥ २२
जयातिसूक्ष्म दुर्ज्ञेय जय स्थूल जगन्मय ।
जय सूक्ष्मातिसूक्ष्म त्वं जयानिन्द्रिय सेन्द्रिय ॥ २३
जय स्वमायायोगस्थ शेषभोग जयाक्षर ।
जयैकदंष्ट्राप्रान्तेन समुद्धृतवसुंधर ॥ २४
नृकेसरिन् सुरारातिवक्षःस्थलविदारण ।
साम्प्रतं जय विश्वात्मन् मायावामन केशव ॥ २५

समृद्ध करनेवाला, घर प्राप्त करने के उपरांत उसके उदर में महायशस्वी देव क्रमशः वृद्धि प्राप्त करने लगे। (१२)

तदनन्तर दसवें मास में प्रसव काल के आने पर वे भगवान् गोविन्द वामनाकार में उत्पन्न हुए। (१३)

उन सर्वदेवेश्वर जगन्नाथ के अवतीर्ण होने पर देवताओं और देवमाता अदिति ने अपने दुःख को छोड़ दिया। (१४)

स्पर्श में सुखकारी पवन चलने लगा, आकाश धूलिविहीन (निर्मल) हो गया एवं सभी जीवों की मति धर्म में लग गई। (१५)

हे द्विजोत्तमो! उस समय मनुष्यों के शरीर में उद्वेग नहीं रहा तथा समस्त प्राणियों की मति धर्म में लग गई। (१६)

लोकपितामह ब्रह्मा ने सद्य उत्पन्न प्रभु की जातकर्मादि क्रिया करके स्तुति की। (१७)

ब्रह्मा ने कहा—हे अधीश! आपकी जय हो। हे अजेय! आपकी जय हो। हे विश्वगुरु हरि! आपकी जय हो। हे जन्ममृत्युजरातीत अनन्त! आपकी जय हो। हे अच्युत! आपकी जय हो। (१८)

हे अजित! आपकी जय हो। हे अशेष! आपकी जय हो। हे अव्यक्तस्थिति वाले! आपकी जय हो। हे परमार्थार्थ! हे ज्ञान और ज्ञेय अर्थ जिससे निकला है ऐसे सर्वज्ञ! आपकी जय हो। (१९)

हे अशेष! हे जगत्साक्षी! हे जगत्कर्त्ता! हे जगद्गुरु! आपकी जय हो। हे जगत् (चर) एवं अजगत् (अचर) के स्थिति, पालन एवं प्रलय के ईश! आपकी जय हो। (२०)

हे अखिल! आपकी जय हो। हे अशेष! आपकी जय हो। हे सभी के हृदय में स्थित! आपकी जय हो। हे आदि, मध्य और अन्तस्वरूप! हे सर्वज्ञानमय! हे उत्तम! आपकी जय हो। (२१)

हे मुमुक्षुओं के द्वारा अनिर्देश्य! हे नित्यहृष्ट! हे ईश्वर! आपकी जय हो। हे मुक्ति चाहने वाले योगियों से सेवित! हे दम आदि गुणों से विभूषित! आपकी जय हो। (२२)

"हे अतिसूक्ष्म! हे दुर्ज्ञेय! आपकी जय हो। हे स्थूल! हे जगन्मय! आपकी जय हो! हे सूक्ष्मातिसूक्ष्म! आपकी जय हो। हे अनिन्द्रिय! हे सेन्द्रिय! आपकी जय हो। (२३)

हे अपनी माया से योगस्थ! आपकी जय हो। हे शेष की शय्या पर सोने वाले अक्षर! आपकी जय हो। हे एकदंष्ट्रा के कोने पर वसुन्धरा को उठाने वाले! आपकी जय हो। (२४)

हे नृसिंह! हे देवशत्रु के वक्षःस्थल का विदारण करने

निजमायापरिच्छिन्न जगद्धातर्जनार्दन ।
जयाचिन्त्य जयानेकस्वरूपैकविध प्रभो ॥ २६
वर्द्धस्व वर्धितानेकविकारप्रकृते हरे ।
त्वय्येषा जगतामीशे संस्थिता धर्मपद्धतिः ॥ २७
न त्वामहं न चेशानो नेन्द्राद्यास्त्रिदशा हरे ।
ज्ञातुमीशा न मुनयः सनकाद्या न योगिनः ॥ २८
त्वं मायापटसंवीतो जगत्यत्र जगत्पते ।
कस्त्वां वेत्स्यति सर्वेश त्वत्प्रसादं विना नरः ॥ २९
त्वमेवाराधितो यस्य प्रसादसुमुख. प्रभो ।
स एव केवलं देवं वेत्ति त्वां नेतरो जन. ॥ ३०
तदीश्वरेश्वरेशान विभो वर्द्धस्व भावन ।
प्रभवायास्य विश्वस्य विश्वात्मन् पृथुलोचन ॥ ३१

लोमहर्षण उवाच ।

एवं स्तुतो हृषीकेशः स तदा वामनाकृतिः ।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचारूढसंपदम् ॥ ३२
स्तुतोऽहं भवता पूर्वमिन्द्राद्यैः कश्यपेन च ।
मया च वः प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम् ॥ ३३
भूयश्चाहं स्तुतोऽदित्या तस्याश्चापि मयाश्रुतम् ।
यथा शक्राय दास्यामि त्रैलोक्यं हतकण्टकम् ॥ ३४
सोऽहं तथा करिष्यामि यथेन्द्रो जगतः पतिः ।
भविष्यति सहस्राक्षः सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥ ३५
ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा हृषीकेशाय दत्तवान् ।
यज्ञोपवीतं भगवान् ददौ तस्य बृहस्पतिः ॥ ३६
आषाढमददाद् दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।
कमण्डलुं वसिष्ठश्च कौशं चीरमथाङ्गिराः ।
आसनं चैव पुलह. पुलस्त्यः पीतवाससी ॥ ३७
उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवस्वरभूषणाः ।
शास्त्राण्यशेषाणि तथा सांख्ययोगोक्तयश्च याः ॥ ३८
स वामनो जटी दण्डी छत्री धृतकमण्डलुः ।
सर्वदेवमयो देवो बलेरध्वरमभ्यगात् ॥ ३९

वाले ! हे विश्वात्मन् ! हे मायावामन ! हे केशव ! आपकी जय हो । (२५)

हे अपनी माया से परिच्छिन्न ! हे जगद्धाता ! हे जनार्दन ! आपकी जय हो । हे अचिन्त्य ! हे अनेकस्वरूप ! हे एकविध प्रभो ! आपकी जय हो । (२६)

बढाये गये हैं अनेक विकार प्रकृति से जिनके द्वारा ऐसे हे हरि ! आपकी वृद्धि हो । जगत् की यह धर्म-पद्धति आप ईश मे स्थित है । (२७)

हे हरे ! मैं, शकर, इन्द्रादि देव, सनकादि मुनि या योगीगण आपको जानने में समर्थ नहीं हैं । (२८)

हे जगत्पते ! आप इस ससार में माया रूपी वस्त्र से आच्छादित हैं । हे सर्वेश ! आपके प्रसाद के बिना कौन मनुष्य आपको जान सकता है । (२९)

हे प्रभो ! आपही आराधित होकर जिस पर प्रसन्न होते हैं केवल वही मनुष्य आपको जानता है, दूसरा नहीं । (३०)

हे ईश्वरेश्वर ! हे ईशान ! हे विभो ! हे भावन ! हे विश्वात्मन् ! हे पृथुलोचन ! इस विश्व के प्रभव (उत्पत्ति = सृष्टि) के निमित्त आपकी वृद्धि हो । (३१)

लोमहर्षण ने कहा—तदनन्तर इस प्रकार स्तुत वामनाकृति हृषीकेश हँसकर भावगम्भीर तथा ऐश्वर्ययुक्त वाणी बोले— (३२)

पूर्वकाल में आपने, इन्द्रादि देवों एव कश्यप ने मेरी स्तुति की थी । मैंने भी आप लोगों से इन्द्र के लिए त्रिभुवन देने की प्रतिज्ञा की थी । (३३)

तदनन्तर अदिति ने मेरी स्तुति की तो उससे भी मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं इन्द्र को निष्कण्टक त्रैलोक्य दूँगा । (३४)

अत' मैं ऐसा करूगा जिससे सहस्राक्ष इन्द्र जगत् के पति होंगे । आप लोगों से मैं यह सत्य कह रहा हूँ । (३५)

तदुपरात ब्रह्मा ने हृषीकेश को कृष्ण मृगचर्म दिया एव भगवान् बृहस्पति ने उन्हें यज्ञोपवीत प्रदान किया । (३६)

ब्रह्मपुत्र मरीचि ने उन्हें पालाशदण्ड दिया । वसिष्ठ ने कमण्डलु तथा अगिरा ने रेशमी वस्त्र दिया । पुलह ने आसन और पुलस्त्य ने दो पीले वस्त्र दिये । (३७)

ओंकार के स्वर से अलंकृत वेद, सभी शास्त्र तथा साख्ययोगादि दर्शनों की उक्तियाँ उन्हें उपस्थित हो गयीं । (३८)

जटा, दण्ड, छत्र एवं कमण्डलुधारी सर्वदेवमय वे वामन बलि के यज्ञ में गये । (३९)

यत्र यत्र पदं विप्रा भूभागे वामनो ददौ ।
ददाति भूमिर्विवरं तत्र तत्राभिपीडिता ॥ ४०
स वामनो जडगतिर्मृदु गच्छन् सपर्वताम् ।
साब्धिद्वीपवतीं सर्वां चालयामास मेदिनीम् ॥ ४१
बृहस्पतिस्तु शनकैर्मार्गं दर्शयते शुभम् ।
तथा क्रीडाविनोदार्थमतिजाड्यगतोऽभवत् ॥ ४२
ततः शेषो महानागो निःसृत्यासौ रसातलात् ।
साहाय्यं कल्पयामास देवदेवस्य चक्रिणः ॥ ४३
तदद्यापि च विख्यातमहेर्बिलमनुत्तमम् ।
तस्य संदर्शनादेव नागेभ्यो न भयं भवेत् ॥ ४४

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये नवमोऽध्याय ॥९॥

लोमहर्षण उवाच ।
सपर्वतवनामुर्वीं दृष्ट्वा संक्षुभितां बलिः ।
पप्रच्छोशनसं शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ १
आचार्य क्षोभमायाति साब्धिभूमिधरा मही ।
कस्माच्च नासुरान् भागान् प्रतिगृह्णन्ति वह्नयः ॥ २
इति पृष्टोऽथ बलिना काव्यो वेदविदां वरः ।
उवाच दैत्याधिपतिं चिरं ध्यात्वा महामतिः ॥ ३
अवतीर्णो जगद्योनिः कश्यपस्य गृहे हरिः ।
वामनेनेह रूपेण परमात्मा सनातनः ॥ ४
स नूनं यज्ञमायाति तव दानवपुंगव ।
तत्पादन्याससंक्षोभादियं प्रचलिता मही ॥ ५
कम्पन्ते गिरयश्चेमे क्षुभिता मकरालयाः ।
नेयं भूतपतिं भूमिः समर्था वोढुमीश्वरम् ॥ ६
सदेवासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगा ।

हे विप्रो ! जिस जिस भू भाग में वामन पैर रखते थे वहाँ वहाँ दबी हुई भूमि में विवर (गर्त) हो जाता था । (४०)

उन मन्दगति वामन ने मृदुभाव से चलते हुए समुद्रों, द्वीपों तथा पर्वतों वाली समस्त पृथ्वी को प्रकम्पित कर दिया । (४१)

बृहस्पति धीरे धीरे उन्हें शुभ मार्ग दिखाने लगे एवं वे भी क्रीडाविनोदार्थ अत्यन्त मन्दगामी हो गए । (४२)

तदनन्तर महानाग शेष रसातल से निकल कर देवदेव चक्रधारी की सहायता करने लगे । (४३)

आज भी वह श्रेष्ठ स्थान 'अहिबिल' के नाम से प्रसिद्ध है । उसके दर्शनमात्र से नागों से भय नहीं होता । (४४)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

१०

लोमहर्षण ने कहा—वन-पर्वतों सहित पृथ्वी को संक्षुब्ध हुई देखकर बलि ने प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर शुक्राचार्य से पूछा— (१)

हे आचार्य ! क्या कारण है कि समुद्रों तथा पर्वतों सहित यह पृथ्वी क्षुब्ध हो रही है और अग्नि असुरों के भागों को ग्रहण नहीं कर रहे हैं ? (२)

बलि के ऐसा पूछने पर वेदज्ञश्रेष्ठ महामति शुक्राचार्य ने चिरकाल तक ध्यान कर दैत्येन्द्र से कहा— (३)

कश्यप के गृह में जगद्योनि (जगत् के कारण) सनातन परमात्मा वामन रूप से अवतीर्ण हुए हैं । (४)

हे दानवेन्द्र ! निश्चय ही वे तुम्हारे यज्ञ में आ रहे हैं । उन्हीं के पैर रखने से उत्पन्न विक्षोभ के कारण यह पृथ्वी कम्पित हो रही है । (५)

ये पर्वत कम्पित हो रहे हैं एवं समुद्र क्षुब्ध हो गए हैं । यह भूमि भूतपति ईश्वर का वहन करने में समर्थ नहीं है । (६)

अनेनैव धृता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः।
धारयत्यखिलान् देवान् मनुष्यांश्च महासुरान् ॥ ७
इयमस्य जगद्धातुर्माया कृष्णस्य गह्वरी।
धार्यधारकभावेन यया संपीडितं जगत् ॥ ८
तत्सन्निधानादसुरा न भागार्हाः सुरद्विपः।
भुञ्जते नासुरान् भागानपि तेन त्रयोऽग्नयः ॥ ९
शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमाऽब्रवीद् बलिः।
धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम्।
यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन् मत्त. कोऽन्योऽधिकः पुमान् ॥१०
यं योगिनः सदोयुक्ता. परमात्मानमव्ययम्।
द्रष्टुमिच्छन्ति देवोऽसौ ममाध्वरमुपेष्यति।
यन्मयाचार्य कर्त्तव्यं तन्ममादेष्टुमर्हसि ॥ ११

शुक्र उवाच।

यज्ञभागभुजो देवा वेदप्रामाण्यतोऽसुर।
त्वया तु दानवा दैत्य यज्ञभागभुजः कृताः ॥ १२
अयं च देवः सत्त्वस्थः करोति स्थितिपालनम्।
विसृष्टं च तथाऽयं च स्वयमत्ति प्रजाः प्रभुः ॥ १३
भवांस्तु वन्दी भविता नूनं विष्णुः स्थितौ स्थितः।
विदित्वैवं महाभाग कुरु यत् ते मनोगतम् ॥ १४
त्वयाऽस्य दैत्याधिपते स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि।
प्रतिज्ञा नैव वोढव्या वाच्यं साम तथाऽफलम् ॥ १५
कृतकृत्यस्य देवस्य देवार्थं चैव कुर्वतः।
अलं दयां धनं देवे त्वेतद्वाच्यं तु याचतः।
कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुर ॥ १६

बलिरुवाच।

ब्रह्मन् कथमहं ब्रूयामन्येनापि हि याचितः।
नास्तीति किमु देवस्य संसारस्याघहारिणः ॥ १७
व्रतोपवासैर्विविधैर्यः प्रभुर्गृह्यते हरिः।
स मे वक्ष्यति देहीति गोविन्दः किमतोऽधिकम् ॥ १८
यदर्थं सुमहारम्भा दमशौचगुणान्वितैः।

देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष राक्षस एवं पन्नगों युक्त पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, समस्त देवों, मनुष्यों एवं महासुरों को ये ही धारण करते हैं। (७)

जगद्धाता कृष्ण की ही यह गभीर माया है जिसके द्वारा यह जगत् धार्यधारक भाव से सपीड़ित हो रहा है। (८)

उन्हीं का सामीप्य होने से देवशत्रु असुर लोग यज्ञ भाग योग्य नहीं रहे तथा उसी से अग्नित्रय भी असुरों के भाग का भोग नही कर रहे हैं। (९)

शुक्राचार्य के वचन को सुन कर रोमाञ्चित होकर बलि ने कहा—हे ब्रह्मन् मैं धन्य एव सफल पुण्य वाला हूँ जो स्वय यज्ञपति मेरे यज्ञ मे आ रहे हैं। मुझ से कौन अन्य पुरुष श्रेष्ठ है ? (१०)

सदा जागरूक योगी लोग जिन अव्यय परमात्मा को देखना चाहते हैं वे ही देव मेरे यज्ञ में आ रहे हैं। हे आचार्य! आप मुझे आज्ञा दें कि मेरा क्या कर्तव्य है ? (११)

शुक्र ने कहा—हे असुर! वेदप्रामाण्य से देवता यज्ञभाग के भोगी होते हैं। किन्तु हे दैत्य! तुमने दानवों को यज्ञभाग का भोगी बना दिया है। (१२)

ये ही देव सत्त्व गुण का आश्रय लेकर स्थिति और पालन करते हैं तथा ये ही सृष्टि करते हैं और ये ही प्रभु स्वयं प्रजा का भक्षण करते हैं। (१३)

विष्णु स्थिति के कार्य मे तत्पर हुए हैं। अतः आप निश्चय ही वन्दी होने वाले हैं। हे महाभाग! यह जानकर तुम्हारा जो अभीष्ट हो उसे करो। (१४)

हे दैत्यपति! तुम स्वल्प वस्तु के लिए भी उनसे प्रतिज्ञा न करना तथा फलहीन सान्त्वना युक्त मीठी बातें करना। (१५)

हे महासुर! कृतकृत्य, देवों का कार्य सम्पादन करने वाले तथा देवों की सम्पत्ति के लिए प्रयत्नशील देव कृष्ण के याचना करने पर तुम उनसे यह कहना कि मैं देव के हेतु पर्याप्त धन दूँगा। (१६)

बलि ने कहा—हे ब्रह्मन! दूसरों अर्थात् सामान्य जनों से याचित होने पर भी मैं "मेरे पास नहीं है" ऐसा कैसे कह सकता हूँ फिर ससार के पापों का सहार करने वाले देवेश्वर से ऐसा कैसे कहूँगा ? (१७)

अनेक प्रकार के व्रतों एव उपवासों से जो प्रभु हरि प्राप्त किये जाते हैं जब वे ही गोविन्द मुझ से 'दो' ऐसा कहेंगे तो इससे बढ कर और क्या हो सकता है ? (१८)

जिनके निमित्त दम, शौच गुणों से युक्त लोग वृहत्

यज्ञाः क्रियन्ते यज्ञेशः स मे देहीति वक्ष्यति ॥ १९
तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं च नः ।
यन्मां देहीति विश्वेशः स्वयमेव वदिष्यति ॥ २०
नास्तीत्यहं गुरो वक्ष्ये तमभ्यागतमीश्वरम् ।
प्राणत्यागं करिष्येऽहं न तु नास्ति जने क्वचित् ॥ २१
नास्तीति यन्मया नोक्तमन्येषामपि याचताम् ।
वक्ष्यामि कथमायाते तदद्य चामरेऽच्युते ॥ २२
श्लाघ्य एव हि वीराणां दानाच्चापत्समागमः ।
न बाधाकारि यद्दानं तदङ्ग बलवत् स्मृतम् ॥ २३
मद्राज्ये नासुखी कश्चिन्न दरिद्रो न चातुरः ।
न दुःखितो न चोद्विग्नो न शमादिविवर्जितः ॥ २४
हृष्टस्तुष्टः सुगन्धी च तृप्तः सर्वसुखान्वितः ।
जनः सर्वो महाभाग किमुताहं सदा सुखी ॥ २५
एतद्विशिष्टमत्राहं दानबीजफलं लभे ।
विदितं मुनिशार्दूल मयैतत् त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥ २६
मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः ।
मम दानमवाप्यासौ पुष्णाति यदि देवताः ॥ २७
एतद्बीजवरे दानबीजं पतति चेद् गुरो ।
जनार्दने महापात्रे किं न प्राप्तं ततो मया ॥ २८
विशिष्टं मम तद्दानं परितुष्टाश्च देवताः ।
उपभोगाच्छतगुणं दानं सुखकरं स्मृतम् ॥ २९
मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः ।
तेनाभ्येति न संदेहो दर्शनादुपकारकृत् ॥ ३०
अथ कोपेन चाभ्येति देवभागोपरोधतः ।
मां निहन्तुं ततो हि स्याद् वधः श्लाघ्यतरोऽच्युतात् ॥ ३१
एतज्ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ दानविघ्नकरेण मे ।
नैव भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते ॥ ३२

लोमहर्षण उवाच ।

इत्येवं वदतस्तस्य प्राप्तस्तत्र जनार्दनः ।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो मायावामनरूपधृक् ॥ ३३

सभार वाले यज्ञ करते हैं वे ही यज्ञेश मुझसे "दो" ऐसा कहेंगे । (१९)

मेरा सुकर्म सफल है तथा मेरी तपस्या भी भली भाँति आचरित है क्योंकि स्वयं विश्वेश मुझ से 'दो' ऐसा कहेंगे । (२०)

हे गुरु ! क्या मैं उन अभ्यागत ईश्वर से "नहीं है" ऐसा कहूँ ? मैं भले ही प्राणत्याग कर दूँ किन्तु किसी मनुष्य से 'नहीं है' यह नहीं कह सकता । (२१)

दूसरों के भी माँगने पर जब मैंने "नहीं है" ऐसा नहीं कहा तो आज अच्युत देव के आने पर कैसे कहूँगा ? (२२)

वीर पुरुषों के लिये दान से आपत्ति का समागम होना श्लाघ्य ही होता है । किन्तु हे गुरो ! जो दान बाधाकारी नहीं होता वह निस्सन्देह श्रेष्ठतर माना गया है । (२३)

मेरे राज्य में कोई भी असुखी, दरिद्र, आतुर (रोगी), दुःखित, उद्विग्न एवं शमादि गुणों से हीन नहीं है । हे महाभाग ! सभी लोग हृष्ट, तुष्ट, सुगन्धी, तृप्त एवं सुखों से युक्त हैं ! अधिक क्या ? मैं तो सदा सुखी हूँ । (२४-२५)

हे मुनिशार्दूल ! आपके मुख से सुन कर मुझे यह ज्ञात हो गया कि मैं यहाँ पर विशिष्ट दानरूपी बीज का फल प्राप्त कर रहा हूँ । (२६)

वे मुझसे दान लेकर यदि देवताओं को पुष्ट करते हैं तो यज्ञ से आराधित हरि मुझ पर निश्चय ही प्रसन्न हैं । (२७)

यदि बीजवर, महान् पात्र, पूज्य जनार्दन में मेरे दान का बीज पड़ गया तो फिर मुझे क्या प्राप्त नहीं हुआ ? मेरा यह दान विशिष्ट प्रकार का है और देवता मेरे ऊपर प्रसन्न हैं । उपभोग की अपेक्षा दान को सौ गुना सुखकर माना गया है । (२८-२९)

यज्ञ से आराधित हरि निश्चय ही मेरे ऊपर प्रसन्न हैं । निस्सन्देह इसी से दर्शन द्वारा उपकार करने वाले वे आ रहे हैं । (३०)

देवभाग का उपरोध होने के कारण यदि वे कोपवश मुझे मारने आ रहे हैं तो अच्युत से होने वाला वध भी श्लाघ्यतर होगा । (३१)

हे मुनिश्रेष्ठ ! यह जानकर गोविन्द के समुपस्थित होने पर आप मेरे दान में विघ्न न करें । (३२)

लोमहर्षण ने कहा—उसके ऐसा कहने के समय ही सर्वदेवमय, अचिन्त्य माया से वामनरूपधारी जनार्दन वहाँ पहुँचे । (३३)

तं दृष्ट्वा यज्ञवाटं तु प्रविष्टमसुराः प्रभुम् ।
जग्मुः प्रभावतः क्षोभं तेजसा तस्य निष्प्रभाः ॥ ३४
जेपुश्च मुनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे ।
वसिष्ठो गाधिजो गर्गो अन्ये च मुनिसत्तमाः ॥ ३५
बलिश्चैवाखिलं जन्म मेने सफलमात्मनः ।
ततः संक्षोभमापन्नो न कश्चित् किंचिदुक्तवान् ॥ ३६
प्रत्येकं देवदेवेशं पूजयामास तेजसा ।
अथासुरपतिं प्रह्वं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तान् ॥ ३७
देवदेवपतिः साक्षाद् विष्णुर्वामनरूपधृक् ।
तुष्टाव यज्ञं वह्निं च यजमानमथार्चितः ।
यज्ञकर्माधिकारस्थान् सदस्यान् द्रव्यसंपदम् ॥ ३८
सदस्याः पात्रमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणात् ।
यज्ञवाटस्थित विप्राः साधु साध्वित्युदीरयन् ॥ ३९
स चार्घमादाय बलिः प्रोद्भूतपुलकस्तदा ।
पूजयामास गोविन्दं प्राह चेद महासुरः ॥ ४०

बलिरुवाच ।

सुवर्णरत्नसंघातो गजाश्वसमितिस्तथा ।
स्त्रियो वस्त्राण्यलंकारान् गावो ग्रामाश्च पुष्कलाः ॥ ४१
सर्वे च सकला पृथ्वी भवतो वा यदीप्सितम् ।
तद् ददामि वृणुष्वेष्टं ममार्थाः सन्ति ते प्रियाः ॥ ४२
इत्युक्तो दैत्यपतिना प्रीतिगर्भान्वितं वचः ।
प्राह सस्मितगम्भीरं भगवान् वामनाकृतिः ॥ ४३
ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन् पदत्रयम् ।
सुवर्णग्रामरत्नादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ॥ ४४

बलिरुवाच ।

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पदैः पदवतां वर ।
शतं शतसहस्रं वा पदानां मार्गतां भवान् ॥ ४५

श्रीवामन उवाच ।

एतावता दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि मार्गणे ।
अन्येषामर्थिनां वित्तमिच्छया दास्यते भवान् ॥ ४६
एतच्छ्रुत्वा तु गदितं वामनस्य महात्मनः ।
वाचयामास वै तस्मै वामनाय महात्मने ॥ ४७

उन प्रभु को यज्ञस्थल में प्रविष्ट हुआ देख कर असुरलोग उनके प्रभाव से क्षुब्ध एवं तेज से निष्प्रभ हो गये। (३४)

उस महायज्ञ में उपस्थित वसिष्ठ, विश्वामित्र, गर्ग एवं अन्य मुनिश्रेष्ठ जप करने लगे। (३५)

बलि ने अपना सम्पूर्ण जन्म सफल माना। तदनन्तर संक्षोभग्रस्त होने से किसी ने कुछ नहीं कहा। (३६)

उनके तेज के कारण प्रत्येक ने देवदेवेश का पूजन किया। तदुपरान्त विनीत असुरपति एवं उन मुनिवरों को देखकर देवदेवेश्वर वामनरूप धारण करने वाले साक्षात् विष्णु भगवान् ने पूजित होने के बाद यज्ञ, अग्नि, यजमान, यज्ञकर्म में अधिकृत सदस्यों एवं द्रव्य सामग्रियों की स्तुति की। (३७–३८)

हे विप्रो! तत्क्षण सभी सदस्य लोग यज्ञमण्डप में उपस्थित पात्रस्वरूप वामन के प्रति 'साधु साधु' कहने लगे। (३९)

उस समय पुलकित महासुर बलि ने अर्घ लेकर गोविन्द की पूजा की और उनसे यह कहा। (४०)

बलि ने कहा—सुवर्ण और रत्नों का समूह, हाथी, घोड़े, स्त्रियाँ, वस्त्र, भूषण, गायें तथा ग्रामसमूह-ये सभी वस्तुएँ, समस्त पृथ्वी अथवा आपका जो अभीष्ट हो वह मैं देता हूँ। आप अभीष्ट का वरण करें। मेरे प्रिय अर्थ आपके हैं। (४१–४२)

दैत्यपति के इस प्रकार प्रीति युक्त वचन कहने पर वामनाकृति भगवान् ने हँसते हुए गम्भीर वचन कहा। (४३)

हे राजन्! मुझे अग्नि शाला के निमित्त तीन पग (भूमि) दें। सुवर्ण, ग्राम एवं रत्नादि उनके याचकों को प्रदान करें। (४४)

बलि ने कहा—हे पदधारियों में श्रेष्ठ! तीन पग भूमि से आपका कौन प्रयोजन सिद्ध होगा। सौ अथवा सौ हजार पग भूमि आप माँगिये। (४५)

श्रीवामन ने कहा—हे दैत्यपति! इतना पाने से ही मैं कृतकृत्य हूँ आप अन्य याचकों को इच्छानुसार दान दीजियेगा। (४६)

महात्मा वामन का यह वचन सुनकर (बलि ने) उन महात्मा वामन को वचन दे दिया।" (४७)

पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः ।
सर्वदेवमयं रूप दर्शयामास तत्क्षणात् ॥ ४८
चन्द्रसूर्यौ तु नयने द्यौः शिरश्चरणौ क्षितिः ।
पादाङ्गुल्यः पिशाचास्तु हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः ॥४९
विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः ।
यक्षा नखेषु संभूता रेखास्वप्सरसस्तथा ॥ ५०
दृष्टिर्ऋक्षाण्यशेषाणि केशाः सूर्यांशवः प्रभोः ।
तारका रोमकूपाणि रोमेषु च महर्षयः ॥ ५१
बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः ।
अश्विनौ श्रवणे तस्य नासा वायुर्महात्मनः ॥ ५२
प्रसादे चन्द्रमा देवो मनो धर्मः समाश्रितः ।
सत्यमस्याभवद् वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ॥ ५३
ग्रीवाऽदितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा ।
स्वर्गद्वारमभून्मैत्रं त्वष्टा पूषा च वै भ्रुवौ ॥ ५४
मुखे वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः ।
हृदयं च परं ब्रह्म पुंस्त्वं वै कश्यपो मुनिः ॥ ५५
पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसंधिषु ।
वक्षस्थले तथा रुद्रो धैर्ये चास्य महार्णवः ॥ ५६
उदरे चास्य गन्धर्वा मरुतश्च महाबलाः ।
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्याश्च वै कटिः ॥ ५७
सर्वज्योतींषि यानीह तपश्च परमं महत् ।
तस्य देवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतमुत्तमम् ॥ ५८
तनौ कुक्षिषु वेदाश्च जानुनी च महामखाः ।
इष्टयः पशवश्चास्य द्विजानां चेष्टितानि च ॥ ५९
तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महात्मनः ।
उपसर्पन्ति ते दैत्याः पतङ्गा इव पावकम् ॥ ६०
चिक्षुरस्तु महादैत्यः पादाङ्गुष्ठं गृहीतवान् ।
दन्ताभ्यां तस्य वै ग्रीवामङ्गुष्ठेनाहनद्धरिः ॥ ६१
प्रमथ्य सर्वानसुरान् पादहस्ततलैर्विभुः ।
कृत्वा रूपं महाकायं संजहाराशु मेदिनीम् ॥ ६२

हाथ पर जल गिरते ही वामन अवामन (विराट्) हो गये। तत्क्षण उन्होंने सर्वदेवमय स्वरूप को दिखाया। (४८)

चन्द्र और सूर्य उनके दोनों नेत्र, आकाश शिर, पृथ्वी दोनों चरण, पिशाच पैर की अँगुलियाँ एव गुह्यक हाथों की अँगुलियाँ थे। (४९)

जानु मे विश्वेदेवगण, दोनों जङ्घाओं में सुरश्रेष्ठ साध्य गण, नखों मे यक्ष एव रेखाओं में अप्सरायें थीं। (५०)

समस्त नक्षत्र उनकी दृष्टियाँ, सूर्यकिरणें प्रभु के केश, तारकायें उनके रोम कूप एव रोमों में महर्षिगण स्थित थे। (५१)

विदिशायें उनकी बाहें, दिशाएँ उन महात्मा के दोनों कर्ण, दोनों अश्विनीकुमार श्रवण एव वायु उन महात्मा के नासिका स्थान पर थे। (५२)

उनके प्रसाद मे चन्द्रदेव तथा मन में धर्म आश्रित थे। सत्य उनकी वाणी तथा जिह्वा सरस्वती देवी थीं। (५३)

देवमाता अदिति उनकी ग्रीवा, विद्या उनकी वलियाँ, स्वर्ग द्वार उनकी गुदा तथा त्वष्टा एव पूषा उनकी भौहें थे। (५४)

वैश्वानर उनके मुख तथा प्रजापति वृषण थे। पर ब्रह्म उनके हृदय तथा कश्यप मुनि उनके पुंस्त्व थे। (५५)

उनकी पीठ में वसु देवता, सभी सन्धियों में मरुद्गण, वक्ष स्थल मे रुद्र, तथा उनके धैर्य में महार्णव आश्रित थे। (५६)

उनके उदर मे गन्धर्व एव महाबली मरुद्गण स्थित थे। लक्ष्मी, मेधा, धृति, कान्ति एव सर्व विद्यायें उनकी कटि मे स्थित थीं। (५७)

समस्त ज्योतियाँ एव परम महत् तप उन देवाधिदेव के उत्तम तेज थे। (५८)

उनके शरीर एवं कुक्षियों मे वेद थे, तथा बड़े बड़े यज्ञ इष्टियाँ, पशु एव ब्राह्मणों की चेष्टायें उनकी दोनों जानु थीं। (५९)

उन महात्मा विष्णु के सर्वदेवमय रूप को देखकर वे दैत्य उनके निकट उसी प्रकार जाते थे जिस प्रकार अग्नि के निकट पतङ्ग जाते हैं। (६०)

महादैत्य चिक्षुर ने दाँतों से उनके पैर के अँगूठे को पकड लिया। भगवान् ने अंगूठे से उसकी ग्रीवा को आहत किया। (६१)

अपने पैरों एव हाथों के तलों से समस्त असुरों को मथित कर तथा महाकायरूप धारण कर शीघ्र ही उन्होंने पृथ्वी को छीन लिया। (६२)

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ।
नभो विक्रममाणस्य सक्थिदेशे स्थितावुभौ ॥ ६३
परं विक्रममाणस्य जानुमूले प्रभाकरौ ।
विष्णोरास्तां स्थितस्यैतौ देवपालनकर्मणि ॥ ६४
जित्वा लोकत्रयं तांश्च हत्वा चासुरपुंगवान् ।
पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः ॥ ६५
सुतलं नाम पातालमधस्ताद्वसुधातलात् ।
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ६६
अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ।
यत् त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया ॥ ६७
कल्पप्रमाणं तस्मात् ते भविष्यत्यायुरुत्तमम् ।
वैवस्वते तथाऽतीते काले मन्वन्तरे तथा ॥ ६८
सावर्णिके तु संप्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति ।
इदानीं भुवनं सर्वं दत्तं शक्राय वै पुरा ॥ ६९
चतुर्युगव्यवस्था च साधिका ह्येकसप्ततिः ।
नियन्तव्या मया सर्वे ये तस्य परिपन्थिनः ॥ ७०

भूमि का मापन करते समय चन्द्र और सूर्य उनके स्तनों के मध्य स्थित थे तथा आकाश का मापन करते समय वे उनके सक्थि प्रदेश में स्थित हुए। (६३)

परम् (ऊर्ध्व) लोक का विक्रमण करते समय देवपालन कर्म में स्थित श्रीविष्णु के जानुमूल में चन्द्र एवं सूर्य स्थित हुए। (६४)

उरुक्रम (भारी डगों वाले) विष्णु ने तीनों लोकों को जीत एवं उन बड़े-बड़े असुरों को मारकर इन्द्र को त्रैलोक्य दे दिया। (६५)

सामर्थ्यशाली भगवान् विष्णु ने वसुधातल के नीचे स्थित सुतल नामक पाताल बलि को दिया। (६६)

तदनन्तर सर्वेश्वर विष्णु ने दैत्येश्वर से कहा—"क्योंकि तुम्हारे द्वारा प्रदत्त जल को मैंने हाथ में ग्रहण किया अतः कल्पप्रमाण की तुम्हारी उत्तम आयु होगी तथा वैवस्वत मन्वन्तर का काल व्यतीत होने तथा सावर्णिक मन्वन्तर आने पर तुम इन्द्र बनोगे। इस समय के लिये मैंने पहले ही समस्त भुवन इन्द्र को दे रक्खा है। (६७-६९)

इकहत्तर चतुर्युगी के काल से कुछ अधिक काल तक जो समय की व्यवस्था है अर्थात् एक मन्वन्तर के काल तक मैं उसके (इन्द्र के) विरोधियों का नियमन करूँगा। (७०)

तेनाहं परया भक्त्या पूर्वमाराधितो बले ।
सुतलं नाम पातालं समासाद्य वचो मम ॥ ७१
वसासुर ममादेशं यथावत्परिपालयन् ।
तत्र देवसुखोपेते प्रासादशतसंकुले ॥ ७२
प्रोत्फुल्लपद्मसरसि ह्रदशुद्धसरिद्वरे ।
सुगन्धी रूपसंपन्नो वराभरणभूषितः ॥ ७३
स्रक्चन्दनादिदिग्धाङ्गो नृत्यगीतमनोहरान् ।
उपभुञ्जन् महाभोगान् विविधान् दानवेश्वर ॥ ७४
ममाज्ञया कालमिमं तिष्ठ स्त्रीशतसंवृतः ।
यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरोधं गमिष्यसि ॥ ७५
तावत् त्वं भुङ्क्ष्व संभोगान् सर्वकामसमन्वितान् ।
यदा सुरैश्च विप्रैश्च विरोधं त्वं करिष्यसि ।
बन्धिष्यन्ति तदा पाशा वारुणा घोरदर्शनाः ॥ ७६

बलिरुवाच ।

तत्रासतो मे पाताले भगवन् भवदाज्ञया ।
किं भविष्यत्युपादानमुपभोगोपपादकम् ।

हे बलि! पूर्वकाल में तुमने परमभक्तिपूर्वक मेरी आराधना की थी। अतः मेरे कहने से सुतल नामक पाताल में जाकर मेरे आदेश का यथावत् पालन करते हुये देव-सुख से सम्पन्न सैकड़ों प्रासादों से पूर्ण विकसित कमलों वाले सरोवरों, ह्रदों एवं शुद्ध श्रेष्ठ सरिताओं वाले उस स्थान पर निवास करो। हे दानवेश्वर! सुगन्ध धारण कर, श्रेष्ठ आभरणों से भूषित एवं माला तथा चन्दनादि से अलङ्कृत सुन्दर स्वरूप से तुम नृत्य और गीत से युक्त विविध प्रकार के महान् भोगों का उपभोग करते हुये सैकड़ों स्त्रियों से आवृत होकर इतने काल तक मेरी आज्ञा से वहाँ निवास करो। जब तक देवताओं एवं ब्राह्मणों से तुम विरोध न करोगे तब तक समस्त कामनाओं से युक्त भोगों को भोगोगे। किन्तु जब तुम देवों एवं ब्राह्मणों के साथ विरोध करोगे तो देखने में भयंकर वरुण के पाश तुम्हें बाँधेंगे। (७१-७६)

बलि ने कहा—हे भगवन्! हे देव! आपकी आज्ञा से वहाँ पाताल में निवास करने वाले मेरे भोगों की सामग्री क्या होगी? जिससे तृप्त होकर मैं सदा आपका स्मरण

आप्यायितो येन देव स्मरेयं त्वामहं सदा ॥ ७७

श्रीभगवानुवाच ।

दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च ।
हुतान्यश्रद्धया यानि तानि दास्यन्ति ते फलम् ॥ ७८

अदक्षिणास्तथा यज्ञा. क्रियाश्चाविधिना कृताः ।
फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्यव्रतानि च ॥ ७९

उदकेन विना पूजा विना दर्भेण या क्रिया ।
आज्येन च विना होमं फलं दास्यन्ति ते बले ॥ ८०

यश्चेदं स्थानमाश्रित्य क्रियाः काश्चित्करिष्यति ।
न तत्र चासुरो भागो भविष्यति कदाचन ॥ ८१

ज्येष्ठाश्रमे महापुण्ये तथा विष्णुपदे ह्रदे ।
ये च श्राद्धानि दास्यन्ति व्रतं नियममेव च ॥ ८२

क्रिया कृता च या काचिद् विधिनाऽविधिनापि वा ।
सर्वं तदक्षयं तस्य भविष्यति न संशयः ॥ ८३

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
द्वादश्यां वामनं दृष्ट्वा स्नात्वा विष्णुपदे ह्रदे ।

करूँगा । (७७)

श्रीभगवान् ने कहा—अविधिपूर्वक दिये गये दान, श्रोत्रिय ब्राह्मण रहित श्राद्ध तथा बिना श्रद्धा के किये गये जो हवन हैं वे तुम्हें फल देंगे । (७८)

दक्षिणा रहित यज्ञ, अविधिपूर्वक किये गये कर्म और व्रतरहित अध्ययन तुम्हें फल प्रदान करेंगे । (७९)

हे बलि ! जल के बिना की गई पूजा, बिना कुश की की गई क्रिया और बिना घी के किये गये हवन तुमको फल देंगे । (८०)

इस स्थान का आश्रय कर जो मनुष्य किन्हीं भी क्रियाओं को करेगा, उसमें कभी भी असुरों का अधिकार न होगा । (८१)

अत्यन्त पवित्र ज्येष्ठाश्रम तथा विष्णुपद सरोवर में जो श्राद्ध, दान, व्रत, या नियम करेगा एव विधि या अविधि पूर्वक जो कोई क्रिया वहाँ की जायेगी उसके लिये वह सभी निस्सन्देह अक्षय फलदायी होगा । (८२-८३)

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी के दिन उपवास कर द्वादशी के दिन विष्णुपद ह्रद में स्नान करके तथा वामन का दर्शन करने के उपरान्त यथाशक्ति दान देकर

दानं दत्त्वा यथाशक्त्या प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ८४

लोमहर्षण उवाच ।

बलेर्वरमिमं दत्त्वा शक्राय च त्रिविष्टपम् ।
व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः ॥ ८५

शशास च यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यमूर्जितः ।
निःशेषं च तदा कालं बलिः पातालमास्थित. ॥ ८६

इत्येतत् कथितं तस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
वामनस्य शृण्वन् यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८७

बलिप्रह्लादसंवादं मन्त्रितं बलिशुक्रयोः ।
बलेर्विष्णोश्च चरित ये स्मरिष्यन्ति मानवाः ॥ ८८

नाधयो व्याधयस्तेषां न च मोहाकुलं मनः ।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठा. पुंसस्तस्य कदाचन ॥ ८९

च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टप्राप्तिं वियोगवान् ।

मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है । (८४)

लोमहर्षण ने कहा—बलि को यह वर तथा इन्द्र को त्रिविष्टप देकर भगवान् उस सर्वव्यापी रूप से तिरोहित हो गये । (८५)

(तदनन्तर) बलवान् इन्द्र पूर्ववत् त्रैलोक्य का शासन करने लगे एव बलि ने सम्पूर्ण समय पाताल में निवास किया । (८६)

इस प्रकार उन भगवान् (वामन) विष्णु का उत्तम माहात्म्य कहा गया जो इसे (वामन माहात्म्य को) सुनेगा वह सभी पापों से मुक्त हो जायेगा । (८७)

हे द्विजश्रेष्ठो ! बलि एव प्रह्लाद के सम्वाद, बलि एवं शुक्र की मन्त्रणा तथा बलि एव विष्णु के चरित का जो मनुष्य स्मरण करेंगे उन्हें कभी कोई आधि एव व्याधि न होगी तथा उनका मन भी मोहाकुल नहीं होगा । (८८-८९)

हे महाभागो ! इस कथा को सुनकर राज्यच्युत व्यक्ति अपने राज्य को एव वियोगी मनुष्य अपने प्रिय को प्राप्त

समाप्नोति महाभागा नरः श्रुत्वा कथामिमाम् ॥ ९०
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो जयते महीम् ।
वैश्यो धनसमृद्धिं च शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।
वामनस्य च माहात्म्यं शृण्वन् पापैः प्रमुच्यते ॥ ९१

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये दशमोऽध्याय ॥१०॥

११

ऋषय ऊचुः ।
कथमेषा समुत्पन्ना नदीनामुत्तमा नदी ।
सरस्वती महाभागा कुरुक्षेत्रप्रवाहिनी ॥ १
कथं सरः समासाद्य कृत्वा तीर्थानि पार्श्वतः ।
प्रयाता पश्चिमामाशां दृश्यादृश्यगतिः शुभा ।
एतद् विस्तरतो ब्रूहि तीर्थवंशं सनातनम् ॥ २
लोमहर्षण उवाच ।
प्लक्षवृक्षात् समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी ।
सर्वपापक्षयकरी स्मरणादेव नित्यशः ॥ ३
सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदी ।
प्रविष्टा पुण्यतोयौघा वनं द्वैतमिति स्मृतम् ॥ ४
तस्मिन् प्लक्षे स्थितां दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महामुनिः ।
प्रणिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाथ सरस्वतीम् ॥ ५
त्वं देवि सर्वलोकानां माता देवारणिः शुभा ।
सदसद् देवि यत्किंचिन्मोक्षदाय्यर्थवत् पदम् ॥ ६
तत् सर्वं त्वयि संयोगि योगिवद् देवि संस्थितम् ।
अक्षरं परमं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वं चैतत् क्षरात्मकम् ॥ ७

करता है। (९०)
(इसको सुनने से) ब्राह्मण को वेद की प्राप्ति होती है, क्षत्रिय पृथ्वी की जय प्राप्त करता है तथा वैश्य को धन समृद्धि एवं शूद्र को सुख की प्राप्ति होती है। वामन का माहात्म्य सुनने से पापों से मुक्ति होती है। (९१)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य मे दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

११

ऋषियों ने पूछा—कुरुक्षेत्र मे प्रवाहित होने वाली नदियों में श्रेष्ठ महाभागा यह सरस्वती नदी कैसे उत्पन्न हुई ? (१)

सरोवर मे जाकर पार्श्वों मे तीर्थों की सृष्टि करते हुये दृश्यादृश्य गति से यह शुभ नदी किस प्रकार पश्चिम दिशा को गई ? विस्तारपूर्वक इस सनातन तीर्थ वंश (परम्परा-क्रम, विस्तार) का वर्णन करे। (२)

लोमहर्षण ने कहा—स्मरणमात्र से नित्य सर्वपापक्षय करने वाली यह सनातनी श्रेष्ठ नदी प्लक्षवृक्ष से समुद्भूत हुई है। (३)

यह पुण्यसलिला महानदी हजारों पर्वतों को विदारित कर द्वैतनाम से प्रसिद्ध वन मे प्रविष्ट हुई। (४)

महामुनि मार्कण्डेय ने उस प्लक्ष मे सरस्वती को स्थित देखकर शिर से प्रणाम करने के उपरान्त उसकी स्तुति की— (५)

हे देवि ! आप सर्वलोकों की माता एवं देवों की शुभ अरणि (उत्पादक = जननी) हैं। हे देवि ! समस्त सद्, असद्, मोक्षदायी एवं अर्थयुक्त पद योगयुक्त पदार्थ की भाँति आप मे संयुक्त होकर स्थित हैं। हे देवि ! अक्षर परम ब्रह्म, तथा यह विनाशशील विश्व आप में प्रतिष्ठित है। (६-७)

दारुण्यवस्थितो वह्निर्भूमौ गन्धो यथा ध्रुवम् ।
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः ॥ ८
ॐकाराक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरास्थिरम् ।
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च ॥ ९
त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम् ।
त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा ॥ १०
त्रयो गुणास्त्रयो वर्णास्त्रयो देवास्तथा क्रमात् ।
त्रैधातवस्तथाऽवस्थाः पितरश्चैवमादयः ॥ ११
एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति ।
विभिन्नदर्शनामाद्यां ब्रह्मणो हि सनातनीम् ॥ १२
सोमसंस्था हविःसंस्था पाकसंस्था सनातनी ।
तास्त्वदुच्चारणाद् देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ १३
अनिर्देश्यपदं त्वेतदर्द्धमात्राश्रितं परम् ।
अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम् ॥ १४
तवैतत् परमं रूपं यन्न शक्यं मयोदितुम् ।
न चास्येन न वा जिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ॥ १५
स विष्णुः स वृषो ब्रह्मा चन्द्रार्कज्योतिरेव च ।
विश्वावासं विश्वरूपं विश्वात्मानमनीश्वरम् ॥ १६
साङ्ख्यसिद्धान्तवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम् ।
अनादिमध्यनिधनं सदसच्च सदेव तु ॥ १७
एकं त्वनेकधाप्येकभाववेदसमाश्रितम् ।
अनाख्यं षड्गुणाख्यं च बह्वाख्यं त्रिगुणाश्रयम् ॥ १८
नानाशक्तिविभावज्ञं नानाशक्तिविभावकम् ।
सुखात् सुखं महत्सौख्यं रूपं तत्त्वगुणात्मकम् ॥ १९
एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं च यत् ।
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ॥ २०
येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये
येऽर्थाः स्थूला ये तथा सन्ति सूक्ष्माः ।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा
तेषां देवि त्वत्त एवोपलब्धिः ॥ २१

जिस प्रकार काष्ठ मे वह्नि एव भूमि मे गन्ध की शाश्वत स्थिति होती है उसी प्रकार तुम्हारे भीतर ब्रह्म एव यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है । (८)

हे देवि! जो कुछ भी स्थिर तथा अस्थिर है वह सब ओंकार अक्षर में स्थित है। जो कुछ भी अस्ति या नास्ति है उन सब मे ओंकार की तीन मात्रायें अनुस्यूत है। (९)

(भू, भुव, स्व) तीनों लोक, (ऋक्, यजु, साम) तीन वेद, (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व) तीन विद्यायें, (गार्हपत्य, आवहनीय, दक्षिणाग्नि) तीन अग्नियाँ, (सूर्य, चन्द्र, अग्नि) तीनों ज्योतियाँ, (धर्मादि) तीन वर्ग, (सत्त्वादि) तीनों गुण, (ब्राह्मणादि) तीनों वर्ण, तीनों देव, (वात, पित्त, कफ) तीनों धातुएँ तथा (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति), तीन अवस्थायें एव तीन (पिता आदि) पितर आदि ये सभी मात्रा त्रय, हे सरस्वति! आप के रूप हैं। आप को ब्रह्म की विभिन्न रूपों वाली आद्या एव सनातनी (मूर्त्ति कहा जाता है)। (१०-१२)

हे देवि! ब्रह्मवादी लोग आप के नाम का उच्चारण करके सोमसस्था, हविःसस्था एव सनातनी पाकसस्था को करते हैं। (१३)

अर्धमात्रा में आश्रित आप का यह अनिर्देश्य पद अविकारी, अक्षय, दिव्य तथा अपरिणामी है। (१४)

यह आप का अनिर्देश्य पद परम रूप है जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। न तो मुख से ही इसका वर्णन हो सकता है और न जिह्वा, तालु, ओष्ठादि से ही। (१५)

तुम्हारा यह रूप ही विष्णु, वृष (धर्म) ब्रह्मा, चन्द्रमा, सूर्य एव ज्योति है। उसी को विश्वावास, विश्वरूप, विश्वात्मा एव अनीश्वर (स्वतन्त्र) कहते हैं। (१६)

आप का यह रूप साख्य सिद्धान्त तथा वेद द्वारा वर्णित, बहुत सी शाखाओं द्वारा स्थिर किया हुआ, आदि मध्य अन्त विहीन, सत्-असत् तथा एकमात्र सत् है। (१७)

यह एक तथा अनेक प्रकार का, वेदों द्वारा एकाग्र भक्ति से आश्रित, आख्या विहीन, ऐश्वर्यादि षड्गुणों से युक्त, बहुत सी आख्याओं वाला तथा त्रिगुणाश्रय है। (१८)

आप का यह तत्त्वगुणात्मक रूप नाना शक्तियों के विभाव (उद्भव) को जानने वाला, तथा नाना शक्तियों का विभावक (जनक) है। वह सुखों से बढकर सुख तथा महत्सुख है। (१९)

हे देवि! इस प्रकार से अद्वैत तथा द्वैत मे आश्रित निष्कल तथा सकल ब्रह्म आप के द्वारा व्याप्त है। (२०)

हे देवि! जो पदार्थ नित्य हैं तथा जो विनष्ट हो जाने वाले हैं, जो पदार्थ स्थूल हैं तथा जो सूक्ष्म हैं, जो भूमि पर हैं तथा जो अन्तरिक्ष मे हैं या जो अन्यत्र हैं उन समस्त पदार्थों की उपलब्धि आप से ही होती है। (२१)

यद्वा मूर्तं यदमूर्तं समस्तं
यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किंचित्।
यच्च द्वैते व्यस्तभूतं च लक्ष्य
तत्संबद्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च ॥ २२
एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती।
प्रत्युवाच महात्मानं मार्कण्डेयं महामुनिम्।
यत्र त्वं नेष्यसे विप्र तत्र यास्याम्यतन्द्रिता ॥ २३

मार्कण्डेय उवाच।

आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं ततो रामह्रदः स्मृतः।
कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्।
तस्य मध्येन वै गाढं पुण्या पुण्यजलावहा ॥ २४

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये एकादशोऽध्याय ॥११॥

१२

लोमहर्षण उवाच।

इत्युपेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य धीमतः।
नदी प्रवाहसंयुक्ता कुरुक्षेत्रं विवेश ह ॥ १
तत्र सा रन्तुकं प्राप्य पुण्यतोया सरस्वती।
कुरुक्षेत्रं समाप्लाव्य प्रयाता पश्चिमां दिशम् ॥ २
तत्र तीर्थसहस्राणि ऋषिभिः सेवितानि च।
तान्यहं कीर्तयिष्यामि प्रसादात् परमेष्ठिनः ॥ ३
तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम्।

जो मूर्त्त है या जो अमूर्त्त है यह सब कुछ और जो सब भूतों में एक रूप से स्थित है और जो केवल एक मात्र है और जो द्वैत में अलग अलग रूप से दिखाई पड़ता है वह सब कुछ आपके स्वर व्यञ्जनों से सम्बद्ध है। (२२)

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर विष्णु की जिह्वा स्वरूपिणी सरस्वती ने महामुनि महात्मा मार्कण्डेय से कहा—हे विप्र! तुम जहाँ ले जाओगे मैं वहाँ आलस्य रहित होकर जाऊँगी। (२३)

मार्कण्डेय ने कहा—पूर्वकाल में पवित्र ब्रह्मसर (नाम से प्रसिद्ध) तदनन्तर रामह्रद (नाम से) अभिहित एवं तदुपरान्त कुरु ऋषि द्वारा कृष्ट होने से कुरुक्षेत्र कहे जाने वाले क्षेत्र मे आप अत्यन्त पवित्र तथा पुण्यजलवाली हों अर्थात् वहाँ प्रवाहित हों। (२४)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में ग्यारहवा अध्याय समाप्त ॥११॥

१२

लोमहर्षण ने कहा—बुद्धिमान् मार्कण्डेय ऋषि के इस वचन को सुनकर प्रवाह-संयुक्त नदी कुरुक्षेत्र मे प्रविष्ट हुई। (१)

वह पुण्यतोया सरस्वती नदी वहाँ रन्तुक में जाकर कुरुक्षेत्र को प्लावित करती हुई पश्चिम दिशा की ओर चली गई। (२)

वहाँ (कुरुक्षेत्र मे) ऋषियों से सेवित सहस्रों तीर्थ हैं। परमेष्ठी (ब्रह्मा) के प्रसाद से मैं उनका वर्णन करूँगा। (३)

पापियों के लिये भी तीर्थों का स्मरण पुण्यदायक, उनका दर्शन पापनाशक और स्नान मुक्तिदायक कहा

स्नानं मुक्तिकरं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मणः ॥ ४
ये स्मरन्ति च तीर्थानि देवताः प्रीणयन्ति च ।
स्नान्ति च श्रद्धानाश्च ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ५
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् कुरुक्षेत्रं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ ६
कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् ।
इत्येवं वाचमुत्सृज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोग्रहे मरणं तथा ।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा ॥ ८
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ ९
दूरस्थोऽपि कुरुक्षेत्रे गच्छामि च वसाम्यहम् ।
एवं यः सततं ब्रूयात् सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥ १०
तत्र चैव सरःस्नायी सरस्वत्यास्तटे स्थितः ।
तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयमुत्पत्स्यति न संशयः ॥ ११

देवता ऋषयः सिद्धाः सेवन्ते कुरुजाङ्गलम् ।
तस्य संसेवनान्नित्यं ब्रह्म चात्मनि पश्यति ॥ १२
चञ्चलं हि मनुष्यत्वं प्राप्य ये मोक्षकाङ्क्षिणः ।
सेवन्ति नियतात्मानो अपि दुष्कृतकारिणः ॥ १३
ते विमुक्ताश्च कलुषैरनेकजन्मसंभवैः ।
पश्यन्ति निर्मलं देवं हृदयस्थं सनातनम् ॥ १४
ब्रह्मवेदिः कुरुक्षेत्रं पुण्यं सान्निहितं सरः ।
सेवमाना नरा नित्यं प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥ १५
ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद् भयम् ।
कुरुक्षेत्रे मृतानां च पतनं नैव विद्यते ॥ १६
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः ।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः सेवन्ति स्थानकाङ्क्षिणः ॥ १७
गत्वा तु श्रद्धया युक्तः स्नात्वा स्थाणुमहाह्रदे ।
मनसा चिन्तितं कामं लभते नात्र संशयः ॥ १८

गया है। (४)

जो श्रद्धा-सहित तीर्थों का स्मरण करते हैं, देवताओं को प्रसन्न करते हैं और उनमें स्नान करते हैं, वे परम गति को प्राप्त करते हैं। (५)

अपवित्र या पवित्र अथवा सर्वावस्थाप्राप्त भी जो व्यक्ति कुरुक्षेत्र का स्मरण करे तो वह बाहर तथा भीतर से पवित्र हो जाता है। (६)

'मैं कुरुक्षेत्र में जाऊँगा और मैं कुरुक्षेत्र में निवास करूँगा' इस प्रकार का वचन कहने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (७)

मानवों के लिये ब्रह्मज्ञान, गया में श्राद्ध, गौओं की रक्षा के लिये मृत्यु और कुरुक्षेत्र में निवास, यह चार प्रकार की मुक्ति कही गई है। (८)

सरस्वती और दृषद्वती इन दो देव नदियों के मध्य के देव निर्मित देश को ब्रह्मावर्त कहते हैं। (९)

दूर रहकर भी जो मनुष्य "मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा, वहाँ निवास करूँगा" इस प्रकार सदा कहता है वह भी सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (१०)

वहाँ सरस्वती के तट पर रहते हुये सरोवर में स्नान करने वाले मनुष्य को निःसंदेह ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है। (११)

देवता ऋषि और सिद्धलोग सदा कुरुक्षेत्र का सेवन करते हैं। वहाँ नित्य रहने से मनुष्य अपने भीतर ब्रह्म का दर्शन करता है। (१२)

चञ्चल मानव जीवन पाकर जो पापी भी जितेन्द्रिय होकर मोक्ष की इच्छा से यहाँ निवास करते हैं वे अनेक जन्मों के पापों से मुक्त हो अपने हृदयस्थ सनातन निर्मल देव का दर्शन करते हैं। (१३-१४)

ब्रह्मवेदी, कुरुक्षेत्र एवं पवित्र सान्निहित सरोवर का जो मनुष्य सतत सेवन करते हैं वे परम पद को प्राप्त करते हैं। (१५)

समय पर ग्रह, नक्षत्र एवं ताराओं के भी पतन का भय होता है, किन्तु कुरुक्षेत्र में मरने वालों का कभी पतन नहीं होता। (१६)

ब्रह्मादि देवता, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरायें और यक्ष उत्तम स्थान की प्राप्ति के लिये यहाँ निवास करते हैं। (१७)

वहाँ जाकर स्थाणु नामक महासरोवर में श्रद्धा पूर्वक स्नान करने से मनुष्य निःसंदेह मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। (१८)

नियम परायण होने के पश्चात् सरोवर की प्रदक्षिणा

नियमं च ततः कृत्वा गत्वा सरः प्रदक्षिणम् ।
रन्तुकं च समासाद्य क्षामयित्वा पुनः पुनः ॥ १९
सरस्वत्यां नरः स्नात्वा यक्षं दृष्ट्वा प्रणम्य च ।
पुष्पं धूपं च नैवेद्यं दत्त्वा वाचमुदीरयेत् ॥ २०
तव प्रसादाद् यक्षेन्द्र वनानि सरितश्च याः ।
भ्रमिष्यामि च तीर्थानि अविघ्नं कुरु मे सदा ॥ २१

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये द्वादशोऽध्याय ॥१२॥

१३

ऋषय ऊचुः ।
वनानि सप्त नो ब्रूहि नव नद्यश्च याः स्मृताः ।
तीर्थानि च समग्राणि तीर्थस्नानफलं तथा ॥ १
येन येन विधानेन यस्य तीर्थस्य यत् फलम् ।
तत् सर्वं विस्तरेणेह ब्रूहि पौराणिकोत्तम ॥ २
लोमहर्षण उवाच ।
शृणु सप्त वनानीह कुरुक्षेत्रस्य मध्यतः ।
येषां नामानि पुण्यानि सर्वपापहराणि च ॥ ३
काम्यकं च वनं पुण्यं तथाऽदितिवनं महत् ।
व्यासस्य च वनं पुण्यं फलकीवनमेव च ॥ ४
तत्र सूर्यवनस्थानं तथा मधुवनं महत् ।
पुण्यं शीतवनं नाम सर्वकल्मषनाशनम् ॥ ५
वनान्येतानि वै सप्त नदीः शृणुत मे द्विजाः ।
सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी ॥ ६
आपगा च महापुण्या गङ्गा मन्दाकिनी नदी ।
मधुस्रवा वासुनदी कौशिकी पापनाशिनी ॥ ७
दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्वती नदी ।
वर्षाकालवहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वतीम् ॥ ८
एतासामुदकं पुण्यं प्रावृट्काले प्रकीर्त्तितम् ।
रजस्वलत्वमेतासां विद्यते न कदाचन ।

करके रन्तुक मे जाकर पुन पुन क्षमा प्रार्थना करने के बाद सरस्वती में स्नान कर यक्ष का दर्शन और प्रणाम करे तथा पुष्प, धूप एव नैवेद्य देकर इस प्रकार वचन कहे—हे यक्षेन्द्र ! आपकी कृपासे मैं वनों, नदियों और तीर्थों मे भ्रमण करूँगा उसे आप सदा विघ्न रहित करें। (१९-२१)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य मे बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

१३

ऋषियों ने कहा—उन सात वनों, नव नदियों, समग्र तीर्थों एव तीर्थ स्नान के फल का हमसे वर्णन करें। (१)

हे पौराणिकोत्तम ! जिस जिस विधान से जिस तीर्थ का जो फल होता है उन सबको विस्तार पूर्वक बतलायें। (२)

लोमहर्षण ने कहा—कुरुक्षेत्र के मध्य मे जो सात वन हैं उन्हें सुनो। उनके नाम सभी पापों को नाश करने वाले तथा पवित्र हैं। (३)

पवित्र काम्यक वन, महान् अदिति वन, पुण्यप्रद व्यास-वन, फलकी-वन, सूर्यवन, महान् मधुवन तथा सर्वकल्मष नाशक पवित्र शीतवन ये ही सात वन हैं। हे द्विजो ! नदियों को मुझसे सुनो। पवित्र सरस्वती नदी, वैतरणी नदी, महापवित्र आपगा, मन्दाकिनी गङ्गा, मधुस्रवा, वासु नदी, पापनाशिनी कौशिकी, महापवित्र दृषद्वती तथा हिरण्वती नदी। इनमें सरस्वती के अतिरिक्त सभी नदियाँ वर्षाकाल में बहने वाली हैं। (४-८)

वर्षाकाल मे इनका जल पवित्र माना जाता है। इनमे कभी भी रजस्वलत्व दोष नहीं होता। तीर्थ के प्रभाव

तीर्थस्य च प्रभावेण पुण्या ह्येताः सरिद्वराः ॥ ९
शृण्वन्तु मुनयः प्रीतास्तीर्थस्नानफलं महत् ।
गमनं स्मरणं चैव सर्वकल्मषनाशनम् ॥ १०
रन्तुकं च नरो दृष्ट्वा द्वारपालं महाबलम् ।
यक्षं समभिवाद्यैव तीर्थयात्रां समाचरेत् ॥ ११
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा नाम्नाऽदितिवनं महत् ।
अदित्या यत्र पुत्रार्थं कृतं घोरं महत्तपः ॥ १२
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च अदितिं देवमातरम् ।
पुत्रं जनयते शूरं सर्वदोषविवर्जितम् ।
आदित्यशतसंकाशं विमानं चाधिरोहति ॥ १३
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ।
सवनं नाम विख्यातं यत्र संनिहितो हरिः ॥ १४
विमले च नरः स्नात्वा दृष्ट्वा च विमलेश्वरम् ।
निर्मलं स्वर्गमायाति रुद्रलोकं च गच्छति ॥ १५
हरिं च बलदेवं च एकत्रासनसमन्वितौ ।
दृष्ट्वा मोक्षमवाप्नोति कलिकल्मषसंभवैः ॥ १६
ततः पारिप्लवं गच्छेत् तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्माणं वेदसंयुतम् ॥ १७
ब्रह्मवेदफलं प्राप्य निर्मलं स्वर्गमाप्नुयात् ।
तत्रापि संगमं प्राप्य कौशिक्यां तीर्थसंभवम् ।
संगमे च नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १८
धरण्यास्तीर्थमासाद्य सर्वपापविमोचनम् ।
क्षान्तियुक्तो नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १९
धरण्यामपराधानि कृतानि पुरुषेण वै ।
सर्वाणि क्षमते तस्य स्नातमात्रस्य देहिनः ॥ २०
ततो दक्षाश्रमं गत्वा दृष्ट्वा दक्षेश्वरं शिवम् ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २१
ततः शालूकिनीं गत्वा स्नात्वा तीर्थे द्विजोत्तमाः ।
हरिं हरेण संयुक्तं पूज्य भक्तिसमन्वितः ।
प्राप्नोत्यभिमताँल्लोकान् सर्वपापविवर्जितान् ॥ २२

से ये सभी श्रेष्ठ नदियाँ पवित्र हैं । (९)

हे मुनियो ! आपलोग प्रसन्न होकर तीर्थस्नान का महान् फल सुनें । वहाँ जाना एवं उनका स्मरण करना समस्त पापों का नाशक होता है । (१०)

महाबलवान् रन्तुक नामक द्वारपाल का दर्शन करने के उपरान्त यक्ष को प्रणाम कर तीर्थयात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये । (११)

हे विप्रेन्द्रो ! तदनन्तर महान् अदिति-वन में जाना चाहिये, जहाँ अदिति ने पुत्र के लिए अत्यन्त कठोर तप किया था । (१२)

वहाँ स्नानकर देवमाता अदिति का दर्शन करने से मनुष्य समस्त दोषों से रहित शूर पुत्र उत्पन्न करता है और सैकड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान विमान पर आरूढ़ होता है । (१३)

हे विप्रेन्द्रो ! तदुपरान्त 'सवन' नाम से प्रसिद्ध सर्वोत्तम विष्णु-स्थान को जाना चाहिये, जहाँ भगवान् हरि सदा सन्निहित रहते हैं । (१४)

विमलतीर्थ में स्नान कर विमलेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य निर्मल स्वर्ग तथा रुद्रलोक में जाता है । (१५)

आसन पर एकत्र आरूढ़ कृष्ण और बलदेव का दर्शन करने से मनुष्य कलिकल्मष-सम्भूत पापों से मुक्त हो जाता है । (१६)

तदनन्तर त्रैलोक्य प्रसिद्ध पारिप्लव नामक तीर्थ में जाय । वहाँ स्नान करने के पश्चात् वेद सयुत ब्रह्मा का दर्शन करने से ब्रह्मज्ञान का फल एवं निर्मल स्वर्ग की प्राप्ति होती है । कौशिकी के तीर्थभूत सङ्गम में जाकर स्नान करने से मनुष्य परम पद प्राप्त करता है । (१७-१८)

सर्वपापविमोचक धरणी के तीर्थ में जाकर स्नान करने से क्षमाशील मनुष्य परम पद प्राप्त करता है । (१९)

वहाँ स्नान करने मात्र से पृथ्वी पर मनुष्य द्वारा कृत समस्त अपराध क्षमित हो जाते हैं । (२०)

तदनन्तर दक्षाश्रम में जाकर दक्षेश्वर शिव का दर्शन करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । (२१)

हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर शालूकिनी तीर्थ में जाकर स्नान करने के पश्चात् भक्तिपूर्वक हर से संयुक्त हरि का पूजन कर मनुष्य सर्वपापविवर्जित अभिमत लोकों को प्राप्त करता है । (२२)

सर्पिर्दधि समासाद्य नागानां तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नानं नरः कृत्वा मुक्तो नागभयाद् भवेत् ॥ २३

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रन्तुकम् ।
तत्रोष्य रजनीमेकां स्नात्वा तीर्थवरे शुभे ॥ २४

द्वितीयं पूजयेद् यत्र द्वारपालं प्रयत्नतः ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥ २५

तव प्रसादाद् यक्षेन्द्र मुक्तो भवति किल्बिषैः ।
सिद्धिर्मयाभिलषिता तया सार्द्धं भवाम्यहम् ।
एवं प्रसाद्य यक्षेन्द्रं ततः पञ्चनदं व्रजेत् ॥ २६

पञ्चनदाश्च रुद्रेण कृता दानवभीषणाः ।
तत्र सर्वेषु लोकेषु तीर्थं पञ्चनद स्मृतम् ॥ २७

कोटितीर्थानि रुद्रेण समाहृत्य यत. स्थितम् ।
तेन त्रैलोक्यविख्यातं कोटितीर्थं प्रचक्षते ॥ २८

तस्मिन् तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं हरम् ।
पञ्चयज्ञानवाप्नोति नित्यं श्रद्धासमन्वितः ॥ २९

तत्रैव वामनो देवः सर्वदेवैः प्रतिष्ठितः ।
तत्रापि च नरः स्नात्वा ह्यग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ३०

अश्विनोस्तीर्थमासाद्य श्रद्धावान् यो जितेन्द्रियः ।
रूपस्य भागी भवति यशस्वी च भवेन्नरः ॥ ३१

वाराहं तीर्थमाख्यातं विष्णुना परिकीर्तितम् ।
तस्मिन् स्नात्वा श्रद्दधानः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३२

ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः सोमतीर्थमनुत्तमम् ।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा व्याधिमुक्तोऽभवत् पुरा ॥ ३३

तत्र सोमेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा तीर्थवरे शुभे ।
राजसूयस्य यज्ञस्य फल प्राप्नोति मानवः ॥ ३४

व्याधिभिश्च विनिर्मुक्तः सर्वदोषविवर्जित. ।
सोमलोकमवाप्नोति तत्रैव रमते चिरम् ॥ ३५

भूतेश्वरं च तत्रैव ज्वालामालेश्वर तथा ।
तावुभौ लिङ्गावभ्यर्च्य न भूयो जन्म चाप्नुयात् ॥ ३६

एकहंसे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।

सर्पिर्दधि नामक नागों के उत्तम तीर्थ मे जाकर स्नान करने से मनुष्य नाग भय से मुक्त हो जाता है। (२३)

हे विप्रश्रेष्ठो! तदनन्तर रन्तुक नामक द्वारपाल में जाना चाहिये। वहाँ एक रात्रि निवास करे तथा कल्याणकारी श्रेष्ठतीर्थ में स्नान करने के उपरान्त दूसरे दिन प्रयत्न पूर्वक द्वारपाल का पूजन करे एव ब्राह्मणों को भोजन करावे। तदनन्तर प्रणाम कर इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—'हे यक्षेन्द्र! तुम्हारी कृपा से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है। मैं अपनी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त करूँ" इस प्रकार यक्षेन्द्र को प्रसन्न करने के पश्चात् पञ्चनद तीर्थ मे जाना चाहिये। जहाँ भगवान् रुद्र ने दानवों के लिये भयकर पाँच नदों का निर्माण किया है वहाँ समस्त ससार में प्रसिद्ध पञ्चनद तीर्थ है। (२४-२७)

क्योंकि करोड़ों तीर्थों का समाहरण कर रुद्र वहाँ स्थित हैं अत उसे त्रैलोक्य विख्यात कोटितीर्थ कहा जाता है। (२८)

श्रद्धा-समन्वित मनुष्य उस तीर्थ में स्नान कर तथा कोटीश्वर हर का दर्शन कर पञ्चयज्ञानुष्ठान का फल प्राप्त करता है। (२९)

उसी स्थान पर सब देवताओं ने भगवान् वामनदेव की प्रतिष्ठा की है। वहाँ भी स्नान करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। (३०)

श्रद्धावान् जितेन्द्रिय मनुष्य अश्विनीकुमारों के तीर्थ में जाकर रूपवान् और यशस्वी होता है। (३१)

विष्णु द्वारा वर्णित प्रसिद्ध वाराह नामक तीर्थ में स्नान कर श्रद्धालु पुरुष परम पद प्राप्त करता है। (३२)

हे विप्रेन्द्रो! तदनन्तर सर्वश्रेष्ठ सोमतीर्थ में जाना चाहिए, जहाँ पूर्वकाल मे तपस्या करने से चन्द्रमा व्याधि-मुक्त हुए थे। (३३)

उस शुभ तीर्थ में स्नान कर सोमेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है तथा व्याधियों और सभी दोषों से मुक्त होकर सोमलोक में जाता है, एवं चिरकाल तक वहाँ रमण करता है। (३४-३५)

वहीं पर भूतेश्वर एव ज्वालामालेश्वर नामक लिङ्ग है। उन दोनों लिङ्गों की पूजा करने से पुनर्जन्म नहीं होता। (३६)

'एकहस' में स्नान कर मनुष्य हजारों गौवों के दान का फल प्राप्त करता है। 'कृतशौच' नामक तीर्थ में जाने से तीर्थसेवी द्विजोत्तम पुण्डरीक (यज्ञविशेष) के फल को प्राप्त

कृतशौचं समासाद्य तीर्थसेवी द्विजोत्तमः ॥ ३७
पुण्डरीकमवाप्नोति कृतशौचो भवेन्नरः ।
ततो मुञ्जवटं नाम महादेवस्य धीमतः ॥ ३८
उपोष्य रजनीमेकां गाणपत्यमवाप्नुयात् ।
तत्रैव च महाग्राही यक्षिणी लोकविश्रुता ॥ ३९
स्नात्वाऽभिगत्वा तत्रैव प्रसाद्य यक्षिणीं ततः ।
उपवासं च तत्रैव महापातकनाशनम् ॥ ४०
कुरुक्षेत्रस्य तद् द्वारं विश्रुतं पुण्यवर्द्धनम् ।
प्रदक्षिणमुपावर्त्य ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः ।
पुष्करं च ततो गत्वा अभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥ ४१
जामदग्न्येन रामेण आहृतं तन्महात्मना ।
कृतकृत्यो भवेद् राजा अश्वमेधं च विन्दति ॥ ४२
कन्यादानं च यस्तत्र कार्त्तिक्यां वै करिष्यति ।
प्रसन्ना देवतास्तस्य दास्यन्त्यभिमतं फलम् ॥ ४३
कपिलश्च महायक्षो द्वारपालः स्वयं स्थितः ।
विघ्नं करोति पापानां दुर्गतिं च प्रयच्छति ॥ ४४
पत्नी तस्य महायक्षी नाम्नोदूखलमेखला ।
आहत्य दुन्दुभिं तत्र भ्रमते नित्यमेव हि ॥ ४५
सा ददर्श स्त्रियं चैकां सपुत्रां पापदेशजाम् ।
तामुवाच तदा यक्षी आहत्य निशि दुन्दुभिम् ॥ ४६
युगन्धरे दधि प्राश्य उषित्वा चाच्युतस्थले ।
तद्वद् भूतालये स्नात्वा सपुत्रा वस्तुमिच्छसि ॥ ४७
दिवा मया ते कथितं रात्रौ भक्ष्यामि निश्चितम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं प्रणिपत्य च यक्षिणीम् ॥ ४८
उवाच दीनया वाचा प्रसादं कुरु भामिनि ।
ततः सा यक्षिणी तां तु प्रोवाच कृपयान्विता ॥ ४९
यदा सूर्यस्य ग्रहणं कालेन भविता क्वचित् ।
सन्निहत्यां तदा स्नात्वा पूता स्वर्गं गमिष्यसि ॥ ५०

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्याय ॥१३॥

करता है तथा उसकी शुद्धि हो जाती है। तदनन्तर बुद्धिमान् महादेव के मुञ्जवट नामक तीर्थ में एक रात्रि निवास करके मनुष्य गाणपत्य प्राप्त करता है। वहीं संसारप्रसिद्ध महा ग्राही यक्षिणी है। वहाँ जाकर स्नान करने के उपरान्त यक्षिणी को प्रसन्न कर उपवास करने से महान् पातकों का नाश होता है। (३७-४०)

कुरुक्षेत्र के उस विश्रुत पुण्यवर्द्धक द्वार की प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणों को भोजन कराये। तदनन्तर पुष्कर में जाकर पितृदेवों की अर्चना करे। (४१)

जामदग्न्य राम उस तीर्थ को लाये थे। वहाँ (जाकर) मनुष्य कृतकृत्य होता है और राजा को अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है। (४२)

कार्तिकी पूर्णिमा को जो वहाँ कन्यादान करेगा, देवता उसके ऊपर प्रसन्न होकर उसे अभिमत फल देंगे। (४३)

वहाँ स्वयं कपिल नामक महायक्ष द्वारपालरूप से स्थित हैं, जो पापियों के मार्ग में विघ्न उपस्थित कर उनकी दुर्गति करते हैं। (४४)

उदूखलमेखला नामक उनकी महायक्षी पत्नी दुन्दुभि बजा कर वहाँ नित्य भ्रमण करती रहती है। (४५)

उस यक्षी ने पाप देश में उत्पन्न एक सपुत्रा स्त्री को देखने के उपरान्त रात्रि में दुन्दुभि बजाकर उससे कहा- (४६)

युगन्धर में दही खाकर तथा अच्युतस्थल में निवास करने के उपरान्त भूतालय में स्नान कर तुम पुत्र के साथ निवास करना चाहती हो। (४७)

मैंने दिन में यह बात कही है। रात्रि में मैं अवश्य तुमको खा जाऊँगी। उसकी यह बात सुनने के अनन्तर यक्षिणी को प्रणाम कर उसने दीन वाणी से कहा "हे भामिनी मेरे ऊपर अनुग्रह करो।" तदनन्तर उस यक्षिणी ने उससे कृपापूर्वक कहा— (४८-४९)

जब किसी समय सूर्य ग्रहण होगा उस समय सान्निहत्य में स्नान कर पवित्र होकर तुम स्वर्ग जाओगी। (५०)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

१४

लोमहर्षण उवाच ।
ततो रामह्रदं गच्छेत् तीर्थसेवी द्विजोत्तमः ।
यत्र रामेण विप्रेण तरसा दीप्ततेजसा ॥ १
क्षत्रमुत्साद्य वीरेण ह्रदाः पञ्च निवेशिताः ।
पूरयित्वा नरव्याघ्र रुधिरेणेति नः श्रुतम् ॥ २
पितरस्तर्पितास्तेन तथैव च पितामहाः ।
ततस्ते पितरः प्रीता राममूचुर्द्विजोत्तमाः ॥ ३
राम राम महाबाहो प्रीताः स्मस्तव भार्गव ।
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण च ते विभो ॥ ४
वरं वृणीष्व भद्रं ते किमिच्छसि महायशः ।
एवमुक्तस्तु पितृभी राम: प्रभवतां वरः ॥ ५
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं स पितॄन् गगने स्थितान् ।
भवन्तो यदि मे प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि ॥ ६
पितृप्रसादादिच्छेयं तपसाप्यायनं पुनः ।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया ॥ ७
ततश्च पापान्मुच्येयं युष्माकं तेजसा ह्यहम् ।
ह्रदाश्चैते तीर्थभूता भवेयुर्भुवि विश्रुताः ॥ ८
एवमुक्ताः शुभं वाक्यं रामस्य पितरस्तदा ।
प्रत्यूचुः परमप्रीता रामं हर्षपुरस्कृताः ॥ ९
तपस्ते वर्द्धतां पुत्र पितृभक्त्या विशेषतः ।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं त्वया ॥ १०
ततश्च पापान्मुक्तस्त्वं पातितास्ते स्वकर्मभिः ।
ह्रदाश्च तव तीर्थत्वं गमिष्यन्ति न संशयः ॥ ११
ह्रदेष्वेतेषु ये स्नात्वा स्वान् पितॄंस्तर्पयन्ति च ।
तेभ्यो दास्यन्ति पितरो यथाभिलषितं वरम् ॥ १२
ईप्सितान् मानसान् कामान् स्वर्गवासं च शाश्वतम् ।
एवं दत्त्वा वरान् विप्रा रामस्य पितरस्तदा ॥ १३
आमन्त्र्य भार्गवं प्रीतास्तत्रैवान्तर्हितास्तदा ।

१४

लोमहर्षण ने कहा—तदनन्तर तीर्थसेवी द्विजोत्तम को रामह्रद जाना चाहिये। जहाँ दीप्ततेजा विप्र वीर राम (परशुराम) ने बल पूर्वक क्षत्रियों को नष्ट कर पाँच ह्रदों का निवेश किया था। हे नरव्याघ्र ! हम लोगों ने ऐसा सुना है कि उन्होंने उन (ह्रदों) को रुधिर से पूरित कर उससे अपने पितरों एवं पितामहों को तृप्त किया। हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर उन प्रसन्न पितरों ने परशुराम से कहा— (१-३)

हे महाबाहु ! हे भार्गव राम ! हे विभु ! तुम्हारी इस पितृभक्ति और विक्रम से हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। (४)

हे महायशस्वी ! तुम वर माँगो ! क्या चाहते हो ? पितरों के ऐसा कहने पर प्रभावशालियों में श्रेष्ठ राम ने आकाशस्थित पितरों से हाथ जोडकर कहा—यदि आप लोग मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तथा मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहते हैं तो आप पितरों के प्रसाद से मैं पुनः तप से पूर्ण होना चाहता हूँ। रोषाभिभूत होकर मैंने जो क्षत्रियों का विनाश किया है, आप के तेज द्वारा मैं उस पाप से मुक्त होजाऊँ एवं तीर्थभूत ये ह्रद संसार में प्रसिद्ध हों। (५-८)

राम के द्वारा इस प्रकार शुभ वचन कहे जाने पर उनके परमानन्दित पितरों ने हर्षपूर्वक उनसे कहा— (९)

हे पुत्र ! पितृभक्ति से तुम्हारा तप विशेष रूप से बढे। क्रोधाभिभूत होकर तुमने जो क्षत्रियों का विनाश *किया उस पाप से तुम मुक्त हो क्योंकि वे क्षत्रिय* अपने कर्म से मारे गये हैं। तुम्हारे (द्वारा निवेशित) ये ह्रद निःसंशय तीर्थ बनेंगे। (१०-११)

इन ह्रदों में स्नानकर जो अपने पितरों का तर्पण करेंगे उन्हें पितृगण यथाभिलषित वर, मनोभिलषित कामनायें एवं स्वर्ग में शाश्वत निवास प्रदान करेंगे। हे विप्रो ! इस प्रकार वर देने के उपरान्त भार्गव राम के पितर उनकी अनुमति

एवं रामह्रदाः पुण्या भार्गवस्य महात्मनः ॥ १४
स्नात्वा ह्रदेषु रामस्य ब्रह्मचारी शुचिव्रतः ।
राममभ्यर्च्य श्रद्धावान् विन्देद् बहु सुवर्णकम् ॥ १५
वंशमूलं समासाद्य तीर्थसेवी सुसंयतः ।
स्ववंशसिद्धये विप्राः स्नात्वा वै वंशमूलके ॥ १६
कायशोधनमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
शरीरशुद्धिमाप्नोति स्नातस्तस्मिन् न संशयः ॥ १७
शुद्धदेहश्च तं याति यस्मान्नावर्तते पुनः ।
तावद् भ्रमन्ति तीर्थेषु सिद्धास्तीर्थपरायणाः ।
यावन्न प्राप्नुवन्तीह तीर्थं तत्कायशोधनम् ॥ १८
तस्मिंस्तीर्थे च संप्लाव्य कायं संयतमानसः ।
परं पदमवाप्नोति यस्मान्नावर्तते पुनः ॥ १९
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रास्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
लोका यत्रोद्धृताः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २०
लोकोद्धारं समासाद्य तीर्थस्मरणतत्परः ।
स्नात्वा तीर्थवरे तस्मिन् लोकान् पश्यति शाश्वतान् ॥ २१
यत्र विष्णुः स्थितो नित्यं शिवो देवः सनातनः ।
तौ देवौ प्रणिपातेन प्रसाद्य मुक्तिमाप्नुयात् ॥ २२
श्रीतीर्थं तु ततो गच्छेत् शालग्राममनुत्तमम् ।
तत्र स्नातस्य सान्निध्यं सदा देवी प्रयच्छति ॥ २३
कपिलाह्रदमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च दैवतानि पितॄंस्तथा ॥ २४
कपिलानां सहस्रस्य फलं विन्दति मानवः ।
तत्र स्थितं महादेवं कापिलं वपुरास्थितम् ॥ २५
दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति ऋषिभिः पूजितं शिवम् ।
सूर्यतीर्थं समासाद्य स्नात्वा नियतमानसः ॥ २६
अर्चयित्वा पितॄन् देवानुपवासपरायणः ।
अग्निष्टोममवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति ॥ २७
सहस्रकिरणं देवं भानुं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

लेकर प्रसन्नता पूर्वक वहीं अ तर्हित हो गये। इस प्रकार महात्मा परशुराम के रामह्रद पुण्यप्रदायक हैं। (१२-१४)

श्रद्धावान्, शुचिव्रत व्यक्ति ब्रह्मचर्य पूर्वक राम के ह्रदों में स्नान करने के उपरान्त परशुराम का अर्चन करने से बहुत परिमाण में सुवर्ण प्राप्त करता है। (१५)

हे ब्राह्मणो! तीर्थसेवी जितेन्द्रिय मनुष्य वंशमूल तीर्थ में जाकर उसमें स्नान करने से अपने वश की सिद्धि प्राप्त करता है। (१६)

त्रैलोक्य प्रसिद्ध कायशोधन तीर्थ में जाकर उसमें स्नान करने से मनुष्य को निस्सन्देह शरीर की शुद्धि प्राप्त होती है। (१७)

और शुद्धदेह मनुष्य उस स्थान को जाता है जहाँ से वह पुनः नहीं लौटता। तीर्थपरायण सिद्ध पुरुष तीर्थों में तब तक भ्रमण करते रहते हैं जब तक वे उस कायशोधन नामक तीर्थ में नहीं पहुँचते। (१८)

संयतचित्त मनुष्य उस तीर्थ में शरीर को धोकर उस परम पद को प्राप्त करता है जहाँ से पुनः लौटना नहीं पड़ता। (१९)

हे विप्रो! तदनन्तर त्रिलोकप्रसिद्ध लोकोद्धार तीर्थ में जाना चाहिए जहाँ सर्वसमर्थ विष्णु ने समस्त लोकों का उद्धार किया था। लोकोद्धार नामक तीर्थ में जाकर उसमें स्नान करने से तीर्थस्मरण तत्पर व्यक्ति शाश्वत लोकों का दर्शन करता है। (२०-२१)

यहाँ विष्णु एवं सनातन देव शिव दोनों ही स्थित हैं। प्रणाम द्वारा उन दोनों देवों को प्रसन्न कर मुक्ति प्राप्त करे। (२२)

तदनन्तर तीर्थश्रेष्ठ शालग्राम नामक श्रीतीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करने से भगवती अपने निकट का निवास प्रदान करती हैं। (२३)

तदुपरान्त त्रैलोक्यविश्रुत कपिलाह्रद नाम तीर्थ में जाकर उसमें स्नान करने के पश्चात् देवता तथा पितरों की पूजा करने से मनुष्य को सहस्र कपिला गायों के दान का फल प्राप्त होता है। वहाँ पर स्थित कपिल शरीरधारी ऋषियों से पूजित महादेव शिव का दर्शन करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है। स्थिरचित्त एवं उपवास-परायण व्यक्ति सूर्यतीर्थ में जाकर स्नान करने के उपरान्त पितरों का अर्चन करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त करता है एवं सूर्यलोक को जाता है। (२४-२७)

त्रैलोक्य विश्रुत सहस्र किरण सूर्यदेव का दर्शन करने से

दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति नरो ज्ञानसमन्वितः ॥ २८
भवानीवनमासाद्य तीर्थसेवी यथाक्रमम् ।
तत्राभिषेकं कुर्वाणो गोसहस्रफलं लभेत् ॥ २९
पितामहस्य पिबतो ह्यमृतं पूर्वमेव हि ।
उद्गारात् सुरभिर्जाता सा च पातालमाश्रिता ॥ ३०
तस्याः सुरभयो जाताः तनया लोकमातरः ।
ताभिस्तत्सकलं व्याप्तं पातालं सुनिरन्तरम् ॥ ३१
पितामहस्य यजतो दक्षिणार्थमुपाहृताः ।
आहूता ब्रह्मणा ताश्च विभ्रान्ता विवरेण हि ॥ ३२
तस्मिन् विवरद्वारे तु स्थितो गणपतिः स्वयम् ।
यं दृष्ट्वा सकलान् कामान् प्राप्नोति संयतेन्द्रियः ॥ ३३
संगिनीं तु समासाद्य तीर्थं मुक्तिसमाश्रयम् ।
देव्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा लभते रूपमुत्तमम् ॥ ३४
अनन्तां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
भोगांश्च विपुलान् भुक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३५
ब्रह्मावर्ते नरः स्नात्वा ब्रह्मज्ञानसमन्वितः ।
भवते नात्र सन्देहः प्राणान् मुञ्चति स्वेच्छया ॥ ३६
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रन्तुकम् ।
तस्य तीर्थं सरस्वत्यां यक्षेन्द्रस्य महात्मनः ॥ ३७
तत्र स्नात्वा महाप्राज्ञ उपवासपरायणः ।
यक्षस्य च प्रसादेन लभते कामिकं फलम् ॥ ३८
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा ब्रह्मावर्तं मुनिस्तुतम् ।
ब्रह्मावर्ते नरः स्नात्वा ब्रह्म चाप्नोति निश्चितम् ॥ ३९
ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः सुतीर्थकमनुत्तमम् ।
तत्र संनिहिता नित्यं पितरो दैवतैः सह ॥ ४०
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः ।
अश्वमेधमवाप्नोति पितॄन् प्रीणाति शाश्वतान् ॥ ४१
ततोऽम्बुवनं धर्मज्ञ समासाद्य यथाक्रमम् ।
कामेश्वरस्य तीर्थे तु स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ॥ ४२
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्मावाप्तिर्भवेद् ध्रुवम् ।
मातृतीर्थं च तत्रैव यत्र स्नातस्य भक्तितः ॥ ४३
प्रजा विवर्द्धते नित्यमनन्तां चाप्नुयाच्छ्रियम् ।

ज्ञान समन्वित मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। (२८)

तीर्थसेवी मनुष्य क्रमानुसार भवानीवन में जाकर वहाँ अभिषेक करने से सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है। (२९)

प्राचीन काल में अमृत पीते हुए ब्रह्मा के उद्गार (डकार) से सुरभि की उत्पत्ति हुई और वह पाताल लोक में चली गई। (३०)

उस सुरभि से लोकमातायें गायें उत्पन्न हुईं। उनसे समस्त पाताल लोक व्याप्त हो गया। (३१)

पितामह के यज्ञ करते समय दक्षिणार्थ लायी गईं एवं ब्रह्मा के द्वारा आहूत वे गायें विवर के कारण भटकने लगीं। (३२)

उस विवर के द्वार पर स्वयं गणपति विराजमान हैं। संयतेन्द्रिय मनुष्य उनका दर्शन करने से समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है। (३३)

देवी के मुक्ति के आश्रयभूत संगिनी तीर्थ में जाकर स्नान करने से मनुष्य को सुन्दर रूप की प्राप्ति होती है तथा वह पुत्र पौत्र समन्वित होकर अनन्त ऐश्वर्य को प्राप्त करता है और विपुल भोगों का उपभोग कर परम पद प्राप्त करता है। (३४–३५)

ब्रह्मावर्त्त तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य निःसन्देह ब्रह्मज्ञानी हो जाता है एवं वह स्वेच्छानुसार प्राणों का परित्याग करता है। (३६)

हे विप्रश्रेष्ठो! तदनन्तर द्वारपाल रन्तुक के तीर्थ में जाय। उन महात्मा यक्षेन्द्र का तीर्थ सरस्वती नदी में है। वहाँ स्नान कर उपवास परायण महाप्राज्ञ व्यक्ति यक्ष के प्रसाद से इच्छित फल प्राप्त करता है। (३७–३८)

हे विप्रवरो! तदनन्तर मुनिप्रशंसित ब्रह्मावर्त्त तीर्थ में जाना चाहिए। ब्रह्मावर्त्त में स्नान करने से मनुष्य निश्चय ही ब्रह्म को प्राप्त करता है। (३९)

हे विप्रश्रेष्ठो! तदुपरान्त श्रेष्ठ सुतीर्थक नामक स्थान पर जाना चाहिए। वहाँ देवताओं के साथ पितृगण नित्य स्थित रहते हैं। पितरों एवं देवों की अर्चना में रत व्यक्ति वहाँ स्नान कर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है तथा शाश्वत पितरों को प्रसन्न करता है। (४०–४१)

हे धर्मज्ञ! तदनन्तर क्रमानुसार कामेश्वर के तीर्थ अम्बुवन में जाकर श्रद्धापूर्वक स्नान करने से मनुष्य सभी व्याधियों से विनिर्मुक्त होकर निश्चय ही ब्रह्म की प्राप्ति करता है। वहीं स्थित मातृतीर्थ में भक्ति पूर्वक स्नान करने से मनुष्य की प्रजा (संतति) की नित्य वृद्धि होती है तथा उसे अनन्त लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तदुपरान्त नियत-

ततः शीतवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः ॥ ४४
तीर्थं तत्र महाविप्रा महदन्यत्र दुर्लभम् ।
पुनाति दर्शनादेव दण्डकं च द्विजोत्तमाः ॥ ४५
केशानभ्युक्ष्य वै तस्मिन् पूतो भवति पापतः ।
तत्र तीर्थवरं चान्यत् स्वानुलोमायनं महत् ॥ ४६
तत्र विप्रा महाप्राज्ञा विद्वांसस्तीर्थतत्पराः ।
स्वानुलोमायने तीर्थे विप्रास्त्रैलोक्यविश्रुते ॥ ४७
प्राणायामैर्निर्हरन्ति स्वलोमानि द्विजोत्तमाः ।
पूतात्मानश्च ते विप्राः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥ ४८
दशाश्वमेधिकं चैव तत्र तीर्थं सुविश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तस्तदेव लभते फलम् ॥ ४९
ततो गच्छेत श्रद्धावान् मानुषं लोकविश्रुतम् ।
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य मुक्तो भवति किल्बिषैः ॥ ५०

पुरा कृष्णमृगास्तत्र व्याधेन शरपीडिताः ।
विगाह्य तस्मिन् सरसि मानुषत्वमुपागताः ॥ ५१
ततो व्याधाश्च ते सर्वे तानपृच्छन् द्विजोत्तमान् ।
मृगा अनेन वै याता अस्माभिः शरपीडिताः ॥ ५२
निमग्नास्ते सरः प्राप्य क्व ते याता द्विजोत्तमाः ।
तेऽब्रुवंस्तत्र वै पृष्टा वयं ते च द्विजोत्तमाः ॥ ५३
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मानुषत्वमुपागताः ।
तस्माद् यूय श्रद्दधानाः स्नात्वा तीर्थे विमत्सराः ॥ ५४
सर्वपापविनिर्मुक्ता भविष्यथ न संशय. ।
ततः स्नाताश्च ते सर्वे शुद्धदेहा दिवं गताः ॥ ५५
एतत् तीर्थस्य माहात्म्यं मानुषस्य द्विजोत्तमाः ।
ये शृण्वन्ति श्रद्दधानास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ ५६

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्याय ॥१४॥

भोजी एवं जितेन्द्रिय होकर शीतवन नामक तीर्थ में जाना चाहिए। हे महाविप्रो ! वहाँ पर अन्यत्र दुर्लभ दण्डक नामक महान् तीर्थ है। हे द्विजोत्तमो ! वह दर्शनमात्र से मनुष्य को पवित्र कर देता है। (४२-४५)

उस तीर्थ में केशों का मुण्डन कराने से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है। वहाँ स्वानुलोमायन नामक एक अन्य महान् तीर्थ है। (४६)

हे द्विजोत्तमो ! वहाँ पर स्थित उस त्रैलोक्य विश्रुत स्वानुलोमायन नामक तीर्थ में तीर्थ-तत्पर महाप्राज्ञ विद्वान् विप्र लोग प्राणायामों के द्वारा अपने लोमों का परित्याग करते हैं और वे पूतात्मा विप्र परम गति को प्राप्त करते हैं। (४७-४८)

यहीं पर परमप्रसिद्ध दशाश्वमेधिक तीर्थ है। भक्तिपूर्वक उसमें स्नान करने से पूर्वोक्त फल की ही प्राप्ति होती है। (४९)

तदनन्तर श्रद्धावान् मनुष्य को लोक-प्रसिद्ध मानुष तीर्थ में जाना चाहिए। उस तीर्थ का दर्शन करने से ही पापों से मुक्ति हो जाती है। (५०)

पूर्वकाल में व्याध द्वारा बाणपीड़ित कृष्णमृग उस सरोवर में स्नान करने से मनुष्यत्व को प्राप्त हुए थे। (५१)

तदनन्तर उन सभी व्याधों ने उन द्विजोत्तमों से पूछा—हे द्विजोत्तमो ! हम लोगों द्वारा शरपीड़ित मृग इस मार्ग से जाते हुए सरोवर में निमग्न होकर कहाँ चले गये ? उनके पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया—हम द्विजोत्तम ही वे मृग थे। इस तीर्थ के माहात्म्य से हम मनुष्य बन गये हैं। अत एव मत्सररहित होकर श्रद्धा पूर्वक तीर्थ में स्नान करने से तुम लोग निःसन्देह समस्त पापों से विनिर्मुक्त हो जाओगे। तदनन्तर स्नान करने से शुद्ध देह होकर वे सभी स्वर्ग चले गये। (५२-५५)

हे द्विजोत्तमो ! जो श्रद्धापूर्वक मानुष तीर्थ के इस माहात्म्य को सुनते हैं वे भी परम गति को प्राप्त करते हैं। (५६)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

लोमहर्षण उवाच ।
मानुपस्य तु पूर्वेण क्रोशमात्रे द्विजोत्तमा. ।
आपगा नाम विख्याता नदी द्विजनिषेविता ॥ १
श्यामाकं पयसा सिद्धमाज्येन च परिप्लुतम् ।
ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यस्तेषां पापं न विद्यते ॥ २
ये तु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राप्य तामापगां नदीम् ।
ते सर्वकामसंयुक्ता भविष्यन्ति न संशयः ॥ ३
शंसन्ति सर्वे पितरः स्मरन्ति च पितामहाः ।
अस्माक च कुले पुत्रः पौत्रो वापि भविष्यति ॥ ४
य आपगां नदीं गत्वा तिलैः संतर्पयिष्यति ।
तेन तृप्ता भविष्यामो यावत्कल्पशतं गतम् ॥ ५
नभस्ये मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे विशेषत. ।
चतुर्दश्यां तु मध्याह्ने पिण्डदो मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ६
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ।
ब्रह्मोदुम्बरमित्येवं सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ ७
तत्र ब्रह्मर्षिकुण्डेषु स्नातस्य द्विजसत्तमाः ।
सप्तर्षीणां प्रसादेन सप्तसोमफलं भवेत् ॥ ८
भरद्वाजो गौतमश्च जमदग्निश्च कश्यपः ।
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च अत्रिश्च भगवानृषिः ॥ ९
एतैः समेत्य तत्कुण्ड कल्पितं भुवि दुर्लभम् ।
ब्रह्मणा सेवितं यस्माद् ब्रह्मोदुम्बरमुच्यते ॥ १०
तस्मिंस्तीर्थवरे स्नातो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ११
देवान् पितॄन् समुद्दिश्य यो विप्रं भोजयिष्यति ।
पितरस्तस्य सुखिता दास्यन्ति भुवि दुर्लभम् ॥ १२
सप्तर्षीश्च समुद्दिश्य पृथक् स्नान समाचरेत् ।

१५

लोमहर्षण ने कहा—"हे द्विजोत्तमो। मानुष तीर्थ की पूर्व दिशा में एक कोश पर द्विजों से सेवित आपगा नामक एक विख्यात नदी है। (१)

वहाँ साँवा के चावल को दूध में पकाकर और उसमें घी मिलाकर जो ब्राह्मणों को देते हैं उनके पाप नहीं रह जाते। (२)

इस आपगा नदी के तट पर जाकर जो श्राद्ध करेंगे वे निःसंदेह समस्त कामनाओं से युक्त होंगे। (३)

पितृगण यह कहते हैं तथा पितामहगण यह स्मरण करते हैं कि हमारे कुल में कोई ऐसा पुत्र या पौत्र उत्पन्न होगा जो आपगा नदी के तट पर जाकर तिल से तर्पण करेगा जिससे हम सभी सैकड़ो कल्प तक तृप्त रहेंगे। (४-५)

भाद्रपद मास में, विशेषत कृष्ण पक्ष में, चतुर्दशी को मध्याह्न में पिण्ड दान करने वाला मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। (६)

हे विप्रोत्तमो। तदनन्तर समस्त लोक में ब्रह्मोदुम्बर नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मा के उत्तम स्थान में जाना चाहिए। (७)

हे द्विजसत्तमो। वहाँ ब्रह्मर्षिकुण्डों में स्नान करने वाले को सप्तर्षियों की कृपा से सात सोम यज्ञों का फल मिलता है। (८)

भरद्वाज, गौतम, जमदग्नि, कश्यप, विश्वामित्र, वसिष्ठ एवं भगवान् अत्रि ऋषि ने मिलकर पृथ्वी में दुर्लभ इस कुण्ड को बनाया था। ब्रह्मा द्वारा सेवित होने से यह ब्रह्मोदुम्बर कहलाता है। (९-१०)

अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के उस उत्तम तीर्थ में स्नान करके मनुष्य निस्सन्देह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। (११)

जो मनुष्य वहाँ देवताओं और पितरों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को भोजन कराएगा, उसके पितर सुखी होकर उसे संसार में दुर्लभ वस्तु प्रदान करेंगे। (१२)

सात ऋषियों के उद्देश्य से जो पृथक् रूप से

नारसिंहं वपुः कृत्वा हत्वा दानवमूर्जितम् ।
तिर्यग्योनौ स्थितो विष्णुः सिंहेषु रतिमाप्नुवन् ॥ २९
ततो देवाः सगन्धर्वा आराध्य वरदं शिवम् ।
ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा विष्णुदेहस्य लम्भने ॥ ३०
ततो देवो महात्माऽसौ शारभं रूपमास्थितः ।
युद्धं च कारयामास दिव्यं वर्षसहस्रकम् ।
युध्यमानौ तु तौ देवौ पतितौ सरमध्यतः ॥ ३१
तस्मिन् सरस्तटे विप्रो देवर्षिर्नारदः स्थितः ।
अश्वत्थवृक्षमाश्रित्य ध्यानस्थस्तो ददर्श ह ॥ ३२
विष्णुश्चतुर्भुजो जज्ञे लिङ्गाकारः शिवः स्थितः ।
तौ दृष्ट्वा तत्र पुरुषौ तुष्टाव भक्तिभावितः ॥ ३३
नमः शिवाय देवाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
हरये च उमाभर्त्रे स्थितिकालभृते नमः ॥ ३४
हराय बहुरूपाय विश्वरूपाय विष्णवे ।
त्र्यम्बकाय सुसिद्धाय कृष्णाय ज्ञानहेतवे ॥ ३५
धन्योऽहं सुकृती नित्यं यद् दृष्टौ पुरुषोत्तमौ ।
ममाश्रममिदं पुण्यं युवाभ्यां विमलीकृतम् ।
अद्यप्रभृति त्रैलोक्ये अन्यजन्मेति विश्रुतम् ॥ ३६
य इहागत्य स्नात्वा च पितॄन् संतर्पयिष्यति ।
तस्य श्रद्धान्वितस्येह ज्ञानमैन्द्रं भविष्यति ॥ ३७
अश्वत्थस्य तु यन्मूलं सदा तत्र वसाम्यहम् ।
अश्वत्थवन्दनं कृत्वा यमं रौद्रं न पश्यति ॥ ३८
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा नागस्य ह्रदमुत्तमम् ।
पौण्डरीके नरः स्नात्वा पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ ३९
दशम्यां शुक्लपक्षस्य चैत्रस्य तु विशेषतः ।
स्नानं जपं तथा श्राद्धं मुक्तिमार्गप्रदायकम् ॥ ४०
ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत् तीर्थं देवनिषेवितम् ।
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रमोचनी ॥ ४१
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम् ।

नरसिंह शरीर धारण कर बलवान् दानव का वध करने के उपरान्त तिर्यग्योनि में स्थित विष्णु सिंहों में प्रेम करने लगे। (२९)

तदनन्तर गन्धर्वों सहित सभी देवों ने वरदाता शिव की आराधना कर साष्टाङ्ग प्रणाम पूर्वक विष्णु के पुनः देह (स्वरूप) धारण की प्रार्थना की। (३०)

तदनन्तर महादेव ने सरभ रूप धारण कर (नरसिंह से) सहस्र दिव्य वर्षों तक युद्ध किया। दोनों देवता युद्ध करते हुए सरोवर में गिर पड़े। उस सरोवर के तट पर अश्वत्थ वृक्ष के नीचे देवर्षि नारद ध्यानस्थ होकर बैठे थे। उन्होंने उन दोनों को देखा। चतुर्भुज रूप में विष्णु और लिङ्ग रूप में शिव हो गये। उन दोनों पुरुषों को देखकर उन्होंने भक्ति भाव से उनकी स्तुति की। (३१-३३)

शिव देव को नमस्कार है। प्रभावशाली विष्णु को नमस्कार है। स्थिति तथा संहार के आधार-स्वरूप हरि एवं उमापति को नमस्कार है। (३४)

बहुरूपधारी हर एवं विश्वरूपधारी विष्णु को नमस्कार है। सुसिद्ध त्र्यम्बक एवं ज्ञान के हेतु कृष्ण को नमस्कार है। (३५)

मैं धन्य तथा सदा पुण्यवान् हूँ क्योंकि मुझे दोनों पुरुष श्रेष्ठों का दर्शन प्राप्त हुआ। आप दोनों पुरुषों द्वारा शुद्ध किया गया मेरा यह आश्रम पवित्र हो गया। आज से त्रैलोक्य में यह 'अन्यजन्म' नाम से प्रसिद्ध होगा। (३६)

जो व्यक्ति यहाँ आकर स्नान कर पितरों का तर्पण करेगा उस श्रद्धावान् पुरुष को यहाँ ऐन्द्र ज्ञान प्राप्त होगा। (३७)

अश्वत्थ वृक्ष के मूल में मैं सदा निवास करूँगा। अश्वत्थ का वन्दन करने वाले व्यक्ति भयंकर यमराज को नहीं देखता। (३८)

हे विप्रेन्द्रो! तदनन्तर उत्तम नागह्रद में जाना चाहिए। पौंडरीक में स्नान कर मनुष्य पुण्डरीक (यज्ञ विशेष) का फल प्राप्त करता है। (३९)

शुक्ल पक्ष की, विशेषत चैत्र मास की, दशमी तिथि में वहाँ स्नान, जप और श्राद्ध करने से मुक्तिमार्ग की प्राप्ति होती है। (४०)

तदनन्तर देवताओं से निषेवित त्रिविष्टप नामक तीर्थ में जाना चाहिये वहाँ पाप को छुड़ाने वाली पवित्र वैतरणी नदी है। (४१)

वहाँ स्नानकर शूलपाणि वृषध्वज की पूजा कर

सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छत्येव परां गतिम् ॥ ४२
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा रसावर्त्तमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तः सिद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ ४३
चैत्र शुक्लचतुर्दश्यां तीर्थे स्नात्वा ह्यलेपके ।
पूजयित्वा शिवं तत्र पापलेपो न विद्यते ॥ ४४
ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः फलकीवनमुत्तमम् ।
यत्र देवाः सगन्धर्वाः साध्याश्च ऋषयः स्थिताः ।
तपश्चरन्ति विपुलं दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥ ४५
दृषद्वत्यां नरः स्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः ।
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं विन्दति मानवः ॥ ४६
सोमक्षये च संप्राप्ते सोमस्य च दिने तथा ।
यः श्राद्धं कुरुते मर्त्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४७
गयायां च यथा श्राद्धं पितॄन् प्रीणाति नित्यशः ।
तथा श्राद्धं च कर्तव्यं फलकीवनमाश्रितैः ॥ ४८
मनसा स्मरते यस्तु फलकीवनमुत्तमम् ।
तस्यापि पितरस्तृप्तिं प्रयास्यन्ति न संशयः ॥ ४९
तत्रापि तीर्थं सुमहद् सर्वदेवैरलंकृतम् ।
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ५०
पाणिखाते नरः स्नात्वा पितॄन् संतर्प्य मानवः ।
अवाप्नुयाद् राजसूयं सांख्यं योगं च विन्दति ॥ ५१
ततो गच्छेत सुमहत्तीर्थं मिश्रकमुत्तमम् ।
तत्र तीर्थानि मुनिना मिश्रितानि महात्मना ॥ ५२
व्यासेन मुनिशार्दूला दधीच्यर्थं महात्मना ।
सर्वतीर्थेषु स स्नाति मिश्रके स्नाति यो नरः ॥ ५३
ततो व्यासवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
मनोजवे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवमणिं शिवम् ॥ ५४
मनसा चिन्तितं सर्वं सिध्यते नात्र संशयः ।
गत्वा मधुवटीं चैव देव्यास्तीर्थं नरः शुचिः ॥ ५५
तत्र स्नात्वाऽर्चयेद् देवान् पितॄंश्च प्रयतो नरः ।
स देव्या समनुज्ञातो यथा सिद्धिं लभेन्नरः ॥ ५६

मनुष्य समस्त पापों से विशुद्ध होकर निश्चय ही परमगति प्राप्त करता है। (४२)

हे विप्रश्रेष्ठो ! तदुपरान्त उत्तम रसावर्त नामक तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ भक्ति-युक्त होकर स्नान करने से अति उत्तम सिद्धि मिलती है। (४३)

चैत्र मास की शुक्ल चतुर्दशी तिथि को अलेपक नामक तीर्थ मे स्नान करके वहाँ शिव की पूजा करने से पाप का स्पर्श नहीं होता। (४४)

हे विप्रश्रेष्ठो ! वहाँ से उत्तम फलकीवन मे जाना चाहिये। वहाँ देवता, गन्धर्व साध्य और ऋषि लोग रहते एवं दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त विपुल तप करते हैं। (४५)

दृषद्वती नदी में स्नान कर देवताओं का तर्पण करने से मनुष्य अग्निष्टोम और अतिरात्र नामक यज्ञों का फल पाता है। (४६)

सोमवार के दिन चन्द्र का क्षय (अमावस्या) होने पर जो मनुष्य वहाँ श्राद्ध करता है उसका पुण्यफल सुनो- (४७)

गया क्षेत्र में जिस प्रकार किया गया श्राद्ध पितरों को नित्य तृप्त करता है उसी प्रकार श्राद्ध फलकीवन में रहने वालों को करना चाहिये। (४८)

जो मनुष्य श्रेष्ठ फलकी वन का मन में भी स्मरण करता है उसके भी पितृगण नि सन्देह तृप्ति लाभ करते हैं। (४९)

वहीं सभी देवों से अलकृत एक सुमहत् तीर्थ है जिसमें स्नान करने वाला पुरुष सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है। (५०)

पाणिखात तीर्थ में स्नान कर पितरों का तर्पण करने से मनुष्य राजसूय यज्ञ तथा साख्य (ज्ञान) और योग (कर्म) के अनुष्ठान का फल प्राप्त करता है। (५१)

तदनन्तर मिश्रक नामक महान् तथा उत्तम तीर्थ में जाना चाहिए। हे मुनिश्रेष्ठो ! यहाँ महात्मा व्यास मुनि ने दधीचि के हेतु तीर्थों को मिश्रित किया था। मिश्रक तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य सभी तीर्थों में स्नान कर लेता है। (५२-५३)

तदनन्तर सयमी तथा नियमित भोजनवाला होकर व्यास वन में जाना चाहिये। 'मनोजव' में स्नान कर देवमणि शिव का दर्शन करने से निस्सन्देह मनुष्य को अभीष्ट सिद्धि होती है। मनुष्य को देवीके मधुवटी नामक तीर्थ में जाकर स्नान कर देवों एव पितरों की पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने वाला व्यक्ति देवी की आज्ञा से सिद्धि की प्राप्ति करता है। (५४-५६)

कौशिक्याः संगमे यस्तु दृषद्वत्यां नरोत्तमः ।
स्नायीत नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५७
ततो व्यासस्थली नाम यत्र व्यासेन धीमता ।
पुत्रशोकाभिभूतेन देहत्यागाय निश्चयः ॥ ५८
कृतो देवैश्च विप्रेन्द्राः पुनरुत्थापितस्तदा ।
अभिगम्य स्थलीं तस्य पुत्रशोकं न विन्दति ॥ ५९
किंदत्तं कूपमासाद्य तिलप्रस्थं प्रदाय च ।
गच्छेत परमां सिद्धिं ऋणैर्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ६०
अह्नं च सुदिनं चैव द्वे तीर्थे भुवि दुर्लभे ।
तयोः स्नात्वा विशुद्धात्मा सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥ ६१
कृतजप्यं ततो गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत गङ्गायां प्रयतः स्थितः ॥ ६२
अर्चयित्वा महादेवमश्वमेधफलं लभेत् ।
कोटितीर्थे च तत्रैव दृष्ट्वा कोटीश्वरं प्रभुम् ॥ ६३
तत्र स्नात्वा श्रद्दधानः कोटियज्ञफलं लभेत् ।
ततो वामनकं गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ६४
यत्र वामनरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना ।
बलेरपहृतं राज्यमिन्द्राय प्रतिपादितम् ॥ ६५
तत्र विष्णुपदे स्नात्वा अर्चयित्वा च वामनम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ६६
ज्येष्ठाश्रमं च तत्रैव सर्वपातकनाशनम् ।
तं तु दृष्ट्वा नरो मुक्तिं संप्रयाति न संशयः ॥ ६७
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
द्वादश्यां च नरः स्नात्वा ज्येष्ठत्वं लभते नृषु ॥ ६८
तत्र प्रतिष्ठिता विप्रा विष्णुना प्रभविष्णुना ।
दीक्षाप्रतिष्ठासंयुक्ता विष्णुप्रीणनतत्पराः ॥ ६९
तेभ्यो दत्तानि श्राद्धानि दानानि विविधानि च ।
अक्षयाणि भविष्यन्ति यावन्मन्वन्तरस्थितिः ॥ ७०
तत्रैव कोटितीर्थं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ ७१

कौशिकी और दृषद्वती के संगम में स्नान करने वाला नियताहारी श्रेष्ठ पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (५७)

हे विप्रेन्द्रो! तदनन्तर व्यासस्थली है जहाँ पुत्रशोकाभिभूत बुद्धिमान् वेदव्यास ने शरीरत्याग का निश्चय किया था एवं तत्पश्चात् देवों ने उन्हें पुनः उठाया था। उस स्थल में जाकर मनुष्य को पुत्रशोक नहीं होता। (५८-५९)

किंदत्तकूप में जाकर एक प्रस्थ (परिमाण विशेष) तिल-दान करने से मनुष्य परमसिद्धि एवं ऋण से मुक्ति प्राप्त करता है। (६०)

अह्न एवं सुदिन नामक दो तीर्थ पृथ्वी में दुर्लभ हैं। उन दोनों में स्नान करने से विशुद्धात्मा मनुष्य सूर्यलोक प्राप्त करता है। (६१)

तदनन्तर त्रैलोक्यविश्रुत कृतजप्य नामक तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ नियमपूर्वक रहते हुए गंगा में स्नान करना चाहिये। यहाँ महादेव का अर्चन करने से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। तदुपरान्त वहीं पर श्रद्धा पूर्वक कोटितीर्थ में स्नान कर कोटीश्वर प्रभु का दर्शन करने से मनुष्य को कोटि यज्ञों का फल प्राप्त होता है। तदनन्तर त्रैलोक्य प्रसिद्ध वामनक तीर्थ में जाना चाहिये जहाँ वामनरूपधारी प्रभाव-शाली विष्णु ने बलि से राज्य अपहृत कर इन्द्र को अर्पित किया था। (६२-६५)

वहाँ विष्णुपद तीर्थ में स्नान कर वामनदेव की पूजा करने से मनुष्य समस्त पापों से शुद्ध होकर विष्णुलोक प्राप्त करता है। (६६)

वहीं पर अवस्थित सर्वपापनाशक ज्येष्ठाश्रम का दर्शन कर मनुष्य निस्सन्देह मुक्ति प्राप्त करता है। (६७)

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि को उपवास कर द्वादशी के दिन स्नान करने से मानव मनुष्यों में श्रेष्ठता प्राप्त करता है। (६८)

वहाँ प्रभावशाली विष्णु ने यज्ञादि में दीक्षित तथा प्रतिष्ठित एवं अपनी आराधना में तत्पर ब्राह्मणों को प्रतिष्ठित किया था। (६९)

उन्हें दिये गये श्राद्ध और विविध दान अक्षय एवं मन्वन्तर पर्यन्त स्थिर रहने वाले होते हैं। (७०)

वहीं त्रैलोक्यविश्रुत कोटि तीर्थ है। उस तीर्थ में स्नान कर मनुष्य कोटि यज्ञों के फल को प्राप्त करता है। (७१)

यत्र देवैः सगन्धर्वैः हनुमान् प्रकटीकृतः ॥ ३
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा अमृतत्वमवाप्नुयात् ।
कुलोत्तारणमासाद्य तीर्थसेवी द्विजोत्तमः ॥ ४
कुलानि तारयेत् सर्वान् मातामहपितामहान् ।
शालिहोत्रस्य राजर्षेस्तीर्थे त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ५
तत्र स्नात्वा विमुक्तस्तु कलुषैर्देहसंभवैः ।
श्रीकुञ्जं तु सरस्वत्यां तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ६
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या अग्निष्टोमफलं लभेत् ।
ततो नैमिषकुञ्जं तु समासाद्य नरः शुचिः ॥ ७
नैमिषस्य च स्नानेन यत् पुण्यं तत् समाप्नुयात् ।
तत्र तीर्थं महाख्यातं वेदवत्या निषेवितम् ॥ ८
रावणेन गृहीतायाः केशेषु द्विजसत्तमाः ।
तद्वधाय च सा प्राणान् मुमुचे शोककर्शिता ॥ ९
ततो जाता गृहे राज्ञो जनकस्य महात्मनः ।
सीता नामेति विख्याता रामपत्नी पतिव्रता ॥ १०

वहाँ से शूलपाणि के अमृत स्थान में जाना चाहिये, जहाँ गन्धर्वों सहित देवताओं ने हनुमान् को प्रकट किया था। (३)

उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य अमृतत्व प्राप्त करता है। तीर्थ सेवी उत्तम ब्राह्मण कुलोत्तारण तीर्थ में जाकर मातामह और पितामह के समस्त वंशों का उद्धार करता है। राजर्षि शालिहोत्र के त्रैलोक्यविश्रुत तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य देहजनित पापों से विमुक्त हो जाता है। सरस्वती में श्रीकुञ्ज नामक त्रैलोक्य प्रसिद्ध तीर्थ है। उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त करता है। वहाँ से नैमिषकुञ्ज तीर्थ में जाकर स्नान करने से पवित्र मनुष्य नैमिषारण्य तीर्थ में स्नान से मिलने वाला पुण्य प्राप्त करता है। वहाँ वेदवती से निषेवित अति प्रख्यात तीर्थ है। (४-८)

हे द्विजश्रेष्ठो! रावण के द्वारा केश पकड़ने पर शोकाभिभूत होकर उसने उन्हीं के वध हेतु प्राणों का परित्याग किया था। (९)

तदनन्तर महात्मा राजा जनक के गृह में उत्पन्न होकर वे राम की सीता नामक विख्यात पतिव्रता पत्नी हुई। (१०)

सा हृता रावणेनेह विनाशायात्मनः स्वयम् ।
रामेण रावणं हत्वा अभिषिच्य विभीषणम् ॥ ११
समानीता गृहं सीता कीर्तिरात्मवता यथा ।
तस्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा कन्यायज्ञफलं लभेत् ॥ १२
विमुक्तः कलुषैः सर्वैः प्राप्नोति परमं पदम् ।
ततो गच्छेत सुमहद् ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ॥ १३
यत्र वर्णावरः स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते नरः ।
ब्राह्मणश्च विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात् ॥ १४
ततो गच्छेत सोमस्य तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा द्विजराज्यमवाप्नुयात् ॥ १५
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च स्वपितॄन् दैवतानि च ।
निर्मलः स्वर्गमायाति कार्तिक्यां चन्द्रमा यथा ॥ १६
सप्तसारस्वतं तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ।
यत्र सप्त सरस्वत्य एकीभूता वहन्ति च ॥ १७
सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला मानसह्रदा ।

रावण ने स्वयं अपने विनाश के लिये उनका हरण किया। रावण को मारने के पश्चात् विभीषण का अभिषेक कर राम सीता को उसी प्रकार घर लाये जैसे जितचित्त व्यक्ति कीर्ति को प्राप्त करता है। उनके तीर्थ में स्नान कर मनुष्य कन्यायज्ञ (कन्यादान) का फल प्राप्त करता है एवं समस्त कलुषों से मुक्त होकर परम पद को जाता है। तदनन्तर ब्रह्मा के उत्तम और महान् स्थान को जाना चाहिये जहाँ स्नान करने से अवर (निम्न) वर्ण का व्यक्ति ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है एवं ब्राह्मण विशुद्धात्मा होकर परम पद की प्राप्ति करता है। (११-१४)

तदनन्तर त्रैलोक्य दुर्लभ सोमतीर्थ में जाना चाहिये, जहाँ चन्द्रमा ने तपस्या कर द्विजराजत्व की प्राप्ति की थी। (१५)

वहाँ स्नान कर अपने पितरों और देवताओं की पूजा करने से मनुष्य कार्तिकी पूर्णिमा के चन्द्र-सदृश निर्मल होकर स्वर्ग को प्राप्त करता है। (१६)

त्रैलोक्य-दुर्लभ सप्तसारस्वत नामक एक तीर्थ है जहाँ सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मानसह्रदा, सरस्वती ओघनामा, विमलोदका एवं सुवेणु नाम की सात सरस्वतियाँ एक

सरस्वत्योघनामा च सुवेणुर्विमलोदका ॥ १८
पितामहस्य यजतः पुष्करेषु स्थितस्य ह ।
अब्रुवन् ऋषयः सर्वे नायं यज्ञो महाफलः ॥ १९
न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् प्रीतः सस्माराथ सरस्वतीम् ॥ २०
पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै ।
सुप्रभा नाम सा देवी तत्र ख्याता सरस्वती ॥ २१
तां दृष्ट्वा मुनयः प्रीता वेगयुक्तां सरस्वतीम् ।
पितामहं मानयन्तीं ते तु तां बहु मेनिरे ॥ २२
एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करस्था सरस्वती ।
समानीता कुरुक्षेत्रे मङ्कणेन महात्मना ॥ २३
नैमिषे मुनयः स्थित्वा शौनकाद्यास्तपोधनाः ।
ते पृच्छन्ति महात्मानं पौराणं लोमहर्षणम् ॥ २४
कथं यज्ञफलोऽस्माकं वर्ततां सत्पथे भवेत् ।
ततोऽब्रवीन्महाभागः प्रणम्य शिरसा ऋषीन् ॥ २५

मे मिलकर प्रवाहित होती हैं। (१७-१८)

पुष्करतीर्थ में अवस्थित पितामह के यज्ञानुष्ठान में प्रवृत्त होने पर सभी ऋषियों ने उनसे कहा "आपका यह यज्ञ महाफलजनक नहीं होगा। क्योंकि यहाँ सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती नहीं दिखलाई पड़ रही हैं।" यह सुन कर प्रसन्नतापूर्वक भगवान् ने सरस्वती का स्मरण किया। (१९-२०)

पुष्कर में यज्ञ कर रहे पितामह द्वारा आहूत सुप्रभा नाम की देवी वहाँ सरस्वती नाम से प्रख्यात हुई। (२१)

पितामह का मान करने वाली वेगयुक्ता उस सरस्वती को देख कर प्रसन्न मुनियों ने उनका अत्यधिक सम्मान किया। (२२)

इस प्रकार पुष्कर में स्थित इस सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती को महात्मा मङ्कण कुरुक्षेत्र में लाये। (२३)

नैमिषारण्य में स्थित तपोधन शौनकादि मुनियों ने पौराणिक महात्मा लोमहर्षण से पूछा। (२४)

"सन्मार्ग में चलने वाले हम लोगों को यज्ञ का फल कैसे प्राप्त होगा?" तदनन्तर उन महाभाग ने ऋषियों को शिरसे प्रणाम कर कहा— (२५)

सरस्वती स्थिता यत्र तत्र यज्ञफलं महत् ।
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो नानास्वाध्यायवेदिनः ॥ २६
समागम्य ततः सर्वे सस्मरुस्ते सरस्वतीम् ।
सा तु ध्याता ततस्तत्र ऋषिभिः सत्रयाजिभिः ॥ २७
समागता प्लावनार्थं यज्ञे तेषां महात्मनाम् ।
नैमिषे काञ्चनाक्षी तु स्मृता मङ्कणकेन सा ॥ २८
समागता कुरुक्षेत्रं पुण्यतोया सरस्वती ।
गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम् ॥ २९
आहूता च सरिच्छ्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती ।
विशालां नाम तां प्राहुर्ऋषयः संशितव्रताः ॥ ३०
सरित् सा हि समाहूता मङ्कणेन महात्मना ।
कुरुक्षेत्रं समायाता प्रविष्टा च महानदी ॥ ३१
उत्तरे कोशलाभागे पुण्ये देवर्षिसेविते ।
उद्दालकेन मुनिना तत्र ध्याता सरस्वती ॥ ३२
आनगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात् ।

जहाँ सरस्वती अवस्थित हैं वहाँ यज्ञ का महान् फल होता है। यह सुनकर विविध वेदों का अध्ययन करने वाले मुनियों ने समवेत होकर सरस्वती का स्मरण किया। सत्र (दीर्घ काल में समाप्त होने वाले यज्ञ) को करने वाले[1] ऋषियों के ध्यान करने पर वे वहाँ नैमिष क्षेत्र में उन महात्माओं के यज्ञ में प्लावनार्थ काञ्चनाक्षी नाम से समागत हुई। वही प्रसिद्ध नदी मङ्कण द्वारा स्मरण किये जाने पर पुण्यतोया सरस्वती के रूप में कुरुक्षेत्र में आयी। गयाक्षेत्र में महायज्ञ करने वाले गय के यज्ञ में आहूत श्रेष्ठ सरस्वती नदी को प्रसिद्ध व्रत वाले ऋषियों ने 'विशाला' के नाम से अभिहित किया। (२८-३०)

महात्मा मङ्कण ऋषि द्वारा समाहूत यह नदी कुरुक्षेत्र में आकर प्रविष्ट हो गई। (३१)

देवर्षियों द्वारा सेवित परम पवित्र उत्तर कोशल प्रदेश में उद्दालक मुनि ने सरस्वती का ध्यान किया। (३२)

उन मुनि के कारण सरित् श्रेष्ठा सरस्वती उस देश में आयी एवं वल्कलमृगचर्मधारी मुनियों द्वारा पूजित हुई। सम्पूर्ण पापों की नाशिका वे मनोहरा नाम से विख्यात

1. बहुत दिनों में समाप्त होने वाले यज्ञों को सत्र कहते हैं।

पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः ॥ ३३
मनोहरेति विख्याता सर्वपापक्षयावहा ।
आहूता सा कुरुक्षेत्रे मङ्कणेन महात्मना ।
ऋषेः संमाननार्थाय प्रविष्टा तीर्थमुत्तमम् ॥ ३४
सुवेणुरिति विख्याता केदारे या सरस्वती ।
सर्वपापक्षया ज्ञेया ऋषिसिद्धनिषेविता ॥ ३५
सापि तेनेह मुनिना आराध्य परमेश्वरम् ।
ऋषीणामुपकारार्थं कुरुक्षेत्रं प्रवेशिता ॥ ३६
दक्षेण यजता सापि गङ्गाद्वारे सरस्वती ।
विमलोदा भगवती दक्षेण प्रकटीकृता ॥ ३७
समाहूता ययौ तत्र मङ्कणेन महात्मना ।
कुरुक्षेत्रे तु कुरुणा यजिता च सरस्वती ॥ ३८
सरोमध्ये समानीता मार्कण्डेयेन धीमता ।
अभिष्टूय महाभागां पुण्यतोयां सरस्वतीम् ॥ ३९
यत्र मङ्कणकः सिद्धः सप्तसारस्वते स्थितः ।
नृत्यमानश्च देवेन शंकरेण निवारितः ॥ ४०

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

१७

ऋषय ऊचुः ।
कथं मङ्कणकः सिद्धः कस्माज्जातो महानृषिः ।
नृत्यमानस्तु देवेन किमर्थं स निवारितः ॥ १
लोमहर्षण उवाच ।
कश्यपस्य सुतो जज्ञे मानसो मङ्कणो मुनिः ।
स्नानं कर्तुं व्यवसितो गृहीत्वा वल्कलं द्विजः ॥ २
तत्र गता ह्यप्सरसो रम्भाद्याः प्रियदर्शनाः ।
स्नायन्ति रुचिराः स्निग्धास्तेन सार्धमनिन्दिताः ॥ ३
ततो मुनेस्तदा क्षोभाद्रेतः स्कन्नं यदम्भसि ।
तद्रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः ॥ ४

हुईं । (३३)
वे महात्मा मङ्कण द्वारा आहूत होकर ऋषि के सम्मानार्थ कुरुक्षेत्र के उत्तम तीर्थ में प्रविष्ट हुईं । (३४)
केदार तीर्थ में जो सरस्वती "सुवेणु" नाम से प्रसिद्ध हैं वे ऋषियों और सिद्धों के द्वारा सेवित तथा सर्वपापनाशक रूप से विदित हैं । (३५)
उसे भी उन मुनि ने परमेश्वर की आराधना कर ऋषियों के उपकारार्थ इस कुरुक्षेत्र में प्रविष्ट किया । (३६)
गङ्गाद्वार में यज्ञ कर रहे दक्ष ने विमलोदा नामक भगवती सरस्वती को प्रकट किया । (३७)
कुरुक्षेत्र में कुरु द्वारा पूजित सरस्वती मङ्कण द्वारा बुलायी जानेपर वहाँ गईं । (३८)
बुद्धिमान् मार्कण्डेय पवित्र जल वाली महाभागा सरस्वती की स्तुति कर उन्हें सरोवर के मध्य में ले गये । वहीं सप्तसारस्वततीर्थ में सिद्धि प्राप्तकर स्थित नृत्य कर रहे मङ्कणक को शंकर ने रोका था । (३९-४०)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

१७

ऋषियों ने कहा—मङ्कणक कैसे सिद्ध हुए ? वे महान् ऋषि किसके पुत्र हुए थे ? नृत्य कर रहे उन्हें महादेव ने क्यों रोका ? (१)

लोमहर्षण ने कहा—मङ्कणक मुनि महर्षि कश्यप के मानसपुत्र थे । (एक समय) वे द्विज वल्कल लेकर स्नान करने गए । (२)
रम्भादि सुन्दरी अप्सरायें भी वहाँ गईं एवं वे सभी अनिन्द्य, कोमल एवं मनोहर (अप्सरायें) उनके साथ स्नान करने लगीं । (३)
तदनन्तर क्षोभवश मुनि का वीर्य जल में स्खलित हो गया जिसे उन महातपस्वी ने घड़े में उठा लिया । (४)

समथा प्रविभागं तु कलशस्थं जगाम ह ।
तत्रर्षयः सप्त जाता विदुर्यान् मरुतां गणान् ॥ ५
वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः ।
वायुज्वालो वायुरेतो वायुचक्रश्च वीर्यवान् ॥ ६
एते ह्यपत्यास्तस्यर्षेर्धारयन्ति चराचरम् ।
पुरा मङ्कणकः सिद्धः कुशाग्रेणेति मे श्रुतम् ॥ ७
क्षतः किल करे विप्रस्तस्य शाकरसोऽस्रवत् ।
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान् ॥ ८
ततः सर्वं प्रनृत्तं च स्थावरं जङ्गमं च यत् ।
प्रनृत्तं च जगद् दृष्ट्वा तेजसा तस्य मोहितम् ॥ ९
ब्रह्मादिभिः सुरैस्तत्र ऋषिभिश्च तपोधनैः ।
विज्ञप्तो वै महादेवो मुनेरर्थे द्विजोत्तमाः ॥ १०
नायं नृत्येद् यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ।
ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव हि ॥ ११
सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत ।
हर्षस्थानं किमर्थं च तवेदं मुनिसत्तम ।
तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम ॥ १२

ऋषिरुवाच ।

किं न पश्यसि मे ब्रह्मन् कराच्छाकरसं स्रुतम् ।
यं दृष्ट्वाऽहं प्रनृत्तो वै हर्षेण महताऽन्वितः ॥ १३
तं प्रहस्याब्रवीद् देवो मुनिं रागेण मोहितम् ।
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीह प्रपश्यताम् ॥ १४
एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं देवदेवो महाद्युतिः ।
अङ्गुल्यग्रेण विप्रेन्द्राः स्वाङ्गुष्ठं ताडयद् भवः ॥ १५
ततो भस्म क्षतात् तस्मान्निर्गतं हिमसन्निभम् ।
तद् दृष्ट्वा व्रीडितो विप्रः पादयोः पतितोऽब्रवीत् ॥ १६
नान्यं देवादहं मन्ये शूलपाणेर्महात्मनः ।
चराचरस्य जगतो वरस्त्वमसि शूलधृक् ॥ १७
त्वदाश्रयाश्च दृश्यन्ते सुरा ब्रह्मादयोऽनघ ।
पूर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता महत् ॥ १८
त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे मोदन्ते ह्यकुतोभयाः ।

एवं स्तुत्वा महादेवमृषिः स प्रणतोऽब्रवीत् ॥ १९
भगवंस्त्वत्प्रसादाद्धि तपो मे न क्षयं व्रजेत् ।
ततो देव. प्रसन्नात्मा तमृषिं वाक्यमब्रवीत् ॥ २०

ईश्वर उवाच ।

तपस्ते वर्द्धतां विप्र मत्प्रसादात् सहस्रधा ।
आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्द्धमहं सदा ॥ २१
सप्तसारस्वते स्नात्वा यो मामर्चिष्यते नरः ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चिदिह लोके परत्र च ॥ २२
सारस्वतं च तं लोकं गमिष्यति न संशयः ।
शिवस्य च प्रसादेन प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २३

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्याय ॥१७॥

१८

लोमहर्षण उवाच ।

ततस्त्वौशनसं तीर्थं गच्छेत्तु श्रद्धयान्वितः ।
उशना यत्र संसिद्धो ग्रहत्वं च समाप्तवान् ॥ १
तस्मिन् स्नात्वा विमुक्तस्तु पातकैर्जन्मसम्भवैः ।
ततो याति परं ब्रह्म यस्मान्नावर्तते पुनः ॥ २
रहोदरो नाम मुनिर्यत्र मुक्तो बभूव ह ।
महता शिरसा ग्रस्तस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात् ॥ ३

ऋषय ऊचुः ।

कथं रहोदरो ग्रस्त. कथं मोक्षमवाप्तवान् ।
तीर्थस्य तस्य माहात्म्यमिच्छामः श्रोतुमादरात् ॥ ४

लोमहर्षण उवाच ।

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना ।
वसता द्विजशार्दूला राक्षसास्तत्र हिंसिताः ॥ ५
तत्रैकस्य शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः ।

आपकी कृपा से सभी देवगण निर्भय होकर आनन्दित होते हैं। इस प्रकार महादेव की स्तुति करने के अनन्तर ऋषि ने प्रणाम कर कहा— (१९)

हे भगवन् ! आपकी कृपा से मेरे तप का क्षय न हो। तदनन्तर महादेव ने प्रसन्न होकर उन ऋषि से यह वचन कहा। (२०)

ईश्वर ने कहा—हे विप्र ! मेरी कृपा से तुम्हारी तपस्या सहस्र प्रकार से बढ़े। मैं तुम्हारे साथ इस आश्रम में सदा निवास करूँगा। (२१)

जो मनुष्य इस सप्त सारस्वत मे स्नान कर के मेरी पूजा करेगा उसे इस लोक और परलोक मे कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। वह निस्सन्देह सारस्वत लोकको जायेगा एवं (मुझ) शिव के अनुग्रह से परम पद प्राप्त करेगा। (२२-२३)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

१८

लोमहर्षण ने कहा—तदनन्तर श्रद्धान्वित होकर औशनस तीर्थ में जाना चाहिये, जहाँ उशना (शुक्र) ने सिद्धि प्राप्त कर महत्व प्राप्त किया था। (१)

वहाँ स्नानकर पुरुष विभिन्न जन्मों के पातकों से विमुक्त होकर परब्रह्म को प्राप्त करता है जहाँ से उसे पुन लौटना नहीं पड़ता। (२)

वहाँ तीर्थ-दर्शन के माहात्म्य से महान् शिर से ग्रस्त रहोदर नामक मुनि मुक्त हुए थे। (३)

ऋषियों ने कहा—रहोदर मुनि कैसे (शिर से) ग्रस्त हुये थे एव वे कैसे मुक्त हुए ? हम लोग उस तीर्थ के माहात्म्य को आदर पूर्वक सुनना चाहते हैं। (४)

लोमहर्षण ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! प्राचीन काल में दण्डकारण्य में रहते हुए महात्मा राघव ने राक्षसों का वध किया। (५)

क्षुरेण शितधारेण तद् पपात महावने ॥ ६
रहोदरस्य तल्लग्नं जङ्घायां वै यदृच्छया ।
वने विचरतस्तत्र अस्थि भित्त्वा विवेश ह ॥ ७
स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह ।
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च ॥ ८
स पूतिना विस्रवता वेदनार्त्तो महामुनिः ।
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां यानि कानि च ॥ ९
ततः स कथयामास ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
तेऽब्रुवन् ऋषयो विप्रं प्रयाह्यौशनसं प्रति ॥ १०
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा जगाम स रहोदरः ।
ततस्त्वौशनसे तीर्थे तस्योपस्पृशतस्तदा ॥ ११
तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले द्विजाः ।
ततः स विरजो भूत्वा पूतात्मा वीतकल्मषः ॥ १२
आजगामाश्रमं प्रीतः कथयामास चाखिलम् ।
ते श्रुत्वा ऋषयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।
कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः ॥ १३

यहाँ एक दुरात्मा राक्षस का शिर तीव्रधार वाले क्षुर बाण से कटकर उस महावन में गिरा । (६)

सयोगवश वह वन में विचरण कर रहे रहोदर मुनि की जघा में हड्डी को तोड़कर सलग्न हो गया । (७)

वह महाप्राज्ञ ब्राह्मण उस मस्तक के लग जाने से तीर्थों और देवालयों में नहीं जा पाते थे । (८)

दुर्गन्धपूर्ण स्राव से वेदनार्त वे महामुनि पृथ्वी के समस्त तीर्थों में गये । (९)

तदनन्तर उन्होंने पवित्र ऋषियों से (अपना वृत्तान्त) कहा । ऋषियों ने विप्र से कहा—औशनस (तीर्थ) में जाओ । (१०)

हे द्विजो ! उनका यह वचन सुनकर रहोदर वहाँ से औशनस तीर्थ में गये एव उसके (जल का) स्पर्श करते ही वह मस्तक उनके चरणों को छोड़कर जल में गिर गया । तदनन्तर वे मुनि निर्मल, पवित्रात्मा एवं पाप-रहित होकर प्रसन्नता पूर्वक आश्रम में आए एव (ऋषियों से) समस्त (वृत्तान्त) कहा । उन सभी समागत ऋषियों ने उत्तम तीर्थ के माहात्म्य को सुनकर (उस तीर्थ का) 'कपाल-मोचन' नाम रक्खा । (११-१३)

तत्रापि सुमहत्तीर्थं विश्वामित्रस्य विश्रुतम् ।
ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रो महामुनिः ॥ १४
तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते ध्रुवम् ।
ब्राह्मणस्तु विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात् ॥ १५
ततः पृथूदकं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
तत्र सिद्धस्तु ब्रह्मर्षी रुषङ्गुर्नाम नामतः ॥ १६
जातिस्मरो रुषङ्गुस्तु गङ्गाद्वारे सदा स्थितः ।
अन्तकालं ततो दृष्ट्वा पुत्रान् वचनमब्रवीत् ।
इह श्रेयो न पश्यामि नयध्वं मां पृथूदकम् ॥ १७
विज्ञाय तस्य तद्भावं रुषङ्गोस्ते तपोधनाः ।
तं वै तीर्थे उपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम् ॥ १८
स तैः पुत्रैः समानीतः सरस्वत्यां समाप्लुतः ।
स्मृत्वा तीर्थगुणान् सर्वान् प्राहेदमृषिसत्तमः ॥ १९
सरस्वत्युत्तरे तीर्थे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ।
पृथूदके जप्यपरो नूनं चामरतां व्रजेत् ॥ २०
तत्रैव ब्रह्मयोन्यस्ति ब्रह्मणा यत्र निर्मिता ।

वहीं विश्वामित्र का विख्यात महान् तीर्थ है । जहाँ पर महामुनि विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था । (१४)

उस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य निश्चय ही ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है तथा विशुद्धात्मा ब्राह्मण परं पद की प्राप्ति करता है । (१५)

तदनन्तर नियमपूर्वक नियताशी होकर पृथूदक तीर्थ में जाना चाहिये । वहाँ रुषङ्गु नामक ब्रह्मर्षि सिद्ध हुए थे । (१६)

सदा गङ्गाद्वार में रहने वाले जातिस्मर रुषङ्गु ने अन्त-काल उपस्थित देखकर पुत्रों से कहा—यहाँ मैं कल्याण नहीं देखता । मुझे पृथूदक में ले चलो । (१७)

रुषङ्गु के उस भाव को जानकर वे तपस्वी उन तपोधन को सरस्वती के तीर्थ में ले गए । (१८)

उन पुत्रों द्वारा समानीत ऋषिश्रेष्ठ ने सरस्वती में स्नान करने के उपरान्त समस्त तीर्थगुणों का स्मरण कर यह कहा—सरस्वती के उत्तरस्थ पृथूदक तीर्थ में शरीर-त्याग करने वाला जपपरायण मनुष्य निश्चय ही देवत्व प्राप्त करता है । (१९-२०)

वहीं ब्रह्मा द्वारा निर्मित ब्रह्मयोनि तीर्थ है जहाँ सरस्वती के किनारे अवस्थित पृथूदक में स्थित हो ब्रह्मा चातुर्वर्ण्य की

पृथूदकं समाश्रित्य सरस्वत्यास्तटे स्थितः ॥ २१
चातुर्वर्ण्यस्य सृष्ट्यर्थमात्मज्ञानपरोऽभवत् ।
तस्याभिध्यायतः सृष्टिं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ २२
मुखतो ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियास्तथा ।
ऊरुभ्यां वैश्यजातीयाः पद्भ्यां शूद्रास्ततोऽभवन् ॥ २३
चातुर्वर्ण्यं ततो दृष्ट्वा आश्रमस्थं ततस्ततः ।
एवं प्रतिष्ठितं तीर्थं ब्रह्मयोनीति संज्ञितम् ॥ २४
तत्र स्नात्वा मुक्तिकामः पुनर्योनिं न पश्यति ।
तत्रैव तीर्थं विख्यातमवकीर्णेति नामतः ॥ २५
यस्मिन् तीर्थे बको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रममर्षणम् ।
जुहाव वाहनैः सार्धं तत्रारुध्यत् ततो नृपः ॥ २६

ऋषय ऊचुः ।

कथं प्रतिष्ठितं तीर्थमवकीर्णेति नामतः ।
धृतराष्ट्रेण राज्ञा च स किमर्थं प्रसादितः ॥ २७

लोमहर्षण उवाच

ऋषयो नैमिषेया ये दक्षिणार्थं ययुः पुरा ।
तत्रैव च बको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रमयाचत ॥ २८
तेनापि तत्र निन्दार्थमुक्तं पश्वनृतं तु यत् ।
ततः क्रोधेन महता मांसमुत्कृत्य तत्र ह ॥ २९
पृथूदके महातीर्थे अवकीर्णेति नामतः ।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेस्ततः ॥ ३०
हूयमाने तदा राष्ट्रे प्रवृत्ते यज्ञकर्मणि ।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं नृपतेर्दुष्कृतेन वै ॥ ३१
ततः स चिन्तयामास ब्राह्मणस्य विचेष्टितम् ।
पुरोहितेन संयुक्तो रत्नान्यादाय सर्वशः ॥ ३२
प्रसादनार्थं विप्रस्य ह्यवकीर्णं ययौ तदा ।
प्रसादितः स राज्ञा च तुष्टः प्रोवाच तं नृपम् ॥ ३३
ब्राह्मणा नावमन्तव्याः पुरुषेण विजानता ।
अवज्ञातो ब्राह्मणस्तु हन्यात् त्रिपुरुषं कुलम् ॥ ३४
एवमुक्त्वा स नृपतिं राज्येन यशसा पुनः ।
उत्थापयामास ततस्तस्य राज्ञो हिते स्थित. ॥ ३५
तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नाति श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।

सृष्टि हेतु आत्मज्ञान में तत्पर हुये थे। अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के सृष्टि का चिन्तन करने पर उनके मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, दोनों ऊरुओं से वैश्य जाति के लोग और दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये। (२१-२३)

तदनन्तर उन्होंने चातुर्वर्ण्य को विभिन्न आश्रमों मे स्थित हुआ देखा। ब्रह्मयोनि नामक तीर्थ की इस प्रकार प्रतिष्ठा हुई थी। (२४)

वहाँ स्नान करने से मुक्तिकामी व्यक्ति पुनर्जन्म नहीं देखता। वहीं अवकीर्ण नामक विख्यात तीर्थ है। जहाँ पर दाल्भ्य (दल्भ या दल्भि गोत्र में उत्पन्न) बक नामक ऋषि ने क्रोधी धृतराष्ट्र को वाहन के साथ हवन कर दिया था एवं तत्पश्चात् राजा को ज्ञान हुआ था। (२५-२६)

ऋषियों ने कहा—अवकीर्ण नामक तीर्थ कैसे प्रतिष्ठित हुआ एवं राजा धृतराष्ट्र ने उसे (दाल्भ्य बक को) क्यों प्रसन्न किया था? (२७)

लोमहर्षण ने कहा—प्राचीनकाल में नैमिषारण्यवासी ऋषि लोग दक्षिणा हेतु (राजा धृतराष्ट्र के यहाँ गए)। वहाँ दल्भिवंशीय बक ऋषि ने धृतराष्ट्र से याचना की। (२८)

उसने भी निन्दार्थक ग्राम्य और असत्य बात कही। तदनन्तर वे (बकदाल्भ्य) अत्यन्त क्रोधपूर्वक मांस काट कर पृथूदक में स्थित अवकीर्ण नामक तीर्थ में राजा धृतराष्ट्र के राष्ट्र का हवन करने लगे। (२९-३०)

यज्ञ में राष्ट्र का हवन प्रारंभ होने पर राजा के दुष्कर्म से राष्ट्र का क्षय होने लगा। (३१)

तदनन्तर उसने विचार किया और इसे ब्राह्मण का कर्म जान समस्त रत्नों को लेकर पुरोहित के साथ विप्र को प्रसन्न करने के लिये अवकीर्ण तीर्थ में गया। राजा द्वारा प्रसन्न किये जाने पर उन्होंने प्रसन्न होकर राजा से कहा—विद्वान् मनुष्य को ब्राह्मण की अवमानना नहीं करनी चाहिये। अपमानित ब्राह्मण मनुष्य के कुल के तीन पुरुषों (पीढ़ियों) का नाश कर देता है। (३२-३४)

ऐसा कह कर उन्होंने पुन राजा को राज्य एवं यश के साथ उत्थापित कर दिया तथा उस राजा के हितकारी हो गए। (३५)

उस तीर्थ में श्रद्धापूर्वक स्नान करने वाला जितेन्द्रिय

स प्राप्नोति नरो नित्यं मनसा चिन्तितं फलम् ॥ ३६
तत्र तीर्थं सुविख्यातं यायातं नाम नामतः ।
यस्येह यजमानस्य मधु सुस्राव वै नदी ॥ ३७
तस्मिन् स्नातो नरो भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।
फलं प्राप्नोति यज्ञस्य अश्वमेधस्य मानवः ॥ ३८
मधुस्रवं च तत्रैव तीर्थं पुण्यतमं द्विजाः ।
तस्मिन् स्नात्वा नरो भक्त्या मधुना तर्पयेत् पितॄन् ॥ ३९
तत्रापि सुमहत्तीर्थं वसिष्ठोद्वाहसंज्ञितम् ।
तत्र स्नातो भक्तियुक्तो वासिष्ठं लोकमाप्नुयात् ॥ ४०

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

१९

ऋषय ऊचुः ।
वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ कथं वै संबभूव ह ।
किमर्थं सा सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत् ॥ १
लोमहर्षण उवाच ।
विश्वामित्रस्य राजर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
भृशं वैरं बभूवेह तपःस्पर्द्धाकृते महत् ॥ २
आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थे बभूव ह ।
तस्य पश्चिमदिग्भागे विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ ३
यत्रेष्ट्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम् ।
स्थापयामास देवेशो लिङ्गाकारां सरस्वतीम् ॥ ४

मनुष्य नित्य मनोभिलषित फल प्राप्त करता है। (३६)

वहाँ यायात (ययाति का तीर्थ) नाम से सुविख्यात तीर्थ है। वहाँ यज्ञ करने वाले के लिये नदी ने मधु बहाया था। (३७)

उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है एवं उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। (३८)

हे द्विजो। वहीं मधुस्रव नामक पवित्र तीर्थ है। उसमें भक्तिपूर्वक स्नान कर मनुष्य को मधु द्वारा पितरों का तर्पण करना चाहिये। (३९)

वहीं पर वसिष्ठोद्वाह नामक सुन्दर महान् तीर्थ है। उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करने वाला वासिष्ठ लोक प्राप्त करता है। (४०)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

१९

ऋषियों ने पूछा-वसिष्ठापवाह कैसे हुआ ? उस श्रेष्ठ सरिता ने उन ऋषि को क्यों प्रतिवाहित किया ? (१)

लोमहर्षण ने कहा-राजर्षि विश्वामित्र एवं महात्मा वसिष्ठ में तपस्पर्द्धा के कारण महान् वैर उत्पन्न हुआ। (२)

वसिष्ठ का आश्रम स्थाणुतीर्थ में था। उसकी पश्चिम दिशा में बुद्धिमान् विश्वामित्र का आश्रम था। (३)

जहाँ देवाधिदेव भगवान् स्थाणु (शिव) ने यज्ञ करके

वसिष्ठस्तत्र तपसा घोररूपेण संस्थितः ।
तस्येह तपसा हीनो विश्वामित्रो बभूव ह ॥ ५
सरस्वतीं समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ।
वसिष्ठं मुनिशार्दूल स्वेन वेगेन आनय ॥ ६
इहाहं तं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यथिता सा महानदी ॥ ७
तथा तां व्यथितां दृष्ट्वा वेपमानां महानदीम् ।
विश्वामित्रोऽब्रवीत् क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय ॥ ८
ततो गत्वा सरिच्छ्रेष्ठा वसिष्ठं मुनिसत्तमम् ।
कथयामास रुदती विश्वामित्रस्य तद् वचः ॥ ९
तपःक्रियाविशीर्णां च भृशं शोकसमन्विताम् ।
उवाच स सरिच्छ्रेष्ठां विश्वामित्राय मां वह ॥ १०
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित् ।
चालयामास तं स्थानात् प्रवाहेणाम्भसस्तदा ॥ ११
स च कूलापहारेण मित्रावरुणयोः सुतः ।
उह्यमानश्च तुष्टाव तदा देवीं सरस्वतीम् ॥ १२

के उपरान्त सरस्वती की पूजा कर लिङ्गाकार सरस्वती की स्थापना की थी। वहीं वसिष्ठ घोर तपस्या में सल्लग्न थे। उनकी तपस्या से विश्वामित्र हीन हो गये। (४–५)

उन्होंने सरस्वती को बुलाकर यह वचन कहा—तुम मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ को अपने वेग से लाओ। मैं उन द्विजश्रेष्ठ को निःसन्देह यहाँ मारूँगा। यह सुनकर वह महानदी व्यथित हो गई। (६–७)

उस प्रकार व्यथित एवं कम्पित होती हुई उस महानदी को देखकर क्रुद्ध विश्वामित्र ने कहा—वसिष्ठ को शीघ्र लाओ। (८)

तदनन्तर श्रेष्ठ सरिता ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ के पास जाकर उनसे विश्वामित्र के उस वचन को रोते हुए कहा। (९)

उन्होंने तप क्रिया से कृश एवं अतिशय शोक समन्वित श्रेष्ठ सरिता से कहा—विश्वामित्र के यहाँ मुझे ले चलो। उन दयालु के उस वचन को सुनकर उस सरिता ने जल के प्रवाह द्वारा उन्हें उस स्थान से प्रवाहित कर दिया। (१० ११)

किनारे से ले जाये जाने के कारण बह रहे मित्रावरुण के पुत्र (वसिष्ठ ऋषि) देवी सरस्वती की स्तुति करने लगे— (१२)

पितामहस्य सरसः प्रवृत्ताऽसि सरस्वति ।
व्याप्तं त्वया जगत् सर्वं तवैवाम्भोभिरुत्तमैः ॥ १३
त्वमेवाकाशगा देवी मेघेषु सृजसे पयः ।
सर्वास्त्वापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहे ॥ १४
पुष्टिर्धृतिस्तथा कीर्त्तिः सिद्धिः कान्तिः क्षमा तथा ।
स्वधा स्वाहा तथा वाणी तवायत्तमिदं जगत् ॥ १५
त्वमेव सर्वभूतेषु वाणीरूपेण संस्थिता ।
एवं सरस्वती तेन स्तुता भगवती तदा ॥ १६
सुखेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति ।
न्यवेदयत्तदा खिन्ना विश्वामित्राय तं मुनिम् ॥ १७
तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः ।
अथान्विषत् प्रहरणं वसिष्ठान्तकरं तदा ॥ १८
तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्महत्याभयान्नदी ।
अपोवाह वसिष्ठं तं मध्ये चैवाम्भसस्तदा ।
उभयोः कुर्वती वाक्यं वञ्चयित्वा च गाधिजम् ॥ १९
ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।

हे सरस्वती! आप ब्रह्मा के सरोवर से निकली हैं। आपने अपने उत्तम जल से समस्त जगत् को व्याप्त किया है। (१३)

आपही आकाशगामी देवी बनकर मेघों में जल की सृष्टि करती हैं। आप ही समस्त जलों के रूप में वर्तमान हैं। आप से हम लोग अध्ययन करते हैं। (१४)

आप ही पुष्टि, धृति, कीर्त्ति, सिद्धि, कान्ति, क्षमा, स्वधा, स्वाहा तथा वाणी हैं। समस्त संसार आपका ही वशवर्ती है। (१५)

आप ही समस्त प्राणियों में वाणी रूप से स्थित हैं। उनके द्वारा इस प्रकार स्तुता भगवती सरस्वती उस विप्र को सुख पूर्वक विश्वामित्र के आश्रम में ले गई एवं खिन्नता पूर्वक उन मुनि को विश्वामित्र के लिये निवेदित किया। (१६–१७)

सरस्वती द्वारा वसिष्ठ को लाया गया देखकर क्रुद्ध विश्वामित्र उन्हें मारने के लिए शस्त्र खोजने लगे। (१८)

उन्हें क्रुद्ध हुआ देख ब्रह्महत्या के भय से भीत नदी गाधिपुत्र को वञ्चित कर दोनों के वाक्य का पालन करती हुई उन वसिष्ठ को जल में बहा ले गई। (१९)

अब्रवीत् क्रोधरक्ताक्षो विश्वामित्रो महातपाः ॥ २०
यस्मान्मां सरितां श्रेष्ठे वञ्चयित्वा विनिर्गता ।
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणिसंयुता ॥ २१
ततः सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता ।
अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा ॥ २२
अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तदा ।
सरस्वतीं तदा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः ॥ २३
तस्मिंतीर्थवरे पुण्ये शोणितं समुपावहत् ।
ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसाश्च समागताः ॥ २४
ततस्ते शोणितं सर्वे पिबन्तः सुखमासते ।
तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतज्वराः ।
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा ॥ २५
कस्यचित्त्वथ कालस्य ऋषयः सतपोधनाः ।
तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां तपोधनाः ॥ २६
तां दृष्ट्वा राक्षसैर्घोरैः पीयमानां महानदीम् ।

तदनन्तर ऋषिप्रवर वसिष्ठ को (बहाया गया) देखकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले महातपस्वी विश्वामित्र ने कहा— (२०)

हे श्रेष्ठनदी ! क्योंकि तुम मुझे वञ्चित कर चली गई हो अत हे कल्याणी ! तुम श्रेष्ठ राक्षसों से सयुक्त होकर शोणित का वहन करो । (२१)

तदनन्तर बुद्धिमान् विश्वामित्र से शाप पाकर सरस्वती ने एक वर्ष तक रक्त से मिश्रित जल का वहन किया । (२२)

तदुपरान्त सरस्वती को देखकर ऋषि, देवता गन्धर्व एवं अप्सरायें अत्यन्त दुःखित हुए । (२३)

उस पवित्र श्रेष्ठ तीर्थ में रुधिर बहने लगा । इससे वहाँ भूत, पिशाच एकत्रित हो गये । (२४)

वे सभी रक्त का पान करते हुए वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे । इससे अत्यन्त तृप्त, सुखी एवं विगतज्वर होकर वे इस प्रकार नाचने एवं हँसने लगे मानो उन्होंने स्वर्ग को जीत लिया हो । (२५)

कुछ समय बीतने पर तपोधन ऋषि लोग तीर्थ यात्रा हेतु सरस्वती के तट पर पहुँचे । (२६)

घोर राक्षसों द्वारा पान की जाती हुई महानदी सरस्वती को देखकर उसकी रक्षा के लिए वे उत्कृष्ट यत्न करने

परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे ॥ २७
ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः ।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन् ॥ २८
किं कारणं सरिच्छ्रेष्ठे शोणितेन ह्रदो ह्ययम् ।
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वा वेत्स्यामहे वयम् ॥ २९
ततः सा सर्वमाचष्ट विश्वामित्रविचेष्टितम् ।
ततस्ते मुनयः प्रीताः सरस्वत्यां समानयन् ।
अरुणां पुण्यतोयौघां सर्वदुष्कृतनाशनीम् ॥ ३०
दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या राक्षसा दुःखिता भृशम् ।
ऊचुस्तान् वै मुनीन् सर्वान् दैन्ययुक्ताः पुनः पुनः ॥ ३१
वयं हि क्षुधिताः सर्वे धर्महीनाश्च शाश्वताः ।
न च नः कामकारोयं यद् वयं पापकारिणः ॥ ३२
युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा ।
पक्षोऽयं वर्धतेऽस्माकं यतः स्मो ब्रह्मराक्षसाः ॥ ३३
एवं वैश्याश्च शूद्राश्च क्षत्रियाश्च विकर्मभिः ।

लगे । (२७)

महाभाग एवं महाव्रती वे सभी लोग एक साथ श्रेष्ठ नदी को बुलाकर यह वचन बोले— (२८)

हे श्रेष्ठनदी ! हम सुनकर जानना चाहते हैं कि यह ह्रद क्यों शोणित से पूर्ण है ? (२९)

तदनन्तर उसने विश्वामित्र के समस्त कर्मों का वर्णन किया । तदुपरान्त प्रसन्न हुये मुनि लोग सरस्वती में पवित्र जल वाली तथा सर्वपापों की नाशिनी अरुणा नदी को लाये । सरस्वती के जल को (इस प्रकार शुद्ध हुआ) देखकर राक्षस बहुत दुःखित हुए । वे दीनतापूर्वक सभी मुनियों से बार बार कहने लगे— (३०-३१)

हम सभी निरन्तर क्षुधित एवं धर्महीन रहते हैं । यह स्वेच्छा का परिणाम नहीं है कि हम पापकारी बने हुए हैं, अपितु आप लोगों की अकृपा एवं पापकर्मों से हमारा पक्ष बढ़ता रहता है क्योंकि हम सभी ब्रह्मराक्षस हैं । (३२-३३)

इसी प्रकार विकृत कर्मों के कारण ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले वैश्य, शूद्र एवं क्षत्रिय भी राक्षस हो जाते

ये ब्राह्मणान् प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः ॥ ३४
योषितां चैव पापानां योनिदोषेण वर्द्धते ।
इयं संततिरस्माकं गतिरेषा सनातनी ॥ ३५
शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे ।
तेषां ते मुनयः श्रुत्वा कृपाशीलाः पुनश्च ते ॥ ३६
ऊचुः परस्परं सर्वे तप्यमानाश्च ते द्विजाः ।
क्षुतकीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाशितं भवेत् ॥ ३७
केशावपन्नमाधूतं मारुतश्वासदूषितम् ।
एभिः संसृष्टमन्नं च भागं वै रक्षसां भवेत् ॥ ३८
तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वान् अन्नान्येतानि वर्जयेत् ।
राक्षसानामसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते अन्नमीदृशम् ॥ ३९
शोधयित्वा तु तत्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः ।
मोक्षार्थं रक्षसां तेषां सङ्गमं तत्र कल्पयन् ॥ ४०
अरुणायाः सरस्वत्याः संगमे लोकविश्रुते ।
त्रिरात्रोपोषितः स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४१
प्राप्ते कलियुगे घोरे अधर्मे प्रत्युपस्थिते ।
अरुणासंगमे स्नात्वा मुक्तिमाप्नोति मानवः ॥ ४२
ततस्ते राक्षसाः सर्वे स्नाताः पापविवर्जिताः ।
दिव्यमाल्याम्बरधराः स्वर्गस्थितिसमन्विताः ॥ ४३

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्याय ॥१९॥

हैं। (३४)

पापयुक्त स्त्रियों के योनिदोष से हमारी इस सन्तति की वृद्धि होती रहती है। यह सनातनी गति है। (३५)

आप लोग समस्त लोकों के उद्धार करने में समर्थ हैं। उनकी बात सुनकर सन्तप्त हो रहे कृपाशील मुनियों ने परस्पर परामर्श कर कहा—छींक तथा कीट के संसर्ग से दूषित, उच्छिष्ट भोजन, केशयुक्त, तिरस्कृत एवं श्वासवायु से दूषित अन्न राक्षसों का भाग होता है। (३६-३८)

अतः इस बात को जानकर विद्वान् पुरुष इस प्रकार के अन्न को त्याग दे। इस प्रकार का अन्न खाने वाला राक्षसों का भाग खाता है। (३९)

उन तपोधन ऋषियों ने उस तीर्थ को शुद्धकर उन राक्षसों की मुक्ति के लिए वहाँ एक सङ्गम की रचना की। (४०)

अरुणा और सरस्वती के लोक विख्यात सङ्गम में तीन रातों तक उपवास पूर्वक स्नान करने वाला समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (४१)

घोर कलियुग आने पर तथा अधर्म का प्रसार होने पर मनुष्य अरुणा के सङ्गम में स्नान करने पर मुक्ति प्राप्त करता है। (४२)

तदनन्तर वे सभी राक्षस स्नान करने से पाप-रहित होकर दिव्य माला तथा वस्त्र धारण कर स्वर्ग में स्थान प्राप्त किये। (४३)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

२०

लोमहर्षण उवाच ।
समुद्रास्तत्र चत्वारो दर्विणा आहृताः पुरा ।
प्रत्येकं तु नरः स्नातो गोसहस्रफलं लभेत् ॥ १
यत्किंचित् क्रियते तस्मिंस्तपस्तीर्थे द्विजोत्तमाः ।
परिपूर्णं हि तत्सर्वमपि दुष्कृतकर्मणः ॥ २
शतसाहस्रिकं तीर्थं तथैव शतिकं द्विजाः ।
उभयोर्हि नरः स्नातो गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३
सोमतीर्थं च तत्रापि सरस्वत्यास्तटे स्थितम् ।
यस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो राजसूयफलं लभेत् ॥ ४
रेणुकाश्रममासाद्य श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
मातृभक्त्या च यत्पुण्यं तत्फलं प्राप्नुयान्नरः ॥ ५
ऋणमोचनमासाद्य तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम् ।
ऋणैर्मुक्तो भवेन्नित्यं देवर्षिपितृसंभवैः ।
कुमारस्याभिषेकं च ओजसं नाम विश्रुतम् ॥ ६
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो यशसा च समन्वितः ।
कुमारपुरमाप्नोति कृत्वा श्राद्धं तु मानवः ॥ ७
चैत्रषष्ठ्यां सिते पक्षे यस्तु श्राद्धं करिष्यति ।
गयाश्राद्धे च यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्नरः ॥ ८
संनिहित्यां यथा श्राद्धं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
तथा श्राद्धं तत्र कृतं नात्र कार्या विचारणा ॥ ९
ओजसे ह्यक्षयं श्राद्धं वायुना कथितं पुरा ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं तत्र समाचरेत् ॥ १०
यस्तु स्नानं श्रद्दधानश्चैत्रषष्ठ्यां करिष्यति ।
अक्षय्यमुदकं तस्य पितॄणामुपजायते ॥ ११
तत्र पञ्चवटं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
महादेवः स्थितो यत्र योगमूर्तिधरः स्वयम् ॥ १२
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च देवदेवं महेश्वरम् ।
गाणपत्यमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते ॥ १३

२०

लोमहर्षण ने कहा—प्राचीनकाल में दर्वि ऋषि वहाँ चार समुद्रों को ले आये। प्रत्येक में स्नान करने से मनुष्यों को सहस्र गोदान का फल मिलता है। (१)

हे द्विजोत्तमो! उस तीर्थ में जो कुछ तप किया जाता है वह पापी द्वारा किये जाने पर भी परिपूर्ण होता है। (२)

हे द्विजो! शतसाहस्रिक एवं शतिक नामक दोनों तीर्थों में स्नान करने वाला मनुष्य सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है। (३)

वहीं सरस्वती के तट पर सोमतीर्थ विद्यमान है जिसमें स्नान करने से पुरुष राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। (४)

रेणुका तीर्थ में जाकर श्रद्धालु और जितेन्द्रिय पुरुष मातृभक्ति से होने वाला पुण्य प्राप्त करता है। (५)

ब्रह्मनिषेवित ऋणमोचन तीर्थ में जाकर मनुष्य देव, ऋषि एवं पितरों से उत्पन्न होने वाले ऋणों से मुक्त हो जाता है। कुमार (कार्तिकेय) के अभिषेकस्थल ओजस नामक प्रसिद्ध तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य यशस्वी होता है एवं वहाँ श्राद्ध करने से उसे कुमारपुर की प्राप्ति होती है। (६-७)

चैत्र शुक्ल षष्ठी में जो मनुष्य वहाँ श्राद्ध करेगा उसे गया में श्राद्ध करने का फल प्राप्त होगा। (८)

सूर्य के राहुग्रस्त हो जाने पर अर्थात् सूर्यग्रहण के समय सन्निहत में किये गये श्राद्ध के सदृश यहाँ का श्राद्ध होता है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। (९)

पूर्व समय में वायु ने कहा था कि ओजसतीर्थ में किया गया श्राद्ध अक्षय होता है। अतः प्रयत्नपूर्वक वहाँ श्राद्ध करना चाहिये। (१०)

चैत्र मास की शुक्ल षष्ठी के दिन जो श्रद्धापूर्वक स्नान करेगा उसके पितरों को अक्षय उदक की प्राप्ति होगी। (११)

वहाँ त्रैलोक्य विश्रुत पञ्चवट नामक तीर्थ है, जहाँ स्वयं योगमूर्ति धारी महादेव विराजमान हैं। (१२)

वहाँ स्नान तथा देवाधिदेव महेश्वर की पूजा कर मनुष्य गाणपत्य प्राप्त करता है एवं देवताओं के साथ आनन्द करता है। (१३)

कुरुतीर्थं च विख्यातं कुरुणा यत्र वै तपः ।
तप्तं सुघोरं क्षेत्रस्य कर्षणार्थं द्विजोत्तमाः ॥ १४

तस्य घोरेण तपसा तुष्ट इन्द्रोऽब्रवीद् वचः ।
राजर्षे परितुष्टोऽस्मि तपसाऽनेन सुव्रत ॥ १५

यज्ञं ये च कुरुक्षेत्रे करिष्यन्ति शतक्रतोः ।
ते गमिष्यन्ति सुकृताँल्लोकान् पापविवर्जितान् ॥ १६

अवहस्य ततः शक्रो जगाम त्रिदिवं प्रभुः ।
आगम्यागम्य चैवैनं भूयो भूयोऽवहस्य च ॥ १७

शतक्रतुरनिर्विण्णः पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह ।
यदा तु तपसोग्रेण चकर्ष देहमात्मनः ।
ततः शक्रोऽब्रवीत् प्रीत्या ब्रूहि यत्ते चिकीर्षितम् ॥ १८

कुरुरुवाच ।

ये श्रद्धानास्तीर्थेऽस्मिन् मानवा निवसन्ति ह ।
ते प्राप्नुवन्तु सदनं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ १९

अन्यत्र कृतपापा ये पञ्चपातकदूषिताः ।
अस्मिंस्तीर्थे नराः स्नात्वा मुक्ता यान्तु परां गतिम्॥ २०

कुरुक्षेत्रे पुण्यतमं कुरुतीर्थं द्विजोत्तमाः ।
तं दृष्ट्वा पापमुक्तस्तु परं पदमवाप्नुयात् ॥ २१

कुरुतीर्थे नरः स्नातो मुक्तो भवति किल्बिषैः ।
कुरुणा समनुज्ञातः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २२

स्वर्गद्वारं ततो गच्छेत् शिवद्वारे व्यवस्थितम् ।
तत्र स्नात्वा शिवद्वारे प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २३

ततो गच्छेदनरकं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
यत्र पूर्वे स्थितो ब्रह्मा दक्षिणे तु महेश्वरः ॥ २४

रुद्रपत्नी पश्चिमतः पद्मनाभोत्तरे स्थितः ।
मध्ये अनरकं तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ॥ २५

यस्मिन् स्नातस्तु मुच्येत पातकैरुपपातकैः ।
वैशाखे च यदा षष्ठी मङ्गलस्य दिनं भवेत् ॥ २६

तदा स्नानं तत्र कृत्वा मुक्तो भवति पातकैः ।
यः प्रयच्छेत करकांश्चतुरो भक्ष्यसंयुतान् ॥ २७

कलशं च तथा दद्यादपूपैः परिशोभितम् ।

हे द्विजोत्तमो ! वहाँ प्रसिद्ध कुरुतीर्थ है जहाँ कुरु ने क्षेत्र-कर्षणार्थ घोर तप किया था । (१४)

उनके घोर तप से सन्तुष्ट होकर इन्द्र ने कहा—हे सुन्दर व्रतों वाले राजर्षि ! तुम्हारे इस तप से मैं सन्तुष्ट हूँ ! (१५)

कुरुक्षेत्र में इन्द्र का यज्ञ करने वाले लोग पाप रहित पुण्य लोकों को जाते हैं । (१६)

तदनन्तर हँसकर इन्द्रदेव स्वर्ग चले गये । खेद रहित शतक्रतु (इन्द्र) पुन पुन आकर एवउपहास पूर्वक पूछ पूछकर चले गये । कुरु ने जब उग्रतप द्वारा अपनी देह का कर्षण किया तो इन्द्र ने प्रेम पूर्वक कहा "आपका जो इच्छित हो उसे कहें।" (१७ १८)

कुरुने कहा—इस तीर्थ मे निवास करने वाले श्रद्धालु मनुष्य ब्रह्मलोक प्राप्त करें। (१९)

अन्यत्र पाप करने वाले एव पञ्चपातकों[1] से दूषित मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करने से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त करें । (२०)

हे द्विजोत्तमो ! कुरुक्षेत्र में कुरुतीर्थ अत्यन्त पवित्र है । उसका दर्शन कर पापी मनुष्य परमपद प्राप्त करता है । (२१)

कुरुतीर्थ में स्नान कर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और कुरु की आज्ञा से परमपद प्राप्त करता है । (२२)

तदनन्तर शिवद्वार मे स्थित स्वर्गद्वार को जाना चाहिये। शिवद्वार मे स्नान करने से मनुष्य परमपद को प्राप्त करता है। (२३)

तदुपरान्त त्रैलोक्य प्रसिद्ध अनरक तीर्थ मे जाना चाहिये । उसके पूर्व में ब्रह्मा, दक्षिण मे महेश्वर, पश्चिम मे रुद्रपत्नी एव उत्तर में पद्मनाभ तथा इनके मध्य में त्रैलोक्य दुर्लभ अनरक तीर्थ स्थित है । (२४ २५)

इसमे स्नान करने वाला पातकों एव उपपातकों से मुक्त हो जाता है । वैशाख की षष्ठी तिथि को जब मङ्गलवार हो उस समय स्नान करने से मनुष्य पातकों से मुक्त हो जाता है।

---

१. ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन और इन पापियों में से किसी के साथ सम्पर्क-ये पाँच महापातक माने गये हैं।

देवताः प्रीणयेत् पूर्वं करकैरन्नसंयुतैः ॥ २८
ततस्तु कलशं दद्यात् सर्वपातकनाशनम् ।
अनेनैव विधानेन यस्तु स्नानं समाचरेत् ॥ २९
स मुक्तः कलुषैः सर्वैः प्रयाति परमं पदम् ।
अन्यत्रापि यदा षष्ठी मङ्गलेन भविष्यति ॥ ३०
तत्रापि मुक्तिफलदा क्रिया तस्मिन् भविष्यति ।
तीर्थे च सर्वतीर्थानां यस्मिन् स्नातो द्विजोत्तमाः ॥ ३१
सर्वदेवैरनुज्ञातः परं पदमवाप्नुयात् ।
काम्यकं च वनं पुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ ३२
यस्मिन् प्रविष्टमात्रस्तु मुक्तो भवति किल्बिषैः ।
यमाश्रित्य वनं पुण्यं सविता प्रकटः स्थितः ॥ ३३
पूषा नाम द्विजश्रेष्ठा दर्शनान्मुक्तिमाप्नुयात् ।
आदित्यस्य दिने प्राप्ते तस्मिन् स्नातस्तु मानवः ।
विशुद्धदेहो भवति मनसा चिन्तितं लभेत् ॥ ३४

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये विंशोऽध्याय ॥२०॥

२१

ऋषय ऊचुः ।
काम्यकस्य तु पूर्वेण कुञ्जं देवैर्निषेवितम् ।
तस्य तीर्थस्य संभूतिं विस्तरेण ब्रवीहि नः ॥ १
लोमहर्षण उवाच ।
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।
ऋषीणां चरितं श्रुत्वा मुक्तो भवति किल्बिषैः ॥ २
नैमिषेयाश्च ऋषयः कुरुक्षेत्रे समागताः ।
सरस्वत्यास्तु स्नानार्थं प्रवेशं ते न लेभिरे ॥ ३
ततस्ते कल्पयामासुस्तीर्थं यज्ञोपवीतिकम् ।
शेषास्तु मुनयस्तत्र न प्रवेशं हि लेभिरे ॥ ४

(उस दिन) भोजन से संयुक्त चार करक (पात्र-विशेष) एवं अपूपों (मालपुआ) से युक्त कलश दान करना चाहिये। प्रथम अन्नसंयुक्त करकों से देवता की पूजा करने के अनन्तर सर्वपातक नाशक कलश का दान करे। इसी विधान से स्नान करने वाला समस्त पापों से मुक्त होकर परम पद प्राप्त करता है। अन्य समय भी मङ्गल के दिन षष्ठी तिथि होने पर उस तीर्थ में पूर्वोक्त क्रिया मुक्ति फलदायिनी होगी। (२८-३०)

हे द्विजोत्तमो! सभी तीर्थों के तीर्थभूत जिस तीर्थ मे स्नान करने से सर्वदेवों से अनुज्ञात होकर मनुष्य परम पद प्राप्त करता है उसे सर्वपाप नाशक काम्यकवन (कहा जाता है)। (३१-३२)

इसमें प्रवेश करने से ही मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। इस पवित्र वन का आश्रय ग्रहण कर पूषा नामक सवितृदेव प्रकटरूप से स्थित है। (३३)

हे द्विजश्रेष्ठो! उनके दर्शन से मुक्ति प्राप्त होती है। रविवार के दिन उस तीर्थ मे स्नान करने वाला मनुष्य विशुद्ध देहवाला हो जाता है और अभीष्ट को प्राप्त करता है। (३४)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य मे बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

२१

ऋषियों ने कहा—आप हम लोगों से काम्यक के पूर्व में देवों से निषेवित कुञ्जतीर्थ की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार पूर्वक करें। (१)

लोमहर्षण ने कहा—हे मुनियों! आप सभी तीर्थ के उत्तम माहात्म्य को सुनें। ऋषियों का चरित्र सुनकर मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है। (२)

नैमिषारण्य के ऋषि कुरुक्षेत्र में सरस्वती में स्नान करने आये। परन्तु वे प्रवेश न कर पाये। (३)

तदनन्तर उन्होंने यज्ञोपवीतिक नामक तीर्थ की रचना की। शेष मुनिलोग उसमें भी प्रवेश न कर पाये। (४)

रन्तुकस्याश्रमात्तावद् यावत्तीर्थं सचक्रकम् ।
ब्राह्मणैः परिपूर्णं तु दृष्ट्वा देवी सरस्वती ॥ ५
हितार्थं सर्वविप्राणां कृत्वा कुञ्जानि सा नदी ।
प्रयाता पश्चिमं मार्गं सर्वभूतहिते स्थिता ॥ ६
पूर्वप्रवाहे यः स्नाति गङ्गास्नानफलं लभेत् ।
प्रवाहे दक्षिणे तस्या नर्मदा सरितां वरा ॥ ७
पश्चिमे तु दिशाभागे यमुना संश्रिता नदी ।
यदा उत्तरतो याति सिन्धुर्भवति सा नदी ॥ ८
एवं दिशाप्रवाहेण याति पुण्या सरस्वती ।
तस्यां स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः ॥ ९
ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठा मदनस्य महात्मनः ।
तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं विहारं नाम नामतः ॥ १०
यत्र देवाः समागम्य शिवदर्शनकाङ्क्षिणः ।
समागता न चापश्यन् देवं देव्या समन्वितम् ॥ ११
ते स्तुवन्तो महादेवं नन्दिनं गणनायकम् ।
ततः प्रसन्नो नन्दीशः कथयामास चेष्टितम् ॥ १२

रन्तुक के आश्रम से सचक्रक तीर्थ तक (समस्त स्थल को) ब्राह्मणों से परिपूर्ण देखकर देवी सरस्वती ने सभी विप्रों के हितार्थ कुञ्जों की सृष्टि की एवं तदनन्तर सर्वभूतों के हित में रत वह नदी पश्चिम की ओर चली गई। (५-६)

उसके पूर्व प्रवाह में स्नान करने वालों को गङ्गा स्नान का फल प्राप्त होता है। उसके दक्षिण प्रवाह में सरिद्वरा नर्मदा एवं पश्चिम दिशा की ओर यमुना नदी आश्रित है तथा जब उत्तर की ओर वह नदी जाती है तो सिन्धु होती है। (७-८)

इस प्रकार विभिन्न दिशाओं में पवित्र सरस्वती नदी प्रवाहित होती है। उसमें स्नान करने वाला मनुष्य सभी तीर्थों में स्नान कर लेता है। (९)

हे द्विजश्रेष्ठो ! तदनन्तर महात्मा मदन के विहार नामक त्रैलोक्य विख्यात तीर्थ में जाना चाहिये। (१०)

जहाँ शिवदर्शनाभिलाषी देवता सामूहिक रूप से आये किन्तु वे देवीसंयुक्त देव का दर्शन न कर पाये। (११)

वे लोग गणनायक महादेव नन्दी की स्तुति करने लगे। इससे प्रसन्न होकर नन्दीश ने (उन लोगों से) विहार में उमा के साथ की जा रही शिव की क्रीडा का वर्णन किया।

भवस्य उमया सार्धं विहारे क्रीडितं महत् ।
तच्छ्रुत्वा देवतास्तत्र पत्नीराहूय क्रीडिताः ॥ १३
तेषां क्रीडाविनोदेन तुष्टः प्रोवाच शंकरः ।
योऽस्मिंस्तीर्थे नरः स्नाति विहारे श्रद्धयाऽन्वितः ॥ १४
धनधान्यप्रियैर्युक्तो भवते नात्र संशयः ।
दुर्गातीर्थं ततो गच्छेद् दुर्गया सेवितं महत् ॥ १५
यत्र स्नात्वा पितॄन् पूज्य न दुर्गतिमवाप्नुयात् ।
तत्रापि च सरस्वत्याः कूपं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १६
दर्शनान्मुक्तिमाप्नोति सर्वपातकवर्जितः ।
यस्तत्र तर्पयेद् देवान् पितॄंश्च श्रद्धयान्वितः ॥ १७
अक्षय्यं लभते सर्वं पितृतीर्थं विशिष्यते ।
मातृहा पितृहा यश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ १८
स्नात्वा शुद्धिमवाप्नोति यत्र प्राची सरस्वती ।
देवमार्गप्रविष्टा च देवमार्गेण निःसृता ॥ १९
प्राची सरस्वती पुण्या अपि दुष्कृतकर्मणाम् ।
त्रिरात्रं ये करिष्यन्ति प्राचीं प्राप्य सरस्वतीम् ॥ २०

यह सुनकर देवताओं ने भी अपनी पत्नियों को बुलाकर क्रीडा की। (१२-१३)

उनके क्रीडा विनोद से प्रसन्न शंकर ने कहा—इस विहार तीर्थ में जो श्रद्धापूर्वक स्नान करेगा वह निस्सदेह धन-धान्य एवं प्रिय से युक्त होगा। तदनन्तर दुर्गासेवित महान् दुर्गातीर्थ में जाना चाहिए। (१४-१५)

वहाँ स्नान कर पितरों की पूजा करने से मनुष्य की दुर्गति नहीं होती। वहाँ सरस्वती का त्रैलोक्य-विख्यात कूप है। (१६)

उसके दर्शन से ही मनुष्य सर्वपाप-रहित होकर मुक्ति प्राप्त करता है। वहाँ श्रद्धा से देवता और पितरों का तर्पण करने वाला व्यक्ति समस्त अक्षय (पदार्थों) को प्राप्त करता है। पितृतीर्थ विशेष (महत्त्वपूर्ण) है। माता, पिता और ब्राह्मण का घातक तथा गुरुपत्नी गमन करने वाला उस तीर्थ में स्नान करने से शुद्ध हो जाता है। वहीं प्राचीप्रवाहिनी सरस्वती देवमार्ग से प्रविष्ट होकर देवमार्ग से निःसृत हुई हैं। (१७-१९)

प्राची सरस्वती पापात्माओं के लिए भी पुण्यदायिनी हैं। प्राची सरस्वती के निकट जाकर जो त्रिरात्र व्रत करता है उसकी देह में, कोई दुष्कृत नहीं रह जाता। नर और

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् देहमाश्रित्य तिष्ठति ।
नरनारायणौ देवौ ब्रह्मा स्थाणुस्तथा रविः ॥ २१
प्राचीं दिशं निषेवन्ते सदा देवाः सवासवाः ।
ये तु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राचीमाश्रित्य मानवाः ॥ २२
तेषां न दुर्लभं किञ्चिदिह लोके परत्र च ।
तस्मात् प्राची सदा सेव्या पञ्चम्यां च विशेषतः ॥ २३
पञ्चम्यां सेवमानस्तु लक्ष्मीवान जायते नरः ।
तत्र तीर्थमौशनसं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ॥ २४
उशना यत्र संसिद्ध आराध्य परमेश्वरम् ।
ग्रहमध्येषु पूज्यते तस्य तीर्थस्य सेवनात् ॥ २५
एवं शुक्रेण मुनिना सेवितं तीर्थमुत्तमम् ।
ये सेवन्ते श्रद्दधानास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ २६
यस्तु श्राद्धं नरो भक्त्या तस्मिंस्तीर्थे करिष्यति ।
पितरस्तारितास्तेन भविष्यन्ति न संशयः ॥ २७
चतुर्मुखं ब्रह्मतीर्थं सरो मर्यादया स्थितम् ।
ये सेवन्ते चतुर्दश्यां सोपवासा वसन्ति च ॥ २८
अष्टम्यां कृष्णपक्षस्य चैत्रे मासि द्विजोत्तमाः ।
ते पश्यन्ति परं सूक्ष्मं यस्मान्नावर्तते पुनः ॥ २९
स्थाणुतीर्थं ततो गच्छेत् सहस्रलिङ्गशोभितम् ।
तत्र स्थाणुवटं दृष्ट्वा मुक्तो भवति किल्बिषैः ॥ ३०

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

२२

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे पुराणं वामनं महद् ।
यच्छ्रुत्वा मुक्तिमाप्नोति प्रसादाद् वामनस्य तु ॥ ३
सनत्कुमारमासीनं स्थाणोर्वटसमीपतः ।
ऋषिभिर्वालखिल्याद्यैर्ब्रह्मपुत्रैर्महात्मभिः ॥ ४
मार्कण्डेयो मुनिस्तत्र विनयेनाभिगम्य च ।
पप्रच्छ सरमाहात्म्यं प्रमाणं च स्थितिं तथा ॥ ५

मार्कण्डेय उवाच ।

ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वशास्त्रविशारद ।
ब्रूहि मे सरमाहात्म्यं सर्वपापक्षयावहम् ॥ ६
कानि तीर्थानि दृश्यानि गुह्यानि द्विजसत्तम ।
लिङ्गानि ह्यतिपुण्यानि स्थाणोर्यानि समीपतः ॥ ७
येषां दर्शनमात्रेण मुक्तिं प्राप्नोति मानवः ।
वटस्य दर्शनं पुण्यमुत्पत्तिं कथयस्व मे ॥ ८
प्रदक्षिणायां यत्पुण्यं तीर्थस्नानेन यत्फलम् ।
गुह्येषु चैव दृष्टेषु यत्पुण्यमभिजायते ॥ ९
देवदेवो यथा स्थाणुः सरोमध्ये व्यवस्थितः ।
किमर्थं पांशुना शक्रस्तीर्थं पूरितवान् पुनः ॥ १०
स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं चक्रतीर्थस्य यत्फलम् ।
सूर्यतीर्थस्य माहात्म्यं सोमतीर्थस्य ब्रूहि मे ॥ ११
शंकरस्य च गुह्यानि विष्णोः स्थानानि यानि च ।
कथयस्व महाभाग सरस्वत्याः सविस्तरम् ॥ १२
ब्रूहि देवाधिदेवस्य माहात्म्यं देव तत्त्वतः ।
विरिञ्चस्य प्रसादेन विदितं सर्वमेव च ॥ १३

लोमहर्षण उवाच ।

मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा ब्रह्मात्मा स महामुनिः ।
अतिभक्त्या तु तीर्थस्य प्रवणीकृतमानसः ॥ १४
पर्यङ्कं शिथिलीकृत्वा नमस्कृत्वा महेश्वरम् ।
कथयामास तत्सर्वं यच्छ्रुतं ब्रह्मणः पुरा ॥ १५

सनत्कुमार उवाच ।

नमस्कृत्य महादेवमीशानं वरदं शिवम् ।
उत्पत्तिं च प्रवक्ष्यामि तीर्थानां ब्रह्मभाषिताम् ॥ १६
पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।

लोमहर्षण ने कहा— हे समस्त मुनियो ! आप लोग महान् वामनपुराण को सुनें जिसे सुनकर मनुष्य वामन की कृपा से मुक्ति को प्राप्त करता है। (३)

ब्रह्माके पुत्र महात्मा वालखिल्यादि ऋषियों के साथ सनत्कुमार स्थाणु वट के पास बैठे हुए थे। (४)

महर्षि मार्कण्डेय ने उनके पास नम्रतापूर्वक जाकर सरोवर के माहात्म्य, उसके विस्तार और स्थिति के विषय में पूछा। (५)

मार्कण्डेय ने कहा—हे सर्वशास्त्र में कुशल महात्मा ब्रह्मपुत्र (सनत्कुमार) ! आप मुझसे सरोवर के सर्वपाप-नाशक माहात्म्य को कहिए। (६)

हे द्विजश्रेष्ठ ! स्थाणु के पास कौन-कौन तीर्थ दृश्य तथा कौन कौन अदृश्य हैं तथा कौन से अत्यन्त पवित्र लिङ्ग हैं। जिनका दर्शन कर मनुष्य मुक्ति पाता है। वट के दर्शन का पुण्य तथा उत्पत्ति भी बताइये। (७-८)

इनकी प्रदक्षिणा से होने वाले पुण्य, तीर्थस्नान का फल एवं अदृश्य और दृश्य (तीर्थों) का पुण्य, किस प्रकार सरोवर के मध्य में देवाधिदेव स्थाणु स्थित हुए, किस कारण से इन्द्र ने तीर्थ को पुन धूलि से भर दिया, स्थाणुतीर्थ के माहात्म्य, चक्रतीर्थ के फल, एवं सूर्य-तीर्थ तथा सोमतीर्थ के माहात्म्य-इन सबको आप मुझसे बताइये। (९-११)

हे महाभाग ! सरस्वती के समीप शंकर तथा विष्णु के गुह्य स्थानों को आप विस्तार से कहिए। (१२)

हे देव ! देवाधिदेव के माहात्म्य को आप यथार्थ रूप से बतायें क्योंकि ब्रह्मा की कृपा से आप को सब कुछ ज्ञात है। (१३)

लोमहर्षण ने कहा—मार्कण्डेय का वचन सुनकर ब्रह्मस्वरूप महामुनि का मन तीर्थ की अति भक्ति से आपूरित हो गया। (१४)

आसन को शिथिल करने के उपरान्त शंकर को प्रणाम कर उन्होंने प्राचीन काल में ब्रह्मा से सुनी हुई सभी बातों का वर्णन किया। (१५)

सनत्कुमार ने कहा—मंगल कारक, वरदाता महादेव, ईशान को प्रणाम कर मैं ब्रह्मा से कथित तीर्थों की उत्पत्ति को कहूँगा। (१६)

बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजसंभवम् ॥ १७
तस्मिन्नण्डे स्थितो ब्रह्मा शयनायोपचक्रमे ।
सहस्रयुगपर्यन्तं सुप्त्वा स प्रत्यबुध्यत ॥ १८
सुप्तोत्थितस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमपश्यत ।
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च ॥ १९
रजः सृष्टिगुणं प्रोक्तं सत्त्वं स्थितिगुणं विदुः ।
उपसंहारकाले च तमोगुणः प्रवर्तते ॥ २०
गुणातीतः स भगवान् व्यापकः पुरुषः स्मृतः ।
तेनेदं सकलं व्याप्तं यत्किंचिज्जीवसंज्ञितम् ॥ २१
स ब्रह्मा स च गोविन्द ईश्वरः स सनातनः ।
यस्तं वेद महात्मानं स सर्वं वेद मोक्षवित् ॥ २२
किं तेषां सकलैस्तीर्थैराश्रमैर्वा प्रयोजनम् ।
येषामनन्तकं चित्तमात्मन्येव व्यवस्थितम् ॥ २३
आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था
सत्योदका शीलसमाधियुक्ता ।
तस्यां स्नातः पुण्यकर्मा पुनाति
न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥ २४
एतत्प्रधानं पुरुषस्य कर्म
यदात्मसंरोधसुखे प्रविष्टम् ।
ज्ञेयं तदेव प्रवदन्ति सन्त-
स्तत्प्राप्य देही विजहाति कामान् ॥ २५
नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं
यथैकता समता सत्यता च ।
शीले स्थितिर्दण्डविधानवर्जन-
मक्रोधनश्चोपरमः क्रियाभ्यः ॥ २६
एतद् ब्रह्म समासेन मयोक्तं ते द्विजोत्तम ।
यज्ज्ञात्वा ब्रह्म परमं प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥ २७
इदानीं शृणु चोत्पत्तिं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
इमं चोदाहरन्त्येव श्लोकं नारायणं प्रति ॥ २८
आपो नारा वै तनव इत्येवं नाम शुश्रुमः ।
तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः ॥ २९

पूर्व समय में घोर एकार्णव में समस्त स्थावर जङ्गम के विनष्ट हो जाने पर प्रजाओं के बीजस्वरूप एक बृहद् अण्ड की उत्पत्ति हुई। (१७)

उस अण्ड में स्थित ब्रह्मा ने शयन का उपक्रम किया। सहस्र युग पर्यन्त शयन करने के उपरान्त वे जगे। (१८)

सोकर उठे हुए ब्रह्मा ने लोक को शून्य देखा। तदनन्तर रजोगुण से मोहित होकर वे सृष्टि की चिन्ता करने लगे। (१९)

रजोगुण सृष्टिकारक एवं सत्त्वगुण स्थितिकारक माना गया है। संहार के समय तमोगुण की प्रवृत्ति होती है। (२०)

(वस्तुतः) वे भगवान् गुणातीत तथा व्यापक हैं। उन्हें ही पुरुष कहा जाता है। जीव नामक समस्त पदार्थ उन्हीं से व्याप्त हैं। (२१)

वे ही ब्रह्मा, विष्णु और सनातन महेश्वर हैं। उन महात्मा को जानने वाला सर्वज्ञ एवं मोक्षवित् होता है। (२२)

जिनका अनन्त चित्त आत्मा में ही व्यवस्थित है उनके लिए समस्त तीर्थों एवं आश्रमों से क्या प्रयोजन ? (२३)

शील-समाधियुक्त आत्मारूपी नदी संयम रूपी पवित्र तीर्थों वाली एवं सत्य रूपी उदक से पूर्ण है। इसमें स्नान करने वाला पुण्यात्मा पवित्र हो जाता है। अन्तरात्मा की शुद्धि जल से नहीं होती। (२४)

आत्मज्ञान रूपी सुख में प्रवेश करना ही पुरुष का प्रधान कर्त्तव्य है। सन्त लोग उसी को ज्ञेय कहते हैं। उसको पाकर शरीरधारी सम्पूर्ण कामनाओं को छोड़ देता है। (२५)

एकता, समता, सत्यता, शील में स्थिति, दण्ड विधान का त्याग, अक्रोध एवं क्रियाओं से उपरम के सदृश ब्राह्मण के लिए कोई अन्य धन नहीं है। (२६)

हे द्विजोत्तम ! मैंने संक्षेप में तुमसे यह ज्ञान कहा है इसे जानकर तुम निस्सन्देह परम ब्रह्म को प्राप्त करोगे। (२७)

अब तुम परमात्मा ब्रह्म की उत्पत्ति सुनो। उस नारायण के विषय में लोग यह श्लोक उदाहृत करते हैं— (२८)

'आप' अर्थात् जल ही को 'नार' (एवं परमात्मा की) 'तनु' कहा जाता है। वे उसमें शयन करते हैं अतः उन्हें 'नारायण' कहा जाता है। (२९)

विबुद्धः सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतं जगत् ।
अण्डं बिभेद भगवांस्तस्मादोमित्यजायत ॥ ३०
ततो भूरभवत् तस्माद् भुव इत्यपरः स्मृतः ।
स्वः शब्दश्च तृतीयोऽभूद् भूर्भुवः स्वेति सञ्ज्ञितः ॥ ३१
तस्मात्तेजः समभवत् तत्सवितुर्वरेण्यं यत् ।
उदकं शोषयामास यत्तेजोऽण्डविनिःसृतम् ॥ ३२
तेजसा शोषितं शेषं कललत्वमुपागतम् ।
कललाद् बुद्बुदं ज्ञेयं ततः काठिन्यतां गतम् ॥ ३३
काठिन्याद् धरणी ज्ञेया भूतानां धारिणी हि सा ।
यस्मिन् स्थाने स्थितं ह्यण्डं तस्मिन् संनिहितं सरः ॥ ३४
यदाद्यं निःसृतं तेजस्तस्मादादित्य उच्यते ।
अण्डमध्ये समुत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३५
उल्वं तस्याभवन्मेरुर्जरायुः पर्वताः स्मृताः ।
गर्भोदकं समुद्राश्च तथा नद्यः सहस्रशः ॥ ३६

नाभिस्थाने यदुदकं ब्रह्मणो निर्मलं महत् ।
महत्सरस्तेन पूर्णं विमलेन वराम्भसा ॥ ३७
तस्मिन् मध्ये स्थाणुरूपी वटवृक्षो महामनाः ।
तस्माद् विनिर्गता वर्णा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥ ३८
शूद्राश्च तस्मादुत्पन्नाः शुश्रूषार्थं द्विजन्मनाम् ।
ततश्चिन्तयतः सृष्टिं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
मनसा मानसा जाताः सनकाद्या महर्षयः ॥ ३९
पुनश्चिन्तयतस्तस्य प्रजाकामस्य धीमतः ।
उत्पन्ना ऋषयः सप्त ते प्रजापतयोऽभवन् ॥ ४०
पुनश्चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च ।
वालखिल्याः समुत्पन्नास्तपःस्वाध्यायतत्पराः ॥ ४१
ते सदा स्नाननिरता देवार्चनपरायणाः ।
उपवासैर्व्रतैस्तीव्रैः शोषयन्ति कलेवरम् ॥ ४२
वानप्रस्थेन विधिना अग्निहोत्रसमन्विताः ।
तपसा परमेणेह शोषयन्ति कलेवरम् ॥ ४३

जागृत होने के उपरान्त उस जल में जगत् को अन्तर्गत हुआ जानकर भगवान् ने अण्ड का भेदन किया। उससे 'ओम्' इस शब्द की उत्पत्ति हुई। (३०)

तदनन्तर उससे (प्रथम) भू, द्वितीय भुव एवं तृतीय स्व की उत्पत्ति हुई। इनका 'भूर्भुव स्व' यह नाम हुआ। (३१)

उससे उस सविता देवता का वरेण्य तेज उत्पन्न हुआ। अण्ड विनिःसृत उस तेज ने जल को सुखाया। (३२)

तेज से जल के शोषित होने पर शेष कलल के रूप में परिवर्तित हुआ। कलल से बुद्-बुद हुआ और तदनन्तर वह कठिन हो गया। (३३)

काठिन्य से भूतों को धारण करने वाली धरणी उत्पन्न हुई। जिस स्थान पर अण्ड स्थित था, वहीं संनिहित सरोवर है। (३४)

तेज के आदि में उत्पन्न होने से उसे 'आदित्य' कहा जाता है। अण्ड के मध्य में लोकपितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए। (३५)

उस अण्ड का उल्व (गर्भवेष्टन) मेरु पर्वत है एवं अन्य पर्वत उसके जरायु माने जाते हैं। समुद्र एवं सहस्रों नदियाँ गर्भोदक हैं। ब्रह्मा के नाभि-स्थान में जो महान् निर्मल जल है उस स्वच्छ श्रेष्ठ जल से महान् सरोवर परिपूर्ण है। (३६-३७)

उसके मध्य में स्थाणु स्वरूप महा मनस्वी वटवृक्ष है। उससे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये वर्ण निकले एवं द्विजों की शुश्रूषा हेतु उससे शूद्रों की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर सृष्टि की चिन्ता कर रहे अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के मन से सनकादि महर्षियों की उत्पत्ति हुई। (३८-३९)

पुनः प्रजा की कामना से चिन्ता कर रहे धीमान् ब्रह्मा से सात ऋषि उत्पन्न हुए। वे प्रजापति हुये। (४०)

रजोगुण से मोहित ब्रह्मा ने जब पुनः चिन्ता की तो तप स्वाध्याय परायण बालखिल्यों की उत्पत्ति हुई। (४१)

वे सदा स्नान निरत, देवपूजा परायण रहते तथा उपवासों एवं तीव्र व्रतों से अपने शरीर को शोषित करते हैं। (४२)

अग्निहोत्र से युक्त होकर वानप्रस्थ विधि से परम तप द्वारा वे शरीर को शोषित करते हैं। (४३)

दिव्य वर्षसहस्रं ते कृशा धमनिसंतता. ।
आराधयन्ति देवेशं न च तुष्यति शंकरः ॥ ४४
ततः कालेन महता उमया सह शंकरः ।
आकाशमार्गेण तदा दृष्ट्वा देवी सुदु.खिता ॥ ४५
प्रसाद्य देवदेवेशं शंकर प्राह सुव्रता ।
क्लिश्यन्ते ते मुनिगणा देवदारुवनाश्रयाः ॥ ४६
तेषा क्लेशक्षय देव विधेहि कुरु मे दयाम् ।
किं वेदधर्मनिष्ठानामनन्त दव दुष्कृतम् ॥ ४७
नाद्यापि येन शुद्ध्यन्ति शुष्कस्नाय्वस्थिशेषिताः ।
तच्छ्रुत्वा वचन देव्याः पिनाकी पातितान्धकः ।
प्रोवाच प्रहसन् मूर्ध्नि चारुचन्द्रांशुशोभित. ॥ ४८

श्रीमहादेव उवाच ।

न वेत्सि देवि तत्त्वेन धर्मस्य गहना गतिः ।
नैते धर्मं विजानन्ति न च कामविवर्जिताः ॥ ४९
न च क्रोधेन निर्मुक्ताः केवलं मूढबुद्धयः ।
एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीद् देवी मा मैवं शंसितव्रतान् ॥ ५०
देव प्रदर्शयात्मान परं कौतूहलं हि मे ।
स इत्युक्त उवाचेदं देवीं देव. स्मितानन: ॥ ५१
तिष्ठ त्वमत्र यास्यामि यत्रैते मुनिपुंगवाः ।
साधयन्ति तपो घोरं दर्शयिष्यामि चेष्टितम् ॥ ५२
इत्युक्ता तु ततो देवी शंकरेण महात्मना ।
गच्छस्वेत्याह मुदिता भर्त्तारं भुवनेश्वरम् ॥ ५३
यत्र ते मुनय. सर्वे काष्ठलोष्ठसमा. स्थिताः ।
अधीयाना महाभागा. कृताग्निसदनक्रियाः ॥ ५४
तान् विलोक्य ततो देवो नग्न. सर्वाङ्गसुन्दरः ।
वनमालाकृतापीडो युवा भिक्षाकपालभृत् ॥ ५५
आश्रमे पर्यटन् भिक्षा मुनीना दर्शन प्रति ।
देहि भिक्षा तवश्चोक्त्वा ह्याश्रमादाश्रमं ययौ ॥ ५६
त विलोक्याश्रमगत योषितो ब्रह्मवादिनाम् ।
सकौतुकस्वभावेन तस्य रूपेण मोहिताः ॥ ५७
प्रोचुः परस्पर नार्य एहि पश्याम भिक्षुकम् ।
परस्परमिति चोक्त्वा गृह्य मूलफल बहु ॥ ५८

अत्यन्त दुर्बल एव धमनिमात्रावशेष होकर वे लोग सहस्र दिव्य वर्षों तक देवेश की आराधना करते रहे किन्तु शङ्कर प्रसन्न नहीं हुए। (४४)

तदनन्तर चिरकाल के पश्चात् आकाश मार्ग से उमा सहित शङ्कर भ्रमण कर रहे थे। उस समय (वालखिल्यों को) देख कर सुन्दर व्रतों वाली देवी ने दु खी होकर देवदेवेश शङ्कर को प्रसन्न कर कहा—देवदारु वन मे रहने वाले वे मुनिगण क्लेशित हो रहे हैं। हे देव! मुझ पर दया कर आप उनके क्लेश को दूर करें। हे देव! क्या इन वेद धर्मनिष्ठों का दुष्कृत अनन्त है जिससे स्नायु एव अस्थि मात्र अवशिष्ट होने पर भी ये आज तक शुद्ध नहीं हुए। देवी के वचन को सुनकर चारु चन्द्रांशु से शोभित अन्धक के शत्रु शङ्कर ने हँसते हुए कहा। (४९-४८)

श्री महादेव ने कहा—हे देवि! धर्म की गति गहन होती है। तुम उसे यथार्थ रूप मे नहीं जानती। ये लोग न तो धर्म को जानते हैं और न कामरहित ही हैं। (४९)

क्रोध से भी ये मुक्त नहीं हैं। ये केवल मूढबुद्धि हैं। यह सुन कर देवी ने कहा—प्रशस्त व्रत वालों के लिये ऐसा न कहिए। हे देव! आप अपने स्वरूप को प्रकट करें। मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है। ऐसा कहने पर शङ्कर ने हँसकर देवी से इस प्रकार कहा— (५०-५१)

तुम यहाँ रुको। ये मुनिगण जहाँ घोर तप कर रहे हैं वहाँ जाकर मैं कर्म दिखलाता हूँ। (५२)

महात्मा शङ्कर के ऐसा कहने पर प्रसन्न देवी ने (अपने) पति भुवनेश्वर से कहा—आप वहाँ जाँय जहाँ अग्निहोत्र परायण, अध्ययनशील एव काष्ट तथा लोष्ट सदृश वे मुनिगण स्थित है। (५३-५४)

तदनन्तर उन्हें देखकर देव शकर वनमालाधारी, भिक्षा कपाल को धारण किये, सर्वाङ्ग-सुन्दर नग्न युवा के रूप मे मुनियों क समक्ष भिक्षाहेतु पर्यटन करते हुए 'भिक्षा दो' यह कह कर एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाने लगे। (५५-५६)

आश्रम मे पर्यटन कर रहे उनको देखकर ब्रह्मवादियों की स्त्रियों ने कौतुकपूर्ण स्वभाववश उनके रूप से मोहित होकर एक दूसरे से कहा—आओ भिक्षुक को देखें।

परस्पर ऐसा कहने के उपरान्त पर्याप्त मूलफल लेकर मुनि पत्नियों ने उन देव से कहा 'भिक्षा लो।' उन्होंने भी

गृहाण भिक्षामूचुस्तास्तं देवं मुनियोषितः ।
स तु भिक्षाकपालं तं प्रसार्य बहु सादरम् ॥ ५९
देहि देहि शिवं वोऽस्तु भवतीभ्यस्तपोवने ।
हसमानस्तु देवेशस्तत्र देव्या निरीक्षितः ।
तस्मै दत्त्वैव तां भिक्षां पप्रच्छुस्तं स्मरातुराः ॥ ६०

नार्य ऊचुः ।

कोऽसौ नाम व्रतविधिस्त्वया तापस सेव्यते ।
यत्र नग्नेन लिङ्गेन वनमालाविभूषितः ।
भवान् वै तापसो हृद्यो हृद्याः स्मो यदि मन्यसे ॥ ६१
इत्युक्तस्तापसीभिस्तु प्रोवाच हसिताननः ।
इदमीदृग् व्रतं किंचिन्न रहस्यं प्रकाश्यते ॥ ६२
शृण्वन्ति बहवो यत्र तत्र व्याख्या न विद्यते ।
अस्य व्रतस्य सुभगा इति मत्वा गमिष्यथ ॥ ६३
एवमुक्तास्तदा तेन ताः प्रत्यूचुस्तदा मुनिम् ।
रहस्ये हि गमिष्यामो मुने नः कौतुकं महत् ॥ ६४
इत्युक्त्वा तास्तदा तं वै जगृहुः पाणिपल्लवैः ।
काचित् कण्ठे सकन्दर्पा बाहुभ्यामपरास्तथा ॥ ६५
जानुभ्यामपरा नार्यः केशेषु ललितापराः ।
अपरास्तु कटीरन्ध्रे अपराः पादयोरपि ॥ ६६
क्षोभं विलोक्य मुनय आश्रमेषु स्वयोषिताम् ।
हन्यतामिति संभाष्य काष्ठपाषाणपाणयः ॥ ६७
पातयन्ति स्म देवस्य लिङ्गमुद्धृत्य भीषणम् ।
पातिते तु ततो लिङ्गे गतोऽन्तर्धानमीश्वरः ॥ ६८
देव्या स भगवान् रुद्रः कैलासं नगमाश्रितः ।
पतिते देवदेवस्य लिङ्गे नष्टे चराचरे ॥ ६९
क्षोभो बभूव सुमहानृषीणां भावितात्मनाम् ।
एवं देवे तदा तत्र वर्तति व्याकुलीकृते ॥ ७०
उवाचैको मुनिवरस्तत्र बुद्धिमतां वरः ।
न वयं विद्मः सद्भावं तापसस्य महात्मनः ॥ ७१
विरिञ्चिं शरणं यामः स हि ज्ञास्यति चेष्टितम् ।
एवमुक्ताः सर्व एव ऋषयो लज्जिता भृशम् ॥ ७२
ब्रह्मणः सदनं जग्मुर्देवैः सह निषेवितम् ।

अत्यन्त आदर पूर्वक उस भिक्षा-कपाल को फैला कर कहा— (५७-५९)

हे तपोवनवासिनियो ! "दो दो ! आप सभी का कल्याण हो।" वहाँ हँस रहे देवेश को पार्वती देख रही थीं। उन्हें भिक्षा देकर कामातुर मुनि पत्नियों ने उनसे पूछा। (६०)

स्त्रियोंने कहा—हे तापस ! तुम किस व्रतविधि का पालन कर रहे हो जिससे वनमाला विभूषित सुन्दर स्वरूपधारी आपको नग्नलिङ्ग विशिष्ट तापस बनना पड़ा है ! यदि आप चाहें तो हम आप की प्रिया हो सकती हैं। (६१)

तपस्विनियों के ऐसा कहने पर हँसते हुए (शङ्कर ने) कहा—यह व्रत इस प्रकार का है जिसका कुछ भी रहस्य प्रकाशित नहीं किया जा सकता। (६२)

हे सौभाग्यशालिनियो ! जहाँ बहुत सुनने वाले हों वहाँ इस व्रत की व्याख्या नहीं की जा सकती। यह जानकर आप सभी चली जाँय।" (६३)

उनके ऐसा कहने पर उन्होंने मुनि से कहा—हे मुनि ! हम एकान्त में चलेंगी (क्योंकि) हमें महान् कुतूहल हो रहा है। (६४)

यह कहकर उन सभी ने उनको अपने पाणिपल्लवों से पकड़ लिया। कुछ कामातुरा हो कण्ठ में लिपट गईं, कुछ ने उन्हें बाहुओं में आवेष्टित कर लिया, कुछ स्त्रियों ने उन्हें जानुओं से पकड़ लिया, कुछ सुन्दर स्त्रियाँ उनके केश का स्पर्श करने लगीं, कुछ उनकी कटि से लिपट गई एवं कुछ ने उनके पैरों को पकड़ लिया। (६५-६६)

मुनियों ने आश्रम में अपनी स्त्रियों का क्षोभ देखकर 'मारो मारो' ऐसा कहते हुए हाथों में काष्ठ और पाषाण लेकर शिव के लिङ्ग को उखाड़ कर फेंक दिया। लिङ्ग गिरा दिये जाने पर ईश्वर अन्तर्धान हो गये। (६७-६८)

भगवान् रुद्र देवी के साथ कैलाश पर्वत पर चले गये। देवाधिदेव का लिङ्ग गिरने पर चराचर का नाश होने लगा। इससे पवित्र महर्षियों को क्षोभ हुआ। इस प्रकार देव के व्याकुल होने पर एक अत्यन्त बुद्धिमान् श्रेष्ठ मुनि ने कहा—"हम उन महात्मा तापस के अस्तित्व को नहीं जानते। हम सभी ब्रह्मा की शरण में चलें। वे ही उनकी चेष्टा (रहस्य) को समझेंगे।" ऐसा कहे जाने पर सभी ऋषि अत्यन्त लज्जित हुए। (६९-७२)

वे लोग देवताओं से सेवित ब्रह्मा के लोक में गये एवं

प्रणिपत्याथ देवेशं लज्जयाऽधोमुखाः स्थिताः ॥ ७३
अथ तान् दुःखितान् दृष्ट्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
अहो मुग्धा यदा यूयं क्रोधेन कलुषीकृताः ॥ ७४
न धर्मस्य क्रिया काचिज्ज्ञायते मूढबुद्धयः ।
श्रूयतां धर्मसर्वस्वं तापसाः क्रूरचेष्टिताः ॥ ७५
विदित्वा यद् बुधः क्षिप्रं धर्मस्य फलमाप्नुयात् ।
योऽसावात्मनि देहेऽस्मिन् विभुर्नित्यो व्यवस्थितः ॥७६
सोऽनादिः स महास्थाणुः पृथक्त्वे परिसूचितः ।
मणिर्यथोपधानेन धत्ते वर्णोज्ज्वलोऽपि वै ॥ ७७
तन्मयो भवते तद्वदात्माऽपि मनसा कृतः ।
मनसो भेदमाश्रित्य कर्मभिश्चोपचीयते ॥ ७८
ततः कर्मवशाद् भुङ्क्ते संभोगान् स्वर्गनारकान् ।
तन्मनः शोधयेद् धीमान् ज्ञानयोगाद्युपक्रमैः ॥ ७९
तस्मिन् शुद्धे ह्यन्तरात्मा स्वयमेव निराकुलः ।
न शरीरस्य संक्लेशैरपि निर्दहनात्मकैः ॥ ८०
शुद्धिमाप्नोति पुरुषः संशुद्धं यस्य नो मनः ।
क्रिया हि नियमार्थाय पातकेभ्यः प्रकीर्तिताः ॥ ८१
यस्मादत्याविलं देहं न शीघ्रं शुद्ध्यते किल ।
तेन लोकेषु मार्गोऽयं सत्पथस्य प्रवर्तितः ॥ ८२
वर्णाश्रमविभागोऽयं लोकाध्यक्षेण केनचित् ।
निर्मितो मोहमाहात्म्यं चिह्नं चोत्तमभागिनाम् ॥ ८३
भवन्तः क्रोधकामाभ्यामभिभूताश्रमे स्थिताः ।
ज्ञानिनामाश्रमो वेश्म अनाश्रममयोगिनाम् ॥ ८४
क्व च न्यस्तसमस्तेच्छा क्व च नारीमयो भ्रमः ।
क्व क्रोधमीदृशं घोरं येनात्मानं न जानथ ॥ ८५

यत्क्रोधनो यजति यद् ददाति
यद् वा तपस्तपति यज्जुहोति ।
न तस्य प्राप्नोति फलं हि लोके
मोघं फलं तस्य हि क्रोधनस्य ॥ ८६

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्याय ॥२२॥

देवेश को प्रणाम कर लज्जा से मुख नीचा किये खड़े हो गये। (७३)

तदनन्तर उन्हें दुःखित देखकर ब्रह्मा ने यह वचन कहा अहो! क्रोध से कलुषित चित्त वाले तुम लोग मूढ़ हो। हे मूढ़बुद्धिवालो! तुमलोग धर्म की कोई क्रिया नहीं जानते। हे क्रूरकर्मा तापसो! धर्म के उस रहस्य को सुनो जिसे जानकर बुद्धिमान् मनुष्य शीघ्र धर्म का फल प्राप्त करता है। हमारे इस शरीर में रहने वाला जो नित्य विभु है वह अनादि एवं महास्थाणु है। वह इस शरीर से पृथक् प्रतीत होता है। जैसे उज्ज्वल वर्ण का भी मणि आश्रय के प्रभाव से उसी रूप का दीखता है उसी प्रकार आत्मा भी मन से संयुक्त होकर मन के भेद का आश्रय कर कर्मों से उपचित होता है। तदनन्तर कर्मवशात् यह स्वर्ग एवं नरक के भोगों को भोगता रहता है। बुद्धिमान् व्यक्ति को ज्ञान तथा योग इत्यादि उपायों द्वारा उस मन का शोधन करना चाहिए। (७४-७९)

उस मन के शुद्ध होने पर अन्तरात्मा स्वयमेव निराकुल हो जाता है। जिसका मन शुद्ध नहीं है ऐसा पुरुष शरीर के शोषक क्लेशों द्वारा नहीं शुद्ध होता। पातकों से बचने के लिये ही क्रियाओं का विधान हुआ है। यत अत्यन्त कलुषित देह शीघ्र शुद्ध नहीं होता अत एव लोक में सत्पथ का यह मार्ग प्रवर्तित हुआ है। (८०-८२)

किसी लोकाध्यक्ष ने उत्तमभाग्य वालों के लिए मोह-माहात्म्य के चिह्न स्वरूप इस वर्णाश्रम विभाग का निर्माण किया है। (८३)

आप लोग आश्रम में रहते हुये भी क्रोध तथा काम से अभिभूत हैं। ज्ञानियों के लिये घर आश्रम है और अयोगियों (अज्ञानियों) के लिये अनाश्रम है। (८४)

कहाँ समस्त कामनाओं का त्याग कहाँ नारीमय यह भ्रम एवं कहाँ इस प्रकार का क्रोध जिससे तुम लोग अपनी आत्मा को नहीं पहचान पाते। (८५)

क्रोधी पुरुष लोक में जो यज्ञ करता है, जो दान देता है अथवा जो तप या हवन करता है उसका कोई फल उसे नहीं मिलता। उस क्रोधी के सभी फल व्यर्थ होते हैं। (८६)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में बाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

२३

सनत्कुमार उवाच ।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ऋषयः सर्व एव ते ।
पुनरेव च पप्रच्छुर्जगतः श्रेयकारणम् ॥ १

ब्रह्मोवाच ।
गच्छामः शरणं देवं शूलपाणिं त्रिलोचनम् ।
प्रसादाद् देवदेवस्य भविष्यथ यथा पुरा ॥ २
इत्युक्ता ब्रह्मणा सार्द्धं कैलासं गिरिमुत्तमम् ।
ददृशुस्ते समासीनमुमया सहितं हरम् ॥ ३
ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
देवाधिदेवं वरदं त्रैलोक्यस्य प्रभुं शिवम् ॥ ४

ब्रह्मोवाच ।
अनन्ताय नमस्तुभ्यं वरदाय पिनाकिने ।
महादेवाय देवाय स्थाणवे परमात्मने ॥ ५
नमोऽस्तु भुवनेशाय तुभ्यं तारक सर्वदा ।
ज्ञानानां दायको देवस्त्वमेकः पुरुषोत्तमः ॥ ६
नमस्ते पद्मगर्भाय पद्मेशाय नमो नमः ।
घोरशान्तिस्वरूपाय चण्डक्रोध नमोऽस्तु ते ॥ ७
नमस्ते देव विश्वेश नमस्ते सुरनायक ।
शूलपाणे नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ॥ ८
एवं स्तुतो महादेवो ब्रह्मणा ऋषिभिस्तदा ।
उवाच मा भैर्व्रजत लिङ्गं वो भविता पुनः ॥ ९
क्रियतां मद्वचः शीघ्रं येन मे प्रीतिरुत्तमा ।
भविष्यति प्रतिष्ठायां लिङ्गस्यात्र न संशयः ॥ १०
ये लिङ्गं पूजयिष्यन्ति मामकं भक्तिमाश्रिताः ।
न तेषां दुर्लभं किंचिद् भविष्यति कदाचन ॥ ११
सर्वेषामेव पापानां कृतानामपि जानता ।

२३

सनत्कुमार ने कहा—ब्रह्मा के वचन को सुन कर उन सभी ऋषियों ने पुन संसार के कल्याण का उपाय पूछा। (१)

ब्रह्मा ने कहा—हम सभी शूलपाणि त्रिलोचन की शरण में चलें। उन्हीं देवदेव की कृपा से तुम सभी लोग पूर्वसदृश हो जाओगे। (२)

ऐसा कहे जाने पर वे लोग ब्रह्मा के साथ पर्वत-श्रेष्ठ कैलास पर गये। वहाँ उन लोगों ने उमा के साथ बैठे हुए शंकर को देखा। (३)

तदनन्तर लोक-पितामह ब्रह्मा ने देवाधिदेव, त्रैलोक्य के प्रभु वरद शंकर की स्तुति करनी प्रारम्भ की। (४)

ब्रह्मा ने कहा—वरदाता, पिनाकधारी, महादेव, स्थाणु-स्वरूप, परमात्मा, अनन्त देव को मेरा नमस्कार है। (५)

हे तारने वाले भुवनेश्वर! आपको सदा नमस्कार है। आप ही एकमात्र पुरुषोत्तम एवं ज्ञानदायक देव हैं। (६)

पद्मगर्भ के लिये नमस्कार है एव पद्मेश को बारम्बार नमस्कार है। हे चण्डक्रोध! आप घोरशान्तिस्वरूप को नमस्कार है। (७)

हे विश्वेश्वर देव! आपको नमस्कार है। हे सुरनायक! आपको नमस्कार है। हे शूलपाणि! आपको नमस्कार है। हे विश्वभावन! आपको नमस्कार है। (८)

ब्रह्मा एव ऋषियों के इस प्रकार स्तुति करने पर महादेव ने कहा—भयभीत मत होओ। तुम लोग सभी जाओ। लिङ्ग पुन हो जायेगा। (९)

मेरे वचन का शीघ्र पालन करो। लिङ्ग की प्रतिष्ठा करने पर निस्सन्देह मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी। (१०)

मेरे लिङ्ग की भक्ति-पूर्वक पूजा करने वालों को कभी कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं होगा। (११)

शुद्धयते लिङ्गपूजायां नात्र कार्या विचारणा ॥ १२
युष्माभिः पातितं लिङ्गं सारयित्वा महत्सरः ।
सांनिहत्यं तु विख्यातं तस्मिञ्शीघ्रं प्रतिष्ठितम् ॥ १३
यथाभिलषितं कामं ततः प्राप्स्यथ ब्राह्मणाः ।
स्थाणुर्नाम्ना हि लोकेषु पूजनीयो दिवौकसाम् ॥ १४
स्थाण्वीश्वरे स्थितो यस्मात्स्थाण्वीश्वरस्ततः स्मृतः ।
ये स्मरन्ति सदा स्थाणुं ते मुक्ताः सर्वकिल्बिषैः ॥ १५
भविष्यन्ति शुद्धदेहा दर्शनान्मोक्षगामिनः ।
इत्येवमुक्ता देवेन ऋषयो ब्रह्मणा सह ॥ १६
तस्माद् दारुवनाल्लिङ्गं नेतुं समुपचक्रमुः ।
न तं चालयितुं शक्तास्ते देवा ऋषिभिः सह ॥ १७
श्रमेण महता युक्ता ब्रह्माणं शरणं ययुः ।
तेषां श्रमाभितप्तानामिदं ब्रह्माऽब्रवीद् वचः ॥ १८
किं वा श्रमेण महता न यूयं वहनक्षमाः ।
स्वेच्छया पातितं लिङ्गं देवदेवेन शूलिना ॥ १९

लिङ्ग-पूजा करने से बुद्धिपूर्वक भी किये गये समस्त पापों की शुद्धि होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। (१२)

अपने द्वारा गिराये गये लिङ्ग को उठाकर सानिहत्य नाम से विख्यात महा सरोवर तीर्थ में शीघ्र प्रतिष्ठित करो। (१३)

हे ब्राह्मणो! उससे यथेच्छ कामनाओं की प्राप्ति करोगे। संसार में स्थाणु नाम से (प्रसिद्ध वह लिङ्ग) देवताओं का पूजनीय होगा। (१४)

स्थाण्वीश्वर में स्थित रहने से (उस लिङ्ग को) स्थाण्वीश्वर कहा जायेगा। सदा स्थाणु का स्मरण करने वाले सभी पापों से मुक्त एवं शुद्ध देह होकर (स्थाण्वीश्वर का) दर्शन करने से मोक्षगामी हो जायेंगे। शङ्कर के ऐसा कहने पर ब्रह्मा के सहित ऋषि लोग लिङ्ग को उस दारुवन से ले जाने का उपक्रम करने लगे। किन्तु ऋषियों के सहित देवगण उसे चालित करने में असमर्थ रहे। (१५-१७)

महान् श्रम से युक्त होकर वे ब्रह्मा की शरण में गए। श्रम से अभितप्त उन लोगों से ब्रह्मा ने यह वचन कहा—(१८)

महान् श्रम का क्या प्रयोजन? तुम लोग इसे उठाने में समर्थ नहीं हो सकते। देवाधिदेव शंकर ने स्वेच्छा से लिङ्ग को गिराया है। (१९)

तस्मात् तमेव शरणं यास्यामः सहिताः सुराः ।
प्रसन्नश्च महादेवः स्वयमेव नयिष्यति ॥ २०
इत्येवमुक्ता ऋषयो देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
कैलासं गिरिमासेदू रुद्रदर्शनकाङ्क्षिणः ॥ २१
न च पश्यन्ति तं देवं ततश्चिन्तासमन्विताः ।
ब्रह्माणमूचुर्मुनयः क्व स देवो महेश्वरः ॥ २२
ततो ब्रह्मा चिरं ध्यात्वा ज्ञात्वा देवं महेश्वरम् ।
हस्तिरूपेण तिष्ठन्तं मुनिभिर्मानसैः स्तुतम् ॥ २३
अथ ते ऋषयः सर्वे देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
गता महत्सरः पुण्यं यत्र देवः स्वयं स्थितः ॥ २४
न च पश्यन्ति तं देवमन्विष्यन्तस्ततस्ततः ।
ततश्चिन्तान्विता देवा ब्रह्मणा सहिता स्थिताः ॥ २५
पश्यन्ति देवीं सुप्रीतां कमण्डलुविभूषिताम् ।
प्रीयमाणा तदा देवी इदं वचनमब्रवीत् ॥ २६
श्रमेण महता युक्ता अन्विष्यन्तो महेश्वरम् ।

अतः हे देवो! हमलोग एक साथ उन्हीं की शरण में चलें। महादेव प्रसन्न होकर स्वयं ही (लिङ्ग को) ले जायेंगे। (२०)

ऐसा कहे जाने पर सभी ऋषि और देवता ब्रह्मा के साथ शंकर के दर्शन की इच्छा से कैलास पर्वत पर पहुँचे। (२१)

वहाँ उन्होंने शंकर को नहीं देखा। इससे चिन्तित होकर मुनियों ने ब्रह्मा से पूछा कि "वे महेश्वर देव कहाँ हैं?" (२२)

तदनन्तर ब्रह्मा ने देर तक ध्यान लगा कर देखा कि मुनियों के मानस द्वारा सस्तुत महेश्वर देव हाथी के रूप में स्थित हैं। (२३)

तदुपरान्त वे सभी ऋषि और देवता ब्रह्मा के साथ उस पवित्र महान् सरोवर पर पहुँचे जहाँ शंकर स्वयं उपस्थित थे। (२४)

वे लोग इधर-उधर ढूँढने पर भी शंकर को न देख सके। तदनन्तर ब्रह्मा के साथ चिन्तायुक्त होकर खड़े हुए उन लोगों ने कमण्डलुविभूषित परमप्रसन्न देवी को देखा। प्रसन्न किये जाने पर देवी ने कहा— (२५-२६)

महेश्वर को ढूढते हुये तुम लोग अत्यन्त थक गये हो। हे देवो! अमृत का पान करो। तदनन्तर तुम शंकर को

पीयतामर्मृतं देवास्ततो ह्यस्यथ शंकरम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचन भवान्या समुदाहृतम् ॥२७
सुखोपविष्टास्ते देवाः पपुस्तदमृतं शुचि ।
अनन्तरं सुखासीनाः पप्रच्छुः परमेश्वरीम् ॥२८
क स देव इहायातो हस्तिरूपधरः स्थितः ।
दर्शितश्च तदा देव्या सरोमध्ये व्यवस्थितः ॥२९
दृष्ट्वा देवं हर्षयुक्ताः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इद वचनमब्रुवन् ॥३०
त्वया त्यक्तं महादेव लिङ्गं त्रैलोक्यवन्दितम् ।
तस्य चानयने नान्यः समर्थः स्यान्महेश्वर ॥३१
इत्येवमुक्तो भगवान् देवो ब्रह्मादिभिर्हरः ।
जगाम ऋषिभिः सार्द्धं देवदारुवनाश्रमम् ॥ ३२
तत्र गत्वा महादेवो हस्तिरूपधरो हरः ।
करेण जग्राह ततो लीलया परमेश्वर. ॥ ३३
तमादाय महादेवः स्तूयमानो महर्षिभिः ।
निवेशयामास तदा सरःपार्श्वे तु पश्चिमे ॥ ३४
ततो देवाः सर्व एव ऋषयश्च तपोधना. ।
आत्मान सफल दृष्ट्वा स्तवं चक्रुर्महेश्वरे ॥ ३५
नमस्ते परमात्मन् अनन्तयोने लोकसाक्षिन्
परमेष्ठिन् भगवन् सर्वज्ञ क्षेत्रज्ञ परावरज्ञ
ज्ञानज्ञेय सर्वेश्वर महाविरिञ्च महाविभूते
महाक्षेत्रज्ञ महापुरुष सर्वभूतावास
मनोनिवास आदिदेव महादव सदाशिव [5]
ईशान दुर्विज्ञेय दुराराध्य महाभूतेश्वर
परमेश्वर महायोगेश्वर त्र्यम्बक महायोगिन्
परब्रह्मन् परमज्योतिः ब्रह्मविदुत्तम ॐकार
वषट्कार स्वाहाकार स्वधाकार परमकारण
सर्वगत सर्वदर्शिन् सर्वशक्ते सर्वदेव अज [10]
सहस्रार्चिः पृषार्चिः सुधामन् हरधाम अनन्तधाम
संवर्त संकर्षण वडवानल अग्नीषोमात्मक
पवित्र महापवित्र महामेघ महामायाधर महाकाम
कामहन् हंस परमहंस महाराजिक महेश्वर
महाकामुक महाहंस भवक्षयकर सुरसिद्धार्चित [15]
हिरण्यवाह हिरण्यरेतः हिरण्यनाभ हिरण्याग्रकेश

जानोगे। भवानी द्वारा कथित इस वचन को सुन कर देवताओं ने सुखपूर्वक बैठ कर उस पवित्र अमृत का पान किया। तदनन्तर सुख से बैठे उन लोगों ने परमेश्वरी से पूछा— (२७-२८)

हस्तिरूपधारी वे देव यहाँ आकर कहाँ स्थित हैं ? देवी ने सरोवर के मध्य उन्हें स्थित दिखाया। (२९)

देव को देख कर ऋषियों सहित हर्षयुक्त सभी देवताओं ने ब्रह्मा को आगे कर यह वचन कहा। (३०)

हे महादेव ! आपने त्रैलोक्य-वन्दित जिस लिङ्ग का त्याग किया है उसे लाने मे दूसरा कोई समर्थ नहीं है। (३१)

ब्रह्मादि देवों के ऐसा कहने पर भगवान् महादेव ऋषियों के साथ देवदारुवन के आश्रम में गए। (३२)

वहाँ जाकर हस्तिरूपधारी परमेश्वर महादेव ने लीला पूर्वक (लिङ्गको) सूँड़ में उठा लिया। (३३)

महर्षियों से संस्तुत हो रहे महादेव ने उसे लाकर सरोवर के पश्चिम पार्श्व में निवेशित किया। (३४)

तदनन्तर सभी देवता एवं तपोधन ऋषि स्वय को सफल हुआ देख महेश्वर की स्तुति करने लगे— (३५)

हे परमात्मन् ! हे अनन्तयोने ! हे लोकसाक्षिन् ! हे परमेष्ठिन् ! हे भगवन् ! हे सर्वज्ञ ! हे क्षेत्रज्ञ ! हे परावरज्ञ ! हे ज्ञानज्ञेय ! हे सर्वेश्वर ! हे महाविरिञ्च ! हे महाविभूति ! हे महाक्षेत्रज्ञ ! हे महापुरुष ! हे सर्वभूतावास ! हे मनोनिवास ! हे आदिदेव ! हे महादेव ! हे सदाशिव ! हे ईशान ! हे दुर्विज्ञेय ! हे दुराराध्य ! हे महाभूतेश्वर ! हे परमेश्वर ! हे महायोगेश्वर ! हे त्र्यम्बक ! हे महायोगिन् ! हे परमब्रह्मन् ! हे परमज्योति ! हे ब्रह्मविद् ! हे उत्तम ! हे ओंकार ! हे वषट्कार ! हे स्वाहाकार ! हे स्वधाकार ! हे परमकारण ! हे सर्वगत ! हे सर्वदर्शिन् ! हे सर्वशक्ति ! हे सर्वदेव ! हे अज ! हे सहस्रार्चि ! हे पृषार्चि ! हे सुधामन् ! हे हर धाम ! हे अनन्तधाम ! हे संवर्त ! हे संकर्षण ! हे वडवानल ! हे अग्नीषोमात्मक ! हे पवित्र ! हे महापवित्र ! हे महामेघ ! हे महामायाधर ! हे महाकाम ! हे कामहन् ! हे हंस ! हे परमहंस ! हे महाराजिक ! हे महेश्वर ! हे महाकामुक ! हे महाहंस ! हे भवक्षयकर ! हे सुरसिद्धार्चित ! हे हिरण्यवाह ! हे हिरण्यरेत ! हे हिरण्यनाभ ! हे हिरण्याग्रकेश ! हे मुञ्जकेशिन् ! हे सर्वलोकवरप्रद ! हे सर्वानुग्रह

मुञ्जकेशिन् सर्वलोकवरप्रद सर्वानुग्रहकर
कमलेशय कुशेशय हृदयेशय ज्ञानोदधे शंभो
विभो महायज्ञ महायाज्ञिक सर्वयज्ञमय
सर्वयज्ञहृदय सर्वयज्ञसंस्तुत निराश्रय [20]
समुद्रेशय अत्रिसंभव भक्तानुकम्पिन्
अभग्नयोग योगधर वासुकिमहामणि-
विद्योतितविग्रह हरितनयन त्रिलोचन जटाधर
नीलकण्ठ चन्द्रार्धधर उमाशरीरार्धहर
गजचर्मधर दुस्तरसंसारमहासंहारकर [25]
प्रसीद भक्तजनवत्सल
एवं स्तुतो देवगणैः सुभक्त्या
सब्रह्मकैर्ब्रह्मर्ष्यैश्च पितामहेन।
त्यक्त्वा तदा हस्तिरूपं महात्मा
लिङ्गे तदा संनिधानं चकार ॥ ३६

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्याय ॥२३॥

२४

सनत्कुमार उवाच।
अथोवाच महादेवो देवान् ब्रह्मपुरोगमान्।
ऋषीणां चैव प्रत्यक्षं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १
एतत् सांनिहितं प्रोक्तं सरः पुण्यतम महत्।
मयोपसेवितं यस्मात् तस्मान्मुक्तिप्रदायकम् ॥ २
इह ये पुरुषाः केचिद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः।
लिङ्गस्य दर्शनादेव पश्यन्ति परमं पदम् ॥ ३
अहन्यहनि तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च।
स्थाणुतीर्थं समेष्यन्ति मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ ४
स्तोत्रेणानेन च नरो यो मा स्तोष्यति भक्तितः।

कर! हे कमलेशय! हे कुशेशय! हे हृदयेशय! हे ज्ञानोदधि! हे शम्भो! हे विभो! हे महायज्ञ! हे महायाज्ञिक! हे सर्वयज्ञमय! हे सर्वयज्ञहृदय! हे सर्वयज्ञसंस्तुत! हे निराश्रय! हे समुद्रेशय! हे अत्रिसंभव! हे भक्तानुकम्पी! हे अभग्नयोग! हे योगधर! हे वासुकिमहामणि से विद्योतित विग्रह वाले! हे हरितनयन! हे त्रिलोचन! हे जटाधर! हे नीलकण्ठ! हे चन्द्रार्धधर! हे उमाशरीरार्धहर! हे गजचर्मधर! हे दुस्तरसंसार के महासंहारकर! आप को नमस्कार है। हे भक्तजनवत्सल! आप प्रसन्न हों।

इस प्रकार श्रेष्ठ ऋषियों से युक्त सभी देवों के साथ पितामह ब्रह्मा के भक्तिपूर्वक स्तुति करने पर उन महात्मा ने हस्तिरूप का त्यागकर लिङ्ग में सन्निधान किया। (३६)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में तेइसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

२४

सनत्कुमार ने कहा—तदनन्तर महादेव ने ऋषियों के समक्ष ब्रह्मादि देवों से उत्तम तीर्थमाहात्म्य को कहा। (१)

यह सांनिहित नामक सरोवर महान् पुण्यतम कहा गया है। मुझसे सेवित होने के कारण यह मुक्ति-दायक है। (२)

यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णों के पुरुष लिङ्ग का दर्शन करने से परम पद का दर्शन करते हैं। (३)

समुद्र से लेकर सरोवर पर्यन्त सभी तीर्थ प्रतिदिन मध्याह्न के समय स्थाणु तीर्थ में आते हैं। (४)

इस स्तोत्र से भक्तिपूर्वक जो मनुष्य मेरी स्तुति करेगा

तस्याहं सुलभो नित्यं भविष्यामि न संशयः ॥ ५
इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रो ह्यन्तर्धानं गतः प्रभुः ।
देवाश्च ऋषयः सर्वे स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ ६
ततो निरन्तरं स्वर्गं मानुषैर्मिश्रितं कृतम् ।
स्थाणुलिङ्गस्य माहात्म्य दर्शनात्स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ७
ततो देवाः सर्व एव ब्रह्माणं शरणं ययुः ।
तानुवाच तदा ब्रह्मा किमर्थमिह चागताः ॥ ८
ततो देवाः सर्व एव इदं वचनमब्रुवन् ।
मानुषेभ्यो भयं तीव्रं रक्षास्माकं पितामह ॥ ९
तानुवाच तदा ब्रह्मा सुरांस्त्रिदशनायकः ।
पांशुना पूर्यतां शीघ्रं सरः शक्रे हितं कुरु ॥ १०
ततो ववर्ष भगवान् पांशुना पाकशासनः ।
सप्ताहं पूरयामास सरो देवैस्तदा वृतः ॥ ११
तं दृष्ट्वा पांशुवर्षं च देवदेवो महेश्वरः ।
करेण धारयामास लिङ्गं तीर्थवटं तदा ॥ १२

उसे निस्सन्देह मैं नित्य सुलभ होऊँगा। (५)

यह कहकर भगवान् प्रभु रुद्र अन्तर्हित हो गए। सभी देवता और ऋषिगण अपने अपने स्थान को चले गये। (६)

तदनन्तर सम्पूर्ण स्वर्ग मनुष्यों से भर गया। स्थाणुलिङ्ग का यह महात्म्य है कि उसके दर्शन से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है। (७)

तदुपरान्त सभी देवता ब्रह्मा की शरण में गए। तब ब्रह्मा ने उनसे पूछा—आप लोग किस लिए यहाँ आए हैं? (८)

तदनन्तर सभी देवों ने यह वचन कहा हे पितामह! हम लोगों को मनुष्यों से तीव्र भय हो रहा है। हमारी आप रक्षा करें। (९)

तदनन्तर देव-श्रेष्ठ ब्रह्मा ने उन देवों से कहा—"हे इन्द्र! सरोवर को शीघ्र धूलि से भर दो और अपना अभीष्ट सम्पन्न करो। (१०)

तदुपरान्त देवों से घिरे पाकराक्षस के हन्ता भगवान् इन्द्र ने एक सप्ताह तक धूलि की वर्षा कर सरोवर को भर दिया। (११)

इस धूलि-वर्षा को देख कर देवदेव महेश्वर ने लिङ्ग और तीर्थवट को अपने हाथ में धारण कर लिया। (१२)

तस्मात् पुण्यतमं तीर्थमाद्यं यत्रोदकं स्थितम् ।
तस्मिन् स्नातः सर्वतीर्थैः स्नातो भवति मानवः ॥ १३
यस्तत्र कुरुते श्राद्धं वटलिङ्गस्य चान्तरे ।
तस्य प्रीताश्च पितरो दास्यन्ति भुवि दुर्लभम् ॥ १४
पूरितं च ततो दृष्ट्वा ऋषयः सर्व एव ते ।
पांशुना सर्वगात्राणि स्पृशन्ति श्रद्धया युताः ॥ १५
तेऽपि निर्धूतपापास्ते पांशुना मुनयो गताः ।
पूज्यमानाः सुरगणैः प्रयाता ब्रह्मणः पदम् ॥ १६
ये तु सिद्धा महात्मानस्ते लिङ्गं पूजयन्ति च ।
व्रजन्ति परमां सिद्धिं पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ १७
एवं ज्ञात्वा तदा ब्रह्मा लिङ्गं शैलमयं तदा ।
आद्यलिङ्गं तदा स्थाप्य तस्योपरि दधार तत् ॥ १८
ततः कालेन महता तेजसा तस्य रञ्जितम् ।
तस्यापि स्पर्शनात् सिद्धः परं पदमवाप्नुयात् ॥ १९
ततो देवैः पुनर्ब्रह्मा विज्ञप्तो द्विजसत्तम ।

अतएव आदि में जहाँ जल था वह तीर्थ पुण्यतम है। उसमें स्नान करने वाला मनुष्य सभी तीर्थों में स्नान कर लेता है। (१३)

वट और लिङ्ग के मध्य में जो श्राद्ध करता है उसके पितृगण उस पर प्रसन्न होकर उसे पृथ्वी में दुर्लभ पदार्थ प्रदान करते हैं। (१४)

वे सभी ऋषि सरोवर को धूलि से पूरित हुआ देखकर श्रद्धापूर्वक समस्त शरीर में धूलि लगाने लगे। (१५)

वे मुनि भी धूलि से पापरहित होकर देवताओं से पूजित होते हुए ब्रह्मलोक चले गये। (१६)

जो तपस्वी महात्मा उस लिङ्ग की पूजा करते थे वे आवागमन से रहित परमसिद्धि प्राप्त करने लगे। (१७)

ऐसा जान कर ब्रह्मा ने आदि लिङ्ग को नीचे कर उसके ऊपर शैलमय लिङ्ग को रख दिया। (१८)

कुछ समय व्यतीत होने पर उसके (आद्य लिङ्ग के) तेज से (वह शैलमय लिङ्ग भी) रञ्जित हो गया। सिद्धगण उसके भी स्पर्श से परम पद प्राप्त करने लगे। (१९)

हे द्विजश्रेष्ठ! तदनन्तर देवताओं ने पुन ब्रह्मा को सूचित किया कि मनुष्य इस लिङ्ग के भी दर्शन से परम

एते यान्ति परां सिद्धिं लिङ्गस्य दर्शनान्नरा. ॥ २०
तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा देवानां हितकाम्यया ।
उपर्युपरि लिङ्गानि सप्त तत्र चकार ह ॥ २१
ततो ये मुक्तिकामाश्च सिद्धाः शमपरायणाः ।
सेव्य पांशुं प्रयत्नेन प्रयाताः परमं पदम् ॥ २२
पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुना समुदीरिता. ।
महादुष्कृतकर्माण प्रयान्ति परमं पदम् ॥ २३
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ।
नश्यते दुष्कृत सर्वं स्थाणुतीर्थप्रभावतः ॥ २४
लिङ्गस्य दर्शनान्मुक्तिः स्पर्शनाच्च वटस्य च ।
तत्संनिधौ जले स्नात्वा प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ॥ २५
पितृणां तर्पणं यस्तु जले तस्मिन् करिष्यति ।
बिन्दौ बिन्दौ तु तोयस्य अनन्तफलभाग्भवेत् ॥ २६
यस्तु कृष्णतिलै. सार्द्धं लिङ्गस्य पश्चिमे स्थितः ।
तर्पयेच्छ्रद्धया युक्तः स प्रीणाति युगत्रयम् ॥ २७
यावन्मन्वन्तरं प्रोक्तं यावल्लिङ्गस्य संस्थिति. ।
तावत्प्रीताश्च पितरः पिबन्ति जलमुत्तमम् ॥ २८
कृते युगे सान्निहत्यं त्रेतायां वायुसंज्ञितम् ।
कलिद्वापरयोर्मध्ये कूपं रुद्रह्रदं स्मृतम् ॥ २९
चैत्रस्य कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां नरोत्तमः ।
स्नात्वा रुद्रह्रदे तीर्थे परं पदमवाप्नुयात् ॥ ३०
यस्तु वटे स्थितो रात्रिं ध्यायते परमेश्वरम् ।
स्थाणोर्वटप्रसादेन मनसा चिन्तित फलम् ॥ ३१

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्याय ॥२४॥

सिद्धि प्राप्त कर रहे हैं। (२०)

यह सुन कर भगवान् ब्रह्मा ने देवताओं के हित की कामना से एक के ऊपर एक सात लिङ्गों को स्थापित किया। (२१)

तदनन्तर मुक्ति की कामना वाले विरक्त सिद्धगण प्रयत्नपूर्वक धूलि का सेवन कर परमपद प्राप्त करने लगे। (२२)

कुरुक्षेत्र में वायु प्रेरित धूलि भी महादुष्कर्मियों को परमपद देती है। (२३)

स्त्री या पुरुष के ज्ञान अथवा अज्ञान से किये गये समस्त पाप स्थाणुतीर्थ के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। (२४)

लिङ्ग के दर्शन और वट के स्पर्श से मुक्ति मिलती है। उसके निकट जल में स्नान करने से मनुष्य अभिमत फल प्राप्त करता है। (२५)

उस जल में पितरों का तर्पण करने वाला जल के प्रत्येक बिन्दु मे अनन्त फल प्राप्त करता है। (२६)

लिङ्ग से पश्चिम दिशा मे श्रद्धापूर्वक काले तिलों से तर्पण करने वाला तीन युगों तक (पितरों को) तृप्त करता है। जब तक मन्वन्तर है और जब तक लिङ्ग की संस्थिति है तब तक पितृगण प्रसन्न होकर उत्तम जल का पान करते हैं। (२७-२८)

कृतयुग मे सान्निहत्य सर सेव्य है, त्रेता मे वायु नामक ह्रद सेव्य है। कलि एवं द्वापर मे रुद्रह्रद नामक कूप सेव्य माना गया है। (२९

चैत्र के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी मे रुद्रह्रद नामक तीर्थ मे स्नान कर उत्तम पुरुष परमपद को प्राप्त करता है। (३०)

रात्रि में वट के नीचे रह कर परमेश्वर का ध्यान करने वाले को स्थाणुवट की कृपा से मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। (३१)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

२५

सनत्कुमार उवाच ।
स्थाणोर्वटस्योत्तरतः शुक्रतीर्थं प्रकीर्तितम् ।
स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण सोमतीर्थं द्विजोत्तम ॥ १
स्थाणोर्वटं दक्षिणतो दक्षतीर्थमुदाहृतम् ।
स्थाणोर्वटात् पश्चिमतः स्कन्दतीर्थं प्रतिष्ठितम् ॥ २
एतानि पुण्यतीर्थानि मध्ये स्थाणुरिति स्मृतः ।
तस्य दर्शनमात्रेण प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां यस्त्वेतानि परिक्रमेत् ।
पदे पदे यज्ञफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥ ४
एतानि मुनिभिः साध्यैरादित्यैर्वसुभिस्तदा ।
मरुद्भिर्वह्निभिश्चैव सेवितानि प्रयत्नतः ॥ ५
अन्ये ये प्राणिनः केचित् प्रविष्टाः स्थाणुमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥ ६
अस्ति तत्संनिधौ लिङ्गं देवदेवस्य शूलिनः ।
उमा च लिङ्गरूपेण हरपार्श्वं न मुञ्चति ॥ ७
तस्य दर्शनमात्रेण सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ।
वटस्य उत्तरे पार्श्वे तक्षकेण महात्मना ॥ ८
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं सर्वकामप्रदायकम् ।
वटस्य पूर्वदिग्भागे विश्वकर्मकृतं महत् ॥ ९
लिङ्गं प्रत्यङ्मुखं दृष्ट्वा सिद्धिमाप्नोति मानवः ।
तत्रैव लिङ्गरूपेण स्थिता देवी सरस्वती ॥ १०
प्रणम्य तां प्रयत्नेन बुद्धिं मेधां च विन्दति ।
वटपार्श्वे स्थितं लिङ्गं ब्रह्मणा तत् प्रतिष्ठितम् ॥ ११
दृष्ट्वा वटेश्वरं देवं प्रयाति परमं पदम् ।
ततः स्थाणुवटं दृष्ट्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ १२
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा ।
स्थाणोः पश्चिमदिग्भागे नकुलीशो गणः स्मृतः ॥ १३
तमभ्यर्च्य प्रयत्नेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
तस्य दक्षिणदिग्भागे तीर्थं रुद्रकरं स्मृतम् ॥ १४
तस्मिन् स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः ।

२५

सनत्कुमार ने कहा, "हे द्विजोत्तम ! स्थाणुवट के उत्तर में शुक्रतीर्थ और स्थाणुवट के पूर्व में सोमतीर्थ कहा गया है। (१)

स्थाणुवट के दक्षिण में दक्षतीर्थ एवं उसके पश्चिम में स्कन्दतीर्थ प्रतिष्ठित है। (२)

इन पवित्र तीर्थों के मध्य में स्थाणु नामक तीर्थ है। उसके दर्शनमात्र से परमपद की प्राप्ति होती है। (३)

अष्टमी और चतुर्दशी को इनकी परिक्रमा करने वाले को निस्सन्देह पग पग पर यज्ञ का फल प्राप्त होता है। (४)

मुनियों, साध्यों, आदित्यों, वसुओं, मरुतों एवं अग्नियों ने प्रयत्नपूर्वक इन तीर्थों का सेवन किया है। (५)

उत्तम स्थाणुतीर्थ में प्रवेश करने वाले अन्य प्राणी भी सर्वपाप-विनिर्मुक्त होकर परम गति की प्राप्ति करते हैं। (६)

उसके समीप देवाधिदेव भगवान् शंकर का लिङ्ग स्थित है। वहाँ लिङ्गरूप से (स्थित) उमा भी हर के पार्श्व का त्याग नहीं करती। (७)

उसके दर्शनमात्र से मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है। वट के उत्तर पार्श्व में महात्मा तक्षक ने सर्वकाम-प्रदायक महालिङ्ग प्रतिष्ठित किया है। वट की पूर्व दिशा में विश्वकर्मा का बनाया महान् लिङ्ग है। उस पश्चिमाभिमुख लिङ्ग का दर्शन करने से मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है। वहीं देवी सरस्वती लिङ्ग रूप से स्थित हैं। (८-१०)

उसे प्रयत्न पूर्वक प्रणाम कर मनुष्य बुद्धि एवं मेधा प्राप्त करता है। वट के पार्श्व में स्थित लिङ्ग को ब्रह्मा ने प्रतिष्ठित किया है। वटेश्वर देव का दर्शन करने से परमपद की प्राप्ति होती है। तदनन्तर स्थाणुवट का दर्शन और उसकी प्रदक्षिणा करने वाला सप्तद्वीपा वसुन्धरा की प्रदक्षिणा कर लेता है। स्थाणु की पश्चिम दिशा में नकुलीश नामक गण स्थित हैं। (११-१३)

प्रयत्न पूर्वक उनकी पूजा कर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। उसके दक्षिण भाग में रुद्रकर तीर्थ है। (१४)

तस्य चोत्तरदिग्भागे रावणेन महात्मना ॥ १५
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं गोकर्णं नाम नामतः ।
आषाढमासे या कृष्णा भविष्यति चतुर्दशी ।
तस्यां योऽर्चति गोकर्णं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ १६
कामतोऽकामतो वापि यत् पापं तेन संचितम् ।
तस्माद् विमुच्यते पापात् पूजयित्वा हरं शुचिः ॥ १७
कौमारब्रह्मचर्येण यत्पुण्यं प्राप्यते नरैः ।
तत्पुण्यं सकलं तस्य अष्टम्यां योऽर्चयेच्छिवम् ॥ १८
यदीच्छेत् परमं रूपं सौभाग्यं धनसंपदः ।
कुमारेश्वरमाहात्म्यात् सिद्ध्यते नात्र संशयः ॥ १९
तस्य चोत्तरदिग्भागे लिङ्गं पूज्य विभीषणः ।
अजरश्चामरश्चैव कल्पयित्वा बभूव ह ॥ २०
आषाढस्य तु मासस्य शुक्ला या चाष्टमी भवेत् ।
तस्यां पूज्य सोपवासो ह्यमृतत्वमवाप्नुयात् ॥ २१
खरेण पूजितं लिङ्गं तस्मिन् स्थाने द्विजोत्तम ।
तं पूजयित्वा यत्नेन सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ २२
दूषणस्त्रिशिराश्चैव तत्र पूज्य महेश्वरम् ।
यथाभिलषितान् कामानापतुस्तौ मुदान्वितौ ॥ २३
चैत्रमासे सिते पक्षे यो नरस्तत्र पूजयेत् ।
तस्य तौ वरदौ देवौ प्रयच्छेतेऽभिवाञ्छितम् ॥ २४
स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण हस्तिपादेश्वरः शिवः ।
तं दृष्ट्वा मुच्यते पापैरन्यजन्मनि संभवैः ॥ २५
तस्य दक्षिणतो लिङ्गं हारीतस्य ऋषेः स्थितम् ।
यत् प्रणम्य प्रयत्नेन सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ॥ २६
तस्य दक्षिणपार्श्वे तु वापीतस्य महात्मनः ।
लिङ्गं त्रैलोक्यविख्यातं सर्वपापहरं शिवम् ॥ २७
कङ्कालरूपिणा चापि रुद्रेण सुमहात्मना ।
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २८
भुक्तिदं मुक्तिदं प्रोक्तं सर्वकिल्बिषनाशनम् ।
लिङ्गस्य दर्शनाच्चैव अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ २९

उसमें स्नान करने वाला पुरुष समस्त तीर्थों में स्नान कर लेता है। उसके उत्तर की दिशा में महात्मा रावण के द्वारा प्रतिष्ठित गोकर्ण नामक महालिङ्ग है। आषाढ़ मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में गोकर्ण की अर्चना करने वाले मनुष्य के पुण्यफल को सुनो। (१५-१६)

पवित्रता पूर्वक हर की पूजा करने से वह अपने द्वारा इच्छा या अनिच्छा पूर्वक सञ्चित पाप से मुक्त हो जाता है। (१७)

अष्टमी में शिव का अर्चन करने वाला मनुष्य कौमार ब्रह्मचर्य से प्राप्त होने वाले, समस्त पुण्य को उपलब्ध करता है। (१८)

यदि मनुष्य सुन्दर रूप, सौभाग्य या धन सम्पत्ति की इच्छा करता है तो कुमारेश्वर के माहात्म्य से उसे निःसन्देह उसकी सिद्धि होती है। (१९)

उसकी उत्तर दिशा में लिङ्ग की स्थापना तथा पूजा करने से विभीषण अजर एवं अमर हुए। (२०)

आषाढ़ मास की शुक्लाष्टमी को उपवास पूर्वक पूजा करने से मनुष्य को अमरत्व की प्राप्ति होती है। (२१)

हे द्विजोत्तम! उस स्थान पर खर द्वारा पूजित लिङ्ग है उसकी यत्नपूर्वक पूजा करने से समस्त कामनाओं की प्राप्ति होती है। (२२)

दूषण एवं त्रिशिरा वहाँ पर महेश्वर की पूजा कर प्रसन्न-चित्त हो यथाभिलषित कामनाओं को प्राप्त किये। (२३)

चैत्र मास के शुक्लपक्ष में वहाँ पूजन करने वाले मनुष्य को वे दोनों वरद देव अभिवाञ्छित फल प्रदान करते हैं। (२४)

स्थाणुवट के पूर्व में हस्तिपादेश्वर शिव हैं उनका दर्शन करने से मनुष्य अन्य जन्मों में किये गये पापों से मुक्त हो जाता है। (२५)

उसके दक्षिण में हारीत ऋषि द्वारा स्थापित लिङ्ग है। उसको प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करने से मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है। (२६)

उसके दक्षिण पार्श्व में महात्मा वापीत द्वारा प्रतिष्ठित त्रैलोक्य विख्यात, सर्वपापहारी एवं कल्याणकारी लिङ्ग स्थित है। (२७)

कङ्कालरूपी महात्मा रुद्र ने भी सर्वपापनाशक महालिङ्ग की स्थापना की है। (२८)

वह लिङ्ग भुक्ति एवं मुक्ति का दायक तथा सर्वपाप-नाशक है तथा उस लिङ्ग का दर्शन करने से अग्निष्टोम यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है। (२९)

तस्य पश्चिमदिग्भागे लिङ्गं सिद्धप्रतिष्ठितम् ।
सिद्धेश्वरं तु विख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३०
तस्य दक्षिणदिग्भागे मृकण्डेन महात्मना ।
तत्र प्रतिष्ठितं लिङ्गं दर्शनात् सिद्धिदायकम् ॥ ३१
तस्य पूर्वे च दिग्भागे आदित्येन महात्मना ।
प्रतिष्ठितं लिङ्गवरं सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ ३२
चित्राङ्गदस्तु गन्धर्वो रम्भा चाप्सरसां वरा ।
परस्परं सानुरागौ स्थाणुदर्शनकाङ्क्षिणौ ॥ ३३
दृष्ट्वा स्थाणुं पूजयित्वा सानुरागौ परस्परम् ।
आराध्य वरदं देवं प्रतिष्ठाप्य महेश्वरम् ॥ ३४
चित्राङ्गदेश्वरं दृष्ट्वा तथा रम्भेश्वरं द्विज ।
सुभगो दर्शनीयश्च कुले जन्म समाप्नुयात् ॥ ३५
तस्य दक्षिणतो लिङ्गं वज्रिणा स्थापितं पुरा ।
तस्य प्रसादात् प्राप्नोति मनसा चिन्तितं फलम् ॥ ३६
पराशरेण मुनिना तथैवाराध्य शंकरम् ।
प्राप्तं कवित्वं परमं दर्शनाच्छंकरस्य च ॥ ३७
वेदव्यासेन मुनिना आराध्य परमेश्वरम् ।
सर्वज्ञत्वं ब्रह्मज्ञानं प्राप्तं देवप्रसादतः ॥ ३८
स्थाणोः पश्चिमदिग्भागे वायुना जगदायुना ।
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं दर्शनात् पापनाशनम् ॥ ३९
तस्यापि दक्षिणे भागे लिङ्गं हिमवतेश्वरम् ।
प्रतिष्ठितं पुण्यकृतां दर्शनात् सिद्धिकारकम् ॥ ४०
तस्यापि पश्चिमे भागे कार्तवीर्येण स्थापितम् ।
लिङ्गं पापहरं सद्यो दर्शनात् पुण्यमाप्नुयात् ॥ ४१
तस्याप्युत्तरदिग्भागे सुपार्श्वे स्थापितं पुनः ।
आराध्य हनुमांश्चाप सिद्धिं देवप्रसादतः ॥ ४२
तस्यैव पूर्वदिग्भागे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आराध्य वरदं देवं चक्रं लब्धं सुदर्शनम् ॥ ४३
तस्यापि पूर्वदिग्भागे मित्रेण वरुणेन च ।
प्रतिष्ठितौ लिङ्गवरौ सर्वकामप्रदायकौ ॥ ४४
एतानि मुनिभिः साध्यैरादित्यैर्वसुभिस्तथा ।
सेवितानि प्रयत्नेन सर्वपापहराणि वै ॥ ४५

उसके पश्चिम में सिद्धप्रतिष्ठित लिङ्ग है। वह सिद्धेश्वर नाम से विख्यात है तथा सर्वसिद्धि प्रदायक है। (३०)

उसके दक्षिण भाग में महात्मा मृकण्ड ने लिङ्ग की प्रतिष्ठा की है। उसके दर्शन से सिद्धि प्राप्त होती है। (३१)

उसके पूर्व में महात्मा आदित्य ने समस्त पापों का नाशक श्रेष्ठ लिङ्ग प्रतिष्ठित किया है। (३२)

परस्पर अनुराग युक्त चित्राङ्गद नामक गन्धर्व और रम्भा नाम की श्रेष्ठ अप्सरा ने स्थाणु का दर्शन करने की इच्छा से स्थाणु का दर्शन एव पूजा करने के उपरान्त वरदाता महेश्वर देव की प्रतिष्ठा की। (३३ ३४)

हे द्विज! चित्राङ्गदेश्वर एव रम्भेश्वर का दर्शन कर मनुष्य सौभाग्य, सौन्दर्य, एवं सत्कुलोत्पत्ति की प्राप्ति करता है। (३५)

उसके दक्षिण में इन्द्र ने प्राचीन काल में लिङ्ग की स्थापना की थी। उसके प्रसाद से मनुष्य को मनोभिलषित फल प्राप्त होता है। (३६)

उसी प्रकार पराशर मुनि ने शंकर की आराधना कर उनके दर्शन से कवित्व प्राप्त किया। (३७)

वेदव्यास मुनि ने परमेश्वर की आराधना कर देव के प्रसाद से सर्वज्ञता एव ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया। (३८)

स्थाणु की पश्चिम दिशा मे ससार के आयु स्वरूप वायु ने महालिङ्ग प्रतिष्ठित किया है जो दर्शनमात्र से पापनाशक है। (३९)

उसके भी दक्षिण भाग मे पुण्यवानों को दर्शन से सिद्धि प्रदान करने वाला हिमवतेश्वर लिङ्ग प्रतिष्ठित है। (४०)

उसके भी पश्चिम भाग में कार्तवीर्य ने लिङ्ग की स्थापना की है। यह लिङ्ग पापहारी है तथा इसके दर्शन से सद्य पुण्य की प्राप्ति होती है। (४१)

उसके भी उत्तर भाग में सुपार्श्व मे स्थापित लिङ्ग की आराधना कर हनुमान ने देव के प्रसाद से सिद्धि प्राप्त की थी। (४२)

उसके भी पूर्व भाग मे प्रभावशाली विष्णु ने वरद देव की आराधना कर सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था। (४३)

उसके भी पूर्व भाग में मित्र एव वरुण ने सर्वकामप्रदायक दो लिङ्गों की प्रतिष्ठा की है। (४४)

मुनियों, साध्यों, आदित्यों एव वसुओं द्वारा ये सभी लिङ्ग प्रयत्नपूर्वक सेवित हैं तथा ये समस्त पापों को नष्ट करने वाले हैं। (४५)

स्वर्णलिङ्गस्य पश्चात् ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि येषा सख्या न विद्यते ॥ ४६
तथा ह्युत्तरतस्तस्य यावदोघवती नदी ।
सहस्रमेक लिङ्गाना देवपश्चिमत. स्थितम् ॥ ४७
तस्यापि पूर्वदिग्भागे वालखिल्यैर्महात्मभिः ।
प्रतिष्ठिता रुद्रकोटिर्योवत्संनिहित सरः ॥ ४८
दक्षिणेन तु देवस्य गन्धर्वैर्यक्षकिन्नरैः ।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि येषां सख्या न विद्यते ॥ ४९
तिस्र. कोट्योऽर्धकोटी च लिङ्गाना वायुरब्रवीत् ।
असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा. स्थाणुमाश्रिता. ॥ ५०
एतज्ज्ञात्वा श्रद्धान. स्थाणुलिङ्गं समाश्रयेत् ।
यस्य प्रसादात् प्राप्नोति मनसा चिन्तित फलम् ॥ ५१
अकामो वा सकामो वा प्रविष्ट. स्थाणुमन्दिरम् ।
विमुक्त. पातकैर्घोरै. प्राप्नोति परम पदम् ॥ ५२
चैत्रे मासे त्रयोदश्या दिव्यनक्षत्रयोगत. ।
शुक्रार्कचन्द्रसंयोगे दिने पुण्यतमे शुभे ॥ ५३
प्रतिष्ठित स्थाणुलिङ्ग ब्रह्मणा लोकधारिणा ।
ऋषिभिर्देवसघैश्च पूजित शाश्वती. समा. ॥ ५४
तस्मिन् काले निराहारा मानवा. श्रद्धयान्विताः ।
पूजयन्ति शिव ये वै ते यान्ति परम पदम् ॥ ५५
तदारूढमिद ज्ञात्वा ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणीकृता तैस्तु सप्तद्वीपा वसुधरा ॥ ५६

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्याय ॥२५॥

स्वर्णलिङ्ग के पृष्ठ भाग मे तत्त्वदर्शी ऋषियों द्वारा असख्य लिङ्ग प्रतिष्ठित हैं। उसी प्रकार उसके उत्तर में ओघवती नदी तक देव के पश्चिम भाग मे एक सहस्र लिङ्ग प्रतिष्ठित हैं। (४६-४७)

उसके पूर्व की दिशा मे महात्मा बालखिल्यों ने संनिहित सरोवर तक कोटि रुद्रों की प्रतिष्ठा की है। (४८)

देव के दक्षिण भाग में गन्धर्वों, यक्षों एव किन्नरों ने असख्य लिङ्गों को प्रतिष्ठित किया है। (४९)

वायु ने साढे तीन करोड लिङ्गों का वर्णन किया है। स्थाणुतीर्थ में असख्य सहस्र रुद्र लिङ्ग वर्तमान हैं। (५०)

यह जानकर श्रद्धापूर्वक स्थाणुलिङ्ग का समाश्रयण करना चाहिये जिसके प्रसाद से मनुष्य मनोभिलषित फल प्राप्त करता है। (५१)

सकाम या निष्काम भाव से स्थाणु मदिर में प्रवेश करने वाला मनुष्य घोर पातकों से विमुक्त होकर परम पद प्राप्त करता है। (५२)

चैत्रमास की त्रयोदशी तिथि को दिव्यनक्षत्रों के योग मे शुक्र सूर्य तथा चन्द्र का सयोग होने पर पुण्यतम शुभ दिन में लोकधारी ब्रह्मा न स्थाणु लिङ्ग को प्रतिष्ठित किया था। ऋषियों एव देवों द्वारा शाश्वत वर्षों तक अर्थात् सदैव इसकी पूजा होती है। (५३-५४)

उस समय निराहार रहकर श्रद्धापूर्वक शिव की पूजा करने वाले मनुष्य परम पद प्राप्त करते हैं। (५५)

(स्थाणुलिङ्ग को) उनसे (शिव से)आरूढ मानकर उसकी प्रदक्षिणा करने वाले सप्तद्वीपा वसुन्धरा की प्रदक्षिणा कर लेते हैं। (५६)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

२६

मार्कण्डेय उवाच ।
स्थाणुतीर्थप्रभावं तु श्रोतुमिच्छाम्यहं मुने ।
केन सिद्धिरथ प्राप्ता सर्वपापभयापहा ॥ १
सनत्कुमार उवाच ।
शृणु सर्वमशेषेण स्थाणुमाहात्म्यमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥ २
एकार्णवे जगत्यस्मिन् नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
विष्णोर्नाभिसमुद्भूतं पद्ममव्यक्तजन्मनः ।
तस्मिन् ब्रह्मा समुद्भूतः सर्वलोकपितामहः ॥ ३
तस्मान्मरीचिरभवन्मरीचेः कश्यपः सुतः ।
कश्यपादभवद् भास्वांस्तस्मान्मनुरजायत ॥ ४
मनोस्तु क्षुवतः पुत्र उत्पन्नो मुखसंभवः ।
पृथिव्यां चतुरन्तायां राजासीद् धर्मरक्षिता ॥ ५
तस्य पत्नी बभूवाथ भया नाम भयावहा ।
मृत्योः सकाशादुत्पन्ना कालस्य दुहिता तदा ॥ ६
तस्यां समभवद् वेनो दुरात्मा वेदनिन्दकः ।
स दृष्ट्वा पुत्रवदनं क्रुद्धो राजा वनं ययौ ॥ ७
तत्र कृत्वा तपो घोरं धर्मेणावृत्य रोदसी ।
प्राप्तवान् ब्रह्मसदनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ८
वेनो राजा समभवत् समस्ते क्षितिमण्डले ।
स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः ॥ ९
घोषयामस नगरे दुरात्मा वेदनिन्दकः ।
न दातव्यं न यष्टव्यं न होतव्यं कदाचन ॥ १०
अहमेकोऽत्र वै वन्द्यः पूज्योऽहं भवतां सदा ।
मया हि पालिता यूयं निवसध्वं यथासुखम् ॥ ११
तस्मत्तोऽन्यो न देवोऽस्ति युष्माकं यः परायणम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनमृषयः सर्व एव ते ॥ १२
परस्परं समागम्य राजानं वाक्यमब्रुवन् ।

२६

मार्कण्डेय ने कहा—हे मुनि ! मैं स्थाणुतीर्थ का प्रभाव सुनना चाहता हूँ। यहाँ किसने समस्त पापों के भय को दूर करने वाली सिद्धि प्राप्त की ? (१)

सनत्कुमार ने कहा—स्थाणु के उत्तम माहात्म्य को पूर्णतया सुनो जिसे सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (२)

इस स्थावर जंगमात्मक संसार के एकार्णव में नष्ट हो जाने पर अव्यक्तजन्मा विष्णु की नाभि से एक पद्म उत्पन्न हुआ। उसमें लोकपितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए। (३)

उनसे मरीचि उत्पन्न हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। कश्यप से सूर्य की उत्पत्ति हुई एवं उनसे मनु का जन्म हुआ। (४)

मनु के छींकने पर उनके मुख से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह सम्पूर्ण पृथ्वी का धर्मरक्षक राजा हुआ। (५)

उसकी भया नाम की भयंकर पत्नी थी। वह मृत्यु से उत्पन्न काल की पुत्री थी। (६)

उससे दुरात्मा वेदनिन्दक वेन उत्पन्न हुआ। उस पुत्र के मुख को देखकर क्रुद्ध हुआ राजा वन में चला गया। (७)

वहाँ घोर तपस्या कर, पृथ्वी एवं आकाश के मध्य भाग को धर्म से आवृत कर वह राजा पुनरावृत्ति रहित ब्रह्मलोक को चला गया। (८)

वेन समस्त पृथ्वीमण्डल का राजा हो गया। अपने नाना के उस दोषवश उस दुरात्मा वेदनिन्दक कालात्मजा (काल की पुत्री भया) के पुत्र ने नगर में यह घोषित कराया कि "कभी भी दान, यज्ञ एवं हवन न किया जाय।" (९-१०)

इस संसार में एकमात्र मैं ही आप लोगों का वन्द्य और पूज्य हूँ। मेरे द्वारा पालित होकर आप लोग सुखपूर्वक निवास करें। (११)

इसलिये मुझसे अतिरिक्त अन्य कोई देवता नहीं है,

श्रुतिः प्रमाणं धर्मस्य ततो यज्ञः प्रतिष्ठितः ॥ १३
यज्ञैर्विना नो प्रीयन्ते देवाः स्वर्गनिवासिनः ।
अप्रीता न प्रयच्छन्ति वृष्टिं सस्यस्य वृद्धये ॥ १४
तस्माद् यज्ञैश्च देवैश्च धार्यते सचराचरम् ।
एतच्छ्रुत्वा क्रोधदृष्टिर्वेनः प्राह पुनः पुनः ॥ १५
न यष्टव्यं न दातव्यमित्याह क्रोधमूर्च्छितः ।
ततः क्रोधसमाविष्टा ऋषयः सर्व एव ते ॥ १६
निजघ्नुर्मन्त्रपूतैस्ते कुशैर्वज्रसमन्वितैः ।
ततस्त्वराजके लोके तमसा संवृते तदा ॥ १७
दस्युभिः पीड्यमानास्तान् ऋषींस्ते शरणं ययुः ।
ततस्ते ऋषयः सर्वे ममन्थुस्तस्य वै करम् ॥ १८
सव्यं तस्मात् समुत्तस्थौ पुरुषो ह्रस्वदर्शनः ।
तमूचुर्ऋषयः सर्वे निषीदतु भवानिति ॥ १९
तस्मान्निषादा उत्पन्ना वेनकल्मषसंभवाः ।
ततस्ते ऋषयः सर्वे मन्मथुर्दक्षिणं करम् ॥ २०
मथ्यमाने करे तस्मिन् उत्पन्नः पुरुषोऽपरः ।
बृहत्सालप्रतीकाशो दिव्यलक्षणलक्षितः ॥ २१
धनुर्बाणाङ्कितकरश्चक्रध्वजसमन्वितः ।
तमुत्पन्नं तदा दृष्ट्वा सर्वे देवाः सवासवाः ॥ २२
अभ्यषिञ्चन् पृथिव्यां तं राजानं भूमिपालकम् ।
ततः स रञ्जयामास धर्मेण पृथिवीं सदा ॥ २३
पित्राऽपरञ्जिता तस्य तेन सा परिपालिता ।
तत्र राजेतिशब्दोऽस्य पृथिव्या रञ्जनादभूत् ॥ २४
स राज्यं प्राप्य तेभ्यस्तु चिन्तयामास पार्थिवः ।
पिता मम अधर्मिष्ठो यज्ञव्युच्छित्तिकारकः ॥ २५
कथं तस्य क्रिया कार्या परलोकसुखावहा ।
इत्येवं चिन्तयानस्य नारदोऽभ्याजगाम ह ॥ २६
तस्मै स चासनं दत्वा प्रणिपत्य च पृष्टवान् ।

जो आप लोगों का आश्रय हो सके। यह वचन सुनने के उपरान्त सभी ऋषियों ने परस्पर मिल कर राजा से यह वचन कहा—धर्म के लिये श्रुति ही प्रमाण है। उसी से यज्ञ प्रतिष्ठित होता है। (१२-१३)

यज्ञों के बिना स्वर्गनिवासी देवता प्रसन्न नहीं होते एवं बिना प्रसन्न हुए वे अन्न की वृद्धि हेतु वृष्टि नहीं करते। (१४)

अतएव यज्ञों और देवताओं से ही चराचर संसार का धारण होता है। यह सुनकर क्रुद्ध वेन ने बार-बार कहा— (१५)

"यज्ञ और दान नहीं करना चाहिए" ऐसा कह कर वह क्रोधान्ध हो गया। तदनन्तर क्रुद्ध उन सभी ऋषियों ने मन्त्र से पवित्र वज्रमय कुशों से उसे मार डाला। *तब राजा से विहीन होने के कारण सारे संसार के अन्धकार* से आच्छादित हो जाने पर दस्युओं से पीड़ित सभी लोग उन ऋषियों की शरण में गए। तदनन्तर सभी ऋषियों ने उसके बाएँ हाथ का मन्थन किया। उससे एक ह्रस्व दिखाई पड़ने वाला (बौना) पुरुष निकला, उससे ऋषियों ने कहा—'निषीदतु भवान्', अर्थात् आप बैठें। (१६-१९)

उससे वेन के पापों से सम्भूत निषाद उत्पन्न हुए। तदनन्तर उन समस्त ऋषियों ने उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया। (२०)

उस हाथ के मथे जाने पर ऊँचे शाल वृक्ष के समान और दिव्य लक्षणों से युक्त एक दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ। (२१)

उसके हाथ में धनुष बाण, चक्र और ध्वजा का चिन्ह था। उस समय उसे उत्पन्न हुआ देखकर इन्द्र सहित सभी देवताओं ने उसको पृथ्वी में भूपालक राजा के रूप में अभिषिक्त किया। तदनन्तर उसने धर्मपूर्वक पृथ्वी का रञ्जन किया अर्थात् प्रसन्न किया। (२२-२३)

उसके पिता ने पृथ्वी का अपरञ्जित (विरक्त, दुःखी) किया था और उसने उसका पालन किया। पृथ्वी का रञ्जन करने से ही उसका राजा यह नाम हुआ। (२४)

उनसे राज्य प्राप्त करने के उपरान्त उस राजा ने विचार किया कि मेरे पिता अधर्मिष्ठ एवं यज्ञ के उच्छेदकर्त्ता थे, *अतः उनकी परलोक-सुखावह क्रिया किस प्रकार की* जाय। उसके ऐसा विचार करते समय नारद जी आ पहुँचे। (२५-२६)

उन्हें आसन देने के उपरान्त उसने प्रणाम कर पूछा—हे भगवन्। आप सभी लोकों के शुभाशुभ को जानते हैं। हे विप्र! मेरे दुराचारी, देव ब्राह्मण निन्दक एवं स्वकर्मरहित

भगवन् सर्वलोकस्य जानामि त्वं शुभाशुभम् ॥ २७

पिता मम दुराचारो देवब्राह्मणनिन्दकः ।
स्वकर्मरहितो विप्र परलोकमवाप्तवान् ॥ २८

ततोऽब्रवीन्नारदस्तं ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा ।
म्लेच्छमध्ये समुत्पन्नं क्षयकुष्ठसमन्वितम् ॥ २९

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य महात्मनः ।
चिन्तयामास दुःखार्त्तः कथं कार्यं मया भवेत् ॥ ३०

इत्येवं चिन्तयानस्य मतिर्जाता महात्मनः ।
पुत्रः स कथ्यते लोके यः पितॄंस्त्रायते भयात् ॥ ३१

एवं संचिन्त्य स तदा नारदं पृष्टवान् मुनिम् ।
तारणं मत्पितुस्तस्य मया कार्यं कथं मुने ॥ ३२

नारद उवाच ।

गच्छ त्वं तस्य तं देहं तीर्थेषु कुरु निर्मलम् ।
यत्र स्थाणोर्महत्तीर्थं सरः संनिहितं प्रति ॥ ३३

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः ।
सचिवे राज्यमाधाय राजा स तु जगाम ह ॥ ३४

स गत्वा चोत्तरां भूमिं म्लेच्छमध्ये ददर्श ह ।
कुष्ठरोगेण महता क्षयेण च समन्वितम् ॥ ३५

ततः शोकेन महता संतप्तो वाक्यमब्रवीत् ।
हे म्लेच्छा नौमि पुरुषं स्वगृहं च नयाम्यहम् ॥ ३६

तत्राहमेनं निरुजं करिष्ये यदि मन्यथ ।
तथेति सर्वे ते म्लेच्छाः पुरुषं तं दयापरम् ॥ ३७

ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा यथा जानासि तत्कुरु ।
तत आनीय पुरुषान् शिबिकावाहनोचितान् ॥ ३८

दत्त्वा शुल्कं च द्विगुणं सुखेन नयत द्विजम् ।
ततः श्रुत्वा तु वचनं तस्य राज्ञो दयावतः ॥ ३९

गृहीत्वा शिबिकां क्षिप्रं कुरुक्षेत्रेण यान्ति ते ।
तत्र नीत्वा स्थाणुतीर्थे अवतार्य च ते गताः ॥ ४०

ततः स राजा मध्याह्ने तं स्नापयति वै तदा ।
ततो वायुरन्तरिक्षे इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४१

मा तात साहसं कार्षीस्तीर्थं रक्ष प्रयत्नतः ।
अयं पापेन घोरेण अतीव परिवेष्टितः ॥ ४२

वेदनिन्दा महत्पापं यस्यान्तो नैव लभ्यते ।
सोऽयं स्नानान्महत्तीर्थं नाशयिष्यति तत्क्षणात् ॥ ४३

पिता परलोकगामी हो गए हैं । (२७-२८)

तदनन्तर दिव्य दृष्टि से उसको देख कर नारद ने कहा—यह क्षय और कुष्ठ रोग से आक्रान्त होकर म्लेच्छों के मध्य उत्पन्न हुआ है । (२९)

उन महात्मा नारद के इस वचन को सुनकर दुःखार्त हो उसने विचार किया मुझे क्या करना चाहिये ? (३०)

इस प्रकार विचार कर रहे महात्मा के मन में यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि संसार में पुत्र उसी को कहा जाता है जो पितरों का भय से त्राण करता है । (३१)

इस प्रकार विचार कर उसने नारद मुनि से पूछा—हे मुने ! मैं अपने पिता को कैसे तारूँ ? (३२)

नारद ने कहा—तुम स्थाणु के महत्तीर्थस्वरूप सन्निहित सर की ओर जाओ एवं उसके शरीर को तीर्थों में निर्मल करो । (३३)

महात्मा नारद की यह बात सुन कर वह राजा मन्त्री पर राज्य का भार देकर चला गया । (३४)

उत्तर दिशा में जाकर उसने म्लेच्छों के बीच महान् कुष्ठ और क्षय रोग से आक्रान्त अपने पिता को देखा । (३५)

तदनन्तर महान् शोक सन्तप्त हो उसने कहा—हे म्लेच्छो ! मैं प्रणाम करता हूँ और इस पुरुष को अपने घर ले जाता हूँ । (३६)

यदि तुम लोगों की अनुमति हो तो इस पुरुष को मैं वहाँ नीरोग करूँगा । सभी म्लेच्छों ने सर्वाङ्ग प्रणिपात पूर्वक उस दयालु पुरुष से कहा—'अच्छा ! तुम जैसा समझो वैसा करो । तदनन्तर शिविकावाहकों को बुलाकर उन्हें दुगुना पारिश्रमिक देने के उपरान्त उसने कहा—इस द्विज को सुखपूर्वक ले चलो । उस दयालु राजा के वचन को सुन कर उन्होंने पालकी उठायी और शीघ्रता से कुरुक्षेत्र होते हुए स्थाणुतीर्थ में ले जाकर उसे उतारने के पश्चात् वे चले गए । (३७-४०)

तदनन्तर जब वे राजा मध्याह्न में उसे स्नान कराने लगे तो अन्तरिक्ष से वायु ने यह वचन कहा—हे तात ! साहस मत करो । तीर्थ की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करो । यह घोर पाप से अत्यन्त आवृत है । वेदनिन्दा महापाप है, जिसका अन्त

एतद् वायोर्वचः श्रु त्वा दुःखेन महताऽन्वितः ।
उवाच शोकसंतप्तस्तस्य दुःखेन दुःखितः ।
एष घोरेण पापेन अतीव परिवेष्टितः ॥ ४४
प्रायश्चित्तं करिष्येऽहं यद्वदिष्यन्ति देवताः ।
ततस्ता देवताः सर्वा इदं वचनमब्रुवन् ॥ ४५
स्नात्वा स्नात्वा च तीर्थेषु अभिषिञ्चस्व वारिणा ।
ओजसा चुलुकं यावत् प्रतिकूले सरस्वतीम् ॥ ४६
स्नात्वा मुक्तिमवाप्नोति पुरुषः श्रद्धयान्वितः ।
एष स्वपोषणपरो देवदूषणतत्परः ॥ ४७
ब्राह्मणैश्च परित्यक्तो नैष शुद्ध्यति कर्हिचित् ।
तस्मादेनं समुद्दिश्य स्नात्वा तीर्थेषु भक्तितः ॥ ४८
अभिषिञ्चस्व तोयेन ततः पूतो भविष्यति ।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा कृत्वा तस्याश्रमं ततः ॥ ४९
तीर्थयात्रां ययौ राजा उद्दिश्य जनकं स्वकम् ।
स तेषु प्लावनं कुर्वंस्तीर्थेषु च दिने दिने ॥ ५०
अभ्यषिञ्चत् स्वपितरं तीर्थतोयेन नित्यशः ।

एतस्मिन्नेव काले तु सारमेयो जगाम ह ॥ ५१
स्थाणोर्मठे कौलपतिर्देवद्रव्यस्य रक्षिता ।
परिग्रहस्य द्रव्यस्य परिपालयिता सदा ॥ ५२
प्रियश्च सर्वलोकेषु देवकार्यपरायणः ।
तस्यैवं वर्त्तमानस्य धर्ममार्गे स्थितस्य च ॥ ५३
कालेन चलिता बुद्धिर्देवद्रव्यस्य नाशने ।
तेनाधर्मेण युक्तस्य परलोकगतस्य च ॥ ५४
दृष्ट्वा यमोऽब्रवीद् वाक्यं श्वयोनिं व्रज मा चिरम् ।
तद्वाक्यानन्तरं जातः श्वा वै सौगन्धिके वने ॥ ५५
ततः कालेन महता श्वयूथपरिवारितः ।
परिभूतः सरमया दुःखेन महता वृतः ॥ ५६
त्यक्त्वा द्वैतवनं पुण्यं सान्निहत्यं ययौ सरः ।
तस्मिन् प्रविष्टमात्रस्तु स्थाणोरेव प्रसादतः ॥ ५७
अतीव तृषया युक्तः सरस्वत्यां ममज्ज ह ।
तत्र संप्लुतदेहस्तु विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः ॥ ५८
आहारलोभेन तदा प्रविवेश कुटीरकम् ।

नहीं होता । अतएव यह स्नान द्वारा इस महान् तीर्थ को तत्काल नष्ट कर देगा । (४१-४३)

वायु के इस वचन को सुन कर दुःखी एवं शोक-सन्तप्त राजा ने कहा—यह घोर पाप से सुतरां व्याप्त है । (४४)

देवगण जो प्रायश्चित्त कहेंगे उसे मैं करूँगा । तदनन्तर उन सभी देवताओं ने यह बात कही—तीर्थों में स्नान करके जल द्वारा इसे अभिषिक्त करो । सरस्वती के किनारे ओजस् से चुलुक पर्यन्त प्रत्येक तीर्थ में स्नान करने वाला श्रद्धालु पुरुष मुक्ति प्राप्त करता है । यह स्वपोषण में रत एवं देवनिन्दा में तत्पर था तथा ब्राह्मणों ने इसका परित्याग कर दिया था । यह कदापि शुद्ध नहीं हो सकता । अतः इसके उद्देश्य से भक्तिपूर्वक तीर्थों में स्नान कर जल से इसे अभिषिक्त करो । इससे यह शुद्ध हो जायगा । यह वचन सुनने के उपरान्त वहाँ उसका आश्रम बनाकर राजा अपने पिता के निमित्त तीर्थयात्रा करने गये । प्रतिदिन उन तीर्थों में स्नान कर वे तीर्थजल से अपने पिता को अभिषिक्त करने लगे । इसी समय वहाँ एक कुत्ता आया । (पूर्वकाल में) वह स्थाणु तीर्थ स्थित मठ में देव द्रव्य का रक्षक, परिग्रह के द्रव्य का सदा पालक, सर्वलोक-प्रिय एवं देव-कार्य में रत (महन्त) था । इस प्रकार जीवनयापन कर रहे तथा धर्म मार्ग में स्थित उस कौलपति की बुद्धि कालान्तर में विचलित हो गई । वह देवद्रव्य का नाश करने लगा । उस अधर्म से युक्त होकर उसके परलोक में जाने पर यमराज ने उसे देखकर कहा "कुत्ते की योनि में जाओ, देर मत करो ।" उनके कहने के पश्चात् वह सौगन्धिक वन में कुत्ता बनकर उत्पन्न हुआ । (४५-५५)

तदनन्तर दीर्घ काल बीतने पर कुत्तों के समूह से आवृत वह कुतिया से अपमानित होने के कारण अत्यन्त दुःखित हुआ । (५६)

द्वैतवन को छोड़ कर वह पवित्र सान्निहत्य सरोवर में पहुँचा । उसमें प्रवेश करते ही स्थाणु की कृपा से अत्यन्त तृषायुक्त होकर उसने सरस्वती नदी में डुबकी लगाई । उसमें स्नान करने के उपरान्त वह समस्त पापों से विमुक्त हो गया । (५७-५८)

तदनन्तर आहार के लोभवश वह कुटी में प्रविष्ट हुआ । कुत्ते को प्रवेश करते देख भयग्रस्त हो उसने (वेन) ने उसका

प्रविशन्तं तदा दृष्ट्वा श्वानं भयसमन्वितः ॥ ५९
स तं पस्पर्श शनकैः स्थाणुतीर्थे ममज्ज ह।
पततः पूर्वतीर्थेषु निप्रुपैः परिपिञ्चित. ॥ ६०
शुनोऽस्य गात्रसंभूतैरब्बिन्दुभिः स सिञ्चितः।
विरक्तदृष्टिश्च शुनः क्षेपेण च ततः परम् ॥ ६१
स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यात् स पुत्रेण च तारितः।
नियतस्तत्क्षणाज्जातो दिव्यदेहसमन्वितः।
प्रणिपत्य तदा स्थाणुं स्तुतिं कर्तुं प्रचक्रमे ॥ ६२

वेन उवाच।

प्रपद्ये देवमीशान त्वामजं चन्द्रभूषणम्।
महादेवं महात्मानं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥ ६३
नमस्ते देवदेवेश सर्वशत्रुनिषूदन।
देवेश बलिविष्टम्भदेवदैत्यैश्च पूजित ॥ ६४
विरूपाक्ष सहस्राक्ष त्र्यक्ष यक्षेश्वरप्रिय।
सर्वत. पाणिपादान्त सर्वतोऽक्षिशिरोमुख ॥ ६५
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि।
शङ्कुकर्ण महाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय ॥ ६६
गजेन्द्रकर्ण गोकर्ण पाणिकर्ण नमोऽस्तु ते।
शतजिह्व शतावर्त शतोदर शतानन ॥ ६७
गायन्ति त्वां गायत्रिणो ह्यर्चयन्त्यर्कमर्चिणः।
ब्रह्माणं त्वा शतक्रतो उद्वंशमिव मेनिरे ॥ ६८
मूर्त्तौ हि ते महामूर्ते समुद्राम्बुधरास्तथा।
देवताः सर्व एवात्र गोष्ठे गाव इवासते ॥ ६९
शरीरे तव पश्यामि सोममग्निं जलेश्वरम्।
नारायणं तथा सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ७०
भगवान् कारणं कार्यं क्रियाकारणमेव तत्।
प्रभवः प्रलयश्चैव सदसच्चापि दैवतम् ॥ ७१
नमो भवाय शर्वाय वरदायोग्ररूपिणे।
अन्धकासुरहन्त्रे च पशूनां पतये नमः ॥ ७२
त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलासक्तपाणये।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्न नमोऽस्तु ते ॥ ७३
नमो मुण्डाय चण्डाय अण्डायोत्पत्तिहेतवे।

धीरे से स्पर्श किया एवं धीरे धीरे स्थाणुतीर्थ में मज्जन किया। पूर्वतीर्थों में स्नान कर तीर्थ जल से अभिषिक्त करने वाले पुत्र से परिषिञ्चित होने, एवं इस कुत्ते के शरीर से निकले जलबिन्दुओं से सिञ्चित होने तथा कुत्ते (के भय वश) स्थाणुतीर्थ में गिरने से वह विरक्तदृष्टि हो गया। (५९-६१)

स्थाणुतीर्थ के माहात्म्य से पुत्र द्वारा तारित होने से नियमधारी वह तत्क्षण दिव्यदेह युक्त होकर स्थाणु को प्रणाम करने के उपरान्त स्तुति करने लगा। (६२)

वेन ने कहा—मैं आप अज, चन्द्रभूषण, ईशान, देव, महात्मा, महादेव, समस्त जगत के पति की शरण ग्रहण करता हूँ। (६३)

हे देवदेवेश! हे समस्त शत्रुओं के निषूदन! हे देवेश! हे बलि को निरुद्ध करने वाले! हे देव-दैत्यों से पूजित! आपको नमस्कार है। (६४)

हे विरूपाक्ष! हे सहस्राक्ष! हे त्र्यक्ष! हे यक्षेश्वर प्रिय! हे चारों ओर से पाणिपादयुक्त! हे चारों ओर आँख एवं मुखवाले! आपको नमस्कार है। (६५)

आपका श्रोत्र सभी स्थानों पर व्याप्त है। संसार में आपने सभी को आवृत कर रक्खा है। हे शङ्कुकर्ण! हे महाकर्ण! हे कुम्भकर्ण! हे समुद्र निवासी! (आपको नमस्कार है)। (६६)

हे गजेन्द्रकर्ण! हे गोकर्ण! हे पाणिकर्ण! हे शतजिह्व! हे शतावर्त! हे शतोदर! हे शतानन! आपको नमस्कार है। (६७)

गायत्री जपने वाले आपकी ही महिमा गाते हैं। सूर्योपासक आपकी ही सूर्य रूप से उपासना करते हैं। आप को ही सभी लोग इन्द्र से उत्कृष्ट वंशवाला ब्रह्मा मानते हैं। (६८)

हे महामूर्ति! आपकी मूर्ति में समुद्र, मेघ और समस्त देवता इस प्रकार स्थित जैसे गोशाला में गौएँ निवास करती हैं। (६९)

आपके शरीर में मैं सोम, अग्नि, वरुण, नारायण, सूर्य, ब्रह्मा, और बृहस्पति को देख रहा हूँ। (७०)

आप भगवान्, कारण, कार्य, क्रिया-कारण, प्रभव, प्रलय, सत्, असत् एवं दैवत हैं। (७१)

भव, शर्व, वरद, उग्ररूपी, अन्धकासुरहन्ता और पशुओं के पति को नमस्कार है। (७२)

हे त्रिपुरनाशक! तीन जटा वाले, तीन शिर वाले, त्रिशूल में आसक्तपाणि वाले, त्र्यम्बक, त्रिनेत्र स्वरूप आप को नमस्कार है। (७३)

डिण्डिमासक्तहस्ताय डिण्डिमुण्डाय ते नमः ॥ ७४
नमोर्ध्वकेशदंष्ट्राय शुष्काय विकृताय च ।
धूम्रलोहितकृष्णाय नीलग्रीवाय ते नम. ॥ ७५
नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च ।
सूर्यमालाय सूर्याय स्वरूपध्वजमालिने ॥ ७६
नमो मानातिमानाय नमः पटुतराय ते ।
नमो गणेन्द्रनाथाय वृषस्कन्धाय धन्विने ॥ ७७
सक्रन्दनाय चण्डाय पर्णधारपुटाय च ।
नमो हिरण्यवर्णाय नम. कनकवर्चसे ॥ ७८
नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तुतिस्थाय नमोऽस्तु ते ।
सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतशरीरिणे ॥ ७९
नमो होत्रे च हन्त्रे च सितोदग्रपताकिने ।
नमो नम्याय नम्राय नमः कटकटाय च ॥ ८०
नमोऽस्तु कृशनाशाय शयितायोत्थिताय च ।
स्थिताय धावमानाय मुण्डाय कुटिलाय च ॥ ८१
नमो नर्त्तनशीलाय लयवादित्रशालिने ।
नाट्योपहारलुब्धाय मुखवादित्रशालिने ॥ ८२

नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलातिबलघातिने ।
कालनाशाय कालाय ससारक्षयरूपिणे ॥ ८३
हिमवद्दुहितुः कान्त भैरवाय नमोऽस्तु ते ।
उग्राय च नमो नित्य नमोऽस्तु दशबाहवे ॥ ८४
चितिभस्मप्रियायैव कपालासक्तपाणये ।
विभीषणाय भीष्माय भीमव्रतधराय च ॥ ८५
नमो विकृतवक्त्राय नमः पूतोग्रदृष्टये ।
पक्वाममासलुब्धाय तुम्बिवीणाप्रियाय च ॥ ८६
नमो वृषाङ्कवृक्षाय गोवृषाभिरुते नम. ।
कटङ्कटाय भीमाय नमः परपराय च ॥ ८७
नमः सर्ववरिष्ठाय वराय वरदायिने ।
नमो विरक्तरक्ताय भावनायाक्षमालिने ॥ ८८
विभेदभेदभिन्नाय छायायै तपनाय च ।
अघोरघोररूपाय घोरघोरतराय च ॥ ८९
नम. शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च ।
बहुनेत्रकपालाय एकमूर्त्ते नमोऽस्तु ते ॥ ९०
नम. क्षुद्राय लुब्धाय यज्ञभागप्रियाय च ।

मुण्ड, चण्ड, अण्ड, उत्पत्तिहेतु, डिण्डिमपाणि एव डिण्डिमुण्ड आप को नमस्कार है। (७४)
ऊर्ध्वकेश, ऊर्ध्वदंष्ट्र, शुष्क, विकृत, धूम्र, लोहित, कृष्ण एव नीलग्रीव आपको नमस्कार है। (७५)
अप्रतिमस्वरूप, विरूप, शिव, सूर्यमालाधारी, सूर्य एव स्वरूपध्वजमाली को नमस्कार है। (७६)
मनातिमान को नमस्कार है। आप पटुतर को नमस्कार है। गणेन्द्रनाथ, वृषस्कन्ध एव धन्वी को नमस्कार है। (७७)
सक्रन्दन, चण्ड, पर्णधारपुट एवं हिरण्यवर्ण को नम स्कार है। कनकवर्चस् को नमस्कार है। (७८)
स्तुत तथा स्तुत्य को नमस्कार है। स्तुतिस्थ, सर्व, सर्वभक्ष एव सर्वभूतशरीरी आप को नमस्कार है। (७९)
होता, हन्ता तथा सितोदग्रपताकी को नमस्कार है। नम्य एव नम्र का नमस्कार है। कटकट को नमस्कार है। (८०)
कृशनाश, शयित, उत्थित, स्थित, धावमान, मुण्ड एव कुटिल को नमस्कार है। (८१)
नर्तनशील, लयवादित्रशाली, नट्योपहारलुब्ध एव मुखवादित्रशाली को नमस्कार है। (८२)

ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, बलातिबलघाती, कालनाश, काल एव ससार-क्षयरूपीको नमस्कार है। (८३)
हे हिमालय की दुहिता के पति! आप भैरव को नमस्कार है। उग्र को नित्य नमस्कार है। दश बाहों वाले को नमस्कार है। (८४)
चितिभस्मप्रिय, कपालपाणि, विभीषण, भीष्म एवं भीमव्रतधर को (नमस्कार है)। (८५)
विकृतवक्त्र को नमस्कार है। पूतोग्रदृष्टि, पक्वाममासलुब्ध एव तुम्बिवीणाप्रिय को नमस्कार है। (८६)
वृषाङ्कवृक्ष को नमस्कार है। गोवृषाभिरुत को नमस्कार है। कटङ्कट, भीम एव परपर को नमस्कार है। (८७)
सर्ववरिष्ठ, वर एव वरदायी को नमस्कार है। विरक्तरक्त, भावन एव अक्षमाली को नमस्कार है। (८८)
विभेदभेदभिन्न, छाया, तपन, अघोरघोररूप एव घोर घोरतर (को नमस्कार है)। (८९)
शिव एव शान्त को नमस्कार है। शान्ततम, अनेकनेत्र एव कपालधारी को नमस्कार है। हे एकमूर्ति! आपको नमस्कार है। (९०)
क्षुद्र, लुब्ध, यज्ञभागप्रिय, पञ्चास्य एव सिताङ्ग का

पश्चालाय सिताङ्गाय नमो यमनियामिने ॥ ९१
नमश्चित्रोरुघण्टाय घण्टाघण्टनिघण्टिने ।
सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाविभूषिणे ॥ ९२
प्राणसंघट्टगर्वाय नमः किलिकिलिप्रिये ।
हुंहुंकाराय पाराय हुंहुंकारप्रियाय च ॥ ९३
नमः समसमे नित्यं गृहवृक्षनिकेतिने ।
गर्भमांसशृगालाय तारकाय तराय च ॥ ९४
नमो यज्ञाय यजिने हुताय प्रहुताय च ।
यज्ञवाहाय हव्याय तप्याय तपनाय च ॥ ९५
नमस्तु पयसे तुभ्यं तुण्डानां पतये नमः ।
अन्नदायान्नपतये नमो नानान्नभोजिने ॥ ९६
नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च ।
सहस्रोद्यतशूलाय सहस्राभरणाय च ॥ ९७
बालानुचरगोप्त्रे च बालक्रीडाविलासिने ।
नमो बालाय वृद्धाय क्षुब्धाय क्षोभणाय च ॥ ९८
गङ्गालुलितकेशाय मुञ्जकेशाय वै नमः ।
नमः षट्कर्मतुष्टाय त्रिकर्मनिरताय च ॥ ९९
नग्नप्राणाय चण्डाय कृशाय स्फोटनाय च ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां कथ्याय कथनाय च ॥ १००
साङ्ख्याय साङ्ख्यमुख्याय साङ्ख्ययोगमुखाय च ।
नमो विरथरथ्याय चतुष्पथरथाय च ॥ १०१
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने ।
वक्त्रसंधानकेशाय हरिकेश नमोऽस्तु ते ।
त्र्यम्बिकाम्बिकनाथाय व्यक्ताव्यक्ताय वेधसे ॥ १०२
कामकामदकामघ्न तृप्तातृप्तविचारिणे ।
नमः सर्वद पापघ्न कल्पसंख्याविचारिणे ॥ १०३
महासत्त्व महाबाहो महाबल नमोऽस्तु ते ।
महामेघ महाप्रख्य महाकाल महाद्युते ॥ १०४
मेघावर्त्त युगावर्त्त चन्द्रार्कपतये नमः ।
त्वमन्नमन्नभोक्ता च पक्वभुक् पावनोत्तम ॥ १०५
जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिदजाश्च ये ।
त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ १०६
स्रष्टा चराचरस्यास्य पाता हन्ता तथैव च ।

नमस्कार है। यम के नियमनकर्त्ता को नमस्कार है। (९१) चित्रोरुघण्ट, घण्टाघण्टनिघण्टी, सहस्रशतघण्ट एवं घण्टामालाविभूषित को नमस्कार है। (९२) प्राणसंघट्टगर्व, किलिकिलिप्रिय, हुंहुंकार, पार एवं हुंहुंकारप्रिय को नमस्कार है। (९३) समसम, गृहवृक्षनिकेती, गर्भमांसशृगाल, तारक एवं तर को नित्य नमस्कार है। (९४) यज्ञ, यजमान, हुत, प्रहुत, यज्ञवाह, हव्य, तप्य और तपन को नमस्कार है। (९५) पयस आपको नमस्कार है। तुण्डों के पति को नमस्कार है। अन्नद, अन्नपति एवं नानान्नभोजी को नमस्कार है। (९६) सहस्रशीर्ष, सहस्रचरण, सहस्रोद्यतशूल एवं सहस्राभरण को नमस्कार है। (९७) बालानुचरगोप्ता, बालक्रीडाविलासी, बाल, वृद्ध, क्षुब्ध एवं क्षोभण को नमस्कार है। (९८) गंगालुलितकेश, और मुञ्जकेश को नमस्कार है। षट्कर्म तुष्ट एवं त्रिकर्मनिरत को नमस्कार है। (९९)

नग्नप्राण, चण्ड, कृश, स्फोटन तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के कथ्य और कथन को नमस्कार है। (१००) सांख्य, सांख्यमुख्य, सांख्य-योगमुख, विरथरथ्य तथा चतुष्पथरथ को नमस्कार है। (१०१) हे हरिकेश! कृष्णाजिनोत्तरीय, व्यालयज्ञोपवीती, वक्त्रसंधानकेश, त्र्यम्बिकाम्बिकनाथ, व्यक्ताव्यक्त एवं वेधा स्वरूप आपको नमस्कार है। (१०२) हे काम! हे कामद! हे कामघ्न! आप तृप्तातृप्तविचारी, को नमस्कार है। हे सर्वद! हे पापघ्न! आप कल्पसंख्याविचारी को नमस्कार है। (१०३) हे महासत्त्व! हे महाबाहु! हे महाबल! हे महामेघ! हे महाप्रख्य! हे महाकाल! एवं हे महाद्युति! आपको नमस्कार है। (१०४) हे मेघावर्त्त! हे युगावर्त्त! आप चन्द्रार्कपति को नमस्कार है। आप ही अन्न, अन्न के भोक्ता, पक्वभुक् एवं पावनोत्तम हैं। (१०५) हे देवदेवेश! आप ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज चतुर्विध भूतग्राम हैं। (१०६)

त्वामाहुर्ब्रह्म विद्वांसो ब्रह्म ब्रह्मविदां गतिम् ॥ १०७
मनसः परमज्योतिस्त्वं वायुर्ज्योतिषामपि ।
हंसवृक्षे मधुकरमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः ॥ १०८
यजुर्मयो ऋङ्मयस्त्वामाहुः साममयस्तथा ।
पठ्यसे स्तुतिभिर्नित्यं वेदोपनिषदां गणैः ॥ १०९
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णावराश्च ये ।
त्वमेव मेघसंघाश्च विद्युतोऽशनिगर्जितम् ॥ ११०
संवत्सरस्त्वमृतवो मासो मासार्धमेव च ।
युगा निमेषाः काष्ठाश्च नक्षत्राणि ग्रहाः कलाः ॥ १११
वृक्षाणां ककुभोऽसि त्वं गिरीणां हिमवान् गिरिः ।
व्याघ्रो मृगाणां पततां तार्क्ष्योऽनन्तश्च भोगिनाम् ॥ ११२
क्षीरोदोऽस्युदधीनां च यन्त्राणां धनुरेव च ।
वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च ॥ ११३
त्वमेव द्वेष इच्छा च रागो मोहः क्षमाक्षमे ।
व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ ॥ ११४

त्वं शरी त्वं गदी चापि खट्वाङ्गी च शरासनी ।
छेत्ता भेत्ता प्रहर्ताऽसि मन्ता नेता सनातनः ॥ ११५
दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च ।
समुद्राः सरितो गङ्गा पर्वताश्च सरांसि च ॥ ११६
लतावल्ल्यस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः ।
द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः ॥ ११७
आदिश्चान्तश्च वेदानां गायत्री प्रणवस्तथा ।
लोहितो हरितो नीलः कृष्णः पीतः सितस्तथा ॥ ११८
कद्रुश्च कपिलश्चैव कपोतो मेचकस्तथा ।
सवर्णश्चाप्यवर्णश्च कर्त्ता हर्त्ता त्वमेव हि ॥ ११९
त्वमिन्द्रश्च यमश्चैव वरुणो धनदोऽनिलः ।
उपप्लवश्चित्रभानुः स्वर्भानुरेव च ॥ १२०
शिक्षाहौत्रं त्रिसौपर्णं यजुषां शतरुद्रियम् ।
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ १२१
तिन्दुको गिरिजो वृक्षो मुद्गं चाखिलजीवनम् ।

आप इस चराचर के स्रष्टा, पाता एवं हन्ता हैं। ब्रह्मवेत्ता लोग आप को ब्रह्म एवं ब्रह्मवेत्ताओं की गति कहते हैं। (१०७)

आप मन की परमज्योति एवं ज्योतियों (नक्षत्रों) को भी (धारक) वायु हैं। ब्रह्मवादी जन आपको हंसवृक्ष पर रहने वाला मधुकर कहते हैं। (१०८)

आप को यजुर्मय, ऋङ्मय एवं साममय कहते हैं। वेद और उपनिषदों के समूहों द्वारा आप स्तुतियों से पढ़े जाते हैं। (१०९)

आपही ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णों से हीन (वर्णावर), मेघसमूह, विद्युत तथा मेघगर्जन हैं। (११०)

आप संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, युग, निमेष, काष्ठा, नक्षत्र, ग्रह तथा कला हैं। (१११)

आप वृक्षों में ककुभ (अर्जुन वृक्ष), पर्वतों में हिमालय, मृगों(पशुओं)में व्याघ्र, पक्षियों में तार्क्ष्य (गरुड़) और सर्पों में अनन्त (शेषनाग) हैं। (११२)

आप समुद्रों में क्षीरसागर, यन्त्रों में धनुष, अस्त्रों में वज्र और व्रतों में सत्य हैं। (११३)

आप ही द्वेष, इच्छा, राग, मोह, क्षमा, अक्षमा, व्यवसाय, धैर्य, लोभ, काम, क्रोध, जय और पराजय हैं। (११४)

आप शरधारी, गदाधारी, खट्वाङ्गी एवं धनुर्धारी हैं। आप छेत्ता, भेत्ता, प्रहर्ता, मन्ता (मनन करने वाले) नेता और सनातन हैं। (११५)

आप दश लक्षणों से संयुक्त धर्म, अर्थ एवं काम तथा समस्त समुद्र, नदियाँ, गङ्गा, पर्वत एवं सरोवर हैं। (११६)

आप समस्त लताएँ, वल्लियाँ, तृण, औषधियाँ पशु, मृग, पक्षी, द्रव्यकर्मगुणारम्भ एवं समय पर पुष्पफलप्रद हैं। (११७)

आप वेदों के आदि और अन्त, गायत्री तथा प्रणव हैं। आप ही लोहित, हरित, नील, कृष्ण, पीत, सित, कद्रु, कपिल, कपोत, मेचक, सवर्ण, अवर्ण, कर्त्ता एवं हर्त्ता हैं। (११८-११९)

आप इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, पवन, उपप्लव, चित्रभानु, स्वर्भानु एवं भानु हैं। (१२०)

आप शिक्षा, हौत्र, त्रिसौपर्ण, यजुर्वेद का शतरुद्रिय, पवित्रों में पवित्र एवं मङ्गलों में मङ्गल हैं। (१२१)

आप तिन्दुक, गिरिज (शिलाजतु !) वृक्ष, मुद्ग, अखिल जीवन, प्राण, सत्त्व, रज, तम तथा प्रतिपत्पति हैं। (१२२)

आप ही प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, उन्मेष,

प्राणाः सत्त्वं रजश्चैव तमश्च प्रतिपत्पतिः ॥ १२२
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।
उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुतं जृम्भितमेव च ॥ १२३
लोहितान्तर्गतो दृष्टिर्महावक्त्रो महोदरः ।
शुचिरोमा हरिश्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः ॥ १२४
गीतवादित्रनृत्यज्ञो गीतवादित्रकप्रियः ।
मत्स्यो जालो जलौकाश्च कालः केलिकला कलिः ॥ १२५
अकालश्च विकालश्च दुष्कालः काल एव च ।
मृत्युश्च मृत्युकर्त्ता च यक्षो यक्षभयंकरः ॥ १२६
संवर्त्तकोऽन्तकश्चैव संवर्त्तकबलाहकः ।
घण्टो घण्टी महाघण्टी चिरी माली च मातलिः ॥ १२७
ब्रह्मकालयमाग्नीना दण्डी मुण्डी त्रिमुण्डधृक् ।
चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चातुर्होत्रप्रवर्त्तकः ॥ १२८
चातुराश्रम्यनेता च चातुर्वर्ण्यकरस्तथा ।
नित्यमक्षप्रियो धूर्त्तो गणाध्यक्षो गणाधिपः ॥ १२९
रक्तमाल्याम्बरधरो गिरिको गिरिकप्रियः ।
शिल्पं च शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्त्तकः ॥ १३०
भगनेत्राङ्कुशश्चण्डः पूष्णो दन्तविनाशनः ।
स्वाहा स्वधा वषट्कारो नमस्कारो नमो नमः ॥ १३१
गूढव्रतो गुह्यतपास्तारकास्तारकामयः ।
धाता विधाता संधाता पृथिव्या धरणोऽपरः ॥ १३२
ब्रह्मा तपश्च सत्यं च व्रतचर्यमथार्जवम् ।
भूतात्मा भूतकृद् भूतिर्भूतभव्यभवोद्भवः ॥ १३३
भूर्भुवः स्वर्ऋतं चैव ध्रुवो दान्तो महेश्वरः ।
दीक्षितोऽदीक्षितः कान्तो दुर्दान्तो दान्तसंभवः ॥ १३४
चन्द्रावर्त्तो युगावर्त्तः संवर्त्तकप्रवर्त्तकः ।
बिन्दुः कामो ह्यणुः स्थूलः कर्णिकारस्रजप्रियः ॥ १३५
नन्दीमुखो भीममुखः सुमुखो दुर्मुखस्तथा ।
हिरण्यगर्भः शकुनिर्महोरगपतिर्विराट् ॥ १३६
अधर्महा महादेवो दण्डधारो गणोत्कटः ।
गोनर्दो गोप्रतारश्च गोवृषेश्वरवाहनः ॥ १३७
त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोमार्गो मार्ग एव च ।

निमेष, क्षुत (छींक) एव जृम्भित हैं । (१२३)

आप लोहितान्तर्गत, दृष्टि, महावक्त्र, महोदर, शुचि रोमा, हरिश्मश्रु, ऊर्ध्वकेश एव चल तथा अचल हैं । (१२४)

आप गीतवादित्रनृत्यज्ञ तथा गीतवादित्रकप्रिय हैं। आप मत्स्य, जाल, जलौका, काल तथा केलि-कला एव कलह हैं । (१२५)

आप अकाल, विकाल, दुष्काल और कालस्वरूप हैं। आप मृत्यु, मृत्युकर्त्ता, यक्ष तथा यक्ष भयङ्कर हैं। (१२६)

आप सवर्तक, अन्तक एव सवर्तकबलाहक हैं। आप घण्ट, घण्टी, महाघण्टी, चिरी, माली और मातलि हैं। (१२७)

आप ब्रह्मा, काल, यम और अग्नि को दण्ड देने वाले मुण्डी एव त्रिमुण्डधारी हैं। आप चतुर्युग, चतुर्वेद एव चातुर्होत्र के प्रवर्त्तक हैं। (१२८)

आप चारों आश्रमों के नेता तथा चारों वर्गों की सृष्टि कर्त्ता हैं। आप नित्य द्यूतप्रिय, धूर्त, गणाध्यक्ष और गणाधिप हैं। (१२९)

आप रक्तमालाम्बरधारी, गिरिक, गिरिकप्रिय, शिल्प, शिल्पिश्रेष्ठ तथा सर्वशिल्पप्रवर्त्तक हैं। (१३०)

आप भगनेत्रनाशक चण्ड एव पूषा के दांतों के विनाशक हैं। आप स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और नमस्कार हैं। आप को बारम्बार नमस्कार है। (१३१)

आप गूढव्रत, आप गुह्यतपा, तारक और तारकामय हैं। आप धाता, विधाता, सधाता और पृथिवी के श्रेष्ठ धारणकर्त्ता हैं। (१३२)

आप ब्रह्मा, तप, सत्य, व्रत-चर्या और आर्जव हैं। आप भूतात्मा, भूतकृद् भूति और भूतभव्यभवोद्भव हैं। (१३३)

आप भू भुव स्व ऋत, ध्रुव, दान्त तथा महेश्वर हैं। आप दीक्षित, अदीक्षित, कान्त, दुर्दान्त और दान्तसम्भव हैं। (१३४)

आप चन्द्रावर्त्त, युगावर्त, सवर्तक और प्रवर्त हैं। आप बिन्दु, काम, अणु, स्थूल तथा कर्णिकार की माला के प्रेमी हैं। (१३५)

आप नन्दीमुख, भीममुख, सुमुख तथा दुर्मुख हैं। आप हिरण्यगर्भ, शकुनि, महासर्पपति तथा विराट् हैं। (१३६)

आप अधर्महन्ता, महादेव, दण्डधार, गणोत्कट, गोनर्द गोप्रतार तथा गोवृषेश्वरवाहन हैं। (१३७)

स्थिरः श्रेष्ठश्च स्थाणुश्च विक्रोशः क्रोश एव च ॥ १३८

दुर्वारणो दुर्विषहो दुःसहो दुरतिक्रमः ।
दुर्द्धर्षो दुष्प्रकाशश्च दुर्दर्शो दुर्जयो जयः ॥ १३९

शशाङ्कानलशीतोष्णः क्षुत्तृष्णा च निरामयः ।
आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिनाशनः ॥ १४०

समूहश्च समूहस्य हन्ता देवः सनातनः ।
शिखण्डी पुण्डरीकाक्षः पुण्डरीकवनालयः ॥ १४१

त्र्यम्बको दण्डधारश्च उग्रदंष्ट्रः कुलान्तकः ।
विषापहः सुरश्रेष्ठः सोमपास्त्वं मरुत्पते ।
अमृताशी जगन्नाथो देवदेव गणेश्वरः ॥ १४२

मधुश्च्युतानां मधुपो ब्रह्मवाक् त्वं घृतच्युत ।
सर्वलोकस्य भोक्ता त्वं सर्वलोकपितामह ॥ १४३

हिरण्यरेताः पुरुषस्त्वमेकः
त्वं स्त्री पुमांस्त्वं हि नपुंसकं च ।
बालो युवा स्थविरो देवदंष्ट्रा
त्वत्तो गिरिर्विश्वकृद् विश्वहर्ता ॥ १४४

त्वं वै धाता विश्वकृतां वरेण्यस्
त्वां पूजयन्ति प्रणताः सदैव ।
चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते भवान् हि
त्वमेव चाग्निः प्रपितामहश्च ।
आराध्य त्वां सरस्वतीं वाग्लभन्ते
अहोरात्रे निमिषोन्मेषकर्ता ॥ १४५

न ब्रह्मा न च गोविन्दः पौराणा ऋषयो न ते ।
माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन शङ्कर ॥ १४६

पुंसां शतसहस्राणि यत्समावृत्य तिष्ठति ।
महतस्तमसः पारे गोप्ता मन्ता भवान् सदा ॥ १४७

यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्त्वस्थाः संयतेन्द्रियाः ।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ॥ १४८

या मूर्तयश्च सूक्ष्मास्ते न शक्या या निदर्शितुम् ।
ताभिर्मां सततं रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ॥ १४९

रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवानघ नमोऽस्तु ते ।

आप त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्द, गोमार्ग तथा मार्ग हैं। आप स्थिर, श्रेष्ठ, स्थाणु, विक्रोश तथा क्रोश हैं। (१३८)

आप दुर्वारण, दुर्विषह, दुस्सह, दुरतिक्रम, दुर्धर्ष, दुष्प्रकाश, दुर्दर्श, दुर्जेय तथा जय हैं। (१३९)

आप शशाङ्क, अनल, शीत, उष्ण, क्षुधा, तृष्णा, निरामय, आधि, व्याधि, व्याधिहा तथा व्याधिनाशक हैं। (१४०)

आप समूह के समूह, हन्ता तथा सनातन देव हैं। आप शिखण्डी, पुण्डरीकाक्ष तथा पुण्डरीकवनालय हैं। (१४१)

हे मरुत्पति! हे देवदेव! आप त्र्यम्बक, दण्डधारी, उग्रदंष्ट्र, कुलान्तक, विषापह, सुरश्रेष्ठ, सोमपायी, अमृताशी, जगन्नाथ तथा गणेश्वर हैं। (१४२)

आप मधुरच्युतों के मधुप, ब्रह्मवाक्, घृतच्युत, सर्वलोकभोक्ता एवं सर्वलोक-पितामह हैं। (१४३)

आप हिरण्यरेता एक पुरुष हैं। आप स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक भी हैं। आप ही हमारे बालक, युवा, वृद्ध, देव दंष्ट्रा, गिरि, विश्वस्रष्टा तथा विश्वहर्ता हैं। (१४४)

आप विश्वनिर्माणकर्त्ताओं में श्रेष्ठ धाता हैं। प्रणत जन सदैव आप की पूजा करते हैं। चन्द्रमा एवं सूर्य आप के नेत्रस्वरूप हैं। आप ही अग्नि एवं प्रपितामह हैं। सरस्वतीस्वरूप आप की आराधना कर लोग वाणी की प्राप्ति करते हैं। आप अहोरात्र में निमेष एवं उन्मेष के कर्ता हैं। (१४५)

हे शङ्कर! ब्रह्मा, गोविन्द तथा प्राचीन ऋषि भी यथार्थतः आप के माहात्म्य को नहीं जान सकते। (१४६)

आप लाखों पुरुषों को समावृत कर स्थित हैं। आप सदा महान् तम से परे रहने वाले गोप्ता एवं मन्ता हैं। (१४७)

विनिद्र, जितश्वास, सत्त्वस्थ एवं संयतेन्द्रिय योगोपासक योगी लोग जिस ज्योति का दर्शन करते हैं उस योगात्मक को नमस्कार है। (१४८)

सूक्ष्म होने के कारण आप की जो मूर्तियाँ प्रदर्शित नहीं की जा सकतीं उनके द्वारा सदा आप मेरी इस प्रकार रक्षा करें जैसे पिता औरस पुत्र की रक्षा करता है। (१४९)

हे अनघ! आप मेरी रक्षा करें। मैं आप का रक्षणीय

भक्तानुकम्पी भगवान् भक्तश्चाहं सदा त्वयि ॥ १५०
जटिने दण्डिने नित्यं लम्बोदरशरीरिणे ।
कमण्डलुनिषङ्गाय तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥ १५१
यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु ।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः ॥ १५२
संभक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते पर्युपस्थिते ।
यः शेते जलमध्यस्थस्तं प्रपद्येऽम्बुशायिनम् ॥ १५३
प्रविश्य वदनं राहोर्यः सोमं पिबते निशि ।
ग्रसत्यर्कं च स्वर्भानू रक्षितस्तव तेजसा ॥ १५४
ये चात्र पतिता गर्भा रुद्रगन्धस्य रक्षणे ।
नमस्तेऽस्तु स्वधा स्वाहा प्राप्नुवन्ति तदद्भुते ॥ १५५
येऽङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम् ।
रक्षन्तु ते हि मां नित्यं ते मामाप्याययन्तु वै ॥ १५६
ये नदीषु समुद्रेषु पर्वतेषु गुहासु च ।
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ॥ १५७
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च ।
हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च ॥ १५८
ये च पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च ।
चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ॥ १५९
रसातलगता ये च ये च तस्मात् परं गताः ।
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यश्च नित्यशः ॥ १६०
येषां न विद्यते संख्या प्रमाणं रूपमेव च ।
असंख्येयगणा रुद्रा नमस्तेभ्योऽस्तु नित्यशः ॥ १६१
प्रसीद मम भद्रं ते तव भावगतस्य च ।
त्वयि मे हृदयं देव त्वयि बुद्धिर्मतिस्त्वयि ॥ १६२
स्तुत्वैवं स महादेवं विरराम द्विजोत्तमः ॥ १६३

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

हूँ। आप को नमस्कार है। आप भक्तानुकम्पी भगवान् हैं एवं मैं सदा आप का भक्त हूँ। (१५०)

जटी, दण्डी, लम्बोदरशरीरी तथा कमण्डलुनिषङ्ग रुद्रात्मा को नमस्कार है। (१५१)

जिनके केशों में मेघ, समस्त अंग की सन्धियों में नदियाँ एवं कुक्षि में चारों सागर हैं उन तोयात्मा को नमस्कार है। (१५२)

युगान्त उपस्थित होने पर समस्त भूतों का भक्षण कर जो जल के मध्य शयन करते हैं उन जलशायी की मैं शरण लेता हूँ। (१५३)

रात्रि में जो आप राहु के मुख में प्रवेश कर सोम को पीते हैं तथा आप के तेज से रक्षित राहु सूर्य को ग्रसित करता है। (१५४)

रुद्रगन्ध की रक्षा में यहाँ जो गर्भ गिरे हैं उन्हें नमस्कार है। उस अद्भुत को ही स्वाहा और स्वधा प्राप्त करते हैं। (१५५)

समस्त देहियों की देह में स्थित अंगुष्ठमात्रा वाले जो पुरुष हैं वे नित्य मेरी रक्षा करें तथा वे मुझे आप्यायित करें। (१५६)

जो नदियों, समुद्रों, पर्वतों, गुहाओं, वृक्षमूलों, गोष्ठों, गहनकान्तारों, चतुष्पथों, गलियों, चत्वरों, सभाओं, हस्त्यश्वरथशालाओं, जीर्णोद्यानों, आलयों, पञ्चभूतों, दिशाओं एवं विदिशाओं में स्थित, चन्द्रार्कमध्यगत, चन्द्र तथा सूर्य की रश्मियों में स्थित, रसातलगत एवं उससे भी परगत हैं उनको नित्य बारम्बार नमस्कार है। (१५७-१६०)

जिनकी संख्या, प्रमाण और रूप नहीं है उन असंख्येय रुद्रगणों को सदा नमस्कार है। (१६१)

आप का भला हो। आप के भाव में स्थित मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों। हे देव ! आप ही में मेरा हृदय, मेरी बुद्धि एवं मति है। (१६२)

इस प्रकार महादेव की स्तुति कर द्विजोत्तम ने विराम किया। (१६३)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

२७

सनत्कुमार उवाच ।

अथैनमब्रवीद् देवस्त्रैलोक्याधिपतिर्भवः ।
आश्वासनकरं चास्य वाक्यविद् वाक्यमुत्तमम् ॥ १

अहो तुष्टोऽस्मि ते राजन् स्तवेनानेन सुव्रत ।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन मत्समीपे वसिष्यसि ॥ २

उषित्वा सुचिरं कालं मम गात्रोद्भवः पुनः ।
असुरो ह्यन्धको नाम भविष्यसि सुरान्तकृत् ॥ ३

हिरण्याक्षगृहे जन्म प्राप्य वृद्धिं गमिष्यसि ।
पूर्वाधर्मेण घोरेण वेदनिन्दाकृतेन च ॥ ४

साभिलाषो जगन्मातुर्भविष्यसि यदा तदा ।
देहं शूलेन हत्वाहं पावयिष्यामि समार्बुदम् ॥ ५

तत्राप्यकल्मषो भूत्वा स्तुत्वा मां भक्तितः पुनः ।
ख्यातो गणाधिपो भूत्वा नाम्ना भृङ्गिरिटिः स्मृतः ॥ ६

मत्सन्निधाने स्थित्वा त्वं ततः सिद्धिं गमिष्यसि ।
वेनप्रोक्तं स्तवमिमं कीर्तयेद् यः शृणोति च ॥ ७

नाशुभं प्राप्नुयात् किंचिद् दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
यथा सर्वेषु देवेषु विशिष्टो भगवाञ्छिवः ॥ ८

तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां वेननिर्मितः ।
यशोराज्यसुखैश्वर्यधनमानाय कीर्तितः ॥ ९

श्रोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः ।
व्याधितो दुःखितो दीनश्चौरराजभयान्वितः ॥ १०

राजकार्यविमुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ।
अनेनैव तु देहेन गणानां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥ ११

तेजसा यशसा चैव युक्तो भवति निर्मलः ।

२७

सनत्कुमार ने कहा—तदनन्तर त्रैलोक्याधिपति वाक्यविद् शंकर देव ने उससे (वेन से) आश्वासनकारी उत्तम वचन कहा— (१)

हे राजन् ! हे सुव्रत ! तुम्हारी इस स्तुति से मैं सन्तुष्ट हूँ। अधिक कहने से क्या लाभ ? तुम मेरे समीप निवास करोगे। (२)

चिरकाल तक निवास करने के उपरान्त पुनः मेरे शरीर से उत्पन्न सुरों के नाशक अन्धक नामक असुर होगे। (३)

वेद-निन्दा करने से उत्पन्न पूर्वकालिक घोर अधर्म के कारण हिरण्याक्ष के गृह में उत्पन्न होकर वृद्धि प्राप्त करोगे। (४)

जब तुम जगज्जननी (पार्वती) की अभिलाषा करोगे उस समय मैं शूल द्वारा तुम्हारी देह की हत्या कर अर्बों वर्षों तक के लिए पवित्र करूँगा। (५)

तदनन्तर वहाँ पुनः पाप-रहित होकर भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करने के उपरान्त तुम भृङ्गिरिटि नामक प्रसिद्ध गणाधिप बनोगे। (६)

तदुपरान्त मेरे निकट रहकर तुम सिद्धि प्राप्त करोगे। वेन द्वारा कथित इस स्तुति का कीर्तन एवं श्रवण करने वाले का कोई अशुभ नहीं होगा एवं वह दीर्घायु प्राप्त करेगा। जैसे सभी देवों में भगवान् शिव विशिष्ट हैं वैसे ही वेन निर्मित यह स्तव सभी स्तवों में श्रेष्ठ है। इसका कीर्तन यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य, धन एवं मान का साधक है। (७-९)

विद्या की कामना रखने वाले को यत्नपूर्वक श्रद्धा से यह स्तव सुनना चाहिए। व्याधिग्रस्त, दुःखित, दीन, चोर या राजा से भयभीत अथवा राजकार्य से विमुक्त पुरुष (इसके द्वारा) महान् भय से मुक्त होकर इसी देह से गणों में श्रेष्ठता प्राप्त कर निर्मल होकर तेज एवं यश से युक्त होता है। इस स्तव का जहाँ पाठ होता है या उस गृह में राक्षस, पिशाच, भूत या विनायकगण

न राक्षसाः पिशाचा वा न भूता न विनायकाः ॥ १२
विघ्नं कुर्युर्गृहे तत्र यत्रायं पठ्यते स्तवः ।
शृणुयाद् या स्तवं नारी अनुज्ञां प्राप्य भर्तृतः ॥ १३
मातृपक्षे पितुः पक्षे पूज्या भवति देववत् ।
शृणुयाद् यः स्तवं दिव्यं कीर्तयेद् वा समाहितः ॥ १४
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्ति नित्यशः ।
मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाऽनुकीर्तितम् ॥ १५
सर्वं संपद्यते तस्य स्तवनस्यानुकीर्त्तनात् ।
मनसा कर्मणा वाचा कृतमेनो विनश्यति ।
वरं वरय भद्रं ते यत्त्वया मनसेप्सितम् ॥ १६

वेन उवाच ।

अस्य लिङ्गस्य माहात्म्यात् तथा लिङ्गस्य दर्शनात् ।
मुक्तोऽहं पातकैः सर्वैस्तव दर्शनतः किल ॥ १७
यदि तुष्टोऽसि मे देव यदि देयो वरो मम ।
देवस्वभक्षणाज्जातं श्वयोनौ तव सेवकम् ॥ १८
एतस्यापि प्रसादं त्वं कर्त्तुमर्हसि शंकर ।
एतस्यापि भयान्मध्ये सरसोऽहं निमज्जितः ॥ १९
देवैर्निवारितः पूर्वं तीर्थेऽस्मिन् स्नानकारणात् ।
अयं कृतोपकारश्च एतदर्थे वृणोम्यहम् ॥ २०
तस्यैतद् वचनं श्रुत्वा तुष्टः प्रोवाच शंकरः ।
एषोऽपि पापनिर्मुक्तो भविष्यति न संशयः ॥ २१
प्रसादान्मे महाबाहो शिवलोकं गमिष्यति ।
तथा स्तवमिमं श्रुत्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २२
कुरुक्षेत्रस्य माहात्म्यं सरसोऽस्य महीपते ।
मम लिङ्गस्य चोत्पत्तिं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ २३

सनत्कुमार उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा भगवान् सर्वलोकनमस्कृतः ।
पश्यतां सर्वलोकानां तत्रैवान्तरधीयत ॥ २४
स च श्वा तत्क्षणादेव स्मृत्वा जन्म पुरातनम् ।
दिव्यमूर्त्तिधरो भूत्वा तं राजानमुपस्थितः ॥ २५
कृत्वा स्नानं ततो वैन्यः पितृदर्शनलालसः ।
स्थाणुतीर्थे कुटीं शून्यां दृष्ट्वा शोकसमन्वितः ॥ २६

विघ्न नहीं करते । पति की आज्ञा प्राप्त कर इस स्तव का श्रवण करने वाली नारी मातृपक्ष एवं पितृपक्ष में देवतुल्य पूज्या हो जाती है। एकाग्रतापूर्वक इस दिव्य स्तव को सुनने या कीर्तन करने वाले पुरुष के सभी कार्य नित्य सिद्ध होते हैं । इस स्तव का कीर्तन करने वाले मनुष्य की मनोभिलषित एवं वाणी से कथित सभी वस्तुएँ पूर्ण होती हैं तथा उसके मन, वाणी और कर्म से किये गये पाप विनष्ट होते हैं। तुम्हारा कल्याण हो, तुम मनोभिलषित वर माँगो। (१०-१६)

वेन ने कहा—इस लिङ्ग के माहात्म्य, उसके दर्शन तथा आप के दर्शन से मैं समस्त पापों से मुक्त हो गया हूँ। (१७)

हे देव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो हे शङ्कर ! अपने इस सेवक पर अनुग्रह करें जो देवस्व का भक्षण करने से कुत्ते की योनि में उत्पन्न हुआ है। पहले स्नानार्थ देवों के मना करने पर भी इसके भय से मैंने सरोवर में निमज्जन किया। इसने मेरा उपकार किया है। इसीलिए मैं इसके लिए वर माँगता हूँ। (१८-२०)

इसके इस वचन को सुन कर सन्तुष्ट शंकर ने कहा—हे महाबाहु ! यह भी मेरी कृपा से निःसन्देह पाप से मुक्त हो जायेगा एवं शिवलोक प्राप्त करेगा। इस स्तव को सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त होगा। हे राजन् ! कुरुक्षेत्र तथा इस सरोवर के माहात्म्य तथा मेरे लिङ्ग की उत्पत्ति का वर्णन सुन कर मनुष्य पाप से विमुक्त होंगे। (२१-२३)

सनत्कुमार ने कहा—ऐसा कह कर सर्व लोक-नमस्कृत भगवान् सभी लोगों के देखते हुए वहीं अन्तर्हित हो गए। (२४)

वह श्वान भी तत्क्षण ही पूर्व जन्म को स्मरण कर दिव्यशरीरधारी होकर उस राजा के सम्मुख उपस्थित हुआ। (२५)

तदनन्तर स्नानोपरान्त पितृदर्शन की लालसा से स्थाणुतीर्थ में आने पर वेन का पुत्र पृथु कुटी को सूनी देख शोकयुक्त हो गया। (२६)

दृष्ट्वा वेनोऽब्रवीद् वाक्यं हर्षेण महताऽन्वित.।
सत्पुत्रेण त्वया वत्स त्रातोऽहं नरकार्णवात् ॥ २७
त्वयाभिषिञ्चितो नित्यं तीर्थस्थपुलिने स्थितः।
अस्य साधोः प्रसादेन स्थाणोर्देवस्य दर्शनात् ॥ २८
मुक्तपापश्च स्वर्लोकं यास्ये यत्र शिवः स्थितः।
इत्येवमुक्त्वा राजानं प्रतिष्ठाप्य महेश्वरम् ॥ २९
स्थाणुतीर्थे ययौ सिद्धिं तेन पुत्रेण तारित ।
स च श्वा परमां सिद्धिं स्थाणुतीर्थप्रभावतः ॥ ३०
विमुक्तः कलुषैः सर्वैर्जगाम भवमन्दिरम्।
राजा पितृऋणैर्मुक्तः परिपाल्य वसुन्धराम् ॥ ३१
पुत्रानुत्पाद्य धर्मेण कृत्वा यज्ञं निरर्गलम्।
दत्त्वाकामांश्चविप्रेभ्यो भुक्त्वा भोगान् पृथग्विधान्॥३२
सुहृदोऽथ ऋणैर्मुक्त्वा कामैः संतर्प्य च स्त्रियः।
अभिषिच्य सुतं राज्ये कुरुक्षेत्रं ययौ नृप. ॥ ३३
तत्र तप्त्वा तपो घोरं पूजयित्वा च शंकरम्।
आत्मेच्छया तनुं त्यक्त्वा प्रयात. परमं पदम् ॥ ३४
एतत्प्रभावं तीर्थस्य स्थाणोर्य. शृणुयान्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ॥ ३५

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

२८

मार्कण्डेय उवाच।
चतुर्मुखानामुत्पत्तिं विस्तरेण ममानघ।
तथा ब्रह्मेश्वराणां च श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते ॥ १
सनत्कुमार उवाच।
शृणु सर्वमशेषेण कथयिष्यामि तेऽनघ।
ब्रह्मणः स्रष्टुकामस्य यद् वृत्त पद्मजन्मनः ॥ २
उत्पन्न एव भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
ससर्ज सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ३

उसे देखकर महान् हर्ष से युक्त वेन ने कहा—हे वत्स! तुम जैसे सत्पुत्र ने नरक समुद्र से मेरी रक्षा की। (२७)

तीर्थ के तट पर रहते हुए तुम्हारे द्वारा नित्य अभिषिञ्चित होने से, इस साधु का अनुग्रह तथा स्थाणु देव का दर्शन करने से पापमुक्त होकर मैं उस स्वर्लोक को जा रहा हूँ जहाँ शिव स्थित हैं। राजा से ऐसा कहने के उपरान्त उस पुत्र द्वारा तारित (वेन ने) स्थाणु तीर्थ में महेश्वर को प्रतिष्ठापित कर सिद्धि प्राप्त की। स्थाणु तीर्थ के प्रभाव से उस श्वान को भी परम सिद्धि प्राप्त हुई एवं सभी कलुषों से विमुक्त होकर वह शिवलोक चला गया। राजा ने पितृऋणों से मुक्त होकर वसुन्धरा का पालन किया तथा धर्मपूर्वक पुत्रों को उत्पन्न कर निर्बाध यज्ञ किया। उन्होंने ब्राह्मणों को मनोभिलषित पदार्थों का दान दिया तथा अनेकविध भोगों का उपभोग किया। (२८-३२)

मित्रों को ऋण से मुक्त कर तथा स्त्रियों के कामनाओं की सन्तुष्टि करने के उपरान्त पुत्र को राज्याभिषिक्त कर राजा कुरुक्षेत्र में चले गये। (३३)

वहाँ घोर तप एवं शङ्कर का पूजन कर स्वेच्छा से शरीर का त्याग कर वे परमपद को प्राप्त किये। (३४)

स्थाणुतीर्थ के इस प्रभाव को सुनने वाला मनुष्य समस्त पापों से विनिर्मुक्त होकर परमगति प्राप्त करता है। (३५)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य मे सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

२८

मार्कण्डेय ने कहा—हे अनघ! चतुर्मुखों तथा ब्रह्मेश्वरों की उत्पत्ति को विस्तार पूर्वक सुनने की मेरी इच्छा है। (१)

सनत्कुमार ने कहा—हे अनघ! सुनो। सृष्टि की कामना वाले पद्मजन्मा ब्रह्मा का पूर्ण वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूँ। (२)

लोक-पितामह भगवान् ब्रह्मा ने उत्पन्न होते ही स्थावर और जङ्गम रूप समस्त भूतों की सृष्टि की। (३)

पुनश्चिन्तयतः सृष्टिं जज्ञे कन्या मनोरमा ।
नीलोत्पलदलश्यामा तनुमध्या सुलोचना ॥ ४
तां दृष्ट्वाभिमतां ब्रह्मा मैथुनायाजुहाव ताम् ।
तेन पापेन महता शिरोऽशीर्यत वेधसः ॥ ५
तेन शीर्णेन स ययौ तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
सान्निहत्यं सरः पुण्यं सर्वपापक्षयावहम् ॥ ६
तत्र पुण्ये स्थाणुतीर्थे ऋषिसिद्धनिषेविते ।
सरस्वत्युत्तरे तीरे प्रतिष्ठाप्य चतुर्मुखम् ॥ ७
आराधयामास तदा धूपैर्गन्धैर्मनोरमैः ।
उपहारैस्तथा हृद्यै रौद्रसूक्तैर्दिने दिने ॥ ८
तस्यैवं भक्तियुक्तस्य शिवपूजापरस्य च ।
स्वयमेवाजगामाथ भगवान् नीललोहितः ॥ ९
तमागतं शिवं दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रणम्य शिरसा भूमौ स्तुतिं तस्य चकार ह ॥ १०

ब्रह्मोवाच ।

नमस्तेऽस्तु महादेव भूतभव्य भवाश्रय ।
नमस्ते स्तुतिनित्याय नमस्त्रैलोक्यपालिने ॥ ११
नमः पवित्रदेहाय सर्वकल्मषनाशिने ।
चराचरगुरो गुह्यगुह्यानां च प्रकाशकृत् ॥ १२
रोगा न यान्ति भिषजैः सर्वरोगविनाशन ।
रौरवाजिनसंवीत वीतशोक नमोऽस्तु ते ॥ १३
वारिकल्लोलसंक्षुब्धमहाबुद्धिविघट्टिने ।
त्वन्नामजापिनो देव न भवन्ति भवाश्रयाः ॥ १४
नमस्ते नित्यनित्याय नमस्त्रैलोक्यपालन ।
शंकरायाप्रमेयाय व्याधीनां शमनाय च ॥ १५
परायापरिमेयाय सर्वभूतप्रियाय च ।
योगेश्वराय देवाय सर्वपापक्षयाय च ॥ १६
नमः स्थाणवे सिद्धाय सिद्धवन्दिस्तुताय च ।
भूतसंसारदुर्गाय विश्वरूपाय ते नमः ॥ १७
फणीन्द्रोक्तमहिम्ने ते फणीन्द्राङ्गदधारिणे ।
फणीन्द्रवरहाराय भास्कराय नमो नमः ॥ १८
एवं स्तुतो महादेवो ब्रह्माणं प्राह शंकरः ।

पुनः उनके सृष्टि की चिन्ता करने पर एक नीलोत्पल दल के समान श्याम, पतले मध्य भाग वाली, सुलोचना, सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई । (४)

उस कमनीय कन्या को देखकर ब्रह्मा ने उसे मैथुन के लिये बुलाया । उस महान् पाप से ब्रह्मा का मस्तक गिर गया । (५)

वे उसी गिरे शिर को लेकर त्रैलोक्य विश्रुत सर्वपाप क्षयकारी सान्निहत्य सर नामक तीर्थ में गये । (६)

ऋषि तथा सिद्धों से निषेवित उस पवित्र स्थाणुतीर्थ में सरस्वती के उत्तरी तीर पर चतुर्मुख (शिवलिङ्ग) की प्रतिष्ठा कि कर प्रतिदिन मनोरम धूप, गन्ध, सुन्दर उपहारों एवं रुद्र-सूक्तों से उसकी आराधना करने लगे । (७-८)

उनके इस प्रकार भक्तिपूर्वक-शिवपूजा परायण होने पर भगवान् नीललोहित स्वयं ही वहाँ आये । (९)

लोकपितामह ब्रह्मा ने आये हुए शिव को देख कर उन्हें शिर से प्रणाम किया एवं उनकी स्तुति करने लगे । (१०)

ब्रह्मा ने कहा—हे भूत, भव्य तथा भव के आश्रय महादेव ! आप को नमस्कार है । स्तुतिनित्य एवं त्रैलोक्य पालक आप को नमस्कार है । (११)

पवित्रदेहवाले एवं सर्वकल्मषनाशक को नमस्कार है । हे चराचर के गुरु ! आप रहस्यों के भी रहस्य के प्रकाशक हैं । (१२)

भिषज्ञों से दूर न होने वाले सभी रोगों के आप विनाशक हैं । हे रुरु मृग के चर्म को धारण करने वाले ! हे शोकरहित ! आप को नमस्कार है । (१३)

हे वारि-कल्लोल-संक्षुब्ध महाबुद्धि के विघट्टनकारी देव ! आप के नाम का जप करने वाले संसार में नहीं पड़ते । (१४)

आप नित्य-नित्य को नमस्कार है । हे त्रैलोक्य पालन ! शंकर, अप्रमेय और व्याधियों के नाशक को नमस्कार है । (१५)

पर, अपरिमेय, सर्वभूतप्रिय, योगेश्वर, देव एवं सर्वपापक्षयकर्ता को नमस्कार है । (१६)

स्थाणु, सिद्ध एवं सिद्धों तथा स्तुति-पाठकों द्वारा स्तुत को नमस्कार है । भूतसंसारदुर्ग एवं विश्वरूप आपको नमस्कार है । (१७)

सर्पराज द्वारा वर्णित महिमावाले, सर्पराज के अङ्गदधारी एवं सर्पराज की माला वाले एवं भास्करस्वरूप आपको नमस्कार है । (१८)

न च मन्युस्त्वया कार्यो भाविन्यर्थे कदाचन ॥ १९
पुरा वराहकल्पे ते यन्मयाऽपहृतं शिरः ।
चतुर्मुखं च तदभून्न कदाचिन्नशिष्यति ॥ २०
अस्मिन् सान्निहिते तीर्थे लिङ्गानि मम भक्तितः ।
प्रतिष्ठाय विमुक्तस्त्वं सर्वपापैर्भविष्यसि ॥ २१
सृष्टिकामेन च पुरा त्वयाऽहं प्रेरितः किल ।
तेनाहं त्वां तथेत्युक्त्वा भूतानां देशवर्तिवत् ॥ २२
दीर्घकालं तपस्तप्त्वा मग्नः संनिहिते स्थितः ।
सुमहान्तं ततः कालं त्वं प्रतीक्षां ममाकरोः ॥ २३
स्रष्टारं सर्वभूतानां मनसा कल्पितं त्वया ।
सोऽब्रवीत् त्वां तदा दृष्ट्वा मां मग्नं तत्र चाम्भसि ॥ २४
यदि मे नाग्रजस्त्वन्यस्ततः स्रक्ष्याम्यहं प्रजाः ।
त्वयैवोक्तश्च नैवास्ति त्वदन्यः पुरुषोऽग्रजः ॥ २५
स्थाणुरेष जले मग्नो विवशः कुरु मद्धितम् ।

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर शङ्कर ने ब्रह्मा से कहा—अवश्यंभावी अर्थ के विषय में तुम्हें शोक नहीं होना चाहिए। (१९)

पहले वाराह कल्प में मैंने आप का जो शिर अपहृत किया था वह चतुर्मुख हो गया। अब वह कभी विनष्ट नहीं होगा। (२०)

इस सान्निहित तीर्थ में भक्तिपूर्वक मेरे लिङ्गों की प्रतिष्ठा करने से तुम सभी पापों से विमुक्त हो जाओगे। (२१)

प्राचीन काल में सृष्टिकामना से तुमने मुझे प्रेरित किया। अतएव ऐसा ही होगा यह कहकर भूतों के देश वर्ती के सदृश (मैं) दीर्घकाल तक तप करने के उपरान्त संनिहित में मग्न होकर स्थित रहा। तदनन्तर तुमने सुदीर्घ काल तक मेरी प्रतीक्षा की। (२२ २३)

तदनन्तर तुमने मन में सर्वभूतों के स्रष्टा का ध्यान किया। मुझे वहाँ जल में मग्न हुआ देखकर उन्होंने तुमसे कहा— (२४)

यदि मेरा कोई दूसरा अग्रज न हो तो मैं प्रजा की सृष्टि करूँगा। तुमने कहा—तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य अग्रज पुरुष नहीं है। (२५)

ये स्थाणु जल में मग्न तथा विवश पड़े हैं। आप मेरा उपकार करें। उन्होंने दक्ष आदि प्रजापतियों तथा

स सर्वभूतानसृजद् दक्षादींश्च प्रजापतीन् ॥ २६
यैरिमं प्रकरोत् सर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
ताः सृष्टमात्राः क्षुधिताः प्रजाः सर्वाः प्रजापतिम् ॥ २७
बिभक्षयिषवो ब्रह्मन् सहसा प्राद्रवंस्तथा ।
स भक्ष्यमाणस्त्राणार्थी पितामहमुपाद्रवत् ॥ २८
अथासां च महावृत्तिः प्रजानां संविधीयताम् ।
दत्तं ताभ्यस्त्वया ह्यन्नं स्थावराणां महौषधीः ॥ २९
जङ्गमानि च भूतानि दुर्बलानि बलीयसाम् ।
विहितान्नाः प्रजाः सर्वाः पुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥ ३०
ततो ववृधिरे सर्वाः प्रीतियुक्ताः परस्परम् ।
भूतग्रामे विवृद्धे तु तुष्टे लोकगुरौ त्वयि ॥ ३१
समुत्तिष्ठन् जलात् तस्मात् प्रजाः संदृष्टवानहम् ।
ततोऽहं ताः प्रजा दृष्ट्वा विहिताः स्वेन तेजसा ॥ ३२
क्रोधेन महता युक्तो लिङ्गमुत्पाट्य चाक्षिपम् ।

समस्त भूतों की सृष्टि की। (२६)

इस प्रकार उन्होंने उनके द्वारा चतुर्विध भूतग्राम को उत्पन्न किया। हे ब्रह्मन् ! सृष्टि होते ही वे सभी प्रजायें क्षुधित होकर प्रजापति को खाने की इच्छा से दौड़ पड़ीं। भक्ष्यमाण होने पर त्राण की कामना से वे पितामह के पास भागे एवं कहे—कि प्रजाओं की महान् वृत्ति का विधान करो। तुमने उन्हें अन्न प्रदान किया। महौषधियाँ स्थावरों की तथा दुर्बल जङ्गम प्राणी बलवानों के अन्न बने। अन्न प्राप्त करने के उपरान्त सभी प्रजायें अपने स्थान को लौट गयीं। (२७ ३०)

तदनन्तर वे सभी परस्पर प्रीतियुक्त होकर बढ़ने लगे। भूतसमूह के बढ़ने एवं आप लोकगुरु के सन्तुष्ट होने पर उस जल से निकल कर मैंने प्रजा को देखा। तदनन्तर अपने तेज से उत्पन्न उन प्रजाओं को देखकर महान् क्रोध से युक्त होकर लिङ्ग को उखाड़ कर फेंक दिया। सर के मध्य क्षिप्त (लिङ्ग) ऊपर स्थित

तत् क्षिप्तं सरसो मध्ये ऊर्ध्वमेव यदा स्थितम् ॥ ३३
तदा प्रभृति लोकेषु स्थाणुरित्येष विश्रुतः ।
सकृद् दर्शनमात्रेण विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः ॥ ३४
प्रयाति मोक्षं परमं यस्मान्नावर्तते पुनः ।
यश्चेह तीर्थे निवसेद् कृष्णाष्टम्यां समाहितः ॥ ३५
स मुक्तः पातकैः सर्वैरगम्यागमनोद्भवैः ।
इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३६
ब्रह्मा विशुद्धपापस्तु पूज्य देवं चतुर्मुखम् ।
लिङ्गानि देवदेवस्य ससृजे सरमध्यतः ॥ ३७
आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं हरिपार्श्वे प्रतिष्ठितम् ।
द्वितीय ब्रह्मसदनं स्वकीये ह्याश्रमे कृतम् ॥ ३८
तस्यैव पूर्वदिग्भागे तृतीयं च प्रतिष्ठितम् ।
चतुर्थं ब्रह्मणा लिङ्गं सरस्वत्यास्तटे कृतम् ॥ ३९
एतानि ब्रह्मतीर्थानि पुण्यानि पावनानि च ।
ये पश्यन्ति निराहारास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ४०
कृते युगे हरेः पार्श्वे त्रेतायां ब्रह्मणाश्रमे ।
द्वापरे तस्य पूर्वेण सरस्वत्यास्तटे कलौ ॥ ४१
एतानि पूजयित्वा च दृष्ट्वा भक्तिसमन्विताः ।
विमुक्ताः कलुषैः सर्वैः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥ ४२
सृष्टिकाले भगवता पूजितस्तु महेश्वरः ।
सरस्वत्युत्तरे तीरे नाम्ना ख्यातश्चतुर्मुखः ॥ ४३
तं प्रणम्य श्रद्दधानो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।
लोलासंकरसंभूतैस्तथा वैभाण्डसंकरैः ॥ ४४
तथैव द्वापरे प्राप्ते स्वाश्रमे पूज्य शंकरम् ।
विमुक्तो राजसैर्भावैर्वर्णसंकरसंभवैः ॥ ४५
ततः कृष्णचतुर्दश्यां पूजयित्वा तु मानवः ।
विमुक्तः पातकैः सर्वैरभोज्यस्यान्नसंभवैः ॥ ४६
कलिकाले तु संप्राप्ते वसिष्ठाश्रममास्थितः ।
चतुर्मुखं स्थापयित्वा ययौ सिद्धिमनुत्तमाम् ॥ ४७

हो गया। (३१-३३)

तभी से यह लोक मे स्थाणु नाम से विख्यात हुआ। एकबार भी इसका दर्शन करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर परम मोक्ष को प्राप्त करता है जहाँ से वह पुन आवर्त्तित नहीं होता। कृष्णाष्टमी के दिन समाहित चित्त से इस तीर्थ में निवास करने वाला अगम्यागमन से होने वाले सभी पापों से मुक्त हो जाता है। ऐसा कहकर भगवान् महादेव वहीं अन्तर्हित हो गये। (३४-३६)

पाप से विशुद्ध ब्रह्मा ने भी चतुर्मुख महादेव का पूजन कर सर के मध्य देवाधिदेव के लिङ्गों की सृष्टि की। (३७)

प्रथम उन्होंने हरि के पार्श्व में ब्रह्मसर को प्रतिष्ठित किया एवं तदनन्तर अपने आश्रम में ब्रह्मसदन का निर्माण किया। (३८)

उसी के पूर्व भाग में ब्रह्मा ने तृतीय लिङ्ग प्रतिष्ठित किया एवं सरस्वती नदी के तीर पर उन्होंने चतुर्थ लिङ्ग प्रतिष्ठित किया। (३९)

निराहार रहकर इन पवित्र और पापनाशक ब्रह्मतीर्थों का दर्शन करने वाले व्यक्ति परम गति प्राप्त करते हैं। (४०)

कृतयुग में हरि के पार्श्व में, त्रेता में ब्रह्मा के आश्रम मे, द्वापर मे उसके पूर्व तथा कलि में सरस्वती के तट पर स्थित लिङ्गों का भक्ति-पूर्वक पूजन एवं दर्शन करने से मनुष्य सभी पापों से विमुक्त होकर परम गति प्राप्त करते हैं। (४१-४२)

सृष्टि के समय सरस्वती के उत्तरी तट पर भगवान् ब्रह्मा से पूजित महेश्वर चतुर्मुख नाम से प्रसिद्ध हुये। (४३)

श्रद्धापूर्वक इनको प्रणाम कर मनुष्य लोलासाङ्कर्य(?) तथा वैभाण्डसाङ्कर्य(?)से उत्पन्न सभी पापों से मुक्त होता है (४४)

इसी प्रकार द्वापर आने पर अपने आश्रम में शङ्कर का पूजन कर ब्रह्मा वर्णसाङ्कर्य से उत्पन्न होने वाले राजस भावों से विमुक्त हुये। (४५)

कृष्ण चतुर्दशी में यहाँ पूजन करने से मनुष्य अभोज्य के अन्न खाने से होने वाले समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है। (४६)

कलिकाल आने पर वसिष्ठाश्रम में स्थित ब्रह्मा ने चतुर्मुख की स्थापना कर श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त की। (४७)

यहाँ भी जो लोग निराहार, श्रद्धायुक्त और जितेन्द्रिय होकर महादेव की पूजा करते हैं वे परम पद को प्राप्त करते

तत्रापि ये निराहाराः श्रद्धाना जितेन्द्रियाः ।
पूजयन्ति महादेवं ते यान्ति परमं पदम् ॥ ४८

इत्येतत् स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं कीर्तितं तव ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥ ४९

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

समाप्तं सरोमाहात्म्यम् ।

हैं। (४८)

यह स्थाणु तीर्थ का माहात्म्य मैंने तुझे बताया। इसे सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (४९)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

सरोमाहात्म्य समाप्त ।

२४

देवदेव उवाच ।

एवं पृथूदको देवाः पुण्यः पापभयापहः ।
तं गच्छध्वं महातीर्थं यावत् संनिधियोधितम् ॥ १

यदा मृगशिरोऋक्षे शशिसूर्यौ बृहस्पतिः ।
तिष्ठन्ति सा तिथिः पुण्या त्वक्षया परिगीयते ॥ २

तं गच्छध्वं सुरश्रेष्ठा यत्र प्राची सरस्वती ।
पितॄनाराधयध्वं हि तत्र श्राद्धेन भक्तितः ॥ ३

ततो मुरारिवचनं श्रुत्वा देवाः सवासवाः ।
समाजग्मुः कुरुक्षेत्रे पुण्यतीर्थं पृथूदकम् ॥ ४

तत्र स्नात्वा सुराः सर्वे बृहस्पतिमचोदयन् ।
विशस्व भगवन् ऋक्षमिमं मृगशिरं कुरु ।
पुण्यां तिथिं पापहरां तव कालोऽयमागतः ॥ ५

प्रवर्तते रविस्तत्र चन्द्रमाऽपि विशत्यसौ ।
त्वदायत्तं गुरो कार्यं सुराणां तत् कुरुष्व च ॥ ६

इत्येवमुक्तो देवैस्तु देवाचार्योऽब्रवीदिदम् ।
यदि वर्षाधिपोऽहं स्यां ततो यास्यामि देवताः ।
बाढमूचुः सुराः सर्वे ततोऽसौ प्राक्रमन्मृगम् ॥ ७

आषाढे मासि मार्गर्क्षे चन्द्रक्षयतिथिर्हि या ।
तस्यां पुरंदरः प्रीतः पिण्डं पितृषु भक्तितः ॥ ८

प्रादात् तिलमधून्मिश्रं हविष्यान्नं कुरुष्वथ ।
ततः प्रीतास्तु पितरस्तां प्राहुस्तनयां निजाम् ॥ ९

मेनां देवाश्च शैलाय हिमयुक्ताय वै ददुः ।
तां मेनां हिमवाँल्लब्ध्वा प्रसादाद् दैवतेष्वथ ।
प्रीतिमानभवत्तासौ रराम च यथेच्छया ॥ १०

२४

देवदेव ने कहा—हे देवताओ ! इस प्रकार पृथूदक पवित्र तथा पाप-भय का नाशक है। तुमलोग सन्निहित सर तक स्नान होने वाले महातीर्थ में जाओ। (१)

जब चन्द्रमा, सूर्य एवं बृहस्पति मृगशिरा नक्षत्र में स्थित होते हैं उस पवित्र तिथि को अक्षया तिथि कहा जाता है ! (२)

हे सुरश्रेष्ठो ! जहाँ सरस्वती नदी पूर्व दिशा में बहती है वहाँ जाकर भक्ति से श्राद्ध करके पितरों की आराधना करो। (३)

तदनन्तर मुरारि का वचन सुनकर इन्द्र के सहित सभी देवता कुरुक्षेत्र में स्थित पृथूदक नामक पुण्य-तीर्थ में गये। (४)

वहाँ स्नान करने के उपरान्त सभी देवों ने बृहस्पति से कहा—हे भगवन् ! इस मृगशिरा नक्षत्र में प्रवेश कर आप पवित्र पापहरा तिथि का निर्माण करें। यह आपका समय आ गया है। (५)

सूर्य वहाँ स्थित हैं तथा चन्द्रमा भी उसमें प्रवेश कर रहे हैं। हे गुरु ! देवताओं का कार्य आप के अधीन है। आप उसे पूर्ण करें। (६)

देवों के ऐसा कहने पर देवों के गुरु बृहस्पति ने यह कहा-हे देवो ! यदि मैं वर्षाधिप बनूँ तो जाऊँगा। सभी देवों ने कहा—ठीक है। तब उन्होंने मृगशिरा नक्षत्र में संक्रमण किया। (७)

आषाढ़ मास की मृगशिरा नक्षत्र में चन्द्रक्षय (अमावास्या) तिथि के उपस्थित होने पर पुरन्दर ने प्रसन्न होकर कुरुक्षेत्र में भक्ति से पितरों को तिल-मधु मिश्रित हविष्यान्न का पिण्ड प्रदान किया। तदनन्तर पितरों ने देवों को अपनी मेना नाम की कन्या को दिया। देवताओं ने उसे हिमालय को दे दिया। देवों के अनुग्रह से उस मेना को प्राप्त कर वे हिमवान् प्रसन्न हो गये और यथेच्छ रमण करने लगे। (८-१०)

ततो हिमाद्रिः पितृकन्यया समं
समर्पयन् वै विषयान् यथेष्टम् ।
अजीजनत् सा तनयाश्च तिस्रो
रूपादियुक्ताः सुरयोषितोपमाः ॥ ११

इति श्रीवामनपुराणे चतुर्विंशोऽध्याय ॥२४॥

२५

पुलस्त्य उवाच ।
मेनायाः कन्यकास्तिस्रो जाता रूपगुणान्विताः ।
सुनाम इति च ख्यातश्चतुर्थस्तनयोऽभवत् ॥ १
रक्ताङ्गी रक्तनेत्रा च रक्ताम्बरविभूषिता ।
रागिणी नाम संजाता ज्येष्ठा मेनासुता मुने ॥ २
शुभाङ्गी पद्मपत्राक्षी नीलकुञ्चितमूर्धजा ।
श्वेतमाल्याम्बरधरा कुटिला नाम चापरा ॥ ३
नीलाञ्जनचयप्रख्या नीलेन्दीवरलोचना ।
रूपेणानुपमा काली जघन्या मेनकासुता ॥ ४
जातास्ताः कन्यकास्तिस्रः षडब्दात् परतो मुने ।
कर्तुं तपः प्रयातास्ता देवास्ता ददृशुः शुभाः ॥ ५
ततो दिवाकरैः सर्वैर्वसुभिश्च तपस्विनी ।
कुटिला ब्रह्मलोकं तु नीता शशिकरप्रभा ॥ ६
अथोचुर्देवताः सर्वाः किं त्वियं जनयिष्यति ।
पुत्रं महिषहन्तारं ब्रह्मन् व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७
ततोऽब्रवीत् सुरपतिर्नेयं शक्ता तपस्विनी ।

तदनन्तर पितरों की कन्या मेना के साथ हिमालय यथेष्ट विषय भोग करने लगे। उस मेना ने भी सुरनारियों के सदृश अतिरूपवती तीन कन्याओं को उत्पन्न किया। (११)

श्रीवामनपुराण में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

२५

पुलस्त्य ने कहा—मेना को रूपगुणसम्पन्न तीन कन्यायें उत्पन्न हुईं और सुनाभ नाम से विख्यात चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ। (१)

हे मुनि! लाल अङ्गों वाली, लाल नेत्रों वाली तथा लाल वस्त्रों से सुशोभित रागिणी नाम की मेना की ज्येष्ठ कन्या उत्पन्न हुई। (२)

शुभाङ्गी, कमल-दल के समान नेत्रों वाली नीले एवं घुंघराले केशों वाली तथा श्वेत माला एवं वस्त्र धारण करने वाली दूसरी कुटिला नाम की कन्या थी। (३)

मेना की छोटी कन्या का नाम काली था। उसका रँग नील अञ्जन पुञ्ज के समान तथा नेत्र नील कमल के समान थे। वह अनुपम रूपवती थी। (४)

हे मुनि! वे तीनों कन्यायें जन्म से ६ वर्ष के पश्चात् तपस्या करने चलीं गयीं। देवताओं ने उन सुन्दरी कन्याओं को देखा। (५)

उसके बाद सभी आदित्य तथा वसुगण चन्द्र-किरण के सदृश प्रभा वाली तपस्विनी कुटिला को ब्रह्मलोक में ले गये। (६)

तदनन्तर सभी देवताओं ने ब्रह्मा से कहा—हे ब्रह्मन्! आप बतलायें कि क्या यह महिषहन्ता पुत्र को उत्पन्न करेगी? (७)

तब सुरपति ने कहा—यह तपस्विनी शर्व शिव का तेज नहीं

शार्वं धारयितुं तेजो वराकी मुच्यतां त्वियम् ॥ ८
ततस्तु कुटिला क्रुद्धा ब्रह्माणं प्राह नारद ।
तथा यतिष्ये भगवन् यथा शार्वं सुदुर्द्धरम् ॥ ९
धारयिष्याम्यहं तेजस्तथैव शृणु सत्तम ।
तपसाहं सुतप्तेन समाराध्य जनार्दनम् ॥ १०
यथा हरस्य मूर्धानं नमयिष्ये पितामह ।
तथा देव करिष्यामि सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ ११

पुलस्त्य उवाच ।

ततः पितामहः क्रुद्धः कुटिलां प्राह दारुणाम् ।
भगवानादिकृद् ब्रह्मा सर्वेशोऽपि महामुने ॥ १२

ब्रह्मोवाच ।

यस्मान्मद्वचनं पापे न क्षान्तं कुटिले त्वया ।
तस्मान्मच्छापनिर्दग्धा सर्वा आपो भविष्यसि ॥ १३
इत्येवं ब्रह्मणा शप्ता हिमवद्दुहिता मुने ।
आपोमयी ब्रह्मलोकं प्लावयामास वेगिनी ॥ १४
तामुद्वृत्तजलां दृष्ट्वा प्रबबन्ध पितामहः ।
ऋक्सामाथर्वयजुभिर्वाङ्मयैर्बन्धनैर्दृढम् ॥ १५
सा बद्धा संस्थिता ब्रह्मन् तत्रैव गिरिकन्यका ।
आपोमयी प्लावयन्ती ब्रह्मणो विमला जटाः ॥ १६
या सा रागवती नाम सापि नीता सुरैर्दिवम् ।
ब्रह्मणे तां निवेद्यैवं तामप्याह प्रजापतिः ॥ १७
सापि क्रुद्धाऽब्रवीन्नूनं तथा तप्स्ये महत्तपः ।
यथा मन्नामसंयुक्तो महिषघ्नो भविष्यति ॥ १८
तामप्यथाशपद् ब्रह्मा सन्ध्या पापे भविष्यसि ।
या मद्वाक्यमलङ्घ्यं वै सुरैर्लङ्घयसे बलात् ॥ १९
सापि जाता मुनिश्रेष्ठ सन्ध्या रागवती ततः ।
प्रतीच्छत् कृत्तिकायोगं शैलेया विग्रहं दृढम् ॥ २०
ततो गते कन्यके द्वे ज्ञात्वा मेना तपस्विनी ।
तपसो वारयामास उमेत्येवाब्रवीच्च सा ॥ २१
तदेव माता नामास्याश्चक्रे पितृसुता शुभा ।

धारण कर सकती। इस बेचारी को छोड़ दो। (८)

हे नारद! तदनन्तर क्रोधित होकर कुटिला ने ब्रह्मा से कहा—हे भगवन्! हे सत्तम! सुनिये। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगी जिससे शङ्कर के सुदुर्द्धर तेज को धारण कर सकूँ। हे पितामह! मैं सत्य कहती हूँ कि घोर तप द्वारा जनार्दन की ऐसी आराधना करूँगी जिससे शङ्कर का मस्तक झुका दूँगी। (९-११)

पुलस्त्य ने कहा—हे महामुनि! तदनन्तर क्रुद्ध होकर सर्वेश, पितामह, आदिकर्ता, भगवान् ब्रह्मा ने दारुण कुटिला से कहा— (१२)

ब्रह्मा ने कहा—हे पापिनी कुटिले! क्योंकि तुमने मेरे वचन को सहन नहीं किया अतः मेरे शाप से निर्दग्ध होकर तुम पूर्ण रूप से जल हो जाओगी। (१३)

हे मुनि! इस प्रकार ब्रह्मा से शापित हिमालय की पुत्री जलमयी होकर वेगपूर्वक ब्रह्मलोक को प्लावित करने लगी। (१४)

पितामह ने उसके उमड़कर बह रहे जल-प्रवाह को देखकर ऋक्, साम, अथर्व और यजुरूप वाङ्मय के बन्धन द्वारा उसे दृढ़ता पूर्वक बाँध दिया। (१५)

हे ब्रह्मन्! आपोमयी वह गिरिकन्यका बद्ध होकर ब्रह्मा की विमल जटा को आप्लावित करती हुई वहीं रहने लगी। (१६)

देवतागण रागवती को भी स्वर्ग में ले गये एवं ब्रह्मा को उसे निवेदित किया। उससे भी ब्रह्मा ने उसी प्रकार कहा। (१७)

उसने भी क्रुद्ध होकर कहा—मैं निश्चय ही ऐसा महान् तप करूँगी जिससे महिष को मारने वाला मेरे नाम से संयुक्त होगा। (१८)

ब्रह्मा ने उसे भी शाप दिया—हे पापिनी! देवों से अनुल्लङ्घनीय मेरे वचन का अहंकारवश उल्लङ्घन करने से तुम सन्ध्या हो जाओगी। (१९)

हे मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर वह शैल-पुत्री रागवती भी सन्ध्या होकर दृढ़विग्रह कृत्तिकायोग की प्रतीक्षा करने लगी। (२०)

तदनन्तर दो कन्याओं को गई जानकर तपस्विनी मेना ने (तृतीय कन्या काली को) तप से रोका। उसने 'उ' 'मा' ऐसा कहा। (२१)

उमेत्येव हि कन्यायाः सा जगाम तपोवनम् ॥ २२
ततः सा मनसा देवं शूलपाणिं वृषध्वजम् ।
रुद्रं चेतसि संधाय तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ २३
ततो ब्रह्माऽब्रवीद् देवान् गच्छध्वं हिमवत्सुताम् ।
इहानयध्वं तां कालीं तपस्यन्तीं हिमालये ॥ २४
ततो देवाः समाजग्मुर्ददृशुः शैलनन्दिनीम् ।
तेजसा विजितास्तस्या न शेकुरुपसर्पितुम् ॥ २५
इन्द्रोऽमरगणैः सार्द्धं निर्द्धूतस्तेजसा तया ।
ब्रह्मणोऽधिकतेजोऽस्या विनिवेद्य प्रतिष्ठितः ॥ २६
ततो ब्रह्माऽब्रवीत् सा हि ध्रुवं शंकरवल्लभा ।
यूयं यत्तेजसा नूनं विक्षिप्तास्तु हतप्रभाः ॥ २७
तस्माद् भजध्वं स्वं स्वं हि स्थानं भो विगतज्वराः ।
सतारकं हि महिषं विदध्वं निहतं रणे ॥ २८
इत्येवमुक्ता देवेन ब्रह्मणा सेन्द्रकाः सुराः ।
जग्मुः स्वान्येव धिष्ण्यानि सद्यो वै विगतज्वराः ॥ २९
उमामपि तपस्यन्तीं हिमवान् पर्वतेश्वरः ।
निवर्त्य तपसस्तस्मात् सदारो ह्यनयद्गृहान् ॥ ३०
देवोऽप्याश्रित्य तद्रौद्रं व्रतं नाम्ना निराश्रयम् ।
विचचार महाशैलान् मेरुप्राग्र्यान् महामतिः ॥ ३१
स कदाचिन्महाशैलं हिमवन्तं समागतः ।
तेनार्चितः श्रद्धयाऽसौ तां रात्रिमवसद्धरः ॥ ३२
द्वितीयेऽह्नि गिरीशेन महादेवो निमन्त्रितः ।
इहैव तिष्ठस्व विभो तपःसाधनकारणात् ॥ ३३
इत्येवमुक्तो गिरिणा हरश्चक्रे मतिं च ताम् ।
तस्थावाश्रममाश्रित्य त्यक्त्वा वासं निराश्रयम् ॥ ३४
वसतोऽप्याश्रमे तस्य देवदेवस्य शूलिनः ।
तं देशमगमत् काली गिरिराजसुता शुभा ॥ ३५
तामागतां हरो दृष्ट्वा भूयो जातां प्रियां सतीम् ।
स्वागतेनाभिसंपूज्य तस्थौ योगरतो हरः ॥ ३६

पितरों की पुत्री, कल्याणमयी, माता (मेना) ने कन्या का वही 'उमा' यह नाम रखा। वह भी तपोवन में चली गयी। (२२)

तदनन्तर उसने मन में शूलपाणि वृषध्वज रुद्र को रखकर घोर तप किया। (२३)

तदुपरान्त ब्रह्मा ने देवताओं से कहा—तुम लोग हिमालय पर तप कर रही हिमालय की पुत्री काली के पास जाओ और उसे यहाँ लाओ। (२४)

तदनन्तर देवता आये और उन्होंने शैलनन्दिनी को देखा। किन्तु उसके तेज से विजित हो जाने से वे निकट न जा सके। (२५)

देवताओं के साथ इन्द्र उसके तेज से धूमिल हो गये। वे ब्रह्मा से उसके तेज की अधिकता का निवेदन कर खड़े हो गये। (२६)

तदनन्तर ब्रह्मा ने कहा—यह अवश्य ही शङ्कर की पत्नी होगी। क्योंकि उसके तेज से तुम लोग विक्षिप्त और हतप्रभ हो गये हो। (२७)

अत. हे देवो ! तुम लोग चिन्ता छोड़कर अपने-अपने स्थान को जाओ। युद्ध में तारक के साथ महिष को मारा गया समझो। (२८)

महादेव के ऐसा कहने पर इन्द्र सहित सभी देवता तुरन्त निश्चिन्त होकर अपने-अपने स्थान पर चले गये। (२९)

तप करती हुई उमा को भी उस तप से निवर्तित कर पत्नी-सहित हिमवान् घर ले आये। (३०)

महाज्ञानी महादेव भी निराश्रय नामक उस भयंकर व्रत का अवलम्बन कर मेरु आदि महाशैलों पर विचरण करने लगे। (३१)

एक समय वे महाशैल हिमाचल पर गये। उस (हिमालय) से श्रद्धापूर्वक पूजित होने पर उन्होंने उस रात वहीं निवास किया। (३२)

दूसरे दिन गिरिराज ने महादेव को निमन्त्रित कर कहा—"हे विभु ! तपस्या-हेतु आप यहीं रहें।" (३३)

पर्वत के ऐसा कहने पर हर ने भी वही विचार किया एवं निराश्रयवास छोड़कर आश्रम में रहने लगे। (३४)

देवाधि देव त्रिशूलधारी शङ्कर के आश्रम में रहने पर गिरिराज पुत्री कल्याणी काली उस स्थान पर गयीं। (३५)

पुन उत्पन्न प्रिया सती को आई हुई देख हर ने स्वागत द्वारा उनका सत्कार किया और पुनः योगरत हो गये। (३६)

उस सुन्दराङ्गी ने वहाँ जाने के उपरान्त हाथ

सा चाभ्येत्य वरारोहा कृताञ्जलिपरिग्रहा ।
ववन्दे चरणौ शैवौ सखीभिः सह भामिनी ॥ ३७
ततस्तु सुचिराच्छर्वः समीक्ष्य गिरिकन्यकाम् ।
न युक्तं चैवमुक्त्वाऽथ सगणोऽन्तर्दधे ततः ॥ ३८
साऽपि शर्ववचो रौद्रं श्रुत्वा ज्ञानसमन्विता ।
अन्तर्दुःखेन दह्यन्ती पितरं प्राह पार्वती ॥ ३९
तात यास्ये महारण्ये तप्तुं घोरं महत्तपः ।
आराधनाय देवस्य शंकरस्य पिनाकिनः ॥ ४०
तथेत्युक्तं वचः पित्रा पादे तस्यैव विस्तृते ।
ललिताख्या तपस्तेपे हराराधनकाम्यया ॥ ४१
तस्याः सख्यस्तदा देव्याः परिचर्यां तु कुर्वते ।
समित्कुशफलं चापि मूलाहरणमादितः ॥ ४२
विनोदनार्थं पार्वत्या मृन्मयः शूलधृग् हरः ।
कृतस्तु तेजसा युक्तो भद्रमस्त्विति साऽब्रवीत् ॥ ४३
पूजां करोति तस्यैव तं पश्यति मुहुर्मुहुः ।

जोड़ कर सखियों के साथ शिव के दोनों चरणों में प्रणाम किया । (३७)

तदनन्तर गिरिकन्या को देर तक देखकर 'यह उचित नहीं है' ऐसा कहने के उपरान्त शङ्कर गणों के साथ अन्तर्हित हो गये । (३८)

शङ्कर के भयङ्कर वचन को सुनकर अन्तर्दुःख से जलती हुई ज्ञानसमन्वित उन पार्वती ने भी पिता से कहा— (३९)

हे तात ! पिनाकधारी देव शङ्कर की आराधना-हेतु मैं महारण्य में घोर तथा महान् तप करने जाऊँगी । (४०)

पिता ने 'ठीक है' यह कहा । तदनन्तर हर के आराधना की कामना से ललिता (पार्वती) उसी (हिमालय) की विस्तृत तलहटी में तप करने लगीं । (४१)

उस समय उनकी सखियाँ समिधा, कुश, फल मूलादि लाकर देवी की सेवा करने लगीं । (४२)

(उन सखियों ने) पार्वती के विनोदार्थ मिट्टी के तेजस्वी त्रिशूलधारी शङ्कर का निर्माण किया । पार्वती ने भी 'ठीक है' कहा— (४३)

वे उसी की पूजा करती एवं पुनः पुनः उसे देखती रहती थीं । तदनन्तर उनकी श्रद्धा से त्रिपुरान्तकारी शंकर

ततोऽस्यास्तुष्टिमगमच्छ्रद्धया त्रिपुरान्तकृत् ॥ ४४
बटुरूपं समाधाय आषाढी मुञ्जमेखली ।
यज्ञोपवीती छत्री च मृगाजिनधरस्तथा ॥ ४५
कमण्डलुव्यग्रकरो भस्मारुणितविग्रहः ।
प्रत्याश्रमं पर्यटन् स तं काल्याश्रममागतः ॥ ४६
तमुत्थाय तदा काली सखीभिः सह नारद ।
पूजयित्वा यथान्यायं पर्यपृच्छदिदं ततः ॥ ४७

उमोवाच ।

कस्मादागम्यते भिक्षो कुत्र स्थाने तवाश्रमः ।
क्व च त्वं प्रतिगन्तासि मम शीघ्रं निवेदय ॥ ४८

भिक्षुरुवाच ।

ममाश्रमपदं बाले वाराणस्यां शुचिव्रते ।
अथातस्तीर्थयात्रायां गमिष्यामि पृथूदकम् ॥ ४९

देव्युवाच ।

किं पुण्यं तत्र विप्रेन्द्र लब्धासि त्वं पृथूदके ।

सन्तुष्ट हो गये । (४४)

तदुपरान्त वे पालाशदण्ड, मुञ्ज की मेखला, यज्ञोपवीत, छत्र एवं मृगचर्म धारण कर बटु के रूप में हाथ में कमण्डलु लिए एवं शरीर में भस्म लगाये हुए प्रत्येक आश्रम में भ्रमण करते हुए काली के आश्रम में पहुँचे । (४५-४६)

हे नारद ! तदनन्तर सखियों-सहित काली ने उठकर उनका यथोचित पूजन किया एवं तदनन्तर उनसे यह पूछा । (४७)

उमा ने कहा—हे भिक्षु ! आप शीघ्र मुझे बतलाएँ कि आप कहाँ से आ रहे हैं ? आप का आश्रम कहाँ है एवं आप कहाँ जायेंगे ? (४८)

भिक्षु ने कहा—"हे पवित्रव्रतों वाली बाले ! वाराणसी में मेरा आश्रम है । मैं तीर्थयात्रा कर रहा हूँ । यहाँ से मैं पृथूदक में जाऊँगा । (४९)

देवी ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! पृथूदक में तुम्हें कौन सा पुण्य उपलब्ध होगा ? मार्ग में किन-किन तीर्थों में

पथि स्नानेन च फलं केषु किं लब्धवानसि ॥ ५०

भिक्षुरुवाच ।

मया स्नानं प्रयागे तु कृत प्रथममेव हि ।
ततोऽथ तीर्थे कुब्जाम्रे जयन्ते चण्डिकेश्वरे ॥ ५१
बन्धुवृन्दे च कर्कन्धे तीर्थे कनखले तथा ।
सरस्वत्यामग्निकुण्डे भद्रायां तु त्रिविष्टपे ॥ ५२
कोनटे कोटितीर्थे च कुब्जके च कृशोदरि ।
निष्कामेन कृत स्नान ततोऽभ्यागा तवाश्रमम् ॥ ५३
इहस्थां त्वा समाभाष्य गमिष्यामि पृथूदकम् ।
पृच्छामि यदहं त्वां वै तत्र न क्रोद्धुमर्हसि ॥ ५४
अहं यत्तपसात्मानं शोषयामि कृशोदरि ।
बाल्येऽपि संयततनुस्तत्तु श्लाघ्यं द्विजन्मनाम् ॥ ५५
किमर्थं भवती रौद्र प्रथमे वयसि स्थिता ।
तप. समाश्रिता भीरु संशय. प्रतिभाति मे ॥ ५६
प्रथमे वयसि स्त्रीणां सह भर्त्रा विलासिनि ।
सुभोगा भोगिताः काले व्रजन्ति स्थिरयौवने ॥ ५७
तपसा वाञ्छयन्तीह गिरिजे सचराचराः ।
रूपाभिजनमैश्वर्यं तच्च ते विद्यते बहु ॥ ५८
तत् किमर्थमपास्यैवानलङ्काराञ् जटा धृताः ।
चीनांशुकं परित्यज्य किं त्वं वल्कलधारिणी ॥ ५९

पुलस्त्य उवाच ।

ततस्तु तपसा वृद्धा देव्याः सोमप्रभा सखी ।
भिक्षवे कथयामास यथावत् सा हि नारद ॥ ६०

सोमप्रभोवाच ।

तपश्चर्या द्विजश्रेष्ठ पार्वत्या येन हेतुना ।
त शृणुष्व त्वियं काली हर भर्तारमिच्छति ॥ ६१

पुलस्त्य उवाच ।

सोमप्रभाया वचन श्रुत्वा संकम्प्य वै शिरः ।
विहस्य च महाहास भिक्षुराह वचस्त्विदम् ॥ ६२

भिक्षुरुवाच ।

वदामि ते पार्वति वाक्यमेवं
केन प्रदत्ता तव बुद्धिरेषा ।
कथं कर. पल्लवकोमलस्ते
समेष्यते शार्वकरं ससर्पम् ॥ ६३

स्नान करने से तुम्हें कौन कौन फल प्राप्त हुआ ? (५०)

भिक्षु ने कहा—हे कृशोदरि ! मैंने पहले प्रयाग में स्नान किया है, तदनन्तर कुब्जाम्र, जयन्त, चण्डिकेश्वर बन्धुवृन्द, कर्कन्ध, कनखलतीर्थ, सरस्वती, अग्निकुण्ड, भद्रा, त्रिविष्टप, कोनट कोटितीर्थ और कुब्जक में निष्काम भाव से स्नान कर मैं तुम्हारे आश्रम में आया हूँ। (५१-५३)

यहाँ स्थित तुमसे वार्ता करने के पश्चात् मैं पृथूदक तीर्थ में जाऊँगा। मैं तुमसे जो कुछ पूछता हूँ उस पर क्रोध न करना। (५४)

हे कृशोदरि ! बाल्यावस्था में भी संयत शरीर होकर मैं जो तपस्या से अपने को सुखा रहा हूँ वह तो ब्राह्मणों के लिए प्रशंसनीय ही है। (५५)

परन्तु, हे भीरु ! इस प्रथमावस्था में ही तुम क्यों भयङ्कर तप कर रही हो ? (इसमें मुझे) संशय हो रहा है। (५६)

हे स्थिरयौवने ! हे विलासिनि ! प्रथमावस्था के काल में पति के साथ स्त्रियाँ सुन्दर भोगों का भोग करती हैं। (५७)

हे गिरिजे ! चराचर जीव तपस्या से संसार में रूप, सत्कुल और ऐश्वर्य चाहते हैं, वे सभी तुम्हें प्रचुर-मात्रा में प्राप्त हैं। (५८)

तो इन अलङ्कारों को छोड़कर तुमने जटा क्यों धारण किया है ? चीनांशुक रेशमी वस्त्र का परित्याग कर तुम वल्कल क्यों पहन ली ? (५९)

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद ! तदनन्तर पार्वती की, तप से वृद्ध सोमप्रभा नामक सखी ने भिक्षु से वस्तुस्थिति का वर्णन किया। (६०)

सोमप्रभा ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! पार्वती जिस कारण से तपस्या कर रही हैं, उसे सुनिये। यह काली शिव को अपना पति बनाना चाहती है। (६१)

पुलस्त्य ने कहा—सोमप्रभा की बात सुनकर शिर हिलाते हुये बड़े जोर से हँसकर भिक्षु ने यह वचन कहा। (६२)

भिक्षु ने कहा—हे पार्वति ! मैं तुमसे यह बात पूछता हूँ कि तुम्हें यह बुद्धि किसने दी ? तुम्हारा पल्लव के समान कोमल हाथ शङ्कर के सर्पयुक्त हाथ से कैसे मिलेगा। (६३)

तथा दुकूलाम्बरशालिनी त्वं
मृगारिचर्माभिवृतस्तु रुद्रः।
त्वं चन्दनाक्ता स च भस्मभूषितो
न युक्तरूपं प्रतिभाति मे त्विदम् ॥ ६४

पुलस्त्य उवाच।

एवं वादिनि विप्रेन्द्र पार्वती भिक्षुमब्रवीत्।
मा मैवं वद भिक्षो त्वं हरः सर्वगुणाधिकः ॥ ६५

शिवो वाप्यथवा भीमः सधनो निर्धनोऽपि वा।
अलंकृतो वा देवेशस्तथा वाप्यनलंकृतः ॥ ६६

यादृशस्तादृशो वापि स मे नाथो भविष्यति।
निवार्यतामय भिक्षुर्विवक्षुः स्फुरिताधरः।
न तथा निन्दकः पापी यथा शृण्वन् शशिप्रभे ॥ ६७

पुलस्त्य उवाच।

इत्येवमुक्त्वा वरदा समुत्थातुमथैच्छत।
ततोऽत्यजद् भिक्षुरूपं स्वरूपस्थोऽभवच्छिवः ॥ ६८

उवाच प्रिये गच्छ स्वमेव भवनं पितुः।
तवार्थाय प्रहेष्यामि महर्षीन् हिमवद्गृहे ॥ ६९

यच्चेह रुद्रमीहन्त्या मृन्मयश्चेश्वरः कृतः।
असौ भद्रेश्वरेत्येवं ख्यातो लोके भविष्यति ॥ ७०

देवदानवगन्धर्वा यक्षाः किंपुरुषोरगाः।
पूजयिष्यन्ति सततं मानवाश्च शुभेप्सवः ॥ ७१

इत्येवमुक्ता देवेन गिरिराजसुता मुने।
जगामाम्बरमाविश्य स्वमेव भवनं पितुः ॥ ७२

शंकरोऽपि महातेजा विसृज्य गिरिकन्यकाम्।
पृथूदकं जगामाथ स्नानं चक्रे विधानतः ॥ ७३

ततस्तु देवप्रवरो महेश्वरः
पृथूदके स्नानमपास्तकल्मषः।
कृत्वा सनन्दिः सगणः सवाहनो
महागिरिं मन्दरमाजगाम ॥ ७४

और तुम सुन्दरवस्त्र धारण करने वाली हो किन्तु रुद्र व्याघ्रचर्म धारण करते हैं। तुम चन्दन-चर्चित हो एवं शंकर भस्म भूषित हैं। अतः मुझे यह उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। (६४)

पुलस्त्य ने कहा—हे विप्रेन्द्र! भिक्षु के ऐसा कहने पर पार्वती ने उससे कहा—हे भिक्षुक! तुम ऐसा मत कहो। शंकर सब गुणों में श्रेष्ठ हैं। (६५)

वे देवेश शिव या भयङ्कर, सधन या निर्धन तथा अलंकृत अथवा अलङ्कार विहीन हों। वे जैसे तैसे क्यों न हों वे ही मेरे स्वामी होंगे। हे शशिप्रभे! इसे मना करो। यह भिक्षुक पुनः कुछ कहना चाहता है जिससे इसके ओठ फड़क रहे हैं। निन्दक वैसा पापी नहीं होता जैसा (निन्दा को) सुनने वाला होता है। (६६-६७)

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा कहकर वरदा पार्वती ने वहाँ से उठ कर जाना चाहा। तदनन्तर शंकर भिक्षुरूप को त्याग कर स्वरूपस्थ हो गये। (६८)

वे स्वरूपस्थ होकर बोले—हे प्रिये! अपने पिता के घर जाओ। तुम्हारे लिये मैं हिमवान् के घर पर महर्षियों को भेजूँगा। (६९)

रुद्र को चाहने वाली तुमने यहाँ जिस मृण्मय ईश्वर को बनाया है वे संसार में भद्रेश्वर नाम से प्रसिद्ध होंगे। (७०)

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, किंनर, उरग एवं मनुष्य मंगल की इच्छा से सदा उनकी पूजा करेंगे। (७१)

हे मुनि! शङ्कर के ऐसा कहने पर हिमालय-पुत्री पार्वती आकाश मार्ग से अपने पिता के घर चली गयीं। (७२)

महातेजस्वी शङ्कर भी गिरिराज की कन्या को विदाकर पृथूदक तीर्थ में गये एवं विधान पूर्वक स्नान किया। (७३)

तदनन्तर देवप्रवर महेश्वर पृथूदक में स्नान से पाप विमुक्त होकर नन्दी, गणों एवं वाहन के सहित महापर्वत मन्दर पर आये। (७४)

ततोऽब्रवीत् सुरपतिर्धर्म्यं वाक्यं हितं सुरान् ।
आत्मनो यशसो वृद्ध्यै सप्तर्षीन् विनयान्वितान् ॥ ८

हर उवाच ।

कश्यपात्रे वारुणेय गाधेय शृणु गौतम ।
भरद्वाज शृणुष्व त्वमङ्गिरस्त्वं शृणुष्व च ॥ ९
ममासीद् दक्षतनुजा प्रिया सा दक्षकोपतः ।
उत्ससर्ज सती प्राणान् योगदृष्ट्या पुरा किल ॥ १०
साऽद्य भूयः समुद्भूता शैलराजसुता उमा ।
सा मदर्थाय शैलेन्द्रो याच्यतां द्विजसत्तमाः ॥ ११

पुलस्त्य उवाच ।

समर्पयस्त्वेवमुक्ता बाढमित्यब्रुवन् वचः ।
ॐ नम. शंकरायेति प्रोक्त्वा जग्मुर्हिमालयम् ॥ १२
ततोऽप्यरुन्धतीं शर्वः प्राह गच्छस्व सुन्दरि ।
पुरन्ध्यो हि पुरन्ध्रीणां गतिं धर्मस्य वै विदुः ॥ १३
इत्येवमुक्त्वा दुर्लङ्घ्यं लोकाचारं त्वरुन्धती ।
नमस्ते रुद्र इत्युक्त्वा जगाम पतिना सह ॥ १४
गत्वा हिमाद्रिशिखरमोषधिप्रस्थमेव च ।
ददृशुः शैलराजस्य पुरीं सुरपुरीमिव ॥ १५
ततः संपूज्यमानास्ते शैलपत्नीभिरादरात् ।
सुनाभादिभिरव्यग्रै. पूज्यमानास्तु पर्वतैः ॥ १६
गन्धर्वैः किंनरैर्यक्षैस्तथान्यैस्तत्पुरस्सरैः ।
विविशुर्भवनं रम्यं हिमाद्रेर्हाटकोज्ज्वलम् ॥ १७
ततः सर्वे महात्मानस्तपसा धौतकल्मषाः ।
समासाद्य महाद्वारं संतस्थुर्द्वाःस्थकारणात् ॥ १८
ततस्तु त्वरितोऽभ्यागाद् द्वाःस्थोऽद्रिर्गन्धमादनः ।
धारयन् वै करे दण्डं पद्मरागमयं महत् ॥ १९
ततस्तमूचुर्मुनयो गत्वा शैलपतिं शुभम् ।
निवेदयास्मान् संप्राप्तान् महत्कार्यार्थिनो वयम् ॥ २०
इत्येवमुक्तः शैलेन्द्रो ऋषिभिर्गन्धमादनः ।
जगाम तत्र यत्रास्ते शैलराजोऽद्रिभिर्वृतः ॥ २१
निषण्णो भुवि जानुभ्यां दत्त्वा हस्तौ मुखे गिरिः ।

तदनन्तर सुरपति शिव ने विनयान्वित सप्तर्षियों से अपने यश का वृद्धिकारी, देवताओं के लिये हितकर एवं धर्मयुक्त वचन कहा। (८)

शङ्कर ने कहा—हे कश्यप ! हे अत्रि ! हे वसिष्ठ ! हे विश्वामित्र ! हे गौतम ! हे भरद्वाज ! हे अङ्गिरा ! आप लोग सुनें— (९)

प्राचीनकाल में दक्ष की कन्या सती मेरी प्रिया थी। उसने दक्ष के ऊपर क्रुद्ध होकर योगदृष्टि से अपने प्राणों का त्याग कर दिया। (१०)

वही आज पुनः उमा नाम से गिरिराज हिमालय की कन्या हुई है। हे द्विजसत्तमो ! आप लोग मेरे लिए उसे पर्वतराज से माँगें। (११)

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा कहे जाने पर सप्तर्षियों ने 'अच्छा' यह वचन कहा एवं 'ॐ नमः शङ्कराय' कहकर वे हिमालय के यहाँ गये। (१२)

तदनन्तर शङ्कर ने अरुन्धती से कहा—हे सुन्दरि ! तुम भी जाओ। स्त्रियों के धर्म की गति को स्त्रियाँ ही जानती हैं। (१३)

इस प्रकार दुर्लङ्घ्य लोकाचार जिनसे कहा गया है ऐसी अरुन्धती 'नमस्ते रुद्र' ऐसा कहकर अपने पति के साथ गई। (१४)

औषधियों से युक्त हिमालय के शिखर पर जाकर सुरपुरी के सदृश शैलराज हिमालय की नगरी को देखा। (१५)

तदनन्तर शैलराज की पत्नियों, स्थिरचित्त वाले सुनाभादि पर्वतों, गन्धर्वों, किन्नरों, यक्षों एवं अन्यों से पूजित होकर वे हिमालय के स्वर्ण की तरह प्रकाशमान रमणीय भवन में प्रविष्ट हुए। (१६-१७)

तदनन्तर तपस्या से पाप-रहित वे सभी महात्मा महाद्वार पर जाकर द्वारपाल के पास रुक गये। (१८)

तदुपरान्त हाथ में पद्मरागमय महान् दण्ड धारण किये हुए द्वार स्थित गन्धमादन पर्वत शीघ्र उनके निकट गया। (१९)

तदनन्तर मुनियों ने उससे कहा—श्रीमान् शैलपति से जाकर यह संवाद कहो कि हम लोग महान् कार्य के निमित्त आये हैं। (२०)

ऋषियों के ऐसा कहने पर शैलेन्द्र गन्धमादन, पर्वतों से घिरे हुए शैलराज के समीप गये। (२१)

पृथ्वी पर घुटनों के बल बैठकर दोनों हाथ मुख के निकट ले जाकर एवं दण्ड को काँख में दबाकर उसने यह

दण्डं निक्षिप्य कक्षायामिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२

गन्धमादन उवाच ।

इमे हि ऋषयः प्राप्ताः शैलराज तवार्थिनः ।
द्वारे स्थिताः कार्यिणस्ते तव दर्शनलालसाः ॥ २३

पुलस्त्य उवाच ।

द्वाःस्थवाक्यं समाकर्ण्य समुत्थायाचलेश्वरः ।
स्वयमभ्यागमद् द्वारि समादायार्घ्यमुत्तमम् ॥ २४
तानभ्यर्च्यार्घ्यादिना शैलः समानीय सभातलम् ।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः कृतासनपरिग्रहान् ॥ २५

हिमवानुवाच ।

अनभ्रवृष्टिः किमियमुताहोऽकुसुमं फलम् ।
अप्रतर्क्यमचिन्त्यं च भवदागमनं त्विदम् ॥ २६
अद्यप्रभृति धन्योऽस्मि शैलराडद्य सत्तमाः ।
संशुद्धदेहोऽस्म्यद्यैव यद् भवन्तो ममाजिरम् ॥ २७
आत्मसंसर्गसंशुद्धं कृतवन्तो द्विजोत्तमाः ।
दृष्टिपूतं पदाक्रान्तं तीर्थं सारस्वतं यथा ॥ २८
दासोऽहं भवतां विप्राः कृतपुण्यश्च सांप्रतम् ।
येनार्थिनो हि ते यूयं तन्ममाज्ञातुमर्हथ ॥ २९
सदारोऽहं समं पुत्रैर्भृत्यैर्नप्तृभिरव्ययाः ।
किंकरोऽस्मि स्थितो युष्मदाज्ञाकारी तदुच्यताम् ॥ ३०

पुलस्त्य उवाच ।

शैलराजवचः श्रुत्वा ऋषयः संशितव्रताः ।
ऊचुरङ्गिरसं वृद्धं कार्यमद्रौ निवेदय ॥ ३१
इत्येवं चोदितः सर्वैर्ऋषिभिः कश्यपादिभिः ।
प्रत्युवाच परं वाक्यं गिरिराजं तमङ्गिराः ॥ ३२

अङ्गिरा उवाच ।

श्रूयतां पर्वतश्रेष्ठ येन कार्येण वै वयम् ।
समागतास्त्वत्सदनमरुन्धत्या समं गिरे ॥ ३३
योऽसौ महात्मा सर्वात्मा दक्षयज्ञक्षयंकरः ।
शंकरः शूलधृक् शर्वस्त्रिनेत्रो वृषवाहनः ॥ ३४
जीमूतकेतुः शत्रुघ्नो यज्ञभोक्ता स्वयं प्रभुः ।
यमीश्वरं वदन्त्येके शिवं स्थाणुं भवं हरम् ॥ ३५
भीममुग्रं महेशानं महादेवं पशोः पतिम् ।
वयं तेन प्रेषिताः स्मस्त्वत्सकाशं गिरीश्वर ॥ ३६

वचन कहा । (२२)

गन्धमादन ने कहा—हे शैलराज ! ये ऋषिगण किसी प्रयोजनवश आप के पास आये हैं और दर्शन करने की कामना से द्वार पर खड़े हैं । (२३)

पुलस्त्य ने कहा—द्वारपाल की बात सुनने के उपरान्त पर्वतराज उठकर तथा उत्तम अर्घ्य लेकर स्वयं द्वार पर गये । (२४)

अर्घ्य आदि द्वारा उनका अर्चन करने के उपरान्त सभा में लाकर उन लोगों से वाक्यज्ञ शैल ने उनके आसन ग्रहण करने पर यह वाक्य कहा । (२५)

हिमवान् ने कहा— यह बिना मेघ की वर्षा अथवा बिना फूल का फल कैसा क्योंकि आप लोगों का यह आगमन कल्पनातीत एवं अचिन्त्य है । (२६)

हे सत्तमो ! आज से मैं धन्य हुआ । आज ही मैं शैलराज हुआ । आज ही मेरा शरीर शुद्ध हुआ है क्यों कि हे द्विजोत्तमो ! आज आपने मेरे आँगन को दृष्टि-पूत, पदाक्रान्त एवं आत्मसंसर्ग से सारस्वत तीर्थ के सदृश शुद्ध किया है । (२७-२८)

हे ब्राह्मणो ! मैं आप लोगों का दास हूँ । सम्प्रति पुण्यवान् हुआ हूँ । आप लोग जो चाहते हों उसके लिए मुझे आज्ञा दें । (२९)

हे महर्षियो ! मैं स्त्री, पुत्र, नाती, भृत्यों के सहित आप का आज्ञाकारी सेवक हूँ । अतः आज्ञा दें । (३०)

पुलस्त्य ने कहा—गिरिराज की बात सुनकर प्रशस्त व्रत वाले ऋषियों ने वृद्ध अङ्गिरा मुनि से कहा—हिमवान् को आप प्रयोजन बतलायें । (३१)

इस प्रकार कश्यपादि ऋषियों से प्रेरित अङ्गिरा ने उन गिरिराज हिमालय से यह श्रेष्ठ वचन कहा । (३२)

अङ्गिरा ने कहा – हे पर्वतराज ! हम लोग अरुन्धती के साथ आप के घर जिस कार्य से आये हैं उसे सुनिये । (३३)

हे गिरीश्वर ! जिन महात्मा, सर्वात्मा, दक्ष-यज्ञ-विनाशकारी, शूलधारी, शर्व, त्रिनेत्र, वृषभवाहन, जीमूतकेतु, शत्रुघ्न, यज्ञभोक्ता, स्वयंप्रभु, भगवान् शङ्कर को कुछ लोग शिव, स्थाणु, भव, हर, भीम, उग्र, महेशान, महादेव एवं पशुपति कहते हैं उन्होंने ही हम लोगों को आप के निकट भेजा है । (३४-३६)

इयं या त्वत्सुता काली सर्वलोकेषु सुन्दरी ।
तां प्रार्थयति देवेशस्तां भवान् दातुमर्हति ॥ ३७

स एव धन्यो हि पिता यस्य पुत्री शुभं पतिम् ।
रूपाभिजनसंपत्त्या प्राप्नोति गिरिसत्तम ॥ ३८

यावन्तो जङ्गमागम्या भूताः शैल चतुर्विधाः ।
तेषां माता त्वियं देवी यतः प्रोक्तः पिता हरः ॥ ३९

प्रणम्य शंकरं देवाः प्रणमन्तु सुतां तव ।
कुरुष्व पादं शत्रूणां मूर्ध्नि भस्मपरिप्लुतम् ॥ ४०

याचितारो वयं शर्वो वरो दाता त्वमप्युमा ।
वधूः सर्वजगन्माता कुरु यच्छ्रेयसे तव ॥ ४१

पुलस्त्य उवाच ।

तद्वचोऽङ्गिरसः श्रुत्वा काली तस्थावधोमुखी ।
हर्षमागत्य महसा पुनर्दैन्यमुपागता ॥ ४२

ततः शैलपतिः प्राह पर्वतं गन्धमादनम् ।
गच्छ शैलानुपामन्त्र्य सर्वानागन्तुमर्हसि ॥ ४३

ततः शीघ्रतरः शैलो गृहाद् गृहमगाञ्जवी ।
मेर्वादीन् पर्वतश्रेष्ठानाजुहाव समंततः ॥ ४४

तेऽप्याजग्मुस्त्वरावन्तः कार्यं मत्वा महत्तदा ।
विविशुर्विस्मयाविष्टाः सौवर्णेष्वासनेषु ते ॥ ४५

उदयो हेमकूटश्च रम्यको मन्दरस्तथा ।
उद्दालको वारुणश्च वराहो गरुडासनः ॥ ४६

शुक्तिमान् वेगसानुश्च दृढशृङ्गोऽथ शृङ्गवान् ।
चित्रकूटस्त्रिकूटश्च तथा मन्दरकाचलः ॥ ४७

विन्ध्यश्च मलयश्चैव पारियात्रोऽथ दुर्दरः ।
कैलासाद्रिर्महेन्द्रश्च निषधोऽञ्जनपर्वतः ॥ ४८

एते प्रधाना गिरयस्तथाऽन्ये क्षुद्रपर्वताः ।
उपविष्टाः सभायां वै प्रणिपत्य ऋषींश्च तान् ॥ ४९

ततो गिरीशः स्वां भार्यां मेनामाहूतवांश्च सः ।
समागच्छत कल्याणी समं पुत्रेण भामिनी ॥ ५०

साऽभिवन्द्य ऋषीणां हि चरणांश्च तपस्विनी ।
सर्वान् ज्ञातीन् समाभाष्य विवेश सपुत्रा ततः ॥ ५१

ततोऽद्रिषु महाशैल उपविष्टेषु नारद ।

आप की इस समस्त लोकों में सुन्दरी पुत्री काली को देवेश (शङ्कर) माँगते हैं। आप उसे प्रदान करें। (३७)

हे गिरिसत्तम! वही पिता धन्य होता है जिसकी पुत्री रूप, कुल और सम्पत्ति से युक्त शुभ पति को प्राप्त करती है। (३८)

हे शैल! ये देवी चतुर्विध समस्त चराचर जीवों की माता हैं क्योंकि हर उन (प्राणियों) के पिता कहे गये हैं। (३९)

समस्त देवता शङ्कर को प्रणाम कर तुम्हारी पुत्री को प्रणाम करें। अपने शत्रुओं के सिर पर अपना भस्म युक्त पैर रखो। (४०)

हम लोग याचना करने वाले हैं, शङ्कर वर हैं, आप दाता हैं और समस्त संसार की जननी उमा वधू हैं। आप जो अच्छा समझें करें। (४१)

पुलस्त्य ने कहा अङ्गिरा की यह बात सुनकर काली ने मुख नीचे कर लिया। सहसा प्रसन्न होकर वे पुन खिन्न हो गयी। (४२)

तदनन्तर गिरिराज ने गन्धमादन पर्वत से कहा—जाओ। सब पर्वतों को बुला लाओ। (४३)

तदुपरान्त वेगवान् पर्वत (गन्धमादन) शीघ्रता-पूर्वक घर घर जाकर मेरु आदि सभी श्रेष्ठ पर्वतों को चारों ओर से बुला लाया। (४४)

वे सभी पर्वत भी कोई महान् कार्य समझ कर शीघ्रता से आ गये और सुवर्णमय आसनों पर विस्मयपूर्वक बैठ गये। (४५)

उदय, हेमकूट, रम्यक, मन्दर, उद्दालक, वारुण, वराह, गरुडासन, शुक्तिमान्, वेगसानु, दृढशृङ्ग, शृङ्गवान्, चित्रकूट, त्रिकूट, मन्दराचल, विन्ध्य, मलय, पारियात्र, दुर्दर, कैलास, महेन्द्र, निषध, अञ्जन-ये सभी प्रमुख पर्वत तथा छोटे-छोटे अन्य पर्वत उन ऋषियों को प्रणाम कर सभा में बैठ गये। (४६-४९)

तदनन्तर उन गिरिराज ने अपनी भार्या मेना को बुलवाया। (वह) कल्याणी भामिनी अपने पुत्र के साथ आई। (५०)

तदनन्तर वे साध्वी ऋषियों के चरणों में प्रणाम कर एवं समस्त ज्ञातियों से अनुज्ञा लेकर पुत्र के साथ बैठ गईं। (५१)

हे नारद! तदुपरान्त सभी पर्वतों के बैठ जाने

उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सर्वानाभाष्य सुस्वरम् ॥ ५२

हिमवानुवाच ।

इमे सप्तर्षयः पुण्या याचितारः सुतां मम ।
महेश्वरार्थे कन्यां तु तथावेद्यं भवत्सु वै ॥ ५३
तद् वदध्वं यथाप्रज्ञं ज्ञातयो यूयमेव मे ।
नोल्लङ्घ्य युष्मान् दास्यामि तत्क्षमं वक्तुमर्हथ ॥ ५४

पुलस्त्य उवाच ।

हिमवद्वचनं श्रुत्वा मेर्वाद्याः स्थावरोत्तमाः ।
सर्व एवाब्रुवन् वाक्यं स्थिताः स्वेष्वासनेषु ते ॥ ५५
याचितारश्च मुनयो वरस्त्रिपुरहा हरः ।
दीयतां शैल कालीयं जामाताऽभिमतो हि नः ॥ ५६
मेनाप्यथाह भर्तारं शृणु शैलेन्द्र मद्वचः ।
पितृनाराध्य देवैर्मे दत्ताऽनेनैव हेतुना ॥ ५७
यस्तस्यां भूतपतिना पुत्रो जातो भविष्यति ।
स हनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं तारकं तथा ॥ ५८
इत्येवं मेनया प्रोक्तः शैलैः शैलेश्वरः सुताम् ।
प्रोवाच पुत्रि दत्ताऽसि शर्वाय त्वं मयाऽधुना ॥ ५९
ऋषीनुवाच कालीयं मम पुत्री तपोधनाः ।
प्रणामं शंकरवधूर्भक्तिनम्रा करोति वः ॥ ६०
ततोऽप्यरुन्धती कालीमङ्कमारोप्य चाटुकैः ।
लज्जमानां समाश्वास्य हरनामोदितैः शुभैः ॥ ६१
ततः सप्तर्षयः प्रोचुः शैलराज निशामय ।
जामित्रगुणसंयुक्तां तिथिं पुण्यां सुमङ्गलाम् ॥ ६२
उत्तराफाल्गुनीयोगं तृतीयेऽह्नि हिमांशुमान् ।
गमिष्यति च तत्रोक्तो मुहूर्तो मैत्रनामकः ॥ ६३
तस्यां तिथ्यां हरः पाणिं ग्रहीष्यति समन्त्रकम् ।
तत् पुण्या वयं यामस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ६४
ततः संपूज्य विधिना फलमूलादिभिः शुभैः ।
विसर्जयामास शनैः शैलराड् ऋषिपुंगवान् ॥ ६५
तेऽप्याजग्मुर्महावेगात् स्वाक्रम्य मरुदालयम् ।
आसाद्य मन्दरगिरिं भूयोऽवन्दन्त शंकरम् ॥ ६६
प्रणम्योचुर्महेशानं भवान् भर्त्ताऽद्रिजा वधूः ।

पर उनकी अनुमति लेकर वाक्यज्ञ महाशैल ने मधुर वचन कहा। (५२)

हिमवान् ने कहा—ये पुण्यात्मा सप्तर्षि शङ्कर के लिए मेरी कन्या को माँग रहे हैं। यही आप लोगों से निवेदन करना है। (५३)

आप ही मेरे ज्ञाति-बन्धु हैं अतः अपनी बुद्धि के अनुसार परामर्श दें। आप का उल्लङ्घन कर मैं (कन्या का) दान नहीं करूँगा, अतः आप लोग उचित परामर्श दें। (५४)

पुलस्त्य ने कहा—हिमवान् की बात सुनकर मेरु प्रभृति सभी गिरियों ने अपने-अपने आसन पर बैठे हुए ही कहा— (५५)

याचना करने वाले सप्तर्षि हैं, और त्रिपुरासुर का वध करने वाले शङ्कर वर हैं। हे शैलराज! इस काली को आप प्रदान करें। जामाता हम लोगों को पसन्द है। (५६)

तदनन्तर मेना ने पति से कहा—हे शैलेन्द्र! मेरी बात सुनिये। पितरों की आराधना पर इन देवों ने मुझे इसलिए दिया था कि भूतपति द्वारा इससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह दैत्येन्द्र महिष एवं तारक का वध करेगा। (५७-५८)

मेना तथा पर्वतों के इस प्रकार कहने पर हिमवान् ने अपनी कन्या से कहा—हे पुत्रि! अब मैंने तुम्हें शङ्कर को दे दिया। (५९)

ऋषियों से उन्होंने कहा—हे तपोधनो! यह मेरी पुत्री तथा शङ्कर की वधू काली भक्ति से नम्र हो कर आप लोगों को प्रणाम करती है। (६०)

तदनन्तर अरुन्धती ने लज्जित हो रही काली को गोद में बैठा कर शङ्कर के शुभ नामों के उच्चारण से उसे समाश्वस्त किया। (६१)

तदुपरान्त सप्तर्षियों ने कहा—हे शैलराज! जामित्रगुणसंयुक्त मंगलमय पवित्र तिथि को सुनिये। तीसरे दिन चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र से योग करेगा। उसे मैत्र नामक मुहूर्त कहते हैं। (६२-६३)

उस तिथि में शङ्कर मन्त्र के साथ आप की पुत्री का पाणिग्रहण करेंगे। आप अनुमति दें, हम लोग जाते हैं। (६४)

तदनन्तर शैलराज ने सुन्दर फलमूलों से विधिपूर्वक पूजा कर उन ऋषियों को विदा किया। (६५)

वे आकाशमार्ग से अत्यन्त वेग से मन्दरगिरि पर आये एवं महेश को प्रणाम कर कहा—आप वर एवं गिरिजा वधू हैं। प्रजा सहित तीनों लोक धनवाहन (शिव)

सप्तर्षिकास्त्रयो लोका द्रक्ष्यन्ति घनवाहनम् ॥ ६७
ततो महेश्वरः प्रीतो मुनीन् सर्वाननुक्रमात् ।
पूजयामास विधिना अरुन्धत्या समं हरः ॥ ६८
ततः संपूजिता जग्मुः सुराणां मन्त्रणाय ते ।
तेऽप्याजग्मुर्हरं द्रष्टुं ब्रह्मविष्णिन्द्रभास्कराः ॥ ६९
गेहं ततोऽभ्येत्य महेश्वरस्य
कृतप्रणामा निविशुर्महर्षे ।
सस्मार नन्दिप्रमुखांश्च सर्वा-
नभ्येत्य ते वन्द्य हरं निषण्णाः ॥ ७०
देवैर्गणैश्चापि वृतो गिरीशः
स शोभते मुक्तजटाग्रभारः ।
यथा वने सर्जकदम्बमध्ये
प्ररोहमूलोऽथ वनस्पतिर्वै ॥ ७१

इति श्रीवामनपुराणे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

२७

पुलस्त्य उवाच ।
समागतान् सुरान् दृष्ट्वा नन्दिराख्यातवान् विभोः ।
अथोत्थाय हरिं भक्त्या परिष्वज्य न्यपीडयत् ॥ १
ब्रह्माणं शिरसा नत्वा समाभाष्य शतक्रतुम् ।
आलोक्यान्यान् सुरगणान् सभावयत् स शंकरः ॥ २
गणाश्च जय देवेति वीरभद्रपुरोगमाः ।
शैवाः पाशुपताद्याश्च विविशुर्मन्दराचलम् ॥ ३
ततस्तस्मान्महाशैलं कैलासं सह दैवतैः ।
जगाम भगवान् शर्वः कर्तुं वैवाहिकं विधिम् ॥ ४
ततस्तस्मिन् महाशैले देवमाताऽदितिः शुभा ।
सुरभिः सुरसा चान्याश्चक्रुर्मण्डनमाकुलाः ॥ ५

का दर्शन करेंगे । (६६-६७)

तदनन्तर शङ्कर ने प्रसन्न होकर क्रमानुसार अरुन्धती सहित सप्तर्षियों की विधिपूर्वक पूजा की । (६८)

(शिव द्वारा) भली भाँति पूजित होकर वे देवों को निमन्त्रित करने गये । (तदनन्तर) वे ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र एवं सूर्य आदि (देवता) भी शिव का दर्शन करने आये । (६९)

हे महर्षि ! वहाँ जाकर (शङ्कर को) प्रणाम करने के उपरान्त वे लोग शङ्कर के गृह में प्रविष्ट हुए । उन्होंने नन्दी आदि का स्मरण किया । वे सभी आकर शङ्कर को प्रणाम करने के पश्चात् बैठ गये । (७०)

देवों एवं गणों से आवृत खुली जटा वाले वे शङ्कर वन में सर्ज और कदम्ब के मध्य प्ररोहयुक्त वटवृक्ष के सदृश शोभित हो रहे थे । (७१)

श्रीवामनपुराण में छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

२७

पुलस्त्य ने कहा—नन्दी ने आये हुए समस्त देवताओं को देखकर शङ्कर से बताया । शङ्कर ने उठकर भक्तिपूर्वक विष्णु का गाढ़ आलिङ्गन किया । (१)

उन शङ्कर ने ब्रह्मा को शिर से प्रणाम किया एवं इन्द्र से कुशल समाचार पूछा तथा अन्य देवों की ओर देखकर उनका आदर किया । (२)

वीरभद्रादि शैव एवं पाशुपत गण 'जय देव' कहते हुए मन्दराचल में प्रविष्ट हुए । (३)

तदनन्तर भगवान् शिव वैवाहिक विधि सम्पन्न करने के लिए देवताओं सहित कैलास नामक महान् पर्वत पर गये। (४)

तदुपरान्त उस महान् पर्वत पर देवमाता कल्याणी अदिति, सुरभि, सुरसा एवं अन्य स्त्रियों ने शीघ्रता से शङ्कर का मण्डन किया । (५)

महास्थिशेखरी चारुरोचनातिलको हरः ।
सिंहाजिनी चालिनीलभुजंगकृतकुण्डलः ॥ ६
महाहिरत्नवलयो हारकेयूरनूपुरः ।
समुन्नतजटाभारो वृषभस्थो विराजते ॥ ७
तस्याग्रतो गणाः स्वैः स्वैरारूढा यान्ति वाहनैः ।
देवाश्च पृष्ठतो जग्मुर्हुताशनपुरोगमाः ॥ ८
वैनतेयं समारूढः सह लक्ष्म्या जनार्दनः ।
प्रयाति देवपार्श्वस्थो हंसेन च पितामहः ॥ ९
गजाधिरूढो देवेन्द्रश्छत्रं शुक्लपटं विभुः ।
धारयामास विततं शच्या सह सहस्रदृक् ॥ १०
यमुना सरितां श्रेष्ठा वालव्यजनमुत्तमम् ।
श्वेतं प्रगृह्य हस्तेन कच्छपे सुस्थिता ययौ ॥ ११
हंसकुन्देन्दुसंकाशं वालव्यजनमुत्तमम् ।
सरस्वती सरिच्छ्रेष्ठा गजारूढा समादधे ॥ १२
ऋतवः षट् समादाय कुसुमं गन्धसंयुतम् ।
पञ्चवर्णं महेशानं जग्मुस्ते कामचारिणः ॥ १३
मत्तमैरावणनिभं गजमारुह्य वेगवान् ।
अनुलेपनमादाय ययौ तत्र पृथूदकः ॥ १४
गन्धर्वास्तुम्बरुमुखा गायन्तो मधुरस्वरम् ।
अनुजग्मुर्महादेवं वादयन्तश्च किन्नराः ॥ १५
नृत्यन्त्योऽप्सरश्चैव स्तुवन्तो मुनयश्च तम् ।
गन्धर्वा यान्ति देवेशं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् ॥ १६
एकादश तथा कोट्यो रुद्राणां तत्र वै ययुः ।
द्वादशैवादितेयानामष्टौ कोट्यो वसूनपि ॥ १७
सप्तषष्टिस्तथा कोट्यो गणानामृषिसत्तम ।
चतुर्विंशत् तथा जग्मुर्ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ १८
असंख्यातानि यूथानि यक्षकिन्नररक्षसाम् ।
अनुजग्मुर्महेशानं विवाहाय समाकुलाः ॥ १९
ततः क्षणेन देवेशः क्ष्माधराधिपतेस्तलम् ।
संप्राप्तास्त्वागमन् शैलाः कुञ्जरस्थाः समन्ततः ॥ २०
ततो ननाम भगवांस्त्रिनेत्रः स्थावराधिपम् ।
शैलाः प्रणेमुरीशानं ततोऽसौ मुदितोऽभवत् ॥ २१
समं सुरैः पार्षदैश्च विवेश वृषकेतनः ।
नन्दिना दर्शिते मार्गे शैलराजपुरं महत् ॥ २२

नरकपाल धारी, सुन्दर गोरोचन के तिलक वाले, व्याघ्र चर्मधारी, भ्रमर के सदृश नीले (काले) सर्प का कुण्डल धारण किये, महान् सर्पों का रत्नकङ्कण पहने, हार, केयूर एवं नूपुर धारण किये तथा लम्बी, उन्नत जटा समूह वाले शंकर वृषभ पर विराजित हुए। (६-७)

शङ्कर के आगे अपने-अपने वाहनों पर बैठे उनके गण एवं उनके पीछे अग्नि आदि देवता चले। (८)

शङ्कर के पार्श्व में लक्ष्मी सहित गरुडारूढ विष्णु एवं हंसारूढ ब्रह्मा चलने लगे। (९)

शची सहित गजारूढ सहस्रनेत्र इन्द्र ने शुक्ल वस्त्र निर्मित विस्तृत छत्र धारण किया। (१०)

नदियों में श्रेष्ठ यमुना कच्छप पर सवार हो अपने हाथ में उत्तम श्वेत चँवर लेकर चलने लगी। (११)

सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती भी हाथी पर चढ़कर हंस, कुन्द एवं इन्दु सदृश चँवर लेकर चलने लगी। (१२)

कामचारी छः ऋतुएँ पाँच वर्णों के सुगन्धित पुष्प लेकर शङ्कर के साथ चलने लगीं। (१३)

ऐरावत तुल्य मत्त गज पर आरूढ़ पृथूदक अनुलेपन लेकर चला। (१४)

मधुर स्वर से गायन कर रहे तुम्बरुप्रभृति गन्धर्व एवं बाजा बजा रहे किन्नर शङ्कर के पीछे पीछे चले। (१५)

नृत्य कर रही अप्सरायें तथा देवेश शूलपाणि त्रिलोचन की स्तुति करते हुए मुनि तथा गन्धर्व चले। (१६)

हे ऋषिसत्तम! ग्यारह कोटि रुद्र, बारह कोटि आदित्य, आठ कोटि वसु, सड़सठ कोटि गण एवं चौबीस (कोटि) ऊर्ध्वरेता ऋषियों ने प्रस्थान किया। (१७-१८)

महेश के पीछे यक्ष किन्नर एवं राक्षसों के असंख्य यूथ विवाह के लिए आकुलतापूर्वक चले। (१९)

तदुपरान्त देवेश क्षणमात्र में पर्वतराज हिमालय पर पहुँच गये। चारों ओर से गजारूढ़ पर्वत उनके पास एकत्रित हो गये। (२०)

तदुपरान्त त्रिलोचन भगवान् शंकर ने पर्वतराज को प्रणाम किया तथा अन्य पर्वतों ने शिव को प्रणाम किया जिससे वे प्रसन्न हो गये। (२१)

नन्दी द्वारा दिखाये गये मार्ग से देवताओं एवं पार्षदों सहित वृषकेतन शंकर पर्वतराज के महान् पुर में प्रविष्ट हुए। (२२)

जीमूतकेतु रायात इत्येवं नगरस्त्रियः ।
निजं कर्म परित्यज्य दर्शनव्यापृताभवन् ॥ २३
माल्यार्द्धमन्या चादाय करेणैकेन भामिनी ।
केशपाशं द्वितीयेन शंकराभिमुखी गता ॥ २४
अन्याऽलक्तकरागाढ्यं पादं कृत्वाकुलेक्षणा ।
अनलक्तकमेकं हि हरं द्रष्टुमुपागता ॥ २५
एकेनाक्ष्णाञ्जितेनैव श्रुत्वा भीममुपागतम् ।
साञ्जनां च प्रगृह्यान्या शलाकां सुष्ठु धावति ॥ २६
अन्या सरसनं वासः पाणिनादाय सुन्दरी ।
उन्मत्तेवागमन्नग्ना हरदर्शनलालसा ॥ २७
अन्यातिक्रान्तमीशानं श्रुत्वा स्तनभरालसा ।
अनिन्दत रुषा बाला यौवनं स्वं कृशोदरी ॥ २८
इत्थं स नागरस्त्रीणां क्षोभं संजनयन् हरः ।
जगाम वृषभारूढो दिव्यं श्वशुरमन्दिरम् ॥ २९
ततः प्रविष्टं प्रसमीक्ष्य शंभुं
शैलेन्द्रवेश्मन्यबला ब्रुवन्ति ।
स्थाने तपो दुश्चरमम्बिकाया-
श्चीर्णं महानेष सुरस्तु शंभुः ॥ ३०
स एष येनाङ्गमनङ्गतां कृतं
कन्दर्पनाम्नः कुसुमायुधस्य ।
क्रतोः क्षयी दक्षविनाशकर्ता
भगाक्षिहा शूलधरः पिनाकी ॥ ३१
नमो नमः शंकर शूलपाणे
मृगारिचर्माम्बर कालशत्रो ।
महाहिहाराङ्कितकुण्डलाय
नमो नमः पार्वतिवल्लभाय ॥ ३२
इत्थं संस्तूयमानः सुरपतिविधृतेनातपत्रेण शंभुः
सिद्धैर्वन्द्यः सयक्षैरहिकृतवलयी चारुभस्मोपलिप्तः ।
अग्रस्थेनाग्रजेन प्रमुदितमनसा विष्णुना चानुगेन
वैवाहीं मङ्गलाढ्यां हुतवहमुदितामारुरोहाथ वेदीम् ॥ ३३
आयाते त्रिपुरान्तके सहचरैः सार्धं च सप्तर्षिभि-
र्व्यग्रोऽभूद् गिरिराजवेश्मनिजनः काल्याः समालंकृतौ ।

जीमूतकेतु शंकर को आया जान नगर की स्त्रियाँ अपना काम छोड़कर उनके दर्शन में संलग्न हो गईं । (२३)

एक स्त्री एक हाथ में आधी माला और दूसरे हाथ में अपने केशपाश को पकड़े हुए शङ्कर की ओर दौड़ी । (२४)

अन्य उत्सुक नेत्रों वाली एक पैर में महावर लगा कर तथा दूसरे में बिना महावर लगाये शङ्कर को देखने चली आयी । (२५)

कोई महिला शङ्कर को आया सुनकर एक आँख में आँजन लगाये और दूसरी आँख के लिए अञ्जनयुक्त शलाका लिये दौड़ पड़ी । (२६)

शंकर के दर्शन की लालसा से दूसरी सुन्दरी उन्मत्ता की तरह करधनी सहित वस्त्र को हाथ में लिए नङ्गी ही चली आयी । (२७)

महादेव का आना सुनकर दूसरी स्तन के भार से अलसायी कृशोदरी बाला क्रोध से अपने यौवन की निन्दा करने लगी । (२८)

इस प्रकार नगर की महिलाओं को क्षुब्ध करते हुए वृषभारूढ शङ्कर अपने श्वसुर के दिव्य मन्दिर में गये । (२९)

तदनन्तर घर में प्रविष्ट शम्भु को देखकर शैलेन्द्र के घर में आई हुई स्त्रियाँ कहने लगीं कि पार्वती द्वारा किया गया घोर तप उचित है । क्योंकि ये शङ्कर महान् देव हैं । (३०)

ये वही हैं जिन्होंने कन्दर्प नामक कुसुमायुध के अङ्ग को नष्ट कर दिया । ये ही क्रतुक्षयी, दक्षविनाशक, भगाक्षिहन्ता, शूलधर एवं पिनाकी हैं । (३१)

हे शङ्कर ! हे शूलपाणे ! हे व्याघ्रचर्मधारिन् ! हे कालशत्रो ! हे महान् सर्पों का हार और कुण्डल धारण करने वाले पार्वतीवल्लभ ! आप को बारम्बार नमस्कार है । (३२)

इस प्रकार संस्तुत तथा इन्द्र के द्वारा धारण किये छत्र से युक्त, सिद्धों एवं यक्षों द्वारा वन्दनीय, सर्प का कंकण पहने सुन्दर भस्म से उपलिप्त, ब्रह्मा को आगे किये हुये एवं विष्णु द्वारा अनुगत शिव मङ्गलमयी अग्निपूर्ण वैवाहिक वेदी पर गये । (३३)

सहचरों और सप्तर्षियों के साथ त्रिपुरान्तक शिव के आने पर हिमवान् के घर के लोग काली के सजाने में एवं आये हुए पर्वत देवताओं की पूजा, और सत्कार में व्यस्त

व्याकुलत्वं समुपगताश्च गिरय. पूजादिना देवताः
प्रायोऽव्याकुलिता भवन्ति सुहृद. कन्याविवाहोत्सुकाः॥३४

प्रसाध्य देवीं गिरिजां ततः स्त्रियो
दुकूलशुक्लाभिवृताङ्गयष्टिकाम् ।
भ्रात्रा सुनामेन तदोत्सवे कृते
सा शंकराभ्याशमथोपपादिता ॥ ३५

ततः शुभे हर्म्यतले हिरण्मये
स्थिताः सुराः शङ्करकालिचेष्टितम् ।
पश्यन्ति देवोऽपि समं कृशाङ्गया
लोकानुजुष्ट पदमाससाद ॥ ३६

यत्र क्रीडा विचित्राः सकुसुमतरवो वारिणो बिन्दुपातै-
र्गन्धाल्यैर्गन्धचूर्णैरविरलमवनौ गुण्डितौ गुण्डिकायाम् ।
मुक्तादामैः प्रकाम हरगिरितनया क्रीडनार्थं तदाऽघ्नत्
पश्चात्सिन्दूरपुञ्जैरविरतविततैश्चक्रतुः क्ष्मां सुरक्ताम् ॥३७

एवं क्रीडां हरः कृत्वा समं च गिरिकन्यया ।
आगच्छद् दक्षिणां वेदिमृषिभिः सेवितां दृढाम् ॥ ३८

अथाजगाम हिमवान् शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।
पवित्रपाणिरादाय मधुपर्कमथोज्ज्वलम् ॥ ३९

उपविष्टस्त्रिनेत्रस्तु शार्क्रीं दिशमपश्यत ।
सप्तर्षिकांश्च शैलेन्द्रः सूपविष्टोऽवलोकयन् ॥ ४०

सुखासीनस्य शर्वस्य कृताञ्जलिपुटो गिरिः ।
प्रोवाच वचनं श्रीमान् धर्मसाधनमात्मनः ॥ ४१

हिमवानुवाच ।

मत्पुत्रीं भगवन् कालीं पौत्रीं च पुलहाग्रजे ।
पितॄणामपि दौहित्रीं प्रतीच्छेमां मयोद्यताम् ॥ ४२

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रो हस्तं हस्तेन योजयन् ।
प्रादात् प्रतीच्छ भगवन् इदमुच्चैरुदीरयन् ॥ ४३

हर उवाच ।

न मेऽस्ति माता न पिता तथैव
न ज्ञातयो वाऽपि च बान्धवाश्च ।
निराश्रयोऽहं गिरिशृङ्गवासी
सुतां प्रतीच्छामि तवाद्रिराज ॥ ४४

हो गये। कन्या के विवाह में उत्सुक सुहृद् लोग प्राय व्याकुल हो ही जाते हैं। (३४)

तदनन्तर पार्वती के शरीर को स्त्रियों ने उज्ज्वल रेशमी वस्त्रों से आच्छादित कर सजाया एवं भाई सुनाभ वैवाहिक उत्सव के लिए उसे शङ्कर के निकट ले गये। (३५)

तदनन्तर सुवर्णमय प्रासाद के भीतर बैठे हुए देवगण शङ्कर और पार्वती की वैवाहिक चेष्टाओं को देखने लगे और महादेव भी कृशाङ्गी पार्वती के साथ लोक सेवित स्थान को प्राप्त किये। (३६)

सुन्दर पुष्पों वाले वृक्षों से अलङ्कृत भूमि के घेरे में क्रीडा करते हुए शङ्कर और पार्वती ने एक दूसरे पर सुगन्धित जलविन्दुओं और गन्धचूर्णों की अविरल वर्षा की। तदनन्तर उन दोनों ने क्रीडनार्थ एक दूसरे को मुक्ता-दाम से मारने के उपरान्त सिन्दूरपुञ्ज की अविरत वर्षा से पृथ्वी को लाल कर दिया। (३७)

इस प्रकार पार्वती के साथ क्रीडा कर शङ्कर ऋषियों से सेवित सुदृढ़ दक्षिण वेदी पर आये। (३८)

तदनन्तर पवित्री पहने तथा श्वेतवस्त्र धारण किये हिमवान् उज्ज्वल मधुपर्क लेकर आये। (३९)

त्रिनेत्र बैठे हुए ऐन्द्री (पूर्व) दिशा को देख रहे थे तथा शैलेन्द्र ने सप्तर्षियों की ओर देखते हुये भली भांति आसन ग्रहण किया। (४०)

सुखासीन शङ्कर से गिरि ने हाथ जोड़कर अपने धर्म का साधक वचन कहा। (४१)

हिमवान् ने कहा—हे भगवन्! मेरे द्वारा दी जा रही पुलहाग्रज की पौत्री, पितरों की दौहित्री एवं मेरी पुत्री, को आप स्वीकार करें। (४२)

पुलस्त्य ने कहा—यह कहकर शैलेन्द्र ने (शङ्कर के) हाथ से (पार्वती के) हाथ को मिलाकर उच्च स्वर से यह कहते हुये कि 'हे भगवन्! इसे स्वीकार करें' दिया। (४३)

शङ्कर ने कहा—हे पर्वतराज! मेरे पिता, माता, दायाद या कोई बान्धव नहीं है। मैं निराश्रय होकर गिरिशिखर पर रहता हूँ। मैं आप की पुत्री को स्वीकार करता हूँ। (४४)

इत्येवमुक्त्वा वरदोऽप्यपीडयत्
　　करं करेणाद्रिकुमारिकायाः ।
सा चापि संस्पर्शमवाप्य शंभोः
　　परां मुदं लब्धवती सुरर्षे ॥ ४५
तथाधिरूढो वरदोऽथ वेदिं
　　सहाद्रिपुत्र्या मधुपर्कमश्नन् ।
दत्त्वा च लाजान् कलमस्य शुक्लां-
　　स्ततो विरिञ्चो गिरिजामुवाच ॥ ४६
कालि पश्यस्व वदनं भर्तुः शशधरप्रभम् ।
समदृष्टिः स्थिरा भूत्वा कुरुष्वाग्नेः प्रदक्षिणम् ॥ ४७
ततोऽम्बिका हरमुखे दृष्टे शैत्यमुपागता ।
यथार्करश्मिसंतप्ता प्राप्य वृष्टिमिवावनिः ॥ ४८
भूयः प्राह विभोर्वक्त्रमीक्षस्वेति पितामहः ।
लज्जया साऽपि दृष्टेति शनैर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ ४९
समं गिरिजया तेन हुताशस्त्रिःप्रदक्षिणम् ।
कृतो लाजाश्च हविषा समं क्षिप्ता हुताशने ॥ ५०
ततो हराङ्घ्रिर्मालिन्या गृहीतो दायकारणात् ।
किं याचसि च दास्यामि मुञ्चस्वेति हरोऽब्रवीत् ॥ ५१
मालिनी शंकरं प्राह मत्सख्या देहि शंकर ।
सौभाग्यं निजगोत्रीयं ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ ५२
अथोवाच महादेवो दत्तं मालिनि मुञ्च माम् ।
सौभाग्यं निजगोत्रीयं योऽस्यास्तं शृणु वच्मि ते ॥ ५३
योऽसौ पीताम्बरधरः शङ्खभृक् मधुसूदनः ।
एतदीयो हि सौभाग्यो दत्तोऽस्मद्गोत्रमेव हि ॥ ५४
इत्येवमुक्ते वचने प्रमुमोच वृषध्वजम् ।
मालिनी निजगोत्रस्य शुभचारित्रमालिनी ॥ ५५
यदा हरो हि मालिन्या गृहीतश्चरणे शुभे ।
तदा कालीमुखं ब्रह्मा ददर्श शशिनोऽधिकम् ॥ ५६
तद् दृष्ट्वा क्षोभमगमत् शुक्रच्युतिमवाप च ।
तच्छुक्रं वालुकायां च खिलीचक्रे ससाध्वसः ॥ ५७
ततोऽब्रवीद्धरो ब्रह्मन् न द्विजान् हन्तुमर्हसि ।

यह कहकर वरदायक शङ्कर ने पर्वतपुत्री पार्वती के हाथ को अपने हाथ में लिया हे देवर्षि ! शङ्कर के हाथ का स्पर्श प्राप्त कर उसे भी अत्यन्त आनन्द हुआ । (४५)

तदनन्तर मधुपर्क खाते हुए वरदाता शङ्कर पर्वतपुत्री के साथ वेदी पर बैठे । तदुपरान्त धान का सफेद लावा देकर ब्रह्मा ने गिरिजा से कहा— (४६)

हे काली ! पति के चन्द्र सदृश मुख को देखो एवं समदृष्टि से स्थिर होकर अग्नि की प्रदक्षिणा करो । (४७)

तदनन्तर शङ्कर का मुख देखने पर अम्बिका को इस प्रकार की शीतलता प्राप्त हुई जैसी सूर्यकिरणसन्तप्त पृथ्वी को वृष्टि से प्राप्त होती है । (४८)

पितामह ने पुनः कहा—विभु का मुख देखो । उसने भी लज्जा पूर्वक धीरे से ब्रह्मा से कहा—देख लिया । (४९)

तदनन्तर गिरिजा के साथ उन्होंने अग्नि की तीन प्रदक्षिणा की एवं अग्नि में हविष्य के साथ लावा की आहुति दी । (५०)

तदनन्तर मालिनी ने दाय (अर्थात् नेग) के लिए शङ्कर का पैर पकड़ लिया । शङ्कर ने कहा—क्या माँगती हो ? मैं दूँगा । पैर छोड़ दो । (५१)

मालिनी ने शङ्कर से कहा—हे शङ्कर ! मेरी सखी को अपने गोत्र का सौभाग्य दीजिए तभी छुटकारा मिलेगा । (५२)

तदनन्तर महादेव ने कहा—हे मालिनी ! मैंने दिया । मुझे छोड़ो । इसका जो गोत्रीय सौभाग्य होगा उसे मैं तुम्हें बतलाता हूँ । तुम सुनो । (५३)

ये जो पीताम्बर शङ्खधारी मधुसूदन हैं मैंने इनके ही सौभाग्य को तथा अपने गोत्र को दिया । (५४)

इस प्रकार शंकर के कहने पर अपने कुल की शुभ सच्चरित्रता की माला धारण करने वाली मालिनी ने शङ्कर को छोड़ दिया । (५५)

जब मालिनी ने शङ्कर के दोनों चरणों को पकड़ा उस समय ब्रह्मा ने चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर काली के मुख को देखा । (५६)

उसे देखने से क्षोभ होने के कारण उनका शुक्र च्युत हो गया । भयवश उन्होंने उस शुक्र को बालुका में छिपा दिया । (५७)

तदनन्तर शङ्कर ने कहा—हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मणों का वध

अमी महर्षयो धन्या वालखिल्याः पितामह ॥ ५८
ततो महेशवाक्यान्ते समुत्तस्थुस्तपस्विनः ।
अष्टाशीतिसहस्राणि वालखिल्या इति स्मृताः ॥ ५९
ततो विवाहे निर्वृत्ते प्रविष्टः कौतुकं हरः ।
रेमे सहोमया रात्रिं प्रभाते पुनरुत्थितः ॥ ६०
ततोऽद्रिपुत्रीं समवाप्य शंभुः
सुरैः समं भूतगणैश्च हृष्टः ।
संपूजितः पर्वतपार्थिवेन
स मन्दरं शीघ्रमुपाजगाम ॥ ६१
ततः सुरान् ब्रह्महरीन्द्रमुख्यान्
प्रणम्य संपूज्य यथाविभागम् ।
विसर्ज्य भूतैः सहितो महीध्र-
मध्यावसन्मन्दरमष्टमूर्तिः ॥ ६२

इति श्रीवामनपुराणे सप्तविंशोऽध्याय ॥२७॥

२८

पुलस्त्य उवाच ।
ततो गिरौ वसन् रुद्रः स्वेच्छया विचरन् मुने ।
विश्वकर्माणमाहूय प्रोवाच कुरु मे गृहम् ॥ १
ततश्चकार शर्वस्य गृहं स्वस्तिकलक्षणम् ।
योजनानि चतुःषष्टिः प्रमाणेन हिरण्मयम् ॥ २
दन्ततोरणनिर्व्यूहं मुक्ताजालान्तरं शुभम् ।
शुद्धस्फटिकसोपानं वैडूर्यकृतरूपकम् ॥ ३
सप्तकक्षं सुविस्तीर्णं सर्वैः समुदितं गुणैः ।
ततो देवपतिश्चक्रे यज्ञं गार्हस्थ्यलक्षणम् ॥ ४
तं पूर्वचरितं मार्गमनुयाति स्म शंकरः ।

मत कीजिए। हे पितामह! ये सभी बालखिल्य महर्षि हैं, जो बड़े ही धन्य हैं। (५८)

तदुपरान्त शङ्कर के कहने के अनन्तर अट्ठासी हजार बालखिल्य नामक तपस्वी उठ खड़े हुए। (५९)

तदनन्तर विवाह हो जाने पर शङ्कर कौतुकागार (कोहबर) में गये। उन्होंने रात्रि में पार्वती के साथ रमण किया और पुनः प्रातःकाल उठे। (६०)

तदुपरान्त पार्वती को प्राप्त कर प्रसन्न हुये शङ्कर पर्वतराज से पूजित होने के उपरान्त देवों एवं भूतगणों के साथ शीघ्रता पूर्वक मन्दराचल पर आ गये। (६१)

तदनन्तर अष्टमूर्ति शङ्कर ने ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवताओं का यथोचित पूजन तथा प्रणाम कर उन्हें विदा किया और स्वयं अपने भूतगणों के साथ मन्दर पर्वत पर रहने लगे। (६२)

श्रीवामनपुराण में सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

२८

पुलस्त्य ने कहा—हे मुने! मन्दर पर्वत पर रहते हुए और इच्छानुसार विचरण करते हुए शङ्कर ने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—मेरे लिए घर बना दो। (१)

तदनन्तर उसने शंकर के लिए चौंसठ योजन विस्तृत सुवर्णमय तथा स्वस्तिक चिह्नों से युक्त गृह बनाया। (२)

उसमें हाथी के दाँतों के तोरण और मोतियों के सुन्दर झालर लगे थे एवं उसमें वैडूर्यमणिखचित शुद्ध स्फटिक के सोपान थे। (३)

सात कक्षों से युक्त वह सुविस्तीर्ण गृह सभी गुणों से सम्पन्न था। तदनन्तर देवाधिदेव ने गार्हस्थ्य रूपी यज्ञ किया। (४)

शङ्कर भगवान् पूर्वाचरित मार्ग का अनुसरण

तथा मतस्त्रिनेत्रस्य महान् कालोऽभ्यगान्मुने ॥ ५
रमतः सह पार्वत्या धर्मापेक्षी जगत्पतिः ।
ततः कदाचिन्नर्मार्थं कालीत्युक्ता भवेन हि ॥ ६
पार्वती मन्युनाविष्टा शंकरं वाक्यमब्रवीत् ।
संरोहतीषुणा विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न प्ररोहति वाक्क्षतम् ॥ ७

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
तैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
न तान् विमुञ्चेत हि पण्डितो जन-
स्तमद्य धर्मं वितथं त्वया कृतम् ॥ ८

तस्माद् व्रजामि देवेश तपस्तप्तुमनुत्तमम् ।
तथा यतिष्ये न यथा भवान् कालीति वक्ष्यति ॥ ९
इत्येवमुक्त्वा गिरिजा प्रणम्य च महेश्वरम् ।
अनुज्ञाता त्रिनेत्रेण दिवमेवोत्पपात ह ॥ १०
समुत्पत्य च वेगेन हिमाद्रिशिखरं शिवम् ।
दृष्ट्वाच्छिन्नं प्रयत्नेन विधात्रा निर्मितं यथा ॥ ११
ततोऽवतीर्य सस्मार जयां च विजयां तथा ।
जयन्तीं च महापुण्यां चतुर्थीमपराजिताम् ॥ १२
ताः संस्मृताः समाजग्मुः कालीं द्रष्टुं हि देवताः ।
अनुज्ञातास्तथा देव्या शुश्रूषां चक्रिरे शुभाः ॥ १३
ततस्तपसि पार्वत्यां स्थितायां हिमवद्वनात् ।
समाजगाम तं देशं व्याघ्रो दंष्ट्रानखायुधः ॥ १४
एकपादस्थितायां तु देव्यां व्याघ्रस्त्वचिन्तयत् ।
यदा पतिष्यते चेयं तदादास्यामि वै अहम् ॥ १५
इत्येवं चिन्तयन्नेव दत्तदृष्टिर्मृगाधिपः ।
पश्यमानस्तु वदनमेकदृष्टिरजायत ॥ १६
ततो वर्षशतं देवी गृणन्ती ब्रह्मणः पदम् ।
तपोऽतप्यत ततोऽभ्यागाद् ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः ॥ १७
पितामहस्ततोवाच देवीं प्रीतोऽस्मि शाश्वते ।
तपसा धूतपापाऽसि वरं वृणु यथेप्सितम् ॥ १८

अथोवाच वचः काली व्याघ्रस्य कमलोद्भव।
वरदो भव तेनाह यास्ये प्रीतिमनुत्तमाम्॥ १९
ततः प्रादाद् वरं ब्रह्मा व्याघ्रस्याद्भुतकर्मणः।
गाणपत्यं विभौ भक्तिमजेयत्वं च धर्मिताम्॥ २०
वरं व्याघ्राय दत्त्वैवं शिवकान्तामथाब्रवीत्।
वृणीष्व वरमव्यग्रा वरं दास्ये तवाम्बिके॥ २१
ततो वरं गिरिसुता प्राह देवी पितामहम्।
वरः प्रदीयतां मह्यं वर्णे कनकसंनिभम्॥ २२
तथेत्युक्त्वा गतो ब्रह्मा पार्वती चाभवत् ततः।
कोशं कृष्णं परित्यज्य पद्मकिञ्जल्कसन्निभा॥ २३
तस्मात् कोशाच्च संजाता भूयः कात्यायनी मुने।
तामभ्येत्य सहस्राक्षः प्रतिजग्राह दक्षिणाम्।
प्रोवाच गिरिजां देवो वाक्यं स्वार्थाय वासवः॥ २४

इन्द्र उवाच।

इयं प्रदीयतां मह्यं भगिनी मेऽस्तु कौशिकी।
त्वत्कोशसंभवा चेयं कौशिकी कौशिकोऽप्यहम्॥ २५

तदनन्तर काली ने कहा—हे कमलोद्भव! इस व्याघ्र को आप वर दें। इसी से मैं भी अतिप्रसन्न होऊँगी। (१९)

तदुपरान्त ब्रह्मा ने उस अद्भुतकर्मा व्याघ्र को गणों का स्वामित्व, शंकर की भक्ति, अजेयता और धार्मिकता का वर दिया। (२०)

इस प्रकार व्याघ्र को वर देकर (उन्होंने) शिवकान्ता से कहा—हे अम्बिके! तुम अव्यग्र चित्त से वर माँगो। मैं तुम्हें वर दूँगा। (२१)

तदनन्तर गिरिनन्दिनी देवी ने पितामह से कहा—हे ब्रह्मन्! मुझे यही वर दीजिए कि मेरा वर्ण सुवर्णतुल्य हो जाय। (२२)

'ऐसा ही हो' कहकर ब्रह्मा चले गये। पार्वती भी अपने कृष्ण आवरण को छोड़कर कमल के केसर के समान हो गयीं। (२३)

हे मुनि! उस कृष्ण कोश से पुनः कात्यायनी उत्पन्न हुईं। सहस्राक्ष इन्द्र ने उनके निकट जाकर दक्षिणा ग्रहण की। उन्होंने अपने लिए गिरिजा से यह वचन कहा— (२४)

इन्द्र ने कहा—आप इसे मुझे प्रदान करें। यह कौशिकी मेरी भगिनी बने। आप के कोश से उत्पन्न होने से यह कौशिकी हुई एवं मैं भी कौशिक हूँ। (२५)

तां प्रादादिति संश्रुत्य कौशिकीं रूपसंयुताम्।
सहस्राक्षोऽपि तां गृह्य विन्ध्यं वेगाज्जगाम च॥ २६
तत्र गत्वा त्वथोवाच तिष्ठस्वात्र महाबले।
पूज्यमाना सुरैर्नाम्ना ख्याता त्वं विन्ध्यवासिनी॥ २७
तत्र स्थाप्य हरिर्देवीं दत्त्वा सिंहं च वाहनम्।
भवामरारिहन्त्रीति उक्त्वा स्वर्गमुपागमत्॥ २८
उमाऽपि तं वरं लब्ध्वा मन्दरं पुनरेत्य च।
प्रणम्य च महेशानं स्थिता सविनयं मुने॥ २९
ततोऽमरगुरुः श्रीमान् पार्वत्या सहितोऽव्ययः।
तस्थौ वर्षसहस्रं हि महामोहनके मुने॥ ३०
महामोहस्थिते रुद्रे भुवनाश्चेलुरुद्धताः।
चुक्षुभुः सागराः सप्त देवाश्च भयमागमन्॥ ३१
ततः सुराः सहेन्द्रेण ब्रह्मणः सदनं गताः।
प्रणम्योचुर्महेशानं जगत् क्षुब्धं तु किं त्विदम्॥ ३२
तानुवाच भवो नूनं महामोहनके स्थितः।

'उसको दिया' यह सुनने के अनन्तर उस रूपवती कौशिकी को लेकर देवराज इन्द्र वेग से विन्ध्याचल पर गये। (२६)

वहाँ जाकर (उन्होंने) कहा—हे महाबले! आप यहाँ रहें। देवताओं द्वारा पूजित होती हुई आप विन्ध्यवासिनी नाम से प्रख्यात होंगी। (२७)

वहाँ देवी को स्थापित कर और इन्हें वाहन रूप में सिंह देने के उपरान्त "आप देवताओं के शत्रुओं को मारने वाली बनें" यह कहकर इन्द्र स्वर्ग चले गये। (२८)

हे मुनि! उमा भी वह वर प्राप्त करने के उपरान्त मन्दर पर्वत पर गयीं एवं महेश को प्रणाम कर विनयपूर्वक रहने लगीं। (२९)

हे मुनि! तदनन्तर श्रीमान्, अव्यय, अमरगुरु एक सहस्र वर्ष पर्यन्त महामोहनक में स्थित रहे। (३०)

रुद्रदेव के महामोह में स्थित होने पर समस्त भुवन उद्धत होकर विचलित हो गये। सातों सागर क्षुब्ध हो हो उठे और देवगण भयभीत हो गये। (३१)

तब देवता लोग इन्द्र के साथ ब्रह्मलोक गये तथा महेशान ब्रह्मा को प्रणाम कर बोले—यह जगत क्यों क्षुब्ध हो गया है? (३२)

उन्होंने उन लोगों से कहा—महादेव निश्चय ही

तेनाक्रान्तास्त्विमे लोका जग्मुः क्षोभं दुरत्ययम् ॥ ३३
इत्युक्त्वा सोऽभवत् तूर्णीं ततोऽप्यूचुः सुरा हरिम्।
आगच्छ शक्र गच्छामो यावत् तन्न समाप्यते ॥ ३४
समाप्ते मोहने बालो यः समुत्पत्स्यतेऽव्ययः।
स नूनं देवराजस्य पदमैन्द्रं हरिष्यति ॥ ३५
ततोऽमराणां वचनाद् विवेको बलघातिनः।
भयाज्ज्ञानं ततो नष्टं भाविकर्मप्रचोदनात् ॥ ३६
ततः शक्रः सुरैः सार्धं वह्निना च सहस्रदृक्।
जगाम मन्दरगिरिं तच्छृङ्गे न्यविशत्ततः ॥ ३७
अशक्ताः सर्व एवैते प्रवेष्टुं तद्भवाजिरम्।
चिन्तयित्वा तु सुचिरं पावकं ते व्यसर्जयन् ॥ ३८
स चाभ्येत्य सुरश्रेष्ठो दृष्ट्वा द्वारे च नन्दिनम्।
दुष्प्रवेशं च तं मत्वा चिन्तां वह्निः परां गतः ॥ ३९
स तु चिन्तार्णवे मग्नः प्रापश्यच्छंभुसद्मनः।
निष्क्रामन्तीं महापङ्क्तिं हंसानां विमलां तथा ॥ ४०
असावुपाय इत्युक्त्वा हंसरूपो हुताशनः।
वञ्चयित्वा प्रतीहारं प्रविवेश हराजिरम् ॥ ४१
प्रविश्य सूक्ष्ममूर्तिश्च शिरोदेशे कपर्दिनः।
प्राह प्रहस्य गम्भीरं देवा द्वारि स्थिता इति ॥ ४२
तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय परित्यज्य गिरेः सुताम्।
विनिष्क्रान्तोऽजिराच्छर्वो वह्निना सह नारद ॥ ४३
विनिष्क्रान्ते सुरपतौ देवा मुदितमानसाः।
शिरोभिरवनीं जग्मुः सेन्द्रार्कशशिपावकाः ॥ ४४
ततः प्रीत्या सुरानाह यदर्थं कार्यमाशु मे।
प्रणामावनतानां वो दास्येऽहं वरमुत्तमम् ॥ ४५

देवा ऊचुः।

यदि तुष्टोऽसि देवानां वरं दातुमिहेच्छसि।
तदिदं त्यज्यतां तावन्महामैथुनमीश्वर ॥ ४६

महामोहनक में स्थित हैं। उसी से आक्रान्त हो ये लोक अत्यन्त क्षुब्ध हो रहे हैं। (३३)

इतना कहकर वे मौन हो गये। उसके बाद देवताओं ने इन्द्र से कहा—हे शक्र! जब तक वह (महामोहनक) समाप्त नहीं हो जाता तब तक हम लोग चलें। (३४)

मोह समाप्त होने पर उत्पन्न होने वाला अविनाशी बालक निश्चय ही देवराज के ऐन्द्र पद का हरण करेगा। (३५)

तदनन्तर भाविकर्म की प्रेरणावश देवताओं के वचन से बलघाती (इन्द्र) का विवेक एवं भय के कारण ज्ञान नष्ट हो गया। (३६)

तब सहस्रनेत्र इन्द्र अग्नि और देवों के साथ मन्दर पर्वत पर गये एवं उसके शिखर पर बैठे। (३७)

किन्तु वे सभी महादेव के भवन में प्रविष्ट नहीं हो सके। बहुत देर तक विचार कर उन लोगों ने अग्नि को भेजा। (३८)

सुरश्रेष्ठ अग्नि वहाँ गये और द्वार पर नन्दी को देख कर, वहाँ प्रवेश करना दुःसाध्य जानकर अत्यन्त चिन्तित हुए। (३९)

चिन्ता-सागर में मग्न उन्होंने शम्भु के भवन से निकल रही हंसों की विमल महापङ्क्ति को देखा। (४०)

'यही उपाय है' ऐसा कहकर अग्नि हंस रूप में द्वारपाल को धोखा देकर महादेव के घर में प्रवेश किए। (४१)

प्रविष्ट होने के उपरान्त सूक्ष्म शरीरधारी अग्निदेव ने महादेव के शिर के पास हँसते हुए गम्भीर स्वर से कहा—देवता लोग दरवाजे पर खड़े हैं। (४२)

हे नारद! महादेव इस बात को सुनकर उसी क्षण उठे और हिमालय की कन्या को छोड़कर अग्नि के साथ आंगन से निकल पड़े। (४३)

सुरपति शङ्कर के निकल आने पर इन्द्र सहित चन्द्र, सूर्य और अग्नि आदि सभी देवताओं ने आनन्दित होकर पृथ्वी पर शिर झुकाया। (४४)

तदनन्तर (भगवान् महादेव ने) प्रीतिपूर्वक देवताओं से कहा—शीघ्र मुझे कार्य बताइये। प्रणाम के लिए अवनत आप लोगों को मैं उत्तम वर दूँगा। (४५)

देवताओं ने कहा—हे ईश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं और देवों को वर देना चाहते हैं तो आप इस महामैथुन का त्याग करें। (४६)

ईश्वर उवाच ।
एवं भवतु संत्यक्तो मया भावोऽमरोत्तमाः ।
ममेदं तेज उद्रिक्तं कश्चिद् देवः प्रतीच्छतु ॥ ४७
पुलस्त्य उवाच ।
इत्युक्ताः शंभुना देवाः सेन्द्रचन्द्रदिवाकराः ।
असीदन्त यथा मग्नाः पङ्के वृन्दारका इव ॥ ४८
सीदत्सु दैवतेष्वेवं हुताशोऽभ्येत्य शंकरम् ।
प्रोवाच मुञ्च तेजस्त्वं प्रतीच्छाम्येष शंकर ॥ ४९
ततो मुमोच भगवांस्तद्रेतः स्कन्नमेव तु ।
जलं तृषान्ते वै यद्वत् तैलपानं पिपासितः ॥ ५०
ततः पीते तेजसि वै शार्वे देवेन वह्निना ।
स्वस्थाः सुराः समामन्त्र्य हरं जग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ ५१
संप्रयातेषु देवेषु हरोऽपि निजमन्दिरम् ।
समभ्येत्य महादेवीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५२
देवि देवैरिहाभ्येत्य यत्नात् प्रेष्य हुताशनम् ।
नीतः प्रोक्तो निषिद्धस्तु पुत्रोत्पत्तिं तवोदरात् ॥ ५३

ईश्वर ने कहा—हे देवश्रेष्ठो! ऐसा ही हो। मैंने आसक्ति छोड़ दिया। कोई देवता मेरे इस निकले हुए तेज को ग्रहण करे। (४७)

पुलस्त्य ने कहा—शम्भु के ऐसा कहने पर इन्द्रसहित चन्द्रमा एवं सूर्यादि देवता पङ्कमग्न गज के सदृश दुःखी हुए। (४८)

देवताओं के इस प्रकार दुःखी होने पर अग्नि ने शङ्कर के निकट जाकर कहा—हे शङ्कर! आप तेज को मुक्त करें। मैं ग्रहण करूँगा। (४९)

तदनन्तर भगवान् ने (तेज को) छोड़ दिया। उस स्खलित रेतस् को (अग्निदेव इस प्रकार पी गये) जैसे जल का प्यासा व्यक्ति तैलपान कर जाता है। (५०)

अग्निदेव द्वारा शम्भु का वीर्य पी लेने पर स्वस्थ देवता लोग महादेव की अनुमति लेकर स्वर्ग चले गये। (५१)

देवताओं के चले जाने पर महादेव ने भी अपने मन्दिर में जाकर महादेवी से यह वचन कहा— (५२)

हे देवि! देवों ने यहाँ आकर प्रयत्नपूर्वक अग्नि को (मेरे पास) भेजकर मुझे बुलाया और तुम्हारे उदर से पुत्रोत्पत्ति न करने के लिये कहा। (५३)

साऽपि भर्तुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धा रक्तान्तलोचना ।
शशाप दैवतान् सर्वान् नष्टपुत्रोद्भवा शिवा ॥ ५४
यस्मान्नेच्छन्ति ते दुष्टा मम पुत्रमथौरसम् ।
तस्मात् ते न जनिष्यन्ति स्वासु योषित्सु पुत्रकान् ॥ ५५
एवं शप्त्वा सुरान् गौरी शौचशालामुपागमत् ।
आहूय मालिनीं स्नातुं मतिं चक्रे तपोधना ॥ ५६
मालिनी सुरभिं गृह्य श्लक्ष्णमुद्वर्तनं शुभा ।
देव्यङ्गमुद्वर्तयते कराभ्यां कनकप्रभम् ।
तत्स्वेदं पार्वती चैव मेने कीदृग्गुणेन हि ॥ ५७
मालिनी तूर्णमगमद् गृहं स्नानस्य कारणात् ।
तस्यां गतायां शैलेयी मलाच्चक्रे गजाननम् ॥ ५८
चतुर्भुजं पीनवक्षं पुरुषं लक्षणान्वितम् ।
कृत्वोत्ससर्ज भूम्यां च स्थिता भद्रासने पुनः ॥ ५९
मालिनी तच्छिरःस्नानं ददौ विहसती तदा ।

पति का वचन सुनकर विनष्ट पुत्र-जन्म वाली शिवा ने क्रोध से आँखें लाल कर समस्त देवताओं को शाप दिया। (५४)

क्योंकि वे दुष्ट मेरे उदर से पुत्र का जन्म नहीं चाहते अतः वे भी अपनी पत्नियों से पुत्र नहीं उत्पन्न करेंगे। (५५)

इस प्रकार देवताओं को शाप देकर तपोधना गौरी शौचालय में गयीं और मालिनी को बुलाकर स्नान करने का विचार किया। (५६)

सुन्दरी मालिनी सुगन्धयुक्त कोमल उद्वर्त्तन लेकर देवी के स्वर्णिम आभा से युक्त शरीर में दोनों हाथों से लगाने लगी। पार्वती विचार करने लगीं कि इस स्वेद में क्या गुण है। (५७)

मालिनी स्नान (कराने) के लिए शीघ्र स्नानागार में चली गयी। उसके चले जाने पर शैलनन्दिनी ने (उस) मल से गजानन को बनाया। (५८)

चार भुजाओं से युक्त, पीन वक्षस्थल वाले, लक्षणान्वित पुरुष को बनाकर भूमि पर रख दिया एवं पुनः उत्तम आसन पर बैठ गईं। (५९)

उस समय मालिनी ने हँसते हुए देवी को शिर से

ईषद्धासामुमा दृष्ट्वा मालिनीं प्राह नारद ॥ ६०
किमर्थं भीरु शनकैर्हससि त्वमतीव च ।
साऽथोवाच हसाम्येव भवत्यास्तनयः किल ॥ ६१
भविष्यतीति देवेन प्रोक्तो नन्दी गणाधिपः ।
तच्छ्रुत्वा मम हासोऽयं संजातोऽत्र कृशोदरि ॥ ६२
यस्माद् देवैः पुत्रकामः शंकरो विनिवारितः ।
एतच्छ्रुत्वा वचो देवी सस्नौ तत्र विधानतः ॥ ६३
स्नात्वार्च्य शंकरं भक्त्या समभ्यागाद् गृहं प्रति ।
ततः शंभुः समागत्य तस्मिन् भद्रासने त्वपि ॥ ६४
स्नातस्तस्य ततोऽधस्तात् स्थितः स मलपूरुषः ।
उमास्वेदं भवस्वेदं जलभूतिसमन्वितम् ॥ ६५
तत्संपर्कात् समुत्तस्थौ फूत्कृत्य करमुत्तमम् ।
अपत्यं हि विदित्वा च प्रीतिमान् भुवनेश्वरः ॥ ६६
तं चादाय हरो नन्दिमुवाच भगनेत्रहा ।
रुद्रः स्नात्वार्च्य देवादीन् वाग्भिरद्भिः पितॄनपि॥ ६७
जप्त्वा सहस्रनामानमुमापार्श्वमुपागतः ।
समेत्य देवीं विहसन् शंकरः शूलधृग् वचः ॥ ६८
प्राह त्वं पश्य शैलेयि स्वसुतं गुणसंयुतम् ।
इत्युक्ता पर्वतसुता समेत्यापश्यदद्भुतम् ॥ ६९
यत्तदङ्गमलाद्दिव्यं कृतं गजमुखं नरम् ।
ततः प्रीता गिरिसुता तं पुत्रं परिषस्वजे ॥ ७०
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय ततः शर्वोऽब्रवीदुमाम् ।
नायकेन विना देवि तव भूतोऽपि पुत्रकः ॥ ७१
यस्माज्जातस्ततो नाम्ना भविष्यति विनायकः ।
एष विघ्नसहस्राणि सुरादीनां करिष्यति ॥ ७२
पूजयिष्यन्ति चैवास्य लोका देवि चराचराः ।
इत्येवमुक्त्वा देव्यास्तु दत्तवांस्तनयाय हि ॥ ७३
सहायं तु गणश्रेष्ठं नाम्ना ख्यातं घटोदरम् ।
तथा मातृगणा घोरा भूता विघ्नकराश्च ये ॥ ७४
ते सर्वे परमेशेन देव्याः प्रीत्योपपादिताः ।
देवी च स्वसुतं दृष्ट्वा परां मुदमवाप च ॥ ७५
रेमेऽथ शंभुना सार्धं मन्दरे चारुकन्दरे ।

स्नान कराया। हे नारद! मालिनी को मुस्कुराते हुए देख कर देवी ने कहा— (६०)

हे भीरु! तुम धीरे-धीरे इतना क्यों हँस रही हो? मालिनी ने कहा—मैं इसलिए हँस रही हूँ कि आप को अवश्य पुत्र होगा, ऐसा महादेव ने गणपति नन्दी से कहा था। हे कृशोदरि! उसे सुनकर (स्मरण कर) आज मुझे हँसी आ गयी क्योंकि देवताओं ने शङ्कर को पुत्र की कामना करने से रोक दिया है। इस बात को सुनकर देवी ने वहाँ विधिपूर्वक स्नान किया। (६१-६३)

स्नान करने के उपरान्त भक्ति से शङ्कर की पूजा कर देवी गृह में चली गयीं। तदनन्तर महादेव ने भी आकर उसी पवित्र आसन पर स्नान किया। उसी आसन के नीचे वह मलपुरुष पड़ा था। उमा के स्वेद एवं जल और भस्म से युक्त शङ्कर के स्वेद का सम्पर्क होने से वह उत्तम शुण्ड से फूत्कार करते हुए उठा। उसे अपना पुत्र जानकर भुवनेश्वर प्रसन्न हो गये। (६४-६६)

भग के नेत्र को नष्ट करने वाले महादेव ने उसे लेकर नन्दी से कहा—(यह मेरा पुत्र है)। स्नानोपरान्त शिव ने स्तुतियों से देवताओं की तथा जल से पितरों की भी पूजा की। (६७)

तदनन्तर सहस्रनाम का जप कर वे उमा के पास गये। देवी के पास जाकर शूलधारी शङ्कर ने हँसते हुए यह वचन कहा—हे शैलनन्दिनी! तुम अपने गुणयुक्त पुत्र को देखो। ऐसा कहे जाने पर पार्वती ने जाकर यह आश्चर्य देखा कि उनके अंग के मल से दिव्य हाथी के मुख वाला मनुष्य बन गया है। तदनन्तर गिरिजा ने प्रीतिपूर्वक उस पुत्र का आलिङ्गन किया। (६८-७०)

तदुपरान्त उसके सिर को सूँघकर शम्भु ने उमा से कहा—हे देवि! तुम्हारा यह पुत्र बिना नायक के उत्पन्न हुआ है अतः इसका नाम विनायक होगा। यह देवादिकों के सहस्रों विघ्नों को करेगा। (७१-७२)

हे देवि! समस्त चराचर लोक इसकी पूजा करेंगे। देवी से ऐसा कहकर उन्होंने पुत्र विनायक को घटोदर नामक श्रेष्ठ गण, घोर मातृगणों तथा विघ्नकारी भूतों को सहायक बनाया। देवी की प्रीति के लिए परमेश ने उन सबकी सृष्टि की। अपने पुत्र को देखकर देवी को भी परम आनन्द प्राप्त हुआ। (७३-७५)

तदनन्तर देवी शम्भु के साथ सुन्दर कन्दराओं वाले मन्दराचल पर रमण करने लगीं। हे विभो! इसी प्रकार यह देवी पुनः कात्यायनी हुईं थीं जिन्होंने प्राचीन समय

एवं भूयोऽभवद् देवी इयं कात्यायनी विभो ।
या जघान महादैत्यौ पुरा शुम्भनिशुम्भकौ ॥ ७६
एतत् तवोक्तं वचनं शुभाख्यं
यथोद्भवं पर्वततो मृडान्याः ।
स्वर्ग्यं यशस्यं च तथाघहारि
आख्यानमूर्जस्करमद्रिपुत्र्याः ॥ ७७

इति श्रीवामनपुराणे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

२९

पुलस्त्य उवाच ।
कश्यपस्य दनुर्नाम भार्यासीद् द्विजसत्तम ।
तस्याः पुत्रत्रयं चासीत् सहस्राक्षाद् बलाधिकम् ॥ १
ज्येष्ठः शुम्भ इति ख्यातो निशुम्भश्चापरोऽसुरः ।
तृतीयो नमुचिर्नाम महाबलसमन्वितः ॥ २
योऽसौ नमुचिरित्येवं ख्यातो दनुसुतोऽसुरः ।
तं हन्तुमिच्छति हरिः प्रगृह्य कुलिशं करे ॥ ३
त्रिदिवेशं समायान्तं नमुचिस्तद्भयादथ ।
प्रविवेश रथं भानोस्ततो नाशकदच्युतः ॥ ४
शक्रस्तेनाथ समयं चक्रे सह महात्मना ।
अवध्यत्वं वरं प्रादाच्छस्त्रैरस्त्रैश्च नारद ॥ ५
ततोऽवध्यत्वमाज्ञाय शस्त्रादस्त्राच्च नारद ।
संत्यज्य भास्कररथं पातालमुपयादथ ॥ ६
स निमज्जन्नपि जले सामुद्रं फेनमुत्तमम् ।
ददर्श दानवपतिस्त प्रगृह्येदमब्रवीत् ॥ ७
यदुक्तं देवपतिना वासवेन वचोऽस्तु तत् ।

ने शुम्भ और निशुम्भ नामक दो महान् दैत्यों का संहार किया था। (७६)

मृडानी जिस प्रकार पर्वत से उत्पन्न हुई थीं उस शुभ आख्यान को मैंने तुमसे कहा। पर्वतनन्दिनी का यह आख्यान स्वर्ग एवं यश को देने वाला, अघहारी तथा ओजस्वी है। (७७)

श्रीवामनपुराण में अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

२९

पुलस्त्य ने कहा—हे द्विजसत्तम! कश्यप की दनु नाम की पत्नी थी। उसे इन्द्र से अधिक बल वाले तीन पुत्र थे। (१)

उनमें बड़े का नाम शुम्भ, मझले का नाम निशुम्भ, और महाबलवान तृतीय पुत्र का नाम नमुचि था। (२)

हाथ में वज्र धारण कर इन्द्र ने नमुचि नाम से प्रसिद्ध दनुपुत्र असुर को मारना चाहा। (३)

तदनन्तर इन्द्र को आते देखकर उनके भय से नमुचि सूर्य के रथ में प्रविष्ट हो गया। इससे इन्द्र उसे मार न सके। (४)

हे नारद! तदुपरान्त महात्मा इन्द्र ने उससे सन्धि कर लिया और उसे अस्त्र शस्त्रों से अवध्य होने का वर दिया। (५)

हे नारद! तदनन्तर अपने को अस्त्र शस्त्रों से अवध्य हुआ जानकर वह असुर सूर्य के रथ को छोड़कर पाताल चला गया। (६)

उस दानवपति ने जल में स्नान करते हुए समुद्र के उत्तम फेन को देखा और उसे ग्रहण कर यह वचन कहा— (७)

देवराज इन्द्र ने जो वचन कहा वह सफल हो। यह

अयं स्पृशतु मां फेनः कराभ्यां गृह्य दानवः ॥ ८
मुखनासाक्षिकर्णादीन् संममार्ज यथेच्छया ।
तस्मिञ्छक्रोऽसृजद् वज्रमन्तर्हितमपीश्वरः ॥ ९
तेनासौ भग्ननासास्यः पपात च ममार च ।
समये च तथा नष्टे ब्रह्महत्याऽस्पृशद्धरिम् ॥ १०
स वै तीर्थं समासाद्य स्नातः पापादमुच्यत ।
ततोऽस्य भ्रातरौ वीरौ क्रुद्धौ शुम्भनिशुम्भकौ ॥ ११
उद्योगं सुमहत्कृत्वा सुरान् बाधितुमागतौ ।
सुरास्तेऽपि सहस्राक्षं पुरस्कृत्य विनिर्ययुः ॥ १२
जितास्त्वाक्रम्य दैत्याभ्यां सबला. सपदानुगाः ।
शक्रस्याहृत्य च गजं याम्यं च महिषं बलात् ॥ १३
वरुणस्य मणिच्छत्रं गदां वै मारुतस्य च ।
निधयः पद्मशङ्खाद्या हृतास्त्वाक्रम्य दानवैः ॥ १४
त्रैलोक्यं वशगं चास्ते ताभ्यां नारद सर्वतः ।
तदाजग्मुर्महीपृष्ठं ददृशुस्ते महासुरम् ॥ १५
रक्तबीजमथोचुस्ते को भवानिति सोऽब्रवीत् ।
स चाह दैत्योऽस्मि विभो सचिवो महिषस्य तु ॥ १६
रक्तबीजेति विख्यातो महावीर्यो महाभुजः ।
अमात्यौ रुचिरौ वीरौ चण्डमुण्डाविति श्रुतौ ॥ १७
तावास्तां सलिले मग्नौ भयाद् देव्या महाभुजौ ।
यस्त्वासीत् प्रभुरस्माकं महिषो नाम दानवः ॥ १८
निहतः स महादेव्या विन्ध्यशैले सुविस्तृते ।
भवन्तौ कस्य तनयौ कौ वा नाम्ना परिश्रुतौ ।
किंवीर्यौ किंप्रभावौ च एतच्छंसितुमर्हथः ॥ १९

शुम्भनिशुम्भावूचतुः ।

अहं शुंभ इति ख्यातो दनोः पुत्रस्तथौरसः ।
निशुम्भोऽयं मम भ्राता कनीयान् शत्रुसूदनः ॥ २०
अनेन बहुशो देवाः सेन्द्ररुद्रदिवाकराः ।
समेत्य निर्जिता वीरा येऽन्ये च बलवत्तराः ॥ २१
तदुच्यतां कया दैत्यो निहतो महिषासुरः ।

फेन मेरा स्पर्श करे। ऐसा कहकर वह दानव दोनों हाथों से फेन लेकर अपनी इच्छा के अनुसार उससे अपने मुख, नाक और कर्ण आदि का मार्जन करने लगा। उस (फेन) में इन्द्र देव ने छिपे हुए वज्र की सृष्टि की। (८-९)

उससे नाक और मुख टूट जाने से वह गिर पड़ा और मर गया। प्रतिज्ञा के टूट जाने पर इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा। (१०)

वे तीर्थों में जाकर स्नान करने से पापमुक्त हुए। तदनन्तर शुम्भ और निशुम्भ नामक उसके दो वीर भाई अत्यन्त क्रुद्ध हुए। (११)

वे दोनों महान् उद्योग कर देवताओं को मारने के लिए आये। वे सभी देवता भी इन्द्र को आगे कर निकल पड़े। (१२)

उन दोनों दैत्यों ने आक्रमण कर सेना और अनुचरों के साथ देवताओं को हरा दिया। इन्द्र के हाथी, यम के महिष, वरुण के मणिमय छत्र, वायु की गदा तथा पद्मशङ्खादि निधियों को भी दानवों ने आक्रमण कर हरण कर लिया। (१३-१४)

हे नारद! उन दोनों ने तीनों लोकों को वशीभूत कर लिया। उसके बाद वे सभी भूतल पर आये और रक्तबीज नामक एक महान् असुर को देख कर उससे पूछे—आप कौन हैं? उसने उत्तर दिया—हे विभो! मैं महिषासुर का मन्त्री एक दैत्य हूँ। (१५-१६)

मैं रक्तबीज नाम से प्रसिद्ध महापराक्रमी एवं विशाल भुजाओं वाला (दैत्य) हूँ। चण्ड और मुण्ड नाम से प्रसिद्ध (महिष) के सुन्दर वीर महाबाहु दो अमात्य देवी के भय से जल में मग्न हो गये हैं। महादेवी ने सुविस्तृत विन्ध्यपर्वत पर हमारे स्वामी महिष नामक दानव को मार डाला है। आप मुझे बतलायें कि आप किसके पुत्र हैं? तथा आप किस नाम से प्रसिद्ध हैं? आप में कितना पराक्रम एवं प्रभाव है? (१७-१९)

शुम्भ और निशुम्भ ने कहा—मैं दनु का औरस पुत्र शुम्भ नाम से विख्यात हूँ। यह मेरा छोटा भाई निशुम्भ शत्रु समूह का नाशक है। (२०)

इस निशुम्भ ने इन्द्र, रुद्र, दिवाकर आदि देवताओं तथा अन्य अनेक बलवान वीरों को बहुत बार आक्रमण कर हरा दिया है। (२१)

अब बतलाओ कि किस स्त्री ने दैत्य महिषासुर को

यावत्तां घातयिष्यावः स्वसैन्यपरिवारितौ ॥ २२
इत्थं तयोस्तु वदतोर्नर्मदायास्तटे मुने ।
जलवासाद् विनिष्क्रान्तौ चण्डमुण्डौ च दानवौ ॥ २३
ततोऽभ्येत्यासुरश्रेष्ठौ रक्तबीजं समाश्रितौ ।
ऊचतुर्वचनं श्लक्ष्णं कोऽयं तव पुरस्सरः ॥ २४
स चोभौ प्राह दैत्योऽसौ शुम्भो नाम सुरार्दनः ।
कनीयानस्य च भ्राता द्वितीयो हि निशुम्भकः ॥ २५
एतावाश्रित्य तां दुष्टां महिषघ्नीं न संशयः ।
अहं विवाहयिष्यामि रत्नभूतां जगत्त्रये ॥ २६

चण्ड उवाच ।

न सम्यगुक्तं भवता रत्नार्होऽसि न साम्प्रतम् ।
यः प्रभुः स्यात्स रत्नार्हस्तस्माच्छुम्भाय योजयताम्॥२७
तदाचचक्षे शुम्भाय निशुम्भाय च कौशिकीम् ।
भूयोऽपि तद्विधां जातां कौशिकीं रूपशालिनीम् ॥ २८
ततः शुम्भो निजं दूतं सुग्रीवं नाम दानवम् ।
दैत्यं च प्रेषयामास मत्काशं विन्ध्यवासिनीम् ॥ २९
स गत्वा तद्वचः श्रुत्वा देव्यागत्य महासुरः ।
निशुम्भशुम्भावाहेदं मन्युनाभिपरिप्लुतः ॥ ३०

सुग्रीव उवाच ।

युवयोर्वचनाद् देवीं प्रदेष्टुं दैत्यनायकौ ।
गतवानहमत्रैव तामहं वाक्यमब्रुवम् ॥ ३१
यथा शुम्भोऽतिविख्यातः ककुद्मी दानवेष्वपि ।
स त्वां प्राह महाभागे प्रभुरस्मि जगत्त्रये ॥ ३२
यानि स्वर्गे महीपृष्ठे पाताले चापि सुन्दरि ।
रत्नानि सन्ति तावन्ति मम वेश्मनि नित्यशः ॥ ३३
त्वमुक्ता चण्डमुण्डाभ्यां रत्नभूता कृशोदरि ।
तस्माद् भजस्व मां वा त्वं निशुम्भं वा ममानुजम् ॥ ३४
सा चाह मां विहसती शृणु सुग्रीव मद्वचः ।
सत्यमुक्तं त्रिलोकेशः शुम्भो रत्नार्ह एव च ॥ ३५
किं त्वस्ति दुर्विनीताया हृदये मे मनोरथः ।

मारा है ? हम दोनों अपने सैन्यों को साथ लेकर उस स्त्री का संहार करेंगे । (२२)

हे मुनि ! नर्मदा तट पर इस प्रकार दोनों के बात करते समय चण्ड और मुण्ड नामक दोनों दानव जल से निकल आये । (२३)

उन दोनों ने रक्तबीज के पास जाकर मधुर शब्दों में पूछा—तुम्हारे सम्मुख यह कौन खड़ा है ? उसने उन दोनों से कहा—यह देवताओं को कष्ट देने वाला शुम्भ नामक दैत्य है एवं यह दूसरा निशुम्भ नामका इसका छोटा भाई है । (२४-२५)

मैं निस्सन्देह इन दोनों की सहायता से त्रिलोक में रत्नस्वरूपा तथा महिषासुर का नाश करने वाली उस दुष्टा से विवाह करूँगा । (२६)

चण्ड ने कहा—आप ने उचित नहीं कहा । आप अभी रत्न के योग्य नहीं है । राजा ही रत्न के योग्य होता है । अत शुम्भ का ही इससे संयुक्त करो । (२७)

तदनन्तर उन्होंने शुम्भ और निशुम्भ से उस प्रकार उत्पन्न स्वरूपवती कौशिकी का वर्णन किया । (२८)

तब शुम्भ ने अपने दूत सुग्रीव नामक दानव को विन्ध्य-वासिनी के पास भेजा । (२९)

वह महासुर सुग्रीव वहाँ गया एव देवी की बात सुनकर क्रोध से जलते हुए उसने आकर निशुम्भ और शुम्भ से कहा । (३०)

सुग्रीव ने कहा—हे दैत्यनायको ! आप लोगों के कथनानुसार देवी से कहने के लिये मैं गया था । मैंने अभी जाकर उससे कहा— (३१)

हे भाग्यशालिनी ! अतिविख्यात दानवश्रेष्ठ शुम्भ ने तुमसे कहा है—कि मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ । हे सुन्दरी ! स्वर्ग, पृथ्वी एव पाताल के सभी रत्न मेरे गृह मे नित्य रहते हैं । हे कृशोदरी ! चण्ड और मुण्ड ने तुम्हें रत्नस्वरूपा बतलाया है । अत तुम मुझे या मेरे अनुज निशुम्भ का वरण करो । (३२-३४)

हँसती हुई उसने मुझसे कहा—हे सुग्रीव ! मेरी बात सुनो । तुमने यह सत्य कहा है कि तीनों लोकों का स्वामी शुम्भ रत्न के योग्य हैं । (३५)

किन्तु हे महासुर ! मुझ दुर्विनीता के हृदय का यह मनोरथ है कि युद्ध में मुझे जीतने वाला ही मेरा पति

अयं स्पृशतु मां फेनः कराभ्यां गृह्य दानवः ॥ ८
मुखनासाक्षिकर्णादीन् संममार्ज यथेच्छया ।
तस्मिञ्छक्रोऽसृजद् वज्रमन्तर्हितमपीश्वरः ॥ ९
तेनासौ भग्ननासास्यः पपात च ममार च ।
समये च तथा नष्टे ब्रह्महत्याऽस्पृशद्धरिम् ॥ १०
स वै तीर्थं समासाद्य स्नातः पापादमुच्यत ।
ततोऽस्य भ्रातरौ वीरौ क्रुद्धौ शुम्भनिशुम्भकौ ॥ ११
उद्योगं सुमहत्कृत्वा सुरान् बाधितुमागतौ ।
सुरास्तेऽपि सहस्राक्षं पुरस्कृत्य विनिर्ययुः ॥ १२
जितास्त्वाक्रम्य दैत्याभ्यां सबलाः सपदानुगाः ।
शक्रस्याहृत्य च गजं याम्यं च महिषं बलात् ॥ १३
वरुणस्य मणिच्छत्रं गदां वै मारुतस्य च ।
निधयः पद्मशङ्खाद्या हृतास्त्वाक्रम्य दानवैः ॥ १४
त्रैलोक्यं वशगं चास्ते ताभ्यां नारद सर्वतः ।
तदाजग्मुर्महीपृष्ठं ददृशुस्ते महासुरम् ॥ १५
रक्तबीजमथोचुस्ते को भवानिति सोऽब्रवीत् ।
स चाह दैत्योऽस्मि विभो सचिवो महिषस्य तु ॥ १६
रक्तबीजेति विख्यातो महावीर्यो महाभुजः ।
अमात्यौ रुचिरौ वीरौ चण्डमुण्डाविति श्रुतौ ॥ १७
तावारतां सलिले मग्नौ भयाद् देव्या महाभुजौ ।
यस्त्वासीत् प्रभुरस्माकं महिषो नाम दानवः ॥ १८
निहतः स महादेव्या विन्ध्यशैले सुविस्तृते ।
भवन्तौ कस्य तनयौ कौ वा नाम्ना परिश्रुतौ ।
किंवीर्यौ किंप्रभावौ च एतच्छंसितुमर्हथः ॥ १९

शुम्भनिशुम्भावूचतुः ।

अहं शुंभ इति ख्यातो दनोः पुत्रस्तथौरसः ।
निशुम्भोऽयं मम भ्राता कनीयान् शत्रुपूगहा ॥ २०
अनेन बहुशो देवाः सेन्द्ररुद्रदिवाकराः ।
समेत्य निर्जिता वीरा येऽन्ये च बलवत्तराः ॥ २१
तदुच्यतां कया दैत्यो निहतो महिषासुरः ।

फेन मेरा स्पर्श करे। ऐसा कहकर वह दानव दोनों हाथों से फेन लेकर अपनी इच्छा के अनुसार उससे अपने मुख, नाक और कर्ण आदि का मार्जन करने लगा। उस (फेन) में इन्द्र देव ने छिपे हुए वज्र की सृष्टि की। (८-९)

उससे नाक और मुख टूट जाने से वह गिर पड़ा और मर गया। प्रतिज्ञा के टूट जाने पर इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा। (१०)

वे तीर्थों में जाकर स्नान करने से पापमुक्त हुए। तदनन्तर शुम्भ और निशुम्भ नामक उसके दो वीर भाई अत्यन्त क्रुद्ध हुए। (११)

वे दोनों महान् उद्योग कर देवताओं को मारने के लिए आये। वे सभी देवता भी इन्द्र को आगे कर निकल पड़े। (१२)

उन दोनों दैत्यों ने आक्रमण कर सेना और अनुचरों के साथ देवताओं को हरा दिया। इन्द्र के हाथी, यम के महिष, वरुण के मणिमय छत्र, वायु की गदा तथा पद्मशङ्खादि निधियों को भी दानवों ने आक्रमण कर हरण कर लिया। (१३-१४)

हे नारद! उन दोनों ने तीनों लोकों को वशीभूत कर लिया। उसके बाद वे सभी भूतल पर आये और रक्तबीज नामक एक महान् असुर को देख कर उससे पूछे—आप कौन हैं? उसने उत्तर दिया—हे विभो! मैं महिषासुर का मन्त्री एक दैत्य हूँ। (१५-१६)

मैं रक्तबीज नाम से प्रसिद्ध महापराक्रमी एवं विशाल भुजाओं वाला (दैत्य) हूँ। चण्ड और मुण्ड नाम से प्रसिद्ध (महिष) के सुन्दर वीर महाबाहु दो अमात्य देवी के भय से जल मे मग्न हो गये हैं। महादेवी ने सुविस्तृत विन्ध्यपर्वत पर हमारे स्वामी महिष नामक दानव को मार डाला है। आप मुझे बतलावें कि आप किसके पुत्र हैं? तथा आप किस नाम से प्रसिद्ध हैं? आप मे कितना पराक्रम एवं प्रभाव है? (१७-१९)

शुम्भ और निशुम्भ ने कहा—मैं दनु का औरस पुत्र शुम्भ नाम से विख्यात हूँ। यह मेरा छोटा भाई निशुम्भ शत्रु-समूह का नाशक है। (२०)

इस निशुम्भ ने इन्द्र, रुद्र, दिवाकर आदि देवताओं तथा अन्य अनेक बलवान वीरों को बहुत बार आक्रमण कर हरा दिया है। (२१)

अब बतलाओ कि किस स्त्री ने दैत्य महिषासुर को

घातयिष्याव. स्वसैन्यपरिवारितौ ॥ २२
योस्तु वदतोर्नर्मदायास्तटे मुने ।
ाद् विनिष्क्रान्तौ चण्डमुण्डौ च दानवौ ॥ २३
येत्यासुरश्रेष्ठौ रक्तबीज समाश्रितौ ।
चिन श्लक्ष्ण कोऽय तव पुरस्सरः ॥ २४
ौ प्राह दैत्योऽसौ शुम्भो नाम सुरार्दनः ।
ानस्य च भ्राता द्वितीयो हि निशुम्भक. ॥ २५
श्रित्य ता दुष्टा महिषघ्नीं न सशय. ।
ाहयिष्यामि रत्नभूता जगत्त्रये ॥ २६

चण्ड उवाच ।

यगुक्त भवता रत्नार्होऽसि न साम्प्रतम् ।
. स्यात्स रत्नार्हस्तस्माच्छुम्भाय योज्यताम्॥२७
वक्षे शुम्भाय निशुम्भाय च कौशिकीम् ।
पि तद्विधा जाता कौशिकीं रूपशालिनीम् ॥ २८
ुम्भो निज दूत सुग्रीव नाम दानवम् ।
दैत्यं च प्रेषयामास सकाश विन्ध्यवासिनीम् ॥ २९
स गत्वा तद्वचः श्रुत्वा देव्यागत्य महासुर. ।
निशुम्भशुम्भावाहेद मन्युनाभिपरिप्लुतः ॥ ३०

सुग्रीव उवाच ।

युवयोर्वचनाद् देवीं प्रदेष्टुं दैत्यनायकौ ।
गतश्चानहमत्रैव तामह वाक्यमब्रुवम् ॥ ३१
यथा शुम्भोऽतिविख्यात. ककुद्मी दानवेष्वपि ।
स त्वा प्राह महाभागे प्रभुरस्मि जगत्त्रये ॥ ३२
यानि स्वर्गे महीपृष्ठे पाताले चापि सुन्दरि ।
रत्नानि सन्ति तान्यन्ति मम वेश्मनि नित्यशः ॥ ३३
त्वमुक्ता चण्डमुण्डाभ्या रत्नभूता कृशोदरि ।
तस्माद् भजस्व मा त्व निशुम्भ वा ममानुजम् ॥ ३४
सा चाह मा विहसती शृणु सुग्रीव मद्वचः ।
सत्यमुक्त त्रिलोकेशः शुम्भो रत्नार्ह एव च ॥ ३५
किं त्वस्ति दुर्विनीताया हृदये मे मनोरथः ।

ै? हम दोनों अपने सैन्यों को साथ लेकर उस सहार करेंगे । (२२)

मुनि! नर्मदा तट पर इस प्रकार दोनों के बात समय चण्ड और मुण्ड नामक दोनों दानव जल से आये। (२३)

न दोनों ने रक्तबीज के पास जाकर मधुर शब्दों ा—तुम्हारे सम्मुख यह कौन खड़ा है? उसने उन े कहा—यह देवताओं को कष्ट देने वाला शुम्भ दैत्य है एव यह दूसरा निशुम्भ नामका इसका छोटा । (२४-२५)

निरसन्देह इन दोनों की सहायता से त्रिलोक स्वरूपा तथा महिषासुर का नाश करने वाली उस ा विवाह करूँगा। (२६)

ण्ड ने कहा—आप ने उचित नहीं कहा। आप रत्न के योग्य नहीं हैं। राजा ही रत्न के होता है। अत शुम्भ का ही इससे सयुक्त (२७)

दनन्तर उन्होंने शुम्भ और निशुम्भ से उस प्रकार स्वरूपवती कौशिकी का वर्णन किया। (२८)

वासिनी के पास भेजा। (२९)

यह महासुर सुग्रीव वहाँ गया एव देवी की बात सुनकर क्रोध से जलते हुए उसने आकर निशुम्भ और शुम्भ से कहा। (३०)

सुग्रीव ने कहा—हे दैत्यनायको! आप लोगों के कथनानुसार देवी से कहने के लिये मैं गया था। मैंने अभी जाकर उससे कहा— (३१)

हे भाग्यशालिनी! अतिविख्यात दानवश्रेष्ठ शुम्भ ने तुमसे कहा है—कि मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ। हे सुन्दरी! स्वर्ग, पृथ्वी एव पाताल के सभी रत्न मेरे गृह मे नित्य रहते हैं। हे कृशोदरी! चण्ड और मुण्ड ने तुम्हें रत्नस्वरूपा बतलाया है। अत तुम मुझे या मेरे अनुज निशुम्भ का वरण करो। (३२-३४)

हँसती हुई उसने मुझसे कहा—हे सुग्रीव! मेरी बात सुनो। तुमने यह सत्य कहा है कि तीनों लोकों का स्वामी शुम्भ रत्न के योग्य हैं। (३५)

किन्तु हे महासुर! मुझ दुर्विनीता के हृदय मे यह

यो मा विजयते युद्धे स भर्ता स्यान्महासुर ॥ ३६
मया चोक्ताऽवलिप्ताऽसि यो जयेत् ससुरासुरान् ।
स त्वां कथं न जयते सा त्वमुत्तिष्ठ भामिनी ॥ ३७
साऽथ मां प्राह किं कुर्मि यदनालोचितं कृतं ।
मनोरथस्तु तद् गच्छ शुम्भाय त्वं निवेदय ॥ ३८
तयैवमुक्तस्त्वभ्यागां त्वत्सकाशं महासुर ।
सा चाग्निकोटिसदृशी मत्वैवं कुरु यत्क्षमम् ॥ ३९

पुलस्त्य उवाच ।

इति सुग्रीववचनं निशम्य स महासुरः ।
प्राह दूरस्थितं शुम्भो दानवं धूम्रलोचनम् ॥ ४०

शुम्भ उवाच ।

धूम्राक्ष गच्छ तां दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ।
सापराधां यथा दासीं कृत्वा शीघ्रमिहानय ॥ ४१
यश्चास्याः पक्षकृत् कश्चिद् भविष्यति महाबलः ।
स हन्तव्योऽविचार्यैव यदि हि स्यात् पितामहः ॥ ४२
स एवमुक्तः शुम्भेन धूम्राक्षोऽक्षौहिणीशतैः ।
वृतः षड्भिर्महातेजा विन्ध्यं गिरिमुपाद्रवत् ॥ ४३
स तत्र दृष्ट्वा तां दुर्गां भ्रान्तदृष्टिरुवाच ह ।
एह्येहि मूढे भर्तारं शुम्भमिच्छस्व कौशिकी ।
न चेद् बलान्नयिष्यामि केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ४४

श्रीदेव्युवाच ।

प्रेषितोऽसीह शुम्भेन बलान्नेतुं हि मां किल ।
तत्र किं ह्यबला कुर्याद् यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ४५

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तो विभावर्या बलवान् धूम्रलोचनः ।
समभ्यधावत् त्वरितो गदामादाय वीर्यवान् ॥ ४६
तमापतन्तं सगदं हुंकारेणैव कौशिकी ।
सबलं भस्मसाचक्रे शुष्कमग्निरिवेन्धनम् ॥ ४७

होगा । (३६)

मैंने कहा—तुम गर्विता हो गई हो । भला जिसने सभी सुरासुरों को जीत लिया है वह तुम्हें क्यों नहीं जीत लेगा । अतः हे भामिनी ! तुम उठो । (३७)

तदनन्तर उसने मुझसे कहा—मैं क्या करूँ ? बिना विचारे मैंने वैसा सकल्प कर लिया है । अतः जाकर शुम्भ से मेरी बात कहो । (३८)

अतः हे महासुर ! उसके ऐसा कहने पर मैं आप के पास आया हूँ । वह अग्निशिखा के समान है । यह जानकर आप जैसा उचित हो वैसा कार्य करें । (३९)

पुलस्त्य ने कहा—सुग्रीव के इस वचन को सुनकर उस महासुर शुम्भ ने दूर मे स्थित धूम्रलोचन दानव से कहा । (४०)

शुम्भ ने कहा—हे धूम्राक्ष ! तुम जाओ । उस दुष्टा को अपराधिनी दासी की भाँति केश खींचने से व्याकुल बना कर शीघ्र यहाँ लाओ । (४१)

यदि कोई बलशाली उसका पक्ष ग्रहण करे तो बिना विचार किये तुम उसे मार डालना । चाहे वह ब्रह्मा ही क्यों न हो । (४२)

शुम्भ के ऐसा कहने पर वह महातेजस्वी धूम्राक्ष छः सौ अक्षौहिणी[1] सेना के साथ विन्ध्य पर्वत पर गया । (४३)

वहाँ दुर्गा को देखकर उसने भ्रान्त दृष्टि होकर कहा—हे मूढे ! आओ, आओ । कौशिकी ! तुम शुम्भ को पति बनाने की इच्छा करो । अन्यथा केशाकर्षण से व्याकुल कर तुमको मैं बलपूर्वक ले जाऊँगा । (४४)

श्रीदेवी ने कहा—निश्चय ही शुम्भ ने मुझे बलपूर्वक ले जाने के लिए तुम्हें भेजा है । इसमे एक अबला क्या करेगी ? तुम जैसा चाहो वैसा करो । (४५)

पुलस्त्य ने कहा—विभावरी (देवी) के ऐसा कहने पर बलवान् एवं वीर्यवान् धूम्रलोचन शीघ्र गदा लेकर दौड़ पड़ा । (४६)

कौशिकी ने गदा लेकर आ रहे उसको हुँकार द्वारा ही सेना सहित इस प्रकार भस्मसात् कर दिया जैसे अग्नि शुष्क ईंधन को जला देता है । (४७)

१ एक अक्षौहिणी सेना में १०९३५० पैदल सिपाही, ६५६१० घुड़सवार, २१८७० रथी और २१८७० गजारोही रहते हैं ।

ततो हाहाकृतमभूज्जगत्यस्मिश्चराचरे ।
सबलं भस्मसान्नीतं कौशिक्या वीक्ष्य दानवम् ॥ ४८
तच्च शुम्भोऽपि शुश्राव महच्छब्दमुदीरितम् ।
अथादिदेश बलिनौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ ४९
रुरुं च बलिनां श्रेष्ठं तथा जग्मुर्मुदान्विताः ।
तेषां च सैन्यमतुलं गजाश्वरथसंकुलम् ॥ ५०
समाजगाम महसा यत्रास्ते कोशसंभवा ।
तदायान्तं रिपुबलं दृष्ट्वा कोटिशतावरम् ॥ ५१
सिंहोऽद्रवद् धुतसटः पाटयन् दानवान् रणे ।
कांश्चित् करप्रहारेण कांश्चिदास्येन लीलया ॥ ५२
नखैः कांश्चिदाक्रम्य उरसा प्रममाथ च ।
ते वध्यमानाः सिंहेन गिरिकन्दरवासिना ॥ ५३
भूतैश्च देव्यनुचरैश्चण्डमुण्डौ समाश्रयन् ।
तावार्त्तं स्वबलं दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताधरौ ॥ ५४
समाद्रवेतां दुर्गां वै पतङ्गाविव पावकम् ।
तावापतन्तौ रौद्री वै दृष्ट्वा क्रोधपरिप्लुता । ५५

त्रिशाखां भ्रुकुटीं वक्त्रे चकार परमेश्वरी ।
भ्रुकुटीकुटिलाद् देव्या ललाटफलकाद् द्रुतम् ।
काली करालवदना निःसृता योगिनी शुभा ॥ ५६
खट्वाङ्गमादाय करेण रौद्र-
मसिञ्च कालाञ्जनकोशमुग्रम् ।
संशुष्कगात्रा रुधिराप्लुताङ्गी
नरेन्द्रमूर्ध्नां स्रजमुद्वहन्ती ॥ ५७
कांश्चित् खड्गेन चिच्छेद खट्वाङ्गेन परान् रणे ।
न्यषूदयद् भृशं क्रुद्धा सरथाश्वगजान् रिपून् ॥ ५८
चर्माङ्कुशं मुद्गरं च सधनुष्कं सघण्टिकम् ।
कुञ्जरं सह यन्त्रेण प्रचिक्षेप मुखेऽम्बिका ॥ ५९
सचक्रकूबररथं ससारथितुरङ्गमम् ।
समं योधेन वदने क्षिप्य चर्वयतेऽम्बिका ॥ ६०
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामपरं तथा ।
पादेनाक्रम्य चैवान्यं प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ६१
ततस्तु तद् बलं देव्या भक्षितं सबलाधिपम् ।

कौशिकी द्वारा बलवान् दानव को सेना सहित भस्म किये जाते देखकर चराचर संसार में हाहाकार मच गया । (४८)

शुम्भ ने भी उस महान् शब्द को सुना। तदनन्तर उसने चण्ड एवं मुण्ड नामक दोनों महान् एवं बलवान् असुरों तथा बलवानों में श्रेष्ठ रुरु को आदेश दिया। वे प्रसन्नतापूर्वक चल दिये। हाथी, घोड़ों और रथ से पूर्ण उनकी अतुल सेना शीघ्र वहाँ पहुँची जहाँ कौशिकी उपस्थित थीं। उस समय सैकड़ों शत्रुसेना को आते देख हिलती हुई सटाओं वाला सिंह युद्ध में दानवों को विदारित करते हुए दौड़ने लगा। उसने लीलापूर्वक कुछ को हाथ के प्रहार से, कुछ को मुख से, कुछ को नख से एवं कुछ को अपनी छाती के प्रहार से व्याकुल कर दिया। गिरिकन्दरवासी सिंह एवं देवी के अनुचरस्वरूप भूतों से मारे जा रहे वे सभी चण्ड-मुण्ड की शरण में गये। अपनी सेना को आर्त्त हुई देख उन दोनों के ओठ कोप से प्रस्फुरित होने लगे। (४९-५४)

अग्नि की ओर दौड़ने वाले पतङ्गों के सदृश वे दोनों दैत्य देवी की ओर दौड़े। उन दोनों भयङ्कर दानवों को आते देखकर देवी अत्यन्त क्रोधित हुईं। (५५)

परमेश्वरी ने मुख में तीन रेखाओं वाली भृकुटि चढ़ायी। देवी के कुटिल भृकुटियुक्त ललाट फलक से शीघ्र विकटमुखवाली मङ्गलमयी योगिनी काली निकल आयीं। (५६)

उनके हाथ में भयङ्कर खट्वाङ्ग और कालाञ्जन तुल्य कोश से युक्त उग्र तलवार थी। उनका शरीर सूखा और रक्त से सना हुआ था तथा उनके गले में राजाओं के शिर की माला था। (५७)

अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने युद्ध में कुछ को खड्ग से काट डाला और हाथी, रथ एवं घोड़ों से युक्त अन्य शत्रुओं को खट्वाङ्ग से मार डाला। (५८)

तदनन्तर अम्बिका चर्म, अंकुश, मुद्गर, धनुष, घंटियों और यन्त्र सहित हाथी को अपने मुख में फेंकने लगीं। (५९)

चक्र और कूबर युक्त रथ को सारथी, घोड़े और योद्धा के साथ मुख में डालकर अम्बिका चबाने लगीं। (६०)

उन्होंने किसी को केश पकड़कर, किसी को गला पकड़कर और अन्य किसी को चरण से प्रहार कर मृत्यु के पास पहुँचा दिया। (६१)

तदनन्तर सेनापति सहित उस सेना को देवी द्वारा भक्षित हुआ देख रुरु दौड़ पड़ा। चण्डी ने स्वयं उसे देखा

रुरुर्दृष्ट्वा प्रदुद्राव तं चण्डी ददृशे स्वयम् ॥ ६२
आजघानाथ शिरसि खट्वाङ्गेन महासुरम् ।
स पपात हतो भूम्यां छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ६३
ततस्तं पतितं दृष्ट्वा पशोरिव विभावरी ।
कोशमुत्कर्तयामास कर्णादिचरणान्तिकम् ॥ ६४
सा च कोशं समादाय बबन्ध विमला जटाः ।
एका न बन्धमगमत् तामुत्पाट्याक्षिपद् भुवि ॥ ६५
सा जाता सुवरां रौद्री तैलाभ्यक्तशिरोरुहा ।
कृष्णार्धमर्धशुक्लं च धारयन्ती स्वकं वपुः ॥ ६६
साऽब्रवीद् वरमेकं तु मारयामि महासुरम् ॥
तस्या नाम तदा चक्रे चण्डमारीति विश्रुतम् ॥ ६७
प्राह गच्छस्व सुभगे चण्डमुण्डाविहानय ।
स्वयं हि मारयिष्यामि तावानेतुं त्वमर्हसि ॥ ६८
श्रुत्वैवं वचनं देव्याः साऽभ्यद्रवत तावुभौ ।
प्रदुद्रुवतुर्भयार्तौ दिशमाश्रित्य दक्षिणाम् ॥ ६९
ततस्तावपि वेगेन प्राधावत् त्यक्तवाससौ ।
साऽधिरुह्य महावेगं रासभं गरुडोपमम् ॥ ७०
यतो गतौ च तौ दैत्यौ तत्रैवानुययौ शिवा ।
सा ददर्श तदा पौण्ड्रं महिषं वै यमस्य च ॥ ७१
सा तस्योत्पाटयामास विषाणं भुजगाकृतिम् ।
तं प्रगृह्य करेणैव दानवावन्वगाज्जवात् ॥ ७२
तौ चापि भूमिं संत्यज्य जग्मतुर्गगनं तदा ।
वेगेनाभिसृता सा च रासभेन महेश्वरी ॥ ७३
ततो ददर्श गरुडं पन्नगेन्द्रं चिषादिषुम् ।
कर्कोटकं स दृष्ट्वैव ऊर्ध्वरोमा व्यजायत ॥ ७४
भयान्मार्याश्च गरुडो मांसपिण्डोपमो बभौ ।
न्यपतंस्तस्य पत्राणि रौद्राणि हि पतत्त्रिणः ॥ ७५
खगेन्द्रपत्राण्यादाय नागं कर्कोटकं तथा ।
वेगेनानुसरद् देवी चण्डमुण्डौ भयातुरौ ॥ ७६
संप्राप्तौ च तदा देव्या चण्डमुण्डौ महासुरौ ।

और खट्वाङ्ग से उस महासुर के शिरपर प्रहार किया। वह मरकर जड़ से कटे हुये वृक्ष के सदृश पृथ्वी पर गिर पड़ा। (६२ ६३)

देवी ने उसे भूमि पर गिरा हुआ देखकर पशु के सदृश उसके कान से पैर तक का कोश काट लिया। (६४)

उस कोश (चमड़े) को लेकर उन्होंने अपनी विमल जटाओं को बाँधा। उनमें एक जटा बाँधी नहीं गयी। उसे उखाड़ कर उन्होंने धरती पर फेंक दिया। (६५)

वह जटा एक भयङ्कर देवी हो गयी। उसके मस्तक के केश तैलाभ्यक्त थे एवं वह आधा काला तथा आधा सफेद वर्ण का शरीर धारण किये हुए थी। (६६)

उसने कहा—मैं एक श्रेष्ठ महासुर को मारूँगी। देवी ने तब उसका प्रसिद्ध नाम चण्डमारी रखा। (६७)

देवी ने कहा—हे सुभगे। तुम जाकर चण्ड और मुण्ड को यहाँ लाओ। मैं स्वयं उन्हें मारूँगी। उन्हें लाने में तुम समर्थ हो। (६८)

देवी के इस वचन को सुनकर वह दौड़ पड़ी। वे दोनों भयार्त्त होकर दक्षिण दिशा की ओर भाग गये। (६९)

तब चण्डमारी गरुड के सदृश महावेगयुक्त गर्दभ पर सवार होकर वेग से वस्त्रहीन उन दोनों के पीछे दौड़ी। (७०)

जहाँ वे दोनों दैत्य गये उनके पीछे शिवा भी वहाँ गई। उस समय उन्होंने यमराज के पौण्ड्र नामक महिष को देखा। (७१)

उन्होंने उस महिष के सर्पाकार शृङ्ग को उखाड़ लिया और उसे हाथ में लेकर वेगपूर्वक दानवों के पीछे दौड़ी। (७२)

दोनो दैत्य भूमि छोड़कर आकाश में चले गये। तब महेश्वरी ने अपने गधे के साथ वेगपूर्वक उन दोनों का पीछा किया। (७३)

(देवी ने) सर्पराज कर्कोटक को खाने की इच्छा वाले गरुड को देखा। (देवी को) देखते ही उनके रोंगटे खड़े हो गये। (७४)

चण्डमारी के भय से गरुड मांसपिण्ड के समान हो गया। उस पक्षी के भयङ्कर पर गिर गये। (७५)

खगेन्द्र की पाँखों तथा कर्कोटक सर्प को लेकर देवी भयार्त चण्ड और मुण्ड के पीछे दौड़ी। (७६)

तदनन्तर देवी चण्ड और मुण्ड नामक दोनों महासुरों के पास पहुँच गई एवं उन दोनों को कर्कोटक नाग से

बद्धौ कर्कोटकेनैव बद्ध्वा विन्ध्यमुपागमत् ॥ ७७
निवेदयित्वा कौशिक्यै कोशमादाय भैरवम् ।
शिरोभिर्दानवेन्द्राणां तार्क्ष्यपत्रैश्च शोभनैः ॥ ७८
कृत्वा स्रजमनौपम्यां चण्डिकायै न्यवेदयत् ।
घर्घरा च मृगेन्द्रस्य चर्मणः सा समार्पयत् ॥ ७९
स्रजमन्यैः खगेन्द्रस्य पत्रैर्मूर्ध्नि निबध्य च ।
आत्मना सा पपौ पानं रुधिरं दानवेष्वपि ॥ ८०

चण्डा त्वादाय चण्डं च मुण्डं चासुरनायकम् ।
चकार कुपिता दुर्गा विशिरस्कौ महासुरौ ॥ ८१
तयोरेवाहिना देवी शेखरं शुष्करेवती ।
कृत्वा जगाम कौशिक्याः सकाशं मार्यया सह ॥ ८२
समेत्य साब्रवीद् देवि गृह्यतां शेखरोत्तमः ।
ग्रथितो दैत्यशीर्षाभ्यां नागराजेन वेष्टितः ॥ ८३
तं शेखरं शिवा गृह्य चण्डायाः मूर्ध्नि विस्तृतम् ।
बबन्ध प्राह चैवैनां कृतं कर्म सुदारुणम् ॥ ८४

शेखरं चण्डमुण्डाभ्यां यस्माद् धारयसे शुभम् ।
तस्माल्लोके तव ख्यातिश्चामुण्डेति भविष्यति ॥ ८५

इत्येवमुक्त्वा वचनं त्रिनेत्रा
सा चण्डमुण्डस्रजधारिणीं वै ।
दिग्वाससं चाभ्यवदत् प्रतीता
निषूदय स्वारिबलान्यमूनि ॥ ८६

सा त्वेवमुक्ताऽथ विषाणकोट्या
सुवेगयुक्तेन च रासभेन ।
निषूदयन्ती रिपुसैन्यमुग्रं
चचार चान्यानसुरांश्चखाद ॥ ८७

ततोऽम्बिकायास्त्वथ चर्ममुण्डया
मार्या च सिंहेन च भूतसंघैः ।
निपात्यमाना दनुपुङ्गवास्ते
ककुद्मिनं शुम्भमुपाश्रयन्त ॥ ८८

इति श्रीवामनपुराणे एकोनत्रिंशोऽध्याय ॥२९॥

बाँधकर तथा लेकर विन्ध्य पर्वत पर आयीं। (७७)

उसने देवी के पास उन दानवों को निवेदित करने के बाद भयङ्कर कोश लेकर दानवों के मस्तकों तथा गरुड के सुन्दर पत्रों से बनी अनुपम माला बनाकर देवी को दिया एवं सिंह चर्म का घाघरा देवी को अर्पित किया। (७८-७९)

उन्होंने स्वयं गरुड के अन्य पत्रों से दूसरी माला बनाकर उसे अपने सिर में बाँध लिया और दानवों का रक्त पीने लगीं। (८०)

तदनन्तर प्रचण्ड दुर्गा ने चण्ड और असुरनायक मुण्ड को पकड़ लिया एवं क्रुद्ध होकर उन दोनों महान् असुरों का शिर काट डाला। (८१)

शुष्करेवती देवी सर्प द्वारा उन के मस्तक का शिरोभूषण बनाकर चण्डमारी के साथ कौशिकी के निकट गईं। (८२)

वहाँ जाकर उन्होंने कहा—हे देवि ! दैत्यों के मस्तक से ग्रथित एवं नागराज से वेष्टित इस उत्तम शिरोभूषण को ग्रहण करें। (८३)

शिवा देवी ने उस विस्तृत शिरोभूषण को लेकर चामुण्डा के सिर पर उसे बाँध दिया और उनसे कहा—आपने अति भयङ्कर कार्य सम्पन्न किया है। (८४)

क्योंकि आप ने चण्ड और मुण्ड के शिरों का शुभ शिरोभूषण धारण किया है अतः आप संसार में चामुण्डा नाम से विख्यात होंगी। (८५)

चण्ड और मुण्ड की माला धारण करने वाली उन देवी से त्रिनेत्रा ने ऐसा कहकर दिगम्बरा से कहा—तुम अपने इन शत्रुसैन्यों का संहार करो। (८६)

ऐसा कहे जाने पर अत्यन्त वेगयुक्त रासभ के साथ वह देवी विषाण के अग्र भाग द्वारा उग्र शत्रु सैन्य का संहार करती हुई घूमने एवं असुरों को खाने लगीं। (८७)

तदनन्तर अम्बिका के अनुयायियों, चर्ममुण्डा मारी, सिंह एवं भूतगणों द्वारा मारे जा रहे वे श्रेष्ठ दानव अपने नायक शुम्भ की शरण में गये। (८८)

श्रीवामनपुराण में उनतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२९॥

पुलस्त्य उवाच ।

चण्डमुण्डौ च निहतौ दृष्ट्वा सैन्यं च विद्रुतम् ।
समादिदेशातिबलं रक्तबीजं महासुरम् ।
अक्षौहिणीनां त्रिंशद्भिः कोटिभिः परिवारितम् ॥ १
तमापतन्तं दैत्यानां बलं दृष्ट्वैव चण्डिका ।
मुमोच सिंहनादं वै ताभ्यां सह महेश्वरी ॥ २
निनदन्त्यास्ततो देव्या ब्रह्माणी मुखतोऽभवत् ।
हंसयुक्तविमानस्था साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥ ३
माहेश्वरी त्रिनेत्रा च वृषारूढा त्रिशूलिनी ।
महाहिवलया रौद्रा जाता कुण्डलिनी क्षणात् ॥ ४
कण्ठादथ च कौमारी बर्हिपत्रा च शक्तिनी ।
समुद्भूता च देवर्षे मयूरवरवाहना ॥ ५
बाहुभ्यां गरुडारूढा शङ्खचक्रगदासिनी ।
शार्ङ्गबाणधरा जाता वैष्णवी रूपशालिनी ॥ ६
महोग्रमुशला रौद्रा दंष्ट्रोल्लिखितभूतला ।
वाराही पृष्ठतो जाता शेषनागोपरि स्थिता ॥ ७
वज्राङ्कुशोद्यतकरा नानालंकारभूषिता ।
जाता गजेन्द्रपृष्ठस्था माहेन्द्री स्तनमण्डलात् ॥ ८
विक्षिपन्ती सटाक्षेपैर्ग्रहनक्षत्रतारकाः ।
नखिनी हृदयाज्जाता नारसिंही सुदारुणा ॥ ९
ताभिर्निपात्यमानं तु निरीक्ष्य बलमासुरम् ।
ननाद भूयो नादान् वै चण्डिका निर्भया रिपून् ।
तन्निनादं महच्छ्रुत्वा त्रैलोक्यप्रतिपूरकम् ॥ १०
समाजगाम देवेशः शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
अभ्येत्य वन्द्य चैवैनां प्राह वाक्यं तदाऽम्बिके ॥ ११
समायातोऽस्मि वै दुर्गे देह्याज्ञां किं करोमि ते ।
तद्वाक्यसमकालं च देव्या देहोद्भवा शिवा ॥ १२
जाता सा चाह देवेशं गच्छ दौत्येन शंकर ।

३०

पुलस्त्य ने कहा—चण्ड-मुण्ड को मरा हुआ और सैनिकों को पलायित देखकर शुम्भ ने अत्यधिक बलवान् महासुर रक्तबीज को आदेश दिया। तीस करोड़ अक्षौहिणी सेना से युक्त दैत्यों की उस सेना को आती हुई देखकर महेश्वरी चण्डिका ने उन दोनों देवियों के साथ सिंहनाद किया। (१-२)

इसके बाद सिंहनाद करती हुई देवी के मुख से हंस-युक्त विमान पर बैठी हुई तथा अक्षमाला और कमण्डलु से युक्त ब्रह्माणी उत्पन्न हुई तथा तीन नेत्रोंवाली, वृष पर आरूढ़, त्रिशूल को धारण करने वाली, महासर्प के कंगन से युक्त कुण्डलधारिणी माहेश्वरी भी उसी क्षण उत्पन्न हुई। (३-४)

हे देवर्षे! देवी के कण्ठ से मोरपंख से अलङ्कृत, शक्ति धारिणी एवं मयूर के श्रेष्ठ वाहन पर आरूढ कौमारी उत्पन्न हुई। (५)

देवी की दोनों भुजाओं से गरुड़ पर सवार, शंख, चक्र, गदा, तलवार एवं धनुष बाण धारण करने वाली रूप वती वैष्णवी शक्ति उत्पन्न हुई। (६)

देवी के पीठ से महाभयङ्कर मुशल से युक्त, दाढ़ों से पृथ्वी को खोदने वाली शेषनाग के ऊपर आरूढ वाराही शक्ति उत्पन्न हुई। (७)

हाथ में वज्र और अंकुश को लिये, अनेक प्रकार के आभूषणों से विभूषित गजराज की पीठ पर बैठी हुई माहेन्द्री शक्ति स्तनमण्डल से उत्पन्न हुई। (८)

अयाल के हिलाने से ग्रह, नक्षत्र और ताराओं को विक्षिप्त करती हुई नखोंवाली अत्यन्त भयंकर नारसिंही-शक्ति देवी के हृदय से उत्पन्न हुई। (९)

उन शक्तियों द्वारा मारी जाती हुई असुर-सेना एवं शत्रुओं को देखकर चण्डिका ने घोर गर्जन किया। तीनों लोकों को पूरित करने वाले उस गर्जन को सुनकर शूलपाणि, त्रिलोचन महादेव देवी के समीप आए और उनको प्रणाम कर यह कहा—"हे अम्बिके! हे दुर्गे! मैं आ गया हूँ। मैं तुम्हारा क्या कार्य करूँ? मुझे आज्ञा दो। उस वाक्य के साथ ही देवी के देह से शिवा उत्पन्न हुई। उन्होंने देवेश्वर से कहा, "हे शङ्कर!

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च यदि जीवितुमिच्छथ ॥ १३
यद् गच्छध्वं दुराचाराः सप्तमं हि रसातलम्।
वासवो लभतां स्वर्गं देवाः सन्तु गतव्यथाः ॥ १४
यजन्तु ब्राह्मणाद्यामी वर्णा यज्ञांश्च साम्प्रतम्।
नोचेद् बलावलेपेन भवन्तो योद्धुमिच्छथ ॥ १५
तदागच्छध्वमव्यग्रा एषाऽहं विनिषूदये।
यतस्तु सा शिवं दौत्ये न्ययोजयत नारद ॥ १६
ततो नाम महादेव्याः शिवदूतीत्यजायत।
ते चापि शंकरवचः श्रुत्वा गर्वसमन्वितम् ॥
हुंकृत्वाऽभ्यद्रवन् सर्वे यत्र कात्यायनी स्थिता ॥ १७
ततः शरैः शक्तिभिरङ्कुशैर्वरैः
परश्वधैः शूलभुशुण्डिपट्टिशैः।
प्रासैः सुतीक्ष्णैः परिघैश्च विस्तृत-
र्ववर्षतुर्दैत्यवरौ सुरेश्वरीम् ॥ १८
सा चापि बाणैर्वरकार्मुकच्युतैश्
चिच्छेद शस्त्राण्यथ बाहुभिः सह।

जघान चान्यान् रणचण्डविक्रमा
महासुरान् बाणशतैर्महेश्वरी ॥ १९
मारी त्रिशूलेन जघान चान्यान्
खट्वाङ्गपातैरपरांश्च कौशिकी।
महाजलक्षेपहतप्रभावान्
ब्राह्मी तथान्यानसुरांश्चकार ॥ २०
माहेश्वरी शूलविदारितोरसश्
चकार दग्धानपरांश्च वैष्णवी।
शक्त्या कुमारी कुलिशेन चैन्द्री
तुण्डेन चक्रेण वराहरूपिणी ॥ २१
नखैर्विभिन्नानपि नारसिंही
अट्टाट्टहासैरपि रुद्रदूती।
रुद्रस्त्रिशूलेन तथैव चान्यान्
विनायकश्चापि परश्वधेन ॥ २२
एवं हि देव्या विविधैस्तु रूपै-
र्निपात्यमाना दनुपुंगवास्ते।

आप दूत बनकर जाइये और शुम्भ-निशुम्भ से कहिए कि हे दुराचारियो! यदि तुम लोग जीना चाहते हो, तो सातवें रसातल लोक में चले जाओ। इन्द्र को स्वर्ग की प्राप्ति हो एवं देवगण व्यथा रहित हो जाँय। (१०-१४)

ये ब्राह्मण आदि वर्ण उचित रीति से यज्ञ करें। अन्यथा यदि तुम लोग बल के घमण्ड से युद्ध करना चाहते हो—तो आ जाओ। यह मैं व्यग्र न होती हुई तुम लोगों का संहार करूँगी। हे नारद! क्योंकि उन्होंने शिव को दूत बनाया अत महादेवी का नाम शिवदूती हुआ। वे सारे असुर भी शङ्कर के गर्वयुक्त वचन को सुनकर हुँकार करते हुए जहाँ कात्यायनी स्थित थीं वहाँ दौड़े। (१५-१७)

तदनन्तर दोनों असुर सुरेश्वरी के ऊपर बाण, शक्ति, अंकुश, श्रेष्ठ कुठार, शूल, भुशुण्डी, पट्टिश, तीक्ष्ण प्रास और विशाल परिघ आदि अस्त्रों की वर्षा करने लगे। (१८)

संग्राम में प्रचण्ड विक्रमशालिनी उस महेश्वरी ने भी श्रेष्ठ धनुष से निकले बाणों द्वारा असुरों के शस्त्रों को उनकी बाहुओं सहित काट दिया एवं सैकड़ों बाणों से अन्य असुरों को मार डाला। (१९)

मारी ने त्रिशूल से अनेकों को मारा, कौशिकी ने खट्वाङ्ग के प्रहार से बहुतों का वध किया तथा ब्राह्मी ने जल के प्रक्षेप से दूसरे अनेक असुरों को हतप्रभ कर दिया। (२०)

माहेश्वरी ने शूल से बहुत से असुरों का वक्षस्थल विदीर्ण किया। वैष्णवी ने बहुतों को जला डाला। कुमारी ने शक्ति से, ऐन्द्री ने वज्र से, वाराही ने मुख तथा चक्र से असुरों का संहार किया। (२१)

नारसिंही ने नखों के प्रहार से दैत्यों को विदीर्ण किया, शिवदूती ने अट्टहास से, रुद्र ने त्रिशूल से एवं विनायक ने फरसे के प्रहार से अन्य असुरों नष्ट किया। (२२)

इस प्रकार देवी के अनेक रूपों द्वारा मारे जाते हुए

तथाऽपरे विलुलितकेशपाशा
विशीर्णवर्माभरणा दिगम्बराः ।
निपातिता धरणितले मृडान्या
प्रदुद्रुवुर्गिरिवरमुह्य दैत्याः ॥ ३२
विशीर्णवर्मायुधभूषणं तत्
बलं निरीक्ष्यैव हि दानवेन्द्रः ।
विशीर्णचक्राक्षरथो निशुम्भः
क्रोधान्मृडानीं समुपाजगाम ॥ ३३
खड्गं समादाय च चर्म भास्वरं
धुन्वन् शिरः प्रेक्ष्य च रूपमस्याः ।
संस्तम्भमोहज्वरपीडितोऽथ
चित्रे यथाऽसौ लिखितो बभूव ॥ ३४
तं स्तम्भितं वीक्ष्य सुरारिमग्रे
प्रोवाच देवी वचनं विहस्य ।
अनेन वीर्येण सुरास्त्वया जिता
अनेन मां प्रार्थयसे बलेन ॥ ३५

श्रुत्वा तु वाक्यं कौशिक्या दानवः सुचिरादिव ।
प्रोवाच चिन्तयित्वाऽथ वचनं वदतां वरः ॥ ३६
सुकुमारशरीरोऽयं मच्छस्त्रपतनादपि ।
शतधा यास्यते भीरु आमपात्रमिवाम्भसि ॥ ३७
एतद् विचिन्तयन्नर्थं त्वां प्रहर्तुं न सुन्दरि ।
करोमि बुद्धिं तस्मात् त्वं मां भजस्वायतेक्षणे ॥ ३८
मम खड्गनिपातं हि नेन्द्रो धारयितुं क्षमः ।
निवर्त्तय मतिं युद्धाद् भार्या मे भव साम्प्रतम् ॥ ३९
इत्थं निशुम्भवचनं श्रुत्वा योगीश्वरी मुने ।
विहस्य भावगम्भीरं निशुम्भं वाक्यमब्रवीत् ॥ ४०
नाजिताऽहं रणे वीर भवे भार्या हि कस्यचित् ।
भवान् यदिह भार्यार्थी ततो मां जय संयुगे ॥ ४१
इत्येवमुक्ते वचने खड्गमुद्यम्य दानवः ।
प्रचिक्षेप तदा वेगात् कौशिकीं प्रति नारद ॥ ४२

मृडानी ने अस्त-व्यस्त केशपाश और छिन्न-भिन्न कवच वाले अनेक नग्न दैत्यों को पृथ्वी पर पटक दिया। वे दैत्य पर्वत-श्रेष्ठ को छोड़कर भाग गए। (३२)

टूटे कवच, आयुधों एवं आभूषणों से युक्त अपनी सेना को देखकर टूटे चक्र एवं धुरी वाले रथ पर आरूढ दानवेन्द्र निशुम्भ क्रोधपूर्वक मृडानी के निकट गया। (३३)

तलवार और चमकती हुई ढाल लेकर सिर हिलाते हुए यह देवी का रूप देखकर मोहज्वर से पीडित हो चित्र लिखित की भाँति स्तम्भित हो गया। (३४)

उस स्तम्भित देवशत्रु को सामने देखकर देवी ने हँसते हुए यह वचन कहा—क्या इसी पराक्रम से तुमने देवताओं को जीता है ? तथा क्या इसी बल से मुझ को (पत्नीरूप में) पाने के लिए प्रार्थना करते हो ? (३५)

कौशिकी की बात सुनने के उपरान्त देर तक सोचकर वक्ताओं में श्रेष्ठ वह दानव यह वचन बोला—(३६)

हे भीरु ! यह तुम्हारा अत्यन्त सुकुमार शरीर मेरे शस्त्रों के प्रहार से जल में कच्चे बर्तन की भाँति सैकड़ों टुकड़ों में विभक्त हो जायगा। (३७)

हे सुन्दरी ! यह सोच कर मैं तुम्हारे ऊपर प्रहार करने का विचार नहीं कर रहा हूँ। अतः हे विशालाक्षी ! तुम मुझे स्वीकार कर लो। (३८)

मेरे खड्ग के प्रहार को इन्द्र भी नहीं सहन कर सकते। तुम युद्ध की बुद्धि छोड़ दो एवं अब मेरी पत्नी बन जाओ। (३९)

हे मुनि ! योगीश्वरी ने निशुम्भ की यह बात सुन कर हँसते हुए उस से अर्थयुक्त वचन कहा— (४०)

हे वीर ! संग्राम में बिना पराजित हुये मैं किसी की भार्या नहीं बन सकती, यदि तुम मुझे स्त्री बनाना चाहते हो तो युद्ध मे मुझे पराजित करो। (४१)

हे नारद ! यह बात कहे जाने पर उस दानव ने खड्ग उठा कर कौशिकी की ओर वेग से चलाया। (४२)

तमापतन्तं निस्त्रिंशं षड्भिर्बर्हिणराजितैः ।
चिच्छेद चर्मणा सार्द्धं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४३
खड्गे सचर्मणि छिन्ने गदां गृह्य महासुरः ।
समाद्रवत् कोशभवां वायुवेगसमो जवे ॥ ४४
तस्यापतत एवाशु करौ श्लिष्टौ समौ दृढौ ।
गदया सह चिच्छेद क्षुरप्रेण रणेऽम्बिका ॥ ४५
तस्मिन्निपतिते रौद्रे सुरशत्रौ भयंकरे ।
चण्डाद्या मातरो हृष्टाश्चक्रुः किलकिलाध्वनिम् ॥ ४६
गगनस्थास्ततो देवाः शतक्रतुपुरोगमाः ।
जयस्व विजयेत्यूचुर्हृष्टाः शत्रौ निपातिते ॥ ४७
ततस्तूर्याण्यवाद्यन्त भूतसंघैः समन्ततः ।
पुष्पवृष्टिं च मुमुचुः सुराः कात्यायनीं प्रति ॥ ४८
निशुम्भं पतितं दृष्ट्वा शुम्भः क्रोधान्महामुने ।
वृन्दारकं समारुह्य पाशपाणिः समभ्यगात् ॥ ४९
तमापतन्तं दृष्ट्वाऽथ सगजं दानवेश्वरम् ।
जग्राह चतुरो बाणांश्चन्द्रार्धाकारवर्चसः ॥ ५०

क्षुरप्राभ्यां समं पादौ द्वौ चिच्छेद द्विपस्य सा ।
द्वाभ्यां कुम्भे जघानाथ हसन्ती लीलयाऽम्बिका ॥ ५१
निकृत्ताभ्यां गजः पद्भ्यां निपपात यथेच्छया ।
शक्रवज्रसमाक्रान्तं शैलराजशिरो यथा ॥ ५२
तस्यावर्जितनागस्य शुम्भस्याप्युत्पतिष्यतः ।
शिरश्चिच्छेद बाणेन कुण्डलालंकृतं शिवा ॥ ५३
छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रो निपपात सकुञ्जरः ।
यथा समहिषः क्रौञ्चो महासेनसमाहतः ॥ ५४
श्रुत्वा सुराः सुररिपू निहतौ मृडान्या
　　सेन्द्राःससूर्यमरुदश्विवसुप्रधानाः ।
आगत्य तं गिरिवरं विनयावनम्रा
　　देव्यास्तदा स्तुतिपदं त्विदमीरयन्तः ॥ ५५

देवा ऊचुः ।

नमोऽस्तु ते भगवति पापनाशिनि
　　नमोऽस्तु ते सुररिपुदर्पशातनि ।
नमोऽस्तु ते हरिहरराज्यदायिनि

ढाल के साथ अपनी ओर आती हुई उस तलवार को देवी ने मयूरपुच्छ से सुशोभित छः बाणों से काट दिया। यह (दृश्य) बड़ा ही अद्भुत हुआ। (४३)

ढाल के सहित खड्ग के कट जाने पर वह महान् असुर गदा लेकर वायु के समान वेग से कौशिकी पर झपटा।(४४)

अम्बिका ने युद्ध में आक्रमण करने वाले उस असुर की गदा सहित सुगठित एवं दृढ़ भुजाओं को क्षुरप्र (बाणों) से तत्काल काट डाला। (४५)

उस अति भयंकर देवशत्रु के गिरने पर चण्डी आदि मातृकायें प्रसन्न होकर किलकारी करने लगीं। (४६)

तदनन्तर आकाश में स्थित इन्द्रादि देवगण शत्रु के गिर जाने पर प्रसन्न होते हुए बोले हे विजये! तुम्हारी जय हो। (४७)

तदुपरान्त चारों ओर भूतगण भेरी बजाने लगे और देवगण कात्यायनी के ऊपर पुष्पवृष्टि करने लगे। (४८)

हे महामुनि! निशुम्भ को गिरा हुआ देखकर शुम्भ क्रोध से हाथ में पाश लिये हाथी पर चढ़कर आया। (४९)

गजारूढ़ दानवेश्वर को आते देख (देवी ने) चमकते हुए अर्धचन्द्राकार चार बाणों को ग्रहण किया। (५०)

उस अम्बिका ने लीलापूर्वक हँसते हुए दो तीक्ष्ण बाणों से उस हाथी के दो पैरों को काट दिया एवं दो बाणों से उसके कुम्भस्थल पर प्रहार किया। (५१)

दोनों पैरों के कट जाने पर वह हाथी इन्द्र के वज्र से आहत शैलराज के शिखर की भाँति अपने आप ही गिर पड़ा। (५२)

शिवा ने मारे गए हाथी पर से उछलने वाले शुम्भ का कुण्डलभूषित शिर बाण से काट दिया। (५३)

शिर कट जाने पर दैत्येन्द्र हाथी सहित इस प्रकार गिर पड़ा जैसे महासेन कार्तिकेय द्वारा आहत क्रौञ्च महिष के साथ गिरा था। (५४)

मृडानी द्वारा दोनों देवशत्रुओं का मारा जाना सुन कर इन्द्रसहित सूर्य, मरुत्, अश्विनीकुमार एवं वसुगण इत्यादि देवता उस श्रेष्ठ पर्वत पर आए एवं विनयपूर्वक देवी की इस प्रकार स्तुति करने लगे। (५५)

देवताओं ने कहा—हे भगवति! हे पापनाशिनि! आप को नमस्कार है। हे सुरशत्रुओं के दर्प का संहार करने वाली! आप को नमस्कार है। हे विष्णु और शंकर को राज्य देने वाली! आप को नमस्कार है। हे यज्ञभोक्ता

नमोऽस्तु ते मरुगुणकार्यकारिणि ॥ ५६
नमोऽस्तु ते त्रिदशरिपुक्षयंकरि
नमोऽस्तु ते शतमखपादपूजिते ।
नमोऽस्तु ते महिषविनाशकारिणि
नमोऽस्तु ते हरिहरभास्करस्तुते ॥ ५७
नमोऽस्तु तेऽष्टादशबाहुशालिनि
नमोऽस्तु ते शुम्भनिशुम्भघातिनि ।
नमोऽस्तु लोकार्तिहरे त्रिशूलिनि
नमोऽस्तु नारायणि चक्रधारिणि ॥ ५८
नमोऽस्तु वाराहि सदा धराधरे
त्वां नारसिंहि प्रणता नमोऽस्तु ते ।
नमोऽस्तु ते वज्रधरे गजध्वजे
नमोऽस्तु कौमारि मयूरवाहिनि ॥ ५९
नमोऽस्तु पैतामहहंसवाहने
नमोऽस्तु मालाविकटे सुकेशिनि ।
नमोऽस्तु ते रासभपृष्ठवाहिनि
नमोऽस्तु सर्वार्तिहरे जगन्मये ॥ ६०
नमोऽस्तु विश्वेश्वरि पाहि विश्व
निषूदयारीन् द्विजदेवतानाम् ।
नमोऽस्तु ते सर्वमयि त्रिनेत्रे
नमो नमस्ते वरदे प्रसीद ॥ ६१
ब्रह्माणी त्वं मृडानी वरशिखिगमना शक्तिहस्ता कुमारी
वाराही त्वं सुवक्त्रा खगपतिगमना वैष्णवी त्वं सशार्ङ्गी।
दुर्दृश्या नारसिंही घुरघुरितरवा त्वं तथैन्द्री सवज्रा
त्वं मारी चर्ममुण्डा शवगमनरता योगिनी योगसिद्धा॥६२
नमस्ते त्रिनेत्रे भगवति तवचरणानुषिता ये
अहरहर्विनतशिरसोऽवनता. ।
नहि नहि परिभवमस्त्यशुभं च
स्तुतिबलिकुसुमकरा. सतत ये ॥ ६३
एवं स्तुता सुरवरैः सुरशत्रुनाशिनी
प्राह प्रहस्य सुरसिद्धमहर्षिवर्यान् ।
प्राप्तो मयाऽद्भुततमो भवता प्रसादात्

देवों का कार्य करने वाली ! आपको नमस्कार है । (५६)

हे देवशत्रुविनाशिनी ! आपको नमस्कार है। हे इन्द्र द्वारा पूजित चरणों वाली ! आप को नमस्कार है ! हे महिषासुर विनाशिनी ! आप को नमस्कार है। हे विष्णु, शंकर एवं सूर्य से स्तुति की जाने वाली ! आपको नमस्कार है। (५७)

हे अष्टादश भुजाओंवाली ! आप को नमस्कार है। हे शुम्भ निशुम्भ का वध करने वाली ! आप को नमस्कार है। हे लोकों का दुःख हरण करने वाली ! हे त्रिशूलधारिणी ! आप को नमस्कार है। हे चक्रधारिणि नारायणि ! आपको नमस्कार है। (५८)

हे वाराहि ! हे धरा को सदा धारण करने वाली ! आप को नमस्कार है। हे नारसिंहि ! आप को हम प्रणत हैं, आपको नमस्कार है। हे वज्रधारिणि ! हे गजध्वजे ! आप को नमस्कार है। हे कौमारि ! हे मयूरवाहिनि ! आप को नमस्कार है। (५९)

हे ब्रह्मा के हंस पर बैठने वाली ! आप को नमस्कार है। हे विकटमाला धारण करने वाली ! हे सुन्दर केशों वाली ! आप को नमस्कार है। हे गर्दभ की पीठ पर बैठने वाली ! आप को नमस्कार है। हे समस्त क्लेशों का नाश करने वाली ! हे जगन्मये ! आप को नमस्कार है। (६०)

हे विश्वेश्वरि ! आपको नमस्कार है। आप विश्व की रक्षा करें तथा ब्राह्मणों और देवताओं के शत्रुओं का संहार करें। हे त्रिनेत्रे ! हे सर्वमयि ! आपको नमस्कार है। हे वरदे ! आपको बारम्बार नमस्कार है। आप प्रसन्न हों। (६१)

"ब्रह्माणी और मृडानी आप ही हैं। आप ही सुन्दर मयूर पर चलने वाली और हाथ में शक्ति धारण करने वाली कुमारी हैं। सुन्दर मुखवाली वाराही आप ही हैं तथा गरुड से चलने वाली, शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाली वैष्णवी आप ही हैं। घुर घुर शब्द करने वाली, देखने में भयंकर नारसिंही आप ही हैं। आप ही वज्रधारिणी ऐन्द्री एवं महामारी चर्ममुण्डा हैं, शव पर चलने वाली तथा योगसिद्धा योगिनी भी आप ही हैं। (६२)

हे तीन नेत्रोंवाली भगवति ! आप को नमस्कार है। आप के चरणों का आश्रय कर नम्रता से प्रतिदिन अपना सिर झुकाने वालों तथा बलि एवं फूलों को हाथ में लिये सर्वदा आपकी स्तुति करने वालों का कोई परिभव और अमङ्गल नहीं होता। (६३)

देवश्रेष्ठों के इस प्रकार स्तुति करने पर सुरशत्रुओं का संहार करने वाली देवी ने देवताओं, सिद्धों तथा श्रेष्ठ

संग्राममूर्ध्नि सुरशत्रुजयः प्रमर्दात् ॥ ६४
इमां स्तुतिं भक्तिपरा नरोत्तमा
भवद्भिरुक्तामनुकीर्त्तयन्ति ।
दुःस्वप्ननाशो भविता न संशयो
वरस्तथान्यो व्रियतामभीप्सितः ॥ ६५

देवा ऊचुः ।

यदि वरदा भवती त्रिदशानां
द्विजशिशुगोषु यतस्व हिताय ।
पुनरपि देवरिपूनपरांस्त्वं
प्रदह हुताशनतुल्यशरीरे ॥ ६६

देव्युवाच ।

भूयो भविष्याम्यसृगुक्षितानना
हराननस्वेदजलोद्भवा सुराः ।
अन्धासुरस्याग्रविपोषणे रता
नाम्ना प्रसिद्धा भुवनेषु चर्चिका ॥ ६७
भूयो वधिष्यामि सुरारिमुत्तमं
सभूय नन्दस्य गृहे यशोदया ।
तं विप्रचित्तिं लवणं तथाऽपरौ
शुम्भं निशुम्भं दशनप्रहारिणी ॥ ६८
भूयः सुरास्तिष्यगुगे निराशिनो
निरीक्ष्य मारी च गृहे शतक्रतोः ।
संभूय देव्याऽमितसत्यधामया
सुरा भरिष्यामि च शाकम्भरी वै ॥ ६९
भूयो विपक्षक्षपणाय देवा
विन्ध्ये भविष्याम्यृषिरक्षणार्थम् ।
दुर्वृत्तचेष्टान् विनिहत्य दैत्यान्
भूयः समेष्यामि सुरालयं हि ॥ ७०
यदाऽरुणाक्षो भविता महासुरः
तदा भविष्यामि हिताय देवताः ।
महालिरूपेण विनष्टजीवितं
कृत्वा समेष्यामि पुनस्त्रिविष्टपम् ॥ ७१

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा वरदा सुराणां
कृत्वा प्रणामं द्विजपुंगवानाम् ।
विसृज्य भूतानि जगाम देवी
खं सिद्धसंघैरनुगम्यमाना ॥ ७२

महर्षियों से हँसकर कहा—आप लोगों के अनुग्रह से मैंने संग्राम में (शत्रु का) मर्दन कर देवशत्रुओं पर अत्यन्त अद्भुत विजय प्राप्त की है। (६४)

आप लोगों से कही गई इस स्तुति को पढ़ने वाले भक्तिपरायण श्रेष्ठ मनुष्यों के दुःस्वप्नों का निस्सन्देह नाश होगा। आप लोग अन्य अभिलषित वर माँगें। (६५)

देवताओं ने कहा—यदि आप देवताओं को वर देना चाहती हैं तो ब्राह्मणों, बच्चों और गौओं के हित के लिए यत्न कीजिये। हे पावक के समान शरीरवाली! अन्य देवशत्रुओं को आप पुनः (भविष्य में) भस्म करें। (६६)

देवी ने कहा—हे देवो! पुनः शङ्कर के मुख के स्वेदजल से उत्पन्न होकर रक्त से रञ्जित मुखवाली होकर संसार में चर्चिका नाम से प्रसिद्ध मैं अन्धकासुर का वध करूँगी। (६७)

पुनः नन्द के घर में यशोदा से उत्पन्न होकर मैं प्रबल सुर शत्रु का वध करूँगी। वहाँ अवतार लेकर दाँतों के प्रहार से मैं विप्रचित्ति, लवणासुर एवं अन्य शुम्भ निशुम्भ दानवों का संहार करूँगी। (६८)

हे देवताओ! कलियुग में भोजन न मिलने से उत्पन्न होने वाली मारी को देखकर मैं पुनः अमितसत्यधामा देवी के साथ इन्द्र के घर शाकम्भरी के रूप में प्रकट होकर भरण करूँगी। (६९)

हे देवताओ! पुनः मैं शत्रुओं के संहार तथा ऋषियों की रक्षा के लिये विन्ध्याचल में उत्पन्न होऊँगी। हे देवो! वहाँ दुराचारी दैत्यों का नाश करने के उपरान्त पुनः स्वर्ग चली जाऊँगी। (७०)

हे देवताओ! अरुणाक्ष नामक महासुर के उत्पन्न होने पर महाभ्रमर के रूप से पुनः उत्पन्न होऊँगी एवं उसका वध कर पुनः स्वर्ग चली जाऊँगी। (७१)

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा कहने के उपरान्त द्विजवरों को प्रणाम कर एवं अन्य प्राणियों को विदाकर देवों को वर देनेवाली देवी सिद्धों सहित आकाश में चली गईं। (७२)

इदं पुराणं परमं पवित्रं
देव्या जयं मङ्गलदायि पुंसाम् ।
श्रोतव्यमेतन्नियतैः सदैव
रहोममेतद्भगवानुवाच ॥ ७२

इति श्रीवामनपुराणे त्रिंशोऽध्याय ॥३०॥

३१

नारद उवाच ।

कथं समहिषः क्रौञ्चो भिन्नः स्कन्देन सुव्रत ।
एतन्मे विस्तराद् ब्रह्मन् कथयस्वामितद्युते ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुष्व कथयिष्यामि कथां पुण्यां पुरातनीम् ।
यशोवृद्धिं कुमारस्य कार्त्तिकेयस्य नारद ॥ २
यत्तत्पीतं हुताशेन स्कन्नं शुक्रं पिनाकिनः ।
तेनाक्रान्तोऽभवद् ब्रह्मन् मन्दतेजा हुताशनः ॥ ३
ततो जगाम देवानां सकाशममितद्युतिः ।
तैश्चापि प्रहितस्तूर्णं ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ ४
स गच्छन् कुटिलां देवीं ददर्श पथि पावकः ।
तां दृष्ट्वा प्राह कुटिले तेज एतत्सुदुर्द्धरम् ॥ ५
महेश्वरेण संत्यक्तं निर्दहेद् भुवनान्यपि ।
तस्मात् प्रतीच्छ पुत्रोऽयं तव धन्यो भविष्यति ॥ ६
इत्यग्निना सा कुटिला स्मृत्वा स्वमतमुत्तमम् ।
प्रक्षिपस्वाम्भसि मम प्राह वह्निं महापगा ॥ ७
ततस्तपारपदेवी श्रावं तेनप्लवप्लुपत् ।

यह प्राचीन, परम पवित्र, मनुष्यों को मङ्गल देने वाली देवी की विजयकथा संयतचित्त मनुष्यों को सदा सुननी चाहिये । भगवान ने इसे स्वयं कहा है । (७२)

श्रीवामनपुराण में तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

३१

हुताशनोऽपि भगवान् कामचारी परिभ्रमन् ॥ ८
पञ्चवर्षसहस्राणि धृतवान् हव्यभुक् ततः ।
मांसमस्थीनि रुधिरं मेदोन्त्ररेतसी त्वचः ॥ ९
रोमश्मश्र्वक्षिकेशाद्याः सर्वे जाता हिरण्मयाः ।
हिरण्यरेता लोकेषु तेन गीतश्च पावकः ॥ १०
पञ्चवर्षसहस्राणि कुटिला ज्वलनोपमम् ।
धारयन्ती तदा गर्भं ब्रह्मणः स्थानमागता ॥ ११
तां दृष्टवान् पद्मजन्मा संतप्यन्तीं महापगाम् ।
दृष्ट्वा पप्रच्छ केनायं तव गर्भः समाहितः ॥ १२
सा चाह शाङ्करं यत्तच्छुक्रं पीतं हि वह्निना ।
तदशक्तेन तेनाद्य निक्षिप्तं मयि सत्तम ॥ १३
पञ्चवर्षसहस्राणि धारयन्त्याः पितामह ।
गर्भस्य वर्त्तते कालो न पपात च कर्हिचित् ॥ १४
तच्छ्रुत्वा भगवानाह गच्छ त्वमुदयं गिरिम् ।
तत्रास्ति योजनशतं रौद्रं शरवणं महत् ॥ १५

तत्रैनं क्षिप सुश्रोणि विस्तीर्णे गिरिसानुनि ।
दशवर्षसहस्रान्ते ततो बालो भविष्यति ॥ १६
सा श्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं रूपिणी गिरिमागता ।
आगत्य गर्भं तत्याज मुखेनैवाद्रिनन्दिनी ॥ १७
सा तु संत्यज्य तं बालं ब्रह्माणं सहसागमत् ।
आपोमयी मन्त्रवशात् संजाता कुटिला सती ॥ १८
तेजसा चापि शार्वेण रौक्मं शरवणं महत् ।
तन्निवासरताश्चान्ये पादपा मृगपक्षिणः ॥ १९
ततो दशसु पूर्णेषु शरद्दशशतेष्वथ ।
बालार्कदीप्तिः संजातो बालः कमललोचनः ॥ २०
उत्तानशायी भगवान् दिव्ये शरवणे स्थितः ।
मुखेऽङ्गुष्टं समाक्षिप्य रुरोद घनराडिव ॥ २१
एतस्मिन्नन्तरे देव्य कृत्तिकाः षट् सुतेजसः ।
ददृशुः स्वेच्छया यान्त्यो बालं शरवणे स्थितम् ॥ २२
कृपायुक्ताः समाजग्मुः यत्र स्कन्दः स्थितोऽभवत् ।

करने लगी। भगवान् अग्नि भी इच्छानुसार भ्रमण करने लगे। (८)

अग्नि ने उस तेज को पाँच हजार वर्षों तक धारण किया था। इसलिए अग्नि के मांस, हड्डी, रुधिर, मेद, आँत, रेतस्, त्वचा, रोम, दाढ़ी, मूँछ नेत्र एवं केश आदि सभी सुवर्णमय बन गये। इसी से संसार में अग्नि को हिरण्यरेता कहा जाता है। (९-१०)

तदनन्तर अग्नि तुल्य उस गर्भ को पाँच हजार वर्षों तक धारण करती हुई कुटिला ब्रह्मा के स्थान पर गई। (११)

पद्मजन्मा ब्रह्मा जी ने उस महानदी को सन्तप्त होती देखकर पूछा तुम्हारा यह गर्भ किसके द्वारा स्थापित है? (१२)

उसने कहा— हे सत्तम! अग्नि ने पिये हुए शङ्कर के उस शुक्र को असमर्थ होने के कारण मुझ मे छोड़ दिया। (१३)

हे पितामह! गर्भ धारण करते हुए पाँच सहस्र वर्ष का समय बीत गया, किन्तु किसी प्रकार इसका निर्गमन नहीं हो रहा है। (१४)

यह सुनकर भगवान् ब्रह्मा ने कहा—तुम उदयाचल पर जाओ। वहाँ शतयोजन विस्तृत सरपतों का महान् भयंकर वन है। (१५)

हे सुन्दर कटि वाली! उस विस्तृत गिरिशिखर पर इसे छोड़ दो। दश हजार वर्षों के बाद यह बालक हो जायेगा। (१६)

ब्रह्मा की बात सुनने के उपरान्त वह सुन्दरी पर्वतनन्दिनी पर्वत पर गई एवं मुख से ही (उसने) गर्भ का त्याग कर दिया। (१७)

वह उस बालक को छोड़कर शीघ्र ही ब्रह्मा के निकट गई। सती कुटिला मन्त्र (शाप) के कारण जलमयी बन गई। (१८)

शंकर के तेज से वह विशाल सरपतों का वन सुवर्णमय बन गया। वहाँ के निवासी वृक्ष, मृग एवं पक्षी भी सुवर्णमय हो गये। (१९)

तदनन्तर दश सहस्र वर्ष बीतने पर बाल सूर्य के समान तेजस्वी तथा कमल के समान नेत्रोंवाला बालक उत्पन्न हुआ। (२०)

दिव्य शरवण मे स्थित उत्तानशायी भगवान् मुख में अँगूठा डालकर बड़े मेघ के सदृश रुदन करने लगे। (२१)

इसी बीच स्वेच्छा से जाती हुई दिव्य तेजस्विनी छहों कृत्तिकाओं ने शरवण में स्थित उस बालक को देखा। (२२)

वे कृत्तिकाएँ दयायुक्त होकर वहाँ गई जहाँ कुमार स्कन्द थे। उसे दुग्धपान कराने हेतु वे परस्पर 'हम पहले,

अहं पूर्वमहं पूर्वं तस्मै स्तन्येऽभिचुक्रुशुः ॥ २३
विवदन्तीः स ता दृष्ट्वा षण्मुखः समजायत ।
अबीभरंश्च ताः सर्वाः शिशुं स्नेहाच्च कृत्तिकाः ॥ २४
भ्रियमाणः स ताभिस्तु बालो वृद्धिमगान्मुने ।
कार्त्तिकेयेति विख्यातो जातः स बलिनां वरः ॥ २५
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् पावकं प्राह पद्मजः ।
कियत्प्रमाणः पुत्रस्ते वर्त्तते साम्प्रतं गुहः ॥ २६
स तद्वचनमाकर्ण्य अज्ञानंस्तं हरात्मजम् ।
प्रोवाच पुत्रं देवेश न वेद्मि कतमो गुहः ॥ २७
तं प्राह भगवान् यत्तु तेजः पीतं पुरा त्वया ।
त्रैयम्बकं त्रिलोकेश जातः शरवणे शिशुः ॥ २८
श्रुत्वा पितामहवचः पावकस्त्वरितोऽभ्यगात् ।
वेगिनं मेषमारुह्य कुटिला तं ददर्श ह ॥ २९
ततः पप्रच्छ कुटिला शीघ्रं क व्रजसे कवे ।
सोऽब्रवीत् पुत्रदृष्ट्यर्थं जातं शरवणे शिशुम् ॥ ३०
साऽब्रवीत् तनयो मह्यं ममेत्याह च पावकः ।
विवदन्तौ ददर्शाथ स्वेच्छाचारी जनार्दनः ॥ ३१
तौ पप्रच्छ किमर्थं वा विवादमिह चक्रथः ।
तावूचतुः पुत्रहेतो रुद्रशुक्रोद्भवाय हि ॥ ३२
तावुवाच हरिर्देवो गच्छ तं त्रिपुरान्तकम् ।
स यद् वक्ष्यति देवेशस्तत्कुरुध्वमसंशयम् ॥ ३३
इत्युक्तौ वासुदेवेन कुटिलाग्नी हरान्तिकम् ।
समभ्येत्योचतुस्तथ्यं कस्य पुत्रेति नारद ॥ ३४
रुद्रस्तद्वाक्यमाकर्ण्य हर्षनिर्भरमानसः ।
दिष्ट्या दिष्ट्येति गिरिजां प्रोद्भूतपुलकोऽब्रवीत् ॥ ३५
ततोऽम्बिका प्राह हरं देव गच्छाम शिशुम् ।
प्रष्टुं समाश्रयेद् यं स तस्य पुत्रो भविष्यति ॥ ३६
बाढमित्येव भगवान् सह्युत्तस्थौ वृषध्वजः ।
सहोमया कुटिलया पावकेन च धीमता ॥ ३७
संप्राप्तास्ते शरवणं हराग्निकुटिलाम्बिकाः ।

हम पहले' कहकर विवाद करने लगीं । (२३)

उन्हें परस्पर विवाद करती हुई देखकर वह कुमार षण्मुख (छः मुख वाले) बन गये। तदनन्तर उन कृत्तिकाओं ने स्नेह पूर्वक शिशु का पोषण किया। (२४)

हे मुने! उनके द्वारा पालित होकर वह बालक बड़ा हुआ। वह बलवानों में श्रेष्ठ कार्त्तिकेय नाम से विख्यात हुआ। (२५)

हे ब्रह्मन्! इसी बीच ब्रह्मा ने अग्नि से पूछा—तुम्हारा पुत्र गुह इस समय कितना बड़ा हुआ है? (२६)

ब्रह्मा की बात सुनकर शंकर के उस पुत्र को न जानने के कारण अग्नि ने कहा—हे देवेश! मैं पुत्र को नहीं जानता। गुह कौन है? (२७)

भगवान् ने उनसे कहा—हे त्रिलोकेश! पूर्वकाल में तुम्हारे द्वारा पान किया गया शंकर का तेज शरवण में शिशुरूप से उत्पन्न हुआ है। (२८)

पितामह का वचन सुनने के उपरान्त अग्निदेव वेगवान् बकरे पर आरूढ़ होकर शीघ्र (वहाँ) गए। कुटिला ने उन्हें जाते देखा। (२९)

तदनन्तर कुटिला ने पूछा—हे अग्निदेव! आप कहाँ जा रहे हैं? उन्होंने कहा—शरवण में उत्पन्न पुत्र शिशु को देखने जा रहा हूँ। (३०)

उसने कहा कि पुत्र मेरा है एवं अग्नि ने कहा कि मेरा है। स्वेच्छा से घूम रहे जनार्दन ने उन दोनों को विवाद करते हुए देखा। (३१)

उन्होंने उन दोनों से पूछा—तुम दोनों क्यों विवाद कर रहे हो? उन दोनों ने कहा—रुद्र के शुक्र से उत्पन्न पुत्र के लिए। (३२)

विष्णु ने उन दोनों से कहा—तुम लोग त्रिपुरान्तक के समीप जाओ। वे देवेश जो कहें उसे निःसन्देह करो। (३३)

हे नारद! वासुदेव के ऐसा कहने पर कुटिला एवं अग्नि शङ्कर के निकट गए एवं उनसे यह तथ्य पूछा कि पुत्र किसका है? (३४)

उनके वचन को सुनकर शङ्कर का मन आनन्द से परिपूर्ण हो गया। उन्होंने पुलकित होकर गिरजा से कहा—भाग्य की बात है, भाग्य की बात है! (३५)

तदनन्तर अम्बिका ने शङ्कर से कहा—हे देव! हम लोग उस बालक से पूछने चलें। वह जिसका आश्रय ग्रहण करेगा उसी का पुत्र होगा। (३६)

'ठीक है' ऐसा कहते हुए वृषध्वज भगवान् शङ्कर पार्वती, कुटिला तथा बुद्धिमान् पावक के साथ उठ खड़े हुए। (३७)

शङ्कर, पार्वती, कुटिला एवं पावक शरवण में गये।

ददृशुः शिशुकं तं च कृत्तिकोत्सङ्गशायिनम् ॥ ३८
ततः स बालकस्तेषां मत्वा चिन्तितमादरात् ।
योगी चतुर्मूर्तिरभूत् षण्मुखः स शिशुस्त्वपि ॥ ३९
कुमारः शंकरमगाद् विशाखो गौरिमागमत् ।
कुटिलामगमच्छाखो महासेनोऽग्निमभ्ययात् ॥ ४०
ततः प्रीतियुतो रुद्र उमा च कुटिला तथा ।
पावकश्चापि देवेशः परां मुदमवाप च ॥ ४१
ततोऽब्रुवन् कृत्तिकास्ताः षण्मुखः किं हरात्मजः ।
ता अब्रवीद्धरः प्रीत्या विधिवद् वचनं मुने ॥ ४२
नाम्ना तु कार्त्तिकेयो हि युष्माकं तनयस्त्वसौ ।
कुटिलायाः कुमारेति पुत्रोऽयं भविताऽव्ययः ॥ ४३
स्कन्द इत्येव विख्यातो गौरीपुत्रो भवत्वसौ ।
गुह इत्येव नाम्ना च ममासौ तनयः स्मृतः ॥ ४४
महासेन इति ख्यातो हुताशस्यास्तु पुत्रकः ।
शारद्वत इति ख्यातः सुतः शरवणस्य च ॥ ४५

एवमेष महायोगी पृथिव्यां ख्यातिमेष्यति ।
षडास्यत्वान् महाबाहुः षण्मुखो नाम गीयते ॥ ४६
इत्येवमुक्त्वा भगवान् शूलपाणिः पितामहम् ।
सस्मार दैवतैः सार्द्धं तेऽप्याजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४७
प्रणिपत्य च कामारिमुमां च गिरिनन्दिनीम् ।
दृष्ट्वा हुताशनं प्रीत्या कुटिलां कृत्तिकास्तथा ॥ ४८
ददृशुर्बालमत्युग्रं षण्मुखं सूर्यसंनिभम् ।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि तेजसा स्वेन देवताः ॥ ४९
कौतुकाभिवृताः सर्वे एवमूचुः सुरोत्तमाः ।
देवकार्यं त्वया देव कृतं देव्याऽग्निना तथा ॥ ५०
तदुत्तिष्ठ व्रजामोऽथ तीर्थमौजसमव्ययम् ।
कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यामभिषिञ्चाम षण्मुखम् ॥ ५१
सेनायाः पतिरस्त्वेष देवगन्धर्वकिंनराः ।
महिषं घातयत्वेष तारकं च सुदारुणम् ॥ ५२
बाढमित्यब्रवीच्छर्वः समुत्तस्थुः सुरास्ततः ।

इन लोगों ने कृत्तिका की गोद में लेटे हुए उस शिशु को देखा। (३८)

तदनन्तर वह षण्मुख बालक आदरपूर्वक उनके विचार को समझ कर शिशु होते हुए भी योगी सदृश चार मूर्तियों का हो गया। (३९)

कुमार शङ्कर के समीप, विशाख गिरजा के निकट, शाख कुटिला के पास एवं महासेन अग्नि के समीप चले गए। (४०)

तदनन्तर प्रीतियुक्त रुद्र, उमा, कुटिला तथा देवेश्वर अग्नि ये चारों अत्यन्त आनन्दित हुए। (४१)

तदुपरान्त उन कृत्तिकाओं ने पूछा—क्या षडानन शङ्कर के पुत्र हैं? हे मुने। शङ्कर ने उन सभी से प्रीतिपूर्वक विधिवद् वचन कहा— (४२)

हे कृत्तिकाओ! कार्त्तिकेय नाम से ये तुम्हारे पुत्र होंगे तथा ये अविनाशी कुमार नाम से कुटिला के पुत्र होंगे। (४३)

ये ही स्कन्द नाम से विख्यात गौरी के पुत्र होंगे तथा गुह नाम से मेरे पुत्र होंगे। (४४)

महासेन नाम से ये अग्नि के विख्यात पुत्र होंगे तथा शारद्वत इस नाम से विख्यात ये शरवण के पुत्र होंगे। (४५)

इस प्रकार ये महायोगी पृथ्वी मे विख्यात होंगे। छः मुख होने से महाबाहु ये षण्मुख नाम से प्रसिद्ध होंगे। (४६)

इस प्रकार कह कर शूलपाणि शङ्कर ने देवताओं सहित पितामह ब्रह्मा का स्मरण किया। वे सभी शीघ्रता से वहाँ आ गए। (४७)

कामारि शङ्कर और गिरिनन्दिनी पार्वती को प्रणाम कर तथा हुताशन, कुटिला तथा कृत्तिकाओं को प्रीतिपूर्वक देखकर उन देवों ने—अतिशय उग्र, सूर्य के समान एवं अपने तेज से सभी के नेत्रों को चुराने वाले उस षण्मुख बालक को देखा। (४८-४९)

कौतुकान्वित उन श्रेष्ठ देवों ने कहा—हे देव! आपने, देवी ने एवं अग्नि ने देवताओं का कार्य कर दिया। (५०)

अत आप उठें। अब हम लोग अविनाशी औजस तीर्थ को चलें। कुरुक्षेत्र में चल कर सरस्वती में हम लोग इस षण्मुख को अभिषिक्षित करें। (५१)

हे देवो, गन्धर्वों और किन्नरो! ये हमारे सेनापति बनें और महिष तथा भयंकर तारक का वध करें। (५२)

शङ्कर ने कहा—बहुत अच्छा। तदनन्तर सभी देवता उठे और कुमार के सहित महाफलदायी कुरुक्षेत्र में

कुमारसहिता जग्मुः कुरुक्षेत्रं महाफलम् ॥ ५३
तत्रैव देवताः सेन्द्रा रुद्रब्रह्मजनार्दनाः ।
सरस्वत्याभिषेकार्थं चक्रुर्मुनिगणैः सह ॥ ५४

ततोऽम्बुना सप्तसमुद्रवाहिनी-
नदीजलेनापि महाफलेन ।
वरौषधीभिश्च सहस्रमूर्तिभि-
स्तदाभ्यषिञ्चन् गुहमच्युताद्याः ॥ ५५

अभिषिञ्चति सेनान्यं कुमारे दिव्यरूपिणि ।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५६
अभिषिक्तं कुमारं च गिरिपुत्री निरीक्ष्य हि ।
स्नेहादुत्सङ्गगं स्कन्दं मूर्ध्न्याजिघ्रन्मुहुर्मुहुः ॥ ५७
जिघ्रती कार्तिकेयस्य अभिषेकार्द्रमाननम् ।
भात्यद्रिजा यथेन्द्रस्य देवमाताऽदितिः पुरा ॥ ५८
तदाऽभिषिक्तं तनयं दृष्ट्वा शर्वो मुदं ययौ ।
पावकः कृत्तिकाश्चैव कुटिला च यशस्विनी ॥ ५९
ततोऽभिषिक्तस्य हरः सैनापत्ये गुहस्य तु ।
प्रमथांश्चतुरः प्रादाच्छक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ ६०
घण्टाकर्णं लोहिताक्षं नन्दिसेनं च दारुणम् ।
चतुर्थं बलिनां श्रेष्ठं ख्यातं कुमुदमालिनम् ॥ ६१
हरदत्तान् गणान् दृष्ट्वा देवाः स्कन्दस्य नारद ।
प्रददुः प्रमथान् स्वान् स्वान् सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥ ६२
स्थाणुं ब्रह्मा गणं प्रादाद् विष्णुः प्रादाद् गणत्रयम् ।
संक्रमं विक्रमं चैव तृतीयं च पराक्रमम् ॥ ६३
उत्क्रोशं पङ्कजं शक्रो रविर्दण्डकपिङ्गलौ ।
चन्द्रो मणिं वसुमणिमश्विनौ वत्सनन्दिनौ ॥ ६४
ज्योतिर्हुताशनः प्रादाज्ज्वलज्जिह्वं तथापरम् ।
कुन्दं मुकुन्दं कुसुमं त्रीन् धाताऽनुचरान् ददौ ॥ ६५
चक्रानुचक्रौ त्वष्टा च वेधातिस्थिरसुस्थिरौ ।
पाणितूलं कालकञ्च प्रादात् पूषा महाबलौ ॥ ६६
स्वर्णमालं घनाढ्यं च हिमवान् प्रमथोत्तमौ ।

प्रादादेवोच्छ्रितो विन्ध्यस्त्वतिशृङ्गं च पार्षदम् ॥ ६७
सुवर्चसं च वरुणः प्रददौ चातिवर्चसम् ।
संग्रहं विग्रहं चाब्धिर्नागा जयमहाजयौ ॥ ६८
उन्मादं शङ्कुकर्णं च पुष्पदन्तं तथाऽम्बिका ।
घसं चातिघसं वायुः प्रादादनुचरावुभौ ॥ ६९
परिघं चटकं भीमं दहतिदहनौ तथा ।
प्रददावंशुमान् पञ्च प्रमथान् षण्मुखाय हि ॥ ७०
यम. प्रमाथमुन्माथं कालसेनं महामुखम् ।
तालपत्रं नाडिजङ्घं षडेवानुचरान् ददौ ॥ ७१
सुप्रभं च सुकर्माणं ददौ धाता गणेश्वरौ ।
सुव्रतं सत्यसन्धं च मित्रः प्रादाद् द्विजोत्तम ॥ ७२
अनन्तः शङ्कुपीठश्च निकुम्भः कुमुदोऽम्बुजः ।
एकाक्षः कुनटी चक्षुः किरीटी कलशोदरः ॥ ७३
सूचीवक्त्रः कोकनदः प्रहासः प्रियकोऽच्युतः ।
गणाः पञ्चदशैते हि यक्षैर्दत्ता गुहस्य तु ॥ ७४
कालिन्द्याः कालकन्दश्च नर्मदाया रणोत्कटः ।
गोदावर्याः सिद्धयात्रस्तमसायाद्रिकम्पकः ॥ ७५
सहस्रबाहु. सीताया वञ्जुलायाः सितोदरः ।
मन्दाकिन्यास्तथा नन्दो विपाशायाः प्रियंकरः ॥ ७६
ऐरावत्याश्चतुर्दंष्ट्रः षोडशाक्षो वितस्तया ।
मार्जारं कौशिकी प्रादात् क्रथक्रौञ्चौ च गौतमी ॥ ७७
बाहुदा शतशीर्षं च वाहा गोनन्दनन्दिकौ ।
भीमं भीमरथी प्रादाद् वेगारिं सरयूर्ददौ ॥ ७८
अष्टबाहुं ददौ काशी सुबाहुमपि गण्डकी ।
महानदी चित्रदेवं चित्रा चित्ररथं ददौ ॥ ७९
कुहूः कुवलयं प्रादान्मधुवर्णं मधूदका ।
जम्बूकं धूतपापा च वेणा श्वेताननं ददौ ॥ ८०
श्रुतवर्णं च पर्णासा रेवा सागरवेगिनम् ।
प्रभावार्थं सहं प्रादात् काञ्चना कनकेक्षणम् ॥ ८१
गृध्रपत्रं च विमला चारुवक्त्रं मनोहरा ।

तथा ऊँचे विन्ध्याचल ने अतिशृङ्ग नामक पार्षद को दिया। (६७)

वरुण ने सुवर्चा एवं अतिवर्चा को, समुद्र ने संग्रह तथा विग्रह को एवं नागों ने जय तथा महाजय को दिया। (६८)

अम्बिका ने उन्माद, शङ्कुकर्ण और पुष्पदन्त को तथा पवन ने घस और अतिघस नामक दो अनुचरों को दिया। (६९)

अंशुमान ने षण्मुख को परिघ, चटक, भीम, दहति तथा दहन नामक पाँच प्रमथों को दिया। (७०)

यमराज ने प्रमाथ, उन्माथ कालसेन, महामुख, तालपत्र और नाडिजङ्घ नामक छः अनुचरों को दिया। (७१)

हे द्विजोत्तम! धाता ने सुप्रभ और सुकर्मा नामक गणेश्वरों को, तथा मित्र ने सुव्रत तथा सत्यसन्ध नामक अनुचरों को दिया। (७२)

यक्षों ने अनन्त, शङ्कुपीठ, निकुम्भ, कुमुद, अम्बुज, एकाक्ष, कुनटी, चक्षु, किरीटी, कलशोदर, सूचीवक्त्र, कोकनद, प्रहास, प्रियक एवं अच्युत-इन पन्द्रह गणों को कार्तिकेय के लिये दिया। (७३-७४)

कालिन्दी ने कालकन्द को, नर्मदा ने रणोत्कट को, गोदावरी ने सिद्धयात्र को एवं तमसा ने अद्रिकम्पक को दिया। (७५)

सीता ने सहस्रबाहु को, वञ्जुला ने सितोदर को मन्दाकिनी ने नन्द को एवं विपाशा ने प्रियंकर को दिया। (७६)

ऐरावती ने चतुर्दंष्ट्र को, वितस्ता ने षोडशाक्ष को, कौशिकी ने मार्जार को एवं गोमती ने क्रथ और क्रौञ्च को दिया। (७७)

बाहुदा ने शतशीर्ष को, वाहा ने गोनन्द और नन्दिक को, भीमरथी ने भीम को, और सरयू ने वेगारि को दिया। (७८)

काशी ने अष्टबाहु को, गण्डकी ने सुबाहु को, महानदी, ने चित्रदेव को तथा चित्रा ने चित्ररथ को दिया। (७९)

कुहू ने कुवलय को, मधूदका ने मधुवर्ण को, धूतपापा ने जम्बूक को और वेणा ने श्वेतानन को समर्पित किया। (८०)

पर्णासा ने श्रुतवर्ण को, रेवा ने सागरवेगी को, प्रभावा ने अर्थ और सह को एवं काञ्चना ने कनकेक्षण को दिया। (८१)

विमला ने गृध्रपत्र को, मनोहरा ने चारुवक्त्र को, धूत-

धूतपापा महारावं कर्णा विद्रुमसंनिभम् ॥ ८२
सुप्रसादं सुवेणुश्च जिष्णुमोघवती ददौ ।
यज्ञबाहुं विशाला च सरस्वत्यो ददुर्गणान् ॥ ८३
कुटिला तनयस्यादाद् दश शक्रबलान् गणान् ।
करालं सितकेशं च कृष्णकेशं जटाधरम् ॥ ८४
मेघनादं चतुर्दंष्ट्रं विद्युजिह्वं दशाननम् ।
सोमाप्यायनमेवोग्रं देवयाजिनमेव च ॥ ८५
हंसास्यं कुण्डजठरं बहुग्रीवं हयाननम् ।
कूर्मग्रीवं च पञ्चैतान् ददुः पुत्राय कृत्तिकाः ॥ ८६
स्थाणुजङ्घं कुम्भवक्त्रं लोहजङ्घं महाननम् ।
पिण्डाकारं च पञ्चैतान् ददुः स्कन्दाय चर्षयः ॥ ८७
नागजिह्वं चन्द्रभासं पाणिकूर्मं शशीक्षकम् ।
चापवक्त्रं च जम्बूकं ददौ तीर्थः पृथूदकः ॥ ८८
चक्रतीर्थं सुचक्राक्षं मकराक्षं गयाशिरः ।
गणं पञ्चशिखं नाम ददौ कनखलः स्वकम् ॥ ८९
बन्धुदत्तं वाजिशिरो बाहुशालं च पुष्करम् ।
सर्वौजसं माहिषकं मानस. पिङ्गलं यथा ॥ ९०
रुद्रमौशनसः प्रादात् ततोऽन्ये मातरो ददुः ।
वसुदामां सोमतीर्थः प्रभासो नन्दिनीमपि ॥ ९१
इन्द्रतीर्थं विशोकां च उदपानो घनस्वनाम् ।
सप्तसारस्वतः प्रादान्मातरश्चतुरोऽद्भुताः ॥ ९२
गीतप्रियां माधवीं च तीर्थनेमिं स्मिताननाम् ।
एकचूडां नागतीर्थः कुरुक्षेत्रं पलामदाम् ॥ ९३
ब्रह्मयोनिश्चण्डशिलां भद्रकालीं त्रिविष्टपः ।
चौण्डीं भैण्डीं योगभैण्डीं प्रादाच्चरणपावनः ॥ ९४
सोपानीयां मही प्रादाच्छालिकां मानसो ह्रदः ।
शतघण्टां शतानन्दां तथोलूखलमेखलाम् ॥ ९५
पद्मावती माधवीं च ददौ बदरिकाश्रमः ।
सुपमामेकचूडां च देवीं धमधमां तथा ॥ ९६
उत्क्राथनीं वेदमित्रां केदारो मातरो ददौ ।

पापा ने महाराव को एवं कर्णा ने विद्रुमसन्निभ को दिया। (८२)

सुवेणु ने सुप्रसाद को, एवं ओघवती ने जिष्णु को दिया। विशाला ने यज्ञबाहु को दिया। इस प्रकार इन नदियों ने अनेक गणों को दिया। (या सरस्वती नदियों ने अनेक गणों को दिया)। (८३)

कुटिला ने अपने पुत्र को कराल, सितकेश, कृष्णकेश, जटाधर, मेघनाद, चतुर्दंष्ट्र, विद्युज्जिह्व, दशानन, सोमाप्यायन एवं उग्र देवयाजी नामक दश गणों को दिया। (८४-८५)

कृत्तिकाओं ने अपने पुत्र को हंसास्य, कुण्डजठर, बहुग्रीव, हयानन तथा कूर्मग्रीव इन पाँच अनुचरों को प्रदान किया। (८६)

ऋषियों ने स्कन्द को स्थाणुजङ्घ, कुम्भवक्त्र, लोहजङ्घ, महानन और पिण्डाकार इन पाँच अनुचरों को दिया। (८७)

पृथूदक तीर्थ ने नागजिह्व, चन्द्रभास, पाणिकूर्म, शशीक्षक, चापवक्त्र तथा जम्बूक नामक अनुचरों को दिया। (८८)

चक्रतीर्थ ने सुचक्राक्ष तथा गयाशिर ने मकराक्ष को और कनखल ने पञ्चशिख नामक अपने गण को दिया। (८९)

वाजिशिर ने बन्धुदत्त और पुष्कर ने बाहुशाल को तथा मानस ने सर्वौजस, माहिषक और पिङ्गल को दिया। (९०)

औशनस ने रुद्र को दिया, तथा अन्यों ने मातृकाओं को दिया। सोमतीर्थ ने वसुदामा को और प्रभास ने नन्दिनी को और इन्द्र तीर्थ ने विशोका को अर्पित किया। उदपान ने घनस्वना को एवं सप्तसारस्वत ने गीतप्रिया, माधवी, तीर्थनेमि एवं स्मितानना नामक चार अद्भुत मातृकाओं को प्रदान किया। नागतीर्थ ने एकचूडा को एवं कुरुक्षेत्र ने पलामदा को दिया। (९१-९३)

ब्रह्मयोनि ने चण्डशिला को, त्रिविष्टप ने भद्रकाली को तथा चरणपावन ने चौंडी, भैंडी तथा योगभैंडी को दिया। (९४)

मही ने सोपानीया को, मानसह्रद ने शालिका को एवं बदरिकाश्रम ने शतानन्दा, शतघण्टा, उलूखलमेखला, पद्मावती और माधवी को दिया। केदार तीर्थ ने सुपमा, एकचूडा, धमधमा देवी, उत्क्राथनी तथा वेदमित्रा नामक मातृकाओं को दिया। रुद्रमहालय ने सुनक्षत्रा, कद्रूला, सुप्रभाता, सुमङ्गला, देवमित्रा और चित्रसेना को दिया। प्रयाग ने कोटरा ऊर्ध्ववेणी, श्रीमती,

सुनक्षत्रां कद्रूलां च सुप्रभातां सुमङ्गलाम् ॥ ९७
देवमित्रां चित्रसेनां ददौ रुद्रमहालयः ।
कोटराम्रूर्ध्ववेणीं च श्रीमतीं बहुपुत्रिकाम् ॥ ९८
पलितां कमलाक्षीं च प्रयागो मातरो ददौ ।
सूपलां मधुकुम्भां च ख्यातिं दहदहां पराम् ॥ ९९
प्रादात् खटकटां चान्यां सर्वपापविमोचनः ।
संतानिकां विकलिकां क्रमश्चत्वरवासिनीम् ॥ १००
जलेश्वरीं कुक्कुटिकां सुदामां लोहमेखलाम् ।
वपुष्मत्युल्मुकाक्षी च कोकनामा महाशनी ।
रौद्रा कर्कटिका तुण्डा श्वेततीर्थो ददौ त्विमाः ॥ १०१
एतानि भूतानि गणांश्च मातरो
दृष्ट्वा महात्मा विनतातनूजः ।
ददौ मयूरं स्वसुतं महाजवं
तथाऽरुणस्ताम्रचूडं च पुत्रम् ॥ १०२
शक्तिं हुताशोऽद्रिसुता च वस्त्रं
दण्डं गुरुः सा कुटिला कमण्डलुम् ।
मालां हरिः शूलधरः पताकां
कण्ठे च हारं मघवानुरस्तः ॥ १०३
गणैर्वृतो मातृभिरन्वयातो
मयूरसंस्थो वरशक्तिपाणिः ।
सैन्याधिपत्ये स कृतो भवेन
रराज सूर्येव महावपुष्मान् ॥ १०४

इति श्रीवामनपुराणे एकत्रिंशोऽध्याय ॥३१॥

बहुपुत्रिका, पलिता तथा कमलाक्षी नामक मातृकाओं को अर्पित किया। सर्वपापविमोचन ने सूपला, मधुकुम्भा, ख्याति, दहदहा, परा और खटकटा को दिया। क्रम ने सन्तानिका, विकलिका और चत्वरवासिनी को प्रदान किया। (९५-१००)

श्वेततीर्थ ने जलेश्वरी, कुक्कुटिका, सुदामा, लोहमेखला, वपुष्मती, उल्मुकाक्षी, कोकनामा महाशनी रौद्रा, कर्कटिका और तुण्डा नामक अनुचरियों को दिया। (१०१)

इन भूतों, गणों और मातृकाओं को देखकर विनतापुत्र गरुड ने अपने पुत्र महावेगशाली मयूर को समर्पित किया और अरुण ने अपने पुत्र ताम्रचूड को दिया। (१०२)

अग्नि ने शक्ति, पार्वती ने वस्त्र, बृहस्पति ने दण्ड, उस कुटिला ने कमण्डलु, विष्णु ने माला, शंकर ने पताका तथा इन्द्र ने अपने वक्षस्थल का हार कार्त्तिकेय के कण्ठ में अर्पित किया। (१०३)

गणों से युक्त, मातृकाओं से अनुसरित, मयूर पर बैठे एवं श्रेष्ठ शक्ति को हाथ में लिये हुए महाशरीरधारी कुमार कार्तिकेय शंकर के द्वारा सेनाधिपति के पद पर अभिषिक्त होकर सूर्य के समान प्रकाशित होने लगे। (१०४)

श्रीवामनपुराण में इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

३२

पुलस्त्य उवाच ।
सेनापत्येऽभिषिक्तस्तु कुमारो दैवतैरथ ।
प्रणिपत्य भवं भक्त्या गिरिजां पावकं शुचिम् ॥ १
षट् कृत्तिकाश्च शिरसा प्रणम्य कुटिलामपि ।
ब्रह्माणं च नमस्कृत्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ २
कुमार उवाच ।
नमोऽस्तु भवतां देवा ओं नमोऽस्तु तपोधनाः ।
युष्मत्प्रसादाज्जेष्यामि शत्रू महिषतारकौ ॥ ३
शिशुरस्मि न जानामि वक्तुं किंचन देवताः ।
दीयतां ब्रह्मणा सार्द्धमनुज्ञा मम साम्प्रतम् ॥ ४
इत्येवमुक्ते वचने कुमारेण महात्मना ।
मुखं निरीक्षन्ति सुराः सर्वे विगतसाध्वसाः ॥ ५
शंकरोऽपि सुतस्नेहात् समुत्थाय प्रजापतिम् ।
आदाय दक्षिणे पाणौ स्कन्दान्तिकमुपागमत् ॥ ६
अथोमा प्राह तनय पुत्र एह्येहि शत्रुहन् ।
वन्दस्व चरणौ दिव्यौ विष्णोर्लोकनमस्कृतौ ॥ ७
ततो विहस्याह गुहः कोऽयं मातर्वदस्व माम् ।
यस्यादरात् प्रणामोऽयं क्रियते मद्विधैर्जनैः ॥ ८
तं माता प्राह वचनं कृते कर्मणि पद्मभूः ।
वक्ष्यते तव योऽयं हि महात्मा गरुडध्वजः ॥ ९
केवलं त्विह मां देवस्त्वत्पिता प्राह शंकरः ।
नान्यः परतरोऽस्माद्धि वयमन्ये च देहिनः ॥ १०
पार्वत्या गदिते स्कन्दः प्रणिपत्य जनार्दनम् ।
तस्थौ कृताञ्जलिपुटस्त्वाज्ञां प्रार्थयतेऽच्युतात् ॥ ११
कृताञ्जलिपुटं स्कन्दं भगवान् भूतभावनः ।
कृत्वा स्वस्त्ययनं देवो ह्यनुज्ञां प्रददौ ततः ॥ १२
नारद उवाच ।
यत्तत् स्वस्त्ययनं पुण्यं कृतवान् गरुडध्वजः ।

३२

पुलस्त्य ने कहा—देवताओं द्वारा सेनापति के पद पर अभिषिक्त कुमार ने भक्ति पूर्वक शङ्कर, पार्वती और पवित्र अग्नि को प्रणाम करने के उपरान्त छः कृत्तिकाओं एवं कुटिला को शिरसे प्रणाम कर तथा ब्रह्मा को नमस्कार कर यह वचन कहा— (१-२)

कुमार ने कहा—हे देवताओ ! आप लोगों को नमस्कार है। हे तपोधनो ! आप लोगों को ओंकार के साथ नमस्कार है। आपलोगों के अनुग्रह से मैं महिष एवं तारक दोनों शत्रुओं को जीतूँगा। (३)

हे देवताओ ! मैं बालक हूँ, कुछ बोलना नहीं जानता। ब्रह्मा सहित आप लोग इस समय मुझे अनुमति दें। (४)

महात्मा कुमार के ऐसा कहने पर सभी देवता निर्भय होकर उनका मुख देखने लगे। (५)

पुत्र के स्नेह से शंकर उठे और ब्रह्मा को दाहिने हाथ से पकड़कर स्कन्द के निकट आये। (६)

तदनन्तर उमा ने पुत्र से कहा—हे शत्रुनाशक पुत्र ! आओ आओ ! लोक द्वारा नमस्कृत विष्णु के दिव्य चरणों की वन्दना करो। (७)

तदनन्तर गुह ने हँसकर कहा—हे माता ! मुझे बतलाओ कि ये कौन हैं जिन्हें हमारे जैसे लोग भी आदर पूर्वक प्रणाम करते हैं ? (८)

माता ने उनसे कहा—कार्य कर लेने पर ब्रह्मा तुम्हें बतलायेंगे कि ये महात्मा गरुडध्वज कौन हैं। (९)

तुम्हारे पिता देव शंकर ने मुझसे केवल यही कहा है कि इनसे बढ़कर हम लोग या अन्य कोई देहधारी नहीं है। (१०)

पार्वती के कहने पर स्कन्द ने जनार्दन को प्रणाम किया तथा हाथों को जोड़कर खड़े हो गये और अच्युत से आज्ञा माँगने लगे। (११)

भूतभावन भगवान् विष्णुदेव ने हाथ जोड़कर स्थित स्कन्द का स्वस्त्ययन कर उन्हें अनुमति दी। (१२)

नारद ने कहा—हे निष्पाप ! मयूरध्वज कार्तिकेय के लिए

शिखिध्वजाय निग्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १३

पुलस्त्य उवाच ।

शृणु स्वस्त्ययनं पुण्यं यत्प्राह भगवान् हरिः ।
स्कन्दस्य विजयार्थाय महिषस्य वधाय च ॥ १४
स्वस्ति ते कुरुता ब्रह्मा पद्मयोनी रजोगुणः ।
स्वस्ति चक्राङ्कितकरो विष्णुस्ते विदधत्वजः ॥ १५
स्वस्ति ते शंकरो भक्त्या सपत्नीको वृषध्वजः ।
पावकः स्वस्ति तुभ्यं च करोतु शिखिवाहन ॥ १६

दिवाकरः स्वस्ति करोतु तुभ्यं
सोमः सभौमः सबुधो गुरुश्च ।
काव्यः सदा स्वस्ति करोतु तुभ्यं
शनैश्चरः स्वस्त्ययनं करोतु ॥ १७
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः
क्रतुर्वसिष्ठो भृगुरङ्गिराश्च ।
मृकण्डजस्ते कुरुता हि स्वस्ति
स्वस्ति सदा सप्त महर्षयश्च ॥ १८
विश्वेश्विनौ साध्यमरुद्गणाग्नयो
दिवाकरा शूलधरा महेश्वराः ।
यक्षा पिशाचा वसवोऽथ किन्नराः
ते स्वस्ति कुर्वन्तु सदोद्यतास्त्वमी ॥ १९
नागाः सुपर्णाः सरितः सरांसि
तीर्थानि पुण्यायतनाः समुद्राः ।
महाबला भूतगणा गणेन्द्राः
ते स्वस्ति कुर्वन्तु सदा समुद्यताः ॥ २०

स्वस्ति द्विपादिकेभ्यस्ते चतुष्पादेभ्य एव च ।
स्वस्ति ते बहुपादेभ्यस्त्वपादेभ्योऽप्यनामयम् ॥ २१
प्राचीं दिग् रक्षता वज्री दक्षिणा दण्डनायकः ।
पाशी प्रतीचीं रक्षतु लक्ष्मांशुः पातु चोत्तराम् ॥ २२
वह्निर्दक्षिणपूर्वां च कुबेरो दक्षिणापराम् ।
प्रतीचीमुत्तरां वायुः शिवः पूर्वोत्तरामपि ॥ २३
उपरिष्टाद् ध्रुवः पातु अधस्ताच्च धराधरः ।
मुसली लाङ्गली चक्री धनुष्मानन्तरेषु च ॥ २४
वाराहोऽम्बुनिधौ पातु दुर्गे पातु नृकेसरी ।

गरुड़ध्वज विष्णु द्वारा किये गए पुण्यजनक स्वस्त्ययन को आप मुझसे कहें । (१३)

पुलस्त्य ने कहा—स्कन्द की विजय एवं महिष के वध हेतु भगवान् हरि द्वारा कहे गये पुण्य-जनक स्वस्त्ययन को सुनो । (१४)

पद्मयोनि रजोगुणी ब्रह्मा तुम्हारा मङ्गल करें । हाथ में चक्र धारण करनेवाले अजन्मा विष्णु तुम्हारा मङ्गल करें । (१५)

पत्नी सहित वृषभध्वज शंकर स्नेह पूर्वक तुम्हारा मंगल करें । हे शिखिवाहन ! अग्निदेव तुम्हारा मङ्गल करें । (१६)

सूर्य तुम्हारा मंगल करें भौम सहित सोम तथा बुध सहित बृहस्पति तुम्हारा मङ्गल करें । शुक्र सदैव तुम्हारा मंगल करें तथा शनैश्चर तुम्हारा मङ्गल करें । (१७)

मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, वसिष्ठ, भृगु, अङ्गिरा, मार्कण्डेय ये ऋषि तुम्हारा मंगल करें तथा सप्तर्षि गण तुम्हारा सदा मङ्गल करें । (१८)

विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, साध्य, मरुद्गण, अग्नि, सूर्य, शूलधर, महेश्वर, यक्ष, पिशाच वसु और किन्नर ये सब तत्परता से सदा तुम्हारा मङ्गल करें । (१९)

नाग, पक्षी, नदियाँ, सरोवर, तीर्थ पुण्यायतन, समुद्र महाबलशाली भूतगण तथा विनायकगण सदा तत्पर होकर तुम्हारा मङ्गल करें । (२०)

द्विपदों एवं चतुष्पदों से तुम्हारा मङ्गल हो । बहुपदों द्वारा तुम्हारा मङ्गल हो एवं बिना पैर वालों से तुम्हारा अनामय हो । (२१)

वज्रधारी (इन्द्र) पूर्व दिशा की, दण्डनायक (यम) दक्षिण दिशा की, पाश धारी (वरुण) पश्चिम दिशा की तथा चन्द्रमा उत्तर दिशा की रक्षा करें । (२२)

अग्नि अग्निकोण की, कुबेर नैऋत्य कोण की, पवन वायव्य कोण की और शिव ईशान कोण की (रक्षा करें) । (२३)

ऊपर की ओर ध्रुव, नीचे की ओर धराधर (शेष या पर्वत) तथा अन्तरालों में मुसल, हल, चक्र तथा धनुष धारण करने वाले (विष्णु) रक्षा करें । (२४)

समुद्र में वाराह, दुर्गमस्थान में नरसिंह तथा साम-

सामवेदध्वनिः श्रीमान् सर्वतः पातु माधवः ॥ २५
पुलस्त्य उवाच ।
एवं कृतस्वस्त्ययनो गुहः शक्तिधरोऽग्रणीः ।
प्रणिपत्य सुरान् सर्वान् समुत्पपात भूतलात् ॥ २६
तमन्वेव गणाः सर्वे दत्ता ये मुदितैः सुरैः ।
अनुजग्मुः कुमारं ते कामरूपा विहङ्गमाः ॥ २७
मातरश्च तथा सर्वाः समुत्पेतुर्नभस्तलम् ।
समं स्कन्देन बलिना हन्तुकामा महासुरान् ॥ २८
ततः सुदीर्घमध्वानं गत्वा स्कन्दोऽब्रवीद् गणान् ।
भूम्यां तूर्णं महावीर्याः कुरुध्वमवतारणम् ॥ २९
गणा गुहवचः श्रुत्वा अवतीर्य महीतलम् ।
आरात् पतन्तस्तद्देशं नादं चक्रुर्भयंकरम् ॥ ३०
तन्निनादो महीं सर्वामापूर्य च नभस्तलम् ।
विवेशार्णवरन्ध्रेण पातालं दानवालयम् ॥ ३१
श्रुतः स महिषेणाथ तारकेण च धीमता ।
विरोचनेन जम्भेन कुजम्भेनासुरेण च ॥ ३२

ते श्रुत्वा सहसा नादं वज्रपातोपमं दृढम् ।
किमेतदिति संचिन्त्य तूर्णं जग्मुस्तदान्धकम् ॥ ३३
ते समेत्यान्धकेनैव समं दानवपुंगवाः ।
मन्त्रयामासुरुद्विग्नास्तं शब्दं प्रति नारद ॥ ३४
मन्त्रयत्सु च दैत्येषु भूतलात् सूकराननः ।
पातालकेतुर्दैत्येन्द्रः संप्राप्तोऽथ रसातलम् ॥ ३५
स बाणविद्धो व्यथितः कम्पमानो मुहुर्मुहुः ।
अब्रवीद् वचनं दीनं समभ्येत्यान्धकासुरम् ॥ ३६
पातालकेतुरुवाच ।
गतोऽहमासं दैत्येन्द्र गालवस्याश्रमं प्रति ।
तं विध्वंसयितुं यत्नं समारब्धं बलान्मया ॥ ३७
यावत्सूकररूपेण प्रविशामि तमाश्रमम् ।
न जाने तं नरं राजन् येन मे प्रहितः शरः ॥ ३८
शरसंभिन्नजत्रुश्च भयात् तस्य महाजवः ।

वेद-ध्वनि रूप श्रीमान् माधव तुम्हारी सभी ओर से रक्षा करें । (२५)

पुलस्त्य ने कहा—इस प्रकार स्वस्त्ययन हो जाने पर शक्ति धारी सेनापति गुह समस्त देवताओं को प्रणाम कर भूतल से उड़े । (२६)

प्रसन्न देवताओं द्वारा दिये गये सभी गण यथेच्छरूप-धारी पक्षी बन कर कुमार का अनुसरण किये । (२७)

सभी मातायें भी बलवान् स्कन्द के साथ महान् असुरों को मारने के लिए आकाश में उड़ीं । (२८)

तदनन्तर बहुत दूर जाने पर स्कन्द ने गणों से कहा—हे महा-बल-शालियो ! शीघ्र ही तुम लोग पृथ्वी पर उतरो । (२९)

गुह की बात सुनकर सभी गण पृथ्वी पर उतरे एवं उतरते समय दूर से ही उस स्थान पर भयङ्कर नाद किये । (३०)

वह निनाद समस्त पृथ्वी एवं आकाश को आपूरित कर समुद्र-रन्ध्र से दानवों के निवास स्थान पाताल में प्रविष्ट हुआ । (३१)

बुद्धिमान् महिष, तारक, विरोचन, जम्भ तथा कुजम्भ प्रभृति असुरों ने उस ध्वनि को सुना । (३२)

सहसा वज्रपात-तुल्य उस घोर शब्द को सुनकर 'यह क्या है' यह सोचकर वे सभी शीघ्रता से अन्धक के समीप गये । (३३)

हे नारद ! वे सभी असुरपुङ्गव उद्विग्न होकर उस शब्द के विषय में अन्धक के साथ मिलकर विचार करने लगे । (३४)

उन दैत्यों के मन्त्रणा करते समय सूकर के समान मुख वाला दैत्येन्द्र पातालकेतु भूतल से रसातल में आया । (३५)

बाण विद्ध होने से व्यथित एवं बारम्बार काँपता हुआ वह अन्धकासुर के निकट जाकर दीन वचन कहा । (३६)

पातालकेतु ने कहा—हे दैत्येश्वर ! गालव के आश्रम में मैं गया था । मैं उसको बलपूर्वक नष्ट करने का यत्न करने लगा । (३७)

हे राजन् ! मैं सूकर का रूप धारण कर जैसे ही उस आश्रम में गया वैसे ही न जाने किस मनुष्य ने मेरे ऊपर बाण चलाया । (३८)

बाण से जत्रु के टूट जाने पर मैं उसके भय के कारण

प्रणष्ट आश्रमात् तस्मात् स च मां पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ ३९
तुरङ्गखुरनिर्घोषः श्रूयते परमोऽसुर ।
तिष्ठ तिष्ठेति वदतस्तस्य शूरस्य पृष्ठतः ।
तद्भयादस्मि जलधिं संप्राप्तो दक्षिणार्णवम् ॥ ४०
यावत्पश्यामि तत्रस्थान् नानावेशाकृतीन् नरान् ।
केचिद् गर्जन्ति घनवत् प्रतिगर्जन्ति चापरे ॥ ४१
अन्ये चोचुर्वयं नूनं निघ्नामो महिषासुरम् ।
तारकं घातयामोऽद्य वदन्त्यन्ये सुतेजसः ॥ ४२
तच्छ्रुत्वा सुतरां त्रासो मम जातोऽसुरेश्वर ।
महार्णवं परित्यज्य पतितोऽस्मि भयातुरः ॥ ४३
धरण्यां विवृतं गर्तं स मामन्वपतद् बली ।
तद्भयात् संपरित्यज्य हिरण्यपुरमात्मनः ॥ ४४
सवान्तिकमनुप्राप्तः प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
तच्छ्रुत्वा चान्धको वाक्यं प्राह मेघस्वनं वचः ॥ ४५
न भेतव्यं त्वया तस्मात् सत्यं गोमाऽस्मि दानव ।
महिषस्तारकश्चोभौ बाणश्च बलिनां वरः ॥ ४६
अनाख्यायैव ते वीरास्त्वन्धकं महिषादयः ।
स्वपरिग्रहसंयुक्ता भूमिं युद्धाय निर्ययुः ॥ ४७
यत्र ते दारुणाकारा गणाश्चक्रुर्महास्वनम् ।
तत्र दैत्याः समाजग्मुः सायुधाः सबला मुने ॥ ४८
दैत्यानापततो दृष्ट्वा कार्तिकेयगणास्तथा ।
अभ्यद्रवन्त सहसा स चोग्रो मातृमण्डलः ॥ ४९
तेषां पुरस्सरः स्थाणुः प्रगृह्य परिघं बली ।
निषूदयत् परबलं क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ५०
तं निघ्नन्तं महादेवं निरीक्ष्य कलशोदरः ।
कुठारं पाणिनादाय हन्ति सर्वान् महासुरान् ॥ ५१
ज्वालामुखो भयकरः करेणादाय चासुरम् ।
सरथं सगजं साश्वं विस्तृते वदनेऽक्षिपत् ॥ ५२
दण्डकश्चापि संक्रुद्धः प्रासपाणिर्महासुरम् ।
सवाहनं प्रक्षिपति समुत्पाट्य महार्णवे ॥ ५३
शङ्कुकर्णश्च मुसली हलेनाकृष्य दानवान् ।

आश्रम से वेगपूर्वक भागा। उसने भी मेरा-पीछा किया। (३९)

हे असुर! हमारे पीछे आ रहे 'रुको रुको' कहने वाले उस वीर के घोड़े की खुर का महान् शब्द सुनाई पड़ रहा था। उसके भय से मैं दक्षिण समुद्र में आ गया। (४०)

वहाँ मैंने अनेक प्रकार के वेष तथा आकार वाले मनुष्यों को देखा। उनमें कुछ मेघ के समान गर्जन कर रहे थे तथा अन्य वैसा ही प्रतिगर्जन कर रहे थे। (४१)

दूसरे कह रहे थे कि हम महिषासुर को अवश्य मारेंगे और परमतेजस्वी दूसरे लोग कह रहे थे कि आज हम तारक को मारेंगे। (४२)

हे असुरेश्वर! उसको सुनकर मुझे अत्यन्त भय उत्पन्न हो गया। विशाल समुद्र को छोड़कर मैं भयातुर हो पृथ्वी के विवृत गर्त में भागा। उस बलवान् ने मेरा पीछा किया। उसके भय से मैं अपना हिरण्यपुर छोड़कर आप के निकट आया हूँ। मेरे ऊपर कृपा कीजिए। यह बात सुनकर अन्धक ने मेघ-सदृश ध्वनि से यह वचन कहा— (४३-४५)

हे दानव! तुम उससे मत डरो। मैं यथार्थतः तुम्हारा रक्षक हूँ। तदनन्तर महिष एवं तारक ये दोनों तथा बलवानों में श्रेष्ठ बाण ये सभी अन्धक से पूछे बिना ही अपने अनुचरों के साथ युद्धार्थ पृथ्वी पर निकल पड़े। (४६-४७)

हे मुने! आयुधधारी दैत्य सेना-सहित उस स्थान पर गये जहाँ भयंकर आकार वाले गण गर्जन कर रहे थे। (४८)

दैत्यों को आते हुए देखकर कार्तिकेय के गण तथा उग्र मातृकाओं का समूह सहसा टूट पड़ा। (४९)

उन सभी के अग्रभाग में बलवान् स्थाणु-रुद्र-परिघ लेकर क्रोधपूर्वक पशुओं के सदृश शत्रुसेना को मारने लगे। (५०)

महादेव को असुरों को मारते हुए देख कलशोदर हाथ में कुठार लेकर महासुरों को मारने लगा। (५१)

भयङ्कर ज्वालामुख रथ, हाथी और घोड़ों के सहित असुरों को हाथ पकड़ कर अपने विस्तृत मुख में फेंकने लगा। (५२)

हाथ में बर्छी लिए हुये क्रुद्ध दण्डक महासुरों को वाहन सहित उठाकर समुद्र में फेंकने लगा। (५३)

मुसल एवं प्रासधारी जितेन्द्रिय शङ्कुकर्ण दानवों को हल

संपूर्णयति मंत्रीव राजानं ग्रासभृद् वशी ॥ ५४
खड्गचर्मधरो वीरः पुष्पदन्तो गणेश्वरः ।
द्विधा त्रिधा च बहुधा चक्रे दैतेयदानवान् ॥ ५५
पिङ्गलो दण्डमुद्यम्य यत्र यत्र प्रधावति ।
तत्र तत्र प्रदृश्यन्ते राशयः शवदानवैः ॥ ५६
सहस्रनयनः शूलं भ्रामयन् वै गणाग्रणीः ।
निजघानासुरान् वीरः सवाजिरथकुञ्जरान् ॥ ५७
भीमो भीमशिलावर्षैः स पुरस्सरतोऽसुरान् ।
निजघान यथेवेन्द्रो वज्रवृष्ट्या नगोत्तमान् ॥ ५८
रौद्रः शकटचक्राक्षो गणः पञ्चशिखो बली ।
भ्रामयन् मुद्गरं वेगान्निजघान बलाद् रिपून् ॥ ५९
गिरिभेदी तलेनैव सारोहं कुञ्जरं रणे ।
भस्म चक्रे महावेगो रथं च रथिना सह ॥ ६०
नाडीजङ्घोऽङ्घ्रिप्रपातैश्च मुष्टिभिर्जानुनाऽसुरान् ।
कीलाभिर्वज्रतुल्याभिर्जघान बलवान् मुने ॥ ६१
कूर्मग्रीवो ग्रीवयैव शिरसा चरणेन च ।
लुण्ठनेन तथा दैत्यान् निजघान सवाहनान् ॥ ६२
पिण्डारकस्तु तुण्डेन शृङ्गाभ्यां च कलिप्रिय ।
विदारयति संग्रामे दानवान् समरोद्धतान् ॥ ६३
ततस्तत्सैन्यमतुलं वध्यमानं गणेश्वरैः ।
प्रदुद्रावाथ महिषस्तारकश्च गणाग्रणीः ॥ ६४
ते हन्यमानाः प्रमथा दानवाभ्यां वरायुधैः ।
परिवार्य समन्तात् ते युयुधुः कुपितास्तदा ॥ ६५
हंसास्य. पट्टिशेनाथ जघान महिषासुरम् ।
षोडशाक्षस्त्रिशूलेन शतशीर्षो वरासिना ॥ ६६
श्रुतायुधस्तु गदया विशोको मुसलेन तु ।
बन्धुदत्तस्तु शूलेन मूर्ध्नि दैत्यमताडयत् ॥ ६७
तथान्यैः पार्षदैर्युद्धे शूलशक्त्यृष्टिपट्टिशैः ।

से खींच कर इसप्रकार चूर्ण करने लगा जैसे मन्त्री (अना त्मवान्) राजा को नष्ट करता है। (५४)

खड्ग ढाल को धारण करने वाला गणों का स्वामी वीर पुष्पदन्त भी दैत्यों एवं दानवों को दो, तीन और अनेक खण्डों में काटने लगा। (५५)

दण्ड को उठाकर पिङ्गल जहाँ-जहाँ दौड़ता था वहाँ-वहाँ दैत्यों के शव का ढेर दिखलाई पड़ता था। (५६)

गणों में श्रेष्ठ वीर सहस्रनयन शूल घुमाते हुए घोड़े, रथ और हाथियों के सहित असुरों को मार रहे थे। (५७)

भीम भयङ्कर शिलाओं की वर्षा से आगे आ रहे असुरों को इस प्रकार मार रहा था जैसे इन्द्र वज्र की वृष्टि से उत्तम पर्वतों को नष्ट करते हैं। (५८)

भयङ्कर शकटचक्राक्ष पञ्चशिख नामक बलवान् गण वेगपूर्वक मुद्गर घुमाते हुए बलपूर्वक शत्रुओं का वध कर रहा था। (५९)

महावेगशाली गिरिभेदी संग्राम में थप्पड़ों के प्रहार से ही सवार के सहित हाथी को एवं रथी के सहित रथ को चकनाचूर करने लगा। (६०)

हे मुने! बलवान् नाडीजङ्घ पैरों, मुक्कों जानुओं एवं वज्रतुल्य कोहनियों के प्रहार से असुरों को मारने लगा। (६१)

कूर्मग्रीव ग्रीवा, शिर एवं चरणों के प्रहारों से तथा धक्का देकर वाहनों के साथ दैत्यों को मारने लगा। (६२)

हे नारद! पिण्डारक अपने मुख तथा शृङ्गों से समरोद्धत दानवों को संग्राम में विदीर्ण करने लगा। (६३)

तदनन्तर गणेश्वरों द्वारा उस अतुल सैन्य को मारा जाता देख गणाग्रणी महिष एवं तारक दौड़े। (६४)

उन दोनों दानवों द्वारा श्रेष्ठ आयुधों से मारे जा रहे वे सभी प्रमथगण चारों ओर से घेरकर क्रोधपूर्वक युद्ध करने लगे। (६५)

हंसास्य पट्टिश से, षोडशाक्ष त्रिशूल से एवं शतशीर्ष श्रेष्ठ तलवार से महिषासुर को मारने लगा। (६६)

श्रुतायुध ने गदा से, विशोक ने मुसल से तथा बन्धुदत्त ने शूल से उस दैत्य के मस्तक पर प्रहार किया। (६७)

इसी प्रकार अन्य पार्षदों द्वारा शूल, शक्ति, ऋष्टि एवं पट्टिशों से ताड़ित होने पर भी वह मैनाक पर्वत के सदृश अडिग रहा। (६८)

रण में भद्रकाली, उग्ररूपा एवं चण्डपूजा ने श्रेष्ठ

नाकम्पत् ताड्यमानोऽपि मैनाक इव पर्वतः ॥ ६८
तारको भद्रकाल्या च तथोलूखलया रणे ।
वध्यते चैकचूडाया दार्यते परमायुधैः ॥ ६९
तौ ताड्यमानौ प्रमथैर्मातृभिश्च महासुरौ ।
न क्षोभं जग्मतुर्वीरौ क्षोभयन्तौ गणानपि ॥ ७०
महिषो गदया तूर्णं प्रहारैः प्रमथानथ ।
पराजित्य पराधावत् कुमारं प्रति सायुधः ॥ ७१
तमापतन्तं महिषं सुचक्राक्षो निरीक्ष्य हि ।
चक्रमुद्यम्य संक्रुद्धो रुरोध दनुनन्दनम् ॥ ७२
गदाचक्राङ्कितकरौ गणासुरमहारथौ ।
अयुध्येतां तदा ब्रह्मन् लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥ ७३
गदां मुमोच महिषः समाविध्य गणाय तु ।
सुचक्राक्षो निजं चक्रमुत्ससर्जासुरं प्रति ॥ ७४
गदां छित्त्वा सुतीक्ष्णारं चक्रं महिषमाद्रवत् ।
तत उच्चुक्रुशुर्दैत्या हा हतो महिषस्त्विति ॥ ७५
तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवद् बाणः प्रासमाविध्य वेगवान् ।
बबान चक्रं रक्ताक्षः पञ्चमुष्टिशतेन हि ॥ ७६
पञ्चबाहुशतेनापि सुचक्राक्षं बबन्ध सः ।
बलवानपि बाणेन निष्प्रयत्नगतिः कृतः ॥ ७७
सुचक्राक्षं सचक्रं हि बद्धं बाणासुरेण हि ।
दृष्ट्वाद्रवद्गदापाणिर्मकराक्षो महाबलः ॥ ७८
गदया मूर्ध्नि बाणं हि निजघान महाबलः ।
वेदनार्त्तो मुमोचाथ सुचक्राक्षं महासुरः ।
स चापि तेन संयुक्तो व्रीडायुक्तो महामनाः ॥ ७९
स संग्रामं परित्यज्य सालिग्राममुपाययौ ।
बाणोऽपि मकराक्षेण ताडितोऽभूत्पराङ्मुखः ॥ ८०
प्रभज्यत बलं सर्वं दैत्यानां सुरतापस ।
ततः स्वबलमीक्ष्यैव प्रभग्नं तारको बली ।
खड्गोद्यतकरो दैत्य. प्रदुद्राव गणेश्वरान् ॥ ८१

ततस्तु तेनाप्रतिमेन सासिना
ते हंसवक्त्रप्रमुखा गणेश्वराः ।
समावरथापि पराजिता रणे

आयुधों से तारक के ऊपर प्रहार किया। (६८)

वे दोनों महान् असुर पार्षदों और मातृशक्तियों से प्रताड़ित होने पर भी क्षुब्ध न होकर गणों को क्षुब्ध कर रहे थे। (७०)

तदनन्तर गदा और प्रहारों से प्रमथों को शीघ्र पराजित कर महिषासुर आयुध सहित कुमार की ओर दौड़ा। (७१)

उस महिष को आते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध सुचक्राक्ष ने चक्र उठा कर दनुनन्दन को रोका। (७२)

हे ब्रह्मन्! हाथों में गदा और चक्रधारण किये असुर और गण दोनों महारथी उस समय परस्पर लघु, विचित्र और सुन्दर युद्ध करने लगे। (७३)

महिष ने गदा घुमा कर सुचक्राक्ष के ऊपर फेंका। सुचक्राक्ष ने भी अपने चक्र को उस असुर की ओर चलाया। (७४)

सुतीक्ष्ण अरों से युक्त वह चक्र गदा को छिन्न भिन्न कर महिष के ऊपर चला। तदनन्तर दैत्यलोग 'हाय! महिष मारा गया' यह कहते हुए जोर से चिल्ला उठे। (७५)

उसे सुनने के उपरान्त लाल नेत्रों वाला बाणासुर प्रास लेकर वेग पूर्वक दौड़ा एवं पाँच सौ मुट्ठियों से चक्र पर प्रहार किया। (७६)

और पाँच सौ भुजाओं से सुचक्राक्ष को बाँध लिया। बाणासुर के द्वारा बलवान् होते हुए भी सुचक्राक्ष प्रयासशून्य कर दिया गया। (७७)

बाणासुर के द्वारा सुचक्राक्ष को चक्र सहित बँधा हुआ देखकर महाबली मकराक्ष हाथ में गदा लेकर दौड़ा। (७८)

महाबली मकराक्ष ने गदा से बाण के मस्तक पर प्रहार किया। तदनन्तर चोट से व्याकुल बाण ने सुचक्राक्ष को छोड़ दिया। वह मनस्वी भी उससे छूटकर लज्जित हुआ और युद्ध छोड़कर शालिग्राम के समीप चला गया। बाण भी मकराक्ष से चोट खाकर युद्ध से विमुख हो गया। (७९-८०)

हे नारद! दैत्यों की सारी सेना छिन्न-भिन्न हो गई। तदुपरान्त अपनी सेना को नष्ट हुआ देख बलवान् दैत्य तारक हाथ में तलवार लेकर गणेश्वरों की ओर दौड़ा। (८१)

तदनन्तर खड्गधारी उस अप्रतिम वीर ने उन

स्कन्दं भयार्त्ताः शरणं प्रपेदिरे ॥ ८२
भग्नान् गणान् वीक्ष्य महेश्वरात्मज-
स्तं तारकं सासिनमापतन्तम् ।
दृष्ट्वैव शक्त्या हृदये निभेद
स भिन्नमर्मा न्यपतत् पृथिव्याम् ॥ ८३
तस्मिन्हते भ्रातरि भग्नदर्पो
भयातुरोऽभून्महिषो महर्षे ।
संत्यज्य संग्रामशिरो दुरात्मा
जगाम शैलं स हिमाचलाख्यम् ॥ ८४
बाणोऽपि वीरे निहतेऽथ तारके
गते हिमाद्रिं महिषे भयार्त्ते ।
भयाद् विवेशोग्रमपां निधानं
गणैर्बले वध्यति सापराधे ॥ ८५
हत्वा कुमारो रणमूर्ध्नि तारकं
प्रगृह्य शक्तिं महता जवेन ।
मयूरमारुह्य शिखण्डमण्डितं
ययौ निहन्तुं महिषासुरस्य ॥ ८६

मातृकाओं सहित हसवक्त्रादि गणेश्वरों को पराजित कर दिया। वे सभी भयार्त्त होकर स्कन्द की शरण में गये। (८२)

महेश्वर के पुत्र कुमार ने अपने गणों को उत्साहहीन तथा तलवारधारी तारकासुर को आते हुए देखकर शक्ति के प्रहार से उसका हृदय विदीर्ण कर दिया। मर्म का भेद हो जाने से वह धरती पर गिर पडा। (८३)

हे महर्षि! उस भाई के मरने पर महिषासुर का अभिमान चूर हो गया। वह दुरात्मा भय से व्याकुल हो युद्ध छोड़कर हिमालय पर्वत पर भाग गया। (८४)

वीर तारक के मारे जाने, भयार्त्त महिष के हिमालय पर भाग जाने एवं गणों द्वारा अपराधी सेना का वध किये जाने पर बाण भी भय वश उग्र (गम्भीर) समुद्र में प्रविष्ट हो गया। (८५)

रण मे तारक का वध कर कुमार शक्ति लेकर शिखण्ड-युक्त मयूर पर आरूढ हुए एवं अत्यन्त वेगपूर्वक महिषासुर को मारने चले। (८६)

स पृष्ठतः प्रेक्ष्य शिखण्डिकेतनं
समापतन्तं वरशक्तिपाणिनम् ।
कैलासमुत्सृज्य हिमाचलं तथा
क्रौञ्चं समभ्येत्य गुहां विवेश ॥ ८७
दैत्यं प्रविष्टं स पिनाकिसूनु-
र्जुगोप यत्नाद् भगवान् गुहोऽपि ।
स्वबन्धुहन्ता भविता कथं त्वहं
संचिन्तयन्नेव ततः स्थितोऽभूत् ॥ ८८
ततोऽभ्यगात् पुष्करसंभवस्तु
हरो मुरारिस्त्रिदशेश्वरश्च ।
अभ्येत्य चोचुर्महिषं सशैलं
भिन्दस्व शक्त्या कुरु देवकार्यम् ॥ ८९
तत् कार्तिकेयः प्रियमेव तथ्यं
श्रुत्वा वचः प्राह सुरान् विहस्य ।
कथं हि मातामहनप्तृकं वधे
स्वभ्रातरं भ्रातृसुतं च मातुः ॥ ९०
एषा श्रुतिश्चापि पुरातनी किल

हाथ में श्रेष्ठ शक्ति लिए हुए शिखण्डिकेतन (कुमार) को पीछे आते देख वह महिषासुर कैलास एवं हिमालय को छोड़कर क्रौञ्च पर्वत पर गया एवं उसकी गुफा मे प्रविष्ट हो गया। (८७)

महादेव के पुत्र भगवान् गुह पर्वतगुफा में प्रविष्ट दैत्य की यत्न पूर्वक रखवाली करने लगे। अपने बन्धु की हत्या कैसे करूँ यह सोचकर वे खड़े रहे। (८८)

तदनन्तर पद्मयोनि ब्रह्मा, भगवान् शंकर, विष्णु और इन्द्र वहाँ आ गये और आकर उन्होंने कहा—शक्ति के प्रहार से पर्वत सहित महिष को मारो और देवताओं का कार्य पूर्ण करो। (८९)

कार्तिकेय ने इस प्रिय एवं यथार्थ वचन को सुनकर हँसते हुए देवताओं से कहा—"मैं मातामह के नाती, अपने भाई और माता के भतीजे को कैसे मारूँ? (९०)

(इस विषय मे) यह प्राचीन श्रुति भी है जिसे वेदज्ञानी महर्षिगण (आभणक) कहते हैं। इस उत्तम श्रुति के

गायन्ति यां वेदविदो महर्षयः।
कृत्वा च यस्या मतमुत्तमायाः
स्वर्गं व्रजन्ति त्वतिपापिनोऽपि ॥ ९१
गां ब्राह्मणं वृद्धमथाप्तवाक्यं
बालं स्वबन्धुं ललनामदुष्टाम्।
कृतापराधा अपि नैव वध्या
आचार्यमुख्या गुरवस्तथैव ॥ ९२
एवं जानन् धर्ममग्र्यं सुरेन्द्रा
नाहं हन्यां भ्रातरं मातुलेयम्।
यदा दैत्यो निर्गमिष्यद् गुहान्तः
तदा शक्त्या घातयिष्यामि शत्रुम् ॥९३
श्रुत्वा कुमारवचनं भगवान्महर्षे
कृत्वा मतिं स्वहृदये गुहमाह शक्रः।
मत्तो भवान् न मतिमान् वदसे किमर्थं
वाक्यं शृणुष्व हरिणा गदितं हि पूर्वम् ॥ ९४
नैकस्यार्थे बहून् हन्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः।
एकं हन्याद् बहुभ्योऽर्थे न पापी तेन जायते ॥ ९५
एतच्छ्रुत्वा मया पूर्वं समयस्थेन चाग्निज।
निहतो नमुचिः पूर्वं सोदरोऽपि ममानुजः ॥ ९६
तस्मात् बहूनामर्थाय सक्रौञ्चं महिषासुरम्।
घातयस्व पराक्रम्य शक्त्या पावकदत्तया ॥ ९७
पुरंदरवचः श्रुत्वा क्रोधादारक्तलोचनः।
कुमारः प्राह वचनं कम्पमानः शतक्रतुम् ॥ ९८
मूढ किं ते बलं बाह्वोः शारीरं चापि वृत्रहन्।
येनाधिक्षिपसे मां त्वं ध्रुवं न मतिमानसि ॥ ९९
तमुवाच सहस्राक्षस्त्वत्तोऽहं बलवान् गुह।
तं गुहः प्राह एह्येहि युद्ध्यस्व बलवान् यदि ॥ १००
शक्रः प्राहाथ बलवान् ज्ञायते कृत्तिकासुत।
प्रदक्षिणं शीघ्रतरं यः कुर्यात् क्रौञ्चमेव हि ॥ १०१
श्रुत्वा तद्वचनं स्कन्दो मयूरं प्रोह्य वेगवान्।
प्रदक्षिणं पादचारी कर्त्तुं तूर्णतरोऽभ्यगात् ॥ १०२
शक्रोऽवतीर्य नागेन्द्रात् पादेनाथ प्रदक्षिणम्।

अनुसार आचरण कर महान् पापी भी स्वर्ग जाते हैं। (९१)

गौ, ब्राह्मण, वृद्ध, यथार्थवक्ता, बालक, अपना सम्बन्धी, दोषरहित स्त्री तथा आचार्य आदि गुरुजन अपराध करने पर भी अवध्य होते। (९२)

हे सुरेन्द्रो! मैं इस श्रेष्ठ धर्म को जानते हुए अपने भाई को नहीं मार सकूँगा। गुहा के भीतर से जब यह दैत्य निकलेगा तब मैं शक्ति द्वारा उस शत्रु का वध करूँगा। (९३)

हे महर्षे! कुमार का वचन सुनने के उपरान्त इन्द्र ने अपने हृदय में विचार कर गुह से कहा—आप मुझसे अधिक बुद्धिमान नहीं हैं। आप क्यों बोल रहे हैं। पूर्वकाल में हरि द्वारा कही बात को सुनिये। (९४)

यह शास्त्रों का निश्चय है कि एक व्यक्ति के लिए बहुतों की हत्या नहीं करनी चाहिये। परन्तु बहुतों के हित के लिए एक को मारने से मनुष्य पापी नहीं होता। (९५)

हे अग्नि पुत्र! इस (उपदेश) को सुनकर पूर्वकाल में मैंने सन्धि के रहने पर भी अपने सहोदर अनुज नमुचि को मारा। (९६)

अतः बहुतों के हित के लिए तुम क्रौञ्च सहित महिषासुर को पराक्रमपूर्वक अग्नि-प्रदत्त शक्ति से मार डालो। (९७)

इन्द्र का वचन सुनकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले काँपते हुये कुमार ने शतक्रतु इन्द्र से कहा। (९८)

हे मूढ वृत्रारि! तुम्हारी बाहों एवं शरीर में कितना बल है जिससे तुम मुझपर आक्षेप कर रहे हो। तुम निश्चय ही बुद्धिमान् नहीं हो। (९९)

सहस्राक्ष इन्द्र ने उनसे कहा—हे गुह! मैं तुमसे बलवान् हूँ। गुह ने इन्द्र से कहा—यदि तुम बलवान् हो तो आओ, युद्ध करो। (१००)

तब इन्द्र ने कहा—हे कृत्तिकानन्दन! हम दोनों में जो पहले क्रौञ्च पर्वत की प्रदक्षिणा कर सकेगा वही बलवान् समझा जायेगा। (१०१)

इस बात को सुनकर स्कन्द मयूर छोड़कर पैदल प्रदक्षिणा करने के लिये वेग पूर्वक चल पड़े। (१०२)

कृत्वा तस्थौ गुहोऽभ्येत्य मूढं किं संस्थितो भवान् ॥ १०३

तमिन्द्रः प्राह कौटिल्यं मया पूर्वं प्रदक्षिणः ।
कृतोऽस्य न त्वया पूर्वं कुमारः शक्रमब्रवीत् ॥ १०४

मया पूर्वं मया पूर्वं विवदन्तौ परस्परम् ।
प्राप्योचतुर्महेशाय ब्रह्मणे माधवाय च ॥ १०५

अथोवाच हरिः स्कन्दं प्रष्टुमर्हसि पर्वतम् ।
योऽयं वक्ष्यति पूर्वं स भविष्यति महानलः ॥ १०६

तन्माधववचः श्रुत्वा क्रौञ्चमभ्येत्य पावकिः ।
पप्रच्छाद्रिमिदं केन कृत पूर्वं प्रदक्षिणम् ॥ १०७

इत्येवमुक्तः क्रौञ्चस्तु प्राह पूर्वं महामतिः ।
चकार गोत्रभित् पश्चात्त्वया कृतमथो गुह ॥ १०८

एवं ब्रुवन्त क्रौञ्चं स क्रोधात्प्रस्फुरिताधरः ।
बिभेद शक्त्या कौटिल्यो महिषेण समं तदा ॥ १०९

तस्मिन्हतेऽथ तनये बलवान् सुनाभो
वेगेन भूमिधरपार्थिवजस्तथागात् ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुदश्विवसुप्रधाना
जग्मुर्दिवं महिषमीक्ष्य हतं गुहेन ॥ ११०

स्वमातुलं वीक्ष्य बली कुमारः
शक्तिं समुत्पाट्य निहन्तुकामः ।
निवारितश्चक्रधरेण वेगा-
दालिङ्ग्य दोर्भ्यां गुरुरित्युदीर्य ॥ १११

सुनाभमभ्येत्य हिमाचलस्तु
प्रगृह्य हस्तेऽन्यत एव नीतवान् ।
हरिः कुमारं सशिखण्डिनं नय-
द्वेगाद्दिवं पन्नगशत्रुपत्रः ॥ ११२

ततो गुहः प्राह हरिं सुरेशं
मोहेन नष्टो भगवन् विवेकः ।

इन्द्र भी गजराज से उतर कर पैर से प्रदक्षिणा कर वहाँ आ गये। स्कन्द ने उनके निकट जाकर कहा—हे मूढ ! क्यों बैठे हो ? (१०३)

इन्द्र ने उन कौटिल्य (कुटिला के पुत्र स्कन्द) से कहा—मैंने तुमसे पहले ही इसकी प्रदक्षिणा कर लिया। कुमार ने इन्द्रसे कहा—तुमने पहले नहीं किया है। (१०४)

"मैंने पहले किया, मैंने पहले किया" इस प्रकार आपस में विवाद करते हुए उन दोनों ने शंकर, ब्रह्मा एवं विष्णु से जाकर कहा। (१०५)

तदनन्तर विष्णु ने स्कन्द से कहा—तुम पर्वत से पूछो वह जिसे पहले आया हुआ कहेगा, वही महाबलवान् माना जायेगा। (१०६)

माधव की वह बात सुनकर अग्निनन्दन ने क्रौञ्च पर्वत के निकट जाकर उससे यह पूछा कि पहले किसने प्रदक्षिणा की है ? (१०७)

इस बात को सुनकर महामति क्रौञ्च ने कहा—हे गुह ! पहले इन्द्र ने प्रदक्षिणा की तदनन्तर तुमने की है। (१०८)

ऐसा कहने वाले क्रौञ्च को क्रोध से अधर कपाते हुए उस कौटिल्य (कुटिलानन्दन कुमार) ने शक्ति के प्रहार से महिषासुर के साथ विदीर्ण कर दिया। (१०९)

उस पुत्र के मारे जाने पर गिरिराजतनय बलवान् सुनाभ वेगपूर्वक वहाँ आये। ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वायु, अश्विनीकुमार, वसु आदि देवता गुह के द्वारा महिष को मारा गया देखकर स्वर्ग चले गये। (११०)

अपने मातुल को देखने के उपरान्त बलवान् कुमार ने शक्ति लेकर (उसे) मारना चाहा। किन्तु विष्णु ने वेग-पूर्वक भुजाओं से आलिंगन करते हुए "ये गुरु हैं" ऐसा कहकर उन्हें रोक दिया। (१११)

हिमालय सुनाभ के पास आये एवं उनका हाथ पकड कर दूसरी ओर ले गये तथा गरुडवाहन हरि मयूर सहित कुमार को वेग पूर्वक स्वर्ग ले गये। (११२)

तदनन्तर गुह ने सुरेश्वर हरि से कहा—"हे भगवन् ! मोह से मेरा विवेक नष्ट हो गया। मैंने अपने ममेरे भाई को मारा है। अतः मैं अपने शरीर का शोषण

भ्राता मया मातुलजो निरस्त-
स्तस्मात् करिष्ये स्वशरीरशोषम् ॥ ११३
तं प्राह विष्णुर्व्रज तीर्थवर्यं
पृथूदकं पापतरोः कुठारम् ।
स्नात्वौघवत्यां हरमीक्ष्य भक्त्या
भविष्यसे सूर्यसमप्रभाव. ॥ ११४
इत्येवमुक्तो हरिणा कुमार-
स्त्वभ्येत्य तीर्थं प्रसमीक्ष्य शम्भुम् ।
स्नात्वार्च्य देवान् स रविप्रकाशो
जगाम शैलं सदनं हरस्य ॥ ११५
सुचक्रनेत्रोऽपि महाश्रमे तप-
श्चचार शैले पवनाशनस्तु ।
आराधयानो वृषभध्वज तदा
हरोऽस्य तुष्टो वरदो बभूव ॥ ११६
देवात् स वव्रे वरमायुधार्थे
चक्रं तथा वै रिपुबाहुषण्डम् ।
छिन्द्याद्यथा त्वप्रतिमं करेण
बाणस्य तन्मे भगवान् ददातु ॥ ११७
तमाह शंभुर्व्रज दत्तमेतद्
वरं हि चक्रस्य तवायुधस्य ।
बाणस्य तद्बाहुबलं प्रवृद्धं
सच्छेत्स्यते नात्र विचारणाऽस्ति ॥ ११८
वरे प्रदत्ते त्रिपुरान्तकेन
गणेश्वरः स्कन्दमुपाजगाम ।
निपत्य पादौ प्रतिवन्द्य हृष्टो
निवेदयामास हरप्रसादम् ॥ ११९
एवं तवोक्तं महिषासुरस्य
वधं त्रिनेत्रात्मजशक्तिभेदात् ।
क्रौञ्चस्य मृत्युः शरणागतार्थे
पापापहं पुण्यविवर्धनं च ॥ १२०

इति श्रीवामनपुराणे द्वात्रिंशोऽध्याय ॥३२॥

करूँगा । (११३)

विष्णु ने उनसे कहा—हे कुमार ! तुम पापरूपी वृक्ष के लिये कुठार स्वरूप श्रेष्ठ तीर्थ पृथूदक में जाओ ! वहाँ ओघवती के जल में स्नान कर भक्तिपूर्वक महादेव का दर्शन करने से तुम सूर्य के समान प्रभायुक्त हो जाओगे । (११४)

हरि के ऐसा कहने पर कुमार (पृथूदक) तीर्थ में गये एव उन्होंने महादेव का दर्शन किया । स्नान करने के उपरान्त देवताओं की पूजा कर सूर्य के समान प्रभायुक्त हो वे महादेव के गृहभूत पर्वत पर चल गये । (११५)

सुचक्रनेत्र नामक गणेश्वर वायु मात्र भक्षण कर पर्वत पर महाश्रम में शङ्कर की आराधना करता हुआ तपस्या करने लगा । तब प्रसन्न होकर शंकर उसे वर देने के लिए उद्यत हुए । (११६)

उसने अस्त्र के निमित्त वर माँगा । "हे भगवन् ! शत्रु के बाहु समूह को काटने वाला ऐसा अनुपम चक्र मुझे दें जिससे मैं हाथ से ही बाणासुर की बाहों को काट सकूँ । (११७)

महादेव ने उससे कहा—जाओ । तुमने चक्र आयुध के निमित्त जो वर माँगा, मैंने उसे दिया । यह निस्सन्देह बाणासुर के अतिशय बढ़े हुए बाहुबल को काटेगा । (११८)

त्रिपुरान्तक महेश्वर के वर देने पर गणेश्वर स्कन्द के पास गया और उनके चरणों में गिरकर वन्दना करने के उपरान्त उनसे प्रसन्नता पूर्वक महादेव की कृपा का वर्णन किया । (११९)

इस प्रकार मैंने तुमसे शंकर पुत्र द्वारा शक्ति से महिषासुर के मारे जाने का वर्णन किया । शरणागत के लिये क्रौञ्च की मृत्यु हुई । यह आख्यान पापनाशक एवं पुण्यवर्धक है । (१२०)

श्रीवामनपुराण में बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥

३३

नारद उवाच ।
योऽसौ मन्त्रयतां प्राप्तो दैत्यानां शरताडितः ।
स केन वद निर्भिन्नः शरेण दितिजेश्वरः ॥ १
पुलस्त्य उवाच ।
आसीन्नृपो रघुकुले रिपुजिन्महर्षे
तस्यात्मजो गुणगणैकनिधिर्महात्मा ।
शूरोऽरिसैन्यदमना बलवान् सुहृत्सु
विप्रान्धदीनकृपणेषु समानभावः ॥ २
ऋतध्वजो नाम महान् महीयान्
स गालवार्थे तुरगाधिरूढः ।
पातालकेतुं निजघान पृष्ठे
बाणेन चन्द्रार्धनिभेन वेगात् ॥ ३
नारद उवाच ।
किमर्थं गालवस्यासौ साधयामास सत्तमः ।
येनासौ पत्रिणा दैत्यं निजघान नृपात्मजः ॥ ४
पुलस्त्य उवाच ।
पुरा तपस्तप्यति गालवर्षि-
र्महाश्रमे स्वे सततं निविष्टः ।
पातालकेतुस्तपसोऽस्य विघ्नं
करोति मौढ्यात् स समाधिभङ्गम् ॥ ५
न चेष्यतेऽसौ तपसो व्ययं हि
शक्तोऽपि कर्तुं त्वथ भस्मसात् तम् ।
आकाशमीक्ष्याथ स दीर्घमुष्णं
मुमोच निःश्वासमनुत्तमं हि ॥ ६
ततोऽम्बराद् वाजिवरः पपात
बभूव वाणी त्वशरीरिणी च ।
असौ तुरङ्गो बलवान् क्रमेत
अह्ना सहस्राणि तु योजनानाम् ॥ ७
स तं प्रगृह्याश्ववरं नरेन्द्रं
ऋतध्वजं योज्य तदात्तशस्त्रम् ।
स्थितस्तपस्येव ततो महर्षि-
र्दैत्यं समेत्य विशिखैर्नृपजो बिभेद ॥ ८

३३

नारद ने कहा—आप यह बतलायें कि दैत्यों के मन्त्रणा करते समय आने वाले बाण से विद्ध दैत्यश्रेष्ठ को किसने मारा था ? (१)

पुलस्त्य ने कहा—हे महर्षे ! रघुकुल मे रिपुजित् राजा थे । उनको ऋतुध्वज नामक सभी गुणों का निधि, महात्मा, शूर, शत्रुसैन्य नाशक, बलवान, सुहृदों, ब्राह्मणों, अन्धों, दरिद्रों एवं कृपणों में समान भाव रखने वाला महा मनस्वी पुत्र था । उस ने गालव के लिए अश्व पर सवार होकर अर्ध चन्द्रतुल्य बाण के द्वारा बड़े वेग से पातालकेतु की पीठ में आघात किया । (२-३)

नारद ने कहा—उस उस श्रेष्ठ राजपुत्र ने बाण से उस दैत्य के ऊपर प्रहार कर गालव का क्या कार्य सम्पन्न किया ? (४)

पुलस्त्य ने कहा—प्राचीन काल में महर्षि गालव अपने आश्रम में सदा रहते हुए तपस्या कर रहे थे । दैत्य पातालकेतु मूर्खतावश उनकी तपस्या मे विघ्न और उनकी समाधि का भंग करता था । (५)

उसको भस्म करने मे समर्थ होते हुए भी वे तपस्या का व्यय नहीं करना चाहते थे । उन्होंने आकाश की ओर देखकर दीर्घ, उष्ण एवं अत्युत्तम निःश्वास छोड़ा । (६)

तदनन्तर आकाश से एक सुन्दर अश्व गिरा और आकाशवाणी हुई कि यह बलवान् अश्व एकदिन में सहस्र योजन जा सकता है । (७)

शस्त्रसम्पन्न राजा ऋतध्वज को यह अश्व देकर वे महर्षि तप करने लगे । तदनन्तर दैत्य के समीप जाकर राजपुत्र ने उसे बाण द्वारा आहत किया । (८)

नारद उवाच ।

केनाम्बरतलाद् वाजी निसृष्टो वद सुव्रत ।
वाक् कस्याऽदेहिनी जाता परं कौतूहलं मम ॥ ९

पुलस्त्य उवाच ।

विश्वावसुर्नाम महेन्द्रगायनो
गन्धर्वराजो बलवान् यशस्वी ।
निसृष्टवान् भूवलये तुरङ्गं
ऋतध्वजस्यैव सुतार्थमाशु ॥ १०

नारद उवाच ।

कोऽर्थो गन्धर्वराजस्य येनाश्वंप्रैषीन्महाजवम् ।
राज्ञः कुवलयाश्वस्य कोऽर्थो नृपसुतस्य च ॥ ११

पुलस्त्य उवाच ।

विश्वावसोः शीलगुणोपपन्ना
आसीत्पुरंध्रीषु वरा त्रिलोके ।
लावण्यराशिः शशिकान्तितुल्या
मदालसा नाम मदालसेव ॥ १२

तां नन्दने देवरिपुस्तरस्वी
संक्रीडतीं रूपवतीं ददर्श ।
पातालकेतुस्तु जहार तन्वीं
तस्यार्थतः सोऽश्ववरः प्रदत्तः ॥ १३

हत्वा च दैत्यं नृपतेस्तनूजो
लब्ध्वा वरोरूमपि संस्थितोऽभूत् ।
दृष्टो यथा देवपतिर्महेन्द्रः
शच्या तथा राजसुतो मृगाक्ष्या ॥ १४

नारद उवाच ।

एवं निरस्ते महिषे तारके च महासुरे ।
हिरण्याक्षसुतो धीमान् किमचेष्टत वै पुनः ॥ १५

पुलस्त्य उवाच ।

तारकं निहतं दृष्ट्वा महिषं च रणेऽन्धकः ।
क्रोधं चक्रे सुदुर्बुद्धिर्देवानां देवसैन्यहा ॥ १६

ततः स्वल्पपरीवारः प्रगृह्य परिघं करे ।
निर्जगामाथ पातालाद् विचचार च मेदिनीम् ॥ १७

ततो विचरता तेन मन्दरे चारुकन्दरे ।

नारद ने कहा—हे सुव्रत ! यह बतलायें कि किसने आकाश से अश्व गिराया एवं अशरीरिणी वाणी किसकी थी ? (इस विषय में) मुझे अत्यन्त कौतूहल है । (९)

पुलस्त्य ने कहा—महेन्द्र के गायक बलवान् विश्वावसु नामक यशस्वी गन्धर्वराज ने अपनी पुत्री के लिए ऋतुध्वज के निमित्त उस समय अश्व को पृथ्वी पर गिराया था । (१०)

नारद ने कहा—महावेगवान् अश्व भेजने में गन्धर्वराज का क्या प्रयोजन था तथा राजपुत्र राजा कुवलयाश्व का इसमें क्या प्रयोजन था ? (११)

पुलस्त्य ने कहा—विश्वावसु की मद से अलसायी मदालसा नाम की एक कन्या थी । वह शील-गुण सम्पन्न, त्रिलोक की स्त्रियों में श्रेष्ठ, सुन्दरता की राशि और चन्द्रमा की कान्ति के समान थी । (१२)

नन्दनवन में क्रीडा कर रही उस रूपवती को देवशत्रु पातालकेतु ने देखा और वेगपूर्वक उसे उठा ले गया । उसी के निमित्त यह श्रेष्ठ अश्व दिया गया था । (१३)

दैत्य को मारने के उपरान्त श्रेष्ठ नितम्बों वाली स्त्री को प्राप्त कर राजपुत्र संस्थित हुए । मृगनयनी के साथ राजपुत्र इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे इन्द्राणी के साथ इन्द्र शोभित होते हैं । (१४)

नारद ने कहा—इस प्रकार महासुर तारक और महिष के निहत होने पर हिरण्याक्ष के बुद्धिमान् पुत्र (अन्धक) ने पुनः क्या किया ? (१५)

पुलस्त्य ने कहा—तारक और महिष दोनों को युद्ध में निहत हुआ देखकर देवसैन्यों का नाशक, अत्यधिक दुर्बुद्धिवाला, अन्धक देवताओं पर क्रुद्ध हुआ । (१६)

तदनन्तर स्वल्प सेना के साथ वह हाथ में परिघ लेकर पाताल से निकल पड़ा और पृथ्वी पर घूमने लगा । (१७)

तदुपरान्त घूमते हुए उसने सुन्दर कन्दराओं से

दृष्टा गौरी च गिरिजा सखीमध्ये स्थिता शुभा ॥ १८
ततोऽभूत् कामबाणार्त्तः सहसैवान्धकोऽसुरः ।
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं गिरिराजसुतां वने ॥ १९
अथोवाचासुरो मूढो वचनं मन्मथान्धकः ।
कस्येयं चारुसर्वाङ्गी वने चरति सुन्दरी ॥ २०
इयं यदि भवेन्नैव ममान्तःपुरवासिनी ।
तन्मदीयेन जीवेन क्रियते निष्फलेन किम् ॥ २१
यदस्यास्तनुमध्याया न परिष्वङ्गवानहम् ।
अतो धिङ् मम रूपेण किं स्थिरेण प्रयोजनम् ॥ २२
स मे बन्धुः स सचिवः स भ्राता साम्परायिकः ।
यो मामसितकेशां तां योजयेन् मृगलोचनाम् ॥ २३
इत्थं वदति दैत्येन्द्रे प्रह्लादो बुद्धिसागरः ।
पिधाय कर्णौ हस्ताभ्यां शिरःकम्प वचोऽब्रवीत् ॥ २४
मा मैवं वद दैत्येन्द्र जगतो जननी त्वियम् ।
लोकनाथस्य भार्येयं शंकरस्य त्रिशूलिनः ॥ २५
मा कुरुष्व सुदुर्बुद्धिं सद्यः कुलविनाशिनीम् ।
भवतः परदारेयं मा निमज्ज रसातले ॥ २६
सत्सु कुत्सितमेवं हि असत्स्वपि हि कुत्सितम् ।
शत्रवस्ते प्रकुर्वन्तु परदारावगाहनम् ॥ २७
किंचित् त्वया न श्रुतं दैत्यनाथ
गीतं श्लोकं गाधिना पार्थिवेन ।
दृष्ट्वा सैन्यं विप्रधेनुप्रसक्तं
तथ्यं पथ्यं सर्वलोके हितं च ॥ २८
वरं प्राणास्त्याज्या न च पिशुनवादेष्वभिरतिः
वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम् ।
वरं क्लीबैर्भाव्यं न च परकलत्राभिगमनं
वरं भिक्षार्थित्वं न च परधनास्वादमसकृत् ॥ २९
स प्रह्लादवचः श्रुत्वा क्रोधान्धो मदनार्दितः ।
इयं सा शत्रुजननीत्येवमुक्त्वा प्रदुद्रुवे ॥ ३०
ततोऽन्वधावन् दैतेया यन्त्रमुक्ता इवोपलाः ।

युक्त मन्दर पर्वत पर सखियों के बीच मे गिरिनन्दिनी कल्याणी गौरी को देखा। (१८)

वन में उस सर्वाङ्गसुन्दरी गिरिराजनन्दिनी को देखकर अन्धकासुर सहसा कामबाण से पीड़ित हो गया। (१९)

तदनन्तर उस मूढ कामान्ध असुर अन्धक ने कहा—वन में विचरण कर रही यह सर्वाङ्गसुन्दरी ललना किसकी है? (२०)

यदि यह मेरी अन्तःपुर निवासिनी न हुई तो मेरे इस निष्फल जीवन से क्या लाभ ? (२१)

यदि इस कृशोदरी सुन्दरी ललना का आलिङ्गन मुझे प्राप्त न हुआ तो मेरे इस स्थिर रूप को धिक्कार है। इसका क्या प्रयोजन है ? (२२)

वही मेरा बन्धु, वही सचिव, वही भ्राता तथा वही युद्ध का साथी है जो इस काले केश वाली मृगलोचनी सुन्दरी को मुझसे मिला दे। (२३)

दैत्येन्द्र के ऐसा कहने पर बुद्धिमान प्रह्लाद दोनों हाथों से कानों को ढककर सिर हिलाते हुए कहने लगे— (२४)

हे दैत्येन्द्र ! ऐसा मत कहो। यह तो संसार की जननी और लोकनाथ, त्रिशूलधारी शङ्कर की पत्नी हैं। (२५)

तुम तत्काल कुल का नाश करने वाली ऐसी दुर्बुद्धि मत करो। तुम्हारे लिए यह परस्त्री है। अतः रसातल में मत गिरो। (२६)

सज्जनों तथा दुष्टों में भी अत्यन्त निन्दित ऐसा परस्त्री गमन (कर्म) आप के शत्रु करें। (२७)

हे दैत्यनाथ! विप्र की गौ के लिए आसक्त सैन्य को देखकर गाधिराज द्वारा कहे गये समस्त लोक के लिये हितकारी, तथ्य एवं पथ्य श्लोक को क्या आप ने नहीं सुना है? (२८)

प्राणों का परित्याग करना अच्छा है, किन्तु चुगुलखोरों की बात में आसक्ति उचित नहीं। मौन रहना अच्छा है, किन्तु झूठ बोलना अच्छा नहीं। नपुंसक होकर रहना ठीक है, किन्तु परस्त्रीगमन कभी उचित नहीं। भीख माँगना अच्छा है किन्तु दूसरे के धन का बारम्बार आस्वादन करना उचित नहीं। (२९)

प्रह्लाद का वचन सुनने के उपरान्त कामार्त्त अन्धक क्रोधान्ध होकर 'यही वह शत्रु की जननी' है यह कहते हुए दौड़ पड़ा। (३०)

तदनन्तर अन्यान्य दानव यन्त्र से छूटे हुए पत्थर के सदृश उसके पीछे दौड़े। अनन्तर नन्दी ने हाथ में वज्र

तान् रुरोध बलान्नन्दी वज्रोद्यतकरोऽव्ययः ॥ ३१
मयतारपुरोगास्ते वारिता द्राविलास्तथा ।
कुलिशेनाहतास्तूर्णं जग्मुर्भीता दिशो दश ॥ ३२
तानर्दितान् रणे दृष्ट्वा नन्दिनाऽन्धकदानवः ।
परिघेण समाहत्य पातयामास नन्दिनम् ॥ ३३
शैलादिं पतितं दृष्ट्वा धावमानं तथान्धकम् ।
शतरूपाऽभवद् गौरी भयात् तस्य दुरात्मनः ॥ ३४
ततः स देवीगणमध्यसंस्थितः
परिभ्रमन् भाति महाऽसुरेन्द्रः ।
यथा वने मत्तकरी परिभ्रमन्
करेणुमध्ये मदलोलदृष्टिः ॥ ३५
न परिज्ञातवांस्तत्र का तु सा गिरिकन्यका ।
नात्राश्चर्यं न पश्यन्ति चत्वारोऽमी सदैव हि ॥ ३६
न पश्यतीह जात्यन्धो रागान्धोऽपि न पश्यति ।
न पश्यति मदोन्मत्तो लोभाक्रान्तो न पश्यति ।
सोऽपश्यमानो गिरिजां पश्यन्नपि तदान्धकः ॥ ३७
प्रहारं नाददत् तासां युवत्य इति चिन्तयन् ।
ततो देव्या स दुष्टात्मा शतावर्या निराकृतः ॥ ३८
कुट्टितः प्रवरैः शस्त्रैर्निपपात महीतले ।
वीक्ष्यान्धकं निपतितं शतरूपा विभावरी ॥ ३९
तस्मात् स्थानादपाक्रम्य गताऽन्तर्धानमम्बिका ।
पतितं चान्धकं दृष्ट्वा दैत्यदानवयूथपाः ॥ ४०
कुर्वन्तः सुमहाशब्दं प्राद्रवन्त रणार्थिनः ।
तेषामापततां शब्दं श्रुत्वा तस्थौ गणेश्वरः ॥ ४१
आदाय वज्रं बलवान् मघवानिव कोपितः ।
दानवान् समयान् वीरः पराजित्य गणेश्वरः ॥ ४२
समभ्येत्याम्बिकां दृष्ट्वा ववन्दे चरणौ शुभौ ।
देवी च ता निजा मूर्तीः प्राह गच्छध्वमिच्छया ॥ ४३
विहरध्वं महीपृष्ठे पूज्यमाना नरैरिह ।
वसतिर्भवतीनां च उद्यानेषु वनेषु च ॥ ४४
वनस्पतिषु वृक्षेषु गच्छध्वं विगतज्वराः ।
तास्तथेत्यूचुः शैलेय्या प्रणिपत्याम्बिकां क्रमात् ॥४५

लेकर बलपूर्वक उन्हें रोक दिया । (३१)

वज्र के प्रहार से रोके गये एवं भगाये गये वे मय एवं तारकादि सभी दैत्य भयभीत होकर दशों दिशाओं में भाग गये । (३२)

युद्ध में उन सभी को नन्दी द्वारा पीड़ित देखकर अन्धकासुर ने नन्दी को परिघ से मारकर गिरा दिया । (३३)

नन्दी को गिरा हुआ और अन्धक को दौड़कर आते देखकर गौरी ने उस दुरात्मा के भय से सैकड़ों रूप धारण कर लिया । (३४)

तदनन्तर देवियों के मध्य भ्रमण कर रहा महान् असुरेन्द्र इस प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे वन में हथिनियों के बीच घूमता हुआ मद से चञ्चल दृष्टिवाला मतवाला हाथी सुशोभित होता है । (३५)

वह यह नहीं जान सका कि उनमें वह गिरिनन्दिनी कौन है ? इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । क्योंकि संसार में ये चार प्रकार के व्यक्ति सदा ही नहीं देखते । (३६)

जन्मान्ध नहीं देखता, रागान्ध भी नहीं देखता, मदोन्मत्त को दिखाई नहीं पड़ता, एवं लोभाक्रान्त को नहीं दिखलाई पड़ता । अतः उस समय अन्धक देखते हुए भी गिरिजा को नहीं देख पाया । (३७)

उन सभी को युवती समझकर उस दानव ने उन पर प्रहार नहीं किया । तदनन्तर शतावरी देवी ने उस दुष्टात्मा पर प्रहार किया । (३८)

श्रेष्ठ शस्त्रों द्वारा कुचले जाने से वह पृथ्वी पर गिर पड़ा । अन्धक को गिरा हुआ देखकर शतरूपा विभावरी अम्बिका उस स्थान से हटकर अन्तर्हित हो गयीं । अन्धक को गिरा हुआ देखकर दैत्यों एवं दानवों के यूथपति महान् शब्द करते हुए युद्ध के लिये दौड़े । आक्रमण करने वाले उन (दैत्यों) के शब्द को सुनकर गणेश्वर खड़े हो गये । (३९-४१)

इन्द्र के सदृश वज्र लेकर क्रुद्ध गणेश्वर ने मय सहित दानवों को पराजित कर अम्बिका के पास जाकर उनके शुभ चरणों में प्रणाम किया । देवी ने भी अपनी उन मूर्तियों से कहा—तुम सभी यथेच्छ स्थानों को जाओ । एवं मनुष्यों से पूजित होती हुई पृथ्वी पर भ्रमण करो । तुम सभी का निवास उद्यानों, वनों, वनस्पतियों

दिक्षु सर्वासु जग्मुस्ताः स्तूयमानाश्च किंनरैः।
अन्धकोऽपि स्मृतिं लब्ध्वा अपश्यन्नद्रिनन्दिनीम्।
स्वबलं निर्जितं दृष्ट्वा ततः पातालमाद्रवत् ॥ ४६
ततो दुरात्मा स तदान्धको मुने

पातालमभ्येत्य दिवा न भुङ्क्ते।
रात्रौ न शेते मदनेषुताडितो
गौरीं स्मरन्काममबलाभिपन्नः ॥ ४७

इति श्रीवामनपुराणे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

३४

नारद उवाच।
क्व गतः शंकरो ह्यासीद्येनाम्बा नन्दिना सह।
अन्धकं योधयामास एतन्मे वक्तुमर्हसि ॥ १
पुलस्त्य उवाच।
यदा वर्षसहस्रं तु महामोहे स्थितोऽभवत्।
तदाप्रभृति निस्तेजाः क्षीणवीर्यः प्रदृश्यते ॥ २
स्वमात्मानं निरीक्ष्याथ निस्तेजोङ्गं महेश्वरः।
तपोऽर्थाय तथा चक्रे मतिं मतिमतां वरः ॥ ३
स महाव्रतमुत्पाद्य समाश्वास्याम्बिकां विभुः।
शैलादिं स्थाप्य गोप्तारं विचचार महीतलम् ॥ ४
महामुद्रार्पितग्रीवो महाहिकृतकुण्डलः।
धारयाणः कटीदेशे महाशङ्खस्य मेखलाम् ॥ ५
कपालं दक्षिणे हस्ते सव्ये गृह्य कमण्डलुम्।

एवं वृक्षों में होगा। अब तुम सभी निश्चित होकर जाओ। पार्वती के ऐसा कहने पर वे सभी अम्बिका को प्रणाम कर किन्नरों से स्तुत होती हुई समस्त दिशाओं में चली गयीं। अन्धक भी चेतना प्राप्त करने के उपरान्त गिरिजा को न देखकर तथा अपनी सेना को पराजित देखकर पाताल में चला गया। (४२-४६)

हे मुने! तदनन्तर कामबाण से आहत एवं काम के वेग से पीड़ित दुरात्मा अन्धक पाताल में जाकर गौरी का स्मरण करता हुआ न दिन में खाता था और न रात में सोता था। (४७)

श्रीवामनपुराण में तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

३४

नारद ने कहा—आप मुझे यह बतलायें कि शङ्कर कहाँ चले गये थे जिससे नन्दी सहित अम्बिका ने अन्धक से युद्ध किया। (१)

पुलस्त्य ने कहा—वे जिस समय एक सहस्र वर्ष तक महामोह में स्थित थे उसी समय से वे निस्तेज एवं शक्ति-हीन प्रतीत होने लगे। (२)

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ महेश्वर ने स्वयं अपने अङ्गों को तेजरहित देखकर तपस्या करने का निश्चय किया। (३)

वे विभु शङ्कर महाव्रत का अवलम्बन करने के उपरान्त अम्बिका को आश्वस्त किये और शैलादि (नन्दी) को रक्षक नियुक्त कर पृथ्वी पर घूमने लगे। (४)

उन्होंने गले में महामुद्रा धारण कर, महासर्पों का कुण्डल एवं कटि-प्रदेश में महाशङ्ख की मेखला धारण की। (५)

दाहिने हाथ में नरकपाल एवं बायें हाथ में कमण्डलु

एकाहवासी वृक्षे हि शैलसानुनदीष्वटन् ॥ ६
स्थानं त्रैलोक्यमास्थाय मूलाहारोऽम्बुभोजनः।
वाय्वाहारस्तदा तस्थौ नवर्षशतं क्रमात् ॥ ७
ततो वीटां मुखे क्षिप्य निरुच्छ्वासोऽभवद् यतिः।
विस्तृते हिमवत्पृष्ठे रम्ये समशिलातले ॥ ८
ततो वीटा विदार्यैव कपालं परमेष्ठिनः।
सार्चिष्मती जटामध्यान्निपण्णा धरणीतले ॥ ९
वीटया तु पतन्त्याऽद्रिर्दारितः क्ष्मासमोऽभवत्।
जातस्तीर्थवरः पुण्यः केदार इति विश्रुतः ॥ १०
ततो हरो वरं प्रादात् केदाराय वृषध्वजः।
पुण्यवृद्धिकरं ब्रह्मन् पापघ्नं मोक्षसाधनम् ॥ ११
ये जलं तावके तीर्थे पीत्वा संयमिनो नराः।
मधुमासनिवृत्ता ये ब्रह्मचारिव्रते स्थिताः ॥ १२
षण्मासाद् धारयिष्यन्ति निवृत्ताः परपाकतः।
तेषां हृत्पङ्कजेष्वेव मल्लिङ्गं भविता ध्रुवम् ॥ १३
न चास्य पापाभिरतिर्भविष्यति कदाचन।
पितॄणामक्षयं श्राद्धं भविष्यति न संशयः ॥ १४
स्नानदानतपांसीह होमजप्यादिकाः क्रियाः।
भविष्यन्त्यक्षया नृणां मृतानामपुनर्भवः ॥ १५
एवद् वरं हरात् तीर्थं प्राप्य पुष्णाति देवताः।
पुनाति पुंसां केदारस्त्रिनेत्रवचनं यथा ॥ १६
केदाराय वरं दत्त्वा जगाम त्वरितो हरः।
स्नातुं भानुसुतां देवीं कालिन्दीं पापनाशिनीम् ॥ १७
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा जगामाथ सरस्वतीम्।
वृतां तीर्थशतैः पुण्यैः प्लक्षजां पापनाशिनीम् ॥ १८
अवतीर्णस्ततः स्नातुं निमग्नश्च महाम्भसि।
द्रुपदां नाम गायत्रीं जजापान्तर्जले हरः ॥ १९
निमग्ने शंकरे देव्यां सरस्वत्यां कलिप्रिय।
साग्रः संवत्सरो जातो न चोन्मज्जत ईश्वरः ॥ २०
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् भुवनाः सह सार्णवाः।

ऐवर वे वृक्षों के नीचे, पहाड़ों के शिखरों पर तथा नदियों के किनारे घूमने लगे। (६)

क्रमशः मूल, अम्बु एवं वायु का आहार करते हुए वे तीनों लोकों में नौ सौ वर्ष व्यतीत किये। (७)

तदनन्तर हिमालय के ऊपर रमणीय तथा सम शिलातल पर आसीन उन यति ने मुख में वीटा लगाकर श्वास रोध किया। (८)

तदुपरान्त शङ्कर के कपाल को विदारित कर ज्वालायुक्त वह वीटा जटा के मध्य से निकली एवं पृथ्वी पर गिर पड़ी। (९)

उस वीटा के गिरने से पर्वत विदीर्ण होकर समतल पृथ्वी वाला हो गया और वहाँ केदार नामक विख्यात तीर्थ हुआ। (१०)

हे ब्रह्मन्! तदनन्तर वृषध्वज महादेव ने केदार को पुण्यवर्द्धक, पापनाशक और मोक्षसाधक वर दिया। (११)

मधु, मांस एवं परान्नभोजन का त्यागकर तथा ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर तुम्हारा जल पीने हुए जो संयमी मनुष्य यहाँ छः मास तक स्थित रहेंगे उनके हृत्पद्म में निश्चय ही मेरा लिङ्ग प्रकट होगा। (१२-१३)

वे कभी पाप में रत नहीं होंगे तथा निःसन्देह उनके द्वारा किया गया पितरों का श्राद्ध अक्षय होगा। (१४)

मनुष्यों द्वारा यहाँ की गई स्नान, दान, तपस्या, होम एवं जप आदि क्रियायें अक्षय होंगी तथा मरने पर उनका पुनर्जन्म नहीं होगा। (१५)

महादेव से ऐसा वर पाकर यह केदारतीर्थ त्रिनेत्र महादेव के वचन के अनुसार लोगों को पवित्र एवं देवताओं को पुष्ट करने लगा। (१६)

केदार को वर देकर महादेव सूर्यतनया पापविनाशिनी, देवी कालिन्दी यमुना में स्नान करने के लिए शीघ्र चले गये। (१७)

वहाँ स्नानकर तथा पवित्र होकर भगवान् शङ्कर सैकड़ों पुण्यतीर्थों से घिरी हुई पापनाशिनी प्लक्ष वृक्ष से उत्पन्न सरस्वती के पास गये। (१८)

तदनन्तर वे स्नानार्थ उतरे एवं महान् जल में निमग्न होकर द्रुपदा गायत्री का जप करने लगे। (१९)

हे कलिप्रिय! देवी सरस्वती के जल में शङ्कर के निमग्न हुए एक वर्ष से अधिक बीत गया किन्तु भगवान् ऊपर नहीं उठे। (२०)

हे ब्रह्मन्! इसी समय सागरों सहित सात भुवन हिलने लगे और तारकाओं के साथ नक्षत्र पृथ्वी पर गिरने

चेलुः पेतुर्धरण्यां च नक्षत्रास्तारकैः सह ॥ २१
आसनेभ्यः प्रचलिता देवाः शक्रपुरोगमाः ।
स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति जपन्तः परमर्षयः ॥ २२
ततः क्षुब्धेषु लोकेषु देवा ब्रह्माणमागमन् ।
दृष्ट्वोचुः किमिदं लोकाः क्षुब्धाः संशयमागताः ॥ २३
तानाह पद्मसंभूतो नैतद् वेद्मि च कारणम् ।
तदागच्छत वो युक्तं द्रष्टुं चक्रगदाधरम् ॥ २४
पितामहेनैवमुक्ता देवाः शक्रपुरोगमाः ।
पितामहं पुरस्कृत्य मुरारिसदनं गताः ॥ २५

नारद उवाच ।

कोऽसौ मुरारिर्देवर्षे देवो यक्षो नु किन्नरः ।
दैत्यो राक्षसो वापि पार्थिवो वा तदुच्यताम् ॥ २६

पुलस्त्य उवाच ।

योऽसौ रजःसत्त्वमयो गुणवांश्च तमोमयः ।
निर्गुणः सर्वगो व्यापी मुरारिर्मधुसूदनः ॥ २७

नारद उवाच ।

योऽसौ मुर इति ख्यातः कस्य पुत्रः स गीयते ।
कथं च निहतः संख्ये विष्णुना तद् वदस्व मे ॥ २८

पुलस्त्य उवाच ।

श्रूयतां कथयिष्यामि मुरासुरनिबर्हणम् ।
विचित्रमिदमाख्यानं पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ २९
कश्यपस्यौरसः पुत्रो मुरो नाम दनूद्भवः ।
स ददर्श रणे शस्तान् दितिपुत्रान् सुरोत्तमैः ॥ ३०
ततः स मरणाद् भीतस्तप्त्वा वर्षगणान्बहून् ।
आराधयामास विभुं ब्रह्माणमपराजितम् ॥ ३१
ततोऽस्य तुष्टो वरदः प्राह वत्स वरं वृणु ।
स च वव्रे वरं दैत्यो वरमेनं पितामहात् ॥ ३२
यं यं करतलेनाहं स्पृशेयं समरे विभो ।
स स मद्धस्तसंस्पृष्टस्त्वमरोऽपि मरत्वतः ॥ ३३
बाढमित्याह भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ततोऽभ्यागान्महातेजा मुरः सुरगिरिं बली ॥ ३४
समेत्याह्वयते देवं यक्षं किन्नरमेव वा ।
न कश्चिद् युयुधे तेन समं दैत्येन नारद ॥ ३५
ततोऽमरावतीं क्रुद्धः स गत्वा शक्रमाह्वयत् ।

लगे । (२१)

इन्द्रप्रमुख देवता अपने-अपने आसनों से हिल उठे और महर्षि गण 'संसार का भला हो' जप करने लगे । (२२)

तदनन्तर लोकों के क्षुब्ध होने पर देवगण ब्रह्मा के पास आये और उन्हें देखकर पूछा—लोक क्षुब्ध होकर क्यों संशयग्रस्त हुए हैं ? (२३)

पद्मयोनि ब्रह्मा ने उनसे कहा—इसका कारण मैं नहीं जानता । तुम लोग आओ, (इसके लिए) चक्र तथा गदा धारण करने वाले विष्णु के पास जाना उचित है । (२४)

पितामह के ऐसा कहने पर इन्द्रादि सभी देवता पितामह को आगे कर मुरारि के लोक मे गये । (२५)

नारद ने कहा—हे देवर्षि ! आप यह बतलायें कि ये मुरारि कौन हैं ? क्या देवता, यक्ष, किन्नर, दैत्य, राक्षस या मनुष्य है ? (२६)

पुलस्त्य ने कहा—सत्त्व रज तममय, गुणमय, निर्गुण, सर्वव्यापी मधुसूदन ही मुरारि नाम से प्रसिद्ध हैं । (२७)

नारद ने कहा—आप मुझे यह बतलायें कि यह मुर नामधारी दानव किसका पुत्र था ? विष्णु के द्वारा युद्ध में वह कैसे मारा गया । (२८)

पुलस्त्य ने कहा—सुनो ! मैं मुरासुर के वध की विचित्र पवित्र एवं पापनाशक कथा कहता हूँ । (२९)

दनु के गर्भ से कश्यप का मुर नामक औरस पुत्र उत्पन्न हुआ । उसने श्रेष्ठ देवों द्वारा युद्ध में दैत्यों को पराजित देखा । (३०)

तदनन्तर मृत्यु के भय से डरकर उसने अनेक वर्षों तक तपस्या कर अपराजित विभु ब्रह्मा की आराधना किया । (३१)

तदनन्तर उसके ऊपर प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने कहा—हे वत्स ! वर माँगो । उस दैत्य ने पितामह से यह वर माँगा । (३२)

हे विभो ! युद्ध में मैं जिसे करतल से स्पर्श करूँ वह मेरे हाथ के स्पर्श से अमर होते हुए भी मर जाय । (३३)

लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा । तदनन्तर महातेजस्वी बलवान् मुर सुरगिरि पर पहुँचा । (३४)

हे नारद ! वहाँ पहुँचकर उसने देवता, यक्ष, किन्नर आदि को युद्ध के लिये ललकारा, किन्तु किसी ने भी उसके साथ युद्ध नहीं किया । (३५)

तदनन्तर क्रुद्ध होकर वह अमरावती में गया एवं इन्द्र

न चास्य सह योद्धुं वै मतिं चक्रे पुरंदरः ॥ ३६
ततः स करमुद्यम्य प्रविवेशामरावतीम् ।
प्रविशन्तं न तं कश्चिन्निवारयितुमुत्सहेत् ॥ ३७
स गत्वा शक्रसदनं प्रोवाचेन्द्रं मुरस्तदा ।
देहि युद्धं सहस्राक्ष नो चेत् स्वर्गं परित्यज ॥ ३८
इत्येवमुक्तो मुरुणा ब्रह्मन् हरिहयस्तदा ।
स्वर्गराज्यं परित्यज्य भूचरः समजायत ॥ ३९
ततो गजेन्द्रकुलिशौ हृतौ शक्रस्य शत्रुणा ।
सकलत्रो महातेजाः सह देवैः सुतेन च ॥ ४०
कालिन्द्या दक्षिणे कूले निवेश्य स्वपुरं स्थितः ।
मुरुश्चापि महाभोगान् बुभुजे स्वर्गसंस्थितः ॥ ४१
दानवाश्चापरे रौद्रा मयतारपुरोगमाः ।
मुरमासाद्य मोदन्ते स्वर्गे सुकृतिनो यथा ॥ ४२
स कदाचिन्महीपृष्ठं समायातो महासुरः ।
एकाकी कुञ्जरारूढः सरयूं निम्नगां प्रति ॥ ४३

स सरय्वास्तटे वीरं राजानं सूर्यवंशजम् ।
ददर्श रघुनामानं दीक्षितं यज्ञकर्मणि ॥ ४४
तमुपेत्याब्रवीद् दैत्यो युद्धं मे दीयतामिति ।
नो चेन्निवर्ततां यज्ञो नेष्टव्या देवतास्त्वया ॥ ४५
तमुपेत्य महातेजा मित्रावरुणसंभवः ।
प्रोवाच बुद्धिमान् ब्रह्मन् वसिष्ठस्तपतां वरः ॥ ४६
किं ते जितैर्नरैर्दैत्य अजितानुशासय ।
प्रहर्तुमिच्छसि यदि तं निवारय चान्तकम् ॥ ४७
स बली शासनं तुभ्यं न करोति महासुर ।
तस्मिञ्जिते हि विजितं सर्वं मन्यस्व भूतलम् ॥ ४८
स तद् वसिष्ठवचनं निशम्य दनुपुंगवः ।
जगाम धर्मराजानं विजेतुं दण्डपाणिनम् ॥ ४९
तमायान्तं यमः श्रुत्वा मत्वाऽवध्यं च संयुगे ।
स समारुह्य महिषं केशवान्तिकमागमत् ॥ ५०
समेत्य चाभिवाद्यैनं प्रोवाच मुरचेष्टितम् ।

को युद्ध के लिए ललकारने लगा। किन्तु इन्द्र ने उसके साथ युद्ध करने का विचार नहीं किया। (३६)

तदुपरान्त हाथ उठाये हुए वह अमरावती में प्रविष्ट हुआ। किन्तु किसी ने भी उस प्रवेश करते हुए को रोकने का उत्साह नहीं किया। (३७)

तदनन्तर इन्द्र के भवन में जाकर मुर ने इन्द्र से कहा—हे सहस्राक्ष! मुझसे युद्ध करो, अन्यथा स्वर्ग छोड़ दो। (३८)

हे ब्रह्मन्! मुर के ऐसा कहने पर इन्द्र स्वर्ग का राज्य छोड़कर पृथ्वी पर विचरण करने लगे। (३९)

तदुपरान्त शत्रु ने इन्द्र के गजराज और वज्र को छीन लिया। महातेजस्वी इन्द्र अपनी पत्नी, पुत्र और देवताओं के साथ कालिन्दी के दक्षिण कूल पर अपना नगर बसाकर रहने लगे एवं मुर भी स्वर्ग में रहते हुए महान् भोगों का उपभोग करने लगा। (४०-४१)

मय और तारक आदि दूसरे भयंकर दानव भी मुर के पास पहुँच कर स्वर्ग मे पुण्यवानों के समान आमोद प्रमोद करने लगे। (४२)

वह महासुर किसी समय पृथ्वी पर आया और अकेला हाथी पर सवार होकर सरयू नदी के तट पर उपस्थित हुआ। (४३)

उसने सरयू के तट पर सूर्यवंश मे उत्पन्न यज्ञकर्म में दीक्षित रघु नामक राजा को देखा। (४४)

उनके निकट जाकर उस दैत्य ने कहा—मुझ से युद्ध करो, नहीं तो यज्ञ बन्द कर दो। तुम देवताओं की पूजा नहीं कर सकते। (४५)

हे ब्रह्मन्! मित्रावरुणनन्दन, महातेजस्वी, बुद्धिमान् और तपस्वियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ ने उस दैत्य के पास जाकर कहा— (४६)

हे दैत्य! मनुष्यों को जीतने से तुम्हें क्या लाभ होगा? अजितों को पराजित करो। यदि आक्रमण करना चाहते हो तो उन यमराज को रोको। (४७)

हे महासुर! वे बलवान् हैं। तुम्हारा शासन नहीं मानते। उनके जीत लेने पर समस्त भूतल को विजित हुआ समझो। (४८)

वसिष्ठ का वह वचन सुनकर दानवश्रेष्ठ दण्डधारी धर्मराज को जीतने के लिए गया। (४९)

उसे आता हुआ सुनकर तथा 'संग्राम मे वह अवध्य है' ऐसा सोच कर वे यम महिष पर सवार होकर भगवान् केशव के पास गये। (५०)

उनके पास जाकर प्रणाम करने के उपरान्त (यमराज ने) मुर की चेष्टाओं को बताया। उन्होंने कहा—तुम जाकर

स चाह गच्छ मामद्य प्रेषयस्व महासुरम् ॥ ५१
स वासुदेववचनं श्रुत्वाऽभ्यागात् त्वरान्वितः ।
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यः सम्प्राप्तो नगरीं मुरः ॥ ५२
तमागतं यमः प्राह किं मुरो कर्त्तुमिच्छसि ।
तदस्व वचनं कर्त्ता त्वदीयं दानवेश्वर ॥ ५३

मुरुरुवाच ।

यम प्रजासंयमनान्निवृत्तिं कर्त्तुमर्हसि ।
नो चेत् तवाद्य छित्त्वाऽहं मूर्धानं पातये भुवि ॥ ५४
तमाह धर्मराड् ब्रह्मन् यदि मां संयमाद् भवान् ।
गोपायति मुरो सत्यं करिष्ये वचनं तव ॥ ५५
मुरस्तमाह भवतः कः संयन्ता वदस्व माम् ।
अहमेनं पराजित्य वारयामि न संशयः ॥ ५६
यमस्तं प्राह मां विष्णुर्देवश्चक्रगदाधरः ।
श्वेतद्वीपनिवासी यः स मां संयमतेऽव्ययः ॥ ५७
तमाह दैत्यशार्दूलः क्वासौ वसति दुर्जयः ।
स्वयं तत्र गमिष्यामि तस्य संयमनोद्यतः ॥ ५८
तमुवाच यमो गच्छ क्षीरोदं नाम सागरम् ।
तत्रास्ते भगवान् विष्णुर्लोकनाथो जगन्मयः ॥ ५९
मुरस्तद्वाक्यमाकर्ण्य प्राह गच्छामि केशवम् ।
किं तु त्वया न तावद्धि संयम्या धर्म मानवाः ॥ ६०
स प्राह गच्छ त्वं तावत् प्रवर्तिष्ये जयं प्रति ।
संयन्तुर्वा यथा स्याद्धि ततो युद्धं समाचर ॥ ६१
इत्येवमुक्त्वा वचनं दुग्धाब्धिमगमन्मुरः ।
यत्रास्ते शेषपर्यङ्के चतुर्मूर्तिर्जनार्दनः ॥ ६२

नारद उवाच ।

चतुर्मूर्त्तिः कथं विष्णुरेक एव निगद्यते ।
सर्वगत्वात् कथमपि अव्यक्तत्वाच्च तद्वद ॥ ६३

पुलस्त्य उवाच ।

अव्यक्तः सर्वगोऽपीह एक एव महामुने ।
चतुर्मूर्तिर्जगन्नाथो यथा ब्रह्मंस्तथा शृणु ॥ ६४
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं शुक्लं शान्तं परं पदम् ।
वासुदेवाख्यमव्यक्तं स्मृतं द्वादशपत्रकम् ॥ ६५

अभी उस महासुर को मेरे पास भेज दो । (५१)

वासुदेव के वाक्य को सुनकर वे शीघ्र चले आये । इतने में मुर दैत्य उनकी नगरी में आया । (५२)

उसके आने पर यम ने कहा—हे मुर ! बतलाओ तुम क्या करना चाहते हो ? हे दानवेश्वर ! मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा । (५३)

मुर ने कहा—हे यम ! तुम प्रजाओं का नियमन बन्द करो, नहीं तो मैं तुम्हारा मस्तक काट कर पृथ्वी पर गिरा दूँगा । (५४)

हे ब्रह्मन् ! धर्मराज ने उससे कहा—यदि तुम मेरे नियामक से मेरी रक्षा कर सको तो वस्तुतः मैं तुम्हारे वचन का पालन करूँगा । (५५)

मुर ने उनसे कहा—मुझे बतलाओ तुम्हारा नियामक कौन है ? मैं निस्सन्देह उसे पराजित कर रोक दूँगा । (५६)

यम ने उससे कहा—श्वेतद्वीपनिवासी, चक्रगदाधर, अव्यय भगवान् विष्णु मुझे शासन में रखते हैं । (५७)

दैत्यशार्दूल मुर ने यमराज से कहा—वह दुर्जय कहाँ रहता है ? मैं स्वयं उसका संयमन करने के लिए वहाँ जाऊँगा । (५८)

यमराज ने उससे कहा—तुम क्षीरसागर में जाओ । वहाँ लोकनाथ जगन्मय भगवान् विष्णु रहते हैं । (५९)

मुर ने उनकी बात सुनकर कहा—हे धर्मराज ! मैं केशव के पास जाता हूँ । किन्तु तुम तब तक मनुष्यों का नियमन मत करना । (६०)

उस मुर ने कहा—तुम जाओ । तब तक मैं तुम्हारे नियामक को जैसे भी हो जीतने का प्रयत्न करूँगा । तदनन्तर तुम युद्ध करना । (६१)

इतना कह कर, मुर दैत्य क्षीर सागर में पहुँचा । वहाँ चतुर्मूर्ति जनार्दन अनन्त नाग की शय्या पर थे । (६२)

नारद ने कहा—आप यह बतलाएँ कि विष्णु को एक होने पर भी चतुर्मूर्ति क्यों कहा जाता है । क्या सर्वगत एवं अव्यक्त होने से तो नहीं कहा जाता ? (६३)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अव्यक्त एवं सर्वव्यापी होने पर भी वे एक ही हैं । जगन्नाथ जिस प्रकार चतुर्मूर्ति कहे जाते हैं उसे सुनो । (६४)

वासुदेव नामक श्रेष्ठ पद अप्रतर्क्य अनिर्देश्य, शुक्ल, शान्त, अव्यक्त एवं द्वादशपत्रक कहा गया है । (६५)

नारद उवाच ।
कथं शुक्लं कथं शान्तमप्रतर्क्यमनिन्दितम् ।
कान्यस्य द्वादशैवोक्ता पत्रका तानि मे वद ॥ ६६
पुलस्त्य उवाच ।
शृणुष्व गुह्यं परमं परमेष्ठिप्रभाषितम् ।
श्रुतं सनत्कुमारेण तेनाख्यातं च तन्मम ॥ ६७
नारद उवाच ।
कोऽयं सनत्कुमारेति यस्योक्तं ब्रह्मणा स्वयम् ।
तथापि तेन गदितं वद मामनुपूर्वशः ॥ ६८
पुलस्त्य उवाच ।
धर्मस्य भार्याहिंसाख्या तस्यां पुत्रचतुष्टयम् ।
संजातं मुनिशार्दूल योगशास्त्रविचारकम् ॥ ६९
ज्येष्ठः सनत्कुमारोऽभूद् द्वितीयश्च सनातनः ।
तृतीयः सनको नाम चतुर्थश्च सनन्दनः ॥ ७०
सांख्यवेत्तारमपरं कपिलं वोढुमासुरिम् ।
दृष्ट्वा पञ्चशिखं श्रेष्ठं योगयुक्तं तपोनिधिम् ॥ ७१
ज्ञानयोगं न ते दद्युर्ज्यायांसोऽपि कनीयसाम् ।
मानमुक्तं महायोगं कपिलादीनुपासतः ॥ ७२
सनत्कुमारश्चाभ्येत्य ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ।
अपृच्छद् योगविज्ञानं तमुवाच प्रजापतिः ॥ ७३
ब्रह्मोवाच ।
कथयिष्यामि ते साध्य यदि पुत्रत्वमिच्छसि ।
यस्य कस्य न वक्तव्यं तत्सत्यं नान्यथेति हि ॥ ७४
सनत्कुमार उवाच ।
पुत्र एवास्मि देवेश यतः शिष्योऽस्म्यहं विभो ।
न विशेषोऽस्ति पुत्रस्य शिष्यस्य च पितामह ॥ ७५
ब्रह्मोवाच ।
विशेषः शिष्यपुत्राभ्यां विद्यते धर्मनन्दन ।
धर्मकर्मसमायोगे तथापि गदतः शृणु ॥ ७६
पुन्नाम्नो नरकात् त्राति पुत्रस्तेनेह गीयते ।
शेषपापहरः शिष्य इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ ७७
सनत्कुमार उवाच ।
कोऽयं पुन्नामको देव नरकात् त्राति पुत्रकः ।
कस्माच्छेषं ततः पापं हरेच्छिष्यश्च तद्वद ॥ ७८

नारद ने कहा—किस प्रकार वे शुक्ल, शान्त, अप्रतर्क्य एवं अनिन्दित हैं ? मुझे बतलाएँ कि उनके तथाकथित द्वादशपत्रक कौन है ? (६६)

पुलस्त्य ने कहा—पितामह ब्रह्मा के द्वारा कथित वह गुप्त वाक्य सुनिए। सनत्कुमार ने उसे सुना था और उन्होंने मुझसे कहा था। (६७)

नारद ने कहा—मुझे क्रमपूर्वक यह बतलायें कि स्वयं ब्रह्मा ने जिनसे कहा और जिन्होंने आपसे कहा वे सनत्कुमार कौन हैं ? (६८)

पुलस्त्य ने कहा—धर्म की पत्नी अहिंसा है। उससे चार पुत्र हुए। हे मुनिश्रेष्ठ! वे सभी योगशास्त्र में प्रवीण थे। (६९)

उनमें सनत्कुमार ज्येष्ठ, सनातन द्वितीय, सनक तृतीय एवं सनन्दन चतुर्थ हुए। (७०)

वे सभी सांख्यवेत्ता कपिल, वोढु, आसुरी एवं योगयुक्त तपोनिधि श्रेष्ठ पञ्चशिख नामक (ऋषियों) को देखकर (उनके पास गये)। (७१)

बड़ा होने पर भी इन लोगों ने अपने से छोटों को ज्ञानयोग का का उपदेश नहीं दिया। कपिलादि की उपासना करने वालों को महायोग का परिमाण मात्र बतलाया गया। (७२)

सनत्कुमार ने कमलोद्भव ब्रह्मा के पास जाकर योग विज्ञान पूछा। प्रजापति ने उनसे कहा— (७३)

हे साध्य! यदि तुम पुत्र होना चाहो तो मैं तुमसे कहूँगा। इसे जिस किसी से नहीं कहना चाहिए। क्योंकि यह सत्य है, *अन्यथा नहीं है*। (७४)

सनत्कुमार ने कहा—हे देवेश! मैं पुत्र ही हूँ। क्यों कि हे विभो! मैं शिष्य हूँ। हे पितामह! पुत्र और शिष्य में कोई अन्तर नहीं होता। (७५)

ब्रह्मा ने कहा—हे धर्मनन्दन! धर्म कर्मों के अनुष्ठान के समय शिष्य और पुत्र में कुछ अन्तर होता है। उसे बताता हूँ, सुनो। (७६)

यह वैदिकी श्रुति है कि पुम् नामक नरक से उद्धार करने से पुत्र कहलाता है एवं शेष पापों का हरण करने वाला शिष्य कहलाता है। (७७)

सनत्कुमार ने कहा—हे देव! यह आप बतलाएँ कि पुत्र जिस नरक से त्राण करता है वह पुम् नामक नरक कौन है एवं शिष्य किससे अवशिष्ट पाप का हरण करता है। (७८)

ब्रह्मोवाच ।
एतत् पुराणं परमं महर्षे
योगाङ्गयुक्तं च सदैव यच्च ।
तथैव चोग्रं भयहारि मानवं
वदामि ते साध्य निशामयैनम् ॥ ७९

इति श्रीवामनपुराणे चतुस्त्रिंशोऽध्याय ॥३४॥

३५

ब्रह्मोवाच ।
परदाराभिगमनं पापीयांसोपसेवनम् ।
पारुष्यं सर्वभूतानां प्रथमं नरकं स्मृतम् ॥ १
फलस्तेयं महापापं फलहीनं तथाऽटनम् ।
छेदनं वृक्षजातीनां द्वितीयं नरकं स्मृतम् ॥ २
वर्ज्यादानं तथा दुष्टमवध्यवधबन्धनम् ।
विवादमर्थहेतुत्वं तृतीयं नरकं स्मृतम् ॥ ३
भयदं सर्वसत्त्वानां भवभूतिविनाशनम् ।
भ्रंशनं निजधर्माणां चतुर्थं नरकं स्मृतम् ॥ ४
मारणं मित्रकौटिल्यं मिथ्याऽभिशपनं च यत् ।
मिष्टैकाशनमित्युक्तं पञ्चमं तु नृपाचनम् ॥ ५
यन्त्रः फलादिहरणं यमनं योगनाशनम् ।
यानयुग्यस्य हरणं षष्ठमुक्तं नृपाचनम् ॥ ६
राजभागहरं मूढं राजजायानिषेवणम् ।
राज्ये त्वहितकारित्वं सप्तमं निरयं स्मृतम् ॥ ७
लुब्धत्वं लोलुपत्वं च लब्धधर्मार्थनाशनम् ।
लालासंकीर्णमेवोक्तमष्टमं नरकं स्मृतम् ॥ ८
विप्रोष्यं ब्रह्महरणं ब्राह्मणानां विनिन्दनम् ।
विरोधं बन्धुभिश्चोक्तं नवमं नरपाचनम् ॥ ९
शिष्टाचारविनाशं च शिष्टद्वेषं शिशोर्वधम् ।

ब्रह्मा ने कहा—हे महर्षि ! मैं तुमको अत्यन्त प्राचीन, योगाङ्ग युक्त, सब भय दूर करने वाली परम पवित्र कथा सुनाता हूँ । हे साध्य ! इसे सुनो । (७९)

श्रीवामनपुराण में चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

३५

ब्रह्मा ने कहा—परस्त्रीगमन, पापियों की सङ्गति और सब प्राणियों के प्रति परुषता को प्रथम नरक कहा जाता है । (१)

फलों की चोरी, व्यर्थ भ्रमण एवं वृक्षों का काटना महापाप तथा द्वितीय नरक माना गया है । (२)

निषिद्ध वस्तुओं का ग्रहण, अवध्य प्राणियों का वध और बन्धन तथा अर्थ के लिए होने वाला विवाद दोषयुक्त तृतीय नरक होता है । (३)

सभी प्राणियों को भय देना, संसार की विभूति का विनाशन तथा स्वधर्म का भ्रंशन चतुर्थ नरक कहलाता है । (४)

मारण, मित्र के साथ कुटिलता, मिथ्या शपथ, तथा अकेले मिष्टान्न का भक्षण पञ्चम नृपाचन (नरक) कहा जाता है । (५)

यन्त्र, फलादि का हरण, किसी को बाँधना, योग नाशन अर्थात् किसी की अप्राप्त की प्राप्ति का विच्छेद और यान के जूए की चोरी को छठाँ नृपाचन (नरक) कहते हैं । (६)

मूर्खतावश राजा के अंश का हरण, राज पत्नी-गमन तथा राज्य का अहित करना सप्तम नरक कहा जाता है । (७)

लुब्धता, लोलुपता, प्राप्त धर्मयुक्त अर्थ का विनाश और लालामिश्रित वाणी को अष्टम नरक कहते हैं । (८)

ब्राह्मण को देशनिकाला देना, ब्राह्मण का धन चुराना, ब्राह्मणों की निन्दा करना तथा बन्धुओं से विरोध करने को नवम नरपाचन (नरक) कहते हैं । (९)

शिष्टाचार का नाश, शिष्टजनों से विद्वेष, शिशु की हत्या, शास्त्र की चोरी तथा स्वधर्म के नाश को दशम नरक

शास्त्रस्तेयं धर्मनाशं दशमं परिकीर्तितम् ॥ १०
षडङ्गनिधनं घोरं षाड्गुण्यप्रतिषेधनम् ।
एकादशममेवोक्तं नरकं सद्भिरुत्तमम् ॥ ११
सत्सु नित्यं सदा वैरमनाचारमसत्क्रिया ।
संस्कारपरिहीनत्वमिदं द्वादशमं स्मृतम् ॥ १२
हानिर्धर्मार्थकामानामपवर्गस्य हारणम् ।
संभेदः संविदामेतत् त्रयोदशममुच्यते ॥ १३
कृपणं धर्महीनं च यद् वर्ज्यं यच्च वह्निदम् ।
चतुर्दशममेवोक्तं नरकं तद् विगर्हितम् ॥ १४
अज्ञानं चाप्यसूयत्वमशौचमशुभावहम् ।
स्मृतं तत् पञ्चदशममसत्यवचनानि च ॥ १५
आलस्यं वै षोडशममाक्रोशं च विशेषतः ।
सर्वस्य चाततायित्वमावासेष्वग्निदीपनम् ॥ १६
इच्छा च परदारेषु नरकाय निगद्यते ।
ईर्ष्याभावश्च सत्येषु उद्भूतं तु विगर्हितम् ॥ १७
एतैस्तु पापैः पुरुषः पुन्नामाद्यैर्न संशयः ।

संयुक्तः प्रीणयेद् देवं संतत्या जगतः पतिम् ॥ १८
प्रीतः सृष्ट्या तु शुभया स पापघ्नेन मुच्यते ।
पुंनामनरकं घोरं विनाशयति सर्वतः ॥ १९
एतस्मात् कारणात् साध्य सुतः पुत्रेति गद्यते ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि शेषपापस्य लक्षणम् ॥ २०
ऋणं देवर्षिभूतानां मनुष्याणां विशेषतः ।
पितॄणां च द्विजश्रेष्ठ सर्ववर्णेषु चैकता ॥ २१
ओंकारादपि निर्वृत्तिः पापकार्यकृतश्च यः ।
मत्स्यादश्च महापापमगम्यागमनं तथा ॥ २२
घृतादिविक्रयं घोरं चण्डालादिपरिग्रहः ।
स्वदोषाच्छादनं पापं परदोषप्रकाशनम् ॥ २३
मत्सरित्वं वाग्दुष्टत्वं निष्ठुरत्वं तथा परम् ।
टाकित्वं बालवादित्वं नाम्ना वाचाऽप्यधर्मजम् ॥ २४
दारुणत्वमधार्मिक्यं नरकावहमुच्यते ।
एतैश्च पापैः संयुक्तः प्रीणयेद् यदि शंकरम् ॥ २५
ज्ञानाधिकमशेषेण शेषपापं जयेत् ततः ।

कहते हैं। (१०)

षडङ्गनिधन-अर्थात् छः अङ्गों वाली वेद-विद्या का विनाश, एवं षाड्गुण्य अर्थात् सन्धि विग्रहादि राजगुणों के प्रतिषेध को सज्जनों ने ग्यारहवाँ घोर नरक कहा है। (११)

सज्जनों से सदा वैर-भाव, अनाचार, असत्कार्य एवं संस्कार-राहित्य इन को बारहवाँ नरक कहते हैं। (१२)

धर्म, अर्थ एवं काम की हानि, मोक्ष का नाश एवं इनके समूह में विरोध उत्पन्न करने को तेरहवाँ नरक कहा जाता है। (१३)

कृपण, धर्महीन, वर्ज्य एवं आग लगाने वाले को विगर्हित चौदहवाँ नरक कहते हैं। (१४)

अज्ञान, असूया, अशुभकारी, अशौच एवं असत्यवचनों को पन्द्रहवाँ नरक कहते हैं। (१५)

आलस्य, विशेष रूप से क्रोध, सभी के प्रति आततायित्व एवं गृह में आग लगाना सोलहवाँ नरक कहलाता है। (१६)

परस्त्री की कामना, सत्य के प्रति ईर्ष्याभाव एवं निन्दित व्यवहार नरक देने वाला कहा गया है। (१७) इनसे

पुत्र के द्वारा देव जगत्पति जनार्दन को प्रसन्न करता है। (१८)

पापहारिणी शुभ सन्तति के द्वारा प्रसन्न जनार्दन पुन्नामक नरक को पूर्णतया नष्ट कर देते हैं। (१९)

हे साध्य! इसीलिए सुत को पुत्र कहा जाता है। अब मैं शेष पाप का लक्षण बतलाता हूँ। (२०)

हे द्विजश्रेष्ठ! देवता, ऋषि, प्राणियों, विशेषतः मनुष्यों एवं पितरों का ऋण, सभी वर्णों में एकता, ओंकार का परित्याग, पापकर्म का आचरण, मत्स्य भक्षण तथा गमन के अयोग्य स्त्री के साथ सहवास—ये महापाप हैं। (२१-२२)

घृत आदि का विक्रय, चाण्डाल आदि का दान ग्रहण करना, अपना दोष छिपाना और दूसरे का दोष प्रकट करना—ये घोर पाप हैं। (२३)

मात्सर्य, कटु-भाषण, निष्ठुरता, नाम कहने से भी अधर्मजनक टाकिता और बाल्यादिता, भयङ्करता तथा अधार्मिकता के कार्य नरक के हेतु हैं। इन पापों से युक्त मनुष्य यदि परमज्ञानी शङ्कर को प्रसन्न करता है तो दोष पाप को वह पूर्ण रूप से जीत लेता है। हे धर्मपुत्र!

शारीरं वाचिकं यत् तु मानसं कायिकं तथा ॥ २६
पितृमातृकृतं यच्च कृतं यच्चाश्रितैर्नरैः ।
भ्रातृभिर्बान्धवैश्चापि तस्मिन् जन्मनि धर्मज्ञ ॥ २७
तत्सर्वं विलयं याति स धर्मः सुतशिष्ययोः ।
विपरीते भवेत् साध्य विपरीतः पदक्रमः ॥ २८
तस्मात् पुत्रश्च शिष्यश्च विधातव्यौ विपश्चिता ।
एतदर्थमभिध्याय शिष्याच्छ्रेष्ठतरः सुतः ।
शेषात् तारयते शिष्यः सर्वतोऽपि हि पुत्रकः ॥ २९

पुलस्त्य उवाच ।

पितामहवचः श्रुत्वा साध्यः प्राह तपोधनः ।
त्रिः सत्यं तव पुत्रोऽहं देव योगं वदस्व मे ॥ ३०
तमुवाच महायोगी त्वन्मातापितरौ यदि ।
दास्येते च ततः सूनुर्दायादो मेऽसि पुत्रक ॥ ३१
सनत्कुमारः प्रोवाच दायादपरिकल्पना ।
येयं हि भवता प्रोक्ता तां मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३२
तदुक्तं साध्यमुख्येन वाक्यं श्रुत्वा पितामहः ।
प्राह प्रहस्य भगवान् शृणु वत्सेति नारद ॥ ३३

ब्रह्मोवाच ।

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवास्तु षट् ॥ ३४
अमीषु षट्सु पुत्रेषु ऋणपिण्डधनक्रियाः ।
गोत्रसाम्यं कुले वृत्तिः प्रतिष्ठा शाश्वती तथा ॥ ३५
कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ।
स्वयंदत्तः पारशवः षडदायादबान्धवाः ॥ ३६
अमीभिर्ऋणपिण्डादिकृत्या नैवेह विद्यते ।
नामधारका एवेह न गोत्रकुलसंमताः ॥ ३७
तत् तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणः सनकाग्रजः ।
उवाचैषां विशेषं मे ब्रह्मन् व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३८
ततोऽब्रवीत् सुरपतिर्विशेषं शृणु पुत्रक ।
औरसो यः स्वयं जातः प्रतिबिम्बमिवात्मनः ॥ ३९

इस जन्म में किये गये सभी कायिक, वाचिक एवं मानसिक कर्म; माता, पिता तथा आश्रित जन और भाई एवं बान्धवों द्वारा किये गये कर्म विलीन हो जाते हैं। हे साध्य! सुत एवं शिष्य का यही धर्म है। इसके विपरीत होने पर विपरीत गति प्राप्त होती है। (२४-२८)

अतएव विद्वान् व्यक्ति को पुत्र और शिष्य की (परम्परा) बनानी चाहिए। इसी प्रयोजन की दृष्टि से शिष्य की अपेक्षा पुत्र श्रेष्ठ होता है। क्योंकि शिष्य शेष पापों से मुक्त करता है और पुत्र सभी पापों से बचाता है। (२९)

पुलस्त्य ने कहा—पितामह का वचन सुनकर तपोधन सनत्कुमार ने कहा—हे देव! तीन बार सत्य उच्चारण करके कहता हूँ कि मैं आप का पुत्र हूँ। अत मुझे आप योग का उपदेश दीजिए। (३०)

तब महायोगी पितामह ने उनसे कहा—हे पुत्र! तुम्हारे माता पिता यदि तुमको मुझे दे दें तो तुम मेरे दायाद पुत्र हो जाओगे। (३१)

सनत्कुमार ने कहा—हे भगवन्! आप ने जो दायाद शब्द कहा है उसका अर्थ क्या है? यह मुझे बतलाइये। (३२)

हे नारद! भगवान् पितामह साध्यप्रधान सनत्कुमार का वचन सुनकर हँसते हुए बोले—हे वत्स! सुनो। (३३)

ब्रह्मा ने कहा—औरस, क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम, गूढोत्पन्न और अपविद्ध-ये छः बान्धव दायाद होते हैं। (३४)

इन छः पुत्रों से ऋण, पिण्ड, धन की क्रिया गोत्रसाम्य, कुलवृत्ति और स्थिर प्रतिष्ठा रहती है। (३५)

इसके अतिरिक्त कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और पारशव ये छः अदायाद बान्धव कहे जाते हैं। (३६)

इनके द्वारा ऋण एवं पिण्डादि का कार्य नहीं होता। ये नामधारी-मात्र होते हैं। गोत्र एवं कुल से ये सम्मत नहीं होते। (३७)

सनत्कुमार ने उनकी बात सुनकर कहा—हे ब्रह्मन्! आप इन सभी का विशेष लक्षण मुझे बतलाएँ। (३८)

तदनन्तर सुरपति ब्रह्मा ने कहा—हे पुत्र! मैं विशेषरूप से बतलाता हूँ। सुनो। अपने द्वारा उत्पन्न किया गया पुत्र औरस कहलाता है। यह अपना प्रतिबिम्ब होता है। (३९)

क्लीबोन्मत्ते व्यसनिनि पत्यौ तस्याज्ञया तु या।
भार्या ह्यनातुरा पुत्रं जनयेत् क्षेत्रजस्तु सः॥ ४०
मातापितृभ्यां यो दत्तः स दत्तः परिगीयते।
मित्रपुत्रं मित्रदत्तं कृत्रिमं प्राहुरुत्तमाः॥ ४१
न ज्ञायते गृहे केन जातस्त्विति स गूढकः।
बाह्यतः स्वयमानीतः सोऽपविद्धः प्रकीर्तितः॥ ४२
कन्याजातस्तु कानीनः सगर्भोढः सहोढकः।
मूल्यैर्गृहीतः क्रीतः स्याद् द्विविधः स्यात् पुनर्भवः॥४३
दत्त्वैकस्य च या कन्या हृत्वाऽन्यस्य प्रदीयते।
तज्जातस्तनयो ज्ञेयो लोके पौनर्भवो मुने॥ ४४
दुर्भिक्षे व्यसने चापि येनात्मा विनिवेदितः।
स स्वयंदत्त इत्युक्तस्तथान्यः कारणान्तरैः॥ ४५

ब्राह्मणस्य सुतः शूद्र्यां जायते यस्तु सुव्रत।
ऊढायां वाप्यनूढायां स पारशव उच्यते॥ ४६
एतस्मात् कारणात् पुत्र न स्वयं दातुमर्हसि।
स्वमात्मानं गच्छ शीघ्रं पितरौ समुपाह्वय॥ ४७
ततःस मातापितरौ सस्मार वचनाद् विभोः।
तावाजग्मतुरीशानं द्रष्टुं वै दम्पती मुने॥ ४८
धर्मोऽहिंसा च देवेशं प्रणिपत्य न्यषीदताम्।
उपविष्टौ सुखासीनौ साध्यो वचनमब्रवीत्॥ ४९

सनत्कुमार उवाच।

योगं जिगमिषुस्तात ब्रह्माणं समचूचुदम्।
स चोक्तवान् मां पुत्रार्थे तस्मात् त्वं दातुमर्हसि॥ ५०
तावेवमुक्तौ पुत्रेण योगाचार्यं पितामहम्।

पति के नपुसक, उन्मत्त या व्यसनी होने पर उसकी आज्ञा से अनातुरा (निष्काम भाव से) पत्नी (अन्य पुरुष के संयोग से) जो पुत्र उत्पन्न करती है उसे क्षेत्रज कहा जाता है। (४०)

माता-पिता यदि दूसरे को अपना पुत्र दे दें तो वह दत्तक कहा जाता है। मित्र के पुत्र और मित्र द्वारा दिये गये पुत्र को उत्तम पुरुष कृत्रिम पुत्र कहते हैं। (४१)

वह पुत्र गूढ़ होता है जिसके विषय में यह ज्ञात न हो कि गृह में किसके द्वारा वह उत्पन्न हुआ है। बाहर से स्वयं लाये हुए पुत्र को अपविद्ध कहते हैं। (४२)

कुमारी कन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र का नाम कानीन है। गर्भिणी कन्या से विवाह के अनन्तर उत्पन्न पुत्र को सहोढ कहते हैं। मूल्य देकर खरीदा हुआ पुत्र क्रीत पुत्र कहलाता है। पुनर्भव पुत्र दो प्रकार का होता है। (४३)

एक कन्या को एक पति के हाथ में देकर पुनः उससे छीनकर दूसरे पति के हाथ में देने पर जो पुत्र उत्पन्न होता है उसे पुनर्भव पुत्र कहते हैं। (४४)

दुर्भिक्ष, व्यसन या अन्य किसी कारण से जो स्वयं को (किसी दूसरे के हाथ में) समर्पित कर देता है उसे स्वयंदत्त पुत्र कहते हैं। (४५)

हे सुव्रत! विवाहित या अविवाहित शूद्रा के गर्भ से ब्राह्मण का जो पुत्र होता है उसका नाम पारशव पुत्र है। (४६)

हे पुत्र! इन कारणों से तुम स्वयं आत्मदान नहीं कर सकते। अतः शीघ्र जाकर अपने माता पिता को बुला लाओ। (४७)

हे मुनि! तदनन्तर सनत्कुमार ने विभु ब्रह्मा के कहने से अपने माता-पिता का स्मरण किया। हे मुनि! वे दम्पती पितामह का दर्शन करने के लिए वहाँ आ गये। (४८)

धर्म और अहिंसा ब्रह्मा को प्रणाम कर बैठ गये। उनके सुख से बैठ जाने पर सनत्कुमार ने यह वचन कहा— (४९)

सनत्कुमार ने कहा—हे तात! मैंने योग जानने के लिए पितामह से प्रार्थना की थी। उन्होंने मुझसे अपना पुत्र होने के लिए कहा। अतः आप मुझे प्रदान कर दें। (५०)

पुत्र के ऐसा कहने पर उन दोनों ने योगाचार्य पितामह से कहा—हे प्रभो! हम दोनों का यह पुत्र

उक्तवन्तौ प्रमोऽयं हि आवयोस्तनयस्तव ॥ ५१
अद्यप्रभृत्ययं पुत्रस्तव ब्रह्मन् भविष्यति।
इत्युक्त्वा जग्मतुस्तूर्णं येनैनाभ्यागतौ यथा ॥ ५२
पितामहोऽपि तं पुत्रं साध्यं सद्विनयान्वितम्।
सनत्कुमारं प्रोवाच योगं द्वादशपत्रकम् ॥ ५३
शिखासंस्थं तु ओङ्कारं मेषोऽस्य शिरसि स्थितः।
मासो वैशाखनामा च प्रथमं पत्रकं स्मृतम् ॥ ५४
नकारो मुखसंस्थो हि वृषस्तत्र प्रकीर्तितः।
ज्येष्ठमासश्च तत्पत्रं द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥ ५५
मोकारो भुजयोर्युग्मं मिथुनस्तत्र संस्थितः।
मासो आषाढनामा च तृतीयं पत्रकं स्मृतम् ॥ ५६
भकारं नेत्रयुगलं तत्र कर्कटकः स्थितः।
मासः श्रावण इत्युक्तश्चतुर्थं पत्रकं स्मृतम् ॥ ५७
गकारं हृदयं प्रोक्तं सिंहो वसति तत्र च।
मासो भाद्रस्तथा प्रोक्तः पञ्चमं पत्रकं स्मृतम् ॥ ५८
वकारं कवचं विद्यात् कन्या तत्र प्रतिष्ठिता।
मासश्चाश्वयुजो नाम षष्ठं तत् पत्रकं स्मृतम् ॥ ५९
तेकारमस्त्रग्रामं च तुलाराशिः कृताश्रयः।
मासश्च कार्तिको नाम सप्तमं पत्रकं स्मृतम् ॥ ६०
वाकारं नाभिसंयुक्तं स्थितस्तत्र तु वृश्चिकः।
मासो मार्गशिरो नाम त्वष्टमं पत्रकं स्मृतम् ॥ ६१
सुकारं जघनं प्रोक्तं तत्रस्थश्च धनुर्धरः।
पौषेति गदितो मासो नवमं परिकीर्तितम् ॥ ६२
देकारश्चोरुयुगलं मकरोऽप्यत्र संस्थितः।
माघो निगदितो मासः पत्रकं दशमं स्मृतम् ॥ ६३
वाकारो जानुयुग्मं च कुम्भस्तत्रादिसंस्थितः।
पत्रकं फाल्गुनं प्रोक्तं तदेकादशमुत्तमम् ॥ ६४
पादौ यकारो मीनोऽपि स चैत्रे वसते मुने।
इदं द्वादशमं प्रोक्तं पत्रं वै केशवस्य हि ॥ ६५
द्वादशारं तथा चक्रं षण्णाभि द्वियुतं तथा।
त्रिव्यूहमेकमूर्तिश्च तथोक्तः परमेश्वरः ॥ ६६
एवन् तवोक्तं देवस्य रूपं द्वादशपत्रकम्।

आप का हो। (५१)

हे ब्रह्मन्! आज से यह पुत्र आप का होगा। इतना कहकर वे शीघ्र ही जिस मार्ग से आये थे उसी से चले गये। (५२)

पितामह ने भी उस विनय युक्त पुत्र सनत्कुमार को द्वादशपत्र योग का उपदेश किया। (५३)

भगवान् वासुदेव की शिखा में स्थित 'ओंकार', शिर पर स्थित मेष राशि और वैशाख मास ये इसके प्रथम पत्र हैं। (५४)

मुख में स्थित 'नकार' और वहीं पर विद्यमान वृषराशि तथा ज्येष्ठ मास ये उनके द्वितीय पत्र कहे गये हैं। (५५)

दोनों भुजाओं में स्थित 'मोकार', मिथुन राशि एवं आषाढ मास-ये उनके तृतीय पत्रक हैं। (५६)

उनके नेत्र युगल में विद्यमान 'भकार', कर्क राशि और श्रावण मास-ये चतुर्थ पत्रक हैं। (५७)

(उनके) हृदय के रूप में विद्यमान 'गकार', सिंहराशि और भाद्रपद मास-ये पञ्चम पत्रक हैं। (५८)

(उनके) कवच के रूप में विद्यमान 'वकार', कन्याराशि और आश्विन मास-ये षष्ठ पत्रक हैं। (५९)

(उनके) अस्त्र-समूह के रूप में विद्यमान 'तेकार', तुलाराशि और कार्तिक मास-ये सप्तम पत्रक हैं। (६०)

हे मुनि! (उनके) नाभि रूप में विद्यमान 'वाकार', वृश्चिक राशि और मार्गशीर्ष मास-ये अष्टम पत्रक हैं। (६१)

(उनके) जघनरूप में विद्यमान 'सुकार', धनुराशि और पौष मास ये नवम पत्रक हैं। (६२)

(उनके) ऊरु युगल-रूप में विद्यमान 'देकार', मकर राशि और माघ मास-ये दशम पत्रक हैं। (६३)

(उनके) दोनों घुटनों के रूप में विद्यमान 'वाकार', कुम्भ राशि और फाल्गुन मास ये ग्यारहवें पत्रक हैं। (६४)

(उनके) चरणद्वय रूप में विद्यमान् 'यकार', मीन राशि और चैत्र मास ये बारहवें पत्रक हैं। ये ही केशव के द्वादश पत्र हैं। (६५)

उनका चक्र बारह अरों, बारह-नाभियों और त्रिव्यूह से युक्त है। इस प्रकार भी उन परमेश्वर की एकमूर्ति है। (६६)

हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने तुमसे भगवान् के इस द्वादश पत्रक स्वरूप का वर्णन किया जिसके जानने से पुन मरण

यस्मिन् ज्ञाते मुनिश्रेष्ठ न भूयो मरणं भवेत् ॥ ६७
द्वितीयमुक्तं सत्त्वाढ्यं चतुर्वर्णं चतुर्मुखम् ।
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं श्रीवत्सधरमव्ययम् ॥ ६८
तृतीयस्तामसो नाम शेषमूर्तिः सहस्रपात् ।
सहस्रवदनः श्रीमान् प्रजाप्रलयकारकः ॥ ६९
चतुर्थो राजसो नाम रक्तवर्णश्चतुर्मुखः ।
द्विभुजो धारयन् मालां सृष्टिकृदादिपूरुषः ॥ ७०
अव्यक्तात् संभवन्त्येते त्रयो व्यक्ता महामुने ।
अतो मरीचिप्रमुखास्तथान्येऽपि सहस्रशः ॥ ७१

एतत् तवोक्तं मुनिवर्य रूपं
विभोः पुराणं मतिपुष्टिवर्धनम् ।
चतुर्भुजं तं स मुरर्दुरात्मा
कृतान्तवाक्यात् पुनराससाद ॥ ७२
तमागतं प्राह मुने मधुघ्नः
प्राप्तोऽसि केनासुर कारणेन ।
स प्राह योद्धुं सह वै त्वयाऽद्य
तं प्राह भूयः सुरशत्रुहन्ता ॥ ७३
यदीह मां योद्धुमुपागतोऽसि
तत् कम्पते ते हृदयं किमर्थम् ।
ज्वरातुरस्येव मुहुर्मुहुर्वै
तन्नास्मि योत्स्ये सह कातरेण ॥ ७४
इत्येवमुक्तो मधुसूदनेन
मुरस्तदा स्वे हृदये स्वहस्तम् ।
कथं क्व कस्येति मुहुस्तथोक्त्वा
निपातयामास विपन्नबुद्धिः ॥ ७५
हरिश्च चक्रं मृदुलाघवेन
मुमोच तद्धृत्कमलस्य शत्रोः ।
चिच्छेद देवास्तु गतव्यथाभवन्
देवं प्रशंसन्ति च पद्मनाभम् ॥ ७६
एतत् तवोक्तं मुरदैत्यनाशनं
कृतं हि युक्त्या शितचक्रपाणिना ।
अतः प्रसिद्धिं समुपाजगाम
मुरारिरित्येव विभुर्नृसिंहः ॥ ७७

इति श्रीवामनपुराणे पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥३५॥

नहीं होता। (६७)

उनका द्वितीय सत्त्वमय, श्रीवत्सधारी अविनाशी स्वरूप, चतुर्वर्ण, चतुर्मुख, चतुर्बाहु एवं उदार अङ्गों से युक्त है। (६८)

सहस्र पैरों एवं सहस्र मुखों से सम्पन्न श्रीसंयुक्त तमोगुणमयी उनकी तृतीय शेषमूर्त्ति प्रजाओं का प्रलय करती है। (६९)

उनका चतुर्थ रूप राजस है। वह रक्तवर्ण, चार मुख एवं दो भुजाओं से सम्पन्न तथा माला से अलङ्कृत है। यही रूप सृष्टिकर्त्ता आदिपुरुष है। (७०)

हे महामुनि! ये तीन व्यक्त मूर्त्तियाँ अव्यक्त से उत्पन्न होती हैं। इनसे ही मरीचि आदि ऋषि तथा अन्यान्य हजारों पुरुष उत्पन्न हुए हैं। (७१)

हे मुनिवर! तुम्हारे सामने मैंने विष्णु के अत्यन्त प्राचीन और मति-पुष्टि-वर्द्धक रूप का वर्णन किया। दुरात्मा मुरु यमराज के कहने से पुनः उन चतुर्भुज (विष्णु) के पास गया। (७२)

हे मुनि! मधुसूदन ने आये हुए उससे पूछा—हे असुर! तुम किस लिए आये हो? उसने कहा—तुम्हारे साथ आज युद्ध करने आया हूँ। असुरारि ने उससे पुनः कहा— (७३)

यदि तुम मेरे साथ युद्ध करने आये हो तो ज्वरातुर के सदृश तुम्हारा हृदय बारम्बार क्यों कम्पित हो रहा है? अतः मैं कातर के साथ युद्ध नहीं करूँगा। (७४)

मधुसूदन के ऐसा कहने पर 'कैसे? कहाँ? किसका?' ऐसा बार बार कहते हुए नष्टबुद्धि मुरु ने अपने हृदय पर हाथ रक्खा। (७५)

इसे देखकर हरि ने धीरे से चक्र निकालकर उस शत्रु के हृदय कमल को छिन्न कर दिया। तदनन्तर सभी देवता दुःखरहित होकर भगवान् पद्मनाभ विष्णु की प्रशंसा करने लगे। (७६)

मैंने तुमसे तीक्ष्ण चक्र धारण करने वाले विष्णु द्वारा युक्तिपूर्वक किये गए मुर दैत्य के विनाश का वर्णन किया। इसी से विभु नृसिंह 'मुरारि' नाम से प्रसिद्ध हुए। (७७)

श्री वामनपुराण में पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त। ३५॥

३६

पुलस्त्य उवाच ।
ततो मुरारिभवनं समभ्येत्य सुरास्ततः ।
ऊचुर्देवं नमस्कृत्य जगत्संक्षुब्धिकारणम् ॥ १
तच्छ्रुत्वा भगवान् प्राह गच्छामो हरमन्दिरम् ।
स वेत्स्यति महाज्ञानी जगत्क्षुब्ध चराचरम् ॥ २
तथोक्ता वासुदेवेन देवाः शक्रपुरोगमाः ।
जनार्दनं पुरस्कृत्य प्रजग्मुर्मन्दर गिरिम् ।
न तत्र देवं न वृषं न देवीं न च नन्दिनम् ॥ ३
शून्यं गिरिमपश्यन्त अज्ञानतिमिरावृता ।
तान् मूढदृष्टीन् संप्रेक्ष्य देवान् विष्णुर्महाद्युतिः ॥ ४
प्रोवाच किं न पश्यध्वं महेशं पुरतः स्थितम् ।
तमूचुर्नैव देवेशं पश्यामो गिरिजापतिम् ॥ ५
न विद्मः कारणं तच्च येन दृष्टिर्हता हि नः ।
तानुवाच जगन्मूर्तिर्यूयं देवस्य सागसः ॥ ६
पापिष्ठा गर्भहन्तारो मृडान्याः स्वार्थतत्पराः ।
तेन ज्ञानविवेको वै हृतो देवेन शूलिना ॥ ७
येनाग्रतः स्थितमपि पश्यन्तोऽपि न पश्यथ ।
तस्मात् कायविशुद्ध्यर्थं देवदृष्ट्यर्थमादरात् ॥ ८
तप्तकृच्छ्रेण संशुद्धाः कुरुध्वं स्नानमीश्वरे ।
क्षीरस्नाने प्रयुञ्जीत सार्द्धं कुम्भशतं सुराः ॥ ९
दधिस्नाने चतुःषष्टिर्द्वात्रिंशद्धविषोऽर्हणे ।
पञ्चगव्यस्य शुद्धस्य कुम्भाः षोडश कीर्तिताः ॥ १०
मधुनोऽष्टौ जलस्योक्ताः सर्वे ते द्विगुणाः सुराः ।
ततो रोचनया देवमष्टोत्तरशतेन हि ॥ ११
अनुलिम्पेत् कुङ्कुमेन चन्दनेन च भक्तितः ।
बिल्वपत्रैः सकमलैः धत्तूरसुरचन्दनैः ॥ १२

३६

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर सभी देवता विष्णु के यहाँ गये एवं उन्हें प्रणाम कर उनसे जगत के संक्षोभ का कारण पूछा। (१)

भगवान् मुरारि ने उसे सुनकर कहा—हम लोग शिव के घर चलें। वे महाज्ञानी चराचर जगत् के व्याकुल होने का कारण जानते होंगे। (२)

वासुदेव के ऐसा कहने पर इन्द्र आदि देवगण जनार्दन को आगे कर मन्दर पर्वत पर गये। वहाँ उन्होंने न महादेव को, न वृष को, न देवी पार्वती को और न नन्दी को ही देखा। (३)

अज्ञानान्धकार से आवृत उन लोगों ने पर्वत को शून्य देखा। महातेजस्वी विष्णु ने देवों को मूढदृष्टि हुआ देखकर कहा—क्या आप लोग सम्मुख स्थित महादेव को नहीं देख रहे हैं ? उन्होंने उत्तर दिया—हम लोग गिरिजापति देवेश को नहीं देख रहे हैं। (४५)

हम लोग उस कारण को नहीं जानते जिससे हमारी दृष्टि नष्ट हो गयी है। जगन्मूर्ति (विष्णु) ने उनसे कहा—आप लोग देव के अपराधी हैं। (६)

तुम लोग स्वार्थतत्पर होकर मृडानी का गर्भ नष्ट करने से महापापग्रस्त हुए हो इस लिए शूलपाणि महादेव ने तुम लोगों का ज्ञान और विवेक अपहृत कर लिया है। (७)

इससे तुम लोग सम्मुख स्थित (शङ्कर) को देखकर भी नहीं देख रहे हो। अतः सब लोग श्रद्धा के साथ शरीर की शुद्धि और देव का दर्शन प्राप्त करने के लिए तप्तकृच्छ्र व्रत द्वारा शुद्ध होकर स्नान करो। हे देवो! ईश्वर के स्नानार्थ डेढ़ सौ घड़ों का दूध प्रयुक्त करो। (८-९)

(तदुपरान्त उनके स्नानार्थ) चौसठ घड़ों की दधि, बत्तीस घड़ों का घृत एवं सोलह घड़े शुद्ध पञ्चगव्य का विधान किया गया है। (१०)

हे देवताओ! मधु का स्नान आठ घड़ों से तथा

मन्दारैः पारिजातैश्च अतिमुक्तैस्तथाऽर्चयेत्।
अगुरुं सह कालेयं चन्दनेनापि धूपयेत्॥ १३
जप्तव्यं शतरुद्रीयं ऋग्वेदोक्तैः पदक्रमैः।
एवं कृते तु देवेशं पश्यध्वं नेतरेण च॥ १४
इत्युक्ता वासुदेवेन देवाः केशवमब्रुवन्।
विधानं तप्तकृच्छ्रस्य कथ्यतां मधुसूदन।
यस्मिंश्चीर्णे कायशुद्धिर्भवते सार्वकालिकी॥ १५

वासुदेव उवाच।

त्र्यहमुष्णं पिबेदापः त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत्।
त्र्यहमुष्णं पिबेत्सर्पिर्वायुभक्षो दिनत्रयम्॥ १६
पला द्वादश तोयस्य पलाष्टौ पयसः सुराः।
षट्पलं सर्पिषः प्रोक्तं दिवसे दिवसे पिबेत्॥ १७

पुलस्त्य उवाच।

इत्येवमुक्ते वचने सुराः कायविशुद्धये।
तप्तकृच्छ्ररहस्यं वै चक्रुः शक्रपुरोगमाः॥ १८
ततो व्रते सुराश्चीर्णे विमुक्ताः पापतोऽभवन्।
विमुक्तपापा देवेशं वासुदेवमथाब्रुवन्॥ १९
क्वासौ वद जगन्नाथ शंभुस्तिष्ठति केशव।
य क्षीराद्यभिषेकेण स्नापयामो विधानतः॥ २०
अथोवाच सुरान्विष्णुरेष तिष्ठति शङ्करः।
मद्देहे किं न पश्यध्वं योगश्चायं प्रतिष्ठितः॥ २१
तमूचुर्नैव पश्यामस्त्वचो वै त्रिपुरान्तकम्।
सत्यं वद सुरेशान महेशानः क्व तिष्ठति॥ २२
ततोऽव्ययात्मा स हरिः स्वहृत्पङ्कजशायिनम्।
दर्शयामास देवाना मुरारिर्लिङ्गमैश्वरम्॥ २३
ततः सुराः क्रमेणैव क्षीरादिभिरनन्तरम्।
स्नापयांचक्रिरे लिङ्गं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्॥ २४
गोरोचनया त्वालिप्य चन्दनेन सुगन्धिना।

जल का स्नान इन सभी के दुगुने घड़ों से कहा गया है। तदनन्तर भक्ति पूर्वक देव को एक सौ आठ बार गोरोचना, कुङ्कुम और चन्दन का लेप करे। तदुपरान्त विल्वपत्र, कमल, धत्तूर, सुरचन्दन, मन्दार, पारिजात एवं अतिमुक्त नामक पुष्पों से देव का अर्चन करे एवं अगुरु, कालेय तथा चन्दन का धूप दे। (११-१३)

तदनन्तर ऋग्वेद में कथित पदक्रमों के साथ शतरुद्रीय का जप करना चाहिए। ऐसा करने से आप लोग देवेश्वर का दर्शन कर सकेंगे। अन्य किसी उपाय से नहीं। (१४)

वासुदेव के द्वारा ऐसा कहने पर देवताओं ने केशव से कहा—हे मधुसूदन! तप्तकृच्छ्र (व्रत) का विधान बतलाएँ जिसके करने से सार्वकालिकी कायशुद्धि होती है। (१५)

वासुदेव ने कहा—तीन दिन उष्ण जल का पान करे, तीन दिन उष्ण दुग्धपान करे, तीन दिन उष्ण घृत का पान करे एवं तीन दिन वायुमात्र का भक्षण करे। (१६)

हे देवताओ! जल द्वादश पल, दुग्ध आठ पल एवं घृत छः पल की मात्रा में कथित दिनों में पान करना चाहिए। (१७)

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा कहने पर इन्द्रादि देवताओं ने शरीर की शुद्धि के लिये तप्तकृच्छ्र व्रत का अनुष्ठान किया। (१८)

तदनन्तर उस व्रत का पालन हो जाने पर देवता पाप से मुक्त हो गये। पाप विमुक्त देवताओं ने देवेश वासुदेव से कहा। (१९)

हे जगन्नाथ! हे केशव! आप बतलाँ कि शम्भु कहाँ अवस्थित हैं? जिन्हें हम लोग दूध आदि के अभिषेक द्वारा विधिपूर्वक स्नान करायें। (२०)

तदुपरान्त विष्णु ने देवताओं से कहा—मेरे शरीर में ये शङ्कर संयुक्त होकर स्थित हैं। क्या आप लोग नहीं देख रहे हैं? (२१)

उन लोगों ने उनसे कहा—हम लोग आप में भी त्रिपुरान्तक शङ्कर को नहीं देख रहे हैं। हे सुरेशान! सत्य बतलायें कि महेश कहाँ स्थित हैं। (२२)

तदनन्तर अव्ययात्मा मुरारि हरि ने देवताओं को अपने हृदय कमल में शयन करने वाले ईश्वरीय लिङ्ग का दर्शन कराया। (२३)

तदुपरान्त देवताओं ने क्रमशः दुग्ध आदि के द्वारा इस नित्य, स्थिर एवं अक्षय लिङ्ग को स्नान कराया। (२४)

तत्पश्चात् वे गोरोचन और सुगन्धित चन्दन का लेप कर बिल्वपत्रों और कमलों के द्वारा भक्तिपूर्वक देव की

बिल्वपत्राम्बुजैर्देवं पूजयामासु रञ्जसा ॥ २५
मधूप्यागुरुणा भक्त्या निवेद्य परमौषधीः ।
जप्त्वाऽष्टशतनामानं प्रणामं चक्रिरे ततः ॥ २६
इत्येवं चिन्तयन्तश्च देवावेतौ हरीश्वरौ ।
कथं योगत्वमापन्नौ सत्त्वान्धतमसोद्भवौ ॥ २७
सुराणां चिन्तितं ज्ञात्वा विश्वमूर्तिरभूद्विभुः ।
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वायुधधरोऽव्ययः ॥ २८
सार्द्धं त्रिनेत्रं कमलाहिकुण्डलं
जटागुडाकेशखगर्षभध्वजम् ।
समाधवं हारभुजङ्गवक्षसं
पीताजिनाच्छन्नकटिप्रदेशम् ॥ २९
चक्रासिहस्तं हलशार्ङ्गपाणिं
पिनाकशूलाजगवान्वितं च ।
कपर्दखट्वाङ्गकपालघण्टा-
सशङ्खटङ्काररवं महर्षे ॥ ३०
दृष्ट्वैव देवा हरिशङ्करं तं
नमोऽस्तु ते सर्वगताव्ययेति ।
प्रोक्त्वा प्रणामं कमलासनाद्या-
श्चक्रुर्मतिं चैकतरां नियुज्य ॥ ३१
तानेकचित्तान् विज्ञाय देवान् देवपतिर्हरिः ।
प्रगृह्याभ्यद्रवत्तूर्णं कुरुक्षेत्रं स्वमाश्रमम् ॥ ३२
ततोऽपश्यन्त देवेशं स्थाणुभूतं जले शुचिम् ।
दृष्ट्वा नमः स्थाणवेति प्रोक्त्वा सर्वे ह्युपाविशन् ॥ ३३
ततोऽब्रवीत् सुरपतिरेह्येहि दीयतां वरः ।
क्षुब्धं जगज्जगन्नाथ उन्मज्जस्व प्रियातिथे ॥ ३४
ततस्तां मधुरां वाणीं शुश्राव वृषभध्वजः ।
श्रुत्वोत्तस्थौ च वेगेन सर्वव्यापी निरञ्जनः ॥ ३५
नमोऽस्तु सर्वदेवेभ्यः प्रोवाच प्रहसन् हरः ।
स चागतः सुरैः सेन्द्रैः प्रणतो विनयान्वितैः ॥ ३६
तमूचुर्देवताः सर्वास्त्यज्यतां शङ्कर व्रतम् ।
महाव्रतं त्रयो लोकाः क्षुब्धास्त्वत्तेजसावृताः ॥ ३७
अथोवाच महादेवो मया त्यक्तो महाव्रतः ।

पूजा किये । (२५)

तदनन्तर देवों ने भक्तिपूर्वक धूप दान कर परमौषधियों को अर्पित किया। एवं (शङ्कर के) एक सौ आठ नामों का जप करने के बाद उन्हें प्रणाम किया। (२६)

सभी देवता यह सोचने लगे कि सत्त्व गुण से उत्पन्न हरि एवं तमोगुण से उत्पन्न शङ्कर में एकत्व किस प्रकार हुआ? (२७)

देवताओं के विचार को जानकर अव्यय, विभु, सर्वलक्षण संयुक्त एवं सर्वायुधधारी विश्वमूर्त्ति हो गये। (२८)

हे महर्षि! देवताओं ने एक ही शरीर में साथ-साथ अहिकुण्डल,जटा, वृष, भुजङ्गहार, पिनाक, शूल, आजगव धनुष, कपर्द, खट्वाङ्ग एवं घण्टा से युक्त अजिनधारी त्रिनेत्र महादेव एवं कमलकुण्डल, गुडाकेश, गरुड पक्षी, हार, पीताम्बर, चक्र, असि, हल, शार्ङ्ग धनुष, शङ्ख के टङ्कार शब्द से समन्वित विष्णु को देखा। तदुपरान्त 'सर्वगत अव्यय को नमस्कार है' ऐसा कहकर ब्रह्मादि देवताओं ने उन हरि एवं शङ्कर को समवेत रूप समझा। (२९-३१)

उन देवताओं को एकत्वबुद्धि वाला जानकर देवपति हरि उन सभी को लेकर शीघ्र अपने आश्रम कुरुक्षेत्र में गये। (३२)

तदनन्तर उन लोगों ने जल के भीतर पवित्र स्थाणुभूत देवेश को देखा। उन्हें देखकर 'स्थाणु को नमस्कार है' यह कहकर वे सभी बैठ गये। (३३)

तदुपरान्त इन्द्र ने कहा—हे जगन्नाथ! हे प्रियातिथि! संसार क्षुब्ध हो उठा है। आप बाहर निकलकर हमारे निकट आयें और हमें वर दें। (३४)

तदनन्तर वृषभध्वज महादेव ने उस मधुर वाणी को सुना। सुनकर वे सर्वव्यापी निरञ्जन हर वेग से उठ खड़े हुए। (३५)

इन्होंने हँसते हुए कहा—सभी देवताओं को नमस्कार है। विनयान्वित इन्द्रादि देवताओं ने उन आये हुए शङ्कर को प्रणाम किया। (३६)

सभी देवताओं ने उनसे कहा—हे शङ्कर! शीघ्र इस महाव्रत को छोड़िये। आपके तेज से आवृत तीनों लोक क्षुब्ध हो उठे हैं। (३७)

तदनन्तर महादेव ने कहा—मैंने महाव्रत का त्याग कर

ततः सुरा दिवं जग्मुर्हृष्टाः प्रयतमानसा. ॥ ३८
ततोऽपि कम्पते पृथ्वी साब्धिद्वीपाचला मुने ।
ततोऽभिचिन्तयद्रुद्रः किमर्थं क्षुभिता मही ॥ ३९
ततः पर्यचरच्छूली कुरुक्षेत्रं समन्ततः ।
ददर्शौघवतीतीरे उशनसं तपोनिधिम् ॥ ४०
ततोऽब्रवीत्सुरपतिः किमर्थं तप्यते तपः ।
जगत्क्षोभकरं विप्र तच्छीघ्रं कथ्यतां मम ॥ ४१

उशना उवाच ।

तवाराधनकामार्थं तप्यते हि महत्तपः ।
संजीवनीं शुभां विद्यां ज्ञातुमिच्छे त्रिलोचन ॥ ४२

हर उवाच ।

तपसा परितुष्टोऽस्मि सुतप्तेन तपोधन ।
तस्मात् संजीवनीं विद्यां भवान् ज्ञास्यति तत्त्वतः ॥ ४३
वरं लब्ध्वा ततः शुक्रस्तपसः संन्यवर्तत ।
तथापि चलते पृथ्वी साब्धिभूभृन्नगावृता ॥ ४४
ततोऽगमन्महादेवः सप्तसारस्वतं शुचिः ।
ददर्श नृत्यमानं च ऋषिं मङ्कणसंज्ञितम् ॥ ४५
भावेन पोप्लूयति बालवत् स
भुजौ प्रसार्यैव ननर्त वेगात् ।
तस्यैव वेगेन समाहता तु
चचाल भूर्भूमिधरैः सहैव ॥ ४६
तं शङ्करोऽभ्येत्य करे निगृह्य
प्रोवाच वाक्यं प्रहसन् महर्षे ।
किं भावितो नृत्यसि केन हेतुना
वदस्व मामेत्य किमत्र तुष्टिः ॥ ४७
स ब्राह्मणः प्राह ममाद्य तुष्टि-
र्यनेह जाता शृणु तद् द्विजेन्द्र ।
बहून् गणान् वै मम तप्यतस्तपः
संवत्सरान् कायविशोषणार्थम् ॥ ४८
ततोऽनुपश्यामि करात् क्षतोत्थं
निर्गच्छते शाकरसं ममेह ।
तेनाद्य तुष्टोऽस्मि भृशं द्विजेन्द्र

दिया। तदनन्तर देवता प्रसन्न होकर सयतचित्त हो स्वर्ग चले गये। (३८)

हे मुनि! इतने पर भी समुद्र, द्वीप और पर्वतों सहित पृथ्वी कम्पित हो रही थी। तब रुद्र ने सोचा कि पृथ्वी क्यों क्षुब्ध हो रही है? (३९)

तदुपरान्त त्रिशूलधारी (शङ्कर) कुरुक्षेत्र के चतुर्दिक विचरण करने लगे। उन्होंने ओघवती के तट पर तपोनिधि उशना को देखा। (४०)

तदनन्तर सुरपति शङ्कर ने उनसे कहा—हे विप्र! मुझे शीघ्र बतलाओ कि जगत् को क्षुब्ध करने वाला तप क्यों कर रहे हो? (४१)

उशना ने कहा—आपकी आराधना की कामना से मैं महान् तप कर रहा हूँ। हे त्रिलोचन! मैं मङ्गलमयी सञ्जीवनी विद्या को जानना चाहता हूँ। (४२)

महादेव ने कहा—हे तपोधन! मैं भलीभाँति की गई तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ। अत. आप सञ्जीवनी विद्या को यथार्थ रूप में जानेंगे। (४३)

शुक्र वर प्राप्त कर तपस्या से निवृत्त हुए। इस पर भी सागर, पर्वत, वृक्ष आदि के साथ पृथ्वी हिल रही थी। (४४)

तदनन्तर पवित्र महादेव सप्तसारस्वत में गये। वहाँ उन्होंने मंकण नामक महर्षि को नाचते हुए देखा। (४५)

वे बालक के समान भाव विभोर होकर दोनों हाथ फैलाकर वेग से उछल-उछलकर नाच रहे थे। उसके वेग से आहत पृथ्वी पर्वतों सहित प्रकम्पित हो रही थी। (४६)

उनके निकट जाकर एवं उनका हाथ पकड़कर हँसते हुए शङ्कर ने यह कहा—हे महर्षि! क्या सोचकर एवं किस कारण से आप नाच रहे हैं? मुझसे बतलायें कि आप क्यों प्रसन्न हैं? (४७)

उस ब्राह्मण ने कहा—हे द्विजेन्द्र! आज मुझे जिस कारण संतुष्टि हो रही है उसे सुनिये। शरीर शोषण के लिए तपस्या करते हुए मेरे अनेक वर्ष व्यतीत हो गये हैं। (४८)

अब मैं देखता हूँ कि मेरे हाथ के घाव से शाकरस निकल रहा है। हे द्विजेन्द्र! इसी से मुझे बहुत आनन्द प्राप्त

शून्येऽभ्यगाद् दुष्टमतिर्हि देव्या । संयोधितो येन हि कारणेन ॥ ५९

इति श्रीवामनपुराणे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

३७

नारद उवाच ।
गतोऽन्धकस्तु पाताले किमचेष्टत दानवः ।
शंकरो मन्दरस्थोऽपि यच्चकार तदुच्यताम् ॥ १
पुलस्त्य उवाच ।
पातालस्थोऽन्धको ब्रह्मन् बाध्यते मदनाग्निना ।
संतप्तविग्रहः सर्वान् दानवानिदमब्रवीत् ॥ २
स मे सुहृत्स मे बन्धुः स भ्राता स पिता मम ।
यस्तामद्रिसुतां शीघ्रं ममान्तिकमुपानयेत् ॥ ३
एवं ब्रुवति दैत्येन्द्रे अन्धके मदनान्धके ।
मेघगम्भीरनिर्घोषं प्रह्लादो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४
येयं गिरिसुता वीर सा माता धर्मतस्तव ।
पिता त्रिनयनो देवः श्रूयतामत्र कारणम् ॥ ५
तव पित्रा ह्यपुत्रेण धर्मनित्येन दानव ।
आराधितो महादेवः पुत्रार्थाय पुरा किल ॥ ६
तस्मै त्रिलोचनेनासीद् दत्तोऽन्धोऽप्येव दानव ।
पुत्रकः पुत्रकामस्य प्रोक्तश्चेत्थं वचनं विभो ॥ ७
नेत्रत्रयं हिरण्याक्ष नर्मार्थमुमया मम ।
पिहितं योगसंस्थस्य ततोऽन्धमभवत्तमः ॥ ८
तस्माच्च तमसो जातो भूतो नीलघनस्वनः ।
तदिदं गृह्यतां दैत्य तवौपयिकमात्मजम् ॥ ९
यदा तु लोकविद्विष्टं दुष्टं कर्म करिष्यति ।

हे द्विज ! मैंने तुमसे यह बतलाया कि उस समय शङ्कर के तपस्या हेतु जाने के कारण शून्य पर्वत पर जाकर दुष्टमति (अन्धक) ने देवी से युद्ध किया । (५९)

श्रीवामनपुराण में छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

३७

नारद ने कहा—अन्धक दानव ने पाताल में जाकर क्या किया ? महादेव ने भी मन्दर पर्वत पर रहकर जो कुछ किया उसे बतलाइये । (१)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अन्धक पाताल में रहकर कामाग्नि से पीड़ित होने लगा । उसका शरीर सन्तप्त हो गया । उसने सभी दानवों से यह कहा— (२)

वही मेरा सुहृद्, बन्धु, भाई और पिता है जो उस पर्वत नन्दिनी को मेरे पास शीघ्र लाये । (३)

मदनातुर दैत्येन्द्र अन्धक के इस प्रकार कहने पर प्रह्लाद ने मेघ के समान गम्भीर शब्द से इस प्रकार कहा— (४)

हे वीर ! ये जो गिरिनन्दिनी हैं वे धर्मतः तुम्हारी माता हैं और त्रिलोचन महादेव तुम्हारे पिता हैं । इसका कारण सुनो— (५)

हे दानव ! प्राचीन काल में धर्म में सदा तत्पर रहने वाले पुत्रहीन तुम्हारे पिता ने पुत्र की अभिलाषा से महादेव की आराधना की । (६)

हे दानव ! हे विभो ! त्रिलोचन ने पुत्र की कामना वाले उसको अन्ध पुत्र दिया और यह कहा— (७)

हे हिरण्याक्ष ! एक समय जब मैं योगस्थ था, उमा ने परिहासार्थ मेरे तीनों नेत्रों को बन्द कर दिया था । तदनन्तर अन्धकारस्वरूप तम उत्पन्न हुआ । (८)

उस तम से नील मेघ सदृश शब्द करने वाला एक भूत (प्राणी) उत्पन्न हुआ । हे दैत्य ! इसे ग्रहण करो । यह तुम्हारे उपयुक्त पुत्र है । (९)

त्रैलोक्यजननीं चापि अभिवाञ्छिष्यतेऽधमः ॥ १०
घातयिष्यति वा विप्रं यदा प्रक्षिप्य चासुरान् ।
तदास्य स्वयमेवाहं करिष्ये कायशोधनम् ॥ ११
एवमुक्त्वा गतः शंभुः स्वस्थानं मन्दराचलम् ।
त्वत्पिताऽपि समभ्यागात् त्वामादाय रसातलम् ॥ १२
एतेन कारणेनाम्बा शैलेयी भविता तव ।
सर्वस्यापीह जगतो गुरुः शंभुः पिता ध्रुवम् ॥ १३
भवानपि तपोयुक्तः शास्त्रवेत्ता गुणाद्भुतः ।
नेदृशे पापसंकल्पे मतिं कुर्याद् भवद्विधः ॥ १४
त्रैलोक्यप्रभुरव्यक्तो भवः सर्वैर्नमस्कृतः ।
अजेयस्तस्य भार्येयं न त्वमर्होऽमरार्दन ॥ १५
न चापि शक्तः प्राप्तुं तां भवाञ्छैलनृपात्मजाम् ।
अजित्वा सगणं रुद्रं स न कामोऽत्र दुर्लभः ॥ १६
यस्तरेत् सागरं दोर्भ्यां पातयेद् भुवि भास्करम् ।
मेरुमुत्पाटयेद् वापि स जयेच्छूलपाणिनम् ॥ १७
उताहोस्विदिमाः शक्याः क्रियाः कर्तुं नरैर्बलात् ।
न च शक्यो हरो जेतुं सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ १८
किं त्वया न श्रुतं दैत्य यथा दण्डो महीपतिः ।
परस्त्रीकामवान् मूढः सराष्ट्रो नाशमाप्तवान् ॥ १९
आसीद् दण्डो नाम नृपः प्रभूतबलवाहनः ।
स च चक्रे महातेजाः पौरोहित्याय भार्गवम् ॥ २०
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्नृपतिः शुक्रपालितः ।
शुक्रस्यासीच्च दुहिता अरजा नाम नामतः ॥ २१
शुक्रः कदाचिदगमद् वृषपर्वाणमासुरम् ।
तेनार्चितश्चिरं तत्र तस्थौ भार्गवसत्तमः ॥ २२
अरजा स्वगृहे वह्निं शुश्रूषन्ती महासुर ।
अतिष्ठत् सुचार्वङ्गी ततोऽभ्यागान्नराधिपः ॥ २३
स पप्रच्छ क्व शुक्रेति तमूचुः परिचारिकाः ।

यह अधम जब लोकविरोधी दुष्टकर्म करेगा तथा त्रैलोक्य-जननी की कामना करेगा अथवा असुरों को भेज कर जब यह विप्रों का वध करेगा, उस समय मैं स्वयं इसके शरीर का शोधन करूँगा। (१०-११)

ऐसा कहकर शम्भु अपने स्थान मन्दराचल पर चले गये एवं तुम्हारे पिता तुमको लेकर रसातल में आये। (१२)

इसीलिए शैलनन्दिनी तुम्हारी माता हैं एवं समस्त जगत् के गुरु शम्भु निश्चय ही तुम्हारे पिता हैं। (१३)

तुम तपस्वी, शास्त्रज्ञ तथा अनेक अद्भुत गुणों से भूषित हो। अत तुम्हारे जैसे पुरुष को इस प्रकार के पाप सङ्कल्प में बुद्धि नहीं लगानी चाहिए। (१४)

हे देवशत्रु! त्रैलोक्य के प्रभु अव्यक्त शिव सभी के वन्दनीय एवं अजेय हैं। उनकी इस भार्या की इच्छा तुम्हें नहीं करनी चाहिए। (१५)

गणों-सहित शङ्कर को बिना हराये तुम उस शैलपुत्री को प्राप्त भी नहीं कर सकते। अत तुम्हारी वह अभिलाषा दुर्लभ है। (१६)

शूलपाणि को वही जीत सकता है, जो भुजाओं से सागर को पार कर जाय, अथवा सूर्य को पृथ्वी पर गिरा दे, अथवा मेरु पर्वत को उखाड़ दे। (१७)

अथवा उपर्युक्त सभी कार्य मनुष्य बल से कर सकते हैं, किन्तु शङ्कर नहीं जीते जा सकते, यह मैंने सच सच कहा है। (१८)

हे दैत्य! तुमने क्या यह नहीं सुना है कि परस्त्री की कामना करने वाला दण्ड नामक मूढ़ राजा अपने राष्ट्र के सहित नष्ट हो गया। (१९)

प्रचुर सेना एवं वाहनों से युक्त दण्ड नामक एक राजा था। उस महातेजस्वी ने शुक्राचार्य को पुरोहित बनाया। (२०)

शुक्राचार्य द्वारा रक्षित होकर उस राजा ने अनेक यज्ञों का अनुष्ठान किया। शुक्राचार्य की अरजा नाम की एक कन्या थी। (२१)

शुक्राचार्य किसी समय असुर वृषपर्वा के समीप गये थे। उसके अनुरोध करने पर भार्गव श्रेष्ठ बहुत काल तक वहीं रुक गये। (२२)

हे महासुर! सुन्दरी अरजा अपने घर में रहकर अग्नि की सेवा करती हुई स्थित थी। इतने में एक दिन यहाँ गये। (२३)

उन्होंने पूछा—शुक्राचार्य कहाँ हैं? घर की सेविकाओं

गतः स भगवान् शुक्रो याजनाय दनोः सुतम् ॥ २४
पप्रच्छ नृपतिः का तु तिष्ठते भार्गवाश्रमे ।
तास्तमूचुर्गुरोः पुत्री संतिष्ठत्यरजा नृप ॥ २५
तामाश्रमे शुक्रसुतां द्रष्टुमिक्ष्वाकुनन्दनः ।
प्रविवेश महाबाहुर्ददर्शारजसं ततः ॥ २६
तां दृष्ट्वा कामसंतप्तस्तत्क्षणादेव पार्थिवः ।
सजातोऽन्धक दण्डस्तु कृतान्तबलचोदितः ॥ २७
ततो विसर्जयामास भृत्यान् भ्रातॄन् सुहृत्तमान् ।
शुक्रशिष्यानपि बली एकाकी नृप आव्रजत् ॥ २८
तमागतं शुक्रसुता प्रत्युत्थाय यशस्विनी ।
पूजयामास संहृष्टा भ्रातृभावेन दानव ॥ २९
ततस्तामाह नृपतिर्बाले कामाग्नितापितम् ।
मां समाह्लादयस्वाद्य स्वपरिष्वङ्गवारिणा ॥ ३०
साऽपि प्राह नृपश्रेष्ठ मा विनीनश आतुरः ।
पिता मम महाक्रोधात् त्रिदशानपि निर्दहेत् ॥ ३१

मूढबुद्धे भवान् भ्राता ममासि त्वनयाप्लुतः ।
भगिनी धर्मतस्तेऽहं भवाञ्शिष्य. पितुर्मम ॥ ३२
सोऽब्रवीद् भीरु मां शुक्र. कालेन परिधक्ष्यति ।
कामाग्निर्निर्दहति मामद्यैव तनुमध्यमे ॥ ३३
सा प्राह दण्डं नृपतिं मुहूर्तं परिपालय ।
तमेव याचस्व गुरुं स ते दास्यत्यसंशयम् ॥ ३४
दण्डोऽब्रवीत् सुतन्वङ्गि कालक्षेपो न मे क्षमः ।
च्युतावसरकर्तृत्वे विघ्नो जायेत सुन्दरि ॥ ३५
ततोऽब्रवीच्च विरजा नाहं त्वां पार्थिवात्मज ।
दातुं शक्ता स्वमात्मानं स्वतन्त्रा न हि योषितः ॥ ३६
किं वा ते बहुनोक्तेन मा त्वं नाश नराधिप ।
गच्छस्व शुक्रशापेन सभृत्यज्ञातिबान्धवः ॥ ३७
ततोऽब्रवीन्नरपतिः सुतनु शृणु चेष्टितम् ।
चित्राङ्गदाया यद् वृत्तं पुरा देवयुगे शुभे ॥ ३८

ने उनसे कहा—वे भगवान् शुक्र दनुनन्दन के यहाँ यज्ञ कराने गये हैं। (२४)

राजा ने पूछा—भार्गव के आश्रम में कौन स्त्री है? उन लोगों ने उत्तर दिया—हे राजन्! गुरु की कन्या अरजा यहाँ हैं। (२५)

महाबाहु इक्ष्वाकुनन्दन शुक्राचार्य की उस पुत्री को देखने के लिए आश्रम में प्रविष्ट हुए एवं अरजा को देखा। (२६)

हे अन्धक! कालबल से प्रेरित राजा उसे देखकर तत्क्षण ही काम से सन्तप्त हो गये। (२७)

तदनन्तर भृत्यों, भाइयों घनिष्ट मित्रों एवं शुक्राचार्य के शिष्यों को भी बलवान राजा ने वहाँ से हटा दिया एवं अकेले गये। (२८)

यशस्विनी शुक्रपुत्री प्रसन्नतापूर्वक उस आये हुए राजा की भ्रातृभाव से पूजा की। (२९)

तदनन्तर राजा ने उससे कहा—हे बाले! मैं कामाग्नि से तापित हूँ। आज तुम अपने आलिङ्गन रूपी जल से मुझे शीतल करो। (३०)

उस (अरजा) ने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! आतुर होकर अपने को नष्ट न करो। मेरे पिता अत्यधिक क्रोध से देवताओं को भी जला सकते हैं। (३१)

हे मूढबुद्धि! तुम मेरे भाई हो। किन्तु अनीति से व्याप्त हो गये हो। मैं धर्म से तुम्हारी बहिन हूँ। क्यों कि तुम मेरे पिता के शिष्य हो। (३२)

उस (दण्डक) ने कहा—हे भीरु! शुक्र (भविष्य में) किसी समय मुझे दग्ध करेंगे। किन्तु हे कृशोदरी! काम की आग मुझे अभी दग्ध कर रही है। (३३)

उस (अरजा) ने राजा दण्ड से कहा—हे राजन्! एक मुहूर्त तक प्रतीक्षा कीजिए। आप उस गुरु से ही याचना करिये वे मुझे आपको निस्सन्देह प्रदान कर देंगे। (३४)

दण्ड ने कहा—हे सुन्दरी! मैं कालक्षेप करने मे असमर्थ हूँ। अवसर चूक कर कार्य करने मे विघ्न होता है। (३५)

उसके अनन्तर विरजा ने कहा—हे राजपुत्र! मैं अपने को तुम्हें देने में असमर्थ हूँ। क्योंकि स्त्रियाँ स्वतन्त्र नहीं होतीं। (३६)

हे नराधिप! अथवा अधिक कहने से क्या लाभ? तुम शुक्र के शाप से भृत्य, जाति और बन्धुओं के साथ अपना नाश मत करो। (३७)

इसके बाद राजा ने कहा—हे सुन्दरि! प्राचीन काल में देवयुग में घटित चित्राङ्गदा का वृत्तान्त सुनो। (३८)

विश्वकर्मसुता साध्वी नाम्ना चित्राङ्गदाऽभवत् ।
रूपयौवनसंपन्ना पद्महीनेव पद्मिनी ॥ ३९
सा कदाचिन्महारण्यं सखीभि. परिवारिता ।
जगाम नैमिषं नाम स्नातुं कमललोचना ॥ ४०
सा स्नातुमवतीर्णा च अथाभ्यागान्नरेश्वर. ।
सुदेवतनयो धीमान् सुरथो नाम नामतः ॥
ता ददर्श च तन्वङ्गीं शुभाङ्गो मदनातुरः ॥ ४१
तं दृष्ट्वा सा सखीराह वचनं सत्यसंयुतम् ।
असौ नराधिपसुतो मदनेन कदर्थ्यते ॥ ४२
मदर्थे च क्षमं मेऽस्य स्वप्रदानं सुरूपिणः ।
सख्यस्तामब्रुवन् बाला न प्रगल्भाऽसि सुन्दरि ॥ ४३
अस्वातन्त्र्यं तवास्तीह प्रदाने स्वात्मनोऽनघे ।
पिता तवास्ति धर्मिष्ठः सर्वशिल्पविशारद. ॥ ४४
न ते युक्तमिहात्मानं दातुं नरपतेः स्वयम् ।

एतस्मिन्नन्तरे राजा सुरथ. सत्यवाक् सुधीः ॥ ४५
समभ्येत्याऽब्रवीदेना कन्दर्पशरपीडित. ।
त्वं मुग्धे मोहयसि मा दृष्ट्यैव मदिरेक्षणे ॥ ४६
त्वद्दृष्टिशरपातेन स्मरेणाभ्येत्य ताडित. ।
तन्मां कुचतले तल्पे अभिशायितुमर्हसि ॥ ४७
नोचेत् प्रधक्ष्यते कामो भूयो भूयोऽतिदर्शनात् ।
ततः सा चारुसर्वाङ्गी राज्ञो राजीवलोचना ॥ ४८
वार्यमाणा सखीभिस्तु प्रादादात्मानमात्मना ।
एव पुरा तया तन्व्या परित्रात. स भूपति. ॥ ४९
तस्मान्मामपि सुश्रोणि त्वं परित्रातुमर्हसि ।
अरजस्काऽब्रवीद् दण्ड तस्या यद् वृत्तमुत्तरम् ॥ ५०
किं त्वया न परिज्ञातं तस्मात् ते कथयाम्यहम् ।
तदा तया तु तन्वङ्ग्या सुरथस्य महीपतेः ॥ ५१
आत्मा प्रदत्तः स्वातन्त्र्यात् ततस्तामशपत् पिता ।

विश्वकर्मा की चित्राङ्गदा नामक एक साध्वी कन्या थी । वह रूप यौवन सम्पन्न एव मानो पद्म विहीन पद्मिनी थी । (३९)

कमल के समान नेत्रवाली वह किसी समय अपनी सखियों से घिरी हुई नैमिष नामक महारण्य मे स्नान करने के लिए गई । (४०)

और वह स्नान करने के लिए जल मे उतरी । उसी समय सुदेव के पुत्र बुद्धिमान् राजा सुरथ वहाँ पहुँचे और उस कृशाङ्गी को देखकर शुभ अगों वाले वे कामातुर हो गये । (४१)

उनको देखकर उस (चित्राङ्गदा) ने सखियों से सत्य-संयुक्त वचन कहा—यह राजपुत्र मेरे लिए कामपीडित हो रहा है । अत इस सुन्दर रूप वाले को मुझे अपने को समर्पित कर देना उचित है । बाला सखियों ने उससे कहा—हे सुन्दरि तुम प्रगल्भा नहीं हो । (४२ ४३)

हे पापरहित बालिके ! आत्मदान करने मे तुम्हें स्वतन्त्रता नही है । क्योंकि तुम्हारे पिता परमधार्मिक तथा सर्वशिल्पों में विशारद है । (४४)

अत तुम्हें यहाँ राजा को स्वत आत्मदान करना उचित नहीं है । इसी बीच कामबाण पीडित सत्यवादी बुद्धिमान् सुरथ ने उसके निकट जाकर कहा—हे मुग्धे ! हे मदिरेक्षणे ! तुम दृष्टि से ही मुझे मुग्ध कर रही हो । (४५ ४६)

मदन ने आकर तुम्हारी दृष्टि रूपी बाण द्वारा मुझ आहत किया है । अत तुम मुझ अपने कुचतल रूपा शय्या पर लिटाओ । (४७)

अन्यथा बार-बार अतिदर्शन से काम मुझे दग्ध कर डालेगा । तदनन्तर उस राजीवलोचना सर्वाङ्गसुन्दरी ने सखियों के मना करने पर भी स्वय को राजा के प्रति अर्पित कर दिया । इस प्रकार प्राचीन काल में उस कृशाङ्गी ने उस राजा की रक्षा की थी । (४८ ४९)

अत हे सुश्रोणि ! तुम मेरा भी परित्राण करो । शुक्रनन्दिनी अरजा ने राजा दण्ड से कहा—क्या तुम उसके पश्चात् की घटना को नहीं जानते ? अत मैं तुमसे कहती हूँ । राजा सुरथ को जब उस तन्वङ्गी ने स्वय को स्वतन्त्रता से अर्पित कर दिया तो पिता ने उसको शाप दिया । हे मन्दचेतसे ! यत तुमने स्त्रीस्वभाववश धर्म का परित्याग कर स्वय को प्रदान किया है अत तुम्हारा विवाह नहीं होगा । विवाहरहित होने से तुम्हें

यस्माद् धर्मं परित्यज्य स्त्रीभावान् मन्दचेतसे ॥ ५२
आत्मा प्रदत्तस्तस्माद्धि न विवाहो भविष्यति ।
विवाहरहिता नैव सुखं लप्स्यसि भर्तृतः ॥ ५३
न च पुत्रफलं नैव पतिना योगमेष्यसि ।
उत्सृष्टमात्रे शापे तु ह्यपोवाह सरस्वती ॥ ५४
अकृतार्थं नरपतिं योजनानि त्रयोदश ।
अपकृष्टे नपरपतौ साऽपि मोहमुपागता ॥ ५५
ततस्तां सिषिचुः सख्यः सरस्वत्या जलेन हि ।
सा सिच्यमाना सुतरां शिशिरेणाप्यथाम्भसा ॥ ५६
मृतकल्पा महाबाहो विश्वकर्मसुताऽभवत् ।
तां मृतामिति विज्ञाय जग्मुः सख्यस्त्वरान्विताः ॥५७
काष्ठान्याहर्तुमपरा वह्निमानेतुमाकुलाः ।
सा च तास्वपि सर्वासु गतासु वनमुत्तमम् ॥ ५८
संज्ञां लेभे सुचार्वङ्गी दिशश्चाप्यवलोकयत् ।
अपश्यन्ती नरपतिं तथा स्निग्धं सखीजनम् ॥ ५९
निपपात सरस्वत्याः पयसि स्फुरितेक्षणा ।
तां वेगात् काञ्चनाक्षी तु महानद्यां नरेश्वर ॥ ६०
गोमत्यां परिचिक्षेप तरङ्गकुटिले जले ।
तयाऽपि तस्यास्तद्भाव्यं विदित्वाऽथ विशां पते ॥ ६१
महावने परिक्षिप्ता सिंहव्याघ्रभयाकुले ।
एवं तस्याः स्वतन्त्राया एषाऽवस्था श्रुता मया ॥ ६२
तस्मान्न दास्याम्यात्मानं रक्षन्ती शीलमुत्तमम् ।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा दण्डः शक्रसमो बली ॥
विहस्य स्वरजां प्राह स्वार्थमर्थक्षयंकरम् ॥ ६३

दण्ड उवाच ।

तस्या यदुत्तरं वृत्तं तत्पितुश्च कृशोदरि ।
सुरथस्य तथा राज्ञस्तच्छ्रोतुं मतिमादध ॥ ६४
यदाऽपकृष्टे नृपतौ पतिता सा महावने ।
तदा गगनसंचारी दृष्टवान् गुह्यकोऽञ्जनः ॥ ६५
ततः सोऽभ्येत्य तां बालां परिसान्त्व्य प्रयत्नतः ।
प्राह मा गच्छ सुभगे विषादं सुरथं प्रति ॥ ६६
ध्रुवमेष्यसि तेन त्वं संयोगमसितेक्षणे ।

पति का सुख नहीं मिलेगा ।   (५०-५३)

तुम्हें न तो पुत्रफल की प्राप्ति होगी और न पति से संयोग प्राप्त होगा। शाप देते ही सरस्वती नदी अकृतार्थ राजा को तेरह योजन तक बहा ले गई। राजा के दूर चले जाने पर वह भी मूर्छित हो गई।   (५४-५५)

तदनन्तर सखियों ने सरस्वती के जल से उसको सिक्त किया। हे महाबाहो! उस अत्यन्त शीतल जल से सिक्त होने पर वह विश्वकर्मा की पुत्री मृत तुल्य हो गयी। उसे मृत जानकर कुछ सखियाँ शीघ्रता पूर्वक काष्ठ एवं कुछ आकुल होकर अग्नि लाने गईं। उन सभी के उत्तम वन में जाने पर उसे चेतना प्राप्त हुई। उस सुन्दरी ने चतुर्दिक् देखा। राजा एवं प्रिय सखियों को न देखकर वह चञ्चलनेत्रा सरस्वती के जल में गिर पड़ी। हे नरेश्वर! काञ्चनाक्षी ने वेगपूर्वक उसे महानदी गोमती के तरङ्गों से कुटिल जल मे फेंक दिया। हे राजन्! उसकी भवितव्यता को जानकर उस (गोमती) ने भी उसे सिंह एवं व्याघ्र से पूर्ण वन मे फेंक दिया। इस प्रकार मैंने उस स्वतन्त्रा की इस अवस्था का वर्णन सुना है।   (५६-६२)

अतः उत्तम शील की रक्षा करती हुई मैं अपने को तुम्हें समर्पित नहीं करूँगी। इन्द्र के समान बलवान राजा दण्ड ने उसके उस वचन को सुनकर हँसते हुए अरजा से अर्थ को नष्ट करने वाला स्वार्थ युक्त वचन कहा।   (६३)

दण्ड ने कहा—हे कृशोदरि! उसके पिता तथा राजा सुरथ के साथ घटित बाद के वृत्तान्त को सुनने के लिए तुम सावधान हो जाओ।   (६४)

राजा के दूर चले जाने पर जब वह महावन में गिरी उस समय गगनसञ्चारी अञ्जन नामक गुह्यक ने उसे देखा।   (६५)

तदनन्तर वह बाला के निकट गया एवं प्रयत्न पूर्वक उसे सान्त्वना देते हुए कहा—सुभगे! सुरथ के लिए दुःख मत करो।   (६६)

हे कृष्णनेत्रों वाली! तुम उससे अवश्य मिलोगी। अतः

तस्माद् गच्छस्व शीघ्रं त्वं द्रष्टुं श्रीकण्ठमीश्वरम् ॥ ६७
इत्येवमुक्ता सा तेन गुह्यकेन सुलोचना ।
श्रीकण्ठमागता तूर्णं कालिन्द्या दक्षिणे तटे ॥ ६८
दृष्ट्वा महेशं श्रीकण्ठं स्नात्वा रविसुताजले ।
अतिष्ठत शिरोनम्रा यावन्मध्यस्थितो रविः ॥ ६९
अथाजगाम देवस्य स्नानं कर्तुं तपोधनः ।
शुभः पाशुपताचार्यः सामवेदी ऋतध्वजः ॥ ७०
ददर्श तत्र तन्वङ्गीं मुनिश्चित्राङ्गदां शुभाम् ।
रतीमिव स्थितां पुण्यामनङ्गपरिवर्जिताम् ॥ ७१
तां दृष्ट्वा स मुनिर्ध्यानमगमत् केयमित्युत ।
अथ सा तमृषिं वन्द्य कृताञ्जलिरुपस्थिता ॥ ७२
तां प्राह पुत्रि कस्यासि सुता सुरसुतोपमा ।
किमर्थमागतामीह निर्मनुष्यमृगे वने ॥ ७३
ततः सा प्राह तमृषिं यथातथ्यं कृशोदरी ।
श्रुत्वार्षिः कोपमगमदशपच्छिल्पिना वरम् ॥ ७४

यस्मात् त्वननुज्ञातेयं परदेयाऽपि पापिना ।
योजिता नैव पतिना तस्माच्छाखामृगोऽस्तु सः ॥ ७५
इत्युक्त्वा स महायोगी भूयः स्नात्वा विधानतः ।
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां पूजयामास शंकरम् ॥ ७६
सम्पूज्य देवदेवेशं यथोक्तविधिना हरम् ।
उवाचागम्यतां सुभ्रूं सुदतीं पतिलालसाम् ॥ ७७
गच्छस्व सुभगे देशं सप्तगोदावरं शुभम् ।
तत्रोपास्य महेशानं महान्तं हाटकेश्वरम् ॥ ७८
तत्र स्थितायां रम्भोरु ख्याता देववती शुभा ।
आगमिष्यति दैत्यस्य पुत्री कन्दरमालिनः ॥ ७९
तथाऽन्या गुह्यकसुता नन्दयन्तीति विश्रुता ।
अञ्जनस्यैव तत्रापि समेष्यति तपस्विनी ।
तथाऽपरा वेदवती पर्जन्यदुहिता शुभा ॥ ८०
यदा तिस्रः समेष्यन्ति सप्तगोदावरे जले ।
हाटकाख्ये महादेवे तदा संयोगमेष्यति ॥ ८१

तुम शीघ्र भगवान् श्रीकण्ठ का दर्शन करने जाओ। (६७)

उस गुह्यक के ऐसा कहने पर वह सुन्दर नेत्रों वाली शीघ्रतापूर्वक कालिन्दी के दक्षिण तट पर स्थित श्रीकण्ठ के पास गई। (६८)

वह महेश्वर श्रीकण्ठ का दर्शन तथा कालिन्दी के जल में स्नान कर दोपहर तक सिर झुकाये खड़ी रही। (६९)

इतने में देव श्रीकण्ठ के पास शुभलक्षणयुक्त पाशुपताचार्य, सामवेदी, तपोधन, ऋतध्वज स्नान करने के लिए आये। (७०)

मुनि ने काम से विहीन रति के तुल्य कृशाङ्गी कल्याणी चित्राङ्गदा को वहाँ देखा। (७१)

उन मुनि ने उसको देखकर सोचा कि यह कौन है। इसी बीच वह उन ऋषि के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। (७२)

(ऋषि ने) उससे पूछा—हे पुत्री! देवकन्या के समान तुम किसकी पुत्री हो? इस मनुष्य तथा पशुरहित वन में तुम क्यों आयी हो? (७३)

तदनन्तर उस कृशोदरी ने उन ऋषि से यथार्थ बात कहा। उसे सुनकर ऋषि क्रुद्ध हुए एवं शिल्पियों में श्रेष्ठ विश्वकर्मा को शाप दिया। (७४)

यतः उस पापी ने दूसरे के देने योग्य भी अपनी इस पुत्री को पति से युक्त नहीं किया अतः वह शाखामृग (बन्दर) हो जाय। (७५)

यह कहने के उपरान्त उन महायोगी ने पुनः विधिवत् स्नान एवं पश्चिम सन्ध्या कर शङ्कर का पूजन किया। (७६)

शास्त्रोक्त विधि से देवेश्वर शङ्कर की पूजा कर उन्होंने पति को चाहने वाली तथा सुन्दर भौंहों और दाँतों वाली चित्राङ्गदा से कहा— (७७)

हे सुभगे! कल्याणदायक सप्तगोदावर नामक देश में जाओ। वहाँ हाटकेश्वर महादेव की पूजा करते हुए निवास करो। (७८)

हे रम्भोरु! वहाँ पर रहती हुई तुम्हारे पास दैत्य कन्दरमाली की देववती नामक कल्याणी पुत्री आयेगी। (७९)

इसके अतिरिक्त वहीं पर अञ्जन नामक गुह्यक की नन्दयन्ती नामक तपस्विनी पुत्री तथा वेदवती नामक पर्जन्य की कल्याणी पुत्री भी आयेगी। (८०)

जब वे तीनों हाटकेश्वर महादेव के पास सप्तगोदावर में आयेंगी उस समय तुम उनसे मिलोगी। (८१)

इत्येवमुक्ता मुनिना बाला चित्राङ्गदा तदा ।
सप्तगोदावरं तीर्थमगमत् त्वरिता ततः ॥ ८२
संप्राप्य तत्र देवेशं पूजयन्ती त्रिलोचनम्
समध्यास्ते शुचिपरा फलमूलाशनाऽभवत् ॥ ८३
स चर्षिर्ज्ञानसंपन्नः श्रीकण्ठायतनेऽलिखत् ।
श्लोकमेकं महाख्यानं तस्याश्च प्रियकाम्यया ॥ ८४
न सोऽस्ति कश्चित् त्रिदशोऽसुरो वा
यक्षोऽथ मर्त्यो रजनीचरो वा ।
इदं हि दुःखं मृगशावनेत्र्या
निर्माजयेद् यः स्वपराक्रमेण ॥ ८५
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम
द्रष्टुं विभुं पुष्करनाथमीड्यम् ।
नदीं पयोष्णीं मुनिवृन्दवन्द्यां
संचिन्तयन्नेव विशालनेत्राम् ॥ ८६

इति श्रीवामनपुराणे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

३८

दण्ड उवाच ।
चित्राङ्गदायास्त्वरजे तत्र सत्या यथासुखम् ।
स्मरन्त्याः सुरथं वीरं महान् कालः समभ्यगात् ॥ १
विश्वकर्माऽपि मुनिना शप्तो वानरतां गतः ।
न्यपतन्मेरुशिखराद् भूपृष्ठं विधिचोदितः ॥ २
वनं घोरं सुगुल्माढ्यं नदीं शालूकिनीमनु ।
शाल्वेयं पर्वतश्रेष्ठं समावसति सुन्दरि ॥ ३
तत्रासतोऽस्य सुचिरं फलमूलान्यथाश्नतः ।

मुनि के ऐसा कहने पर बाला चित्राङ्गदा वहाँ से शीघ्र सप्तगोदावर नामक तीर्थ में गई। (८२)

वहाँ जाने के उपरान्त वह देवाधिदेव त्रिलोचन की पूजा करती तथा फल-मूल का भक्षण करती हुई पवित्रता-पूर्वक रहने लगी। (८३)

उन ज्ञान-सम्पन्न ऋषि ने उसकी हित-कामना से प्रेरित होकर श्रीकण्ठ के मन्दिर मे महाख्यानयुक्त एक श्लोक लिखा। (८४)

ऐसा कोई देवता, असुर, यक्ष, मनुष्य या राक्षस नहीं है जो अपने पराक्रम से मृगनेत्री का दुःख दूर कर सके। (८५)

ऐसा कहने के उपरान्त उस विशालाक्षी के विषय में विचार करते हुए वे मुनि पूज्य विभु पुष्कर-नाथ का दर्शन करने के लिये मुनिवृन्द से वन्द्य पयोष्णी नदी के तट पर गये। (८६)

श्रीवामनपुराण में सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥

३८

दण्ड ने कहा—हे अरजे ! वहाँ वीर सुरथ का ध्यान करते हुए सुखपूर्वक चित्राङ्गदा को दीर्घ समय व्यतीत हुआ। (१)

मुनि से अभिशप्त विश्वकर्मा भी वानर हो गये। भवितव्यतावश वे मेरु शिखर से भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर आ गये। (२)

हे सुन्दरि ! वे 'शालूकिनी' नदी के समीप घने गुल्मों से पूर्ण भयङ्कर वन वाले पर्वत-श्रेष्ठ शाल्वेय पर रहने लगे। (३)

हे वरारोहे ! उस वन में फल-मूल खाकर रहते हुए

कालोऽप्यगाद् वरारोहे बहुवर्षगणो वने ॥ ४
एकदा दैत्यशार्दूलः कन्दराख्यः सुतां प्रियाम् ।
प्रतिगृह्य समभ्यागात् ख्यातां देववतीमिति ॥ ५
तां च तद् वनमायान्तीं सम पित्रा वराननाम् ।
ददर्श वानरश्रेष्ठः प्रजग्राह बलात् करे ॥ ६
ततो गृहीतां कपिना स दैत्यः स्वसुतां शुभे ।
कन्दरो वीक्ष्य संक्रुद्धः खड्गमुद्यम्य चाद्रवत् ॥ ७
तमापतन्तं दैत्येन्द्रं दृष्ट्वा शाखामृगो बली ।
तयैव सह चार्वङ्ग्या हिमाचलमुपागतः ॥ ८
ददर्श च महादेवं श्रीकण्ठं यमुनातटे ।
तस्याविदूरे गहनमाश्रमं ऋषिवर्जितम् ॥ ९
तस्मिन् महाश्रमे पुण्ये स्थाप्य देववतीं कपिः ।
न्यमज्जत स कालिन्द्यां पश्यतो दानवस्य हि ॥ १०
सोऽज्ञानत् तां मृतां पुत्रीं समं शाखामृगेण हि ।
जगाम च महातेजाः पातालं निलयं निजम् ॥ ११

स चापि वानरो देव्या कालिन्द्या वेगतो हृतः ।
नीतः शिवीति विख्यातं देशं शुभजनावृतम् ॥ १२
ततस्तीर्त्वाऽथ वेगेन स कपिः पर्वतं प्रति ।
गन्तुकामो महातेजा यत्र न्यस्ता सुलोचना ॥ १३
अथापश्यत् समायान्तमञ्जनं गुह्यकोत्तमम् ।
नन्दयन्त्या समं पुत्र्या गत्वा जिगमिषुः कपिः ॥ १४
तां दृष्ट्वाऽमन्यत श्रीमान् सेयं देववती ध्रुवम् ।
तन्मे वृथा श्रमो जातो जलमज्जनसंभवः ॥ १५
इति संचिन्तयन्नेव समाद्रवत सुन्दरीम् ।
सा तद् भयाच्च न्यपतन्नदीं चैव हिरण्वतीम् ॥ १६
गुह्यको वीक्ष्य तनयां पतितामापगाजले ।
दुःखशोकसमाक्रान्तो जगामाञ्जनपर्वतम् ॥ १७
तत्रासौ तप आस्थाय मौनव्रतधरः शुचिः ।
समास्ते वै महातेजाः संवत्सरगणान् बहून् ॥ १८
नन्दयन्त्यपि वेगेन हिरण्वत्याऽपवाहिता ।

उन्होंने अनेक वर्षों का समय व्यतीत किया । (४)

एक समय 'कन्दर' नामक श्रेष्ठ दैत्य 'देववती' नाम से प्रसिद्ध अपनी प्रिय पुत्री को साथ लेकर वहाँ आया । (५)

तदनन्तर वानरश्रेष्ठ ने पिता के साथ वन में आ रही उस सुन्दरी को देखा एवं बलपूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया । (६)

हे शुभे ! दैत्य कन्दर अपनी कन्या को वानर के द्वारा पकड़ी गयी देखकर अत्यन्त क्रोध से खड्ग उठाकर दौड़ा । (७)

बलवान् वानर उस दैत्येन्द्र को आते देखकर उस सुन्दरी कन्या के साथ हिमालय पर चला गया । (८)

उसने 'यमुना' तट पर महादेव श्रीकण्ठ का दर्शन किया एवं वहाँ से थोड़ी दूर पर ऋषिविरहित गहन आश्रम देखा । (९)

उस पवित्र महाश्रम में देववती को रखकर वह वानर दैत्य कन्दर के सामने कालिन्दी (के जल) में डूब गया । (१०)

उस कन्दर ने समझा कि उसकी कन्या उस वानर के साथ डूब मरी । अतः वह तेजस्वी पाताल-स्थित अपने गृह में चला गया । (११)

देवी कालिन्दी वेगपूर्वक उस वन्दर को शुभ व्यक्तियों से परिपूर्ण शिवि नाम से प्रसिद्ध देश में बहा कर ले गयी । (१२)

तदनन्तर महातेजस्वी वानर ने वेगपूर्वक उसे तैर कर पार करने के बाद उस पर्वत पर जाने की इच्छा की जहाँ वह सुलोचना रखी गयी थी । (१३)

तदनन्तर उसने 'नन्दयन्ती' नामक पुत्री के साथ आते हुए श्रेष्ठ गुह्यक 'अञ्जन' को देखा । जाने की इच्छा करने वाला वानर (उनके) निकट गया । (१४)

उसे देखकर श्रीमान् कपि ने सोचा कि वस्तुतः यह वही देववती है । अतः जल में डूबने का मेरा परिश्रम व्यर्थ हो गया । (१५)

वह वानर ऐसा सोचता हुआ उस सुन्दरी की ओर दौड़ा । उसके डर से वह कन्या हिरण्वती नदी में गिर पड़ी । (१६)

कन्या को नदी-जल में गिरी हुई देखकर गुह्यक दुःख और शोक से विह्वल होता हुआ अञ्जन पर्वत पर चला गया । (१७)

वहाँ महातेजस्वी वह पवित्रतापूर्वक मौन व्रत धारण कर अनेक वर्षों तक तप करता रहा । (१८)

हिरण्वती वेगपूर्वक नन्दयन्ती को बहाकर साधुओं से

नीता देशं महापुण्यं कोशलं साधुभिर्युतम् ॥ १९
गच्छन्ती सा च रुदती ददर्शे वटपादपम्।
प्ररोहशाखावततं जटाधरमिवेश्वरम् ॥ २०
तं दृष्ट्वा विपुलच्छायं विशश्राम वरानना।
उपविष्टा शिलापट्टे ततो वाचं प्रशुश्रुवे ॥ २१
न सोऽस्ति पुरुषः कश्चिद् यस्तं ब्रूयात् तपोधनम्।
यथा स तनयस्तुभ्यमुद्बद्धो वटपादपे ॥ २२
सा श्रुत्वा तां तदा वाणीं विस्पष्टाक्षरसंयुताम्।
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव समन्तादवलोकयत् ॥ २३
ददर्श वृक्षशिखरे शिशुं पञ्चाब्दिकं स्थितम्।
पिङ्गलाभिर्जटाभिस्तु उद्बद्धं यत्नतः शुभे ॥ २४
तं विब्रुवन्तं दृष्ट्वैव नन्दयन्ती सुदुःखिता।
प्राह केनासि बद्धस्त्वं पापिना वद बालक ॥ २५
स तामाह महाभागे बद्धोऽस्मि कपिना वटे।
जटास्वेव सुदुष्टेन जीवामि तपसो बलात् ॥ २६
पुरोन्मत्तपुरेत्येव तत्र देवो महेश्वरः।
तत्रास्ति तपसो राशिः पिता मम ऋतध्वजः ॥ २७
तस्यास्मि जपमानस्य महायोगं महात्मनः।
जातोऽलिवृन्दसंयुक्तः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २८
ततो मामब्रवीत् तातो नाम कृत्वा शुभानने।
जाबालीति परिख्याय तच्छृणुष्व शुभानने ॥ २९
पञ्चवर्षसहस्राणि बाल एव भविष्यसि।
दशवर्षसहस्राणि कुमारत्वे चरिष्यसि ॥ ३०
विंशति यौवनस्थायी वीर्येण द्विगुणं ततः।
पञ्चवर्षशतान् बालो भोक्ष्यसे बन्धनं दृढम् ॥ ३१
दशवर्षशतान्येव कौमारे कायपीडनम्।
यौवने परमान् भोगान् द्विसहस्रसमास्तथा ॥ ३२
चत्वारिंशच्छतान्येव वार्धके क्लेशमुत्तमम्।
लप्स्यसे भूमिशय्याढ्यं कदन्नाशनभोजनम् ॥ ३३
इत्येवमुक्तः पित्राऽहं बालः पञ्चाब्ददेशिकः।

युक्त महापवित्र कोशल देश में ले गई। (१९)

जाते समय रोती हुई उसने एक वट वृक्ष को देखा। यह वट वृक्ष जटाधर महेश्वर के समान अनेक प्ररोहों से युक्त था। (२०)

वह सुन्दरमुखी विपुल-छाया युक्त उस वृक्ष को देख कर एक पत्थर पर विश्राम करने के लिए बैठ गयी। तदनन्तर उसने यह वाणी सुनी। (२१)

क्या ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो उस तपोधन (ऋतध्वज) से जाकर कहे कि तुम्हारा वह पुत्र वटवृक्ष में बँधा है। (२२)

उसने उस समय विशेष स्पष्ट अक्षर युक्त उस वाणी को सुनकर चारो ओर ऊपर नीचे देखा। (२३)

हे शुभे! उसने वृक्ष के शिखर पर पिङ्गल जटाओं से यत्नपूर्वक आबद्ध एक पञ्चवर्षीय शिशु को देखा। (२४)

अत्यन्त दुःखित नन्दयन्ती ने उस बोलने वाले को देखकर कहा—हे बालक! बतलाओ तुम्हें किस पापी ने बाँधा है? (२५)

उस शिशु ने उससे कहा—हे महाभागे! एक महादुष्ट वानर ने मुझे जटाओं के द्वारा इस वट में बाँध दिया है। मैं तपोबल से ही जी रहा हूँ। (२६)

पहले उन्मत्तपुर में देव महेश्वर प्रतिष्ठित थे। वहाँ तपोराशि मेरे पिता ऋतध्वज निवास करते थे। (२७)

महायोग का जप कर रहे उन महात्मा का मैं सभी शास्त्रों में निपुण एवं भ्रमर समूह से युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। (२८)

हे शुभानने! पिता ने मेरा जाबालि नाम रखकर मुझ से जो कुछ कहा उसे सुनो। (२९)

उन्होंने कहा—तुम पाँच हजार वर्षों तक बालक रहोगे, एवं दस हजार वर्षों तक कुमार रहोगे। (३०)

बीस हजार वर्षों तक तुम्हारा पराक्रमपूर्ण यौवन रहेगा एवं तदुपरान्त उसके द्विगुणित कालतक वार्द्धक्य की स्थिति रहेगी। बाल्यावस्था में पाँच सौ वर्षों तक तुम्हें दृढ बन्धन भोगना पड़ेगा। (३१)

उसके बाद एक हजार वर्षों तक कुमार अवस्था में तुम्हें शारीरिक क्लेश भोगना होगा तथा यौवन काल में दो हजार वर्षों तक तुम उत्तम भोगों का आनन्द प्राप्त करोगे। (३२)

वृद्धावस्था में चालीस सौ वर्षों तक अत्यन्त क्लेश भोगना होगा। उस समय तुम्हें भूमि पर शयन तथा निकृष्ट अन्न का भोजन करना पड़ेगा। (३३)

पिता के ऐसा कहने के उपरान्त पाँच वर्ष की अवस्था

विचरामि महीपृष्ठं गच्छन् स्नातुं हिरण्वतीम् ॥ ३४
ततोऽपश्यं कपिवरं सोऽवदन्मां क्व यास्यसि ।
इमां देववतीं गृह्य मूढ न्यस्तां महाश्रमे ॥ ३५
ततोऽसौ मां समादाय विस्फुरन्तं प्रयत्नतः ।
वटाग्रेऽस्मिन्नुद्बबन्ध जटाभिरपि सुन्दरि ॥ ३६
तया च रक्षा कपिना कृता भीरु निरन्तरैः ।
लतापाशैर्महायन्त्रमधस्ताद् दुष्टबुद्धिना ॥ ३७
अभेद्योऽयमनाक्रम्य उपरिष्टात् तथाप्यधः ।
दिशां सुरेषु सर्वेषु कृतं यन्त्रं लतामयम् ॥ ३८
संयम्य मां कपिवरः प्रयातोऽमरपर्वतम् ।
यथेच्छया मया दृष्टमेतत् ते गदितं शुभे ॥ ३९
भवती का महारण्ये ललना परिवर्जिता ।
समायाता सुचार्वङ्गी केन सार्धं मां वद ॥ ४०
साऽब्रवीदञ्जनो नाम गुह्यकेन्द्रः पिता मम ।
नन्दयन्तीति मे नाम प्रम्लोचागर्भसंभवा ॥ ४१
तत्र मे जातके प्रोक्तमृषिणा मुद्गलेन हि ।
इयं नरेन्द्रमहिषी भविष्यति न संशयः ॥ ४२
तद्वाक्यसमकालं च व्यनदद् देवदुन्दुभिः ।
शिवा चाशिवनिर्घोषा ततो भूयोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ४३
न संदेहो नरपतेर्महाराज्ञी भविष्यति ।
महान्तं संशयं घोरं कन्याभावे गमिष्यसि ॥
ततो जगाम स ऋषिरेवमुक्त्वा वचोऽद्भुतम् ॥ ४४
पिता मामपि चादाय समागन्तुमथैच्छत ।
तीर्थं ततो हिरण्वत्यास्तीरात् कपिरथोत्पतत् ॥ ४५
तद् भयाच्च मया ह्यात्मा क्षिप्तः सागरगाजले ।
तयाऽस्मि देशमानीता इमं मानुषवर्जितम् ॥ ४६
श्रुत्वा जाबालिरथ तद् वचनं वै तयोदितम् ।
प्राह सुन्दरि गच्छस्व श्रीकण्ठं यमुनातटे ॥ ४७

मैं मैं हिरण्वती में स्नानार्थ जाते हुए पृथ्वी पर विचरण कर रहा था। (३४)

उस समय मैंने एक श्रेष्ठ वानर देखा। उसने मुझ से कहा—हे मूढ़! इस महाश्रम में रखी हुई इस देववती को लेकर कहाँ जा रहा है? (३५)

हे सुन्दरि! तदुपरान्त काँपते हुए मुझ को पकड़ कर उसने प्रयास पूर्वक इस वट वृक्ष के शिखर पर जटाओं से बाँध दिया। (३६)

हे भीरु! उस दुष्टबुद्धि वानर ने अनेक लतापाशों से एक महान् यन्त्र बनाकर उसके नीचे मुझे रख दिया और निरन्तर मेरी रक्षा करता रहा। (३७)

सभी दिशाओं में अर्थात् चारों ओर से निर्मित किया गया यह लतायन्त्र अभेद्य है तथा ऊपर या नीचे से भी आक्रमण करने योग्य नहीं है। (३८)

वह श्रेष्ठ वानर मुझको बाँधकर स्वेच्छा से अमर पर्वत पर चला गया। हे शुभे! मैंने जो कुछ देखा था उसे तुमसे कह दिया। (३९)

हे सुन्दरी! मुझे बतलाओ कि तुम कौन हो एवं इस घोर जंगल में अकेली तुम किसके साथ आयी हो। (४०)

उसने कहा—गुह्यकराज अञ्जन मेरे पिता हैं। मेरा नाम नन्दयन्ती है। मैं प्रम्लोचा के गर्भ से उत्पन्न हुई हूँ। (४१)

मेरे जन्म के समय मुद्गल ऋषि ने कहा था कि यह कन्या निस्सन्देह राजरानी बनेगी। (४२)

उनके कहने के समय ही स्वर्गीय दुन्दुभि का नाद हुआ और उसी समय शृगालीका अशुभ निर्घोष हुआ। तदनन्तर मुनि ने पुन: कहा— (४३)

इसमें सन्देह नहीं कि यह कन्या महाराज की महारानी होगी। किन्तु कन्या अवस्था में यह घोर विपत्ति में पड़ जायेगी। इस प्रकार का अद्भुत वचन कहकर वे ऋषि चले गये। (४४)

तदनन्तर मुझे लेकर मेरे पिता तीर्थ जाने की इच्छा किये। इसी बीच हिरण्वती के तीर से वानर उछला। (४५)

उसके भय से मैंने अपने को नदी के जल में गिरा दिया। उस नदी के प्रवाह से मैं इस मनुष्य-रहित देश में आ गयी हूँ। (४६)

जाबालि ने उसकी कही बात को सुनकर कहा—हे सुन्दरि! तुम यमुना तट पर श्रीकण्ठ के पास जाओ। (४७)

तत्रागच्छति मध्याह्ने मत्पिता शर्वमर्चितुम् ।
तस्मै निवेदयात्मानं तत्र श्रेयोऽधिलप्स्यसे ॥ ४८
ततस्तु त्वरिता काले नन्दयन्ती तपोनिधिम् ।
परित्राणार्थमगमद्धिमाद्रेर्यमुनां नदीम् ॥ ४९
सा त्वदीर्घेण कालेन कन्दमूलफलाशना ।
संप्राप्ता शंकरस्थानं यत्रागच्छति तापसः ॥ ५०
ततः सा देवदेवेशं श्रीकण्ठं लोकवन्दितम् ।
प्रतिवन्द्य ततोऽपश्यदक्षरांस्तान्महामुने ॥ ५१
तेषामर्थं हि विज्ञाय सा तदा चारुहासिनी
तज्जाबाल्युदितं श्लोकमलिखच्चान्यमात्मनः ॥ ५२
मुद्गलेनास्मि गदिता राजपत्नी भविष्यति ।
सा चावस्थामिमां प्राप्ता कश्चिन्मा त्रातुमीश्वरः ॥ ५३
इत्युल्लिख्य शिलापट्टे गता स्नातुं यमस्वसाम् ।
ददृशे चाश्रमवरं मत्तकोकिलनादितम् ॥ ५४
ततोऽमन्यत सान्नर्षिर्नूनं तिष्ठति सत्तमः ।
इत्येवं चिन्तयन्ती सा संप्रविष्टा महाश्रमम् ॥ ५५
ततो ददर्श देवाभां स्थितां देववतीं शुभाम् ।
संशुष्कास्यां चलनेत्रां परिम्लानामिवाब्जिनीम् ॥ ५६
सा चापवन्ती ददृशे यक्षजां दैत्यनन्दिनी ।
केयमित्येव संचिन्त्य समुत्थाय स्थिताभवत् ॥ ५७
ततोऽन्योन्यं समालिङ्ग्य गाढं गाढं सुहृत्तया ।
पप्रच्छतुस्तथान्योऽन्यं कथयामासतुस्तदा ॥ ५८
ते परिज्ञाततत्त्वार्थे अन्योन्यं ललनोत्तमे ।
समासीने कथामिस्ते नानारूपाभिरादरात् ॥ ५९
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त श्रीकण्ठं स्नातुमादरात् ।
स तत्त्वज्ञो मुनिश्रेष्ठो अक्षराण्यवलोकयन् ॥ ६०
स दृष्ट्वा वाचयित्वा च तमर्थमधिगम्य च ।
मुहूर्तं ध्यानमास्थाय व्यजानाच्च तपोनिधि. ॥ ६१
ततः संपूज्य देवेशं त्वरया स ऋतध्वजः ।
अयोध्यामगमत् क्षिप्रं द्रष्टुमिक्ष्वाकुमीश्वरम् ॥ ६२

वहाँ मेरे पिता दोपहर को शिवपूजा करने के लिए आते हैं। तुम वहाँ जाकर उनको अपना वृत्तान्त सुनाओ। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। (४८)

तदनन्तर नन्दयन्ती अपनी रक्षा हेतु शीघ्रतापूर्वक हिमाचल से निकली एवं यमुना के तट पर स्थित तपोनिधि (ऋतध्वज) के निकट पहुँची। (४९)

कन्द मूल फल खाती हुई वह अल्प काल मे शङ्कर के उस स्थान पर पहुँची जहाँ तपस्वी आया करते थे। (५०)

हे महामुने! तदनन्तर उसने लोकवन्दित देवदेवेश श्रीकण्ठ की पूजा कर उन अक्षरों को देखा। (५१)

उनका अर्थ जानकर उस सुन्दरी ने जाबालि द्वारा कथित श्लोक तथा अपना एक अन्य श्लोक लिखा। (५२)

महर्षि मुद्‌गल ने कहा था कि मैं राजपत्नी होऊँगी। किन्तु मैं इस अवस्था में पड़ी हूँ। क्या कोई मेरा उद्धार करने में समर्थ है? (५३)

शिलापट्ट पर यह लिखकर वह स्नानार्थं यमुना तट पर गयी एवं वहाँ पर मत्त कोकिलों के स्वरों से पूर्ण एक सुन्दर आश्रम देखा। (५४)

तदनन्तर उसने सोचा—यहाँ पर श्रेष्ठ ऋषि अवश्य रहते हैं। इस प्रकार सोचती हुई वह महान् आश्रम में प्रविष्ट हुई। (५५)

तदनन्तर उसने दैवी शोभा से सम्पन्न शुष्क मुख एवं चञ्चलनेत्रों वाली देववती को परिम्लान पद्मिनी के सदृश वहाँ बैठी हुई देखा। (५६)

देववती ने यक्षपुत्री को आती हुई देखा। 'यह कौन है' ऐसा विचार कर वह उठ खड़ी हुई। (५७)

तदनन्तर सखीभाव से उन दोनों ने परस्पर गाढ़ आलिङ्गन किया और परस्पर पूछताछ और बातचीत करने लगीं। (५८)

वे दोनों उत्तम ललनाएँ एक दूसरे की यथार्थ घटनाओं को जानकर बैठ गईं एवं आदरपूर्वक अनेक प्रकार की कथायें कहने लगीं। (५९)

इसी बीच वे तत्त्वज्ञ मुनिश्रेष्ठ श्रीकण्ठ के निकट स्नानार्थं आये और पत्थर पर लिखित अक्षरों को देखा। (६०)

उसे देखकर, पढ़कर और उसका अर्थ समझकर उस तपोनिधि ने एक क्षण ध्यान लगाया एवं जान गये। (६१)

तदनन्तर महर्षि ऋतध्वज शीघ्रता से देवेश्वर की पूजा कर राजा इक्ष्वाकु से मिलने के लिए शीघ्र अयोध्या चले गये। (६२)

तं दृष्ट्वा नृपविश्रेष्ठं तापसो वाक्यमब्रवीत् ।
श्रूयतां नरशार्दूल विज्ञप्तिर्मम पार्थिव ॥ ६३
मम पुत्रो गुणैर्युक्तः सर्वशास्त्रविशारदः ।
उद्बद्धः कपिना राजन् विषयान्ते तवैव हि ॥ ६४
तं हि मोचयितुं नान्यः शक्तस्त्वत्तनयादृते ।
शकुनिर्नाम राजेन्द्र स ह्यस्त्रविधिपारगः ॥ ६५
तन्मुनेर्वाक्यमाकर्ण्य पिता मम कृशोदरि ।
आदिदेश प्रियं पुत्रं शकुनिं तापसान्वये ॥ ६६
ततः स प्रहितः पित्रा भ्राता मम महाभुजः ।
संप्राप्तो बन्धनोद्देशं समं हि परमर्षिणा ॥ ६७
दृष्ट्वा न्यग्रोधमतुलं प्ररोहास्तृतदिङ्मुखम् ।
ददर्श वृक्षशिखरे उद्बद्धमृषिपुत्रकम् ॥ ६८
तांश्च सर्वांल्लतापाशान् दृष्टवान् स समंततः ।
दृष्ट्वा स मुनिपुत्रं तं स्वजटासंयतं वटे ॥ ६९
धनुरादाय बलवानधिज्यं स चकार ह ।
लाघवादृषिपुत्रं तं रक्षंश्चिच्छेदमार्गणैः ॥ ७०
कपिना यत् कृतं सर्वं लतापाशं चतुर्दिशम् ।
पञ्चवर्षशते काले गते शक्तस्तदा शरैः ॥ ७१
लताच्छन्नं ततस्तूर्णमारुरोह मुनिर्वटम् ।
प्राप्तं स्वपितरं दृष्ट्वा जाबालिः संयतोऽपि सन् ॥ ७२
आदरात् पितरं मूर्ध्ना ववन्दत विधानतः ।
संपरिष्वज्य स मुनिर्मूर्ध्न्याघ्राय सुतं ततः ॥ ७३
उन्मोचयितुमारब्धो न शशाक सुसंयतम् ।
ततस्तूर्णं धनुर्न्यस्य बाणांश्च शकुनिर्बली ॥ ७४
आरुरोह वटं तूर्णं जटा मोचयितुं तदा ।
न च शक्नोति संच्छन्नं दृढं कपिवरेण हि ॥ ७५
यदा न शकिता स्तेन संप्रमोचयितुं जटाः ।
तदाऽवतीर्णः शकुनिः सहितः परमर्षिणा ॥ ७६
जग्राह च धनुर्बाणांश्चकार शरमण्डपम् ।
लाघवादर्द्धचन्द्रैस्तां शाखां चिच्छेद स त्रिधा ॥ ७७

श्रेष्ठ नरपति से मिल कर तापस ने कहा—हे नरशार्दूल! हे राजन्! *मेरी विज्ञप्ति सुनिये।* (६३)

हे राजन्! आप के राज्य की सीमा पर एक वानर ने मेरे सर्वशास्त्रविशारद, गुणयुक्त पुत्र को बाँध रखा है। (६४)

हे राजेन्द्र! आप के अस्त्र-विधिपारगामी शकुनि नामक पुत्र के अतिरिक्त दूसरा कोई उसे मुक्त नहीं कर सकता। (६५)

हे कृशोदरि! मुनि के इस वचन को सुन कर मेरे पिता ने अपने पुत्र शकुनि को तपस्वी के पुत्र के सम्बन्ध में आदेश दिया। (६६)

तदनन्तर पिता द्वारा प्रेषित पराक्रमी मेरा भाई श्रेष्ठ ऋषि के साथ बन्धन के स्थान पर पहुँचा। (६७)

चतुर्दिक् प्ररोहों से आच्छन्न अतुल वटवृक्ष को देखने के उपरान्त उसने वृक्षशिखर पर बँधे हुए ऋषि के पुत्र को देखा। (६८)

उसने (विस्तृत) उन समस्त लतापाशों को चारों ओर से देखा एवं वट में अपनी जटाओं से बँधे मुनिपुत्र को देखकर उस बलवान ने धनुष लेकर उसकी प्रत्यञ्चा को चढ़ाया एवं पुत्र को बचाते हुए लाघवपूर्वक बाणों से पाशों को काटने लगा। (६९-७०)

पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर चतुर्दिक वानर द्वारा बनाया गया लतापाश बाणों से काट दिया गया। (७१)

तदनन्तर ऋषि शीघ्र लताओं से आच्छन्न उस वटवृक्ष पर चढ़ गये। जाबालि ने अपने पिता को आया देख कर बँधे रहने पर भी आदरपूर्वक यथाविधि शिरसा प्रणाम किया। उन मुनि ने मस्तक सूँघकर पुत्र का आलिङ्गन किया। (७२-७३)

तदुपरान्त वे बन्धन खोलने लगे। किन्तु अत्यन्त दृढ़ बन्धन को खोल न सके। तब बलवान् शकुनि शीघ्र धनुष और बाणों को रखकर जटा खोलने के लिए वट पर चढ़ गये। किन्तु (वे भी) श्रेष्ठ कपि द्वारा दृढ़ता पूर्वक बनाए गये बन्धन को न खोल सके। (७४-७५)

जब वे जटाओं को नहीं खोल सके तो श्रेष्ठ ऋषि के साथ शकुनि नीचे उतर गये। (७६)

उन्होंने धनुष एवं बाण लिया तथा एक शरमण्डप बनाया। तदनन्तर उन्होंने लाघवपूर्वक अर्द्धचन्द्र बाणों से उस शाखा को तीन भागों में काट दिया। (७७)

शाखया कृत्तया चासौ भारवाही तपोधनः।
शरसोपानमार्गेण अवतीर्णोऽथ पादपात् ॥ ७८
तस्मिंस्तदा स्वे तनये ऋतध्वज-
स्नाते नरेन्द्रस्य सुतेन धन्विना।
जाबालिना भारवहेन संयुतः
समाजगामाथ नदीं स सूर्यजाम् ॥ ७९

इति श्रीवामनपुराणे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

३९

दण्डक उवाच।
एतस्मिन्नन्तरे बाले यक्षासुरसुते शुभे।
समागते हरं द्रष्टुं श्रीकण्ठं योगिनां वरम् ॥ १
ददृशाते परिम्लानसशुष्ककुसुमं विभुम्।
बहुनिर्माल्यसंयुक्तं गते तस्मिन् ऋतध्वजे ॥ २
ततस्तं वीक्ष्य देवेशं ते उभे अपि कन्यके।
स्नापयेतां विधानेन पूजयेतामहर्निशम् ॥ ३
ताभ्यां स्थिताभ्यां तत्रैव ऋषिरभ्यागमद् वनम्।
द्रष्टुं श्रीकण्ठमव्यक्तं गालवो नाम नामतः ॥ ४
स दृष्ट्वा कन्यकायुग्मं कस्येदमिति चिन्तयन्।
प्रविवेश शुचिः स्नात्वा कालिन्द्या विमले जले।
ततोऽनुपूजयामास श्रीकण्ठं गालवो मुनिः।
गायेते सुस्वरं गीतं यक्षासुरसुते ततः ॥ ६
ततः स्वरं समाकर्ण्य गालवस्ते अजानत।
गन्धर्वकन्यके चैते संदेहो नात्र विद्यते ॥ ७
संपूज्य देवमीशानं गालवस्तु विधानतः।

कटी हुई शाखा के साथ भारवाही तपोधन बाण की सीढ़ियों के मार्ग से वृक्ष के नीचे उतरे। (७८)

राजा के धनुर्धारी पुत्र द्वारा अपने पुत्र की रक्षा हो जाने के उपरान्त ऋतध्वज भारवाही जाबालि के साथ सूर्य-पुत्री (यमुना) नदी के तट पर गए। (७९)

श्रीवामनपुराण में अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

३९

दण्डक ने कहा—हे बाले! इसी बीच यक्ष और असुर दोनों की कन्याएँ योगियों में श्रेष्ठ श्रीकण्ठ महादेव का दर्शन करने आई। (१)

उन ऋतध्वज के चले जाने के कारण उन दोनों ने देखा कि महादेव के (चतुर्दिक्) म्लान एवं शुष्क पुष्प तथा प्रचुर निर्माल्य पड़ा है। (२)

तदनन्तर उस देवेश का दर्शन कर वे दोनों कन्याएँ विधिपूर्वक अहोरात्र श्रीकण्ठ को स्नान कराने एवं उनका पूजन करने लगीं। (३)

उन दोनों के वहीं रहते समय गालव नामक ऋषि अव्यक्त स्वरूप श्रीकण्ठ का दर्शन करने के लिए इस वन में आये। (४)

उन्होंने दोनों कन्याओं को देखकर 'ये किसकी कन्याएँ हैं' ऐसा सोचते हुए कालिन्दी के विमल जल में प्रवेश किया। स्नान करने के बाद पवित्र होकर गालव ऋषि ने श्रीकण्ठ महादेव की पूजा की। तदनन्तर यक्ष और असुर दोनों की कन्याओं ने मधुर स्वर से गान किया। (५-६)

तदुपरान्त (उनके) स्वर को सुनकर गालव ने यह समझा कि ये दोनों निस्सन्देह गन्धर्व की कन्याएँ हैं। (७)

गालव ने विधिपूर्वक श्रीकण्ठदेव की पूजाकर जप

कृतजप्यः समध्यास्ते कन्याभ्यामभिवादितः ॥ ८
ततः पप्रच्छ स मुनिः कन्यके कस्य कथ्यताम् ।
कुलालङ्कारकरणे भक्तियुक्ते भवस्य हि ॥ ९
तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठं याथातथ्यं शुभानने ।
जातो विदितवृत्तान्तो गालवस्तपतां वरः ॥ १०
समुष्य तत्र रजनीं ताभ्यां संपूजितो मुनिः ।
प्रातरुत्थाय गौरीशं संपूज्य च विधानतः ॥ ११
ते उपेत्याब्रवीद्वाक्ये पुष्करारण्यमुत्तमम् ।
आमन्त्रयामि वां कन्ये समनुज्ञातुमर्हथः ॥ १२
ततस्ते ऊचतुर्ब्रह्मन् दुर्लभं दर्शनं तव ।
किमर्थं पुष्करारण्यं भवान् यास्यत्यथादरात् ॥ १३
ते उवाच महातेजा महत्कार्यसमन्वित ।
कार्तिकी पुण्यदा भाविमासान्ते पुष्करेषु हि ॥ १४
ते ऊचतुर्वयं यामो भवान् यत्र गमिष्यति ।
न त्वया स्म विना ब्रह्मन्निह स्थातुं हि शक्नुवः ॥ १५
बाढमाह ऋषिश्रेष्ठस्ततो नत्वा महेश्वरम् ।
गते ते ऋषिणा सार्द्धं पुष्करारण्यमादरात् ॥ १६
तथाऽन्ये ऋषयस्तत्र समायाताः सहस्रशः ।
पार्थिवा जानपद्याश्च मुक्त्वैकं तमृतध्वजम् ॥ १७
ततः स्नाताश्च कार्तिक्यामृषयः पुष्करेष्वथ ।
राजानश्च महाभागा नाभागेक्ष्वाकुसंयुताः ॥ १८
गालवोऽपि समं ताभ्यां कन्यकाभ्यामवातरत् ।
स्नातुं स पुष्करे तीर्थे मध्यमे धनुराकृतौ ॥ १९
निमग्नश्चापि ददृशे महामत्स्यं जलेशयम् ।
बह्वीभिर्मत्स्यकन्याभिः प्रीयमाणं पुनः पुनः ॥ २०
स ताश्चाह तिमिर्मुग्धाः यूयं धर्मं न जानथ ।
जनापवादं घोरं हि न शक्तः सोढुमुल्बणम् ॥ २१
तास्तमूचुर्महामत्स्यं किं न पश्यसि गालवम् ।

किया। तदनन्तर दोनों कन्याओं से अभिवादित होकर वे बैठ गये। (८)

तत्पश्चात् उन मुनि ने पूछा—यह बतलाओ कि कुलालङ्कार स्वरूप एवं शंकर में भक्ति करने वाली तुम दोनों किसकी कन्याएँ हो? (९)

हे शुभानने! दोनों कन्याओं ने मुनिश्रेष्ठ से यथार्थ वृत्तान्त बतलाया तब श्रेष्ठ तपस्वी गालव को सम्पूर्ण वृत्तान्त विदित हो गया। (१०)

उन दोनों से पूजित मुनि ने वहाँ रात्रि में निवास किया। प्रातःकाल उठकर उन्होंने विधानपूर्वक गौरीश शंकर का पूजन किया। (११)

तदनन्तर उन दोनों के समीप जाकर उन्होंने कहा—मैं परमश्रेष्ठ पुष्कर वन में जाऊँगा। मैं तुम दोनों की अनुमति चाहता हूँ। मुझे अनुमति दो। (१२)

तदुपरान्त उन दोनों ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपका दर्शन दुर्लभ है। आप आदर पूर्वक पुष्करारण्य में क्यों जा रहे हैं। (१३)

महत्कार्य युक्त महातेजस्वी (मुनि) ने उन दोनों से कहा–आगे मासान्त में कार्तिकी पूर्णिमा होगी जो पुष्कर में पुण्यदायिनी है। (१४)

उन दोनों ने कहा—आप जहाँ जायेंगे हम भी वहीं चलेंगी। हे ब्रह्मन्! आपके बिना हम यहाँ नहीं रह सकतीं। (१५)

ऋषिश्रेष्ठ ने कहा—ठीक है। तदनन्तर महेश्वर को प्रणाम कर ऋषि के साथ वे दोनों आदर पूर्वक पुष्करारण्य गयीं। (१६)

वहाँ केवल उन ऋतध्वज को छोड़कर सहस्रों ऋषि, राजा एवं जनपद निवासी एकत्रित हुए। (१७)

तदनन्तर ऋषियों एवं नाभाग तथा इक्ष्वाकु आदि महाभाग्यवान् राजाओं ने कार्तिकी पूर्णिमा के दिन पुष्कर तीर्थ में स्नान किया। (१८)

गालव भी उन दोनों कन्याओं के साथ धनुष के समान आकार वाले मध्यम पुष्कर तीर्थ में स्नान करने के लिये उतरे। (१९)

(जलमें) निमग्न होने पर उन्होंने देखा कि एक महामत्स्य जल में स्थित है एवं अनेक मत्स्य-कन्याएँ बारंबार उसे प्रसन्न करने में लगी हैं। (२०)

उस मत्स्य ने उन (मछलियों) से कहा—मुग्ध होने के कारण तुम सभी धर्म नहीं जानतीं। मैं तीव्र एवं भयङ्कर जनापवाद नहीं सहन कर सकता। (२१)

उन सभी (मछलियों) ने कहा—क्या तुम दो कन्याओं

तापसं कन्यकाभ्यां वै विचरन्तं यथेच्छया ॥ २२
यद्यसावपि धर्मात्मा न बिभेति तपोधनः ।
जनापवादात् तत्किं त्वं बिभेषि जलमध्यगः ॥ २३
ततस्तावाह स तिमिर्नैष वेत्ति तपोधनः ।
रागान्धो नापि च भयं विजानाति सुबालिशः ॥ २४
तच्छ्रुत्वा मत्स्यवचनं गालवो व्रीडया युतः ।
नोच्चचार निमग्नोऽपि तस्थौ स विजितेन्द्रियः ॥ २५
स्नात्वा ते अपि रम्भोरू समुत्तीर्य तटे स्थिते ।
प्रतीक्षन्त्यौ मुनिवरं तद्दर्शनसमुत्सुके ॥ २६
वृत्ता च पुष्करे यात्रा गता लोका यथागतम् ।
ऋषयः पार्थिवाश्चान्ये नाना जानपदास्तदा ॥ २७
तत्र स्थितैका सुदती विश्वकर्मतनूरुहा ।
चित्राङ्गदा सुचार्वङ्गी वीक्षन्ती तनुमध्यमे ॥ २८
ते स्थिते चापि वीक्षन्त्यौ प्रतीक्षन्त्यौ च गालवम् ।
सस्थिते निर्जने तीर्थे गालवोऽन्तर्जले तथा ॥ २९
ततोऽभ्यागाद् वेदवती नाम्ना गन्धर्वकन्यका ।
पर्जन्यतनया साध्वी घृताचीगर्भसंभवा ॥ ३०
सा चाभ्येत्य जले पुण्ये स्नात्वा मध्यमपुष्करे ।
ददर्श कन्यात्रितयमुभयोस्तटयोः स्थितम् ॥ ३१
चित्राङ्गदामथाभ्येत्य पर्यपृच्छदनिष्ठुरम् ।
कासि केन च कार्येण निर्जने स्थितवत्यसि ॥ ३२
सा तामुवाच पुत्रीं मां विन्दस्व सुरवर्धकेः ।
चित्राङ्गदेति सुश्रोणि विख्यातां विश्वकर्मणः ॥ ३३
साहमभ्यागता भद्रे स्नातु पुण्यां सरस्वतीम् ।
नैमिषे काञ्चनाक्षीं तु विख्यातां धर्ममातरम् ॥ ३४
तत्रागताथ राज्ञाऽहं दृष्टा वैदर्भकेण हि ।
सुरथेन स कामार्तो मामेव शरणं गतः ॥ ३५
मयात्मा तस्य दत्तश्च सखीभिर्वार्यमाणया ।

के साथ यथेच्छ विचरण करने वाले तपस्वी गालव को नहीं देख रहे हो ? (२२)

यदि धर्मात्मा एवं तपस्वी होते हुए भी वे जनापवाद से भयभीत नहीं होते तो जल में रहने वाले आप क्यों डर रहे हैं ? (२३)

तदनन्तर उस तिमि (मत्स्य) ने उनसे कहा—यह रागान्ध तपस्वी जनापवाद को नहीं जानता एवं मूर्खतावश जनापवादजन्य भय को भी नहीं जानता । (२४)

मत्स्य के उस वचन को सुनकर गालव लज्जित हो गये । वे जितेन्द्रिय ऊपर नहीं आये, भीतर ही डूबे रहे । (२५)

वे दोनों सुन्दरियाँ स्नानोपरान्त जल से निकल कर तट पर खड़ी हो गईं एवं मुनिश्रेष्ठ के दर्शन के लिए उत्सुकता पूर्वक उनकी प्रतीक्षा करने लगीं । (२६)

पुष्कर की यात्रा समाप्त होने पर सभी ऋषि, राजा और नगरवासी लोग जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। (२७)

वहाँ केवल सुन्दर दाँतों वाली एवं शोभनाङ्गी विश्वकर्मा की पुत्री चित्राङ्गदा उन दोनों कृशोदरी (कन्याओं को) देखती हुई खड़ी थी। (२८)

वे दोनों भी देखती हुई एवं गालव की प्रतीक्षा करती हुई निर्जन तीर्थ में खड़ी रहीं एवं गालव जल के भीतर ही रहे। (२९)

तदनन्तर वेदवती नामक गन्धर्व-कन्या वहाँ आई । वह साध्वी घृताची के गर्भ से उत्पन्न पर्जन्य नामक गन्धर्व की पुत्री थी । (३०)

उसने आकर मध्यम पुष्कर तीर्थ के पवित्र जल में स्नान किया और दोनों तटों पर अवस्थित तीन कन्याओं को देखा । (३१)

तदनन्तर चित्राङ्गदा के पास जाकर उसने मृदुता पूर्वक पूछा—तुम कौन हो ? किस कार्य से इस निर्जन स्थान में स्थित हो ? (३२)

उस (चित्राङ्गदा) ने उस (वेदवती) से कहा—हे सुन्दर नितम्बोंवाली ! मुझे देवशिल्पी विश्वकर्मा की चित्राङ्गदा नाम से प्रसिद्ध पुत्री जानो । (३३)

हे भद्रे ! वह (मैं) नैमिष में धर्म की जननी काञ्चनाक्षी नाम से विख्यात पवित्र नदी में स्नान करने गई थी । (३४)

वहाँ जाने पर विदर्भ-वंशीय राजा सुरथ ने मुझे देखा और कामार्त होकर मेरी शरण में आया । (३५)

सखियों के मना करने पर भी मैंने उन्हें आत्मसमर्पण कर दिया । तदनन्तर पिता के शाप से मैं राजा से वियुक्त

ततः शमाऽस्मि तातेन वियुक्तास्मि च भूभुना ॥ ३६
मर्तुं कृतमतिर्भद्रे वारिता गुह्यकेन च ।
श्रीकण्ठमगमं द्रष्टुं ततो गोदावरं जलम् ॥ ३७
तस्मादिम समायाता तीर्थप्रवरमुत्तमम् ।
न चापि दृष्टः सुरथः स मनोह्लादनः पतिः ॥ ३८
भवती चात्र का बाले वृत्ते यात्राफलेऽधुना ।
समागता हि तच्छंम मम सत्येन भामिनि ॥ ३९
साऽब्रवीच्छ्रूयतां याऽस्मि मन्दभाग्या कृशोदरी ।
यथा यात्राफले वृत्ते समायाताऽस्मि पुष्करम् ॥ ४०
पर्जन्यस्य घृताच्यां तु जाता वेदवतीति हि ।
रममाणा वनोद्देशे दृष्टाऽस्मि कपिना सखि ॥ ४१
स चाभ्येत्याब्रवीत् का त्वं यासि दवयतीति हि ।
आनीताश्चाश्रमात् केन भूपृष्ठान्मेरुपर्वतम् ॥ ४२
ततो मयोक्तो नैवास्मि कपे देववतीत्यहम् ।
नाम्ना वेदवतीत्येव मेरोरपि कृताश्रया ॥ ४३
ततस्तेनातिदुष्टेन वानरेण ह्यभिद्रुता ।
समारूढास्मि सहसा बन्धुजीवं नगोत्तमम् ॥ ४४
तेनापि वृक्षस्तरसा पादाक्रान्तस्त्वभज्यत ।
ततोऽस्य विपुलां शाखां समालिङ्ग्य स्थिता त्वहम् ॥ ४५
ततः प्लवङ्गमो वृक्षं प्राक्षिपत् सागराम्भसि ।
सह तेनैव वृक्षेण पतितास्म्यहमाकुला ॥ ४६
ततोऽम्बरतलाद् वृक्षं निपतन्तं यदृच्छया ।
ददृशुः सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ४७
ततो हाहाकृतं लोकैर्मां पतन्तीं निरीक्ष्य हि ।
ऊचुश्च सिद्धगन्धर्वाः कष्ट सेयं महात्मनः ॥ ४८
इन्द्रद्युम्नस्य महिषी गदिता ब्रह्मणा स्वयम् ।
मनोः पुत्रस्य वीरस्य सहस्रक्रतुयाजिनः ॥ ४९
तां वाणीं मधुरां श्रुत्वा मोहमस्म्यागता ततः ।
न च जाने स केनापि वृक्षश्छिन्नः सहस्रधा ॥ ५०
ततोऽस्मि वेगाद् बलिना हुतानलसखेन हि ।

हो गयी। (३६)

हे भद्रे! मैंने मरने का विचार किया किन्तु गुह्यक ने मुझे रोक दिया। उसके बाद मैं श्रीकण्ठ के दर्शन हेतु गई और वहाँ से गोदावर जल के निकट गयी। (३७)

वहाँ से मैं इस श्रेष्ठ उत्तम तीर्थ में आयी। किन्तु वे मन को प्रसन्न करने वाले पति सुरथ मुझे नहीं दिखलाई पड़े। (३८)

हे बाले! यात्राफल समाप्त हो जाने पर आज यहाँ आने वाली आप कौन हैं? हे भामिनि! मुझे सत्य सत्य बतलाओ। (३९)

उसने कहा—हे कृशोदरि! मैं मन्दभागिनी कौन हूँ तथा यात्राफल समाप्त होने पर पुष्कर में क्यों आई हूँ, उसे सुनो। (४०)

मैं घृताची के गर्भ से उत्पन्न वेदवती नामक पर्जन्य की पुत्री हूँ। हे सखि! वनप्रदेश में घूम रही मुझको एक वानर ने देखा। (४१)

उसने समीप आकर कहा—तुम कौन हो? कहाँ जा रही हो? (निश्चय ही तुम) देववती हो। पृथ्वी पर स्थित आश्रम से मेरु पर्वत पर तुम्हें कौन लाया है? (४२)

इस पर मैंने कहा—हे वानर! मैं देववती नहीं हूँ मेरा नाम वेदवती है। मैं मेरुपर्वत पर ही रहती हूँ। (४३)

तदनन्तर उस अति दुष्ट वानर ने मेरे ऊपर आक्रमण कर दिया। मैं सहसा बन्धुजीव के उत्तम वृक्ष पर चढ़ गयी। (४४)

उसने भी वेगपूर्वक पैर से प्रहार कर वृक्ष को तोड़ दिया। तदनन्तर मैं उसकी एक बड़ी शाखा को पकड़ कर स्थित रही। (४५)

तदुपरान्त वानर ने उस वृक्ष को समुद्र के जल में फेंक दिया। मैं अत्यन्त व्याकुल होकर उस वृक्ष के साथ ही जल में गिर पड़ी। (४६)

तदनन्तर सभी चराचर प्राणियों ने आकाश से गिरते वाले उस वृक्ष को देखा। (४७)

तत्पश्चात् मुझको गिरता देखकर सभी लोग हा हाकार करने लगे। सिद्ध और गन्धर्व लोग कहने लगे—हाय! यह कष्ट की बात है। ब्रह्मा ने स्वयं कहा है कि यह कन्या मनु के वीर पुत्र सहस्र यज्ञों के कर्ता इन्द्रद्युम्न की महिषी होगी। (४८-४९)

उस मधुर वाणी को सुनने के उपरान्त मुझे मूर्च्छा आ गई। मैं नहीं जानती कि किसने उस वृक्ष को सहस्रों टुकड़ों में काट डाला। (५०)

तदनन्तर अग्नि के मित्र बलवान् वायु वेगपूर्वक मुझे

समानीतास्म्यहमिमं त्वं दृष्टा चाद्य सुन्दरि ॥ ५१
तदुत्तिष्ठस्व गच्छावः पृच्छावः क इमे स्थिते ।
कन्यके अनुपश्ये हि पुष्करस्योत्तरे तटे ॥ ५२
एवमुक्त्वा वराङ्गी सा तया सुतनुकन्यया ।
जगाम कन्यके द्रष्टुं प्रष्टुं कार्यसमुत्सुका ॥ ५३
ततो गत्वा पर्यपृच्छत् ते ऊचतुरुमे अपि ।
याथातथ्यं तयोस्ताभ्यां स्वमात्मानं निवेदितम् ॥ ५४
ततस्ताश्चतुरोपीह सप्तगोदावरं जलम् ।
संप्राप्य तीर्थे तिष्ठन्ति अर्चन्त्यो हाटकेश्वरम् ॥ ५५
ततो बहून् वर्षगणान् बभ्रमुस्ते जनास्त्रयः ।
तासामर्थाय शकुनिर्जाबालिः सऋतध्वजः ॥ ५६
भारवाही ततः खिन्नो दशान्दशतिके गते ।
काले जगाम निर्वेदात् समं पित्रा तु शाकलम् ॥ ५७
तस्मिन्नरपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्नो मनोः सुतः ।
समभ्यास्ते स विज्ञाय सार्घपात्रो विनिर्ययौ ॥ ५८
सम्यक् संपूजितस्तेन सजाबालिर्ऋतध्वजः ।
स चेक्ष्वाकुसुतो धीमान् शकुनिर्भ्रातृजोर्चितः ॥ ५९
ततो वाक्यं मुनिः प्राह इन्द्रद्युम्नं ऋतध्वजः ।
राजन् नष्टाऽबलास्माकं नन्दयन्तीति विश्रुता ॥ ६०
तस्यार्थे चैव वसुधा अस्माभिरटिता नृप ।
तस्मादुत्तिष्ठ मार्गस्व साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ ६१
अथोवाच नृपो ब्रह्मन् ममापि ललनोत्तमा ।
नष्टा कृतश्रमस्यापि कस्याहं कथयामि ताम् ॥ ६२
आकाशात् पर्वताकारः पतमानो नगोत्तमः ।
सिद्धाना वाक्यमाकर्ण्य बाणैश्छिन्नः सहस्रधा ॥ ६३
न चैव सा वरारोहा विभिन्ना लाघवान्मया ।
न च जानामि सा कुत्र तस्माद् गच्छामि मार्गितुम् ॥ ६४
इत्येवमुक्त्वा स नृपः समुत्थाय त्वरान्वितः ।

यहाँ लाये हैं । हे सुन्दरी! तुमसे आज यहाँ मेरी भेंट हुई है। (५१)

इसलिए उठो, हम दोनों चलें, पूँछें और देखें कि पुष्कर तीर्थ के उत्तरी किनारे पर विद्यमान ये दोनों कन्याएँ कौन हैं ? (५२)

ऐसा कहकर कार्य में उत्सुक वह सुन्दरी उस सुन्दर तथा कृश अंगवाली कन्या के साथ दोनों कन्याओं को देखने तथा पूछने के लिए वहाँ गयी। (५३)

तदनन्तर वहाँ जाकर उसने पूछा। उन दोनों ने अपना यथार्थ वृत्तान्त उन दोनों से कहा। (५४)

तदुपरान्त चारों कन्यायें सप्तगोदावर के जल के निकट जाकर हाटकेश्वर की पूजा करती हुई तीर्थ में रहने लगीं। (५५)

तदनन्तर शकुनि, जाबालि और ऋतध्वज ये तीनों व्यक्ति उन कन्याओं के लिए अनेक वर्षों तक भ्रमण करते रहे। (५६)

तदुपरान्त एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर भारवाही खिन्न (जाबालि) उदास होकर पिता के साथ शाकल जनपद में चले गये। (५७)

वहाँ मनु के पुत्र श्रीमान् राजा इन्द्रद्युम्न निवास कर रहे थे। समाचार जानकर वे अर्घपात्र हाथ में लिए बाहर निकले। (५८)

उन्होंने जाबालि और ऋतध्वज की विधि पूर्वक सुन्दर ढंग से पूजा की तथा उस इक्ष्वाकुनन्दन बुद्धिमान् भतीजे शकुनि की भी पूजा की। (५९)

तदनन्तर ऋतध्वज मुनि ने इन्द्रद्युम्न से कहा—राजन्! नन्दयन्ती नाम से विख्यात हम लोगों की अबला कन्या खो गयी है। (६०)

हे राजन्! उसके लिए हमलोगों ने वसुधा का भ्रमण किया है। इसलिए उठिए, खोजिए और हमारी सहायता कीजिए। (६१)

तदुपरान्त राजा ने कहा—हे ब्रह्मन्! मेरी भी एक उत्तम कन्या खो गयी है। उसको खोजने मे मैं परिश्रम कर चुका हूँ। मैं उसके विषय में किससे कहूँ। (६२)

सिद्धों का वचन सुनकर आकाश से गिरने वाले पर्वताकार श्रेष्ठ वृक्ष को मैंने बाणों से सहस्रों टुकड़ों मे काट डाला। (६३)

मैंने कुशलता से उस सुन्दरी कन्या को चोट नहीं आने दी। मैं नहीं जानता कि वह कहाँ है ? अत उसे खोजने के लिए मैं चल रहा हूँ। (६४)

ऐसा कहने के उपरान्त वे राजा शीघ्रता पूर्वक उठे

स्यन्दनानि द्विजाभ्यां स भ्रातृपुत्राय चार्पयत् ॥ ६५
तेऽधिरुह्य रथांस्तूर्णं मार्गन्ते वसुधां क्रमात् ।
बदर्याश्रममासाद्य ददृशुस्तपसां निधिम् ॥ ६६
तपसा कर्शितं दीनं मलपङ्कजटाधरम् ।
निःश्वासायासपरमं प्रथमे वयसि स्थितम् ॥ ६७
तमुपेत्याब्रवीद् राजा इन्द्रद्युम्नो महाभुजः ।
तपस्विन् यौवने घोरमास्थितोऽसि सुदुश्चरम् ॥ ६८
तपः किमर्थं तच्छंस किमभिप्रेतमुच्यताम् ।
सोऽब्रवीत् को भवान् ब्रूहि ममात्मानं सुहृत्तया ॥ ६९
परिपृच्छसि शोकार्तं परिखिन्नं तपोन्वितम् ।
स प्राह राजाऽस्मि विभो तपस्विन् शाकले पुरे ॥ ७०
मनोः पुत्रः प्रियो भ्राता इक्ष्वाकोः कथित तव ।
स चास्मै पूर्वचरितं सर्वं कथितवान् नृपः ॥ ७१
श्रुत्वा प्रोवाच राजर्षिर्मा मुञ्चस्व कलेवरम् ।
आगच्छ यामि तन्वङ्गीं विचेतुं भ्रातृजोऽसि मे ॥ ७२
इत्युक्त्वा संपरिष्वज्य नृपं धमनिसंततम् ।
समारोप्य रथं तूर्णं तापसाभ्यां न्यवेदयत् ॥ ७३
ऋतध्वजः सपुत्रस्तु तं दृष्ट्वा पृथिवीपतिम् ।
प्रोवाच राजन्नेह्येहि करिष्यामि तव प्रियम् ॥ ७४
यासौ चित्राङ्गदा नाम त्वया दृष्टा हि नैमिषे ।
सप्तगोदावरं तीर्थं सा मयैव विसर्जिता ॥ ७५
तदागच्छथ गच्छामः सौदेवस्यैव कारणात् ।
तत्रास्माकं समेष्यन्ति कन्यास्तिस्रस्तथापराः ॥ ७६
इत्येवमुक्त्वा स ऋषिः समाश्वास्य सुदेवजम् ।
शकुनिं पुरतः कृत्वा सेन्द्रद्युम्नः सपुत्रकः ॥ ७७
स्यन्दनेनाश्वयुक्तेन गन्तुं समुपचक्रमे ।
सप्तगोदावरं तीर्थं यत्र ताः कन्यका गताः ॥ ७८
एतस्मिन्नन्तरे तन्वी घृताची शोकसंयुता ।
विचचारोदयगिरिं विचिन्वन्ती सुतां निजाम् ॥ ७९
तमाससाद च कपिं पर्यपृच्छद् तथाप्सराः ।
किं बाला न त्वया दृष्टा कपे सत्यं वदस्व मां ॥ ८०

एवं उन दोनों ब्राह्मणों तथा अपने भ्रातृज को रथ प्रदान किया। (६५)

वे रथों पर आरूढ होकर शीघ्रता से क्रमानुसार पृथ्वी पर अन्वेषण करने लगे। बदरिकाश्रम में पहुँच कर उन लोगों ने तप से कृश, धूल मिट्टी से भरे, जटाधारी जोर-जोर से साँस ले रहे एक तपोनिधि युवक को देखा। (६६-६७)

उसके समीप जाकर महाबाहु राजा इन्द्रद्युम्न ने कहा—हे तपस्विन्! यह बतलाओ कि युवावस्था में ही तुम सुदुश्चर घोर तप क्यों कर रहे हो? यह भी बतलाओ कि तुम्हारा क्या अभीष्ट है? उसने कहा—आप मुझे यह बतलायें कि शोकार्त, अतिखिन्न एवं तपोन्वित मुझसे सौहार्द पूर्वक पूछने वाले आप कौन हैं? उसने कहा—हे तपस्विन्! हे विभो! मैं मनु का पुत्र एवं इक्ष्वाकु का प्रियभ्राता शाकलपुर का राजा हूँ। उस राजा ने भी उनसे समस्त पूर्व वृत्तान्त कह दिया। (६८-७१)

उपर्युक्त बातों को सुनकर राजर्षि ने कहा—शरीर मत छोड़ो। तुम मेरे भतीजे हो। आओ उस सुन्दरी का अन्वेषण करने चलें। (७२)

इतना कहकर उन्होंने सभी शिराओं से आच्छन्न राजा का आलिङ्गन किया एवं उन्हें रथ पर चढ़ा कर शीघ्र उन दोनों तपस्वियों के सामने पहुँचा दिया। (७३)

पुत्र के साथ ऋतध्वज ने उन राजा को देखकर कहा—हे राजन्! आइये आइये, मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा। (७४)

आपने नैमिषारण्य में जिस चित्राङ्गदा को देखा था उसे मैं ही सप्तगोदावर नामक तीर्थ में छोड़ आया हूँ। (७५)

इस लिए आइए, हमलोग सुदेव के पुत्र के ही निमित्त चलें। वहाँ पर हम लोगों की अन्य तीन कन्यायें मिलेंगी। (७६)

ऐसा कहने के उपरान्त वे ऋषि सुदेव के पुत्र को सान्त्वना देकर एवं शकुनि को आगे कर इन्द्रद्युम्न और पुत्र के साथ अश्व युक्त रथ से सप्तगोदावर तीर्थ में जाने का उपक्रम किये जहाँ वे कन्यायें गयी थीं। (७७-७८)

इसी बीच कृशाङ्गी घृताची शोकान्वित होकर अपनी कन्या खोजती हुई उदयगिरि पर विचरण कर रही थी। (७९)

वहाँ अप्सरा को यह बन्दर मिला। अप्सरा ने उससे पूछा—हे कपि! मुझसे सत्य कहो कि क्या तुमने बाला को देखा है? (८०)

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा स कपिः प्राह बालिकाम् ।
दृष्टा देववती नाम्ना मया न्यस्ता महाश्रमे ॥ ८१
कालिन्द्या विमले तीर्थे मृगपक्षिसमन्विते ।
श्रीकण्ठायतनस्याग्रे मया सत्यं तवोदितम् ॥ ८२
सा प्राह वानरपते नाम्ना वेदवतीति सा ।
न हि देववती ख्याता तदागच्छ व्रजावहे ॥ ८३
घृताच्यास्तद्वचः श्रुत्वा वानरस्त्वरितक्रमः ।
पृष्ठतोऽस्याः समागच्छन्नदीमन्वेव कौशिकीम् ॥ ८४
ते चापि कौशिकीं प्राप्ता राजर्षिप्रवरास्त्रयः ।
द्वितयं तापसाभ्यां च रथैः परमवेगिभिः ॥ ८५
अवतीर्य रथेभ्यस्ते स्नातुमभ्यागमन् नदीम् ।
घृताच्यपि नदीं स्नातुं सुपुण्यमाजगाम ह ॥ ८६
तामन्वेव कपिः प्रायाद् दृष्टो जाबालिना तथा ।
दृष्ट्वैव पितरं प्राह पार्थिवं च महाबलम् ॥ ८७
स एष पुनरायाति वानरस्तात वेगवान् ।
पूर्वं जटास्वेव बलाद्येन बद्धोऽस्मि पादपे ॥ ८८
तज्जाबालिवचः श्रुत्वा शकुनिः क्रोधसंयुतः ।
सशरं धनुरादाय इदं वचनमब्रवीत् ॥ ८९
ब्रह्मन् प्रदीयतां मह्यमाज्ञा तात वदस्व माम् ।
यावदेनं निहन्म्यद्य शरेणैकेन वानरम् ॥ ९०
इत्येवमुक्ते वचने सर्वभूतहिते रतः ।
महर्षिः शकुनिं प्राह हेतुयुक्तं वचो महत् ॥ ९१
न कश्चित्तात केनापि बध्यते हन्यतेऽपि वा ।
वधबन्धौ पूर्वकर्मवश्यौ नृपतिनन्दन ॥ ९२
इत्येवमुक्त्वा शकुनिमृषिर्वानरमब्रवीत् ।
एह्येहि वानरास्माकं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ ९३
इत्येवमुक्तो मुनिना बाले स कपिकुञ्जरः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥
ममाज्ञा दीयतां ब्रह्मन् शाधि किं करवाण्यहम् ॥ ९४
इत्युक्ते प्राह स मुनिस्तं वानरपतिं वचः ।

उसके उस वचन को सुनकर उस कपि ने कहा—मैंने देववती नामक बालिका को देखा है एवं उसे कालिन्दी के मृगपक्षिसमन्वित विमल तीर्थ में श्रीकण्ठ के मन्दिर के सम्मुख स्थित महाश्रम में रक्खा है। मैंने तुमसे यह सत्य बात कही है। (८१-८२)

उसने (घृताची ने) कहा—हे वानरराज ! वह वेदवती नाम से प्रसिद्ध है देववती नहीं है। अस्तु, आओ, हम दोनों वहाँ चलें। (८३)

घृताची की बात सुनकर वानर उछलता हुआ उसके पीछे-पीछे कौशिकी नदी की ओर चला। (८४)

वे तीनों श्रेष्ठ राजर्षि भी दोनों तपस्वियों (जाबालि और ऋतध्वज) के साथ अत्यधिक वेगशाली रथों पर चढ़कर कौशिकी नदी के समीप पहुँचे। (८५)

वे लोग रथ से उतर कर स्नान करने के लिए नदी के समीप आये। घृताची भी उस परम पवित्र नदी में स्नान करने आयी। (८६)

वानर भी उनके पीछे पीछे आया और जाबालि ने उसे देखा। देखते ही उन्होंने पिता और महाबली राजा से कहा— (८७)

हे तात ! यह वही वेगवान् वानर पुन आ रहा है जिसने पहले बलपूर्वक जटापाश के द्वारा मुझे वृक्ष में बाँध दिया था। (८८)

जाबालि के उस वचन को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध शकुनि ने बाणयुक्त धनुष लेकर यह वचन कहा— (८९)

हे ब्रह्मन् ! मुझे आज्ञा दीजिए, हे तात ! मुझसे कहिए कि क्या मैं अभी एक बाण से इस वानर को मार डालूँ। (९०)

ऐसा वचन कहने पर समस्त प्राणियों के हित में तत्पर महर्षि ने शकुनि से अत्यधिक युक्ति-युक्त श्रेष्ठ वचन कहा— (९१)

हे तात ! कोई किसी को न तो बाँधता और न मारता ही है। हे नृपतिनन्दन ! वध और बन्धन पूर्वकर्माधीन होते हैं। (९२)

शकुनि से ऐसा कह कर मुनि ने वानर से कहा—हे वानर ! आओ, आओ। तुम हम लोगों की सहायता कर सकते हो। (९३)

हे बाले ! मुनि के ऐसा कहने पर उस श्रेष्ठ कपि ने हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुये यह कहा—हे ब्रह्मन् ! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं क्या करूँ ? (९४)

उसके ऐसा कहने पर मुनि ने उस वानरपति से यह

मम पुत्रस्त्वयोद्बद्धो जटासु वटपादपे ॥ ९५
न चोन्मोचयितुं वृक्षाच्छक्नुयामोऽपि यत्नतः ।
तदनेन नरेन्द्रेण त्रिधा कृत्वा तु शाखिनः ॥ ९६
शाखां वहति मत्सूनुः शिरसा तां विमोचय ।
दृढसर्पशतान्यस्य शाखां वै बद्धोऽगमन् ॥ ९७
न च सोऽस्ति पुमान् कश्चिद् यो तुन्मोचयितुं क्षमः ।
स ऋषेर्वाक्यमाकर्ण्य कपिस्ताः शाखिनो जटाः ॥ ९८
शनैरुन्मोचयामास क्षणादुन्मोचिताश्च ताः ।
ततः प्रीतो मुनिश्रेष्ठो वरदोऽभूत्तपोधनः ॥ ९९
कपिं प्राह वृणीष्व त्वं वरं यन्मनसेप्सितम् ।
ऋषेस्तद्वचनं श्रुत्वा इमं वरमयाचत ॥ १००
विश्वकर्मा महातेजाः कपिरेवं प्रतिगर्वितः ।
भगवन् भवान्वरं मह्यं यदि दातुमिहेच्छति ॥ १०१
तन्मदत्तो महाघोरो मम शापो निवर्त्यताम् ।
निशाङ्कदायाः पितरं मां त्वष्टारं तपोधन ॥ १०२
अभिजानीहि भवतः शापाद्वानरतां गतम् ।
सुबहूनि च पापानि मया यानि कृतानि हि ॥ १०३
कपिचापल्यदोषेण तानि मे यान्तु संक्षयम् ।
ततो ऋतध्वजः प्राह शापस्यान्तो भविष्यति ॥ १०४
यदा घृताच्यां तनयं जनिष्यसि महाबलम् ।
इत्येवमुक्तः संहृष्टः स तदा कपिकुञ्जरः ॥ १०५
स्नातुं तूर्णं महानद्यामवतीर्णः कृशोदरि ।
ततस्तु सर्वे क्रमशः स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः ॥ १०६
जग्मुर्दृष्ट्वा स्वेभ्यस्ते घृताची दिवमुत्पतत् ।
तामन्वेव महावेगः स कपिः प्लवतां वरः ॥ १०७
ददर्श रूपसंपन्नां घृताचीं स प्लवंगमः ।
सापि तं वल्गितां श्रेष्ठं दृष्ट्वैव कपिकुञ्जरम् ॥ १०८
ज्ञात्वाऽथ विश्वकर्माणं कामयामास कामिनी ।
ततोऽस्तु पर्वतश्रेष्ठे स्थाने कोलाहले कपिः ॥ १०९
रमयामास तां तन्वीं सा च तं वानरोत्तमम् ।
एवं रमन्तौ सुचिरं संप्राप्तौ विन्ध्यपर्वतम् ॥ ११०

रथैः पञ्चापि तत्तीर्थं संप्राप्तास्ते नरोत्तमाः ।
मध्याह्नसमये प्रीताः सप्तगोदावरं जलम् ॥ १११
प्राप्य विश्रामहेत्वर्थमवतेरुस्त्वरान्विताः ।
तेषां सारथयश्चाश्वान् स्नात्वा पीतोदकाप्लुतान् ॥११२
रमणीये वनोद्देशे प्रचारार्थं समुत्सृजन् ।
शाड्वलाढयेषु देशेषु मुहूर्तादेव वाजिनः ॥ ११३
तृप्ताः समाद्रवन् सर्वे देवायतनमुत्तमम् ।
तुरङ्गखुरनिर्घोषं श्रुत्वा ता योषितां वराः ॥ ११४
किमेतदिति चोक्त्वैव प्रजग्मुर्हाटकेश्वरम् ।
आरुह्य वलभीं तास्तु समुदैक्षन्त सर्वशः ॥ ११५
अपश्यंस्तीर्थसलिले स्नायमानान् नरोत्तमान् ।
ततश्चित्राङ्गदा दृष्ट्वा जटामण्डलधारिणम् ॥
सुरथं हसती प्राह संरोहत्पुलका सखीम् ॥ ११६
योऽसौ युवा नीलघनप्रकाशः
संदृश्यते दीर्घभुजः सुरूपः ।
स एव नूनं नरदेवसूनु-
र्वृतो मया पूर्ववरं पतिर्यः ॥ ११७
यश्चैष जाम्बूनदतुल्यवर्णः
श्वेतं जटाभारमधारयिष्यत् ।
स एष नूनं तपतां वरिष्ठो
ऋतध्वजो नात्र विचारमस्ति ॥ ११८
ततोऽब्रवीदथो हृष्टा नन्दयन्ती सखीजनम् ।
एषोऽपरोऽस्यैव सुतो जाबालिर्नात्र संशयः ॥ ११९
इत्येवमुक्त्वा वचनं वलभ्या अवतीर्य च ।
समासताग्रतः शंभोर्गायन्त्यो गीतिकां शुभाम् ॥ १२०
नमोऽस्तु शर्व शंभो त्रिनेत्र चारुगात्र त्रैलोक्यनाथ उमापते दक्षयज्ञविध्वंसकर कामाङ्गनाशन घोर पापप्रणाशन महापुरुष महोग्रमूर्ते सर्वसत्त्वक्षयकर शुभंकर महेश्वर त्रिशूलधारिन् स्मरारे गुहावासिन् दिग्वासः महाशङ्खशेखर [5] जटाधर कपालमालाविभूषितशरीर वामचक्षुः वामदेव प्रजाध्यक्ष भगाक्ष्णोः क्षयंकर भीमसेन

वे पाँचों श्रेष्ठ लोग भी प्रसन्नमन से रथ द्वारा मध्याह्न के समय सप्तगोदावर जल के उस तीर्थ में पहुँचे। (१११)

वहाँ जाकर वे शीघ्रता पूर्वक विश्राम करने के लिए नीचे उतरे। उनके सारथियों ने भी स्नान किया एवं घोड़ों को जल पिलाकर रमणीय वन प्रदेश में विचरण करने के लिए छोड़ दिया। मुहूर्त भर में ही हरियाली से पूर्ण स्थान में वे घोड़े तृप्त हो गये। तदनन्तर वे सभी (घोड़े) उत्तम देवायतन के निकट दौड़ने लगे। घोड़ों के खुर का शब्द सुनकर श्रेष्ठ स्त्रियाँ 'यह क्या है' ऐसा कहकर हाटकेश्वर (के मन्दिर में) गईं एवं छत पर चढ़कर सभी ओर देखने लगीं। (११२-११५)

उन कन्याओं ने तीर्थ सलिल में स्नान करते हुए उन श्रेष्ठ पुरुषों को देखा। तदनन्तर चित्राङ्गदा ने जटामडलधारी सुरथ नृपति को देखा एवं रोमाचित होकर हँसती हुई सखी से कहा— (११६)

नील मेघ के वर्ण वाला यह जो दीर्घबाहु सुन्दर युवा पुरुष दिखलाई पड़ता है निश्चय ही उसी राजपुत्र को मैंने पहले पतिरूप से वरण किया था। (११७)

इसमें कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि स्वर्णतुल्य वर्ण वाले जो व्यक्ति श्वेत जटाभार को धारण कर रहे हैं वे निश्चय ही तपस्वियों में श्रेष्ठ ऋतध्वज हैं। (११८)

तदनन्तर नन्दयन्ती ने सखियों से प्रसन्न होकर कहा— यह दूसरा व्यक्ति निस्सन्देह इन्हीं ऋतध्वज का पुत्र जाबालि है। (११९)

ऐसा कहकर वे सभी छत से उतरीं एवं शंकर के सम्मुख बैठकर कल्याणकारी (निम्न) गीत गाने लगीं। (१२०)

हे शर्व! हे शम्भु! हे त्रिनेत्र! हे चारुगात्र! हे त्रैलोक्यनाथ! हे उमापति! हे दक्षयज्ञविध्वंसकर! हे कामाङ्गनाशन! हे घोर! हे पाप प्रणाशन! हे महापुरुष! हे महोग्रमूर्ति! हे समस्त प्राणियों के क्षयकारी! हे शुभकर! हे महेश्वर! हे त्रिशूलधारिन्! हे स्मरारि! हे गुहावासिन्! हे दिगम्बर! हे महाशङ्खशेखर! हे जटाधर! हे कपाल-माला विभूषित शरीर! हे वामचक्षु! हे वामदेव! हे प्रजाध्यक्ष! हे भगाक्षि के क्षयकारी! हे भीमसेन! हे

महासेननाथ पशुपते कामाङ्गदहन चत्वरवासिन्
शिव महादेव ईशान शंकर भीम भव
वृषभध्वज जटिल प्रौढ महानाट्येश्वर भूरिरत्न [10]

अविमुक्तक रुद्र रुद्रेश्वर स्थाणो एकलिङ्ग
कालिन्दीप्रिय श्रीकण्ठ नीलकण्ठ अपराजित
रिपुभयंकर संतोषपते वामदेव अघोर
तत्पुरुष महाघोर अघोरमूर्ते शान्त
सरस्वतीकान्त कीनाट सहस्रमूर्ते महोद्भव [15]

विभो कालाग्निरुद्र रुद्र हर महीधरप्रिय
सर्वतीर्थाधिवास हंस कामेश्वर केदाराधिपते
परिपूर्ण मुचुकुन्द मधुनिवासिन् कृपाणपाणे
भयंकर विद्याराज सोमराज कामराज रञ्जक
अञ्जनराजकन्याहृदचलवसते समुद्रशायिन् [20]
गजमुख घण्टेश्वर गोकर्ण ब्रह्मयोने
सहस्रवक्त्राक्षिचरण हाटकेश्वर नमोऽस्तु ते ॥

महासेननाथ! हे पशुपति! हे कामाङ्गदहन! हे चत्वरवासिन्! हे शिव! हे महादेव! हे ईशान! हे शङ्कर! हे भीम! हे भव! हे वृषभध्वज! हे जटिल! हे प्रौढ़! हे महानाट्येश्वर! हे भूरिरत्न! हे अविमुक्तक! हे रुद्र! हे रुद्रेश्वर! हे स्थाणु! हे एक लिङ्ग! हे कालिन्दीप्रिय! हे श्रीकण्ठ! हे नीलकण्ठ! हे अपराजित! हे रिपुभयङ्कर! हे सन्तोषपति! हे वामदेव! हे अघोर! हे तत्पुरुष! हे महाघोर! हे अघोरमूर्ति! हे शान्त! हे सरस्वतीकान्त! हे कीनाट! हे सहस्रमूर्ति! हे महोद्भव! हे विभो! हे कालाग्निरुद्र! हे रुद्र! हे हर! हे महीधरप्रिय! हे सर्व तीर्थाधिवास! हे हंस! हे कामेश्वर! हे केदाराधिपति! हे परिपूर्ण! हे मुचुकुन्द! हे मधुनिवासिन्! हे कृपाणपाणि! हे भयङ्कर! हे विद्याराज! हे सोमराज! हे कामराज! हे रञ्जक! हे अञ्जनराजकन्याहृदचलवसति! हे समुद्रशायी! हे गजमुख! हे घण्टेश्वर! हे गोकर्ण! हे ब्रह्मयोनि! हे सहस्रवक्त्राक्षिचरण! हे हाटकेश्वर! आपको नमस्कार है।

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः सर्वे एवर्षिपार्थिवाः ।
द्रष्टुं त्रैलोक्यकर्तारं त्र्यम्बकं हाटकेश्वरम् ॥ १२१

समारूढाश्च सुस्नाता ददृशुर्योषितश्च ताः ।
स्थितास्तु पुरतस्तस्य गायन्त्यो गेयमुत्तमम् ॥ १२२

ततः सुदेवतनयो विश्वकर्मसुतां प्रियाम् ।
दृष्ट्वा हर्षितचित्तस्तु संरोहत्पुलको बभौ ॥ १२३

ऋतध्वजोऽपि तन्वङ्गीं दृष्ट्वा चित्राङ्गदां स्थिताम् ।
प्रत्यभिज्ञाय योगात्मा बभौ मुदितमानसः ॥ १२४

ततस्तु सहसाऽभ्येत्य देवेशं हाटकेश्वरम् ।
संपूजयन्तस्त्र्यक्षं ते स्तुवन्तः संस्थिताः क्रमात् ॥ १२५

चित्राङ्गदापि तान् दृष्ट्वा ऋतध्वजपुरोगमान् ।
समं ताभिः कृशाङ्गीभिरभ्युत्थायाभ्यवादयत् ॥ १२६
स च ताः प्रतिनन्द्यैव समं पुत्रेण तापसः ।
समं नृपतिभिर्हृष्टः संविवेश यथासुखम् ॥ १२७
ततः कपिवरः प्राप्तो घृताच्या सह सुन्दरि ।

इसी बीच समस्त ऋषि एवं राजालोग त्रैलोक्यकर्त्ता, त्र्यम्बक हाटकेश्वर का दर्शन करने वहाँ पहुँचे। (१२१)

स्नानोपरान्त ऊपर चढ़ने पर उन लोगों ने देवता के सम्मुख बैठकर गीत गाती हुई स्त्रियों को देखा। (१२२)

तदनन्तर सुदेव के पुत्र अपनी प्रिया विश्वकर्मा की पुत्री को देखकर प्रसन्नता से पुलकित हो गये। (१२३)

योगी ऋतध्वज भी तन्वङ्गी चित्राङ्गदा को वहाँ स्थित देख तथा पहचान कर अत्यन्त आनन्दित हुए। (१२४)

तदनन्तर सभी लोग शीघ्र ही देवाधिदेव हाटकेश्वर के समीप गए एवं त्रिलोचन की पूजा कर खड़े होकर स्तुति करने लगे। (१२५)

उन ऋतध्वज आदि को देखकर चित्राङ्गदा ने भी उन कृशाङ्गी (कन्याओं) के साथ उठकर प्रणाम किया। (१२६)

पुत्र सहित उन तपस्वी ने उन्हें आशीर्वाद दिया एवं प्रसन्नतापूर्वक राजाओं सहित सुखपूर्वक बैठ गये। (१२७)

हे सुन्दरी! तदनन्तर गोदावरीतीर्थ में स्नान कर

स्नात्वा गोदावरीतीर्थे दिदृक्षुर्हाटकेश्वरम् ॥ १२८
ततोऽपश्यत् सुतां तन्वीं घृताची शुभदर्शनाम् ।
साऽपि तां मातरं दृष्ट्वा हृष्टाऽभूद्वरवर्णिनी ॥ १२९
ततो घृताची स्वां पुत्रीं परिष्वज्य न्यपीडयत् ।
स्नेहात् सबाष्पनयनां मुहुस्तां परिजिघ्रती ॥ १३०
ततो ऋतध्वजः श्रीमान् कपिं वचनमब्रवीत् ।
गच्छानेतुं गुह्यकं त्वमञ्जनाद्रौ महाञ्जनम् ॥ १३१
पातालादपि दैत्येशं वीरं कन्दरमालिनम् ।
स्वर्गाद् गन्धर्वराजानं पर्जन्यं शीघ्रमानय ॥ १३२
इत्येवमुक्ते मुनिना प्राह देववती कपिम् ।
गालवं वानरश्रेष्ठ इहानेतुं त्वमर्हसि ॥ १३३
इत्येवमुक्ते वचने कपिर्मारुतविक्रमः ।
गत्वाऽञ्जनं समामन्त्र्य जगामामरपर्वतम् ॥ १३४
पर्जन्यं तत्र चामन्त्र्य प्रेषयित्वा महाश्रमे ।
सप्तगोदावरे तीर्थे पातालमगमत् कपिः ॥ १३५
तत्रामन्त्र्य महावीर्यं कपिः कन्दरमालिनम् ।
पातालादभिनिष्क्रम्य महीं पर्यचरज्जवी ॥ १३६
गालवं तपसो योनिं दृष्ट्वा माहिष्मतीमनु ।
समुत्पत्यानयच्छीघ्रं सप्तगोदावरं जलम् ॥ १३७
तत्र स्नात्वा विधानेन संप्राप्तो हाटकेश्वरम् ।
ददर्श नन्दयन्तीं च स्थितां देववतीमपि ॥ १३८
तं दृष्ट्वा गालवं चैव समुत्थायाभ्यवादयत् ।
स चार्चयन्महादेवं महर्षीनभ्यवादयत् ।
ते चापि नृपतिश्रेष्ठास्तं संपूज्य तपोधनम् ॥ १३९
प्रहर्षमतुलं गत्वा उपविष्टा यथासुखम् ।
तेषूपविष्टेषु तदा वानरोपनिमन्त्रिताः ॥ १४०
समायाता महात्मानो यक्षगन्धर्वदानवाः ।
तानागतान् समीक्ष्यैव पुत्र्यस्ताः पृथुलोचनाः ॥ १४१
स्नेहार्द्रनयनाः सर्वास्तदा सस्वजिरे पितॄन् ।
नन्दयन्त्यादिका दृष्ट्वा सपितृका वरानना ॥ १४२

हाटकेश्वर के दर्शन का इच्छुक श्रेष्ठ कपि भी घृताची सहित वहाँ पहुँचा। (१२८)

तदुपरान्त घृताची ने अपनी शुभदर्शना कृशाङ्गी पुत्री को देखा। वह सुन्दरी भी अपनी उस माता को देखकर प्रसन्न हुई। (१२९)

तदनन्तर घृताची ने अपनी पुत्री का गाढ़ आलिङ्गन किया। अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली (अपनी पुत्री) को वह बार बार स्नेह से सूँघने लगी। (१३०)

तत्पश्चात् श्रीमान् ऋतध्वज ने कपि से कहा—तुम महाञ्जन नामक गुह्यक को लाने अञ्जन पर्वत पर जाओ। (१३१)

पाताल से वीर दैत्येश्वर कन्दरमाली को तथा स्वर्ग से गन्धर्वराज पर्जन्य को यहाँ शीघ्र लाओ। (१३२)

मुनि के ऐसा कहने पर देववती ने वानर से कहा—हे कपिश्रेष्ठ ! गालव को भी आप यहाँ लावें। (१३३)

ऐसा कहे जाने पर वायुसदृश पराक्रम वाला कपि अञ्जन पर्वत पर गया एवं (गुह्यक को) आमन्त्रित कर सुमेरु पर्वत पर चला गया। (१३४)

वहाँ उसने पर्जन्य को आमन्त्रित किया एवं सप्तगोदावर तीर्थ में स्थित महाश्रम में उन्हें भेजने के बाद पाताल चला गया। (१३५)

वहाँ महापराक्रमी कन्दरमाली को आमन्त्रित कर वेगवान् वानर पाताल से निकलकर पृथ्वी पर विचरण करने लगा। (१३६)

माहिष्मती के निकट तपोनिधि गालव को देखकर वह उछला एवं शीघ्र उन्हें सप्तगोदावर के जल के निकट ले आया। (१३७)

वहाँ विधिपूर्वक स्नान कर वह हाटकेश्वर के समीप पहुँचा एवं नन्दयन्ती तथा देववती को भी वहाँ बैठी हुई देखा। (१३८)

गालव को देखकर उन सभी ने उठकर उनका अभिवादन किया। उन्होंने भी महादेव की पूजा कर महर्षियों को प्रणाम किया। उन श्रेष्ठ राजाओं ने भी उन तपोधन की पूजा की एवं अत्यन्त प्रसन्न होकर सुखपूर्वक बैठ गये। उनके बैठ जाने पर वानर द्वारा आमन्त्रित यक्ष, गन्धर्व एवं दानव तीनों महात्मा वहाँ आए। उन्हें आया देखते ही उन विशालाक्षी पुत्रियों के नेत्र स्नेहाश्रुपूर्ण हो गये। उन सभी ने अपने अपने पिता का आलिङ्गन किया। नन्दयन्ती आदि को पिता से युक्त हुई देखकर विश्वकर्मा की सुन्दरी पुत्री के नेत्र अश्रुपूर्ण हो

सद्यास्पनयना जाता विश्वकर्मसुता तदा ।
अथ तामाह स मुनिः सत्यं सत्यध्वजो वचः ॥ १४३
मा विषादं कृथाः पुत्रि पिताऽयं तव वानरः ।
सा तद्वचनमाकर्ण्य व्रीडोपहतचेतना ॥ १४४
कथं तु विश्वकर्माऽसौ वानरत्वं गतोऽधुना ।
दुष्पुत्र्यां मयि जातायां तस्मात् त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥ १४५
इति संचिन्त्य मनसा ऋतध्वजमुवाच ह ।
परित्रायस्व मां ब्रह्मन् पापोपहतचेतनाम् ॥ १४६
पितृघ्नी मर्तुमिच्छामि तदनुज्ञातुमर्हसि ।
अथोवाच मुनिस्तन्वीं मा विषादं कृथाधुना ॥ १४७
भाव्यस्य नैव नाशोऽस्ति तन्मा त्याक्षीः कलेवरम् ।
भविष्यति पिता तुभ्यं भूयोऽप्यमरवर्द्धकिः ॥ १४८
जातेऽपत्ये घृताच्यां तु नात्र कार्या विचारणा ।
इत्येवमुक्ते वचने मुनिना भावितात्मना ॥ १४९
घृताची तां समभ्येत्य प्राह चित्राङ्गदां वचः ।
पुत्रि त्यजस्व शोकं त्वं मासैर्दशभिरात्मनः ॥ १५०
भविष्यति पितुस्तुभ्य मत्सकाशान्न संशयः ।
इत्येवमुक्ता संहृष्टा बभौ चित्राङ्गदा तदा ॥ १५१
प्रतीक्षन्ती सुचार्वङ्गी विवाहे पितृदर्शनम् ।
सर्वास्ता अपि तारन्तं कालं सुतनुकन्यकाः ॥ १५२
प्रत्यैक्षन्त विवाहं हि तस्या एव प्रियेप्सया ।
ततो दशसु मासेषु समतीतेष्वथाप्सराः ॥ १५३
तस्मिन् गोदावरीतीर्थे प्रसूता तनयं नलम् ।
जातेऽपत्ये कपित्वाच्च विश्वकर्माप्यमुच्यत ॥ १५४
समभ्येत्य प्रिया पुत्रीं पर्यष्वजत चादरात् ।
ततः प्रीतेन मनसा सस्मार सुरवर्द्धकिः ॥ १५५
सुराणामधिपं शक्रं सहैव सुरकिन्नरैः ।
त्वष्ट्राऽथ सस्मृतः शक्रो मरुद्गणवृतस्तदा ॥ १५६
सुरैः सरुद्रैः संप्राप्तस्तत्तीर्थं हाटकाह्वयम् ।
समायातेषु देवेषु गन्धर्वेष्वप्सरस्सु च ॥ १५७
इन्द्रद्युम्नो मुनिश्रेष्ठमृतध्वजमुवाच ह ।
जाबालेर्दीयतां ब्रह्मन् सुताकन्दरमालिनः ॥ १५८
गृह्णातु विधिवत् पाणिं दैतेय्यास्तनयस्तव ।
नन्दयन्तीं च शकुनिः परिणेतुं स्वरूपवान् ॥ १५९

गये। तदनन्तर ऋतध्वज मुनि ने उससे सत्यवचन कहा। (१३६-१४३)

हे पुत्री! विषाद मत करो। यह वानर तुम्हारा पिता है। उस वचन को सुनकर वह लज्जित हो गई। (१४४)

क्योंकि मुझ कुपुत्री के उत्पन्न होने से ये विश्वकर्मा इस समय वानर हो गये हैं अत मैं शरीर का त्याग करूँगी। (१४५)

मन में ऐसा विचार कर उसने ऋतध्वज से कहा—हे ब्रह्मन्! मुझ पाप के कारण नष्ट बुद्धिवाली का आप परित्राण करें। मैं पितृघातिनी मरना चाहती हूँ। अत आप अनुमति दें। तब मुनि ने उस कृशाङ्गी से कहा—अब विषाद मत करो। (१४६-१४७)

भावी का नाश नहीं होता। अत शरीर का त्याग मत करो। घृताची के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हो जाने पर तुम्हार पिता पुन देवताओं के शिल्पी हो जायेंगे। इसमें सन्देह नहीं। सयतचित्त मुनि के ऐसा कहने पर घृताची ने चित्राङ्गदा के समीप जाकर उससे कहा—हे पुत्री! तुम शोक छोड़ दो। निस्सन्देह दस महीनों में तुम्हारे पिता द्वारा मुझ से एक पुत्र उत्पन्न होगा। ऐसा कहे जाने पर चित्राङ्गदा प्रसन्न हो गई। (१४८-१५१)

सुन्दरी (चित्राङ्गदा) अपने विवाह मे मिलने वाले पिता के दर्शन की प्रतीक्षा करने लगी। वे सुन्दरी कन्यायें भी प्रिय की प्राप्ति की कामना से उनके ही विवाह के समय की प्रतीक्षा करने लगीं। दस मास व्यतीत हो जाने पर अप्सरा ने उस गोदावरीतीर्थ में नल नामक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र उत्पन्न हो जाने पर विश्वकर्मा भी कपित्व से मुक्त हो गये। (१५२-१५४)

अपनी प्रिय पुत्री के समीप जाकर उन्होंने उसका आदरपूर्वक आलिङ्गन किया। तदन्तर प्रसन्न मन से देव शिल्पी ने देवताओं एव किन्नरों सहित सुराधिप इन्द्र का स्मरण किया। त्वष्टा के स्मरण करने पर इन्द्र मरुद्गणों, देवों एव रुद्रों के साथ हाटक नामक तीर्थ में आये। देवताओं, गन्धर्वों और अप्सराओं के आने पर इन्द्रद्युम्न ने मुनिश्रेष्ठ ऋतध्वज से कहा—हे ब्रह्मन्! जाबालि को कन्दरमाली की कन्या प्रदान करें। आपका पुत्र विधिवत् दैत्यनन्दिनी का पाणिग्रहण करे। स्वरूपवान् शकुनि नन्दयन्ती से विवाह करें। (१५५-१५९)

ममेयं वेदवत्यस्तु त्वाष्ट्रेयी सुरथस्य च ।
बाढमित्यब्रवीद्‌हृष्टो मुनिर्मनुसुतं नृपम् ॥ १६०
ततोऽनुचक्रुः संहृष्टा विवाहविधिमुत्तमम् ।
ऋत्विजोऽभूद् गालवस्तु हुत्वा हव्यं विधानतः॥१६१
गायन्ते तत्र गन्धर्वा नृत्यन्तेऽप्सरसस्तथा ।
आदौ जाबालिनः पाणिर्गृहीतो दैत्यकन्यया ॥ १६२
इन्द्रद्युम्नेन तदनु वेदवत्या विधानतः ।
ततः शकुनिना पाणिर्गृहीतो यक्षकन्यया ॥ १६३
चित्राङ्गदायाः कल्याणि सुरथः पाणिमग्रहीत् ।
एवं क्रमाद् विवाहस्तु निर्वृत्तस्तनुमध्यमे ॥ १६४
वृत्ते मुनिर्विवाहे तु शक्रादीन् प्राह दैवतान् ।
अस्मिंस्तीर्थे भवद्भिस्तु सप्तगोदावरे सदा ॥ १६५
स्थेयं विशेषतो मासमिमं माधवमुत्तमम् ।
बाढमुक्त्वा सुराः सर्वे जग्मुर्हृष्टा दिवं क्रमात् ॥ १६६
मुनयो मुनिमादाय सपुत्रं जग्मुरादरात् ।
भार्याश्चादाय राजानः स्वं स्वं नगरमागताः ॥ १६७
प्रहृष्टाः सुखिनस्तस्थुः भुञ्जते विषयान् प्रियान् ।
चित्राङ्गदायाः कल्याणि एवं वृत्तं पुरा किल ।
तन्मां कमलपत्राक्षि भजस्व ललनोत्तमे ॥ १६८

इत्येवमुक्त्वा नरदेवसूनु-
स्तां भूमिदेवस्य सुतां वरोरुम् ।
स्तुवन्मृगाक्षीं मृदुना क्रमेण
सा चापि वाक्यं नृपतिं बभाषे ॥ १६९

इति श्रीवामनपुराणे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

यह वेदवती मेरी तथा त्वष्टा (विश्वकर्मा) की पुत्री (चित्राङ्गदा) सुरथ की पत्नी हो। मुनि ने मनुपुत्र राजा से कहा—ठीक है। (१६०)

तदनन्तर उन लोगों ने आनन्दपूर्वक भलीभाँति विवाह की विधि को सम्पन्न किया। विधिपूर्वक हव्य का हवन कर गालव ऋत्विक् बने। (१६१)

उस समय वहाँ गन्धर्वों ने गाना गाया और अप्सराओं ने नृत्य किया। सर्व प्रथम दैत्यकन्या ने जाबालि का पाणिग्रहण किया। (१६२)

हे कल्याणी! तदनन्तर इन्द्रद्युम्न ने विधिपूर्वक वेदवती का, शकुनि ने यक्ष-कन्या का तथा सुरथ ने चित्राङ्गदा का पाणिग्रहण किया। हे कृशोदरी! इस प्रकार क्रम से विवाहकार्य पूर्ण हुआ। (१६३-१६४)

विवाहकार्य सम्पन्न हो जाने पर मुनि (ऋतध्वज) ने इन्द्र आदि देवताओं से कहा—इस सप्तगोदावरतीर्थ में आप लोग सदा निवास करें। विशेष रूप से इस उत्तम वैशाख मास में आप लोग यहाँ अवश्य रहें। देवता लोग 'ऐसा ही हो' यह कर आनन्द से स्वर्ग चले गये। (१६५-१६६)

मुनिलोग पुत्र-सहित मुनि (ऋतध्वज) को सम्मान के साथ लेकर चले गये। राजा लोग भी अपनी-अपनी पत्नी लेकर अपने नगर में आ गये। (१६७)

सभी लोग प्रिय विषय का उपभोग करते हुए सुख पूर्वक रहने लगे। हे कल्याणि! चित्राङ्गदा का पूर्व वृत्तान्त इस प्रकार का है। अतः हे कमलनयना ललनोत्तमा! तुम मुझे स्वीकार करो। (१६८)

ऐसा कहकर राजपुत्र (दण्ड) ब्राह्मण की उस सुन्दरी मृगाक्षी पुत्री की कोमलवाणी से स्तुति करने लगे। उसने भी राजा से कहा। (१६९)

श्रीवामनपुराण में उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

अरजा उवाच।
नात्मानं तव दास्यामि बहुनोक्तेन किं तव।
रक्षन्ती भवतः शापादात्मानं च महीपते ॥ १
प्रह्लाद उवाच।
इत्थं विवदमानां तां भार्गवेन्द्रसुतां बलात्।
कामोपहतचित्तात्मा व्यध्वंसयत मन्दधीः ॥ २
तां कृत्वा च्युतचारित्रां मदान्धः पृथिवीपतिः।
निश्चक्रामाश्रमात् तस्माद् गतश्च नगरं निजम् ॥ ३
साऽपि शुक्रसुता तन्वी अरजा रजसाप्लुता।
आश्रमादथ निर्गत्य बहिस्तस्थावधोमुखी ॥ ४
चिन्तयन्ती स्वपितरं रुदती च मुहुर्मुहुः।
महाग्रहोपतप्तेव रोहिणी शशिनः प्रिया ॥ ५
ततो बहुतिथे काले समाप्ते यज्ञकर्मणि।
पातालादागमच्छुक्रः स्वमाश्रमपदं मुनिः ॥ ६
आश्रमान्ते च ददृशे सुतां दैत्य रजस्वलाम्।
मेघलेखामिवाकाशे संध्यारागेण रञ्जिताम् ॥ ७
तां दृष्ट्वा परिपप्रच्छ पुत्रि केनासि धर्षिता।
कः क्रीडति सरोषेण सममाशीविषेण हि ॥ ८
कोऽद्यैव याम्यां नगरीं गमिष्यति सुदुर्मतिः।
यस्त्वां शुद्धसमाचारां विध्वंसयति पापकृत् ॥ ९
ततः स्वपितरं दृष्ट्वा कम्पमाना पुनः पुनः।
रुदन्ती व्रीडयोपेता मन्दं मन्दमुवाच ह ॥ १०
तव शिष्येण दण्डेन वार्यमाणेन चासकृत्।
बलादनाथा रुदती नीताऽहं वचनीयताम् ॥ ११
एतत् पुत्र्या वचः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ १२
यस्मात् तेनाविनीतेन मत्तो ह्यभयमुत्तमम्।
गौरवं च तिरस्कृत्य च्युतधर्माऽरजा कृता ॥ १३
तस्मात् सराष्ट्रः सबलः सभृत्यो वाहनैः सह।

४०

अरजा ने कहा—हे महीपति! आपके अधिक कहने से क्या होगा? (पिता के) शाप से आपकी एवं अपनी रक्षा करती हुई मैं आपको आत्मदान नहीं करूँगी। (१)

प्रह्लाद ने कहा—कामान्ध उस मूर्ख ने इस प्रकार विवाद करती हुई शुक्र की उस पुत्री को बलपूर्वक भ्रष्ट कर दिया। (२)

मदान्ध राजा उसका चरित्र भ्रष्ट कर उस आश्रम से निकल कर अपने नगर चला गया। (३)

तदनन्तर रज से आप्लुत वह तन्वङ्गी शुक्रसुता अरजा भी आश्रम से निकलकर नीचा मुख किये हुए बाहर बैठ गई। (४)

महाग्रह से उपतप्त चन्द्र प्रिया रोहिणी के सदृश वह अपने पिता का चिन्तन करती हुई बारम्बार रोने लगी। (५)

तदनन्तर बहुत समय के बाद यज्ञ समाप्त होने पर शुक्रमुनि पाताल से अपने आश्रम में आये। (६)

हे दैत्य! उन्होंने आश्रम से बाहर आकाश में सन्ध्याकालीन लालिमा से रञ्जित मेघ माला की तरह अपनी रजस्वला पुत्री को देखा। (७)

उसे देखकर उन्होंने पूछा—हे पुत्री! किसने तुम्हारा धर्षण किया है? रोषयुक्त सर्प से कौन क्रीडा कर रहा है। (८)

शुद्ध-चारित्र्यसम्पन्न तुम्हें भ्रष्ट कर कौन दुर्मति पापी आज ही यम पुरी जाने वाला है? (९)

तदनन्तर अपने पिता को देखकर बारम्बार काँपती एवं रोती हुई लज्जायुक्त अरजा ने धीरे धीरे कहा— (१०)

बार-बार मना करने पर भी आपके शिष्य दण्ड ने रोती हुई मुझ अनाथा को बल पूर्वक कलङ्कित किया। (११)

पुत्री का यह वाक्य सुनकर शुक्राचार्य के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने आचमन कर शुद्ध होकर यह वचन कहा— (१२)

क्योंकि उस अविनीत ने मुझसे प्राप्त उत्तम अभय एवं गौरव को तिरस्कृत कर अरजा को धर्मभ्रष्ट किया है अतः

सप्तरात्रान्तराद् भस्म ग्रावदृष्ट्या भविष्यति ॥ १४
इत्येवमुक्त्वा मुनिपुंगवोऽसौ
शप्त्वा स दण्डं स्वसुतामुवाच ।
त्वं पापमोक्षार्थमिहैव पुत्रि
तिष्ठस्व कल्याणि तपश्चरन्ती ॥ १५
शप्त्वेत्थं भगवान् शुक्रो दण्डमिक्ष्वाकुनन्दनम् ।
जगाम शिष्यसहितः पातालं दानवालयम् ॥ १६
दण्डोऽपि भस्मसाद् भूतः सराष्ट्रबलवाहनः ।
महता ग्राववर्षेण सप्तरात्रान्तरे तदा ॥ १७
एवं तद्दण्डकारण्यं परित्यजन्ति देवताः ।
आलयं राक्षसानां तु कृतं देवेन शंभुना ॥ १८
एवं परकलत्राणि नयन्ति सुकृतीनपि ।
भस्मभूतान् प्राकृतांस्तु महान्तं च पराभवम् ॥ १९
तस्मादन्धक दुर्बुद्धिर्न कार्या भवता त्वियम् ।
प्राकृताऽपि दहेन्नारी किमुताद्रिनन्दिनी ॥ २०

वह सात रात्रियों में उपलवृष्टि के कारण राष्ट्र, सेना, भृत्य एवं वाहनों सहित विनष्ट हो जायेगा। (१३-१४)

उन मुनिश्रेष्ठ ने ऐसा कहकर दण्ड को शाप देने के उपरान्त अपनी पुत्री से कहा—हे पुत्री! हे कल्याणी! पाप से मुक्त होने के लिए तुम तप करती हुई यहीं रहो। (१५)

भगवान् शुक्र इक्ष्वाकुनन्दन दण्ड को इस प्रकार शाप देकर शिष्य के साथ दानवों के निवास स्थान पाताल में चले गये। (१६)

तदनन्तर दण्ड भी महती उपलवृष्टि के द्वारा सात-रात्रियों के भीतर अपने राज्य, सेना, और वाहनों के साथ नष्ट हो गया। (१७)

इसी से देवताओं ने दण्डकारण्य का परित्याग कर दिया एवं शम्भु ने उसे राक्षसों का स्थान बना दिया। (१८)

इस प्रकार परस्त्रियाँ सुकृतियों को भी भस्मीभूत कर देती हैं। सामान्य मनुष्य तो महान पराभव प्राप्त करते हैं। (१९)

अतः हे अन्धक! आपको ऐसी दुर्बुद्धि नहीं करनी चाहिए। साधारण स्त्री भी जला सकती है तो पार्वती का क्या कहना (२०)

शंकरोऽपि न दैत्येश शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।
द्रष्टुमप्यमितौजस्कः किमु योधयितुं रणे ॥ २१

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्ते वचने क्रुद्धस्ताम्रेक्षणः श्वसन् ।
वाक्यमाह महातेजाः प्रह्लादं चान्धकासुरः ॥ २२
किं ममासौ रणे योद्धुं शक्तस्त्रिणयनोऽसुर ।
एकाकी धर्मरहितो भस्मारुणितविग्रहः ॥ २३
नान्धको बिभियादिन्द्रान्नामरेभ्यः कथंचन ।
स कथं वृषपत्राक्षाद् बिभेति स्त्रीमुखेक्षकाद् ॥ २४
तच्छ्रुत्वाऽस्य वचो घोरं प्रह्लादः प्राह नारद ।
न सम्यगुक्तं भवता विरुद्धं धर्मतोऽर्थतः ॥ २५
हुताशनपतङ्गाभ्यां सिंहक्रोष्टुकयोरिव ।
गजेन्द्रमशकाभ्यां च रुक्मपाषाणयोरिव ॥ २६
एतेषामेभिरुदितं यावदन्तरमन्धक ।
तावदेवान्तरं चास्ति भवतो वा हरस्य च ॥ २७

हे दैत्येश्वर! सुर या असुर कोई भी महादेव को जीत नहीं सकता। जब अमित ओजस्वी शंकर को रण में देखा भी नहीं जा सकता तो उनसे युद्ध करना कैसे सम्भव है? (२१)

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा वचन कहने पर क्रुद्ध एवं रक्तनेत्र महातेजस्वी अन्धकासुर ने दीर्घ श्वास लेते हुए प्रह्लाद से (यह) वाक्य कहा— (२२)

हे असुर! क्या भस्मलिप्त शरीर वाला धर्म रहित एकाकी वह त्रिलोचन संग्राम में मुझसे युद्ध कर सकता है? (२३)

जो अन्धक इन्द्र या (अन्य) देवताओं से कभी भयभीत नहीं होता वह वृषवाहन एवं स्त्री का मुख देखने वाले त्रिनेत्र से कैसे डर सकता है? (२४)

हे नारद! उसके उस घोर वचन को सुनकर प्रह्लाद ने कहा—आप ने यह ठीक नहीं कहा है। आपका कथन धर्म एवं अर्थ के विरुद्ध है। (२५)

हे अन्धक! अग्नि एवं पतङ्ग, सिंह एवं शृगाल, गजेन्द्र एवं मशक तथा स्वर्ण एवं पाषाण में जितना अन्तर कहा जाता है उतना ही अन्तर आप और शङ्कर के मध्य है। (२६-२७)

वारितोऽसि मया वीर भूयो भूयश्च वार्यसे ।
शृणुष्व वाक्यं देवर्षेरसितस्य महात्मनः ॥ २८

यो धर्मशीलो जितमानरोषो
विद्याविनीतो न परोपतापी ।
स्वदारतुष्टः परदारवर्जी
न तस्य लोके भयमस्ति किंचित् ॥ २९

यो धर्महीनः कलहप्रियः सदा
परोपतापी श्रुतिशास्त्रवर्जितः ।
परार्थदारेप्सुरवर्णसंगमी
सुखं न विन्देत परत्र चेह ॥ ३०

धर्मान्वितोऽभूद् भगवान् प्रभाकरः
संत्यक्तरोषश्च मुनिः स वारुणिः ।
विद्याऽन्वितोऽभून्मनुरर्कपुत्रः
स्वदारसंतुष्टमनास्त्वगस्त्यः ॥ ३१

एतानि पुण्यानि कृतान्यमीभि-
र्मया निबद्धानि कुलक्रमोक्त्या ।
तेजोन्विताः शापवरक्षमाश्च
जाताश्च सर्वे सुरसिद्धपूज्याः ॥ ३२

अधर्मयुक्तोऽङ्गसुतो बभूव
विशुश्च नित्यं कलहप्रियोऽभूत् ।
परोपतापी नमुचिर्दुरात्मा
परावलेप्सुर्नहुषश्च राजा ॥ ३३

परार्थलिप्सुर्दितिजो हिरण्यदृक्
मूर्खस्तु तस्याप्यनुजः सुदुर्मतिः ।
अवर्णसंगी यदुरुत्तमौजा
एते विनष्टास्त्वनयात् पुरा हि ॥ ३४

तस्माद् धर्मो न संत्याज्यो धर्मो हि परमा गतिः ।
धर्महीना नरा यान्ति रौरवं नरकं महत् ॥ ३५
धर्मस्तु गदितः पुंभिस्तारणे दिवि चेह च ।
पतनाय तथाऽधर्म इह लोके परत्र च ॥ ३६
त्याज्यं धर्मान्वितैर्नित्यं परदारोपसेवनम् ।
नयन्ति परदारा हि नरकानेकविंशतिम् ॥
सर्वेषामपि वर्णानामेष धर्मो ध्रुवोऽन्धक ॥ ३७
परार्थपरदारेषु यदा वाञ्छां करिष्यति ।

हे वीर ! आपको मैंने रोका है एवं बार-बार रोक रहा हूँ। आप देवर्षि असित का वचन सुनें। (२८)

जो व्यक्ति धर्मशील, अभिमान एवं क्रोध को जीतने वाला, विद्या से विनीत, किसी को दुःख न देने वाला, अपनी पत्नी में सन्तुष्ट तथा परस्त्री का वर्जन करने वाला होता है उसे संसार में कोई भय नहीं होता। (२९)

जो व्यक्ति धर्महीन, कलहप्रिय, सदा दूसरों को दुःख देने वाला, वेद-शास्त्र रहित, दूसरे के धन और स्त्री की इच्छा रखने वाला, तथा भिन्न वर्ण के साथ संसर्ग करने वाला होता है, वह इस लोक और परलोक में सुख नहीं प्राप्त करता। (३०)

भगवान् भास्कर धर्मयुक्त थे, महर्षि वारुणि (वशिष्ठ) क्रोधत्यागी थे, सूर्यपुत्र मनु विद्यावान् थे एवं अगस्त्य ऋषि अपनी पत्नी में सन्तुष्ट थे। (३१)

मैंने कुल के क्रमानुसार इन पुण्य करने वालों का उल्लेख किया है। शाप एवं वर देने में समर्थ ये सभी तेजस्वी लोग देवताओं और सिद्धों के पूजनीय हुए। (३२)

अङ्ग-पुत्र (वेन) अधर्म युक्त था, विशु नित्य कलहप्रिय था, दुरात्मा नमुचि दूसरे को संताप देने वाला था एवं राजा नहुष दूसरे की स्त्री प्राप्त करना चाहता था। (३३)

दिति पुत्र हिरण्याक्ष परधन का लोभी था, उसका अनुज दुर्मति एवं मूर्ख था एवं पराक्रमी यदु भिन्न-वर्ण के साथ संसर्ग करने वाला था। ये सभी पूर्वकाल में दुर्नीति के कारण नष्ट हो गये। (३४)

इसलिए धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्म ही परम गति है। धर्महीन मनुष्य महान् रौरव नरक में जाते हैं। (३५)

मनुष्यों ने धर्म को लोक तथा परलोक पार करने वाला बताया है तथा अधर्म को इस लोक और परलोक में पतन का कारण बताया है। (३६)

धार्मिक व्यक्तियों को परस्त्री-सेवन सदैव त्याज्य बताया है। परस्त्रियाँ इक्कीस नरकों में ले जाती हैं। हे अन्धक ! सभी वर्णों के लिए यह निश्चित धर्म है। (३७)

जो मनुष्य परधन और परस्त्री में इच्छा करता है वह

स याति नरकं घोरं रौरवं बहुलाः समाः ॥ ३८
एवं पुराऽसुरपते देवर्षिरसितोऽव्ययः ।
प्राह धर्मव्यवस्थानं खगेन्द्रायारुणाय हि ॥ ३९
तस्मात् सुदूरतो वर्जेत् परदारान् विचक्षणः ।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ॥ ४०
पुलस्त्य उवाच ।
इत्येवमुक्ते वचने प्रह्लादं प्राह चान्धकः ।
भवान् धर्मपरस्त्वेको नाहं धर्मं समाचरे ॥ ४१
इत्येवमुक्त्वा प्रह्लादमन्धकः प्राह शम्बरम् ।
गच्छ शम्बर शैलेन्द्रं मन्दरं वद शंकरम् ॥ ४२
भिक्षो किमर्थं शैलेन्द्रं स्वर्गोपम्यं सकन्दरम् ।
परिभुञ्जसि केनाद्य तव दत्तो वदस्व माम् ॥ ४३
तिष्ठन्ति शासने मह्य देवाः शक्रपुरोगमाः ।
तत् किमर्थं निवससे मामनादृत्य मन्दरे ॥ ४४
यदीष्टस्तव शैलेन्द्रः क्रियतां वचनं मम ।
येयं हि भवतः पत्नी सा मे शीघ्रं प्रदीयताम् ॥ ४५
इत्युक्तः स तदा तेन शम्बरो मन्दरं द्रुतम् ।
जगाम तत्र यत्रास्ते सह देव्या पिनाकधृक् ॥ ४६
गत्वोवाचान्धकवचो याथातथ्यं दनोः सुतः ।
तमुत्तरं हरः प्राह शृण्वत्या गिरिकन्यया ॥ ४७
ममायं मन्दरो दत्तः सहस्राक्षेण धीमता ।
तन्न शक्नोम्यहं त्यक्तुं विनाज्ञां वृत्रवैरिणः ॥ ४८
यच्चाब्रवीद् दीयतां मे गिरिपुत्रीति दानवः ।
तदेषा यातु स्वं कामं नाहं वारयितुं क्षमः ॥ ४९
ततोऽब्रवीत् गिरिसुता शम्बरं मुनिसत्तम ।
ब्रूहि गत्वान्धकं वीर मम वाक्यं विपश्चितम् ॥ ५०
अहं पताका संग्रामे भवानीशश्च देविनौ ।
प्राणद्यूतं परिस्तीर्य यो जेष्यति स लप्स्यते ॥ ५१
इत्येवमुक्तो मतिमान् शम्बरोऽन्धकमागमत् ।
समागम्याब्रवीद् वाक्यं शर्वगौर्योश्च भाषितम् ॥ ५२

घोर रौरव नरक में बहुत वर्षों के लिये चला जाता है। (३८)

हे राक्षसराज! प्राचीन काल में महात्मा देवर्षि असित ने गरुड तथा अरुण से यह धर्म व्यवस्था कही थी। (३९)

अतः बुद्धिमान् मनुष्य परस्त्रियों का दूर से ही परित्याग कर दे। क्योंकि निकृष्ट बुद्धि वाले मनुष्यों को परस्त्रियाँ पराभव को प्राप्त कराती हैं। (४०)

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा वचन कहने पर अन्धक ने प्रह्लाद से कहा कि आप अकेले धार्मिक हैं। मैं धर्म का आचरण नहीं करता। (४१)

प्रह्लाद से ऐसा कहकर अन्धक ने शम्बर से कहा—हे शम्बर! तुम मन्दर पर्वत पर जाओ और शंकर से कहो— (४२)

हे भिक्षुक! तुम गुफाओं से युक्त तथा स्वर्ग तुल्य मन्दर पर्वत का उपभोग क्यों कर रहे हो? मुझे बतलाओ कि इसे तुमको किसने दिया है? (४३)

इन्द्रादि समस्त देवता मेरा शासन मानते हैं। अतः तुम मेरी अवज्ञा करके इस मन्दर पर्वत पर कैसे रह रहे हो? (४४)

यदि यह शैलेन्द्र तुम्हें प्रिय है तो मेरे कथन के अनुसार कार्य करो। तुम्हारी जो यह पत्नी है उसे मुझे शीघ्र दे दो। (४५)

उसके ऐसा कहने पर शम्बर शीघ्रता पूर्वक उस मन्दर पर्वत पर गया जहाँ पिनाकपाणि शंकर देवी के साथ निवास करते थे। (४६)

दनुपुत्र ने वहाँ जाकर यथावत् अन्धक का वचन कहा। शङ्कर ने पर्वतनन्दिनी के सुनते हुए उसे उत्तर दिया। (४७)

बुद्धिमान् इन्द्र ने मुझे यह मन्दर पर्वत दिया है। अतः वृत्रासुर वैरी इन्द्र की आज्ञा बिना मैं इसे नहीं छोड़ सकता। (४८)

दानव ने जो यह कहा कि गिरिनन्दिनी को मुझे दे दो, तो ये अपनी इच्छा से जा सकती हैं। मैं इन्हें नहीं रोक सकता। (४९)

हे मुनिसत्तम! तदनन्तर गिरिसुता पार्वती ने शम्बर से कहा—हे वीर! तुम जाकर बुद्धिमान् अन्धक से मेरी बात कहो— (५०)

संग्राम में मैं पताका हूँ। आप और शङ्कर खेलने वाले हैं। प्राणों का द्यूत फैलाकर जो जीतेगा वह मुझे प्राप्त करेगा। (५१)

ऐसा कहने पर बुद्धिमान् शम्बर अन्धक के

तच्छ्रुत्वा दानवपतिः क्रोधदीप्तेक्षणः श्वसन् ।
समाहूयाब्रवीद् वाक्यं दुर्योधनमिदं वचः ॥ ५३
गच्छ शीघ्रं महाबाहो भेरीं सान्नाहिकीं दृढाम् ।
ताडयस्व सुविश्रब्ध दुःशीलामिव योषितम् ॥ ५४
समादिष्टोऽन्धकेनाथ भेरीं दुर्योधनो बलात् ।
ताडयामास वेगेन यथाप्राणेन भूयसा ॥ ५५
सा ताडिता बलवता भेरी दुर्योधनेन हि ।
सत्वरं भैरवं रावं रुराव सुरभी यथा ॥ ५६
तस्यास्तं स्वरमाकर्ण्य सर्व एव महासुराः ।
समायाताः सभां तूर्णं किमेतदिति वादिनः ॥ ५७
याथातथ्यं च तान् सर्वानाह सेनापतिर्बली ।
ते चापि बलिना श्रेष्ठाः सन्नद्धा युद्धकाङ्क्षिणः ॥ ५८
सहान्धका निर्ययुस्ते गजैरुष्ट्रैर्हयै रथैः ।
अन्धको रथमास्थाय पञ्चनल्वप्रमाणतः ॥ ५९
त्र्यम्बकं स पराजेतुं कृतबुद्धिर्विनिर्ययौ ।
जम्भः कुजम्भो हुण्डश्च तुहुण्डः शम्बरो बलिः ॥ ६०
बाणः कार्तस्वरो हस्ती सूर्यशत्रुर्महोदरः ।
अयःशङ्कुः शिविः शाल्वो वृषपर्वा विरोचनः ॥ ६१
हयग्रीवः कालनेमिः संह्लादः कालनाशनः ।
शरभः शलभश्चैव विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥ ६२
दुर्योधनश्च पाकश्च विपाकः कालशम्बरौ ।
एते चान्ये च बहवो महावीर्या महाबलाः ।
प्रजग्मुरुत्सुका योद्धुं नानायुधधरा रणे ॥ ६३

इत्थं दुरात्मा दनुमैन्यपाल-
स्तदान्धको योद्धुमना हरेण ।
महाचलं मन्दरमभ्युपेयिवान्
स कालपाशावसितो हि मन्दधीः ॥ ६४

इति श्रीवामनपुराणे चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४० ॥

समीप गया एव शङ्कर तथा गौरी की कही हुई बात को उससे कहा। (५२)

उसे सुनकर दानवपति के नेत्र क्रोध से दीप्त हो गये। दीर्घ श्वाँस लेते हुए दुर्योधन को बुलाकर उसने कहा— (५३)

हे महाबाहु! शीघ्र जाओ एव दुश्चरित्रा स्त्री के सदृश दृढ़ सग्रामिकी भेरी को भली भाँति बजाओ। (५४)

तदनन्तर अन्धक से आदेश प्राप्त कर दुर्योधन अत्यन्त बल, प्राण एव वेग पूर्वक भेरी को बजाने लगा। (५५)

बलवान् दुर्योधन द्वारा ताडित भेरी सुरभी के शब्द सदृश शीघ्र भयङ्कर शब्द करने लगी। (५६)

उसके उस स्वर को सुनकर सभी महान असुर 'यह क्या है?' ऐसा कहते हुए शीघ्रता से सभा मे आ गये। (५७)

बलवान् सेनापति ने उन सभी से यथार्थ तथ्य कहा। बलवानों में श्रेष्ठ वे सभी युद्ध की आकाक्षा से तैयार हो गये। (५८)

हाथी, ऊँट, घोड़ों और रथों सहित वे सभी अन्धक के साथ बाहर निकले। पाँच नल्व—अर्थात् ४०० हाथके प्रमाण वाले रथ पर आरूढ होकर अन्धक त्रिलोचन शकर को जीतने का निश्चय कर बाहर निकला। जम्भ, कुजम्भ, हुण्ड, तुहुण्ड, शम्बर, बलि, बाण, कार्तस्वर, हस्ती, सूर्यशत्रु, महोदर अयःशङ्कु, शिवि, शाल्व, वृषपर्वा, विरोचन, हयग्रीव, कालनेमि, सह्लाद, कालनाशन, शरभ, शलभ, वीर्यवान् विप्रचित्ति, दुर्योधन, पाक, विपाक, काल एव शम्बर—ये सभी तथा अन्य अनेक महावीर्यशाली तथा महाबलवान् राक्षस नाना प्रकार के आयुधों को धारणकर उत्सुकता पूर्वक सग्राम मे लड़ने के लिए चल पड़े। (५९-६३)

इस प्रकार काल-पाश से आबद्ध वह मन्दबुद्धि दनु सैन्यपति दुरात्मा अन्धक शङ्कर से युद्ध करने के विचार से महापर्वत मन्दर पर गया। (६४)

श्रीवामनपुराण में चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

४१

पुलस्त्य उवाच ।

हरोऽपि शम्बरे याते समाहूयाथ नन्दिनम् ।
प्राहामन्त्रय शैलादे ये स्थितास्तव शासने ॥ १
ततो महेशवचनान्नन्दी तूर्णतरं गतः ।
उपस्पृश्य जलं श्रीमान् सस्मार गणनायकान् ॥ २
नन्दिना संस्मृताः सर्वे गणनाथाः सहस्रशः ।
समुत्पत्य त्वरायुक्ताः प्रणतास्त्रिदशेश्वरम् ॥ ३
आगतांश्च गणान्नन्दी कृताञ्जलिपुटोऽव्ययः ।
सर्वान् निवेदयामास शंकराय महात्मने ॥ ४

नन्द्युवाच ।

यानेतान् पश्यसे शंभो त्रिनेत्राञ्जटिलाञ्शुचीन् ।
एते रुद्रा इति ख्याताः कोट्य एकादशैव तु ॥ ५
वानरास्यान् पश्यसे यान् शार्दूलसमविक्रमान् ।
एतेषां द्वारपालास्ते मन्नामानो यशोधनाः ॥ ६
षण्मुखान् पश्यसे यांश्च शक्तिपाणीञ्शिखिध्वजान् ।
षट् च षष्टिस्तथा कोट्यः स्कन्दनाम्नः कुमारकान् ॥ ७
एतावत्यस्तथा कोट्यः शाखा नाम षडाननाः ।
विशाखास्तावदेवोक्ता नैगमेयाश्च शंकर ॥ ८
सप्तकोटिशतं शंभो अमी वै प्रमथोत्तमाः ।
एकैकं प्रति देवेश तावत्यो ह्यपि मातरः ॥ ९
भस्मारुणितदेहाश्च त्रिनेत्राः शूलपाणयः ।
एते शैवा इति प्रोक्तास्तव भक्ता गणेश्वराः ॥ १०
तथा पाशुपताश्चान्ये भस्मप्रहरणा विभो ।
एते गणास्त्वसंख्याताः सहायार्थं समागताः ॥ ११
पिनाकधारिणो रौद्रा गणाः कालमुखापरे ।
तव भक्ताः समायाता जटामण्डलिनोऽद्भुताः ॥ १२
खट्वाङ्गयोधिनो वीरा रक्तचर्मसमावृताः ।
इमे प्राप्ता गणा योद्धुं महाव्रतिन उत्तमाः ॥ १३

४१

पुलस्त्य ने कहा—शम्बर के चले जाने पर शङ्कर ने भी नन्दी को बुलाकर कहा—हे नन्दी ! तुम्हारे शासन में जो रहते हैं उन्हें बुलाओ । (१)

तदनन्तर महेश के कहने से नन्दी अतिशीघ्र गए और जल का आचमन कर गणनायकों का स्मरण किया । (२)

नन्दी से स्मरण किये गए सभी गणनाथ सहस्रों की सख्या मे शीघ्रता पूर्वक आकर त्रिदशेश्वर शकर को प्रणाम किये । (३)

हाथ जोड़कर अविनाशी नन्दी ने सभी आये हुए गणों को महात्मा शङ्कर से निवेदित किया । (४)

नन्दी ने कहा—हे शम्भो ! तीन नेत्रों वाले, जटा धारी एव पवित्र जिन गणों को आप देख रहे हैं उन्हें रुद्र कहते हैं । इनकी सख्या ग्यारह कोटि है । (५)

वानर सदृश मुख एव सिंह तुल्य विक्रम सम्पन्न जिन्हें आप देख रहे है वे मेरा नाम धारण करने वाले यशस्वी इनके द्वारपाल हैं । (६)

हाथ में शक्ति लिए, मयूरध्वज वाले जिन छ मुख वालों को आप देख रहे हैं वे स्कन्द नामक कुमार हैं । इनकी सख्या छासठ करोड है । (७)

हे शङ्कर ! इतने ही षण्मुखधारी शाख नामक गण हैं एव उतने ही विशाख और नैगमेय नामक गण हैं । (८)

हे शम्भो ! इन उत्तम प्रमथों की सख्या सात सौ करोड़ है । हे देवेश ! प्रत्येक के साथ उतनी ही मातृकाएँ भी हैं । (९)

इन भस्म भूषित देहवाले शूलपाणि त्रिनेत्रधारियों को शैव कहा जाता है । ये सभी गणेश्वर आपके भक्त हैं । (१०)

हे विभो ! भस्मास्त्रधारी अन्य असख्य पाशुपत गण सहायतार्थ आये हैं । (११)

पिनाकधारी, जटामण्डल युक्त, भयङ्कर कालमुख नामक आपके अन्य गण आये हैं । (१२)

खट्वाङ्ग से युद्ध करने वाले, लाल ढाल से युक्त महाव्रती नामक ये उत्तम गण युद्ध करने आये हैं । (१३)

दिग्वाससो मौनिनश्च घण्टाप्रहरणास्तथा ।
निराश्रया नाम गणाः समायाता जगद्गुरो ॥ १४
सार्धद्विनेत्राः पद्माक्षाः श्रीवत्साङ्कितवक्षसः ।
समायाताः खगारूढा वृषभध्वजिनोऽव्ययाः ॥ १५
महापाशुपता नाम चक्रशूलधरास्तथा ।
भैरवो विष्णुना सार्द्धमभेदेनार्चितो हि यैः ॥ १६
इमे मृगेन्द्रवदनाः शूलबाणधनुर्धराः ।
गणास्त्वद्रोमसंभूता वीरभद्रपुरोगमाः ॥ १७
एते चान्ये च बहवः शतशोऽथ सहस्रशः ।
महायार्थं तवायाता यथाप्रीत्यादिशस्व तान् ॥ १८
ततोऽभ्येत्य गणाः सर्वे प्रणेमुर्वृषभध्वजम् ।
तान् करेणैव भगवान् समाश्वास्योपवेशयत् ॥ १९
महापाशुपतान् दृष्ट्वा समुत्थाय महेश्वरः ।
संपरिष्वजताध्यक्षांस्ते प्रणेमुर्महेश्वरम् ॥ २०
ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा सर्वे गणेश्वराः
सुचिरं विस्मिताक्षाश्च वैलक्ष्यमगमत् परम् ॥ २१
विस्मिताक्षान् गणान् दृष्ट्वा शैलादिर्योगिनां वरः ।
प्राह प्रहस्य देवेशं शूलपाणिं गणाधिपम् ॥ २२
विस्मितामी गणा देव सर्व एव महेश्वर ।
महापाशुपतानां हि यत् त्वयालिङ्गनं कृतम् ॥ २३
तदेतेषां महादेव स्फुटं त्रैलोक्यविन्दकम् ।
रूपं ज्ञानं विवेकं च वदस्व स्वेच्छया विभो । ॥ २४
प्रमथाधिपतेर्वाक्यं निदित्वा भूतभावनः ।
बभाषे तान् गणान् सर्वान् भावाभावविचारिणः ॥२५

रुद्र उवाच ।

भवद्भिर्भक्तिसंयुक्तैर्हरो भावेन पूजितः ।
अहंकारविमूढैश्च निन्दद्भिर्वैष्णवं पदम् ॥ २६
तेनाज्ञानेन भवतोनादरत्वानुनिरोधिताः ।
योऽहं स भगवान् विष्णुर्विष्णुर्यः सोऽहमव्ययः ॥ २७
नावयोर्वै विशेषोऽस्ति एका मूर्तिर्द्विधा स्थिता ।

हे जगद्गुरु ! दिगम्बर, मौनी, एवं घण्टायुधधारी निराश्रय नामक गण आये हैं । (१४)

तीन नेत्रों वाले, पद्माक्ष एवं श्रीवत्स से अंकित वक्षःस्थल वाले खगारूढ़ तथा अविनाशी वृषभध्वजी गण यहाँ आये हैं । (१५)

चक्र तथा शूलधारी महापाशुपत नामक गण आये हैं, जिन्होंने अभेद भाव से विष्णु के साथ भैरव की पूजा की है । (१६)

आपके रोमों से उत्पन्न ये सभी सिंह के मुख वाले शूल, बाण और धनुषधारी वीरभद्र आदि गण आये हैं । (१७)

ये तथा अन्य अनेक सैकड़ों एवं सहस्रों गण भी आपकी सहायता हेतु आये हैं । अपनी रुचि के अनुसार आप इन्हें आदेश दें । (१८)

तदनन्तर सभी गणों ने निकट जाकर वृषभध्वज को प्रणाम किया । भगवान् ने हाथ से ही उन्हें समाश्वस्त कर बैठाया । (१९)

महापाशुपत नामक अपने अध्यक्षों को देखने के उपरान्त महेश्वर ने उठकर उनका आलिङ्गन किया । उन लोगों ने महेश्वर को प्रणाम किया । (२०)

तदनन्तर उस अत्यन्त अद्भुत दृश्य को देखकर सभी गणेश्वरों के नेत्र विस्मयान्वित हो गये । तदनन्तर वे सभी अत्यन्त लज्जित हो गये । (२१)

गणों को विस्मितनेत्र वाला देखकर योगिश्रेष्ठ शैलादि नन्दी ने हँस कर गणाधिप देवेश शूलपाणि से कहा । (२२)

हे देव महेश्वर ! महापाशुपतों का आपने जो आलिङ्गन किया है उससे ये सभी गण विस्मयान्वित हो गये हैं । (२३)

अतः हे महादेव ! हे विभो ! इनके त्रैलोक्य विश्रुत रूप, ज्ञान एवं विवेक का अपनी इच्छानुसार वर्णन करें । (२४)

प्रमथाधिपति नन्दी की बात सुनकर भूतभावन महादेव भाव और अभाव का विचार करने वाले उन गणों से कहने लगे । (२५)

रुद्र ने कहा–अहङ्कार से विमूढ़ तथा भक्ति युक्त आप लोगों ने वैष्णव पद की निन्दा करते हुए भाव पूर्वक हर की पूजा की है । (२६)

इसी अज्ञान के कारण आप सभी का अनादर कर उनका विशेष अनुरोध किया गया । जो मैं हूँ वही भगवान् विष्णु हैं एवं जो विष्णु हैं वही अविनाशी मैं हूँ । (२७)

हम दोनों में कोई भेद नहीं है । एक ही मूर्ति दो रूपों में अवस्थित है । अतः भक्ति भाव से युक्त इन पुरुषश्रेष्ठ

तदमीभिर्नरव्याघ्रैर्भक्तिभावयुतैर्गणैः ॥ २८
यथाहं वै परिज्ञातो न भवद्भिस्तथा ध्रुवम् ।
येनाहं निन्दितो नित्यं भवद्भिर्मूढबुद्धिभिः ॥ २९
तेन ज्ञानं हि वै नष्टं नातस्त्वालिङ्गिता मया ।
इत्येवमुक्ते वचने गणाः प्रोचुर्महेश्वरम् ॥ ३०
कथं भवान् यथैक्येन संस्थितोऽस्ति जनार्दनः ।
भवान् हि निर्मलः शुद्धः शान्तः शुक्लो निरञ्जनः॥३१
स चाप्यञ्जनसंकाशः कथं तेनेह युज्यते ।
तेषां वचनमर्थाढ्यं श्रुत्वा जीमूतवाहनः ॥ ३२
विहस्य मेघगम्भीरं गणानिदमुवाच ह ।
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये स्वयशोवर्द्धनं वचः ॥ ३३
न त्वेव योग्या यूयं हि महाज्ञानस्य कर्हिचित् ।
अपवादभयाद् गुह्यं भवतां हि प्रकाशये ॥ ३४
प्रियध्वमपि चैतेन यन्मच्चित्तास्तु नित्यशः ।
एकरूपात्मकं देहं कुरुध्वं यत्नमास्थिताः ॥ ३५
पयसा हविषाद्यैश्च स्नपनेन प्रयत्नतः ।
चन्दनादिभिरेकाग्रैर्न मे प्रीतिः प्रजायते ॥ ३६
यत्नात् क्रकचमादाय छिन्दध्वं मम विग्रहम् ।
नरकार्हा भवद्भक्ता रक्षामि स्वयशोऽर्थतः ॥ ३७
माऽयं वदिष्यते लोको महान्तमपवादिनम् ।
यथा पतन्ति नरके हरभक्तास्तपस्विनः ॥ ३८
व्रजन्ति नरकं घोरं इत्येवं परिवादिनः ।
अतोऽर्थं न क्षिपाम्यद्य भवतो नरकेऽद्भुते ॥ ३९
यन्निन्दध्वं जगन्नाथं पुष्कराक्षं च मन्मयम् ।
स चैव भगवाञ्छर्वः सर्वव्यापी गणेश्वरः ॥ ४०
न तस्य सदृशो लोके विद्यते सचराचरे ।
श्वेतमूर्तिः स भगवान् पीतो रक्तोऽञ्जनप्रभः ॥ ४१
तस्मात् परतरं लोके नान्यद् धर्मं हि विद्यते ।
सात्त्विकं राजसं चैव तामसं मिश्रकं तथा ।
स एव धत्ते भगवान् सर्वपूज्यः सदाशिवः ॥ ४२
शंकरस्य वचः श्रुत्वा शैवाद्याः प्रमथोत्तमाः ।
प्रत्यूचुर्भगवन् ब्रूहि सदाशिवविशेषणम् ॥ ४३

गणों ने जैसा मुझे जाना है निश्चय ही आप लोग इस प्रकार मुझे नहीं जानते। मूढ़ बुद्धि वाले आप लोगों ने यत नित्य मेरी निन्दा की है अत आप लोगों का ज्ञान नष्ट हो गया। इसीलिये मैंने आप लोगों का आलिङ्गन नहीं किया है। ऐसा कहने पर गणों ने महेश्वर से कहा— (२८-३०)

आप एव जनार्दन ऐक्य भाव से कैसे रहते हैं? आप निर्मल, शुद्ध, शान्त, शुक्ल एव निरञ्जन हैं। किन्तु वे अञ्जन तुल्य हैं अत उनसे अपका योग कैसे होता है? उनके अर्थ पूर्ण वचन को सुनने के उपरान्त जीमूत वाहन शकर ने हँस कर कहा—अपना यश बढाने वाली सम्पूर्ण बात मैं बतलाता हूँ। उसे सुनो। (३१-३३)

तुम लोग कदापि महाज्ञान के योग्य नहीं हो। पर अपवाद के भय से मैं आप सभी के सम्मुख गुह्य तत्त्व प्रकाशित करता हूँ। (३४)

मुझमे नित्य आसक्तचित्त होने से भी अन्य लोग प्रिय हैं। जिसके भक्त हो उसके साथ एक रूपात्मक अपना सम्बन्ध बनाओ। (३५)

प्रयत्नपूर्वक दुग्ध या घृत से स्नान कराने एव एकाग्रतापूर्वक चन्दनादि द्वारा लेप करने से मुझे प्रीति नहीं उत्पन्न होती। (३६)

आरा लेकर मेरे शरीर का छेदन कर डालो। किन्तु अपने यश के लिए नरक के योग्य आप भक्तों की मैं रक्षा करता हूँ। (३७)

(क्योंकि) यह लोक मुझे इस प्रकार का महान् अपवाद न लगाये कि तपस्वी शङ्कर के भक्त नरक में जाते हैं। (३८)

इस प्रकार का परिवाद करने वाले लोग घोर नरक मे जाते हैं। इसीलिए आप लोगों को मैं अद्भुत नरक मे नहीं डालता। (३९)

आप लोग मत्स्वरूप जिन पुष्कराक्ष जगन्नाथ की निन्दा करते हैं वे ही सर्वव्यापी गणेश्वर भगवान् शर्व हैं। (४०)

इस चराचर लोक मे उनके सदृश कोई नहीं है। वे भगवान् श्वेतमूर्ति, पीत, रक्त एव अञ्जन के समान प्रभा वाले हैं। (४१)

लोक मे उनसे श्रेष्ठ कोई अन्यधर्म नहीं है। वे सर्वपूज्य सदाशिव भगवान् ही समस्त सात्त्विक, राजस, तामस एव मिश्रित भावों को धारण करते हैं। (४२)

शङ्कर का वचन सुनकर शैव आदि श्रेष्ठ गणों ने कहा—हे भगवान्! सदा शिव के विशेषण कहिये। (४३)

तेषां तद् भाषितं श्रुत्वा प्रमथानामधेश्वरः ।
दर्शयामास तद्रूपं सदाशिवं निरञ्जनम् ॥ ४४
ततः पश्यन्ति हि गणाः तमीशं वै सहस्रशः ।
सहस्रवक्त्रचरणं सहस्रभुजमीश्वरम् ॥ ४५
दण्डपाणिं सुदुर्दर्श्यं लोकैर्व्याप्तं समन्ततः ।
दण्डसंस्थाऽस्य दृश्यन्ते देवप्रहरणास्तथा ॥ ४६
तत एकमुखं भूयो ददृशुः शंकरं गणाः ।
रौद्रैश्च वैष्णवैश्चैव वृतं चिह्नैः सहस्रशः ॥ ४७
अर्द्धेन वैष्णववपुरर्द्धेन हरविग्रहः ।
खगध्वजं वृषारूढं खगारूढं वृषध्वजम् ॥ ४८
यथा यथा त्रिनयनो रूपं धत्ते गुणाग्रणीः ।
तथा तथा त्वजायन्त महापाशुपता गणाः ॥ ४९
ततोऽभवच्चैकरूपी शंकरो बहुरूपवान् ।
द्विरूपश्चाभवद् योगी एकरूपोऽप्यरूपवान् ।
क्षणाच्छ्वेतः क्षणाद् रक्तः पीतो नीलः क्षणादपि ॥ ५०
मिश्रको वर्णहीनश्च महापाशुपतस्तथा ।
क्षणाद् भवति रुद्रेन्द्रः क्षणाच्छंभुः प्रभाकरः ॥ ५१
क्षणार्द्धाच्छंकरो विष्णुः क्षणाच्छर्वः पितामहः ।
ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा शैवादयो गणाः ॥ ५२
अजानन्त तदैक्येन ब्रह्मविष्णवीशभास्करान् ।
यदाऽभिन्नममन्यन्त देवदेवं सदाशिवम् ॥ ५३
तदा निर्धूतपापास्ते समजायन्त पार्षदाः ।
तेष्वेवं धूतपापेषु अभिन्नेषु हरीश्वरः ॥ ५४
प्रीतात्मा विभुर्मो शंभुः प्रीतियुक्तोऽब्रवीद् वचः ।
परितुष्टोऽस्मि वः सर्वे ज्ञानेनानेन सुव्रताः ॥ ५५
वृणुध्वं वरमानन्त्यं दास्ये वो मनसेप्सितम् ।
ऊचुस्ते देहि भगवन् वरमस्माकमीश्वर ।
भिन्नदृष्ट्युद्भवं पापं यत्तद् भ्रंशं प्रयातु नः ॥ ५६

पुलस्त्य उवाच ।

बाढमित्यब्रवीच्छर्वश्चक्रे निर्धूतकल्मषान् ।
संपरिष्वज्य चाव्यक्तस्तान् सर्वान् गणयूथपान् ॥ ५७
इति विभुना प्रणतार्तिहरेण

प्रमथेश्वर ने उनके इस वचन को सुनकर उन्हें निरञ्जन सदाशिव रूप को दिखलाया। (४४)

तदनन्तर सहस्रों गणों ने उन ईश्वर को सहस्र मुख, चरण एवं भुजाओं वाला देखा। (४५)

वे लोकों से सर्वतः व्याप्त, दण्डपाणि एवं सुदुर्दर्श्य थे। उनके दण्ड में देवताओं के अस्त्र दिखलाई पड़ रहे थे। (४६)

तदनन्तर गणों ने रुद्र एवं विष्णु के सहस्रों चिह्नों से युक्त एकमुख शंकर को देखा। (४७)

उस रूप का अर्द्धांश हरशरीर था और अर्द्ध भाग खगध्वज था। एक अर्द्धांश खगध्वज वृषारूढ था एवं अन्य अर्द्धांश वृषध्वज गरुडारूढ था। (४८)

गुणाग्रणी त्रिलोचन ने जैसा-जैसा रूप धारण किया महापाशुपतगण उसी प्रकार के होते गये। (४९)

तदनन्तर एकरूपी शङ्कर बहुरूपवान् हो गये। वे योगी द्विरूपधारी, एकरूपी एवं अरूपवान् भी हो गये। वे प्रतिक्षण श्वेत, रक्त, पीत, नील मिश्र वर्ण एवं वर्णहीन होते गए। महापाशुपतों का भी स्वरूप तदनुरूप होता गया। श्री शङ्कर किसी क्षण में इन्द्र, किसी क्षण में प्रभाकर, किसी क्षण में विष्णु एवं किसी क्षण में पितामह के रूप में परिवर्त्तित होते गये। यह अद्भुततम दृश्य देखकर शैवादि गणों ने ब्रह्मा, विष्णु, ईश एवं भास्कर को एक भाव से युक्त समझा। उन लोगों ने जब देवाधिदेव सदाशिव को अभिन्न मान लिया तो वे सभी पार्षद पापरहित हो गये। इस प्रकार अभेद-बुद्धि के कारण उनके पापविमुक्त होने से हरीश्वर शम्भु प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रीतिपूर्वक कहा—हे सुव्रतो! तुम्हारे इस प्रकार के ज्ञान से मैं प्रसन्न हूँ। (५०-५५)

अब अनन्त वर मांगो! मैं तुम्हें मनोवांछित वर दूँगा। उन्होंने कहा—हे भगवान्! हे महेश्वर! हमें यह वर दें कि भेददृष्टि के कारण उत्पन्न हमारे पाप नष्ट हो जाँय। (५६)

पुलस्त्य ने कहा—शङ्कर ने कहा 'ऐसा ही होगा'। तदनन्तर अव्यक्त शङ्कर ने उन सभी गणाधिपों का आलिङ्गन कर उन्हें पापरहित कर दिया। (५७)

तदनन्तर श्रुति की दृष्टि का जैसे अनुगमन होता है उसी प्रकार वृष एवं मेघवाहन प्रणतार्तिहारी शङ्कर के साथ

गणपतयो वृषमेघरथेन।
श्रुतिगदितानुगमेनेव मन्दरं
गिरिमवतत्य समभ्यवसन्तम्॥ ५८
आच्छादितो गिरिवरः प्रमथैर्घनाभै-
राभाति शुक्लतनुरीश्वरपादजुष्टः।
नीलाजिनाततवपुः शरदभ्रवर्णो
यद्वद् विभाति बलवान् वृषभो हरस्य॥ ५९

इति श्रीवामनपुराणे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

४२

पुलस्त्य उवाच।
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः समं दैत्यैस्तथाऽन्धकः।
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं प्रमथाश्रितकन्दरम्॥ १

प्रमथा दानवान् दृष्ट्वा चक्रुः किलकिलाध्वनिम्।
प्रमथाश्चापि संरब्धा जघ्नुस्तूर्याण्यनेकशः॥ २

स चावृणोन्महानादो रोदसी प्रलयोपमः।
शुश्राव वायुमार्गस्थो विघ्नराजो विनायकः॥ ३
समभ्ययात् सुसंक्रुद्धः प्रमथैरभिसंवृतः।
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं ददर्श पितरं तथा॥ ४

प्रणिपत्य तथा भक्त्या वाक्यमाह महेश्वरम्।
किं तिष्ठसि जगन्नाथ समुत्तिष्ठ रणोत्सुकः॥ ५

ततो विघ्नेशवचनाज्जगन्नाथोऽम्बिकां वचः।
प्राह यास्येऽन्धकं हन्तुं स्थेयमेवाप्रमत्तया॥ ६
ततो गिरिसुता देवं समालिङ्ग्य पुनः पुनः।

सभी गणपति मन्दरपर्वत को चतुर्दिक् आवृत कर रहने लगे। (५८)

मेघाभ प्रमथों से आच्छादित शङ्करपादसेवी शुक्ल शरीर गिरिवर इस प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे नील मृगचर्म से आच्छादित शरीरवाला एवं शरद्‌कालीन मेघ के वर्णवाला शङ्कर का बलवान् वृषभ सुशोभित होता है। (५९)

श्रीवामनपुराण में इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

४२

पुलस्त्य ने कहा—इसी बीच अन्धक दैत्यों के साथ प्रमथों से सेवित कन्दराओं वाले पर्वतश्रेष्ठ मन्दर पर आया। (१)

दानवों को देखकर प्रमथों ने किलकिला ध्वनि की एवं उत्तेजनापूर्वक अनेक तूर्य बजाने लगे। (२)

उस प्रलय-तुल्य तुमुलध्वनि ने आकाश और पृथ्वी के अन्तराल को आवृत कर लिया। वायुमार्गस्थ विघ्नराज विनायक ने उस शब्द को सुना। (३)

प्रमथों से आवृत अत्यन्त क्रुद्ध वे पर्वतश्रेष्ठ मन्दर पर गये एवं अपने पिता को देखा। (४)

भक्तिपूर्वक प्रणामकर उन्होंने महेश्वर से कहा—हे जगन्नाथ! आप बैठे क्यों हैं? रण के लिए उत्सुक होकर आप उठें। (५)

विघ्नेश्वर गणेश के कहने पर जगन्नाथ महादेव ने अम्बिका से कहा—मैं अन्धक को मारने के लिए जाऊँगा, तुम सावधानी से रहना। (६)

तदुपरान्त गिरिनन्दिनी ने महादेव को बार-बार आलिङ्गन कर एवं सप्रेम दृष्टि से उन्हें देखकर कहा—

समीक्ष्य सस्नेहहरं प्राह गच्छ जयान्धकम् ॥ ७
ततोऽमरगुरोर्गौरी चन्दनं रोचनाञ्जनम् ।
प्रतिचन्द्य सुसंप्रीता पादावेवाभ्यवन्दत ॥ ८
ततो हरः प्राह वचो यशस्यं मालिनीमपि ।
जयां च विजयां चैव जयन्तीं चापराजिताम् ॥ ९
युष्माभिरप्रमत्ताभिः स्थेयं गेहे सुरक्षिते ।
रक्षणीया प्रयत्नेन गिरिपुत्री प्रमादतः ॥ १०
इति संदिश्य ताः सर्वाः समारुह्य वृषं विभुः ।
निर्जगाम गृहात् तुष्टो जयेप्सुः शूलधृग् बली ॥ ११
निर्गच्छतस्तु भवनादीश्वरस्य गणाधिपाः ।
समंतात् परिवार्यैव जयशब्दांश्च चक्रिरे ॥ १२
रणाय निर्गच्छति लोकपाले
महेश्वरे शूलधरे महर्षे ।
शुभानि सौम्यानि सुमङ्गलानि
जातानि चिह्नानि जयाय शंभोः ॥ १३
शिवा स्थिता वामतरेऽथ भागे
प्रयाति चाग्रे स्वनमुन्नदन्ती ।
क्रव्यादसंघाश्च तथामिषैषिणः
प्रयान्ति हृष्टास्तृषितासृगर्थे ॥ १४
दक्षिणाङ्गं नखान्तं वै समकम्पत शूलिनः ।
शकुनिश्चापि हारीतो मौनी याति पराङ्मुखः ॥ १५
निमित्तानीदृशान् दृष्ट्वा भूतभव्यभवो विभुः ।
शैलादिं प्राह वचनं सस्मितं शशिशेखरः ॥ १६

हर उवाच ।

नन्दिन् जयोऽत्र मे भावी न कथंचित् पराजयः ।
निमित्तानीह दृश्यन्ते संभूतानि गणेश्वर ॥ १७
तच्छंभुवचनं श्रुत्वा शैलादिः प्राह शंकरम् ।
कः संदेहो महादेव यत् त्वं जयसि शात्रवान् ॥ १८
इत्येवमुक्त्वा वचनं नन्दी रुद्रगणांस्तथा ।
समादिदेश युद्धाय महापाशुपतैः सह ॥ १९
तेऽभ्येत्य दानवबलं मर्दयन्ति स्म वेगिताः ।
नानाशस्त्रधरा वीरा वृक्षानशनयो यथा ॥ २०
ते वध्यमाना बलिभिः प्रमथैर्दैत्यदानवाः ।
प्रवृत्ताः प्रमथान् हन्तुं कूटमुद्गरपाणयः ॥ २१

जाइए एवं अन्धक पर विजय प्राप्त कीजिए। (७)

तदनन्तर गौरी ने देवश्रेष्ठ शङ्कर को चन्दन, रोचना एवं अञ्जन लगाया एवं अति प्रीतिपूर्वक उनके चरणों की वन्दना की। (८)

तदनन्तर महादेव ने मालिनी, जया, विजया, जयन्ती और अपराजिता से यह यशस्कर वचन कहा— (९)

तुम लोग सुरक्षित गृह में सावधानी से रहना एवं प्रयत्नपूर्वक गिरिपुत्री की प्रमाद करने से रक्षा करना। (१०)

उन सभी को ऐसा निर्देश देने के उपरान्त वृष पर आरूढ होकर शूलधारी बलवान् शङ्कर जय की आकांक्षा से प्रसन्नतापूर्वक घर से निकले। (११)

गृह से निकल रहे शङ्कर को चारों ओर से आवृत कर गणाधिपों ने "जय जयकार" किया। (१२)

हे महर्षि! लोकपाल शूलधारी महेश्वर के युद्धार्थ निकलने पर उनकी जय के लिये शुभ, सौम्य और मङ्गलजनक चिह्न प्रकट हुए। (१३)

उनके वाम भाग में शृगाली स्थित थी एवं स्वर करती हुई आगे जा रही थी। मांसलोभी प्राणी प्रसन्नतापूर्वक रुधिर के लिये जा रहे थे। (१४)

शूलपाणि का दाहिना अंग नख तक काँप उठा। हारीत पक्षी चुपचाप पीछे की ओर जा रहा था। (१५)

भूत, भविष्य एवं वर्तमानस्वरूप शशिशेखर विभु महादेव ने इस प्रकार के निमित्तों को देखकर शैलादि नन्दी से हास्ययुक्त वचन कहा। (१६)

शङ्कर ने कहा—हे नन्दी! हे गणेश्वर! यहाँ शुभ निमित्त दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अत आज मेरी विजय होगी। किसी भी प्रकार पराजय नहीं हो सकती। (१७)

शम्भु के उस वचन को सुनकर शैलादि ने शङ्कर से कहा हे महादेव आप शत्रुओं को जीतेंगे इसमें सन्देह क्या है? (१८)

ऐसा कहकर नन्दी ने महापाशुपत सहित रुद्रगणों को युद्ध के लिए आदेश दिया। (१९)

नाना प्रकार के शस्त्रों को धारण करने वाले वे वीर दानवसैन्य के निकट जाकर उसे इस प्रकार मर्दित करने लगे जैसे वज्र वृक्षों को नष्ट करता है। (२०)

बलवान् प्रमथों द्वारा मारे जा रहे वे दैत्य-दानव गण

ततोऽम्बरतले देवाः सेन्द्रविष्णुपितामहाः ।
समूर्यामिपुरोगास्तु समायाता दिदृक्षवः ॥ २२
ततोऽम्बरतले घोषः सस्वनः समजायत ।
गीतवाद्यादिसंमिश्रो दुन्दुभीनां कलिप्रिय ॥ २३
ततः पश्यत्सु देवेषु महापाशुपतादयः ।
गणास्तद्दानवं सैन्यं निर्जघ्नन्ति स्म कोपिताः ॥ २४
चतुरङ्गबलं दृष्ट्वा हन्यमानं गणेश्वरैः ।
क्रोधान्वितस्तुहुण्डस्तु वेगेनाभिससार ह ॥ २५
आदाय परिघं घोरं पट्टोद्बद्धमयस्मयम् ।
राजतं राजतेऽत्यर्थमिन्द्रध्वजमिवोच्छ्रितम् ॥ २६
तं भ्रामयानो बलवान् निजघान रणे गणान् ।
रुद्राद्याः स्कन्दपर्यन्तास्तेऽभज्यन्त भयातुराः ॥ २७
तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा गणनाथो विनायकः ।
समाद्रवत वेगेन तुहुण्डं दनुपुंगवम् ॥ २८
आपतन्तं गणपतिं दृष्ट्वा दैत्यो दुरात्मवान् ।
परिघं पातयामास कुम्भपृष्ठे महाबलः ॥ २९
विनायकस्य तत्कुम्भे परिघं वज्रभूषणम् ।
शतधा त्वगमद् ब्रह्मन् मेरोः कूट इवाशनिः ॥ ३०
परिघं विफलं दृष्ट्वा समायान्तं च पार्षदम् ।
बबन्ध बाहुपाशेन राहू रक्षन् हि मातुलम् ॥ ३१
स बद्धो बाहुपाशेन बलादाकृष्य दानवम् ।
समाजघान शिरसि कुठारेण महोदरः ॥ ३२
काष्ठवत् स द्विधा भूतो निपपात धरातले ।
तथाऽपि नात्यजद् राहुर्बलवान् दानवेश्वरः ।
स मोक्षार्थेऽकरोद् यत्नं न शशाक च नारद ॥ ३३

विनायकं संयतमीक्ष्य राहुणा
कुण्डोदरो नाम गणेश्वरोऽथ ।
प्रगृह्य तूर्णं मुसलं महात्मा
राहुं दुरात्मानममौ जघान ॥ ३४
ततो गणेशः कलशध्वजस्तु
प्रासेन राहुं हृदये विभेद ।
घटोदरो वै गदया जघान

खड्गेन रक्षोऽधिपतिः सुकेशी ॥ ३५

स तैश्चतुर्भिः परिवाध्यमानो
गणाधिपं राहुरथोत्ससर्ज ।
संत्यक्तमात्रोऽथ परश्वधेन
तुहुण्डमूर्द्धानमथो निभेद ॥ ३६

हते तुहुण्डे विमुखे च राहौ
गणेश्वराः क्रोधविषं मुमुक्षवः ।
पञ्चैककालानलसन्निकाशा
विशन्ति सेनां दनुपुंगवानाम् ॥ ३७

तां वध्यमानां स्वचमूं समीक्ष्य
बलिर्बली मारुततुल्यवेगः ।
गदां समाविध्य जघान मूर्ध्नि
विनायकं कुम्भतटे करे च ॥ ३८

कुण्डोदरं भग्नकटिं चकार
महोदरं शीर्णशिरःकपालम् ।
कुम्भध्वजं चूर्णितसंधिबन्धं
घटोदरं चोरुविभिन्नसंधिम् ॥ ३९

गणाधिपांस्तान् विमुखान् स कृत्वा
बलान्वितो वीरवरोऽसुरेन्द्रः ।
समभ्यधावत् त्वरितो निहन्तुं
गणेश्वरान् स्कन्दविशाखमुख्यान् ॥ ४०

तमापतन्तं भगवान् समीक्ष्य
महेश्वरः श्रेष्ठतमं गणानाम् ।
शैलादिमामन्त्र्य वचो बभाषे
गच्छस्व दैत्यान् जहि वीर युद्धे ॥ ४१

इत्येवमुक्तो वृषभध्वजेन
वज्रं समादाय शिलादसूनुः ।
बलिं समभ्येत्य जघान मूर्ध्नि
संमोहितः सोऽवनिमाससाद ॥ ४२

संमोहितं भ्रातृसुतं विदित्वा
बली कुजम्भो मुसलं प्रगृह्य ।
संभ्रामयंस्तूर्णतरं स वेगात्
ससर्ज नन्दिं प्रति जातकोपः ॥ ४३

तमापतन्तं मुसलं प्रगृह्य

हृदय में भेदन किया। घटोदर ने गदा से तथा राक्षसों के अधिपति सुकेशी ने खड्ग से प्रहार किया। (३५)

उन चारों द्वारा आघात किये जाने पर राहु ने गणाधिपति को छोड़ दिया। छूटते ही उन्होंने फरसे से तुहुण्ड के शिर को काट दिया। (३६)

तुहुण्ड के मारे जाने एवं राहु के विमुख हो जाने पर क्रोधरूपी विष को छोड़ने की इच्छा वाले कालानलतुल्य पाँचों गणेश्वर एक साथ दानवश्रेष्ठों की सेना में प्रविष्ट हुए। (३७)

अपनी उस सेना को मारी जाती देखकर वायु के सदृश वेगवाले बलवान् बलि ने गदा लेकर विनायक के कुम्भस्थल, मस्तक एवं सूँड़ पर प्रहार किया। (३८)

कुण्डोदर की कटि को भग्न कर दिया, महोदर के शिर-कपाल को विशीर्ण कर दिया, कुम्भध्वज के जोड़ों को चूर्ण कर डाला एवं घटोदर की जाँघों को तोड़ दिया। (३९)

उन गणाधिपों को विमुख कर वीर श्रेष्ठ वह बलवान् असुरेन्द्र शीघ्रता से स्कन्द, विशाख आदि प्रमुख गणेश्वरों को मारने के लिए दौड़ा। (४०)

भगवान् महेश्वर ने उसे आते हुए देखकर गणों में सर्वश्रेष्ठ शैलादि को बुलाकर कहा—हे वीर! जाओ और युद्ध में दैत्यों को मारो। (४१)

वृषभध्वज के ऐसा कहने पर शिलाद के पुत्र नन्दी वज्र लेकर बलि के समीप गये एवं उसके मस्तक पर प्रहार किया जिससे वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। (४२)

अपने भतीजे को मूर्छित जानकर बलवान् कुजम्भ ने क्रोधपूर्वक मुसल लेकर घुमाते हुये उसे नन्दी की ओर वेगपूर्वक फेंका। (४३)

भगवान् नन्दी ने आते हुये उस मुसल को शीघ्रतापूर्वक हाथ से पकड़ लिया एवं उसी से युद्ध में कुजम्भ

करेण तूर्णं भगवान् स नन्दी।
जघान तेनैव कुजम्भमाहवे
स प्राणहीनो निपपात भूमौ ॥ ४४
हत्वा कुजम्भं मुसलेन नन्दी
वज्रेण वीरः शतशो जघान।
ते वध्यमाना गणनायकेन
दुर्योधनं वै शरणं प्रपन्नाः ॥ ४५
दुर्योधनः प्रेक्ष्य गणाधिपेन
वज्रप्रहारैर्निहतान् दितीशान्।
प्रासं समाविध्य तडित्प्रकाशं
नन्दिं प्रचिक्षेप हतोऽसि वै ब्रुवन् ॥ ४६
तमापतन्तं कुलिशेन नन्दी
बिभेद गुह्यं पिशुनो यथा नरः।
तत्प्रासमालक्ष्य तदा निकृत्त
संवर्त्य मुष्टिं गणमाससाद ॥ ४७
ततोऽस्य नन्दी कुलिशेन तूर्णं
शिरोऽच्छिनत् तालफलप्रकाशम्।
हतोऽथ भूमौ निपपात वेगाद्
दैत्याश्च भीता विगता दिशो दश ॥ ४८
ततो हतं स्वं तनयं निरीक्ष्य
हस्ती तदा नन्दिनमाजगाम।
प्रगृह्य बाणासनमुग्रवेग
बिभेद बाणैर्यमदण्डकल्पैः ॥ ४९
गणान् सनन्दीन् वृषभध्वजांस्तान्
धाराभिरेवाम्बुधरास्तु शैलान्।
ते छाद्यमानासुरबाणजालै-
र्विनायकाद्या बलिनोऽपि वीराः।
सिंहप्रणुन्ना वृषभा यथैव
भयातुरा दुद्रुविरे समन्तात् ॥ ५०
पराङ्मुखान् वीक्ष्य गणान् कुमारः
शक्त्या पृषत्कानथ वारयित्वा।
तूर्णं समभ्येत्य रिपुं समीक्ष्य
प्रगृह्य शक्त्या हृदये बिभेद ॥ ५१
शक्तिनिर्भिन्नहृदयो हस्ती भूम्यां पपात ह।
ममार चारिपृतना जाता भूयः पराङ्मुखी ॥ ५२
अमरारिबलं दृष्ट्वा भग्नं क्रुद्धा गणेश्वराः।

को मारा। वह निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। (४४)

वीर नन्दी ने मुसल से कुजम्भ को मार कर वज्र द्वारा सैकड़ों दानवों को मार डाला। गणनायक द्वारा मारे जा रहे वे दानव दुर्योधन की शरण में गये। (४५)

दुर्योधन ने गणाधिप द्वारा वज्र प्रहार से दैत्यों को निहत देखकर बिजली के समान प्रकाश से युक्त प्रास लिया तथा 'तुम मारे गये' ऐसा कहते हुये उसे नन्दी की ओर फेंका। (४६)

नन्दी ने आ रहे उस (प्रास) को वज्र से इस प्रकार काट दिया जैसे पिशुन व्यक्ति रहस्य का भेदन कर देता है। तदनन्तर उस प्रास को कटा हुआ देख (दुर्योधन) मुट्ठी बाँध कर गण नन्दी के पास गया। (४७)

तदनन्तर नन्दी ने वेगपूर्वक कुलिश द्वारा तालफल के सदृश उसके मस्तक को काट डाला। मारे जाने पर वह भूमि पर गिर पड़ा एवं भयभीत दैत्य वेगपूर्वक दसों दिशाओं में भाग गए। (४८)

हस्ती (नामक असुर) अपने पुत्र को मारा गया देखकर नन्दी के पास आया। उसने धनुष लेकर तीव्रवेग से यमदण्ड तुल्य बाणों से प्रहार किया। (४९)

मेघ जिस प्रकार जलधाराओं से पर्वतों को आच्छादित करता है, उसी प्रकार उसने नन्दी के सहित वृषभध्वज के उन गणों को आच्छादित किया। असुर के बाणजाल से आच्छादित हो रहे वे विनायक आदि बलवान् वीर सिंह के द्वारा आक्रान्त वृषभों के सदृश भयातुर होकर चारों ओर भागने लगे। (५०)

कुमार ने गणों को पराङ्मुख देख शक्ति द्वारा बाणों को निवारित किया। एव शीघ्रतापूर्वक शत्रु के पास पहुँचे तथा शक्ति से उसका हृदय भिन्न कर दिये। (५१)

शक्ति से हृदय के फट जाने पर हस्ती पृथ्वी पर गिर पड़ा एवं मर गया तथा शत्रु सेना पुन पराङ्मुख हो गई। (५२)

दैत्यसेना को छिन्न भिन्न हुई देखकर क्रुद्ध गणेश्वर

पुरतो नन्दिनं कृत्वा जिघांसन्ति स्म दानवान् ॥ ५३
ते वध्यमानाः प्रमथैर्दैत्याश्चापि पराङ्मुखाः ।
भूयो निवृत्ता बलिनः कार्त्तस्वरपुरोगमाः ॥ ५४
तान् निवृत्तान् समीक्ष्यैव क्रोधदीप्तेक्षणः श्वसन् ।
नन्दिषेणो व्याघ्रमुखो निवृत्तश्चापि वेगवान् ॥ ५५
तस्मिन् निवृत्ते गणपे पट्टिशाग्रकरे तदा ।
कार्त्तस्वरो निववृते गदामादाय नारद ॥ ५६
तमापतन्तं ज्वलनप्रकाशं
गण. समीक्ष्यैव महासुरेन्द्रम् ।
स पट्टिशं भ्राम्य जघान मूर्ध्नि
कार्तस्वरं विस्वरमुन्नदन्तम् ॥ ५७
तस्मिन् हते भ्रातरि मातुलेये
पाशं समाविध्य तुरंगकन्धरः ।
बबन्ध वीरः सह पट्टिशेन
गणेश्वरं चाप्यथ नन्दिषेणम् ॥ ५८
नन्दिषेणं तथा बद्धं समीक्ष्य बलिनां वरः ।
विशाखः कुपितोऽभ्येत्य शक्तिपाणिरवस्थितः ॥ ५९
तं दृष्ट्वा बलिनां श्रेष्ठः पाशपाणिरय.शिराः ।
संयोधयामास बली विशाखं कुक्कुटध्वजम् ॥ ६०
विशाखं संनिरुद्धं वै दृष्ट्वाऽय शिरसा रणे ।
शाखश्च नैगमेयश्च तूर्णमाद्रवतां रिपुम् ॥ ६१
एकतो नैगमेयेन भिन्नः शक्त्या त्वय.शिराः ।
एकतश्चैव शाखेन विशाखप्रियकाम्यया ॥ ६२
स त्रिभिः शंकरसुतैः पीड्यमानो जहौ रणम् ।
ते प्राप्ताः शम्बरं तूर्णं प्रेक्ष्यमाणा गणेश्वराः ॥ ६३
पाशं शक्त्या समाहत्य चतुर्भिः शंकरात्मजैः ।
जगाम विलयं तूर्णमाकाशादिव भूतलम् ॥ ६४
पाशे निराशतां याते शम्बरः कातरेक्षणः ।
दिशोऽथ भेजे देवर्षे कुमारः सैन्यमर्दयत् ॥ ६५

नन्दी को आगे कर दानवों को मारने लगे । (५३)

प्रमथों द्वारा मारे जा रहे वे सभी पराङ्मुख बलवान् कार्त्तस्वरादि दैत्य पुन॰ लौट पड़े । (५४)

इन्हें लौटते देखकर वेगवान् व्याघ्रमुख नन्दिषेण भी क्रोध से आँखे लालकर लम्बी साँस छोड़ते हुए लौट पड़ा । (५५)

हे नारद ! तदनन्तर हाथ के अग्रभाग में पट्टिश लिये हुये उस गणाधिप के लौटने पर कार्त्तस्वर गदा लेकर लौटा । (५६)

उस अग्नि के सदृश तेजस्वी महासुरेन्द्र को आते देखकर गणपति ने पट्टिश घुमाकर उसके शिर पर मारा । कार्त्तस्वर चीत्कार करता हुआ मर गया । (५७)

उस ममेरे भाई के मारे जाने पर वीर तुरङ्गकन्धर ने पाश को लेकर पट्टिश के सहित नन्दिषेण गणेश्वर को बाँध लिया । (५८)

नन्दिषेण को बँधा देखकर बलवानों मे श्रेष्ठ विशाख क्रोधपूर्वक उसके समीप गए एव हाथ में शक्ति लिये हुए (उसके सम्मुख) खड़े हो गए । (५९)

इन्हें देखकर बलवानों मे श्रेष्ठ अय शिरा हाथ में पाश लेकर कुक्कुटध्वज विशाख के साथ युद्ध करने लगा । (६०)

विशाख को अय.शिरा के द्वारा युद्ध में अवरुद्ध हुआ देखकर शाख एव नैगमेय नामक गण शीघ्रतापूर्वक शत्रु की ओर दौड़ पड़े । (६१)

विशाख का प्रिय करने की इच्छा से एक ओर से नैगमेय ने एवं दूसरी ओर से शाख ने शक्ति द्वारा अय शिरा को मारा । (६२)

शङ्कर के तीनों पुत्रों द्वारा पीड़ित होने पर उस अय शिरा ने युद्ध छोड़ दिया । वे गणेश्वर शम्बर को देखकर शीघ्र उसके पास पहुँचे । (६३)

शम्बर ने उनपर पाश को घुमा कर चलाया शङ्कर के चारपुत्रों ने पाश पर प्रहार किया । (इससे वह पाश) आकाश से भूतल पर गिर कर नष्ट हो गया । (६४)

पाश के नष्ट हो जाने पर भयभीत शम्बर

तैर्वध्यमाना प्रतना महर्षे
सादानवी रुद्रसुतैर्गणैश्च ।
विषण्णरूपा भयविह्वलाङ्गी
जगाम शुक्रं शरणं भयार्ता ॥ ६६

इति श्रीवामनपुराणे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

४३

पुलस्त्य उवाच ।
ततः स्वसैन्यमालक्ष्य निहतं प्रमथैरथ ।
अन्धकोऽभ्येत्य शुक्रं तु इदं वचनमब्रवीत् ॥ १
भगवंस्त्वां समाश्रित्य वयं बाधाम देवताः ।
अथान्यानपि विप्रर्षे गन्धर्वसुरकिन्नरान् ॥ २
तदियं पश्य भगवन् मया गुप्ता वरूथिनी ।
अनाथेव यथा नारी प्रमथैरपि काल्यते ॥ ३
कुजम्भाद्याश्च निहता भ्रातरो मम भार्गव ।
अक्षयाः प्रमथाश्चामी कुरुक्षेत्रफलं यथा ॥ ४
तस्मात् कुरुष्व श्रेयो नो न जीयेम यथा परैः ।
जयेम च परान् युद्धे तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ५
शुक्रोऽन्धकवचः श्रुत्वा सान्त्वयन् परमाद्भुतम् ।
वचनं प्राह देवर्षे ब्रह्मर्षिर्दानवेश्वरम् ।
त्वद्धितार्थं यतिष्यामि करिष्यामि तव प्रियम् ॥ ६
इत्येवमुक्त्वा वचनं विद्यां संजीवनीं कविः ।
आवर्तयामास तदा विधानेन शुचिव्रतः ॥ ७

दिशाओं में भाग गया एवं कुमार सेना का मर्दन करने लगे । (६५)

हे महर्षि ! उन रुद्र-पुत्रों एवं गणों द्वारा मारी जा रही यह दानवी सेना दुःखी एवं भय से विह्वल होकर शुक्र की शरण में गई । (६६)

श्रीवामनपुराण में बयालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

४३

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर प्रमथों द्वारा अपनी सेना को मारी गयी देखकर अन्धक ने शुक्राचार्य के पास जाकर यह बात कही— (१)

हे भगवन् ! हे विप्रर्षे ! हम आपही का आश्रय लेकर देवता, गन्धर्व, असुर, किन्नर एवं अन्यों को बाधित करते हैं । (२)

हे भगवन् ! आप यह देखें कि मेरे द्वारा रक्षित यह सेना अनाथ नारी के सदृश प्रमथों द्वारा विनष्ट की जा रही है । (३)

हे भार्गव ! कुजम्भ आदि मेरे भाई मारे गये पर ये प्रमथ कुरुक्षेत्र तीर्थ के फल समान अक्षय हैं । (४)

अतः आप हमलोगों का कल्याण करें जिससे शत्रुओं के द्वारा हमलोग न जीते जाँय तथा आप ऐसा उपाय करें जिससे हमलोग दूसरों को युद्ध में जीत सकें । (५)

हे देवर्षे ! ब्रह्मर्षि शुक्राचार्य ने अन्धक की बात सुनकर दानवेश्वर को सान्त्वना देते हुए उससे कहा—मैं तुम्हारे हितार्थ यत्न करूँगा और तुम्हारा प्रिय करूँगा । (६)

ऐसा कहकर शुचि व्रतों वाले शुक्राचार्य ने विधानानुसार संजीवनी विद्या को प्रकट किया । (७)

तस्यामावर्त्यमानायां विद्यायामसुरेश्वराः ।
ये हताः प्रथमं युद्धे दानवास्ते समुत्थिताः ॥ ८
कुजम्भादिषु दैत्येषु भूय एवोत्थितेष्वथ ।
युद्धायाभ्यागतेष्वेव नन्दी शंकरमब्रवीत् ॥ ९
महादेव वचो मह्यं शृणु त्वं परमाद्भुतम् ।
अविचिन्त्यमसह्यं च मृतानां जीवनं पुनः ॥ १०
ये हताः प्रमथैर्दैत्या यथाशक्त्या रणाजिरे ।
ते समुज्जीविता भूयो भार्गवेणाथ विद्यया ॥ ११
तदिदं तैर्महादेव महत्कर्म कृतं रणे ।
संजातं स्वल्पमेवेश शुक्रविद्याबलाश्रयात् ॥ १२
इत्येवमुक्ते वचने नन्दिना कुलनन्दिना ।
प्रत्युवाच प्रभुः प्रीत्या स्वार्थसाधनमुत्तमम् ॥ १३
गच्छ शुक्रं गणपते ममान्तिकमुपानय ।
अहं तं संयमिष्यामि यथायोगं समेत्य हि ॥ १४
इत्येवमुक्तो रुद्रेण नन्दी गणपतिस्ततः ।
समाजगाम दैत्यानां चमूं शुक्रजिघृक्षया ॥ १५
तं ददर्शासुरश्रेष्ठो बलवान् हयकन्धरः ।
संरुरोध तदा मार्गं सिंहस्येव पशुर्वने ॥ १६
समुपेत्याहनन्नन्दी वज्रेण शतपर्वणा ।
स पपाताथ निःसंज्ञो ययौ नन्दी ततस्त्वरन् ॥ १७
ततः कुजम्भो जम्भश्च बलो वृत्रस्त्वयःशिराः ।
पञ्च दानवशार्दूला नन्दिनं समुपाद्रवन् ॥ १८
तथाऽन्ये दानवश्रेष्ठा मयह्लादपुरोगमाः ।
नानाप्रहरणा युद्धे गणनाथमभिद्रवन् ॥ १९
ततो गणानामधिपं कृष्यमानं महाबलैः ।
समपश्यन्त देवास्तं पितामहपुरोगमाः ॥ २०
तं दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा प्राह शक्रपुरोगमान् ।
साहाय्यं क्रियतां शंभोरेतदन्तरमुत्तमम् ॥ २१
पितामहोक्तं वचनं श्रुत्वा देवाः सवासवाः ।
समापतन्त वेगेन शिवसैन्यमथाम्बरात् ॥ २२

उस विद्या के प्रकट होने पर युद्ध में पहले मारे गये असुरेश्वर एवं दानव जीवित हो गये। (८)

तदनन्तर कुजम्भ आदि दैत्यों के पुनः उठ खड़े होने तथा युद्ध करने के लिए आने पर नन्दी ने शंकर से कहा— (९)

हे महादेव! आप मेरा परम अद्भुत वचन सुनिये। मरे हुए लोगों का पुनः जीवित हो जाना अकल्पनीय तथा असह्य है। (१०)

प्रमथों ने युद्ध में पराक्रमपूर्वक जिन दैत्यों को मारा था उन्हें भार्गव ने विद्या द्वारा फिर जीवित कर दिया। (११)

अतः हे महादेव! हे ईश! उन सभी ने युद्ध में जो महान् कर्म किया था वह शुक्र की विद्या के बल से अल्प हो गया। (१२)

कुल को आनन्द देनेवाले नन्दी के ऐसा कहने पर महादेव ने प्रेमपूर्वक स्वार्थ साधक उत्तम वचन कहा— (१३)

हे गणपति! तुम जाओ और शुक्र को मेरे पास लाओ। मैं उन्हें पाकर उपयुक्त योग का आश्रय कर संयत करूँगा। (१४)

रुद्र के ऐसा कहने पर गणपति नन्दी शुक्राचार्य को पकड़ लाने की इच्छा से दैत्यों की सेना में गये। (१५)

हयकन्धर नामक बलवान् श्रेष्ठ असुर ने उन्हें देखा और जिस प्रकार वन में सिंह का मार्ग पशु रोकता है, उसी प्रकार उनके मार्ग को रोका। (१६)

नन्दी ने समीप जाकर शतपर्व (वज्र) के द्वारा उसे मारा वह अचेत होकर गिर पड़ा। तदनन्तर नन्दी शीघ्र वहाँ से चले गये। (१७)

तदनन्तर कुजम्भ, जम्भ, बल, वृत्र, एवं अयःशिरा नामक पाँच श्रेष्ठ दानव नन्दी की ओर दौड़े। (१८)

इसी प्रकार युद्ध में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को धारण करने वाले मय एवं ह्लाद आदि दानवश्रेष्ठ भी नन्दी की ओर दौड़े। (१९)

तदनन्तर पितामहादि देवों ने महाबलवान् (दानवों) द्वारा खींचे जा रहे गणाधिप को देखा। (२०)

उसे देख कर भगवान् ब्रह्मा ने इन्द्र आदि देवताओं से कहा—इस उत्तम अवसर पर आप लोग शम्भु की सहायता करें। (२१)

पितामह के कहे वचन को सुनकर इन्द्रादि देवता आकाश से वेगपूर्वक शिव की सेना में आये। (२२)

तेषामापततां वेगः प्रमथानां बले बभौ ।
आपगानां महावेग पतन्तीनां महार्णवे ॥ २३
ततो हलहलाशब्द. समजायत चोभयोः ।
बलयोर्घोरसंकाशो सुरप्रमथयोरथ ॥ २४
तमन्तरमुपागम्य नन्दी सगृह्य वेगवान् ।
रथाद् भार्गवमाक्रामत् सिंहः क्षुद्रमृग यथा ॥ २५
तमादाय हराभ्याशमागमद् गणनायकः ।
निपात्य रक्षिणः सर्वानथ शुक्रं न्यवेदयत् ॥ २६
तमानीत कविं शर्वः प्राक्षिपद् वदने प्रभुः ।
भार्गवं त्वावृततनुं जठरे स न्यवेशयत् ॥ २७
स शंभुना कविश्रेष्ठो ग्रस्तो जठरमास्थितः ।
तुष्टाव भगवन्तं तं मुनिर्वाग्भिरथादरात् ॥ २८

शुक्र उवाच ।

वरदाय नमस्तुभ्यं हराय गुणशालिने ।
शंकराय महेशाय त्र्यम्बकाय नमो नमः ॥ २९
जीवनाय नमस्तुभ्यं लोकनाथ वृषाकपे ।
मदनाग्ने कालशत्रो वामदेवाय ते नम. ॥ ३०
स्थाणवे विश्वरूपाय वामनाय सदागते ।
महादेवाय शर्वाय ईश्वराय नमो नमः ॥ ३१
त्रिनयन हर भव शङ्कर उमापते जीमूतकेतो
गुहागृह श्मशाननिरत भूतिविलेपन शूलपाणे
पशुपते गोपते तत्पुरुषसत्तम नमो नमस्ते ।
इत्थं स्तुतः कविवरेण हरोऽथ भक्त्या
प्रीतो वरं वरय दद्मि तवेत्युवाच ।
स प्राह देववर देहि वरं ममाद्य
यद्वै तवैव जठरात् प्रतिनिर्गमोऽस्तु ॥ ३२
ततो हरोऽक्षीणि तदा निरुध्य
प्राह द्विजेन्द्राद्य विनिर्गमस्व ।
इत्युक्तमात्रो विभुना चचार
देवोदरे भार्गवपुंगवस्तु ॥ ३३
परिभ्रमन् ददर्शाथ शंभोरेवोदरे कविः ।
भुवनार्णवपातालान् वृतान् स्थावरजङ्गमैः ॥ ३४

समुद्र मे जाती हुई नदियों के महावेग के समान प्रमथों की सेना मे (आकाश से) आते हुए देवताओं का वेग शोभित हुआ । (२३)

उसके अनन्तर प्रमथों और असुरों दोनों पक्षों के सैन्यों मे भयकर हलहला शब्द उत्पन्न हुआ । (२४)

उसी समय अवसर पाकर वेगवान् नन्दी जैसे सिंह क्षुद्रमृग को पकडता है उसी प्रकार रथ से भार्गव को लेकर भागे । (२५)

गणनायक उन्हें लेकर सभी रक्षकों को मारते हुए शङ्कर के समीप पहुँचे एव उनके पास शुक्राचार्य को निवेदित किया । (२६)

प्रभु शकर ने लाये गये उन शुक्र को अपने मुख में फेंका और आवृत शरीर भार्गव को अपने उदर मे सन्निविष्ट कर लिया । (२७)

शम्भु से ग्रस्त होकर उनके उदर में स्थित हुए वे मुनि श्रेष्ठ शुक्र आदरपूर्वक उन भगवान् की स्तुति करने लगे । (२८)

शुक्र ने कहा—आप गुणशाली हर वरदाता को नमस्कार है । शङ्कर, महेश त्र्यम्बक को बार-बार नमस्कार है । (२९)

हे लोकनाथ ! हे वृषाकपि ! आप जीवनस्वरूप को नमस्कार है । हे कामदेव के लिये अग्निस्वरूप ! हे कालशत्रु ! आप वामदेव को नमस्कार है । (३०)

स्थाणु, विश्वरूप, वामन, सदागति, महादेव, शर्व और ईश्वर आपको बार बार नमस्कार है । (३१)

हे त्रिनयन ! हे हर ! हे भव ! हे शङ्कर ! हे उमापति ! हे जीमूतकेतु ! हे गुहागृह ! हे श्मशाननिरत ! हे भूतिविलेपन ! हे शूलपाणि ! हे पशुपति ! हे गोपति ! हे तत्पुरुषसत्तम ! आपको बार बार नमस्कार है ।

इस प्रकार कविवर के भक्ति से स्तुति करने पर शङ्कर ने कहा—मैं तुम से प्रसन्न हूँ । तुम वर माँगो मैं तुम्हें दूँगा । उन्होंने कहा—हे देववर ! इस समय मुझ यही वर दीजिये कि मैं पुन आपक जठर से बाहर निकलूँ । (३२)

तदनन्तर शङ्कर ने नेत्रों को बन्द कर कहा—हे द्विजेन्द्र ! अब तुम निकल आओ । विभु के एसा कहने पर व भार्गव श्रेष्ठ महादेव के उदर में विचरण करने लगे । (३३)

शुक्राचार्य ने परिभ्रमण करते हुए शकर के ही उदर में स्थावर एव जङ्गम प्राणियों से आवृत भुवन, समुद्र, एव पातालों को देखा । (३४)

द्वन्द्वयुद्धं समभवद् घोररूपं तपोधन ॥ ४७
अन्धको नन्दिन युद्धे शङ्कुकर्णं त्वय.शिराः ।
कुम्भध्वजं बलिर्धीमान् नन्दिषेणं विरोचनः ॥ ४८
अश्वग्रीवो विशाखं च शाखो वृत्रमयोधयत् ।
बाणस्तथा नैगमेयं बल राक्षसपुंगवः ॥ ४९
विनायको महावीर्यः परश्वधधरो रणे ।
संक्रुद्धो राक्षसश्रेष्ठं तुहुण्डं समयोधयत् ।
दुर्योधनश्च बलिनं घण्टाकर्णमयोधयत् ॥ ५०
हस्ती च कुण्डजठरं ह्लादो वीरं घटोदरम् ।
एते हि बलिना श्रेष्ठा दानवाः प्रमथास्तथा ।
संयोधयन्ति देवर्षे दिव्याब्दानां शतानि षट् ॥ ५१
शतक्रतुमथायान्त वज्रपाणिमभिस्थितम् ।
वारयामास बलवान् जम्भो नाम महासुरः ॥ ५२
शम्भुनामाऽसुरपतिः स ब्रह्माणमयोधयत् ।
महौजसं कुजम्भश्च विष्णु दैत्यान्तकारिणम् ॥ ५३

विवस्वन्तं रणे शाल्वो वरुणं त्रिशिरास्तथा ।
द्विमूर्धा पवनं सोमं राहुर्मित्रं विरूपधृक् ॥ ५४
अष्टौ ये वसवः ख्याता धराद्यास्ते महासुरान् ।
अष्टावेव महेष्वासान् वारयामासुराहवे ॥ ५५
सरभः शलभः पाकः पुरोऽथ विपृथुः पृथुः ।
वातापी चेल्वलश्चैव नानाशस्त्रास्त्रयोधिनः ॥ ५६
विश्वेदेवगणान् सर्वान् विष्वक्सेनपुरोगमान् ।
एक एव रणे रौद्रः कालनेमिर्महासुरः ॥ ५७
एकादशैव ये रुद्रास्तानेकोऽपि रणोत्कटः ।
योधयामास तेजस्वी विद्युन्माली महासुरः ॥ ५८
द्वावश्विनौ च नरको भास्करानेव शम्बरः ।
साध्यान् मरुद्गणांश्चैव निवातकवचादयः ॥ ५९
एव द्वन्द्वसहस्राणि प्रमथामरदानवैः ।
कृतानि च सुराब्दानां दशतीः षट् महामुने ॥ ६०
यदा न शकिता योद्धुं दैवतैरमरारयः ।

में भयङ्कर द्वन्द्व युद्ध हुआ। (४७)

अन्धक नन्दी के साथ, अय शिरा शङ्कुकर्ण के साथ, बुद्धिमान् बलि कुम्भध्वज के साथ एव विरोचन नन्दिषेण के साथ युद्ध करने लगा। (४८)

अश्वग्रीव विशाख के साथ और शाख वृत्र के साथ, बाण नैगमेय के साथ एव राक्षसपुगव बल के साथ लड़ने लगा। (४९)

महावीर्यवान् परशुधारी विनायक युद्ध मे क्रुद्ध होकर राक्षसश्रेष्ठ तुहुण्ड के साथ लडने लगे एव दुर्योधन बलवान् घण्टाकर्ण के साथ युद्ध करने लगा। (५०)

हस्ती कुण्डजठर के साथ एव ह्लाद वीर घटोदर से लडने लगा। हे देवर्षि! बलवानों में श्रेष्ठ ये सभी दानव एव प्रमथगण परस्पर छ सौ दिव्य वर्षों तक युद्ध करते रहे। (५१)

जम्भ नामक बलवान् महान् असुर ने आ रहे वज्रपाणि इन्द्र को रोका। (५२)

शम्भु नामक असुरराज ब्रह्मा से लडने लगा एव कुजम्भ महान् ओजस्वी दैत्यान्तकारी विष्णु से युद्ध करने लगा। (५३)

शाल्व सूर्य से, त्रिशिरा वरुण से, द्विमूर्धा पवन से, राहु सोम से एव विरूपधृक् मित्र से युद्ध करने लगा। (५४)

धरादि नाम से प्रसिद्ध आठ वसुओं ने सरभ, शलभ, पाक पुर, विपृथु, पृथु, वातापी एव इल्वल-इन आठ महान् धनुर्धर असुरों का युद्ध में सामना किया। ये असुर अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र लेकर लडने लगे। कालनेमि नामक भयङ्कर महासुर युद्ध में एकाकी ही विष्वक्सेनादि विश्वेदेव गणों से युद्ध करने लगा। (५५-५७)

रणोत्कट तेजस्वी विद्युन्माली नामक महासुर ने अकेले ही एकादश रुद्रों का सामना किया। (५८)

नरक ने दोनों अश्विनीकुमारों से, शम्बर ने (द्वादश) भास्करों से एव निवातकवचादि ने साध्यों तथा मरुद्गणों से युद्ध किया। (५९)

हे महामुने! इस प्रकार साठ दिव्य वर्षों तक प्रमथों एव दानवों के सहस्रों युग्म परस्पर द्वन्द्वयुद्ध करते रहे। (६०)

जब असुर गण देवों से युद्ध करने मे असमर्थ हो गए तो उन लोगों ने माया का आश्रयकर देवों का क्रमश

तदा मायां समाश्रित्य ग्रसन्त नमतोऽव्ययान् ॥ ६१
ततोऽभवच्छैलपृष्ठं प्रावृडभ्रसमप्रभैः ।
आवृतं वर्जितं मर्त्यैः प्रमथैरमरैरपि ॥ ६२
दृष्ट्वा शून्यं गिरिप्रस्थं ग्रस्तांश्च प्रमथामरान् ।
क्रोधादुत्पादयामास रुद्रो जृम्भायिका वशी ॥ ६३
तया स्पृष्टा दनुसुता अलसा मन्दभाषिणः ।
वदन निकृतं कृत्वा मुक्तशस्त्रं निजृम्भिरे ॥ ६४
जृम्भमाणेषु च तदा दानवेषु गणेश्वरा ।
सुराश्च निर्ययुस्तूर्णं दैत्यदेहेभ्य आकुलाः ॥ ६५
मेघप्रभेभ्यो दैत्येभ्यो निर्गच्छन्तोऽमरोत्तमाः ।
शोभन्ते पद्मपत्राक्षा मेघेभ्य इव विद्युत ॥ ६६
गणामरेषु च समं निर्गतेषु तपोधन ।
अयुध्यन्त महात्मानो भूय एवातिकोपिताः ॥ ६७
ततस्तु देवैः सगणैः दानवाः शर्वपालितैः ।
पराजीयन्त संग्रामे भूयो भूयस्त्वहर्निशम् ॥ ६८
ततस्त्रिनेत्रः स्वां संध्यां सप्ताब्दशतिके गते ।
कालेऽभ्युपागत तदा सोऽष्टादशभुजोऽव्ययः ॥ ६०
संस्पृश्यापः सरस्वत्यां स्नात्वा च विधिना हरः ।
कृतार्थो भक्तिमान् मूर्ध्ना पुष्पाञ्जलिमुपाक्षिपत् ॥ ७०
ततो ननाम शिरसा ततश्चक्रे प्रदक्षिणम् ।
हिरण्यगर्भेत्यादित्यमुपतस्थे जजाप ह ॥ ७१
त्वष्ट्रे नमो नमस्तेऽस्तु सम्यगुच्चार्य शूलधृक् ।
ननर्त भावगम्भीरं दोर्दण्डं भ्रामयन् बलात् ॥ ७२
परिनृत्यति देवेशे गणाश्चैवामरास्तथा ।
नृत्यन्ते भावसंयुक्ता हरस्यानुविलासिनः ॥ ७३
सन्ध्यामुपास्य देवेशः परिनृत्य यथेच्छया ।
युद्धाय दानवैः सार्द्धं मतिं भूयः समादधे ॥ ७४
ततोऽमरगणैः सर्वैस्त्रिनेत्रभुजपालितैः ।
दानवा निर्जिताः सर्वे बलिभिर्भयवर्जितः ॥ ७५
स्वबलं निर्जितं दृष्ट्वा मत्वाऽजेयं च शंकरम् ।
अन्धकः सुन्दमाहूय इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७६
सुन्द भ्राताऽसि मे वीर विश्वास्यः सर्ववस्तुषु ।

ग्रास करना प्रारम्भ किया। (६१)

तदनन्तर समस्त प्रमथों एवं देवों से रहित पर्वत वर्षाकालीन मेघ के सदृश दानवों से आवृत हो गया। (६२)

पर्वत प्रदेश को शून्य एवं प्रमथों तथा देवों को ग्रस्त हुआ देखकर जितेन्द्रिय रुद्र ने क्रोध से जृम्भायिका को उत्पन्न किया। (६३)

उसके स्पर्श करने पर अस्त्रों को छोड़कर मन्दभाषण करते हुए आलस्यपूर्ण दानव मुख को विकृत कर जम्हाई लेने लगे। (६४)

दानवों के जम्हाई लेते समय आकुल गणेश्वर एवं देवता लोग शीघ्रता पूर्वक दैत्यों की देह से बाहर निकल गये। (६५)

मेघ सदृश दैत्यों के (शरीर से) बाहर निकल रहे कमल के समान नेत्र वाले श्रेष्ठ देवगण मेघ से प्रकट होने वाली विद्युत् के सदृश शोभित हो रहे थे। (६६)

हे तपोधन! गणों और देवों के निकल आने पर वे महात्मा (दैत्य) अति क्रुद्ध होकर युद्ध करने लगे। (६७)

तदनन्तर शम्भुपालित गणों एवं देवों ने संग्राम में दानवों को अहर्निश बारम्बार पराजित किया। (६८)

तदनन्तर सात सौ वर्षों का समय व्यतीत हो जाने पर अष्टादश भुजाओं वाले अव्यय त्रिनेत्र अपनी सन्ध्या करने लगे। (६९)

जल का स्पर्श कर विधिपूर्वक सरस्वती में स्नान कर कृतार्थ भक्तिमान् शंकर ने मस्तक से पुष्पाञ्जलि अर्पित की। (७०)

तदनन्तर शिर से प्रणाम एवं तदनन्तर प्रदक्षिणा कर 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि मन्त्र से सूर्य की वन्दना और जप किया। (७१)

तदुपरान्त 'त्वष्ट्रे नमो नमस्तेऽस्तु' इसका सम्यक् रूप से उच्चारण कर शूलपाणि बलपूर्वक भुजदण्ड घुमाते हुए भावगम्भीर होकर नाचने लगे। (७२)

देवेश्वर के नाचने पर गण और देवता भी भक्तियुक्त होकर हर का अनुगमन करते हुए नाचने लगे। (७३)

सन्ध्योपासन कर यथेच्छ नृत्य के बाद देवेश ने पुनः दानवों से युद्ध करने का विचार किया। (७४)

तदनन्तर शङ्कर की भुजाओं से रक्षित बलवान् एवं भयरहित समस्त देवों ने समस्त दानवों को जीत लिया। (७५)

अपनी सेना को पराजित देख तथा महादेव को अजेय जानकर अन्धक ने सुन्द को बुलाकर यह वचन कहा—(७६)

हे वीर सुन्द! तुम मेरे भाई हो और सभी विषयों में तुम मेरे विश्वासपात्र हो। अतः आज मैं तुमसे जो कहता हूँ

तद्वदाम्यद्य यद्वाक्यं तच्छ्रुत्वा यत्क्षमं कुरु ॥ ७७
दुर्जयोऽसौ रणपटुर्धर्मात्मा कारणान्तरैः ।
समास्ते हि हृदये पद्माक्षी शैलनन्दिनी ॥ ७८
तदुत्तिष्ठस्व गच्छामो यत्रास्ते चारुहासिनी ।
तत्रैना मोहयिष्यामि हररूपेण दानव ॥ ७९
भवान् भवस्यानुचरो भव नन्दी गणेश्वरः ।
ततो गत्वाऽथ भुक्त्वा तां जेष्यामि प्रमथान् सुरान् ॥ ८०
इत्येवमुक्ते वचने बाढं सुन्दोऽभ्यभाषत ।
समजायत शैलादिरन्धकः शंकरोऽप्यभूत् ॥ ८१
नन्दिरुद्रौ ततो भूत्वा महासुरचमूपती ।
सम्प्राप्तौ मन्दरगिरिं प्रहारैः क्षतविग्रहौ ॥ ८२
हस्तमालम्ब्य सुन्दस्य अन्धको हरमन्दिरम् ।
विवेश निर्विशङ्केन चित्तेनासुरसत्तमः ॥ ८३
ततो गिरिसुता दूरादायान्तं वीक्ष्य चान्धकम् ।
महेश्वरवपुश्छन्नं प्रहारैर्जर्जरच्छविम् ॥ ८४
सुन्दं शैलादिरूपस्थमवष्टभ्याविशत् ततः ।
तं दृष्ट्वा मालिनीं प्राह सुयशां विजयां जयाम् ॥ ८५
जये पश्यस्व देवस्य मदर्थे विग्रहं कृतम् ।
शत्रुभिर्दानववरैस्तदुत्तिष्ठस्व सत्वरम् ॥ ८६
घृतमानय पौराणं बीजिकां लवणं दधि ।
व्रणभङ्गं करिष्यामि स्वयमेव पिनाकिनः ॥ ८७
कुरुष्व शीघ्रं सुयशे स्वभर्तुर्व्रणनाशनम् ।
इत्येवमुक्त्वा वचनं समुत्थाय वरासनात् ॥ ८८
अभ्युद्ययौ तदा भक्त्या मन्यमाना वृषध्वजम् ।
शूलपाणेस्ततः स्थित्वा रूपं चिह्नानि यत्नतः ॥ ८९
अन्विष्येष ततो ब्रह्मन्नोभौ पार्श्वस्थितौ वृषौ ।
सा ज्ञात्वा दानवं रौद्रं मायाच्छादितविग्रहम् ॥ ९०
अपयानं तदा चक्रे गिरिराजसुता मुने ।
देव्याश्चिन्तितमाज्ञाय सुन्दं त्यक्त्वान्धकोऽसुरः ॥ ९१
समाद्रवत वेगेन हरकान्तां विभावरीम् ।
समाद्रवत दैतेयो येन मार्गेण साऽगमत् ॥ ९२
अपस्फारान्तरं भञ्जन् पादप्लुतिभिराकुलः ।

उसे सुनकर यथाशक्ति पूर्ण करो । (७७)

किसी कारणवश यह रणपटु धर्मात्मा दुर्जेय है। मेरे हृदय में कमलनयनी पार्वती समासीन हैं। (७८)

अतः उठो। हम वहाँ चलें जहाँ वह सुहासिनी स्थित है। हे दानव! वहाँ मैं शङ्कर के रूप से उसे मोहित करूँगा। (७९)

तुम शङ्कर का अनुचर गणेश्वर नन्दी बनो। तदनन्तर वहाँ जाकर उसका भोगकर प्रमथों एवं देवों को जीतूँगा। (८०)

ऐसा कहने पर सुन्द ने कहा—ठीक है। तदनन्तर वह शैलादि (नन्दी) बन गया एवं अन्धक शिव बन गया। (८१)

तदनन्तर महासुर (अन्धक) एवं सेनापति (सुन्द) प्रहारों से क्षत विक्षत शरीर वाले रुद्र और नन्दी का रूप धारण कर मन्दर गिरि पर पहुँचे। (८२)

सुन्द का हाथ पकड़कर असुरश्रेष्ठ अन्धक निर्भयचित्त से महादेव के मन्दिर में प्रविष्ट हुआ। (८३)

तदनन्तर शैलादि नन्दी के वेश में स्थित सुन्द को पकड़कर प्रहारों से जर्जरित महादेव के शरीर में प्रच्छन्न अन्धक को दूर से आते हुए देखकर पार्वती ने यशस्विनी मालिनी, विजया तथा जया से कहा— (८४ ८५)

हे जये! देखो! दानव-शत्रुओं ने मेरे लिए स्वामी का शरीर कैसा कर डाला है। अतः शीघ्र उठो। (८६)

पुराना घृत, बीजिका, लवण एवं दधि लाओ। मैं स्वयं ही पिनाकी शंकर के व्रणों को भरूँगी। (८७)

हे यशस्विनी! शीघ्र अपने स्वामी के घावों को भरो। ऐसा कहते हुए आसन से उठकर उन्हें वृषध्वज मानती हुई वे भक्ति पूर्वक उसके समीप गईं। तदनन्तर खड़ी होकर वे शंकर के रूप एवं लक्षणों को भलीभाँति देखने लगीं। हे ब्रह्मन्! उन्होंने देखा कि उनके पार्श्व में स्थित दोनों वृष नहीं हैं। अतः उन्हें ज्ञात हो गया कि यह माया से प्रच्छन्न शरीर वाला भयङ्कर दानव है। (८८ ९०)

हे मुने! तदनन्तर गिरिराजपुत्री भाग गईं। देवी के विचार को जानकर अन्धकासुर सुन्द को छोड़कर वेग पूर्वक शंकर प्रिया विभावरी के पीछे उसी मार्ग से दौड़ने लगा जिससे वे गई थीं। (९१ ९२)

चरणचपेटों से राह के अवरोधों को चूर चूर करते हुए

तमापतन्तं दृष्ट्वैव गिरिजा प्राद्रवद् भयात् ॥ ९३
गृहं त्यक्त्वा ह्युपवनं सखीभिः सहिता तदा ।
तत्राप्यनुजगामासौ मदान्धो मुनिपुंगव ॥ ९४
तथापि न शशापैनं तपसो गोपनाय तु ।
तद्भयादाविशद् गौरी श्वेतार्ककुसुमं शुचि ॥ ९५
विजयाद्या महागुल्मे संप्रयाता लयं मुने ।
नष्टायामथ पार्वत्यां भूयो हैरण्यलोचनिः ॥ ९६
सुन्दं हस्ते समादाय स्वसैन्यं पुनरागमत् ।
अन्धके पुनरायाते स्वबलं मुनिसत्तम ॥ ९७
प्रावर्तत महायुद्धं प्रमथासुरयोरथ ।
ततोऽमरगणश्रेष्ठो विष्णुश्चक्रगदाधरः ॥ ९८
निजघानासुरबलं शंकरप्रियकाम्यया ।
शार्ङ्गचापच्युतैर्बाणैः सस्यूता दानवर्षभाः ॥ ९९
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ वा प्रच्नपादैर्घना इव ।
गदया कांश्चिदवधीत् चक्रेणान्यान् जनार्दनः ॥ १००
खड्गेन च चकर्तान्यान् दृष्ट्याऽन्यान् भस्मसाद् व्यधात् ।
हलेनाकृष्य चैवान्यान् मुसलेन व्यचूर्णयत् ॥ १०१
गरुडः पक्षपाताभ्यां तुण्डेनाप्युरसाऽहनत् ।
स चादिपुरुषो धाता पुराणः प्रपितामहः ॥ १०२
भ्रामयन् विपुलं पद्मभ्यषिञ्चत वारिणा ।
संस्पृष्टा ब्रह्मतोयेन सर्वतीर्थमयेन हि ॥ १०३
गणामरगणाश्चासन् नवनागशताधिकाः ।
दानवास्तेन तोयेन संस्पृष्टाश्चाघहारिणा ॥ १०४
सवाहनाः क्षयं जग्मुः कुलिशेनेव पर्वताः ।
दृष्ट्वा ब्रह्महरी युद्धे घातयन्तौ महासुरान् ॥ १०५
शतक्रतुश्च दुद्राव प्रगृह्य कुलिशं बली ।
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य बली दानवसत्तमः ॥ १०६
मुक्त्वा देवं गदापाणिं विमानस्थं च पद्मजम् ।
शक्रमेवाद्रवद् योद्धुं मुष्टिमुद्यम्य नारद ।
बलवान् दानवपतिरजेयो देवदानवैः ॥ १०७
तमापतन्तं त्रिदशेश्वरस्तु
दोर्ष्णा सहस्रेण ययानलेन ।

वह व्याकुलतापूर्वक दौड़ा । उसे आते देख गिरिजा भय से भागीं । (९३)

हे मुनिपुंगव ! तदनन्तर देवी सखियों के साथ गृह छोड़कर उपवन में चली गयीं । वहाँ भी मदान्ध (अन्धक) ने उनका अनुसरण किया । (९४)

इतने पर भी अपने तप की रक्षा के लिए उन्होंने उसे शाप नहीं दिया । गौरी उसके भय से पवित्र शुक्ल अर्कपुष्प में लीन हो गयीं । (९५)

हे मुने ! विजया आदि भी घनी झाड़ियों में लीन हो गयीं । तदनन्तर पार्वती के लुप्त हो जाने पर हिरण्याक्षपुत्र (अन्धक) सुन्द का हाथ पकड़कर पुन अपनी सेना में चला गया । हे मुनिसत्तम ! अन्धक के पुन अपनी सेना में लौट आने पर प्रमथों एव असुरों मे महायुद्ध होने लगा । तदनन्तर सुरश्रेष्ठ चक्रगदाधर विष्णु शङ्कर का प्रिय करने की कामना से असुर सेना का वध करने लगे । शार्ङ्ग धनुष से निकले बाणों से पाँच, छ, सात या आठ श्रेष्ठ दानव उसी प्रकार विद्ध होने लगे जैसे सूर्य की किरणों से मेघ विद्ध होते हैं । जनार्दन ने कुछ को गदा से एव कुछ को चक्र से मार डाला । (९६-१००)

किन्हीं को खड्ग के द्वारा काट डाला और किन्हीं को दृष्टि से भस्म कर दिया तथा कुछ असुरों को हल द्वारा खींचकर मुसल से चूर्ण कर दिया । (१०१)

गरुड़ ने अपने दोनों परों, चोंच तथा वक्ष से अनेक दैत्यों को मार डाला । पुरातन आदिपुरुष धाता प्रपितामह ने महान् पद्म को घुमाते हुए सभी को जल से सिञ्चित किया । सर्वतीर्थमय ब्रह्मतोय का स्पर्श होने से गण एवं देवता लोग सौ नव हाथियों से अधिक बलवान् हो गए । तथा उस पापहारी जल के स्पर्श से वाहन-सहित दानव इस प्रकार नष्ट होने लगे जैसे वज्र से पर्वत नष्ट होते हैं । ब्रह्मा एव विष्णु को युद्ध मे महासुरों को मारते देखकर बलवान् इन्द्र भी अपना वज्र लेकर दौड़े । हे नारद ! उन्हें आते देखकर देवों तथा दानवों से अजेय दानवश्रेष्ठ बलवान् दानवपति बल देव गदाधर एवं विमानस्थ ब्रह्मा को छोड़कर मुष्टि को उठाये हुए इन्द्र से ही लड़ने के लिए दौड़ा । (१०२-१०७)

उसे आते देख त्रिदशेश्वर इन्द्र ने सहस्र भुजाओं से अपनी शक्ति भर वज्र को घुमाते हुए बल के मस्तक पर हे मूढ़ ।

वज्रं परिभ्राम्य बलस्य मूर्ध्नि
चिक्षेप हे मूढ हतोऽस्युदीर्य ॥ १०८
स तस्य मूर्ध्नि प्रवरोऽपि वज्रो
जगाम तूर्णं हि सहस्रधा मुने।
बलोऽद्रवद् देवपतिश्च भीतः
पराङ्मुखोऽभूत् समरान्महर्षे ॥ १०९
तं चापि जम्भो विमुखं निरीक्ष्य
भूत्वाऽग्रतः प्राह न युक्तमेतत्।
तिष्ठस्व राजाऽसि चराचरस्य
न राजधर्मे गदितं पलायनम् ॥ ११०
सहस्राक्षो जम्भवाक्यं निशम्य
भीतस्तूर्णं विष्णुमागान्महर्षे।
उपेत्याह श्रूयतां वाक्यमीश
त्वं मे नाथो भूतभव्येश विष्णो ॥ १११
जम्भस्तर्जयतेऽत्यर्थं मां निरायुधमीक्ष्य हि।
आयुधं देहि भगवन् त्वामहं शरणं गतः ॥ ११२
तमुवाच हरिः शक्र त्यक्त्वा दर्पं व्रजाधुना।
प्रार्थयस्वायुधं वह्निं स ते दास्यत्यसंशयम् ॥ ११३
जनार्दनवचः श्रुत्वा शक्रस्त्वरितविक्रमः।
शरणं पावकमगादिदं चोवाच नारद ॥ ११४
शक्र उवाच।
निघ्नतो मे बलं वज्रं कृशानो शतधा गतम्।
एष चाहूयते जम्भस्तस्माद्देह्यायुधं मम ॥ ११५
पुलस्त्य उवाच।
तमाह भगवान् वह्निः प्रीतोऽस्मि तव वासव।
यत्त्वं दर्पं परित्यज्य मामेव शरणं गतः ॥ ११६
इत्युच्चार्य स्वशक्त्यास्तु शक्तिं निष्क्राम्य भावतः।
प्रादादिन्द्राय भगवान् रोचमानो दिवं गत. ॥ ११७
तामादाय तदा शक्तिं शतघण्टां सुदारुणाम्।
प्रत्युद्ययौ तदा जम्भं हन्तुकामोऽरिमर्दन. ॥ ११८
तेनातियशसा दैत्य. सहसैवाभिसंद्रुतः।
क्रोधं चक्रे तदा जम्भो निजघान गजाधिपम् ॥ ११९
जम्भमुष्टिनिपातेन भग्नकुम्भकटो गज.।
निपपात यथा शैलः शक्रवज्रहतः पुरा ॥ १२०

तुम मारे गये' कह कर फेंका। (१०८)

हे मुनि! वह श्रेष्ठ वज्र भी उसके शिर पर शीघ्र हजारों खण्डों में विभक्त हो गया। बल (इन्द्र की ओर) दौड़ा। हे महर्षि! भयभीत होकर देवराज युद्ध से पराङ्मुख हो गये। (१०९)

उन्हें विमुख होते देख जम्भ ने आगे आकर कहा—यह उचित नहीं है। रुकिए, आप चराचर के राजा हैं। राजधर्म में पलायन करने का विधान नहीं है। (११०)

हे महर्षि! जम्भ का वचन सुनकर भयभीत इन्द्र शीघ्र विष्णु के समीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने कहा—हे ईश! मेरी बात आप सुनें। हे भूत तथा भव्य के स्वामी विष्णु! आप मेरे नाथ हैं। (१११)

निरायुध देखकर जम्भ मुझे अतिशय तर्जित कर रहा है। हे भगवन्! आप मुझे आयुध प्रदान करें। मैं आपकी शरण में आया हूँ। (११२)

विष्णु ने इन्द्र से कहा—इस समय दर्प छोड़कर तुम अग्नि के समीप जाकर उनसे आयुध की प्रार्थना करो। वे निस्सन्देह तुम्हें प्रदान करेंगे। (११३)

हे नारद! जनार्दन की बात सुनकर शीघ्र गति वाले इन्द्र अग्नि की शरण में गये और यह कहा। (११४)

इन्द्र ने कहा—हे अग्नि! बल को मारने में मेरा वज्र सैकड़ों खण्ड हो गया। यह जम्भ मुझे ललकार रहा है। अत आप मुझे आयुध प्रदान करें। (११५)

पुलस्त्य ने कहा—भगवान् वह्नि ने उनसे कहा—हे वासव! मैं आपके ऊपर प्रसन्न हूँ। क्योंकि आप दर्प को छोड कर मेरी शरण मे आये हैं। (११६)

ऐसा कहने के उपरान्त प्रकाशमान् भगवान् अग्नि ने भावपूर्वक अपनी शक्ति से एक अन्य शक्ति निकाल कर इन्द्र को दिया एवं स्वर्ग चले गये। (११७)

शत्रुमर्दन इन्द्र उस शतघण्टाओं से युक्त भीषण शक्ति को लेकर जम्भ को मारने के लिए गये। (११८)

उन अति यशस्वी के सहसा पीछा करने पर जम्भ ने क्रोधपूर्वक गजाधिप (ऐरावत) पर प्रहार किया। (११९)

जम्भ की मुट्ठी के प्रहार से हाथी का कुम्भस्थल भग्न हो गया। तदनन्तर वह इस प्रकार गिर पड़ा जैसे पूर्वकाल मे इन्द्र के वज्र से आहत पर्वत गिरता था। (१२०)

पतमानाद् द्विपेन्द्रात्तु शक्रश्चाप्लुत्य वेगवान् ।
त्यक्त्वैव मन्दरगिरिं पपात वसुधातले ॥ १२१
पतमानं हरिं सिद्धाश्चारणाश्च तदाब्रुवन् ।
मा मा शक्र पतस्वाद्य भूतले तिष्ठ वासव ॥ १२२
स तेषां वचनं श्रुत्वा योगी तस्थौ क्षणं तदा ।
प्राह चैतान् कथं योत्स्ये अपत्रः शत्रुभिः सहः ॥ १२३
तमूचुर्देवगन्धर्वा मा विषादं व्रजेश्वर ।
युध्यस्व त्वं समारुह्यप्रेषयिष्याम यद् रथम् ॥ १२४
इत्येवमुक्त्वा विपुलं रथं स्वस्तिकलक्षणम् ।
वानरध्वजसंयुक्तं हरिभिर्हरिभिर्युतम् ॥ १२५
शुद्धजाम्बूनदमयं किङ्किणीजालमण्डितम् ।
शक्राय प्रेषयामासुर्विश्वावसुपुरोगमाः ॥ १२६
तमागतमुदीक्ष्याथ हीनं सारथिना हरिः ।
प्राह योत्स्ये कथं युद्धे संयमिष्ये कथं हयान् ॥ १२७
यदि कश्चिद्धि सारथ्यं करिष्यति ममाधुना ।
ततोऽहं घातये शत्रून् नान्यथेति कथंचन ॥ १२८
ततोऽब्रुवंस्ते गन्धर्वा नास्माकं सारथिर्विभो ।
विद्यते स्वयमेवाश्वांस्त्वं संयन्तुमिहार्हसि ॥ १२९
इत्येवमुक्ते भगवांस्त्यक्त्वा स्यन्दनमुत्तमम् ।
क्ष्मातलं निपपातैव परिभ्रष्टस्रगम्बरः ॥ १३०
चलन्मौलिर्मुक्तकचः परिभ्रष्टायुधाङ्गदः ।
पतमानं सहस्राक्षं दृष्ट्वा भूः समकम्पत ॥ १३१
पृथिव्यां कम्पमानायां शमीकस्तपस्विनी ।
भार्याऽब्रवीत् प्रभो बालं बहिः कुरु यथासुखम् ॥ १३२
स तु शीलावचः श्रुत्वा किमर्थमिति चाब्रवीत् ।
सा चाह श्रूयतां नाथ दैवज्ञपरिभाषितम् ॥ १३३
यदेयं कम्पते भूमिस्तदा प्रक्षिप्यते बहिः ।
यद्द्रव्यं ततो मुनिश्रेष्ठ तद् भवेद् द्विगुणं मुने ॥ १३४
एतद्वाक्यं तदा श्रुत्वा बालमादाय पुत्रकम् ।
निराशङ्को बहिः शीघ्रं प्राक्षिपद् क्ष्मातले द्विजः ॥१३५
भूयो गोयुगलार्थाय प्रविष्टो भार्यया द्विजः ।
निवारितो गता वेला अर्द्धहानिर्भविष्यति ॥ १३६

गिर रहे गजेन्द्र से इन्द्र वेग पूर्वक उछले एवं मन्दर पर्वत को भी छोड़कर पृथ्वी पर गिरे। (१२१)

तदनन्तर गिर रहे इन्द्र से सिद्धों एवं चारणों ने कहा—हे इन्द्र! पृथ्वी पर न गिरें। आप रुकें। (१२२)

उनकी बात सुनकर योगी इन्द्र उस समय क्षणभर के लिए ठहर गए और बोले—मैं वाहन रहित होकर इन शत्रुओं से कैसे लड़ूँगा? (१२३)

देवताओं और गन्धर्वों ने उत्तर दिया—हे ईश्वर! आप विषण्ण न हों। हम लोग जो रथ भेज रहे हैं, उस पर आरूढ होकर आप युद्ध करें। (१२४)

ऐसा कहकर विश्वावसु आदि ने स्वस्तिकाकार, कपिध्वज संयुक्त, हरितवर्ण के अश्वों से युक्त, शुद्ध स्वर्ण से निर्मित तथा किङ्किणीजालमण्डित विपुल रथ इन्द्र के लिये भेजा। (१२५-१२६)

इन्द्र उस सारथिरहित रथ को देखकर बोले—कैसे मैं युद्ध में लड़ूँगा और कैसे घोड़ों को संयत करूँगा? (१२७)

इस समय यदि कोई मेरे सारथि का काम करे तो मैं शत्रुओं का नाश कर सकता हूँ, अन्य किसी प्रकार नहीं। (१२८)

तदनन्तर गन्धर्वों ने कहा—हे विभो! हमारे पास कोई सारथि नहीं है। आप स्वयं अश्वों को संयत कर सकते हैं। (१२९)

ऐसा कहने पर भगवान् इन्द्र अस्तव्यस्त माला और वस्त्रों के साथ पृथ्वी पर गिरे। (१३०)

(पृथ्वी पर गिरते समय इन्द्र का) शिर हिल रहा था, उनके केश बिखर गये थे एवं उनके आयुध तथा अङ्गद नीचे गिर पड़े थे। इन्द्र को गिरते देख पृथ्वी कम्पित होने लगी। (१३१)

पृथ्वी के काँपने पर शमीक ऋषि की तपस्विनी पत्नी ने कहा—प्रभो! बालक को सुखपूर्वक बाहर ले जाइये। (१३२)

उन्होंने शीला की बात सुनकर कहा—क्यों? उसने कहा—हे नाथ! सुनिये, ज्योतिषियों का कथन है कि इस भूमि के कम्पित होने पर वस्तुएँ बाहर निकाल दी जाती हैं। क्योंकि हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय बाहर स्थित वस्तु द्विगुणित हो जाती है। (१३३-१३४)

इस वाक्य को सुनकर उस समय ब्राह्मण ने अपने बालक पुत्र को लेकर तत्काल शंकारहित होकर बाहर भूतल पर फेंक दिया। (१३५)

पुन दो गायों के लिये भीतर प्रविष्ट होने पर पत्नी ने ब्राह्मण को मना करते हुए कहा—वेला समाप्त हो गई अब

इत्येवमुक्ते देवर्षे बहिर्निर्गम्य वेगवान् ।
ददर्श बालद्वितयं समरूपमवस्थितम् ॥ १३७
तं दृष्ट्वा देवताः पूज्य भार्यां चाद्भुतदर्शनाम् ।
प्राह तत्त्वं न विन्दामि यत् पृच्छामि वदस्व तत् ॥१३८
बालस्यास्य द्वितीयस्य के भविष्यद्गुणा वद ।
भाग्यानि चास्य यचोक्तं कर्म तत् कथयाधुना ॥ १३९
साऽब्रवीन्नाद्य ते वक्ष्ये वदिष्यामि पुनः प्रभो ।
सोऽब्रवीद् वद मेऽद्यैव नोचेन्नाश्नामि भोजनम् ॥ १४०
सा प्राह श्रूयतां ब्रह्मन् वदिष्ये वचनं हितम् ।
कातरेणाथ यत्पृष्टं भाव्यः कारुरयं किल ॥ १४१
इत्युक्तवति वाक्ये तु बाल एव त्वचेतनः ।
जगाम साह्यं शक्रस्य कर्तुं सौत्यविशारदः ॥ १४२
तं व्रजन्तं हि गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः ।
ज्ञात्वेन्द्रस्यैव साहाय्ये तेजसा समवर्धयन् ॥ १४३
गन्धर्वतेजसा युक्तः शिशुः शक्रं समेत्य हि ।
प्रोवाचैहेहि देवेश प्रियो यन्ता भवामि ते ॥ १४४
तच्छ्रुत्वास्य हरिः प्राह कस्य पुत्रोऽसि बालक ।
संयन्ताऽसि कथं चाश्वान् संशयः प्रतिभाति मे ॥१४५
सोऽब्रवीदृषितेजोत्थं क्ष्माभवं विद्धि वासव ।
गन्धर्वतेजसा युक्तं वाजियानविशारदम् ॥ १४६
तच्छ्रुत्वा भगवाञ्छक्रः खं भेजे योगिनां वरः ।
स चापि विप्रतनयो मातलिर्नामविश्रुतः ॥ १४७
ततोऽधिरूढस्तु रथं शक्रस्त्रिदशपुंगवः ।
रश्मीन् शमीकतनयो मातलिः प्रगृहीतवान् ॥ १४८
ततो मन्दरमागम्य विवेश रिपुवाहिनीम् ।
प्रविशन् ददृशे श्रीमान् पतितं कार्मुकं महत् ॥ १४९
सशरं पञ्चवर्णाभं सितरक्तासितारुणम् ।
पाण्डुच्छायं सुरश्रेष्ठस्तं जग्राह समार्गणम् ॥ १५०
ततस्तु मनसा देवान् रजःसत्त्वतमोमयान् ।
नमस्कृत्य शरं चापे साधिज्ये विनियोजयत् ॥ १५१

इस समय अध्याय की हानि हो जायेगी। (१३६)

हे देवर्षि! ऐसा कहने पर (ब्राह्मण ने) वेगपूर्वक बाहर निकल कर देखा कि समानरूप के दो बालक पड़े हुए हैं। (१३७)

उन्हें देखकर उसने देवताओं की पूजा करने के उपरान्त अपनी अद्भुत ज्ञानी भार्या से कहा—मैं इसका तत्त्व नहीं जानता। अत. मैं जो पूछता हूँ उसे बतलाओ। (१३८)

यह बतलाओ कि इस दूसरे बालक में कौन से गुण होंगे? इसके भाग्यों एवं कर्मों को भी तुम अभी बतलाओ। (१३९)

पत्नी ने कहा—हे प्रभो! मैं तुम्हें आज नहीं बतलाऊँगी। दूसरे समय कहूँगी। उन्होंने कहा—आज ही मुझे बताओ, अन्यथा मैं भोजन नहीं करूँगा। (१४०)

उसने कहा—हे ब्रह्मन्! सुनिये, मैं सही बात कहती हूँ। आपने कातरता पूर्वक जो पूछा है उससे यह (बालक) निश्चय ही कारु (शिल्पी) होगा। (१४१)

ऐसा कहे जाने पर अबोध (अवस्था में) होते हुए भी वह सूतकर्म कुशल बालक इन्द्र की सहायता हेतु गया। (१४२)

विश्वावसु आदि गन्धर्वों ने इन्द्र की सहायतार्थ जा रहे उस बालक को जानकर उसके तेज को बढ़ाया। (१४३)

गन्धर्वों के तेज से सम्पन्न शिशु ने इन्द्र के समीप जाकर कहा—हे देवेश! आइये, मैं आपका प्रिय सारथी बनूँगा। (१४४)

उसे सुनकर इन्द्र ने कहा—हे बालक! तुम किसके पुत्र हो? कैसे तुम अश्वों का संयमन करोगे? इस विषय में मुझे संशय हो रहा है। (१४५)

उसने कहा—हे वासव! मुझे ऋषि के तेज से उत्पन्न, भूमि से उद्भूत एवं गन्धर्वों के तेज से युक्त अश्वयान-विशारद समझो। (१४६)

इसे सुनकर योगिश्रेष्ठ भगवान् इन्द्र आकाश में गये एवं मातलि नाम से प्रसिद्ध वे ब्राह्मणपुत्र भी आकाश में गए। (१४७)

तदनन्तर देव श्रेष्ठ इन्द्र रथ पर आरूढ़ हुए एवं शमीकपुत्र मातलि ने प्रग्रह (लगाम) ग्रहण किया। (१४८)

तदुपरान्त मन्दर पर पहुँचकर वे रिपुसेना में प्रविष्ट हुए। प्रवेश करते समय सुरश्रेष्ठ श्रीमान् (इन्द्र) ने एक बाणयुक्त, श्वेत, रक्त, कृष्ण, अरुण एवं पाण्डु इन पाँच वर्णों वाले महान् धनुष को पड़ा देखकर बाणसहित उसे उठा लिया। (१४९-१५०)

तदनन्तर रज सत्त्वतमोमय (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) देवों को मन से नमस्कार कर उन्होंने प्रत्यञ्चा चढ़ा कर बाण विनियोजित किया। (१५१)

ततो निश्चेरुरत्युग्राः शरा बर्हिणवाससः।
ब्रह्मेशविष्णुनामाङ्काः सूदयन्तोऽसुरान् रणे ॥ १५२

आकाशं विदिशः पृथ्वीं दिशश्च स शरोत्करैः।
सहस्राक्षोऽतिपटुभिश्छादयामास नारद ॥ १५३

गजो विद्धो हयो भिन्नः पृथिव्यां पतितो रथः।
महामात्रो धरां प्राप्तः सद्यः सीदञ्छरातुरः ॥ १५४

पदातिः पतितो भूम्यां शक्रमार्गणताडितः।
हतप्रधानभूयिष्ठं बलं तदभवद् रिपोः ॥ १५५

तं शक्रबाणाभिहतं दुरासदं
सैन्यं समालक्ष्य तदा कुजम्भः।
जम्भासुरश्चापि सुरेशमव्ययं
प्रजग्मतुर्गृह्य गदे सुघोरे ॥ १५६

तावापतन्तौ भगवान् निरीक्ष्य
सुदर्शनेनारिविनाशनेन।
विष्णुः कुजम्भं निजघान वेगात्
स स्यन्दनाद् गामगमद् गतासुः ॥ १५७

तस्मिन् हते भ्रातरि माधवेन
जम्भस्ततः क्रोधवशं जगाम।
क्रोधान्वितः शक्रमुपाद्रवद् रणे
सिंहं यथैणोऽतिविपन्नबुद्धिः ॥ १५८

तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य शक्र-
स्त्यक्त्वैव चापं सशरं महात्मा।
जग्राह शक्तिं यमदण्डकल्पां
तामग्निदत्तां रिपवे ससर्ज ॥ १५९

शक्तिं सघण्टां कृतनिःस्वनां वै
दृष्ट्वा पतन्तीं गदया जघान।
गदां च कृत्वा सहसैव भस्मसाद्
बिभेद जम्भं हृदये च तूर्णम् ॥ १६०

शक्त्या स भिन्नो हृदये सुरारिः
पपात भूम्यां विगतासुरेव।
तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
दैत्यास्तु भीता विमुखा बभूवुः ॥ १६१

उससे ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर के नामों से अङ्कित मयूर-पुच्छयुक्त अति उग्र बाण निकले और असुरों का विनाश करने लगे। (१५२)

हे नारद! उन सहस्राक्ष ने अतिपटुतापूर्वक बाणों की वर्षा से आकाश, पृथ्वी, दिशाओं एवं विदिशाओं को आच्छादित कर दिया। (१५३)

हाथी विद्ध हो गए, घोड़े विदीर्ण हो गये, रथ पृथ्वी पर गिर पड़े एवं बाणों से व्याकुल हाथी चालक क्लेशपूर्वक पृथ्वी पर पतित हो गया। (१५४)

इन्द्र के बाणों से आहत पदाति योद्धा भूमि पर गिर पड़े। शत्रु की सेना के अधिकांश प्रधान मारे गए। (१५५)

उस दुर्धर्ष सेना को इन्द्र के बाणों से निहत हुई देख कर असुर कुजम्भ और जम्भ भयंकर गदा लेकर अविनाशी सुरेन्द्र की ओर दौड़े। (१५६)

उन दोनों को आते देखकर भगवान् विष्णु ने शत्रु-विनाशक सुदर्शनचक्र से वेगपूर्वक कुजम्भ को मारा। वह निष्प्राण होकर रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। (१५७)

माधव द्वारा उस भाई के मारे जाने पर जम्भ क्रोध के वशीभूत हो गया। क्रोधान्वित होकर वह युद्ध में इन्द्र की ओर इस प्रकार दौड़ा जैसे हतबुद्धि मृग सिंह की ओर दौड़ता है। (१५८)

उसे आते देखकर महात्मा इन्द्र ने धनुष बाण को छोड़ कर अग्नि द्वारा प्रदत्त यमदण्डतुल्य शक्ति को ग्रहण कर उसे शत्रु की ओर फेंका। (१५९)

शब्द करती हुई घण्टायुक्त शक्ति को देखकर (जम्भ ने) उस पर गदा से प्रहार किया। (उस शक्ति ने) गदा को सहसा भस्मसात् कर जम्भ का हृदय शीघ्र ही विदीर्ण कर दिया। (१६०)

शक्ति से हृदय के विदीर्ण हो जाने पर वह देवशत्रु निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसे निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिरा देखकर दैत्यगण भयभीत होकर पराङ्मुख हो गए। (१६१)

जम्भे हते दैत्यबले च भग्ने
गणास्तु हृष्टा हरिमर्चयन्तः ।
वीर्यं प्रशंसन्ति शतक्रतोश्च
स गोत्रभिच्छर्वमुपेत्य तस्थौ ॥ १६२

इति श्रीवामनपुराणे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

४४

पुलस्त्य उवाच ।
वर्तिमस्तदा दैत्यबले च भग्ने
शुक्रोऽब्रवीदन्धकमासुरेन्द्रम् ।
एह्येहि वीराद्य गृहं महासुर
योत्स्याम भूयो हरमेत्य शैलम् ॥ १
तमुवाचान्धको ब्रह्मन् न सम्यग्भवतोदितम् ।
रणान्नैवापयास्यामि कुलं व्यपदिशन् स्वयम् ॥ २
पश्य त्वं द्विजशार्दूल मम वीर्यं सुदुर्धरम् ।
देवदानवगन्धर्वान् जेष्ये सेन्द्रमहेश्वरम् ॥ ३

इत्येवमुक्त्वा वचनं हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः ।
समाश्वास्याब्रवीच्छंभुं सारथिं मधुराक्षरम् ॥ ४
सारथे वाहय रथं हराभ्याशं महाबल ।
यावन्निहन्मि बाणौघैः प्रमथामरवाहिनीम् ॥ ५
इत्यन्धकवचः श्रुत्वा सारथिस्तुरगांस्तदा ।
कृष्णवर्णान् महावेगान् कशयाऽभ्याहनन्मुने ॥ ६
ते यत्नतोऽपि तुरगाः प्रेर्यमाणा हरं प्रति ।
जघनेष्ववसीदन्तः कृच्छ्रेणोहुश्च तं रथम् ॥ ७
वहन्तस्तुरगा दैत्यं प्राप्ताः प्रमथवाहिनीम् ।

जम्भ के मारे जाने एवं दैत्य सेना के भग्न हो जाने पर सभी गण हरि का अर्चन एवं इन्द्र की पराक्रम की प्रशंसा करने लगे। वे इन्द्र शङ्कर के समीप जाकर खड़े हो गये। (१६२)

श्रीवामनपुराण में तैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

४४

पुलस्त्य ने कहा—उस समय दैत्य सेना के भग्न हो जाने पर शुक्र ने असुरेन्द्र अन्धक से कहा—हे वीर महासुर! इस समय घर चलो। पुनः पर्वत पर आकर शङ्कर से युद्ध करेंगे। (१)

अन्धक ने उनसे कहा—हे ब्रह्मन्! आपने उचित बात नहीं कही। अपने कुल को कलङ्कित करते हुए मैं युद्ध से पलायन नहीं करूँगा। (२)

हे द्विजश्रेष्ठ! मेरा दुर्धर्ष वीर्य देखिए। मैं इन्द्र और महेश्वर सहित सभी देवों, दानवों और गन्धर्वों को जीतूँगा। (३)

इस प्रकार के वचन को कहकर हिरण्याक्ष-पुत्र अन्धक ने शम्भु (नामक) सारथि से मधुरवाणी में समाश्वासन देते हुये कहा— (४)

हे महाबलशाली सारथि! तुम रथ को महादेव के सामने ले चलो। मैं बाणों की वर्षा से प्रमथों एवं देवों की सेना को मारूँगा। (५)

हे मुने! अन्धक का वचन सुनकर सारथि ने महावेगवान् कृष्णवर्ण के घोड़ों को कोड़े से मारा। (६)

शङ्कर के प्रति प्रयत्नपूर्वक प्रेरित किये जा रहे वे अश्व जांघों में पीड़ा का अनुभव करते हुए कष्टपूर्वक उस रथ को खींच रहे थे। (७)

दैत्य को ढोने वाले वे अश्व वायुवेग-तुल्य होने पर भी

संवत्सरेण साग्रेण वायुवेगसमा अपि ॥ ८
ततः कार्मुकमानम्य बाणजालैर्गणेश्वरान् ।
सुरान् संछादयामास सेन्द्रोपेन्द्रमहेश्वरान् ॥ ९
बाणैश्छादितमीक्ष्यैव बलं त्रैलोक्यरक्षिता ।
सुरान् प्रोवाच भगवांश्चक्रपाणिर्जनार्दनः ॥ १०

विष्णुरुवाच ।

किं तिष्ठध्वं सुरश्रेष्ठा हतेनानेन वै जयः ।
तस्मान्मद्वचनं शीघ्रं नियतां वै जयेप्सवः ॥ ११
शात्यन्तामस्य तुरगाः समं रथकुटुम्बिना ।
भज्यतां स्यन्दनश्चापि निरथः नियतां रिपुः ॥ १२
निरथं तु कृतं पश्चादेनं धक्ष्यति शंकरः ।
नोपेक्ष्यः शत्रुरदिष्टो देवाचार्येण देवताः ॥ १३
इत्येवमुक्ताः प्रमथा वासुदेवेन सामराः ।
चक्रुर्वेगं सहेन्द्रेण सम चक्रधरेण च ॥ १४
तुरगाणां सहस्रं तु मेघाभानां जनार्दनः ।
निमिषान्तरमात्रेण गदया विनिपोथयत् ॥ १५

हताश्वात् स्यन्दनात् स्कन्दः प्रगृह्य रथसारथिम् ।
शक्त्या विभिन्नहृदयं गतासुं व्यसृजद् भुवि ॥ १६
विनायकाद्याः प्रमथाः समं शक्रेण दैवतैः ।
साध्वजाक्षं रथं तूर्णमभञ्जन्त तपोधनाः ॥ १७
सहसा स महातेजा विरथस्त्यज्य कार्मुकम् ।
गदामादाय बलवानभिदुद्राव दैवतान् ॥ १८
पदान्यष्टौ ततो गत्वा मेघगम्भीरया गिरा ।
स्थित्वा प्रोवाच दैत्येन्द्रो महादेवं स हेतुमत् ॥ १९
भिक्षो भवान् सहानीकस्त्वसहायोऽस्मि साम्प्रतम् ।
तथाऽपि त्वां विजेष्यामि पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥२०
तद्वाक्यं शंकरः श्रुत्वा सेन्द्रान्सुरगणांस्तदा ।
ब्रह्मणा सहितान् सर्वान् स्वशरीरे न्यवेशयत् ॥ २१
शरीरस्थांस्तान् प्रमथान् कृत्वा देवांश्च शंकरः ।
प्राह एह्येहि दुष्टात्मन् अहमेकोऽपि संस्थितः ॥ २२
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं सर्वामरगणक्षयम् ।
दैत्यः शंकरमभ्यागाद् गदामादाय वेगवान् ॥ २३

एक वर्ष से अधिक समय में प्रमथों की सेना में पहुँचे। (८)

तदनन्तर (अन्धक ने) धनुष को झुकाकर बाणसमूहों द्वारा गणेश्वरों एवं इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) तथा महेश्वर सहित सभी देवों को आच्छादित कर दिया। (९)

सेना को बाणों से आच्छादित देखकर त्रैलोक्यरक्षक चक्रपाणि भगवान् जनार्दन ने देवों से कहा। (१०)

विष्णु ने कहा—हे सुरश्रेष्ठो! आप लोग बैठे क्यों हैं? इसके मारे जाने से ही विजय होगी। अतः विजयाकांक्षी आप लोग शीघ्र मेरे वचनानुसार कार्य करें। (११)

रथ के सारथि सहित इसके अश्वों को मार डालो एवं रथ को तोड़कर शत्रु को रथहीन बना दो। (१२)

रथहीन करने के उपरान्त शङ्कर इसे भस्म करेंगे। हे देवों! देवाचार्य बृहस्पति ने कहा है कि शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। (१३)

वासुदेव के ऐसा कहने पर इन्द्र एवं विष्णु सहित प्रमथों तथा देवों ने वेगपूर्वक आक्रमण किया। (१४)

जनार्दन ने क्षणमात्र में गदा के आघात से मेघ के समान वर्ण वाले सहस्र घोड़ों को मार डाला। (१५)

स्कन्द ने मारे गये घोड़ों वाले रथ से सारथि को खींचकर शक्ति द्वारा उसके हृदय को भिन्न कर दिया एवं निष्प्राण हो जाने पर उसे भूमि पर फेंक दिया। (१६)

इन्द्र आदि देवों के साथ तपोधन विनायकादि प्रमथों ने शीघ्र ध्वजा एवं अक्ष सहित रथ को तोड़ डाला। (१७)

महातेजस्वी बलवान् (अन्धक) ने रथहीन होने पर धनुष को छोड़ दिया एवं गदा लेकर वह देवों की ओर दौड़ा। (१८)

तदनन्तर आठ पग चलने के उपरान्त खड़े होकर दैत्येन्द्र ने मेघतुल्य गम्भीर वाणी में महादेव से हेतुयुक्त वचन कहा। (१९)

हे भिक्षुक! सम्प्रति तुम सेनायुक्त हो एवं मैं असहाय हूँ तथापि मैं तुमको जीतूँगा। आज मेरा पराक्रम देखो। (२०)

उसका वचन सुनकर शंकर ने इन्द्र और ब्रह्मा के साथ सभी देवताओं को अपने शरीर में संनिविष्ट कर लिया। (२१)

उन प्रमथों एवं देवों को अपने शरीर में सन्निविष्ट करने के उपरान्त शङ्कर ने कहा—हे दुष्टात्मा! आओ, आओ। मैं अकेला ही खड़ा हूँ। (२२)

समस्त देवों के विलयन का यह महान् आश्चर्य देखने के उपरान्त वह दैत्य गदा लेकर वेगपूर्वक शङ्कर

तमापतन्तं भगवान् दृष्ट्वा त्यक्त्वा वृषोत्तमम् ।
शूलपाणिर्गिरिप्रस्थे पदातिः प्रत्यतिष्ठत ॥ २४
वेगेनैवापतन्तं च निर्बिभेदोरसि भैरवः ।
दारुणं सुमहद् रूपं कृत्वा त्रैलोक्यभीषणम् ॥ २५
दंष्ट्राकरालं रविकोटिसंनिभं
मृगारिचर्माभिवृतं जटाधरम् ।
भुजंगहारामलकण्ठकन्दरं
विंशार्धबाहुं सपडर्धलोचनम् ॥ २६
एतादृशेन रूपेण भगवान् भूतभावनः ।
निर्बिभेद तदा शत्रुं शूलेन शुभदः शाश्वतः शिवः ॥२७
सशूलं भैरवं गृह्य भिन्नेऽप्युरसि दानवः ।
निराहारातिवेगेन क्रोशमात्रं महामुने ॥ २८
ततः कथंचिद् भगवान् संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
तूर्णमुत्पाटयामास शूलेन सगदं रिपुम् ॥ २९
दैत्याधिपस्त्वपि गदां हरमूर्ध्नि न्यपातयत् ।
कराभ्यां गृह्य शूलं च समुत्पतत दानवः ॥ ३०
संस्थितः स महायोगी सर्वाधारः प्रजापतिः ।
गदापातक्षताद् भूरि चतुर्धाऽसृगथापतत् ॥ ३१
पूर्वधारासमुद्भूतो भैरवोऽग्निसमप्रभः ।
विद्याराजेति विख्यातः पद्ममालाविभूषितः ॥ ३२
तथा दक्षिणधारोत्थो भैरवः प्रेतमण्डितः ।
कालराजेति विख्यातः कृष्णाञ्जनसमप्रभः ॥ ३३
अथ प्रतीचीधारोत्थो भैरवः पत्रभूषितः ।
अतसीकुसुमप्रख्यः कामराजेति विश्रुतः ॥ ३४
उदग्धाराभवश्चान्यो भैरवः शूलभूषितः ।
सोमराजेति विख्यातश्चक्रमालाविभूषितः ॥ ३५
क्षतस्य रुधिरात् जातो भैरवः शूलभूषितः ।
स्वच्छन्दराजो विख्यातः इन्द्रायुधसमप्रभः ॥ ३६
भूमिस्थाद् रुधिराज्जातो भैरवः शूलभूषितः ।
ख्यातो ललितराजेति सौभाञ्जनसमप्रभः ॥ ३७

के समीप गया। (२३)

भगवान् शूलपाणि उसे आते देख श्रेष्ठ वृषभ को छोड़कर पर्वत पर पैदल खड़े हो गए। (२४)

भैरव ने अतिभयङ्कर त्रैलोक्यभीषण रूप धारण कर वेगपूर्वक आ रहे (अन्धक का) उरस्थल विदीर्ण कर दिया। (२५)

(शङ्कर का तत्कालीन रूप) भयङ्कर दाढ़ों से युक्त, कोटिसूर्य के सदृश प्रकाशमान, व्याघ्रचर्मावृत, जटामण्डित सर्प के हार से अलङ्कृत ग्रीवावाला, दस भुजाओं से युक्त तथा त्रिनेत्रसम्पन्न था। (२६)

इस प्रकार के रूप से संयुक्त शुभद, शाश्वत, भूतभावन भगवान् शिव ने शूल द्वारा शत्रु का भेदन किया। (२७)

हे महामुने! उरस्थल के विभेदित होने पर भी दानव शूलसहित भैरव को पकड़कर एक कोस तक उन्हें खींच ले गया। (२८)

तदनन्तर भगवान् ने किसी प्रकार मन द्वारा स्वयं को रोका एवं शीघ्रतापूर्वक शूल से गदायुक्त शत्रु को मारा। (२९)

दैत्याधिप ने भी शङ्कर के मस्तक पर गदा का प्रहार किया एवं शूल को हाथों से पकड़कर वह ऊपर उछला। (३०)

सबके आधार वे महायोगी प्रजापति खड़े रहे किन्तु, गदाघात से हुए क्षत द्वारा चार धाराओं में अत्यन्त रुधिर प्रवाहित होने लगा। (३१)

पूर्व दिशा की धारा से अग्नि के समान प्रभा वाले पद्ममाला से विभूषित 'विद्याराज' नाम से विख्यात भैरव उत्पन्न हुये। (३२)

तथा दक्षिण की धारा से प्रेतमण्डित कृष्णाञ्जन तुल्य प्रभावान् 'कालराज' नाम से प्रसिद्ध भैरव उत्पन्न हुए। (३३)

तदनन्तर पश्चिम की धारा से अतसीपुष्प के सदृश पत्रभूषित 'कामराज' नाम से प्रसिद्ध भैरव उत्पन्न हुये। (३४)

उत्तर की धारा से चक्रमालाविभूषित शूलमण्डित 'सोमराज' नाम से प्रसिद्ध अन्य भैरव उत्पन्न हुए। (३५)

क्षत के रुधिर से इन्द्र धनुष के समान कान्ति वाले शूलभूषित 'स्वच्छन्दराज' नाम से विख्यात भैरव उत्पन्न हुये। (३६)

भूमि पर गिरे हुए रुधिर से सौभाञ्जन के सदृश शूलभूषित शोभायुक्त 'ललितराज' नाम से विख्यात भैरव उत्पन्न हुए। (३७)

एवं हि सप्तरूपोऽसौ कथ्यते भैरवो मुने ।
विघ्नराजोऽष्टमः प्रोक्तो भैरवाष्टकमुच्यते ॥ ३८
एवं महात्मना दैत्यः शूलप्रोतो महासुरः ।
छत्रवद् धारितो ब्रह्मन् भैरवेण त्रिशूलिना ॥ ३९
तस्यासृग्धारणं ब्रह्मञ्छूलभेदादवापतत् ।
येनाकण्ठ महादेवो निमग्नः सप्तमूर्तिमान् ॥ ४०
ततः स्वेदोऽभवद् भूरि श्रमजः शंकरस्य तु ।
ललाटफलके तस्माज्जाता कन्याऽसृगाप्लुता ॥ ४१
यद्भूम्यां न्यपतद् विप्र स्वेदबिन्दुः शिवाननात् ।
तस्मादङ्गारपुञ्जाभो बालकः समजायत ॥ ४२
स बालस्तृषितोऽत्यर्थं पपौ रुधिरमान्धकम् ।
कन्या चोत्कृत्य संजातमसृग्विलिलिहेऽद्भुता ॥ ४३
ततस्तामाह बालार्कप्रभा भैरवमूर्तिमान् ।
शंकरो वरदो लोके श्रेयोऽर्थाय वचो महत् ॥ ४४
त्वां पूजयिष्यन्ति सुरा ऋषयः पितरोरगाः ।
यक्षविद्याधराश्चैव मानवाश्च शुभंकरि ॥ ४५
त्वां स्तोष्यन्ति सदा देवि बलिपुष्पोत्करैः करैः ।
चर्चिकेति शुभं नाम यस्माद् रुधिरचर्चिता ॥ ४६

इत्येवमुक्ता वरदेन चर्चिका
भूतानुजाता हरिचर्मवासिनी ।
महीं समन्ताद् विचचार सुन्दरी
स्थानं गता हैङ्गुलताद्रिमुत्तमम् ॥ ४७

तस्यां गतायां वरदः कुजस्य
प्रादाद् वरं सर्ववरोत्तमं यत् ।
ग्रहाधिपत्यं जगतां शुभाशुभ
भविष्यति त्वद्वशगं महात्मन् ॥ ४८

हरोऽन्धकं वर्षसहस्रमात्रं
दिव्यं स्वनेत्रार्कहुताशनेन ।
चकार संशुष्कतनुं त्वशोणितं
त्वगस्थिशेषं भगवान् स भैरवः ॥ ४९

तताग्निना नेत्रमयेन शुद्धः
स मुक्तपापोऽसुरराड् बभूव ।
ततः प्रजानां बहुरूपमीशं
नाथं हि सर्वस्य चराचरस्य ॥ ५०

हे मुनि ! इस प्रकार इन भैरव का सात रूप कहा जाता है। 'विघ्नराज' नाम के अष्टम भैरव कहे जाते हैं। इस प्रकार आठ भैरव कहे जाते हैं। (३८)

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार महात्मा त्रिशूली भैरव ने शूलविद्ध महासुर दैत्य को छत्र की तरह धारण किया। (३९)

हे ब्रह्मन् ! शूलभेद से उसका अत्यधिक रुधिर गिरा। उससे सप्तमूर्तिमान् महादेव आकण्ठ निमग्न हो गए। (४०)

परिश्रम के कारण शङ्कर के ललाटफलक पर अतिशय स्वेद उत्पन्न हुआ। उससे रुधिराप्लुत एक कन्या उत्पन्न हुई। (४१)

हे विप्र ! शिव के मुख से पृथ्वी पर गिरे स्वेदबिन्दुओं से अङ्गारपुञ्ज की शोभा वाला एक बालक उत्पन्न हुआ। (४२)

अत्यन्त प्यासा वह बालक अन्धक का रुधिर पान करने लगा एवं अद्भुत कन्या भी उठकर उत्पन्न हुए रुधिर को चाटने लगी। (४३)

तदनन्तर भैरवरूपधारी वरद शङ्कर ने बाल सूर्य के सदृश प्रभा वाली उस कन्या से लोककल्याणकारी महान् वचन कहा— (४४)

हे शुभकारिणी ! देवता, ऋषि, पितर, उरग, यक्ष, विद्याधर एवं मानव तुम्हारी पूजा करेंगे। (४५)

हे देवि ! (वे लोग) बलि एवं पुष्पाञ्जलि से तुम्हारी स्तुति करेंगे। चूंकि तुम रुधिर से लिप्त हो अतः तुम्हारा शुभ नाम 'चर्चिका' यह होगा। (४६)

वरद शङ्कर के ऐसा कहने पर व्याघ्रचर्म का वस्त्र धारण करने वाली भूतानुजाता सुन्दरी चर्चिका पृथ्वी पर चतुर्दिक् भ्रमण करती हुई उत्तम हैङ्गुलताद्रि पर चली गई। (४७)

उसके चले जाने पर वरदाता शंकर ने कुज (मंगल) को सर्वश्रेष्ठ वर दिया। (उन्होंने कहा)—हे महात्मन् ! तुम ग्रहों के अधिपति बनोगे तथा जगत् का शुभाशुभ तुम्हारे वश में होगा। (४८)

इन भगवान् भैरव हर ने अपने अग्निसूर्यात्मक नेत्रों से सहस्र दिव्य वर्षों तक अन्धक के शरीर को सुखा कर शोणितशून्य एवं अस्थिचर्मावशिष्ट बना दिया। शङ्कर के नेत्र से उत्पन्न अग्नि द्वारा शुद्ध होने से वह असुरराज पापमुक्त हो गया। तदनन्तर प्रजाओं के बहुरूपवान् नियामक, समस्त चराचर के स्वामी, सर्वेश्वर, अव्यय, ईश त्रैलोक्यनाथ, वरद, वरेण्य, समस्त सुरादिकों द्वारा सुवन्दित

ज्ञात्वा स सर्वेश्वरमीशमव्ययं
त्रैलोक्यनाथं वरदं वरेण्यम् ।
सर्वैः सुराद्यैर्नतमीड्यमाद्यं
ततोऽन्धकः स्तोत्रमिदं चकार ॥ ५१

अन्धक उवाच ।

नमोऽस्तु ते भैरव भीममूर्ते
त्रिलोकगोप्त्रे शितशूलधारिणे ।
विंशार्द्धबाहो भुजगेशहार
त्रिनेत्र मां पाहि विपन्नबुद्धिम् ॥ ५२

जयस्व सर्वेश्वर विश्वमूर्ते
सुरासुरैर्वन्दितपादपीठ ।
त्रैलोक्यमातुर्गुरवे वृषाङ्क
भीतः शरण्यं शरणागतोऽस्मि ॥ ५३

त्वां नाथ देवाः शिवमीरयन्ति
सिद्धा हरं स्थाणुं महर्षयश्च ।
भीमं च यक्षा मनुजा महेश्वरं
भूताश्च भूताधिपमामनन्ति ॥ ५४

निशाचरा उग्रमुपार्चयन्ति
भवेति पुण्याः पितरो नमन्ति ।
दासोऽस्मि तुभ्यं हर पाहि मह्यं
पापक्षयं मे कुरु लोकनाथ ॥ ५५

भवांस्त्रिदेवस्त्रियुगस्त्रिधर्मा
त्रिपुष्करश्चासि विभो त्रिनेत्र ।
त्रय्यारुणिस्त्रिश्रुतिरव्ययात्मन्
पुनीहि मां त्वां शरणं गतोऽस्मि ॥ ५६

त्रिणाचिकेतस्त्रिपदप्रतिष्ठः
षडङ्गवित् त्वं विषयेष्वलुब्धः ।
त्रैलोक्यनाथोऽसि पुनीहि शंभो
दासोऽस्मि भीतः शरणागतस्ते ॥ ५७

कृतं महत् शंकर तेऽपराधं
मया महाभूतपते गिरीश ।
कामारिणा निर्जितमानसेन
प्रसादये त्वां शिरसा नतोऽस्मि ॥ ५८

पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसंभवः ।

स्तुत्य एवं आद्य शङ्कर को जानकर अन्धक ने यह स्तुति की। (४९-५१)

हे भीममूर्ति भैरव ! हे त्रिलोक रक्षक ! तेजशूलधारी ! आपको नमस्कार है। हे दश भुजाओं वाले तथा भुजगेश का हार धारण करने वाले त्रिनेत्र! मुझ विपन्नबुद्धि की रक्षा करो। (५२)

हे देवों तथा असुरों से वन्दित पादपीठ वाले विश्वमूर्ति सर्वेश्वर! आप की जय हो। हे त्रैलोक्यजननी के स्वामी वृषाङ्क! मैं भयभीत होकर आप शरण देने वाले की शरण में आया हूँ। (५३)

हे नाथ! देवता आपको शिव (मंगलमय) कहते हैं। आपको सिद्ध लोग हर (पाप हारी), महर्षि लोग स्थाणु (अचल), यक्ष लोग भीम, मनुष्य महेश्वर और भूत भूताधिपति मानते हैं। (५४)

निशाचर उग्र नाम से आपका अर्चन करते हैं एवं पुण्यवान् पितृगण भव नाम से आपको नमस्कार करते हैं। हे हर! मैं आपका दास हूँ, मेरी रक्षा करें। हे लोकनाथ! मेरे पापों का नाश कीजिए। (५५)

हे विभु त्रिनेत्र! आप त्रिदेव, त्रियुग, त्रिधर्मा, तथा त्रिपुष्कर हैं। हे अव्ययात्मन्! आप त्रय्यारुणि, तथा त्रिश्रुति हैं। आप मुझे पवित्र करें। मैं आपकी शरण में आया हूँ। (५६)

आप त्रिणाचिकेत, त्रिपदप्रतिष्ठ, (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल रूप तीन पदों पर प्रतिष्ठित), षडङ्गवित्, (वेद के शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष इन छः अंगों के ज्ञाता), विषयों के प्रति अलुब्ध तथा त्रैलोक्यनाथ हैं। हे शम्भो! आप मुझे पवित्र करें। मैं आपका दास हूँ। भयभीत होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ। (५७)

हे शङ्कर! हे महाभूतपति! हे गिरीश! कामरूपी शत्रु ने मेरे मन को जीत लिया था इसलिए मैंने आपका महान् अपराध किया है। मैं आपको सिर से प्रणाम करता हूँ। (५८)

मैं पापी, पापकर्मा, पापात्मा तथा पापसम्भूत हूँ। हे

त्राहि मां देव ईशान सर्वपापहरो भव ॥ ५९
मा मे क्रुध्यस्व देवेश त्वया चैवादृशोऽस्म्यहम् ।
सृष्टः पापसमाचारो मे प्रसन्नो भवेश्वर ॥ ६०
त्वं कर्ता चैव धाता च त्वं जयस्त्वं महाजयः ।
त्वं मङ्गल्यस्त्वमोंकारस्त्वमीशानो ध्रुवोऽव्ययः ॥ ६१
त्वं ब्रह्मा सृष्टिकृन्नाथस्त्वं विष्णुस्त्वं महेश्वरः ।
त्वमिन्द्रस्त्वं वषट्कारो धर्मस्त्वं च सुरोत्तमः ॥ ६२
सूक्ष्मस्त्वं व्यक्तरूपस्त्वं त्वमव्यक्तस्त्वमीश्वरः ।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ ६३
त्वमादिरन्तो मध्यश्च त्वमनादिः सहस्रपात् ।
विजयस्त्वं सहस्राक्षो विरूपाक्षो महाभुजः ॥ ६४
अनन्तः सर्वगो व्यापी हंसः प्राणाधिपोऽच्युतः ।
गीर्वाणपतिरव्यग्रो रुद्रः पशुपतिः शिवः ॥ ६५
त्रैविद्यस्त्वं जितक्रोधो जितारिर्विजितेन्द्रियः ।
जयश्च शूलपाणिस्त्वं त्राहि मां शरणागतम् ॥ ६६

पुलस्त्य उवाच ।
इत्थं महेश्वरो ब्रह्मन् स्तुतो दैत्याधिपेन तु ।
प्रीतियुक्तः पिङ्गलाक्षो हैरण्याक्षिमुवाच ह ॥ ६७
सिद्धोऽसि दानवपते परितुष्टोऽस्मि तेऽन्धक ।
वरं वरय भद्रं ते यमिच्छसि विनाऽम्बिकाम् ॥ ६८

अन्धक उवाच ।
अम्बिका जननी मह्यं भगवांस्त्र्यम्बकः पिता ।
वन्दामि चरणौ मातुर्वन्दनीया ममाम्बिका ॥ ६९
वरदोऽसि यदीशान तद्यातु विलयं मम ।
शारीरं मानसं वाग्जं दुष्कृतं दुर्विचिन्तितम् ॥ ७०
तथा मे दानवो भावो व्यपयातु महेश्वर ।
स्थिराऽस्तु त्वयि भक्तिस्तु वरमेतत् प्रयच्छ मे ॥ ७१

महादेव उवाच ।
एवं भवतु दैत्येन्द्र पापं ते यातु संक्षयम् ।
मुक्तोऽसि दैत्यभावाच्च भृङ्गी गणपतिर्भव ॥ ७२

देव ईशान! हे सर्वपापहारी महादेव! मेरी रक्षा कीजिये। (५९)

हे देवेश! आप मेरे ऊपर क्रुद्ध न हों। आपने ही मुझे इस प्रकार का पापाचारी बनाया है। हे ईश्वर! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। (६०)

आप कर्ता, एवं धाता हैं। आप ही जय हैं और आप महाजय हैं। आप मङ्गलमय हैं। आप ओंकार हैं। आप ही ईशान, अव्यय तथा ध्रुव हैं। (६१)

आप सृष्टिकर्ता ब्रह्मा तथा प्रभु हैं। आप विष्णु एवं महेश्वर हैं। आप इन्द्र हैं, आप वषट्कार हैं, आप धर्म तथा सुरश्रेष्ठ हैं। (६२)

आप सूक्ष्म हैं, आप व्यक्तरूप हैं, आप अव्यक्त हैं, आप ईश्वर हैं, आप ही से यह चराचर जगत् व्याप्त है। (६३)

आप आदि, मध्य एवं अन्त हैं, आप अनादि एवं सहस्रपाद् हैं। आप विजय हैं। आप सहस्राक्ष, विरूपाक्ष एवं महाभुज हैं। (६४)

आप अनन्त, सर्वगत, व्यापी, हंस, प्राणाधिप, अच्युत, गीर्वाणपति, अव्यग्र, रुद्र, पशुपति एवं शिव हैं। (६५)

आप त्रैविद्य क्रोधजयी, शत्रुजयी, इन्द्रियजयी, जय एवं शूलपाणि हैं। आप मुझ शरणागत की रक्षा करें। (६६)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन्! दैत्याधिपति के इस प्रकार स्तुति करने पर पिङ्गलाक्ष महेश्वर ने प्रीतिपूर्वक हिरण्याक्ष के पुत्र अन्धक से कहा— (६७)

हे दानवपति अन्धक! तुम सिद्ध हो गए हो मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। अम्बिका के अतिरिक्त तुम जो चाहो वह वर माँगो। तुम्हारा कल्याण हो। (६८)

अन्धक ने कहा—अम्बिका मेरी जननी और आप त्र्यम्बक मेरे पिता हैं। माता के चरणों की मैं वन्दना करता हूँ। अम्बिका मेरी वन्दनीया हैं। (६९)

हे ईशान! यदि आप वर देना चाहते हैं तो मेरे शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक पाप तथा कुत्सित विचार नष्ट हो जाँय। (७०)

हे महेश्वर! मेरा दानवभाव भी दूर हो जाय एवं आप में मेरी स्थिर भक्ति हो। यही वर मुझे दीजिए। (७१)

महादेव ने कहा—हे दैत्येन्द्र! ऐसा ही हो। तुम्हारे पाप नष्ट हो जाँय! तुम दैत्यभाव से मुक्त हो गये। अब तुम गणपति भृङ्गी बनो। (७२)

इत्येवमुक्त्वा वरदः शूलाग्रादवतार्य तम् ।
निर्मार्ज्य निजहस्तेन चक्रे निर्व्रणमन्धकम् ॥ ७३
ततः स्वदेहतो देवान् ब्रह्मादीनाजुहाव सः ।
ते निश्चेरुर्महात्मानो नमस्यन्तस्त्रिलोचनम् ॥ ७४
गणान् सनन्दीनाहूय सन्निवेश्य तदाग्रतः ।
भृङ्गिनं दर्शयामास ध्रुवं नैषोऽन्धकेति हि ॥ ७५
तं दृष्ट्वा दानवपतिं संशुष्कपिशितं रिपुम् ।
गणाधिपत्यमापन्नं प्रशशंसुर्वृषध्वजम् ॥ ७६
ततस्तान् प्राह भगवान् संपरिष्वज्य देवताः ।
गच्छध्वं स्वानि धिष्ण्यानि भुङ्क्ष्वं त्रिदिवं सुखम् ॥७७
सहस्राक्षोऽपि सयातु पर्वतं मलयं शुभम् ।
तत्र स्वकार्यं कृत्वैव पश्चाद् यातु त्रिविष्टपम् ॥ ७८
इत्येवमुक्त्वा त्रिदशान् समाभाष्य व्यसर्जयत् ।
पितामहं नमस्कृत्य परिष्वज्य जनार्दनम् ।
ते विसृष्टा महेशेन सुरा जग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ ७९

ऐसा कहकर वरदाता महादेव ने उस अन्धक को शूल की नोक से उतारा एवं अपने हाथ से सहला कर क्षत रहित कर दिया। (७३)

तदनन्तर उन्होंने अपने शरीर में स्थित ब्रह्मादि देवों का आह्वान किया। त्रिलोचन को नमस्कार करते हुए वे सभी महात्मा बाहर निकले। (७४)

नन्दी सहित गणों को बुलाकर एवं सम्मुख बैठाकर भृङ्गी को दिखलाते हुए कहा—निश्चय ही यह अन्धक नहीं है। (७५)

उस शुष्क मांस वाले दानवपति शत्रु को गणाधिप हुआ देखकर वे सभी वृषध्वज की प्रशंसा करने लगे। (७६)

तदनन्तर उन देवों का आलिङ्गन कर भगवान् ने कहा—हे देवताओ! आप लोग अपने स्थान को जाइये एवं सुखपूर्वक स्वर्ग में रहिये। (७७)

सहस्राक्ष इन्द्र भी शुभ मलय पर्वत पर जाँय तथा वहाँ अपना काम समाप्त कर स्वर्ग चले जाँय। (७८)

ऐसा कहकर देवों से सम्भाषण, पितामह को नमस्कार तथा जनार्दन का आलिङ्गन कर उन्होंने सभी को विदा किया। महेश से विदा किये गए वे देवगण स्वर्ग चले गए। (७९)

महेन्द्रो मलयं गत्वा कृत्वा कार्यं दिवं गतः ।
गतेषु शक्रप्राग्र्येषु देवेषु भगवाञ्छिवः ॥ ८०
विसर्जयामास गणाननुमान्य यथार्हतः ।
गणाश्च शंकरं दृष्ट्वा स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥ ८१
जग्मुस्ते शुभलोकानि महाभोगानि नारद ।
यत्र कामदुघा गावः सर्वकामफलद्रुमाः ॥ ८२
नद्यस्त्वमृतवाहिन्यो ह्रदाः पायसकर्दमाः ।
स्वां स्वां गतिं प्रयातेषु प्रमथेषु महेश्वरः ॥ ८३
समादायान्धकं हस्ते सनन्दिः शैलमभ्यगात् ।
द्वाभ्यां वर्षसहस्राभ्यां पुनरागाद्धरो गृहम् । ॥ ८४
ददृशे च गिरेः पुत्रीं श्वेतार्ककुसुमस्थिताम् ।
समायातं निरीक्ष्यैव सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ८५
त्यक्त्वाऽर्कपुष्पं निर्गत्य सखीस्ताः समुपाह्वयत् ।
समाहूताश्च देव्या ता जयाद्यास्तूर्णमागमन् ॥ ८६
ताभिः परिवृता तस्थौ हरदर्शनलालसा ।

महेन्द्र भी मलयाचल पर जाकर कार्य सम्पादन कर स्वर्ग चले गये। शक्रादि देवों के चले जाने पर भगवान् शिव ने यथायोग्य सम्मान कर गणों को विदा किया। हे नारद! गण भी शङ्कर का दर्शन कर अपने वाहनों पर आरूढ होकर महाभोगयुक्त उन शुभलोकों को चले गए जहाँ की गौएँ इच्छित वस्तु देने वाली तथा वृक्ष सर्वकामरूपी फलों के दाता, नदियाँ अमृतवाहिनी तथा ह्रद पायसरूपी कर्दम से पूर्ण थे। प्रमथों के अपने-अपने स्थानों पर चले जाने पर अन्धक का हाथ पकड़ कर नन्दी सहित महेश्वर पर्वत पर चले गए। दो सहस्र वर्षों के उपरान्त शङ्कर पुनः अपने घर लौटे। (८०-८४)

उन्होंने श्वेत अर्कपुष्प में स्थित गिरिजा को देखा। सर्वलक्षणसंयुक्त शङ्कर को आया हुआ देखते ही पार्वती अर्कपुष्प को छोड़कर बाहर निकलीं एवं उन्होंने उन सखियों को पुकारा। वे सभी जयादि देवियाँ पुकारी जाने पर शीघ्र चली आयीं। (८५-८६)

उनसे घिरी हुई पार्वती हर के दर्शन की लालसा से खड़ी हो गईं। गिरिजा को देखने के बाद दानव एवं नन्दी के ऊपर दृष्टिपात कर त्रिलोचन ने हर्षपूर्वक गिरिसुता का आलिङ्गन किया। तदनन्तर उन्होंने

ततस्त्रिनेत्रो गिरिजां दृष्ट्वा प्रेक्ष्य च दानवम् ॥ ८७

नन्दिनं च तथा हर्षादालिलिङ्गे गिरेः सुताम् ।
अथोवाचेप दासस्ते कृतो देवि मयाऽन्धकः ॥ ८८

पश्यस्व प्रणतिं यातं स्वसुतं चारुहासिनि ।
इत्युच्चार्यान्धकं चैव पुत्र एह्येहि सत्वरम् ॥ ८९

प्रनस्य शरणं मातुरेषा श्रेयस्करी तव ।
इत्युक्तो विभुना नन्दी अन्धकश्च गणेश्वरः ॥ ९०

समागम्याम्बिकापादौ ववन्दतुरुभावपि ।
अन्धकोऽपि तदा गौरीं भक्तिनम्रो महामुने ।
स्तुतिं चक्रे महापुण्यां पापघ्नीं श्रुतिसंमिताम् ॥ ९१

अन्धक उवाच ।

ॐ नमस्ये भवानीं भूतभव्यप्रियां लोकधात्रीं जनित्रीं स्कन्दमातरं महादेवप्रियां धारिणीं स्यन्दिनीं चेतनां त्रैलोक्यमातरं धरित्रीं देवमातरमथेज्यां श्रुतिं स्मृतिं दयां लज्जां कान्तिमप्रया-मसूयां मतिं सदापावनीं दैत्यसैन्यक्षयकरीं [5]

महामायां वैजयन्तीं सुशुभां कालरात्रिं गोविन्दभगिनीं शैलराजपुत्रीं सर्वदेवार्चितां सर्वभूतार्चितां विद्यां सरस्वतीं त्रिनयनमहिषीं नमस्यामि मृडानीं शरण्यां शरणमुपागतोऽहं नमो नमस्ते ॥ [10]

इत्थं स्तुता साऽन्धकेन परितुष्टा विभावरी ।
प्राह पुत्र प्रसन्नाऽस्मि वृणुष्व वरमुत्तमम् ॥ ९२

भृङ्गिरुवाच ।

पापं प्रशममायातु त्रिविधं मम पार्वति ।
तथेश्वरे च सततं भक्तिरस्तु ममाम्बिके ॥ ९३

पुलस्त्य उवाच ।

बाढमित्यब्रवीद् गौरी हिरण्याक्षसुतं तत ।
स चास्ते पूजयञ्छर्वं गणानामधिपोऽभवत् ॥ ९४

एवं पुरा दानवसत्तमं तं
महेश्वरेणाथ विरूपदृष्ट्या ।
कृतेन रूपं भयदं च भैरवं

कहा—हे देवि ! मैंने अन्धक को तुम्हारा दास बना लिया है । (८७-८८)

हे चारुहासिनि ! प्रणाम कर रहे अपने पुत्र को देखो । ऐसा कहने के उपरान्त उन्होंने कहा—हे पुत्र ! शीघ्र आओ । अपनी इस माता की शरण में जाओ । ये तुम्हारा कल्याण करेंगी । विभु के ऐसा कहने पर गणेश्वर नन्दी एवं अन्धक दोनों ने जाकर अम्बिका के चरणों में प्रणाम किया । हे महामुनि ! तदनन्तर भक्तिनम्र अन्धक ने गौरी की अति पवित्र पापघ्नी एवं श्रुतिसम्मत स्तुति की । (८९-९१)

अन्धक ने कहा—ओं भवानी को प्रणाम है । भैभूत भव्यप्रिया लोकधात्री, जनित्री, कार्तिकेय जननी, महादेवप्रिया, धारिणी, स्यन्दिनी, चेतना, त्रैलोक्य जननी, धरित्री, देवमाता, इज्या, श्रुति, स्मृति, दया, लज्जा, श्रेष्ठ कान्ति, असूया, मति, सदापावनी, दैत्यसैन्यक्षयकारिणी, महामाया, वैजयन्ती, अत्यन्तशोभा वाली, कालरात्रि, गोविन्द भगिनी, शैलराजपुत्री, सर्वदेवार्चिता, सर्वभूतपूजिता, विद्या, सरस्वती, त्रिनयनमहिषी को प्रणाम करता हूँ । मैं शरण्या मृडानी की शरण में आया हूँ । आपको बार बार प्रणाम है ।

अन्धक के इस प्रकार स्तुति करने पर भवानी ने प्रसन्न होकर कहा—हे पुत्र ! मैं प्रसन्न हूँ । तुम उत्तम वर माँगो । (९२)

भृङ्गि ने कहा—हे पार्वती ! हे अम्बिके ! मेरे त्रिविध पाप दूर हो जाँय एवं ईश्वर में सदा मेरी भक्ति बनी रहे । (९३)

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर गौरी ने हिरण्याक्षसुत से कहा—ऐसा ही हो । वह वहाँ रहकर शिव की पूजा करते हुए गणाधिप हो गया । (९४)

इस प्रकार पूर्वकाल में उस दानवश्रेष्ठ को महेश्वर ने अपनी विरूपदृष्टि से भयदायक भैरव रूप प्रदान कर

भृङ्गित्वमीशेन कृतं स्वभक्त्या ॥ ९५
एतद् तवोक्तं हरकीर्तिवर्धनं
पुण्यं पवित्रं शुभदं महर्षे ।
संकीर्तनीयं द्विजसत्तमेषु
धर्मायुरारोग्यधनैषिणा सदा ॥ ९६

इति श्रीवामनपुराणे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

४५

नारद उवाच ।
मलयेऽपि महेन्द्रेण यत्कृतं ब्राह्मणर्षभ ।
निष्पादितं स्वकं कार्यं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १
पुलस्त्य उवाच ।
श्रूयतां यन्महेन्द्रेण मलये पर्वतोत्तमे ।
कृतं लोकहितं ब्रह्मन्नात्मनश्च तथा हितम् ॥ २
अन्धासुरस्यानुचरा मयतारपुरोगमाः ।
ते निर्जिताः सुरगणैः पातालगमनोत्सुकाः ॥ ३
ददृशुर्मलयं शैलं सिद्धाध्युषितकन्दरम् ।
लतावितानसंछन्नं मत्तसत्त्वसमाकुलम् ॥ ४
चन्दनैरुरगाक्रान्तैः सुशीतैरभिसेवितम् ।
माधवीकुसुमामोदं ऋष्यर्चितहरं गिरिम् ॥ ५
तं दृष्ट्वा शीतलच्छायं श्रान्ता व्यायामकर्षिताः ।
मयतारपुरोगास्ते निवासं समरोचयन् ॥ ६
तेषु तत्रोपविष्टेषु प्राणतृप्तिप्रदोऽनिलः ।
ववावति शीतः शनकैर्दक्षिणो गन्धसंयुतः ॥ ७

अपनी भक्ति से भृङ्गी बना दिया। (९५)
हे महर्षि ! मैंने आपसे हर की कीर्ति को बढ़ाने वाला यह पुण्य पवित्र एवं शुभद आख्यान कहा। धर्म, आयु, आरोग्य एवं धन को चाहने वालों को श्रेष्ठ द्विजों में सदा इसका कीर्तन करना चाहिए। (९६)

श्रीवामनपुराण में चँवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

४५

नारद ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! महेन्द्र ने मलयपर्वत पर भी अपना जो कार्य सम्पन्न किया उसे आप मुझसे कहिये। (१)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! महेन्द्र ने श्रेष्ठ मलयपर्वत पर संसार के हित तथा अपने कल्याण के लिए जो कार्य किया था, उसे सुनिये। (२)

मय, तार आदि अन्धकासुर के अनुचर असुर देवताओं से पराजित होकर पाताल जाने की इच्छा करने लगे। (३)

उन लोगों ने सिद्धों द्वारा सेवित कन्दराओं वाले, लता-वितान से आच्छन्न मत्त प्राणियों से परिपूर्ण, सुशीतल सर्पों से आक्रान्त चन्दन से युक्त तथा माधवीकुसुम के आमोद से पूर्ण ऋषियों से अर्चित हर के मलय गिरि को देखा। (४-५)
व्यायाम से क्षीण एवं शिथिल मय, तार आदि दानवों ने शीतल छायावाले उस पर्वत को देख कर वहाँ निवास करने की इच्छा की। (६)
उन लोगों के वहाँ बैठने पर प्राणों को तृप्ति प्रदान करने वाला सुगन्धपूर्ण तथा शीतल दक्षिण वायु मन्दगति से प्रवाहित होने लगा। (७)

तत्रैव च रतिं चक्रुः सर्व एव महासुराः।
कुर्वन्तो लोकसंपूज्ये विद्वेषं देवतागणे ॥ ८
तान्ज्ञात्वा शंकरः शक्रं प्रेषयन्मलयेऽसुरान्।
स चापि ददृशे गच्छन् पथि गोमातरं हरिः ॥ ९
तस्याः प्रदक्षिणां कृत्वा दृष्ट्वा शैलं च सुप्रभम्।
ददृशे दानवान् सर्वान् संहृष्टान् भोगसंयुतान् ॥ १०
अथाजुहाव बलहा सर्वानेव महासुरान्।
ते चाप्याययुरव्यग्रा निकिरन्तः शरोत्करान् ॥ ११
तानागतान् बाणजालैः रथस्थोऽद्भुतदर्शनः।
छादयामास विप्रर्षे गिरीन् वृष्ट्या यथा घनः ॥ १२
ततो बाणैरवच्छाद्य मयादीन् दानवान् हरिः।
पाकं जघान तीक्ष्णाग्रैर्मार्गणैः कङ्कवाससैः ॥ १३
तत्र नाम विभुर्लेभे शासनत्वात् शरैर्दृढैः।
पाकशासनतां शक्रः सर्वामरपतिर्विभुः ॥ १४
तथाऽन्य पुरनामानं बाणासुरसुतं शरैः।
सुपुङ्खैर्दारयामास ततोऽभूत् स पुरंदरः ॥ १५
हत्वेत्थं समरेऽजैषीद् गोत्रभिद् दानवं बलम्।
तच्चापि विजितं ब्रह्मन् रसातलमुपागमत् ॥ १६
एतदर्थं सहस्राक्षः प्रेषितो मलयाचलम्।
त्र्यम्बकेन मुनिश्रेष्ठ किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १७

नारद उवाच।

किमर्थं दैवतपतिर्गोत्रभित् कथ्यते हरिः।
एष मे संशयो ब्रह्मन् हृदि संपरिवर्तते ॥ १८

पुलस्त्य उवाच।

श्रूयतां गोत्रभिच्छक्रः कीर्तितो हि यथा मया।
हते हिरण्यकशिपौ यच्चकारारिमर्दनः ॥ १९
दितिर्विनष्टपुत्रा तु कश्यपं प्राह नारद।
विभो नाथोऽसि मे देहि शक्रहन्तारमात्मजम् ॥ २०
कश्यपस्तामुवाचाथ यदि त्वमसितेक्षणे।
शौचाचारसमायुक्ता रक्षयसे दशतीर्दश ॥ २१

लोक-पूज्य देवताओं से विद्वेष करते हुए सभी श्रेष्ठ असुर सुखपूर्वक वहीं रहने लगे। (८)

उन असुरों को मलय पर्वत पर जानकर शङ्कर ने इन्द्र को वहाँ भेजा। इन्द्र ने जाते हुए मार्ग में गोमाता को देखा। (९)

उसकी प्रदक्षिणा करने के उपरान्त उन्होंने प्रभा सम्पन्न पर्वत पर भोगसंयुत तथा प्रसन्न समस्त दानवों को देखा। (१०)

तदनन्तर इन्द्र ने सभी महासुरों को ललकारा। वे भी बिना व्यग्रता के बाणों की वर्षा करते हुए आए। (११)

हे विप्रर्षि! रथासीन अद्भुत दिखायी पड़ने वाले इन्द्र ने आये हुए उन दानवों को बाणजाल से इस प्रकार आच्छादित कर दिया जैसे मेघ वृष्टि से पर्वतों को आच्छादित करता है। (१२)

तदनन्तर इन्द्र ने मय आदि दानवों को बाणों से आच्छादित कर कङ्कपक्षयुक्त सुतीक्ष्ण बाणों से पाक नामक दानव का वध किया। (१३)

दृढ बाणों द्वारा पाक का शासन करने के कारण सभी अमरों के पति विभु इन्द्र को पाकशासनता की प्राप्ति हुई। (१४)

इसी प्रकार उन्होंने सुन्दर पुच्छयुक्त बाणों से दूसरे पुर नामक बाणासुर के पुत्र का वध किया। इसी से वे पुरन्दर हुए। (१५)

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार उन दानवों का वध कर इन्द्र ने युद्ध में दानव सेना को पराजित कर दिया। विजित वह दानवसैन्य रसातल में चला गया। (१६)

हे मुनिश्रेष्ठ! इसीलिये शङ्कर ने सहस्राक्ष को मलय पर्वत पर भेजा था। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? (१७)

नारद ने कहा हे ब्रह्मन्! मेरे हृदय में यह संदेह है कि देवपति को गोत्रभिद् क्यों कहा जाता है? (१८)

पुलस्त्य ने कहा—आप सुनें कि मैंने इन्द्र को गोत्रभिद् क्यों कहा तथा हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर अरिमर्दन इन्द्र ने क्या किया? (१९)

हे नारद! पुत्र के मर जाने पर दिति ने कश्यप से कहा—हे प्रभु! आप मेरे पति हैं, मुझे इन्द्र को मारने वाला पुत्र दीजिए। (२०)

कश्यप ने उनसे कहा—हे कृष्णनेत्रोंवाली! यदि तुम सौ दिव्य वर्षों तक शौचाचार से सम्पन्न होकर

संवत्सराणां दिव्यानां ततस्त्रैलोक्यनायकम् ।
जनयिष्यसि पुत्रं त्वं शत्रुघ्नं नान्यथा प्रिये ॥ २२
इत्येवमुक्ता सा भर्त्रा दितिर्नियममास्थिता ।
गर्भाधानं ऋषिः कृत्वा जगामोदयपर्वतम् ॥ २३
गते तस्मिन् मुनिश्रेष्ठे सहस्राक्षोऽपि सत्वरम् ।
तमाश्रममुपागम्य दितिं वचनमब्रवीत् ॥ २४
करिष्याम्यनुशुश्रूषां भवत्या यदि मन्यसे ।
बाढमित्यब्रवीद् देवी भाविकर्मप्रचोदिता ॥ २५
समिदाहरणादीनि तस्याश्चक्रे पुरंदरः ।
विनीतात्मा च कार्यार्थी छिद्रान्वेषी भुजंगवत् ॥ २६
एकदा सा तपोयुक्ता शौचे महति संस्थिता ।
दशवर्षशतान्ते तु शिरःस्नाता तपस्विनी ॥ २७
जानुभ्यामुपरि स्थाप्य मुक्तकेशा निजं शिरः ।
सुष्वाप केशप्रान्तैस्तु संश्लिष्टचरणाऽभवत् ॥ २८
तमन्तरमशौचस्य ज्ञात्वा देवः सहस्रदृक् ।
विवेश मातुरुदरं नासारन्ध्रेण नारद ॥ २९
प्रविश्य जठरं क्रुद्धो दैत्यमातुः पुरंदरः ।
ददर्शोर्ध्वमुखं बालं कटिन्यस्तकरं महत् ॥ ३०
तस्यैवास्येऽथ ददृशे पेशीं मांसस्य वासवः ।
शुद्धस्फटिकसंकाशां कराभ्यां जगृहेऽथ ताम् ॥ ३१
ततः कोपसमाध्मातो मांसपेशीं शतक्रतुः ।
कराभ्यां मर्दयामास ततः सा कठिनाऽभवत् ॥ ३२
ऊर्ध्वेनार्धं च ववृधे त्वधोऽर्धं ववृधे तथा ।
शतपर्वाऽथ कुलिशः संजातो मांसपेशितः ॥ ३३
तेनैव गर्भं दितिजं वज्रेण शतपर्वणा ।
चिच्छेद सप्तधा ब्रह्मन् स रुरोद च निस्वरम् ॥ ३४
ततोऽप्यबुध्यत दितिरज्ञानाच्छक्रचेष्टितम् ।
शुश्राव वाचं पुत्रस्य रुदमानस्य नारद ॥ ३५
शक्रोऽपि प्राह मा मूढ रुदस्वेति सुपर्वरम् ।
इत्येवमुक्त्वा चैकैकं भूयश्चिच्छेद सप्तधा ॥ ३६

रहोगी तभी तुम त्रिलोकनायक शत्रुहन्ता पुत्र उत्पन्न करोगी। हे प्रिये! इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। (२१-२२)

पति के ऐसा कहने पर दिति ने नियम का अवलम्बन किया। कश्यप ऋषि गर्भाधान करके उदयगिरि पर चले गये। (२३)

उन मुनिश्रेष्ठ के चले जाने पर इन्द्र ने शीघ्रता से उस आश्रम में जाकर दिति से यह वाक्य कहा— (२४)

यदि आप अनुमति प्रदान करें तो मैं आपकी सेवा करूँ। भवितव्यता से प्रेरित देवी ने कहा—ठीक है। (२५)

विनीतात्मा पुरन्दर अपने कार्य की सिद्धि हेतु भुजङ्गवत् छिद्रान्वेषण करते हुए उन (दिति) के लिये समिधा आदि लाने का कार्य करने लगे। (२६)

एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर एक दिन अतिशय शौचपरायण वह तपस्विनी शिर से स्नान करने के उपरान्त केशों को खोले हुए अपने जानुओं पर शिर रख कर सो गई। उसके केशप्रान्त से चरण संश्लिष्ट हो गए। (२७-२८)

हे नारद! देव सहस्राक्ष इन्द्र अशौच के उस छिद्र को जानकर नाक के छिद्र से माता के उदर में प्रविष्ट हो गए। (२९)

क्रुद्ध पुरन्दर ने दैत्यमाता के महान् जठर में प्रवेश कर कटि पर हाथ रक्खे ऊपर को मुख किये एक बालक को देखा। (३०)

वासव ने उस बालक के मुँह में एक शुद्ध स्फटिक तुल्य मांसपेशी को देखा। उन्होंने उस मांसपेशी को दोनों हाथों से पकड़ लिया। (३१)

तदनन्तर क्रोधान्ध शतक्रतु ने दोनों हाथों से उस मांसपेशी को मर्दित किया जिससे वह कठोर हो गई। (३२)

उस पिंड का आधा भाग ऊपर को और आधा भाग नीचे की ओर बढ़ गया। इस प्रकार उस मांसपेशी से शतपर्वयुक्त वज्र बन गया। (३३)

हे ब्रह्मन्! (इन्द्र ने) उसी शतपर्व वज्र से दिति के गर्भ को सात भागों में छिन्न कर दिया। वह गर्भस्थ बालक भीषण स्वर से रोने लगा। (३४)

हे नारद! तदनन्तर दिति जग गई एवं उन्हें इन्द्र का कृत्य ज्ञात हो गया। उन्होंने रो रहे पुत्र की वाणी को सुना। (३५)

इन्द्र ने भी कहा—हे मूर्ख! घोर शब्द से मत रुदन करो। ऐसा कह कर उन्होंने प्रत्येक खण्ड को पुनः सात-सात खण्डों में काटा। (३६)

ते जाता मरुतो नाम देवभृत्याः शतक्रतोः ।
मातुरेवापचारेण चलन्ते ते पुरस्कृताः ॥ ३७
ततः सकुलिशः शक्रो निर्गम्य जठरात् तदा ।
दितिं कृताञ्जलिपुटः प्राह भीतस्तु शापतः ॥ ३८
ममास्ति नापराधोऽयं यच्छस्तस्तनयास्तव ।
तवैवापनयाच्छस्तस्तन्मे न क्रोद्धमर्हसि ॥ ३९
दितिरुवाच ।
न तवात्रापराधोऽस्ति मन्ये दिष्टमिदं पुरा ।
संपूर्णे त्वपि काले वै या शौचत्वमुपागता ॥ ४०
पुलस्त्य उवाच ।
इत्येवमुक्त्वा तान् बालान् परिसान्त्व्य दितिः स्वयम् ।
देवराज्ञा सहैतांस्तु प्रेषयामास भामिनी ॥ ४१
एवं पुरा स्वानपि सोदरान् स
गर्भस्थितानुज्झरितुं भयार्तः ।
निभेद वज्रेण ततः स गोत्रभित्
ख्यातो महर्षे भगवान् महेन्द्रः ॥ ४२

इति श्रीवामनपुराणे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

४६

नारद उवाच ।
यदमी भवता प्रोक्ता मरुतो दितिजोत्तमाः ।
तत् केन पूर्वमासन् वै मरुन्मार्गेण कथ्यताम् ॥ १
पूर्वमन्वन्तरेष्वेव समतीतेषु सत्तम ।
के त्वासन् वायुमार्गस्थास्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २
पुलस्त्य उवाच ।
श्रूयतां पूर्वमरुतामुत्पत्तिं कथयामि ते ।
स्वायंभुवं समारभ्य यावन्मन्वन्तरं त्विदम् ॥ ३

वे इन्द्र के मरुत नामक देवभृत्य हो गए। माता के ही अपचार के कारण वे आगे चलते हैं। (३७)

तदनन्तर जठर से कुलिश सहित बाहर आकर शाप से भयभीत इन्द्र ने हाथ जोड़ कर दिति से कहा— (३८)

आपके पुत्र को काटने में मेरा अपराध नहीं है। आपके ही अपनय से वह कटा गया। अत मेरे ऊपर आपको क्रुद्ध नहीं होना चाहिए। (३९)

दिति ने कहा—इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। मैं इसे पूर्व से ही निश्चित मानती हूँ। इसी से काल पूर्ण होने पर भी मैंने अशौचाचरण कर दिया। (४०)

पुलस्त्य ने कहा—भामिनी दिति ने ऐसा कहने के उपरान्त उन बालकों को सान्त्वना दिया एवं इन्हें देवराज के साथ ही भेज दिया। (४१)

हे महर्षे! इस प्रकार पूर्वकाल में भयार्त्त महेन्द्र ने वज्र द्वारा गर्भस्थित अपने ही सहोदरों के विनाश के लिये काट डाला। इसीसे वे गोत्रभित् नाम से प्रसिद्ध हुए। ४२)

श्रीवामनपुराण में पैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥

४६

नारद ने कहा—आपने दितिजोत्तम मरुद्‌गणों का जो वर्णन किया उसके विषय में यह बतलायें कि पहले वे मरुत् किस मार्ग में अवस्थित थे? (१)

हे सत्तम! आप मुझे विशेषरूप से यह बतलायें कि पूर्व मन्वन्तर के व्यतीत होने पर कौन (मरुत) वायुमार्ग में स्थित थे? (२)

पुलस्त्य ने कहा—स्वायम्भुव मन्वन्तर से लेकर इस मन्वन्तर तक के पूर्व मरुद्‌गणों की उत्पत्ति आपसे कहता हूँ

स्वायंभुवस्य पुत्रोऽभून्मनोर्नाम प्रियव्रतः ।
तस्यासीत् सवनो नाम पुत्रस्त्रैलोक्यपूजितः ॥ ४

स चानपत्यो देवर्षे नृपः प्रेतगतिं गतः ।
ततोऽरुदत् तस्य पत्नी सुदेवा शोकविह्वला ॥ ५

न ददाति तदा दग्धुं समालिङ्गय स्थिता पतिम् ।
नाथ नाथेति बहुशो विलपन्ती त्वनाथवत् ॥ ६

तामन्तरिक्षादशरीरिणी वाक्
प्रोवाच मा राजपत्नीह रोदीः ।
यद्यस्ति ते सत्यमनुत्तमं तदा
भवत्वयं ते पतिना सहाग्निः ॥ ७

सा तां वाणीमन्तरिक्षान्निशम्य
प्रोवाचेदं राजपुत्री सुदेवा ।
शोचाम्येनं पार्थिवं पुत्रहीनं
नैवात्मानं मन्दभाग्यं विहङ्ग ॥ ८

सोऽथाब्रवीन्मा रुदस्वायताक्षि
पुत्रास्त्वत्तो भूमिपालस्य सप्त ।
भविष्यन्ति वह्निमारोह शीघ्रं
सत्यं प्रोक्तं श्रद्दधस्व त्वमद्य ॥ ९

इत्येवमुक्ता खचरेण बाला
चितौ समारोप्य पतिं वरार्हम् ।
हुताशमासाद्य पतिव्रता तं
संचिन्तयन्ती ज्वलनं प्रपन्ना ॥ १०

ततो मुहूर्तान्नृपतिः श्रिया युतः
समुत्तस्थौ सहितो भार्ययाऽसौ ।
खमुत्पपाताथ स कामचारी
समं महिष्या च सुनाभपुत्र्या ॥ ११

तस्याम्बरे नारद पार्थिवस्य
जाता रजोगा महिषी तु गच्छतः ।
स दिव्ययोगात् प्रतिसंस्थितोऽम्बरे
भार्यासहायो दिवसानि पञ्च ॥ १२

ततस्तु षष्ठेऽहनि पार्थिवेन
ऋतुर्न वन्ध्योऽद्य भवेद् विचिन्त्य ।
रराम तन्व्या सह कामचारी
ततोऽम्बरात् प्राच्यवतास्य शुक्रम् ॥ १३

उसे सुनिये। (३)

स्वायम्भुव मनु के पुत्र का नाम प्रियव्रत था। त्रैलोक्यपूजित सवन उन प्रियव्रत के पुत्र थे। (४)

हे देवर्षि! वे राजा पुत्रहीन ही प्रेतगति को प्राप्त हुए। तदनन्तर उनकी सुदेवा नामक पत्नी शोकविह्वल होकर रोने लगी। (५)

उसने (मृत शरीर को) जलाने के लिये नहीं दिया। पति का आलिङ्गन किये 'नाथ नाथ' कहती हुई वह अनाथा के सदृश अत्यन्त रुदन करने लगी। (६)

उस समय अन्तरिक्ष से अशरीरिणी वाणी ने उससे कहा—हे राजपत्नी! रोओ नहीं। यदि तुम्हारा सत्य श्रेष्ठ है तो यह अग्नि पति के साथ तुम्हारे लिये हो। (७)

अन्तरिक्ष से हुई उस वाणी को सुनकर राजपुत्री सुदेवा ने कहा—हे आकाशचारी! मैं इस पुत्रहीन राजा के लिये शोक कर रही हूँ न कि अपने मन्दभाग्य के लिये। (८)

उसने (आकाशवाणी ने) पुनः कहा—हे विशालाक्षी! तुम मत रोओ। तुम्हारे गर्भ से राजा को सात पुत्र होंगे। तुम शीघ्र अग्नि पर आरोहण करो। मैं सत्य कहता हूँ। इसपर तुम आज श्रद्धा करो। (९)

आकाशचारी के ऐसा कहने पर उस बाला ने श्रेष्ठ पति को चिता पर रखा एवं उस पति का चिन्तन करती हुई अग्नि में प्रवेश कर वह पतिव्रता अग्नि की शरण में गई। (१०)

तदनन्तर मुहूर्तमात्र में वह श्री-सम्पन्न नृपति भार्या के साथ उठा एवं सुनाभ-पुत्री अपनी महिषी के साथ आकाश में जाकर यथेच्छ विचरण करने लगा। (११)

हे नारद! आकाश में जाते हुए उस राजा की महिषी रजस्वला हो गई। वह राजा दिव्ययोग से आकाश में भार्या (सुदेवा) के साथ पाँच दिनों तक रहा। (१२)

तदनन्तर छठें दिन आज ऋतु व्यर्थ न हो जाय ऐसा सोच कर कामचारी राजा भार्या के साथ रमण करने लगा। तदुपरान्त आकाश से उनका शुक्र स्खलित हुआ। (१३)

शुक्रोत्सर्गावसाने तु नृपतिर्भार्यया सह ।
जगाम दिव्यया गत्या ब्रह्मलोकं तपोधन ॥ १४

तदम्बरात् प्रचलितमभ्रवर्णं
शुक्रं समाना नलिनी वपुष्मती ।
चित्रा विशाला हरितालिनी च
सप्तर्षिपत्न्यो ददृशुर्यथेच्छया ॥ १५

तद् दृष्ट्वा पुष्करे न्यस्तं प्रत्यैच्छन्त तपोधन ।
मन्यमानास्तदमृतं सदा यौवनलिप्सया ॥ १६

ततः स्नात्वा च विधिवत् संपूज्य तान् निजान् पतीन् ।
पतिभिः समनुज्ञाताः पपुः पुष्करसंस्थितम् ॥ १७

तच्छुक्रं पार्थिवेन्द्रस्य मन्यमानास्तदाऽमृतम् ।
पीतमात्रेण शुक्रेण पार्थिवेन्द्रोद्भवेन ताः ॥ १८

ब्रह्मतेजोविहीनास्ता जाताः पत्न्यस्तपस्विनाम् ।
ततस्तु तत्यजुः सर्वे सदोषास्ताश्च पत्नयः ॥ १९

सुषुवुः सप्त तनयान् रुदतो भैरवं मुने ।
तेषां रुदितशब्देन सर्वमापूरितं जगत् ॥ २०

अथाजगाम भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
समभ्येत्याब्रवीद् बालान् मा रुदध्वं महाबलाः ॥ २१

मरुतो नाम यूयं वै भविष्यध्वं वियच्चराः ।
इत्येवमुक्त्वा देवेशो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २२

तानादाय वियच्चारी मारुतानादिदेश ह ।
ते त्वासन् मरुतस्त्वाद्या मनोः स्वायंभुवेऽन्तरे ॥ २३

स्वारोचिषे तु मरुतो वक्ष्यामि शृणु नारद ।
स्वारोचिषस्य पुत्रस्तु श्रीमानासीत् क्रतुध्वजः ॥ २४

तस्य पुत्राभवन् सप्त सप्तार्चिःप्रतिमा मुने ।
तपोऽर्थं ते गताः शैलं महामेरुं नरेश्वराः ॥ २५

आराधयन्तो ब्रह्माणं पदमैन्द्रमथेप्सवः ।
ततो विपश्चिन्नामाथ सहस्राक्षो भयातुरः ॥ २६

पूतनामप्सरोमुख्यां प्राह नारद वाक्यवित् ।
गच्छस्व पूतने शैलं महामेरुं विशालिनम् ॥ २७

तत्र तप्यन्ति हि तपः क्रतुध्वजसुता महत् ।
यथा हि तपसो विघ्नं तेषां भवति सुन्दरि ॥ २८

हे तपोधन! शुक्र-त्याग करने के उपरान्त राजा पत्नी के साथ दिव्यगति से ब्रह्मलोक चला गया। (१४)

समाना, नलिनी, वपुष्मती, चित्रा, विशाला, हरिता एवं अलिनी इन सात ऋषि पत्नियों ने आकाश से गिरते हुए अभ्रक-तुल्य वर्ण वाले शुक्र को यथेच्छापूर्वक देखा। (१५)

हे तपोधन! उसे देखकर उसको अमृत मानती हुई शाश्वत यौवन प्राप्त करने की इच्छा से (वे सभी) उसको पुष्कर में रख लीं। (१६)

तदनन्तर स्नानोपरान्त अपने-अपने पतियों का पूजन कर उन पतियों की आज्ञा से पुष्कर में स्थित पार्थिवेन्द्र के उस शुक्र को अमृत मानती हुई वे पान कर गईं। राजा के शुक्र का पान करते ही तपस्वियों की वे पत्नियाँ ब्रह्मतेज से विहीन हो गईं। तदनन्तर उन तपस्वी लोगों ने अपनी उन दोषयुक्त पत्नियों का त्याग कर दिया। (१७-१९)

हे मुने! उन ऋषि पत्नियों ने भयङ्कर रुदन करते हुए सात पुत्रों को उत्पन्न किया उनके रुदन के शब्द से समस्त जगत आपूरित हो गया। (२०)

तदनन्तर भगवान् लोकपितामह ब्रह्मा आये। बालकों के निकट जाकर उन्होंने कहा—हे महाबलवानों! रोओ नहीं। (२१)

तुम्हारा नाम मरुत् होगा। तुम आकाशचारी बनोगे। इतना कहकर लोक पितामह देवेश ब्रह्मा उन मरुतों को लेकर आकाश में गये एवं उन्हें (आकाश में रहने का) आदेश दिया। वे ही स्वायम्भुव मनु के काल में आद्य मरुत् हुए। (२२-२३)

हे नारद! स्वारोचिष मन्वन्तर के मरुतों का वर्णन करता हूँ। इसे सुनो। स्वारोचिष के पुत्र श्रीमान् क्रतुध्वज थे। (२४)

हे मुने! उनके अग्नि तुल्य सात पुत्र थे। वे सभी नरेश्वर तपस्या हेतु महामेरु पर्वत पर गए। (२५)

इन्द्रपद प्राप्त करने की इच्छा से वे ब्रह्मा की आराधना करने लगे। तदनन्तर बुद्धिमान इन्द्र भयातुर हो गये। (२६)

हे नारद! वाक्यविद् इन्द्र ने अप्सराओं में प्रधान पूतना से कहा—हे पूतने! तुम विशाल महामेरु पर्वत पर जाओ। (२७)

वहाँ क्रतुध्वज के पुत्र महान् तप कर रहे हैं।

तथा कुरुष्व मा तेषां सिद्धिर्भवतु सुन्दरि ।
इत्येवमुक्ता शक्रेण पूतना रूपशालिनी ॥ २९
तत्राजगाम त्वरिता यत्रातप्यन्त ते तपः ।
आश्रमस्याविदूरे तु नदी मन्दोदवाहिनी ॥ ३०
तस्यां स्नातुं समायाताः सर्व एव सहोदराः ।
साऽपि स्नातुं सुचार्वङ्गी त्ववतीर्णा महानदीम् ॥ ३१
ददृशुस्ते नृपाः स्नातां तदच्चुक्षुभिरे मुने ।
तेषां च प्राच्यवच्छुक्रं तत्पपौ जलचारिणी ॥ ३२
शङ्खिनी ग्राहमुख्यस्य महाशङ्खस्य वल्लभा ।
तेऽपि विभ्रष्टतपसो जग्मू राज्यं तु पैतृकम् ॥ ३३
सा चाप्सराः शक्रमेत्य याथातथ्यं न्यवेदयत् ।
ततो बहुतिथे काले सा ग्राही शङ्खरूपिणी ॥ ३४
मत्स्युद्धृता महाजालैर्मत्स्यबन्धेन मानिनी ।
स तां दृष्ट्वा महाशङ्खीं स्थलस्थां मत्स्यजीविकः ॥३५
निवेदयामास तदा ऋतुध्वजसुतेषु वै ।
तथाऽभ्येत्य महात्मानो योगिनो योगधारिणः ॥ ३६
नीत्वा स्वमन्दिरं सर्वे पुरवाप्यां समुत्सृजन् ।
ततः क्रमाच्छङ्खिनी सा सुषुवे सप्त वै शिशून् ॥ ३७
जातमात्रेषु पुत्रेषु मोक्षभावमगाच्च सा ।
अमातृपितृका बाला जलमध्यविहारिणः ॥ ३८
स्तन्यार्थिनो वै रुरुदुरथाभ्यागात् पितामहः ।
मा रुदध्वमितीत्याह मरुतो नाम पुत्रकाः ॥ ३९
यूयं देवा भविष्यध्वं वायुस्कन्धविचारिणः ।
इत्येवमुक्त्वाथादाय सर्वांस्तान् देवतान् प्रति ॥ ४०
नियोज्य च मरुन्मार्गे वैराजं भवनं गतः ।
एवमासंश्च मरुतो मनोः स्वारोचिषेऽन्तरे ॥ ४१
उत्तमे मरुतो ये च तान्शृणुष्व तपोधन ।
उत्तमस्यान्ववाये तु राजासीन्निषधाधिपः ॥ ४२
वपुष्मानिति विख्यातो वपुषा भास्करोपमः ।
तस्य पुत्रो गुणश्रेष्ठो ज्योतिष्मान् धार्मिकोऽभवत् ॥४३

हे सुन्दरि। उनके तप में जिस प्रकार विघ्न हो तथा हे सुन्दरि। उन्हें सिद्धि प्राप्ति न हो सके ऐसा करो। इन्द्र के कहने पर रूपवती पूतना शीघ्र वहाँ गई जहाँ वे तप कर रहे थे। आश्रम के निकट ही मन्द जलप्रवाह वाली नदी थी। (२८-३०)

सभी सगे भाई उस नदी में स्नान करने के लिये आये। वह सुन्दरी भी स्नान करने के लिये उस महानदी में उतरी। (३१)

हे मुने! उन राजपुत्रों ने स्नान करती हुई उसको देखा और वे क्षुभित हुए। उनका शुक्र गिर गया। ग्राह-मुख्य महाशङ्ख की प्रिया शङ्खिनी ने उसे पी लिया। तप से भ्रष्ट हो जाने पर वे भी अपने पिता के राज्य में चले गए। (३२-३३)

उस अप्सरा ने भी इन्द्र के समीप जाकर उनसे यथार्थ तथ्य को निवेदित किया। तदनन्तर चिरकाल के बाद किसी धीवर ने महाजाल द्वारा उस शङ्खरूपिणी मानिनी ग्राही को पकड़ लिया। मत्स्यजीवी (धीवर) ने स्थल पर पड़ी हुई उस महाशङ्खी को देखकर ऋतुध्वज के पुत्रों से निवेदित किया। योग धारण करने वाले वे महात्मा योगी मत्स्यजीवी के साथ गए। (३४-३६)

वे सभी उसको अपने घर लाकर नगर की वापी में छोड़ दिये। उस शङ्खिनी ने क्रमशः सात पुत्रों को उत्पन्न किया। (३७)

पुत्रों का जन्म होते ही वह शङ्खिनी मुक्त हो गई। मातृ-पितृविहीन वे बालक जल में विचरण करने लगे। (३८)

दुग्ध के लिए वे रोने लगे। उस समय पितामह वहाँ आये। उन्होंने कहा—हे पुत्रो! रोओ मत। तुम्हारा नाम मरुत् होगा। (३९)

तुम लोग वायु के स्कन्ध पर विचरण करने वाले देवता होगे। यह कहने के उपरान्त उन सभी देवताओं को ले जाकर उन्हें वायु मार्ग में नियोजित कर ब्रह्मलोक चले गए। इस प्रकार स्वारोचिष मनु के काल में मरुत् हुए। (४०-४१)

हे तपोधन! उत्तम (मन्वन्तर) में जो मरुत् थे, उनके विषय में सुनिये। उत्तम के वंश में शरीर से सूर्य के समान वपुष्मान् नाम का विख्यात निषधाधिप राजा था। उसका गुणश्रेष्ठ ज्योतिष्मान् नामक धार्मिक पुत्र था। (४२-४३)

स पुत्रार्थी तपस्तेपे नदीं मन्दाकिनीमनु ।
तस्य भार्या च सुश्रोणी देवाचार्यसुता शुभा ॥ ४४
तपश्चरणयुक्तस्य बभूव परिचारिका ।
सा स्वयं फलपुष्पाम्बुसमित्कुशं समाहरत् ॥ ४५
चकार पद्मपत्राक्षी सम्यक् चातिथिपूजनम् ।
पतिं शुश्रूषमाणा सा कृशा धमनिसंतता ॥ ४६
तेजोयुक्ता सुचार्वङ्गी दृष्टा सप्तर्षिभिर्वने ।
तां तथा चारुसर्वाङ्गीं दृष्ट्वाऽथ तपसा कृशाम् ॥ ४७
पप्रच्छुस्तपसो हेतुं तस्यास्तद्भर्तुरेव च ।
साऽब्रवीत् तनयार्थाय आवाभ्यां वै तपःक्रिया ॥४८
ते चास्यै वरदा ब्रह्मन् जाताः सप्त महर्षयः ।
व्रजध्वं तनयाः सप्त भविष्यन्ति न संशयः ॥ ४९
युवयोर्गुणसंयुक्ता महर्षीणां प्रसादतः ।
इत्येवमुक्त्वा जग्मुस्ते सर्व एव महर्षयः ॥ ५०
स चापि राजर्षिरगात् सभार्यो नगरं निजम् ।
ततो बहुतिथे काले सा राज्ञो महिषी प्रिया ॥ ५१
अवाप गर्भं तन्वङ्गी तस्मान्नृपतिसत्तमात् ।
गुर्विण्यामथ भार्यायां ममारासौ नराधिपः ॥ ५२
सा चाप्यारोढुमिच्छन्ती भर्तारं वै पतिव्रता ।
निवारिता तदामात्यैर्न तथापि व्यतिष्ठत ॥ ५३
समारोप्याथ भर्तारं चितायामारुह्य सा ।
ततोऽग्निमध्यात् सलिले मांसपेश्यपतन्मुने ॥ ५४
साऽम्भसा सुशीतेन संसिक्ता सप्तधाऽभवत् ।
तेऽजायन्ताथ मरुत उत्तमस्यान्तरे मनोः ॥ ५५
तामसस्यान्तरे ये च मरुतोऽप्यभवन् पुरा ।
तानहं कीर्तयिष्यामि गीतनृत्यकलिप्रिय ॥ ५६
तामसस्य मनोः पुत्रो ऋतध्वज इति श्रुतः ।
स पुत्रार्थी जुहावाग्नौ स्वमांसं रुधिरं तथा ॥ ५७
अस्थीनि रोमकेशांश्च स्नायुमज्जायकृद्धनम् ।
शुक्रं च चित्रगी राजा सुतार्थी इति नः श्रुतम् ॥ ५८
सप्तस्वेवार्चिषु ततः शुक्रपातादनन्तरम् ।
मा मा क्षिपस्वेत्यभवच्छब्दः सोऽपि मृतो नृपः ॥ ५९

वह पुत्र की कामना से मन्दाकिनी नदी के तट पर तपस्या करने लगा। देवाचार्य बृहस्पति की सुन्दरी पुत्री उनकी कल्याणी भार्या थी वह उन तपस्वी की परिचारिका बनी। वह स्वयं फल, पुष्प, जल, समिधा एवं कुश लाती थी। (४४-४५)

कमलदल के सदृश लोचनों वाली वह अच्छी तरह अतिथियों का पूजन करती थी। पति की सेवा करते हुए उसका शरीर कृश हो गया तथा शिरायें प्रकट हो गईं। (४६)

सप्तर्षियों ने उस तेजस्विनी सर्वांगसुन्दरी को वन में देखा। तप से कृश उस सर्वांगसुन्दरी को देखकर उन लोगों ने उससे तथा उसके पति की तपस्या का कारण पूछा। उसने कहा—हम दोनों पुत्र के लिए तप कर रहे हैं। (४७-४८)

हे ब्रह्मन्! सातों महर्षियों ने उसे वर दिया—तुम जाओ। महर्षियों के अनुग्रह से तुम दोनों को निस्सन्देह सात गुणवान् पुत्र होंगे ऐसा वह वर दे सभी महर्षि चले गए। (४९-५०)

वह राजर्षि भी पत्नी सहित अपने नगर में गये। तदनन्तर बहुत काल व्यतीत हो जाने पर राजा की उस प्रिय महिषी ने उस नृपतिश्रेष्ठ से गर्भ धारण किया। भार्या के गर्भिणी होने पर वह राजा मर गया। (५१-५२)

वह पतिव्रता पति के साथ चितारोहण के लिए उत्सुक हुई। मन्त्रियों ने उसे निवारित किया। किन्तु वह निवृत्त न हुई। (५३)

पति को चिता पर समारोपित कर वह भी उस पर आरूढ़ हो गई। हे मुने! तदनन्तर अग्नि के मध्य से जल में एक मांसपेशी गिरी। (५४)

सुशीतल जल से संसिक्त होने पर वह (मांसपेशी) सात खण्डों में विभक्त हो गई। वे ही उत्तम मनु के काल में मरुत् हुए। (५५)

हे गीतनृत्यकलिप्रिय (नारद)! पहले तामस मन्वन्तर में जो मरुत् हुए (अब मैं) उनका वर्णन करूँगा। (५६)

तामस मनु के पुत्र ऋतध्वज नाम से विख्यात थे। उन्होंने पुत्र की कामना से अग्नि में अपने शरीर के मांस और रुधिर का हवन किया। (५७)

हम लोगों ने सुना है कि पुत्रार्थी राजा ने अस्थि, रोम, केश, स्नायु, मज्जा, यकृत और धन शुक्र की अग्नि में आहुति दी। (५८)

तदनन्तर सातों अग्नियों में शुक्रपात होने पर 'मत

ततस्तस्माद्धुतवहात् सप्त तत्तेजसोपमाः ।
शिशवः समजायन्त ते रुदन्तोऽभवन् मुने ॥ ६०
तेषां तु ध्वनिमाकर्ण्य भगवान् पद्मसम्भवः ।
समागम्य निवार्य्याथ स चक्रे मरुत सुतान् ॥ ६१
ते त्वासन् मरुतो ब्रह्मंस्तामसे देवतागणाः ।
येऽभवन् रैवते तांश्च शृणुष्व त्वं तपोधन ॥ ६२
रैवतस्यान्ववाये तु राजासीद् रिपुजिद् वशी ।
रिपुजिन्नामतः ख्यातो न तस्यासीत् सुतः किल ॥ ६३
स समाराध्य तपसा भास्करं तेजसां निधिम् ।
अवाप कन्यां सुरतिं तां प्रगृह्य गृहं ययौ ॥ ६४
तस्या पितृगृहे ब्रह्मन् वसन्त्यां स पिता मृतः ।
साऽपि दुःखपरीताङ्गी स्वां तनुं त्यक्तुमुद्यता ॥ ६५
ततस्तां वारयामासुर्ऋषयः सप्त मानसाः ।
तस्यामासक्तचित्तास्तु सर्व एव तपोधनाः ॥ ६६
अपारयन्ती तद्दुःखं प्रज्वाल्याग्निं विवेश ह ।
ते चापश्यन्त ऋषयस्तच्चित्ता भावितास्तथा ॥ ६७
तां मृतामृषयो दृष्ट्वा कष्टं कष्टेति वादिनः ।
प्रजग्मुर्ज्वलनाच्चापि सप्तजायन्त दारकाः ॥ ६८
ते च मात्रा विनाभूता रुरुदुस्तान् पितामहः ।
निवारयित्वा कृतवांल्लोकनाथो मरुद्गणान् ॥ ६९
रैवतस्यान्तरे जाता मरुतोऽमी तपोधन ।
शृणुष्व कीर्तयिष्यामि चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ॥ ७०
आसीन्मङ्किरिति ख्यातस्तपस्वी सत्यवाक् शुचिः ।
सप्तसारस्वते तीर्थे सोऽतप्यत महत् तपः ॥ ७१
विघ्नार्थं तस्य तुषिता देवाः सम्प्रेषयन् वपुम् ।
सा चाभ्येत्य नदीतीरे क्षोभयामास भामिनी ॥ ७२
ततोऽस्य प्राच्यवच्छुक्रं सप्तसारस्वते जले ।
तां चैवाप्यशपन्मूढां मुनिर्मङ्कणको वपुम् ॥ ७३
गच्छ लब्धाऽसि मूढे त्वं पापस्यास्य महत् फलम् ।
विध्वंसयिष्यति हयो भवतीं यज्ञसंसदि ॥ ७४

फेंको, मत फेंको, इस प्रकार का शब्द होने लगा। वह राजा भी मर गया। (५९)

हे मुने ! तदनन्तर उस अग्नि से सात तेजस्वी शिशु उत्पन्न हुए और वे रोने लगे। (६०)

उनके रोदन की ध्वनि सुनकर भगवान् पद्मयोनि ने आकर मना किया और उन पुत्रों को मरुत नामक देवता बना दिया। (६१)

हे ब्रह्मन् ! वे ही तामस मन्वन्तर में (मरुद्गण) नामक देवता हुए थे। हे तपोधन ! रैवत मन्वन्तर में जो (मरुद्गण) हुए थे उनका विवरण सुनिए। (६२)

रैवत के वंश में शत्रुजयी संयमी रिपुजित् नाम से विख्यात राजा थे। उनको पुत्र नहीं था। (६३)

उन्होंने तप द्वारा तेजोनिधि भास्कर की आराधना कर सुरति नामक कन्या प्राप्त की और उसे लेकर वे घर चले गये। (६४)

हे ब्रह्मन् ! उस कन्या के पितृ-गृह में रहते हुए पिता का देहान्त हो गया। वह भी शोकाकुल होकर अपने शरीर का परित्याग करने के लिए उद्यत हुई। (६५)

तदनन्तर सात मानस ऋषियों ने उसे मना किया। वे सभी तपोधन उस में आसक्त हो गये थे। (६६)

किन्तु वह कन्या उस दुःख को सहन न कर सकने के कारण आग जलाकर उसमें प्रविष्ट हो गई। उस में आसक्त तथा लीन ऋषियों ने उसे देखा। (६७)

उसे मृत देखकर वे ऋषि 'दुःख की बात है' 'दुःख की बात है' कहते हुए चले गये। तदनन्तर उस अग्नि से सात पुत्र उत्पन्न हुए। (६८)

माता के अभाव में वे रोने लगे। लोकनाथ पितामह ब्रह्मा ने उन्हें रोककर मरुद्गण का पद दिया। (६९)

हे तपोधन ! वे ही रैवत मन्वन्तर में मरुद्गण हुए थे। अब मैं चाक्षुष मनु के काल के मरुद्गणों का वर्णन करूँगा। उसे सुनिये। (७०)

मङ्कि नाम से विख्यात सत्यवादी और पवित्र एकतपस्वी थे। उन्होंने सप्तसारस्वत तीर्थ में महान् तप किया था। (७१)

देवताओं ने उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिये 'वपु' नामक अप्सरा को भेजा। उस भामिनी ने नदी तट पर आकर मुनि को क्षुब्ध कर दिया। (७२)

तदनन्तर उनका शुक्र च्युत होकर सप्तसारस्वत के जल में स्खलित हुआ। मुनि मङ्कणक ने उस मूढ 'वपु' को भी शाप दिया। (७३)

हे मूढे ! चली जाओ। तुम्हें इस पाप का दारुण फल प्राप्त होगा। यज्ञसंसद में तुमको अश्व ध्वस्त करेगा। (७४)

एवं शप्त्वा ऋषिः श्रीमान् जगामाथ स्वमाश्रमम् ।
सरस्वतीभ्यः सप्तभ्यः सप्त वै मरुतोऽभवन् ॥ ७५
एतत् तवोक्ता मरुतः पुरा यथा
जाता वियद्व्यापिकरा महर्षे ।
येषां श्रुते जन्मनि पापहानि-
र्भवेच्च धर्माभ्युदयो महान् वै ॥ ७६

इति श्रीवामनपुराणे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

४७

पुलस्त्य उवाच ।
एतदर्थं बलिर्दैत्यः कृतो राजा कलिप्रिय ।
मन्त्रप्रदाता प्रह्लादः शुक्रश्चासीत् पुरोहितः ॥ १
ज्ञात्वाऽभिषिक्तं दैतेयं विरोचनसुतं बलिम् ।
दिदृक्षवः समायाताः समयाः सर्व एव हि ॥ २
तानागतान्निरीक्ष्यैव पूजयित्वा यथाक्रमम् ।
पप्रच्छ कुलजान् सर्वान् किंनु श्रेयस्करं मम ॥ ३
तमूचुः सर्व एवैनं शृणुष्व सुरमर्दन ।
यत् ते श्रेयस्करं कर्म यदस्माकं हितं तथा ॥ ४
पितामहस्तव बली आसीद् दानवपालकः ।
हिरण्यकशिपुर्वीरः स शक्रोऽभूज्जगत्त्रये ॥ ५
तमागम्य सुरश्रेष्ठो विष्णुः सिंहवपुर्धरः ।
प्रत्यक्षं दानवेन्द्राणां नखैस्तं हि व्यदारयत् ॥ ६
अपकृष्टं तथा राज्यमन्धकस्य महात्मनः ।
तेषामर्थे महाबाहो शंकरेण त्रिशूलिना ॥ ७
तथा तव पितृव्योऽपि जम्भः शक्रेण घातितः ।

श्रीमान् ऋषि इस प्रकार शाप देकर अपने आश्रम में गये। तदनन्तर सप्त सरस्वतियों से सात मरुत् उत्पन्न हुए। (७५)

हे महर्षि! पूर्व काल में अन्तरिक्ष व्यापी मरुद्गण जिस प्रकार उत्पन्न हुए थे उसे मैंने आप से कहा। इन का वर्णन सुनने से पाप का नाश तथा धर्म का महान् अभ्युदय होता है। (७६)

श्रीवामनपुराण में छियालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥४६॥

४७

पुलस्त्य ने कहा—हे कलिप्रिय! इसीलिए बलि दैत्य को राजा बनाया गया था। प्रह्लाद उसके मन्त्री तथा शुक्र पुरोहित थे। (१)

विरोचन के पुत्र दैत्य बलि को अभिषिक्त हुआ जानकर मय सहित सभी दैत्य उसे देखने की इच्छा से आये। (२)

अपने कुलपुरुषों को आया देखकर (बलि ने) यथाक्रम उनकी पूजा की एवं उनसे पूछा—मेरे लिए क्या श्रेयस्कर है? (३)

उन सभी ने उससे कहा—हे देवमर्दन! तुम्हारे लिए जो श्रेयस्कर तथा हमारे लिए हितावह कर्म है उसे सुनो। (४)

बलवान् वीर दानवपालक हिरण्यकशिपु तुम्हारे पितामह थे। वे तीनों लोकों में इन्द्र हो गये थे। (५)

सिंहशरीरधारी सुरश्रेष्ठ विष्णु ने आकर श्रेष्ठ दानवों के सम्मुख उन्हें नखों से विदीर्ण कर दिया। (६)

हे महाबाहु! उन (दैत्यों) के लिए त्रिशूली शङ्कर ने महात्मा अन्धक का राज्य ले लिया था। (७)

इसी प्रकार इन्द्र ने तुम्हारे पिता के भाई जम्भ को

कुजम्भो विष्णुना चापि प्रत्यक्षं पशुवत् तव ॥ ८
शम्भुः पाको महेन्द्रेण भ्राता तव सुदर्शनः ।
विरोचनस्तव पिता निहतः कथयामि ते ॥ ९
श्रुत्वा गोत्रक्षयं ब्रह्मन् कृतं शक्रेण दानवः ।
उद्योगं कारयामास सह सर्वैर्महासुरैः ॥ १०
रथैरन्ये गजैरन्ये वाजिभिश्चापरेऽसुराः ।
पदातयस्तथैवान्ये जग्मुर्युद्धाय दैवतैः ॥ ११
मयोऽग्रे याति बलवान् सेनानाथो भयंकरः ।
सैन्यस्य मध्ये च बलिः कालनेमिश्च पृष्ठतः ॥ १२
वामपार्श्वमवष्टभ्य शाल्वः प्रथितविक्रमः ।
प्रयाति दक्षिणं घोरं तारकाख्यो भयंकरः ॥ १३
दानवानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
संप्रयातानि युद्धाय देवैः सह कलिप्रिय ॥ १४
श्रुत्वाऽसुराणामुद्योगं शक्रः सुरपतिः सुरान् ।
उवाच याम दैत्यांस्तान् योद्धुं सबलसंयुतान् ॥ १५

इत्येवमुक्त्वा वचनं सुरराट् स्यन्दनं बली ।
समारुरोह भगवान् यतमातलिवाजिनम् ॥ १६
समारूढे सहस्राक्षे स्यन्दनं देवतागणाः ।
स्वं स्वं वाहनमारुह्य निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १७
आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वेऽश्विनौ तथा ।
विद्याधरा गुह्यकाश्च यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ १८
राजर्षयस्तथा सिद्धा नानाभूताश्च संहताः ।
गजानन्ये रथानन्ये हयानन्ये समारुहन् ॥ १९
विमानानि च शुभ्राणि पक्षिवाह्यानि नारद ।
समारुह्याद्रवन् सर्वे यतो दैत्यबलं स्थितम् ॥ २०
एतस्मिन्नन्तरे धीमान् वैनतेयः समागतः ।
तस्मिन् विष्णुः सुरश्रेष्ठ अधिरुह्य समभ्यगात् ॥ २१
तमागतं सहस्राक्षस्त्रैलोक्यपतिमव्ययम् ।
ववन्द मूर्ध्नावनतः सह सर्वैः सुरोत्तमैः ॥ २२
ततोऽग्रे देवसैन्यस्य कार्तिकेयो गदाधरः ।

मारा तथा विष्णु ने तुम्हारे सम्मुख कुजम्भ को पशु की तरह मार डाला था। (८)

शम्भु, पाक और तुम्हारे भाई सुदर्शन को महेन्द्र ने निहत किया था। तुम्हारे पिता विरोचन भी मारे गये थे। (९)

हे ब्रह्मन्! शक्र द्वारा किये गये गोत्रक्षय को सुनकर दानव ने समस्त महान् असुरों से युद्ध का उद्योग कराया। (१०)

कतिपय असुर रथों पर, कुछ हाथियों पर, कुछ घोड़ों पर तथा कुछ पैदल ही देवों से युद्ध करने के लिए गये। (११)

सेना के अग्रभाग में भयङ्कर एवं बलवान् सेनापति मय चला। सेना के मध्य में बलि, पृष्ठ में कालनेमि, वामभाग में प्रसिद्ध पराक्रमी शाल्व तथा दक्षिण पार्श्व में भयङ्कर तारक नामक असुर प्रस्थित हुआ। (१२-१३)

हे कलिप्रिय (नारद)! हजारों, प्रयुतों एवं अर्बुदों दानव देवताओं से लड़ने के लिए प्रयाण किये। (१४)

असुरों का युद्धोद्योग सुनकर सुरपति इन्द्र ने देवताओं से कहा—सेना से युक्त उन दैत्यों से लड़ने के लिए हम सब चलें। (१५)

ऐसा वचन कहकर बलवान् भगवान् सुरपति इन्द्र मातलि द्वारा नियन्त्रित अश्वों वाले रथ पर समारूढ़ हुए। (१६)

इन्द्र के रथारूढ़ होने पर देवगण अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ हो युद्ध की इच्छा से बाहर निकले। (१७)

आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, विद्याधर, गुह्यक, यक्ष, राक्षस, पन्नग, राजर्षि, सिद्ध तथा नाना प्रकार के भूत समवेत हुए। कुछ हाथियों पर, कुछ रथों पर तथा कुछ घोड़ों पर आरूढ़ हुए। (१८-१९)

हे नारद! कतिपय देवगण पक्षियों द्वारा ढोये जाने वाले शुभ्र विमानों पर आरूढ़ होकर वहाँ गये जहाँ दैत्य सेना स्थित थी। (२०)

इसी बीच बुद्धिमान् गरुड़ आये। सुरश्रेष्ठ विष्णु उस पर आरूढ़ होकर चले। (२१)

सभी देवताओं के साथ सिर झुकाकर सहस्राक्ष इन्द्र ने आये हुए त्रैलोक्यपति अव्यय (विष्णु) की वन्दना की। (२२)

तदनन्तर कार्तिकेय देव-सेना के अग्रभाग में, गदाधर विष्णु सेना के पश्चाद् भाग में तथा

पालयञ्जघनं विष्णुर्याति मध्ये सहस्रदृक् ॥ २३
यामं पार्श्वमवष्टभ्य जयन्तो व्रजते मुने ।
दक्षिणं वरुणः पार्श्वमवष्टभ्याव्रजद् बली ॥ २४
ततोऽमराणां पृतना यशस्विनी
स्कन्देन्द्रविष्णवम्बुपसूर्यपालिता ।
नानास्त्रशस्त्रोद्यतदोःसमूहा
समाससादाद्रिवरं महीध्रे ॥ २५
उदयाद्रितटे रम्ये शुभे समशिलातले ।
निर्वृक्षे पक्षिरहिते जातो देवासुरो रणः ॥ २६
संनिपातस्तयो रौद्रः सैन्ययोरभवन्मुने ।
महीधरोत्तमे पूर्वे यथा वानरहस्तिनोः ॥ २७
रणरेणू रथोद्भूतः पिङ्गलो रणमूर्धनि ।
संध्यानुरक्तः सदृशो मेघः खे सुरतापस ॥ २८
तदासीत् तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किंचन ।
श्रूयते त्वनिशं शब्दः छिन्धि भिन्धीति सर्वतः ॥ २९
ततो विशसनो रौद्रो दैत्यानां दैवतैः सह ।
जातो रुधिरनिष्यन्दो रजःसंशमनात्मकः ॥ ३०
शान्ते रजसि देवाद्यास्तद् दानवबलं महत् ।
अभिद्रवन्ति सहिताः समं स्कन्देन धीमता ॥ ३१
निजघ्नुर्दानवान् देवाः कुमारभुजपालिताः ।
देवान् निजघ्नुर्दैत्याश्च मयगुप्ताः प्रहारिणः ॥ ३२
ततोऽमृतरसास्वादाद् विना भूताः सुरोत्तमाः ।
निर्जिताः समरे दैत्यैः समं स्कन्देन नारद ॥ ३३
विनिर्जितान् सुरान् दृष्ट्वा वैनतेयध्वजोऽरिहा ।
शार्ङ्गमानम्य बाणौघैर्निजघान ततस्ततः ॥ ३४
ते विष्णुना हन्यमानाः पतत्रिभिरयोमुखैः ।
दैतेयाः शरणं जग्मुः कालनेमिं महासुरम् ॥ ३५
तेभ्यः स चाभयं दत्त्वा ज्ञात्वाऽजेयं च माधवम् ।
विवृद्धिमगमद् ब्रह्मन् यथा व्याधिरुपेक्षितः ॥ ३६
यं यं करेण स्पृशति देवं यक्षं सकिन्नरम् ।

सहस्रलोचन इन्द्र मध्यभाग की रक्षा करते हुए चले । (२३)

हे मुनि ! जयन्त वामपार्श्व को घेर कर चले एवं बलवान् वरुण दक्षिण पार्श्व में स्थित होकर चले । (२४)

तदनन्तर नाना प्रकार के अस्त्रशस्त्रों को धारण करने वालों से युक्त तथा स्कन्द, विष्णु, वरुण एवं सूर्य से पालित देवों की यशस्विनी सेना पर्वत पर शत्रुसैन्य के निकट पहुँची । (२५)

वृक्ष एवं पक्षियों से रहित उदयाचल के रमणीय, शुभ एवं सम शिलातल पर देवों एवं असुरों का महान् युद्ध हुआ । (२६)

हे मुनि ! पूर्वकाल में जैसा युद्ध वानर एवं हाथियों के बीच हुआ था वैसा ही भयङ्कर संघर्ष उन दोनों सेनाओं में हुआ । (२७)

हे सुरतापस ! रथ से उड़ी हुई युद्ध की पिङ्गलवर्ण धूलि युद्ध-भूमि के ऊपर आकाश में स्थित सन्ध्याकालीन लाल मेघ की तरह प्रतीत होने लगी । (२८)

उस समय हो रहे तुमुलयुद्ध में कुछ भी नहीं ज्ञान हो रहा था । सभी ओर निरन्तर 'काटो' 'मारो' का शब्द सुनाई पड़ता था । (२९)

तदनन्तर देवों के साथ दैत्यों की भयङ्कर मार काट से धूलि को शान्त करने वाला रुधिर-प्रवाह उत्पन्न हुआ । (३०)

धूलि के शान्त होने पर देवताओं ने बुद्धिमान् कार्तिकेय के साथ महान् दानव-दल पर आक्रमण किया । (३१)

कुमार कार्तिकेय के बाहुबल से रक्षित देवताओं ने दैत्यों को मारा तथा मय के द्वारा रक्षित प्रहार करने वाले दैत्यों ने देवताओं को मारा । (३२)

हे नारद ! तदनन्तर अमृतरस के आस्वाद के बिना स्कन्द सहित श्रेष्ठ देवगण युद्ध में दैत्यों द्वारा पराजित हो गये । (३३)

देवों को पराजित हुआ देखकर शत्रुसूदन गरुडध्वज शार्ङ्ग धनुष को झुकाकर चारों तरफ बाणों की वर्षा करने लगे । (३४)

विष्णु द्वारा लौहमुख बाणों से मारे जा रहे दैत्य कालनेमि नामक महान् असुर की शरण में गये । (३५)

हे ब्रह्मन् ! उन्हें अभय प्रदान कर तथा माधव को अजेय जानकर (वह) उपेक्षित व्याधि के सदृश बढ़ने लगा । (३६)

वह बलवान् जिस देवता, यक्ष या किन्नर को हाथ से

तं तमादाय चिक्षेप विस्तृते वदने बली ॥ ३७
संरम्भाद् दानवेन्द्रो विमृदति दितिजैः संयुतो देवसैन्यं
सेन्द्रं सार्कं सचन्द्रं करचरणनखैरस्त्रहीनोऽपि वेगात् ।
चक्रैर्वैश्वानराभैस्त्ववनिगगनयोस्तिर्यगूर्ध्वं समन्तात्
प्राप्ते ऽन्ते कालवह्नेर्जगदखिलमिदं रूपमासीद् दिधक्षोः ॥३८
तं दृष्ट्वा वर्द्धमानं रिपुमतिबलिनं देवगन्धर्वमुख्याः
सिद्धाः साध्याश्विमुख्या भयतरलदृशः प्राद्रवन् दिक्षु सर्वे ।
प्रोत्सूयन्तश्च दैत्या हरिममरगणैरर्चितं चारुमौलिं
नानाशस्त्रास्त्रपातैर्विगलितयशसं चक्रुरत्सिक्तदर्पाः ॥३९
तानित्थं प्रेक्ष्य दैत्यान् मयबलिपुरगान् कालनेमिप्रधानान्
बाणैराकृष्य शार्ङ्गं त्वनवरतमुरोभेदिभिर्वज्रकल्पैः ।
कोपादारक्तदृष्टिः सरथगजहयान् दृष्टिनिर्धूतवीर्यान्
नाराचाख्यैः सुपुङ्खैर्जलद इव
गिरीन् छादयामास विष्णुः ॥ ४०
तैर्बाणैश्छाद्यमाना हरिकरनुदितैः कालदण्डप्रकाशै-
र्नाराचैरर्धचन्द्रैर्बलिमयपुरगा भीतभीतास्त्वरन्तः ।
प्रारम्भे दानवेन्द्रं शतवदनमथो प्रेषयन् कालनेमिं
स प्रायाद् देवसैन्यप्रभुममितबलं केशवं लोकनाथम् ॥ ४१
तं दृष्ट्वा शतशीर्षमुद्यतगदं शैलेन्द्रशृङ्गाकृतिं
विष्णुः शार्ङ्गमपास्य सत्वरमथो जग्राह चक्रं करे ।
सोऽप्येनं प्रसमीक्ष्य दैत्यविटपप्रच्छेदनं मानिनं
प्रोवाचाथ विहस्य त च सुचिरं मेघस्वनो दानवः ॥४२
अय स दनुपुत्रसैन्यवित्रासकृद्रिपुः
परमकोपितः स मधोर्विघातकृत् ।
हिरण्यनयनान्तकः कुसुमपूजारतिः
क्व याति मम दृष्टिगोचरे निपतितः खलः ॥ ४३
यद्येष संप्रति ममाहवमभ्युपैति
नूनं न याति निलयं निजमम्बुजाक्षः ।
मन्मुष्टिपिष्टशिथिलाङ्गमुपात्तभस्म
संद्रक्ष्यते सुरजनो भयकातराक्षः ॥४४

स्पर्श करता उसे लेकर अपने विस्तृत मुख में फेंकने लगा। (३७)

वह दैत्येन्द्र कालनेमि अस्त्रहीन होने पर भी दानवों के साथ मिलकर क्रोध से हाथ, पैर और नख के प्रहार से इन्द्र, सूर्य, चन्द्र सहित देव सेना को वेग से मारने लगा। वह अग्नि तुल्य चक्रों द्वारा आकाश एवं पृथ्वी पर नीचे ऊपर चतुर्दिक प्रहार करने लगा। उस समय उसका रूप प्रलय काल में समस्त जगत् को दग्ध करने की इच्छा वाले अग्नि के सदृश था। (३८)

उस अति बलवान् शत्रु को बढते देखकर देवता, गन्धर्व, सिद्ध साध्य, अश्विनीकुमार आदि भय से चपल दृष्टि वाले होकर चारों ओर भागने लगे। कूदते हुए दैत्यों ने अत्यन्त गर्वित होकर अमरों से पूजित तथा सुन्दर मुकुट वाले विष्णु के सामने जाकर विविध शस्त्रास्त्रों के आघात से उनके यश को समाप्त कर दिया। (३९)

मय, बलि एवं कालनेमि आदि दैत्यों को इस प्रकार देखकर विष्णु के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने अपनी दृष्टि से रथ, हाथी और घोड़ों को वीर्यहीन कर दिया एवं जैसे मेघ आकाश को आच्छादित करते हैं उसी प्रकार सुन्दर पुङ्खों से युक्त नाराच नामक बाणों द्वारा पर्वत को आच्छादित कर दिया। (४०)

विष्णु के हाथों से छोडे गये कालदण्ड तुल्य अर्धचन्द्राकार उन नाराच नामक बाणों से आच्छादित बलि एवं मय आदि दैत्यों ने भयभीत होकर शीघ्रता से पहले दानवेन्द्र शतमुख कालनेमि को प्रेषित किया। वह देव सेनाधिप अति बलवान् लोकनाथ केशव के सम्मुख गया। (४१)

गदा उठाये हुये सौ शिर वाले पर्वतशृङ्ग के सदृश कालनेमि को देखकर विष्णु ने शार्ङ्ग धनुष को छोड़कर हाथ में शीघ्र ही चक्र को लिया। इनको देखकर बहुत देर तक ज़ोर से हँसते हुए मेघ के समान शब्द वाले उस दानव ने दैत्यरूपी वृक्षों के नाशक मनस्वी हरि से कहा— (४२)

यही दानव सेना को त्रस्त करने वाला शत्रु, अत्यन्त क्रोधी, मधु को मारने वाला, हिरण्याक्ष का नाशक तथा पुष्पों द्वारा की गई पूजा से प्रसन्न होने वाला है यह खल मेरी आँखों के सामने आ कर अब कहाँ जाता है। (४३)

यह कमलाक्ष (विष्णु) यदि इस समय मेरे साथ युद्ध करे तो अपने घर नहीं जायेगा और देवता भयकातर नेत्र से मेरी मुट्ठी में पिसकर शिथिल अङ्गों वाले इस (विष्णु) को धूलिधूसरित देखेंगे। (४४)

इत्येवमुक्त्वा मधुसूदनं वै
स कालनेमिः स्फुरिताधरोष्ठः।
गदां खगेन्द्रोपरि जातकोपो
मुमोच शैले कुलिशं यथेन्द्रः ॥ ४५
तामापतन्तीं प्रसमीक्ष्य विष्णु-
र्घोरां गदां दानवबाहुमुक्ताम्।
चक्रेण चिच्छेद सुदुर्गतस्य
मनोरथं पूर्वकृतेव कर्म ॥ ४६
गदां छित्त्वा दानवाभ्याशमेत्य
भुजौ पीनौ संप्रचिच्छेद वेगात्।
भुजाभ्यां कृत्ताभ्यां दग्धशैलप्रकाशः
सदृश्येताप्यपरः कालनेमिः ॥ ४७

ततोऽस्य माधवः कोपात् शिरश्चक्रेण भूतले।
छित्त्वा निपातयामास पक्वं तालफलं यथा ॥ ४८
तथा विबाहुर्विशिरा मुण्डतालो यथा वने।
तस्थौ मेरुरिवाकम्प्यः कबन्धः क्ष्माधरेश्वरः ॥ ४९
तं वैनतेयोऽप्युरसा खगोत्तमो
निपातयामास मुने धरण्याम्।
यथाऽम्बराद् बाहुशिरः प्रणष्ट-
बलं महेन्द्रः कुलिशेन भूम्याम् ॥ ५०
तस्मिन् हते दानवसैन्यपाले
संपीड्यमानास्त्रिदशैस्तु दैत्याः।
विमुक्तशस्त्रालकचर्मवस्त्राः
संप्राद्रवन् बाणमृतेऽसुरेन्द्राः ॥ ५१

इति श्रीवामनपुराणे सप्तचत्वारिंशोऽध्याय ॥४७॥

४८

पुलस्त्य उवाच।
संनिवृत्ते ततो बाणे दानवाः सत्वरं पुनः।
निवृत्ता देवतानां च सशस्त्रा युद्धलालसाः ॥ १
विष्णुरप्यमितौजास्तं ज्ञात्वाऽजेयं बलेः सुतम्।

मधुसूदन से इस प्रकार कहकर क्रोध से अधरोष्ठ को स्फुरित करते हुए कालनेमि ने, इन्द्र जिस प्रकार पर्वत पर वज्र फेंकते हैं उसी प्रकार गदा को गरुड़ पर फेंका। (४५)

भगवान् विष्णु ने दानव के हाथ से मुक्त उस भयङ्कर गदा को आते देख उसे चक्र से इस प्रकार नष्ट कर दिया जैसे पूर्वकृत कर्म भाग्यहीन मनुष्य के मनोरथ को नष्ट कर देता है। (४६)

गदा को काट कर विष्णु दानव के निकट गये एवं वेगपूर्वक उसकी मोटी भुजाओं को काट डाले। भुजाओं के कट जाने पर कालनेमि दूसरे जले हुए पर्वत के तुल्य दिखलाई पड़ने लगा। (४७)

तदनन्तर माधव ने क्रोधपूर्वक चक्र द्वारा उसके शिर को काट कर पक्व तालफल के सदृश पृथ्वी पर गिरा दिया। (४८)

वन में मुण्डताल के सदृश बाहु एवं मस्तकहीन कबन्ध निष्कम्प पर्वतराज मेरु के सदृश खड़ा रहा। (४९)

हे मुने! जैसे महेन्द्र ने कुलिश द्वारा नष्ट बाँह और शिर वाले बल को पृथ्वी पर गिराया था उसी प्रकार पक्षि श्रेष्ठ गरुड़ ने अपनी छाती के प्रहार से उस (कबन्ध) को पृथ्वी पर गिरा दिया। (५०)

उस दानव सेनापति के मारे जाने पर बाणासुर के अतिरिक्त देवों द्वारा अति पीड़ित सभी दैत्य शस्त्र, केश, ढाल और वस्त्र को छोड़कर भाग गये। (५१)

श्रीवामनपुराण में सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४७॥

४८

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर बाणासुर के लौटने पर दानव पुनः शस्त्र लेकर शीघ्र देवताओं से युद्ध करने की इच्छा से लौटे। (१)

अपरिमित तेजस्वी विष्णु ने बलि के पुत्र बाण को

प्राहामन्त्र्य सुरान् सर्वान् युध्यध्वं विगतज्वराः ॥ २
विष्णुनाऽथ समादिष्टा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
युयुधुर्दानवैः सार्धं विष्णुस्त्वन्तरधीयत ॥ ३
माधवं गतमाज्ञाय शुक्रो बलिमुवाच ह ।
गोविन्देन सुरास्त्यक्तास्त्वं जयस्वाधुना बले ॥ ४
स पुरोहितवाक्येन प्रीतो याते जनार्दने ।
गदामादाय तेजस्वी देवसैन्यमभिद्रुवः ॥ ५
बाणो बाहुसहस्रेण गृह्य प्रहरणान्यथ ।
देवसैन्यमभिद्रुत्य निजघान सहस्रशः ॥ ६
मयोऽपि मायामास्थाय तैस्तै रूपान्तरैर्मुने ।
योधयामास बलवान् सुराणां च वरूथिनीम् ॥ ७
विद्युज्जिह्वः पारिभद्रो वृषपर्वा शतेक्षणः ।
विपाको विक्षरः मैन्यं तेऽपि देवानुपाद्रवन् ॥ ८
ते हन्यमाना दितिजैर्देवाः शक्रपुरोगमाः ।
गते जनार्दने देवे प्रायशो विमुखाऽभवन् ॥ ९
तान् प्रभग्नान् सुरगणान् बलिबाणपुरोगमाः ।
पृष्ठतश्चाद्रवन् सर्वे त्रैलोक्यविजिगीषवः ॥ १०
संबाध्यमाना दैतेयैर्देवाः सेन्द्रा भयातुराः ।
त्रिविष्टपं परित्यज्य ब्रह्मलोकमुपागताः ॥ ११
ब्रह्मलोकं गतेष्वित्थं सेन्द्रेष्वपि सुरेषु वै ।
स्वर्गभोक्ता बलिर्जातः सपुत्रभ्रातृबान्धवः ॥ १२
शक्रोऽभूद् भगवान् ब्रह्मन् बलिर्बाणो यमोऽभवत् ।
वरुणोऽभून्मयः सोमो राहुर्ह्लादो हुताशनः ॥ १३
स्वर्भानुरभवत् सूर्यः शुक्रश्चासीद् बृहस्पतिः ।
येऽन्येऽप्यधिकृता देवास्तेषु जाताः सुरारयः ॥१४
पञ्चमस्य कलेरादौ द्वापरान्ते सुदारुणः ।
देवासुरोऽभूत् संग्रामो यत्र शक्रोऽप्यभूद् बलिः ॥ १५
पातालाः सप्त तस्यासन् वशे लोकत्रयं तथा ।
भूर्भुवःस्वरिति ख्यातं दशलोकाधिपो बलिः ॥ १६
स्वर्गे स्वयं निवसति भुञ्जन् भोगान् सुदुर्लभान् ।

अजेय जानकर देवताओं को बुलाकर कहा—आप लोग निर्भय होकर युद्ध कीजिये । (२)

विष्णु के द्वारा आदिष्ट इन्द्र आदि देवता दानवों के साथ युद्ध करने लगे और विष्णु अदृश्य हो गये । (३)

माधव को गया हुआ जानकर शुक्र ने बलि से कहा—हे बलि! गोविन्द ने देवताओं का परित्याग कर दिया है । अब तुम जय प्राप्त करो । (४)

जनार्दन के चले जाने पर तेजस्वी बलि पुरोहित के वाक्य से हर्षित हो गदा लेकर देवसेना की ओर दौड़ा । (५)

हजार हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर बाणासुर ने देव-सेना पर चढ़ाई कर सहस्रों का वध किया । (६)

हे मुने! बलवान् मय दानव भी माया के द्वारा विभिन्न रूपों को धारण कर अमरों की सेना के साथ युद्ध करने लगा । (७)

विद्युज्जिह्व, पारिभद्र, वृषपर्वा, शतेक्षण, विपाक, तथा विक्षर भी देवताओं की सेना पर टूट पड़े । (८)

भगवान् जनार्दन के चले जाने पर इन्द्रादि देव दैत्यों द्वारा मारे जाकर प्रायेण युद्ध से विमुख हो गये । (९)

बलि एवं बाण आदि त्रैलोक्य को जीतने की इच्छा वाले सभी (दैत्य) भागते देवों के पीछे दौड़े । (१०)

दैत्यों द्वारा पीड़ित इन्द्रादि भयातुर देवता स्वर्ग को छोड़कर ब्रह्मलोक चले गये । (११)

इस प्रकार इन्द्र सहित देवताओं के ब्रह्मलोक चले जाने पर पुत्रों, भाई और बान्धवों के साथ बलि स्वर्ग का भोक्ता हो गया । (१२)

हे ब्रह्मन्! बलि भगवान् इन्द्र हुआ एवं बाण यम बना । मय दानव वरुण हुआ तथा राहु चन्द्र और ह्लाद अग्नि बना । (१३)

स्वर्भानु (केतु) सूर्य हुआ एवं शुक्र बृहस्पति बने । इसी प्रकार अन्य विभिन्न देवताओं के पदों पर असुरों ने अधिकार कर लिया । (१४)

पञ्चम कलियुग के आदि में और द्वापर युग के अन्तिम भाग में भयङ्कर देवासुर संग्राम हुआ था । उस समय बलि इन्द्र बना था । (१५)

सात पाताल और भूः, भुवः, स्वः नामक विख्यात तीनों लोक उसके अधिकार में थे । इस प्रकार बलि दश लोकों का अधिपति हो गया था । (१६)

सुदुर्लभ भोगों का उपभोग करते हुए स्वयं

तत्रोपासन्त गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः ॥ १७
तिलोत्तमाद्याप्सरसो नृत्यन्ति सुरतापस ।
वादयन्ति च वाद्यानि यक्षविद्याधरादयः ॥ १८
विविधानपि भोगांश्च भुञ्जन् दैत्येश्वरो बलिः ।
सस्मार मनसा ब्रह्मन् प्रह्लादं स्वपितामहम् ॥ १९
संस्मृतो नप्तृणा चासौ महाभागवतोऽसुरः ।
समभ्यागात् त्वरायुक्तः पातालात् स्वर्गमव्ययम्॥२०
तमागतं समीक्ष्यैव त्यक्त्वा सिंहासनं बलिः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ववन्दे चरणावुभौ ॥ २१
पादयोः पतितं वीरं प्रह्लादस्त्वरितो बलिम् ।
समुत्थाप्य परिष्वज्य विवेश परमासने ॥ २२
तं बलिः प्राह भोस्तात त्वत्प्रसादात् सुरा मया ।
निर्जिताः शक्रराज्यं च हृतं वीर्यबलान्मया ॥ २३
तदिदं तात मद्वीर्यविनिर्जितसुरोत्तमम् ।
त्रैलोक्यराज्यं भुङ्क्ष त्वं मयि भृत्ये पुरःस्थिते ॥ २४

एतावता पुण्ययुतः स्यामहं तात यत् स्वयम् ।
त्वदङ्घ्रिपूजाभिरतस्त्वदुच्छिष्टान्नभोजनः ॥ २५
न सा पालयतो राज्यं धृतिर्भवति सत्तम ।
या धृतिर्गुरुशुश्रूषां कुर्वतो जायते विभो ॥ २६
ततस्तदुक्तं बलिना वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तम ।
प्रह्लादः प्राह वचनं धर्मकामार्थसाधनम् ॥ २७

मया कृतं राज्यमकण्टकं पुरा
प्रशासिता भूः सुहृदोऽनुपूजिताः ।
दत्तं यथेष्टं जनितास्तथात्मजाः
स्थितो बले सम्प्रति योगसाधकः ॥ २८

गृहीतं पुत्र विधिवन्मया भूयोऽर्पितं तव ।
एवं भव गुरूणां त्वं सदा शुश्रूषणे रतः ॥ २९
इत्येवमुक्त्वा वचनं करे त्वादाय दक्षिणे ।
शक्रे सिंहासने ब्रह्मन् बलिं तूर्णं न्यवेशयत् ॥ ३०
सोपविष्टो महेन्द्रस्य सर्वरत्नमये शुभे ।

बलि स्वर्ग में रहने लगा। विश्वावसु आदि गन्धर्व उसकी सेवा करने लगे। (१७)

हे देवर्षि! तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ नृत्य करती थीं एवं यक्ष तथा विद्याधरादि वाद्य बजाते थे। (१८)

हे ब्रह्मन्! विविध भोगों का उपभोग करते हुए दैत्येश्वर बलि ने मन से अपने पितामह प्रह्लाद का स्मरण किया। (१९)

पौत्र के स्मरण करने पर वे महान् विष्णु-भक्त असुर शीघ्र पाताल से अक्षय स्वर्गलोक में आये। (२०)

उन्हें आया हुआ देखते ही बलि ने सिंहासन त्यागकर तथा हाथ जोड़कर उनके चरणों की वन्दना की। (२१)

चरणों में प्रणत वीर बलि को शीघ्रतापूर्वक उठाकर तथा आलिङ्गन कर प्रह्लाद आसन पर बैठ गये। (२२)

बलि ने उनसे कहा—हे तात! मैंने आपकी कृपा से अपनी शक्ति के द्वारा देवताओं को पराजित कर दिया और इन्द्र के राज्य को छीन लिया। (२३)

हे तात! आप मेरे पराक्रम द्वारा जीते गये देवों के इस श्रेष्ठ त्रैलोक्य-राज्य का भोग करें एवं मैं आपके सम्मुख भृत्य रूप से उपस्थित रहूँगा। (२४)

हे तात! इस प्रकार आपके चरणों की पूजा में रत रहकर आपके उच्छिष्ट अन्न का भोजन करने से मैं पुण्यवान् हो जाऊँगा। (२५)

हे सत्तम! हे विभो! राज्य का पालन करने वालों में वह धृति नहीं होती जो धृति गुरु की शुश्रूषा करने वालों में होती है। (२६)

हे द्विज सत्तम! तदनन्तर प्रह्लाद ने बलि द्वारा कहे वाक्य को सुनकर धर्म, अर्थ तथा काम का साधक वचन कहा। (२७)

मैंने पहले अकंटक राज्य किया है। पृथ्वी का शासन और मित्रों की पूजा कर चुका हूँ। यथेष्ट दान और अनेक सन्तानों को उत्पन्न किया है। किन्तु हे बलि! इस समय मैं योगी हो गया हूँ। (२८)

हे पुत्र! तुम्हारे दिये को विधिपूर्वक ग्रहण कर मैंने पुनः तुमको दे दिया। इसी प्रकार तुम गुरुओं की सेवा में सदा रत रहो। (२९)

हे ब्रह्मन्! ऐसा वचन कहकर (प्रह्लाद ने) दाहिना हाथ पकड़ कर बलि को शीघ्र इन्द्र के सिंहासन पर बैठा दिया। (३०)

वह दैत्यपति बलि महेन्द्र के सर्वरत्नमय मङ्गलमय सिंहासन

सिंहासने दैत्यपतिः शुशुभे मघवानिव ॥ ३१
तत्रोपविष्टश्चैवासौ कृताञ्जलिपुटो नतः ।
प्रह्लादं प्राह वचनं मेघगम्भीरया गिरा ॥ ३२
यन्मया तात कर्तव्यं त्रैलोक्यं परिरक्षता ।
धर्मार्थकाममोक्षेभ्यस्तदादिशतु मे भवान् ॥ ३३
तद्वाक्यसमकालं च शुक्रः प्रह्लादमब्रवीत् ।
यद्युक्तं तन्महाबाहो वदस्वाद्योत्तरं वचः ॥ ३४
वचनं बलिशुक्राभ्यां श्रुत्वा भागवतोऽसुरः ।
प्राह धर्मार्थसंयुक्तं प्रह्लादो वाक्यमुत्तमम् ॥ ३५
यदायत्यां क्षमं राजन् यद्धितं भुवनस्य च ।
अविरोधेन धर्मस्य अर्थस्योपार्जनं च यत् ॥ ३६
सर्वसत्त्वानुगमनं कामवर्गफलं च यत् ।
परत्रेह च यच्छ्रेयः पुत्र तत्कर्म आचर ॥ ३७
यथा श्लाघ्यं प्रयास्यद्य यथा कीर्तिर्भवेत्तव ।
यथा नायशसो योगस्तथा कुरु महामते ॥ ३८
एतदर्थं श्रियं दीप्तां काङ्क्षन्ते पुरुषोत्तमाः ।
येनैतानि गृहेऽस्माकं निवसन्ति सुनिर्वृताः ॥ ३९
कुलजो व्यसने मग्नः सखा चार्थबहिः कृतः ।
वृद्धो ज्ञातिर्गुणी विप्रः कीर्तिश्च यशसा सह ॥ ४०

तस्माद् यथैते निवसन्ति पुत्र
राज्यस्थितस्येह कुलोद्गताद्याः ।
तथा यतस्वामलसत्त्वचेष्ट
यथा यशस्वी भविताऽसि लोके ॥ ४१
भूम्यां सदा ब्राह्मणभूषितायां
क्षत्रान्वितायां दृढवापितायाम् ।
शुश्रूषणासक्तसमुद्भवाया-
मृद्धिं प्रयान्तीह नराधिपेन्द्राः ॥ ४२
तस्माद् द्विजाद्याः श्रुतिशास्त्रयुक्ता
नराधिपांस्ते प्रतियाजयन्तु ।
दिव्यैर्यजन्तु क्रतुभिर्द्विजेन्द्रा
यज्ञाग्निधूमेन नृपस्य शान्तिः ॥ ४३

तपोऽध्ययनसंपन्ना याजनाध्यापने रताः ।

पर बैठकर इन्द्र के समान शोभित हुआ। (३१)

उस पर बैठने के उपरान्त नम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर उसने मेघ-गर्जन तुल्य गम्भीर वाणी मे प्रह्लाद से कहा— (३२)

हे तात ! त्रैलोक्य का रक्षण करते हुये मेरे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिये कर्त्तव्य को मुझे आप बतलाएँ। (३३)

उसके वाक्य के साथ ही साथ शुक्र ने प्रह्लाद से कहा—हे महाबाहु ! जो उचित हो वह उत्तर दीजिए। (३४)

विष्णु भक्त प्रह्लाद ने बलि और शुक्र की बात सुनकर धर्म और अर्थ युक्त उत्तम वाक्य कहा— (३५)

हे पुत्र ! भविष्य के लिए समर्थ, ससार के लिए हितावह एव धर्म के अनुकूल अर्थ का उपार्जन तथा सभी प्राणियों के अनुकूल कामवर्ग के फल (का सेवन) एवं इह लोक और परलोक मे श्रेयस्कर कर्म का आचरण करो। (३६-३७)

हे महामति ! तुम जिस प्रकार श्लाघनीय बन सको एवं जिस प्रकार तुम्हें कीर्ति प्राप्त हो तथा अयश का योग न हो वही कर्म करो। (३८)

श्रेष्ठ पुरुष इसीलिए उत्कृष्ट लक्ष्मी की आकाँक्षा करते हैं ताकि विपत्ति मे पड़ा हुआ कुलीन व्यक्ति, धनहीन सखा, वृद्ध ज्ञाति, गुणी ब्राह्मण एव यश से युक्त कीर्ति उनके गृह मे शान्तिपूर्वक रह सकें। (३९-४०)

अत हे पुत्र ! हे पवित्र विचार एवं चेष्टा वाले ! राज्य स्थित होने पर जिस प्रकार (उपर्युक्त) कुलोत्पन्नादि (तुम्हारे गृह मे) रह सकें एव जिस प्रकार तुम लोक मे यशस्वी हो सको वैसा ही प्रयत्न करो। (४१)

पृथ्वी के सदा ब्राह्मणों से भूषित होने, क्षत्रियों से युक्त होने, (वैश्यों द्वारा) भलीभाँति (जोते) बोये जाने तथा सेवारत (शूद्रों से) से सम्पन्न होने पर श्रेष्ठ राजाओं को समृद्धि प्राप्त होती है। (४२)

अत श्रुतिशास्त्र सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मण राजाओं से यज्ञ कराते एव उत्तम द्विजगण दिव्य यज्ञ करें। यज्ञाग्नि के धूम से नृप की शान्ति होती है। (४३)

हे बलि ! तपस्या और वेदाध्ययन से सम्पन्न यजन और अध्यापन में निरत ब्राह्मण तुम्हारी अनुमति पाकर

सन्तु विप्रा बले पूज्यास्त्वत्तोऽनुज्ञामवाप्य हि ॥ ४४
स्वाध्याययज्ञनिरता दातारः शस्त्रजीविनः ।
क्षत्रियाः सन्तु दैत्येन्द्र प्रजापालनधर्मिणः ॥ ४५
यज्ञाध्ययनसपन्ना दातारः कृषिकारिणः ।
पाशुपाल्यं प्रकुर्वन्तु वैश्या विपणिजीविनः ॥ ४६
ब्राह्मणक्षत्रियविशां सदा शुश्रूषणे रताः ।
शूद्रा. सन्त्वसुरश्रेष्ठ तवाज्ञाकारिणः सदा ॥ ४७
यदा वर्णा. स्वधर्मस्था भवन्ति दितिजेश्वर ।
धर्मवृद्धिस्तदा स्याद्वै धर्मवृद्धौ नृपोदयः ॥ ४८
तस्माद् वर्णाः स्वधर्मस्थास्त्वया कार्याः सदा बले ।
तद्वृद्धौ भवतो वृद्धिस्तद्धानौ हानिरुच्यते ॥ ४९
इत्थं वचः श्राव्य महासुरेन्द्रो
बलिं महात्मा स बभूव तूष्णीम् ।
ततो यदाज्ञापयसे करिष्ये
इत्थं बलिः प्राह वचो महर्षे ॥ ५०

इति श्रीवामनपुराणे अष्टचत्वारिंशोऽध्याय ॥४८॥

४९

पुलस्त्य उवाच ।
ततो गतेषु देवेषु ब्रह्मलोकं प्रति द्विज ।
त्रैलोक्यं पालयामास बलिर्धर्मान्वितः सदा ॥ १
कलिस्तदा धर्मयुतं जगद् दृष्ट्वा कृते यथा ।
ब्रह्माणं शरण भेजे स्वभावस्य निषेवणात् ॥ २
गत्वा स ददृशे देवं सेन्द्रैर्देवैः समन्वितम् ।
स्वदीप्त्या द्योतयन्तं च स्वदेशं ससुरासुरम् ॥ ३
प्रणिपत्य तमाहाथ तिष्यो ब्रह्माणमीश्वरम् ।

पूजित हों। (४४)
हे दैत्येन्द्र ! क्षत्रिय स्वाध्याय एव यज्ञ मे निरत, दान देने वाले, शस्त्रजीवी तथा प्रजापालन करने वाले हों। (४५)
वैश्यगण यज्ञाध्ययन सम्पन्न, दाता कृषि-कर्त्ता एव वाणिज्यजीवी हों तथा पशुपालन का कर्म करें। (४६)

हे असुरश्रेष्ठ ! शूद्रगण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सदा सेवा में रत रहें और तुम्हारी आज्ञा का सदा पालन करें। (४७)
हे दितिजेश्वर ! जब सभी वर्ण के लोग अपने अपने धर्म मे रहते है तो निश्चय ही धर्म की वृद्धि होती है एव धर्म की वृद्धि होने पर राजा की उन्नति होतीहै। (४८)
अत हे बलि ! तुम सभी वर्णों को स्वधर्म मे सदा स्थित करो। उसकी (स्वधर्म की) वृद्धि से तुम्हारी वृद्धि होगी। उसकी हानि से हानि होती है। (४९)

महासुरेन्द्र महात्मा प्रह्लाद बलि से इस प्रकार कह कर मौन हो गये। हे महर्षे ! तदनन्तर बलि ने इस प्रकार कहा—आपने जो आदेश दिया। मैं उसी के अनुसार कार्य करूँगा। (५०)

श्रीवामनपुराण मे अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

४९

पुलस्त्य ने कहा—हे द्विज ! देवों के ब्रह्मलोक चले जाने पर बलि सदा धर्मान्वित रहते हुए त्रैलोक्य का पालन करने लगा। (१)
उस समय जगत् को कृतयुग की तरह धर्मयुक्त हुआ देखकर कलियुग अपने स्वभाव का सेवन करने के निमित्त ब्रह्मा की शरण मे गया। (२)
वहाँ जाकर उसने ब्रह्मा को इन्द्रादि देवों से युक्त देखा। वे अपनी दीप्ति से सुरासुर समन्वित अपने लोक को प्रकाशित कर रहे थे। (३)
उन ईश्वर ब्रह्मा को प्रणाम कर कलि ने उनसे कहा—

मम स्वभावो बलिना नाशितो देवसत्तम ॥ ४
तं प्राह भगवान् योगी स्वभावं जगतोऽपि हि ।
न केवलं हि भवतो हृतं तेन बलीयसा ॥ ५
पश्यस्व विष्य देवेन्द्रं वरुणं च समारुतम् ।
भास्करोऽपि हि दीनत्वं प्रयातो हि बलाद् बलेः ॥ ६
न तस्य कश्चित् त्रैलोक्ये प्रतिपेद्धाऽस्ति कर्मणः ।
ऋते सहस्रं शिरसं हरिं दशशताङ्घ्रिकम् ॥ ७
स भूमिं च तथा नाकं राज्यं लक्ष्मीं यशोऽव्ययः ।
समाहरिष्यति बलेः कर्तुः सद्धर्मगोचरम् ॥ ८
इत्येवमुक्तो देवेन ब्रह्मणा कलिरव्ययः ।
दीनान् दृष्ट्वा स शक्रादीन् विभीतकवनं गतः ॥ ९
कृतः प्रावर्तत तदा कलेर्नाशात् जगत्त्रये ।
धर्मोऽभवच्चतुष्पादश्चातुर्वर्ण्येऽपि नारद ॥ १०
तपोऽहिंसा च सत्यं च शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दया दानं त्वानृशंस्यं शुश्रूषा यज्ञकर्म च ॥ ११
एतानि सर्वजगतः परिव्याप्य स्थितानि हि ।
बलिना बलवान् ब्रह्मन् तिष्योऽपि हि कृतः कृतः ॥ १२
स्वधर्मस्थायिनो वर्णा ह्याश्रमांश्चाविशन् द्विजाः ।
प्रजापालनधर्मस्थाः सदैव मनुजर्षभाः ॥ १३
धर्मोत्तरे वर्तमाने ब्रह्मन्नस्मिञ्जगत्त्रये ।
त्रैलोक्यलक्ष्मीर्वरदा त्वायाता दानवेश्वरम् ॥ १४
तामागतां निरीक्ष्यैव सहस्राक्षश्रियं बलिः ।
पप्रच्छ काऽसि मां ब्रूहि केनास्यर्थेन चागता ॥ १५
सा तद्वचनमाकर्ण्य प्राह श्रीः पद्ममालिनी ।
बले शृणुष्व याऽस्मि त्वामायाता महिषी बलात् ॥ १६
अप्रमेयबलो देवो योऽसौ चक्रगदाधर. ।
तेन त्यक्तस्तु मघवा ततोऽहं त्वामिहागता ॥ १७
स निर्ममे युवतयश्चतस्रो रूपसंयुताः ।
श्वेताम्बरधरा चैव श्वेतस्रगनुलेपना ॥ १८
श्वेतवृन्दारकारूढा सत्त्वाढ्या श्वेतविग्रहा ।
रक्ताम्बरधरा चान्या रक्तस्रगनुलेपना ॥ १९
रक्तवाजिसमारूढा रक्ताङ्गी राजसी हि सा ।

हे देव श्रेष्ठ! बलि ने मेरे स्वभाव को नष्ट कर दिया है। (४)

योगी भगवान् ब्रह्मा ने उससे कहा—केवल तुम्हारा ही नहीं अपितु समस्त जगत् का स्वभाव उस बलवान् ने हरण कर लिया है। (५)

हे बलि! मरुत् सहित वरुण एवं देवेन्द्र को देखो। बलि के बल से भास्कर भी दीन हो गये हैं। (६)

सहस्रशीर्ष एव सहस्रपाद् (विष्णु) के अतिरिक्त तीनों लोकों में उसके कर्म को रोकने वाला कोई नहीं है। (७)

वे अव्यय बलि द्वारा किए गये सद्धर्म के कारण प्राप्त उसकी भूमि, स्वर्ग, राज्य, लक्ष्मी एवं यश का अपहरण करेंगे। (८)

भगवान् ब्रह्मा के ऐसा कहने पर अव्यय कलि, इन्द्र आदि देवताओं को दीन हुआ देखकर विभीतक वन में चला गया। (९)

हे नारद! कलि का लोप हो जाने से तीनों लोकों में कृतयुग प्रवृत्त हो गया। चारों वर्गों में चतुष्पाद् धर्म की व्याप्ति हो गई। (१०)

तपस्या, अहिंसा, सत्य, पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह, दया, दान, मृदुता, सेवा और यज्ञ-कार्य-ये सभी समस्त जगत् में व्याप्त हो गये। हे ब्रह्मन्! बलि ने बलवान् कलि को भी कृतयुग बना दिया। (११-१२)

सभी वर्ण अपने अपने धर्म में अवस्थित हो गए, द्विजगण विभिन्न आश्रमों का अवलम्बन करने लगे तथा राजा प्रजापालनरूपी धर्म का आचरण करने लगे। (१३)

हे ब्रह्मन्! इन तीनों लोकों के धर्म परायण होने पर वरदात्री त्रैलोक्य-लक्ष्मी दानवेश्वर बलि के पास आयीं। (१४)

इन्द्र की लक्ष्मी को आयी हुई देखकर बलि ने पूछा—मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो एवं किस प्रयोजन से आयी हो। (१५)

पद्ममाला विभूषिता लक्ष्मी ने उसकी बात सुनकर कहा—हे बलि! मैं बलात् तुम्हारे पास आई हुई जो स्त्री हूँ उसे सुनो। (१६)

अमित बलशाली चक्रगदाधर देव विष्णु ने इन्द्र को छोड़ दिया है। अत मैं तुम्हारे समीप यहाँ आई हूँ। (१७)

उन्होंने (विष्णु ने) रूप युक्त चार युवतियों की सृष्टि की (प्रथम युवती) सत्त्व प्रधान, श्वेत शरीरिणी, श्वेताम्बरधारिणी श्वेतमाल्यानुलेपन से युक्त एवं श्वेत गजारूढ थी।

पीताम्बरा पीतवर्णा पीतमाल्यानुलेपना ॥ २०
सौवर्णस्यन्दनचरा तामसं गुणमाश्रिता ।
नीलाम्बरा नीलमाल्या नीलगन्धानुलेपना ॥ २१
नीलवृषसमारूढा त्रिगुणा सा प्रकीर्तिता ।
या सा श्वेताम्बरा श्वेता सत्त्वाढ्या कुञ्जरस्थिता ॥ २२
सा ब्रह्माणं समायाता चन्द्रं चन्द्रानुगानपि ।
या रक्ता रक्तवसना वाजिस्था रजसान्विता ॥ २३
तां प्रादाद् देवराजाय मनवे तत्समेषु च ।
पीताम्बरा या सुभगा रथस्था कनकप्रभा ॥ २४
प्रजापतिभ्यस्तां प्रादात् शुक्राय च विशःसु च ।
नीलवस्त्राऽलिसदृशी या चतुर्थी वृषस्थिता ॥ २५
सा दानवान् नैरृतांश्च शूद्रान् विद्याधरानपि ।
विप्राद्याः श्वेतरूपां तां कथयन्ति सरस्वतीम् ॥ २६
स्तुवन्ति ब्रह्मणा सार्धं मखे मन्त्रादिभिः सदा ।
क्षत्रिया रक्तवर्णां तां जयश्रीमिति शंसिरे ॥ २७

(दूसरी युवती) रजोगुण प्रधान, रक्तशरीरिणी, रक्ताम्बरधारिणी, रक्तमाल्यानुलेपन से युक्त एवं रक्तवर्ण के अश्व पर आरूढा थी। (तृतीय युवती) तमोगुण-प्रधान, पीत वर्ण के शरीर वाली, पीताम्बरधारिणी, पीतमाल्यानुलेपन से युक्त एवं सुवर्ण रथ पर आरूढ थी। (चतुर्थ युवती) त्रिगुण प्रधान, नील शरीर वाली, नीलाम्बरधारिणी एवं नील वर्ण के माल्य, गन्ध एवं अनुलेपन से युक्त तथा नील वृषारूढ थी। सत्त्वप्रधाना, श्वेतशरीरिणी, श्वेताम्बरधारिणी एवं कुञ्जरारूढा (युवती) ब्रह्मा, चन्द्रमा एवं चन्द्रमा के अनुयायियों के समीप चली गई। रजोगुण से युक्त, रक्ताङ्गी, रक्ताम्बरधारिणी एवं अश्वारूढा (युवती को उन्होंने) इन्द्र, मनु तथा उनके सदृश लोगों को प्रदान किया। कनकवर्णाङ्गी, पीताम्बरधारिणी, सौभाग्यवती रथारूढा (युवती को उन्होंने) प्रजापतियों, शुक्र एवं वैश्यों को दिया। नीलवस्त्रधारिणी, भ्रमरसदृशी, वृषस्थित चतुर्थ (युवती) दानवों, नैरृतों, शूद्रों एवं विद्याधरों के पास चली गई। उस श्वेतरूपा को विप्रादि सरस्वती कहते हैं। (१८-२६)

यज्ञ में ब्रह्मा सहित सदा मन्त्रादि से वे उसकी स्तुति करते हैं। क्षत्रिय लोग उस रक्तवर्णा को जयश्री कहते हैं। (२७)

सा चेन्द्रेणासुरश्रेष्ठ मनुना च यशस्विनी ।
वैश्यास्तां पीतवसनां कनकाङ्गीं सदैव हि ॥ २८
स्तुवन्ति लक्ष्मीमित्येवं प्रजापालास्तथैव हि ।
शूद्रास्तां नीलवर्णाङ्गीं स्तुवन्ति च सुभक्तितः ॥ २९
श्रिया देवीति नाम्ना तां समं दैत्यैश्च राक्षसैः ।
एवं विभक्तास्ता नार्यस्तेन देवेन चक्रिणा ॥ ३०
एतासां च स्वरूपस्थास्तिष्ठन्ति निधयोऽव्ययाः ।
इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गास्तथोक्तयः ॥ ३१
चतुःषष्टिकलाः श्वेता महापद्मो निधिः स्थितः ।
मुक्तासुवर्णरजतं रथाश्वगजभूषणम् ॥ ३२
शस्त्रास्त्रादिकवस्त्राणि रक्ता पद्मो निधिः स्मृतः ।
गोमहिष्यः खरोष्ट्रं च सुवर्णाम्बरभूमयः ॥ ३३
ओषध्यः पशवः पीता महानीलो निधिः स्थितः ।
सर्वासामपि जातीनां जातिरेका प्रतिष्ठिता ॥ ३४
अन्येषामपि संहर्त्री नीला शङ्खो निधिः स्थितः ।

हे असुरश्रेष्ठ ! वह इन्द्र तथा मनु के साथ यशस्विनी हुई। वैश्य एवं प्रजापतिगण उस पीतवसना कनकाङ्गी की सदा लक्ष्मी के नाम से स्तुति करते हैं। दैत्यों एवं राक्षसों सहित शूद्रगण श्री देवी के नाम से भक्तिपूर्वक उस नीलवर्णाङ्गी की स्तुति करते हैं। इस प्रकार उन चक्रधारी देव ने उन नारियों का विभाजन किया। (२८-३०)

अव्यय निधियाँ इनके स्वरूप में स्थित हैं। इतिहास, पुराण, साङ्ग वेद, स्मृतियाँ, चौसठ कलाएँ एवं महापद्म निधि श्वेताङ्गी के अन्तर्भूत हैं। मुक्ता, सुवर्ण, रजत, रथ, अश्व, गज, भूषण, शस्त्र, अस्त्र एवं वस्त्र स्वरूप पद्मनिधि रक्ताङ्गी के अन्तर्भूत हैं। गौ, भैंस, गर्दभ, उष्ट्र, सुवर्ण, वस्त्र, भूमि, औषधियाँ एवं पशु स्वरूप महानील निधि पीताङ्गी में स्थित हैं। अन्य सभी जातियों को अपने में समाविष्ट करने वाली समस्त जातियों में सर्वश्रेष्ठ जाति (पर सामान्यात्मक) स्वरूप शङ्खनिधि नीलाङ्गी देवी में स्थित है। हे दानव ! इन (निधियों) के स्वरूपान्तर्गत पुरुषों के जो लक्षण होते हैं मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ। उन्हें

एतासु संस्थितानां च यानि रूपाणि दानव ॥
भवन्ति पुरुषाणां वै तान् निबोध वदामि ते ॥ ३५
सत्यशौचाभिसंयुक्ता मखदानोत्सवे रताः ।
भवन्ति दानवपते महापद्माश्रिता नराः ॥ ३६
यज्विनः सुभगा दृप्ता मानिनो बहुदक्षिणाः ।
सर्वसामान्यसुखिनो नराः पद्माश्रिताः स्मृताः ॥ ३७
सत्यानृतसमायुक्ता दानाहरणदक्षिणाः ।
न्यायान्यायव्ययोपेता महानीलाश्रिता नराः ॥ ३८
नास्तिकाः शौचरहिताः कृपणा भोगवर्जिताः ।
स्तेयानृतकथायुक्ता नराः शङ्खाश्रिता बले ॥ ३९
इत्येवं कथितस्तुभ्यं तेषां दानव निर्णयः ॥ ४०
अहं सा रागिणी नाम जयश्रीस्त्वामुपागता ।
ममास्ति दानवपते प्रतिज्ञा साधुसंमता ॥ ४१
समाश्रयामि शौर्याढ्यं न च क्लीबं कथंचन ।
न चास्ति भवतस्तुल्यो त्रैलोक्येऽपि बलाधिकः ॥ ४२

त्वया बलविभूत्या हि प्रीतिर्मे जनिता ध्रुवा ।
यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराजो विनिर्जितः ॥ ४३
अतो मम परा प्रीतिर्जाता दानव शाश्वती ।
दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं सर्वेभ्योऽपि बलाधिकम् ॥ ४४
शौण्डीर्यमानिनं वीरं ततोऽहं स्वयमागता ।
नाश्चर्यं दानवश्रेष्ठ हिरण्यकशिपोः कुले ॥ ४५
प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्म यदीदृशम् ।
विशेषितस्त्वया राजन् दैतेयः प्रपितामहः ॥ ४६
विजितं विक्रमाद् येन त्रैलोक्यं वै परैर्हृतम् ।
इत्येवमुक्त्वा वचनं दानवेन्द्रं तदा बलिम् ॥ ४७
जयश्रीश्चन्द्रवदना प्रविष्टाऽद्योतयच्छुभा ।
तस्यां चाथ प्रविष्टायां विधवा इव योषितः ॥ ४८
समाश्रयन्ति बलिनं ह्रीश्रीधीधृतिकीर्त्तयः ।
प्रभा मतिः क्षमा भूतिर्विद्या नीतिर्दया तथा ॥ ४९
श्रुतिः स्मृतिर्धृतिः कीर्तिर्मूर्तिः शान्तिः क्रियान्विताः ।

समझो । (३१-३५)

हे दानवपते ! महापद्म से आश्रित पुरुष सत्य और शौच से युक्त तथा यजन, दान और उत्सव में रत रहते हैं । (३६)

पद्म से आश्रित मनुष्य यज्ञकारी, सौभाग्यवान्, अहंकारी, मानप्रिय, बहुत दक्षिणा देने वाले तथा सर्वसाधारण लोगों से सुखी होते हैं । (३७)

महानील द्वारा आश्रित व्यक्ति सत्य तथा असत्य से युक्त, देने और लेने में चतुर तथा न्याय, अन्याय और व्यय करने वाले होते हैं । (३८)

हे बलि ! शंख से आश्रित पुरुष नास्तिक, शौच-रहित कृपण, भोगहीन, चोरी करने वाले एवं मिथ्याभाषी होते हैं । हे दानव ! मैंने इस प्रकार आपसे उनके स्वरूप का वर्णन किया । (३९-४०)

वही रागिणी नामक जयश्री मैं आपके पास आई हूँ । हे दानवपति ! मेरी साधुजनों से संमत एक प्रतिज्ञा है । (४१)

मैं वीर पुरुष का आश्रय करती हूँ । नपुंसक के समीप कदापि नहीं जाती । तीनों लोकों में आपके समान बलवान् दूसरा नहीं है । (४२)

अपनी बल संपत्ति से तुमने मेरी दृढ़ प्रीति उत्पन्न की है क्योंकि युद्ध में पराक्रम कर तुमने देवराज को जीता है । (४३)

हे दानव ! इसीसे आपके श्रेष्ठ सत्त्व एवं सभी से अधिक बल को देखकर (आपके प्रति) मेरी स्थिर एवं उत्तम प्रीति हो गई है । (४४)

अतः मैं स्वयमेव अतिपराक्रमी तथा मानी वीर आप के समीप आयी हूँ । हे दानवश्रेष्ठ ! हिरण्यकशिपु के कुल में उत्पन्न आप असुरेन्द्र के इस प्रकार के कर्मों में कोई आश्चर्य नहीं है । हे राजन् ! शत्रुओं से अपहृत त्रैलोक्य को विक्रम द्वारा जीतकर आपने दिति के पुत्र अपने प्रपितामह को और विशिष्ट कर दिया । दानवेन्द्र बलि से ऐसा कहकर चन्द्रवदना शुभ जयश्री (बलि में) प्रविष्ट होकर (उन्हें) द्योतित करने लगी । उनके प्रविष्ट हो जाने पर ही, श्री, बुद्धि, धृति, कीर्त्ति, प्रभा, मति, क्षमा, समृद्धि, विद्या, नीति, दया, श्रुति, स्मृति, धृति, कीर्ति, मूर्ति, शान्ति, क्रिया, पुष्टि, तुष्टि एवं अन्य सभी

पुष्टिस्तुष्टी रुचिस्त्वन्या तथा सत्त्वाश्रिता गुणाः ॥
ताः सर्वा बलिमाश्रित्य न्यवसन्त यथासुखम् ॥ ५०
एवं गुणोऽभूद् दनुपुंगवोऽसौ
बलिर्महात्मा शुभबुद्धिरात्मवान् ।
यज्वा तपस्वी मृदुरेव सत्यवाक्
दाता बिभर्ता स्वजनाभिगोप्ता ॥ ५१
त्रिविष्टपं शासति दानवेन्द्रे
नासीत् क्षुधार्तो मलिनो न दीनः ।
सदोज्ज्वलो धर्मरतोऽथ दान्तः
कामोपभोक्ता मनुजोऽपि जातः ॥ ५२

इति श्रीवामनपुराणे एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

पुलस्त्य उवाच ।
गते त्रैलोक्यराज्ये तु दानवेषु पुरंदरः ।
जगाम ब्रह्मसदनं सह देवैः शचीपतिः ॥ १
तत्रापश्यत् स देवेशं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ।
ऋषिभिः सार्धमासीनं पितरं स्वं च कश्यपम् ॥ २
ततो ननाम शिरसा शक्रः सुरगणैः सह ।
ब्रह्माणं कश्यपं चैव तांश्च सर्वांस्तपोधनान् ॥ ३
प्रोवाचेन्द्रः सुरैः सार्धं देवनाथं पितामहम् ।
पितामह हृतं राज्यं बलिना बलिना मम ॥ ४
ब्रह्मा प्रोवाच शक्रैवद् भुज्यते स्वकृतं फलम् ।
शक्रः पप्रच्छ भो ब्रूहि किं मया दुष्कृतं कृतम् ॥ ५
कश्यपोऽप्याह देवेशं भ्रूणहत्या कृता त्वया ।
दित्युदरात् त्वया गर्भः कृत्तो वै बहुधा बलात् ॥ ६

सत्त्व गुणाश्रित अन्य देवियाँ भी विधवा स्त्रियों के सदृश बलि के आश्रय में सुख पूर्वक रहने लगे । (४९-५०)

शुभबुद्धि वाले, आत्मवान्, यज्ञ करने वाले, तपस्वी मृदु स्वभाव वाले, सत्यवादी, दाता, भरणकर्ता, स्वजनों की रक्षा करने वाले दैत्यश्रेष्ठ महात्मा बलि इस प्रकार के गुणों से सम्पन्न थे । (५१)

दानवेन्द्र बलि के स्वर्ग का शासन करते समय कोई भूखसे पीड़ित, मलिन एवं दीन नहीं था । मनुष्य भी सदा उज्ज्वल धर्मरत, क्षान्त एवं कामोपभोगी हो गए । (५२)

श्रीवामनपुराण में उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥

५०

पुलस्त्य ने कहा—तीनों लोकों का राज्य दानवाधीन हो जाने पर शचीपति पुरन्दर देवों के साथ ब्रह्मलोक चले गये । (१)

उन्होंने वहाँ ऋषियों सहित बैठे हुए कमलयोनि ब्रह्मा एवं अपने पिता कश्यप को देखा । (२)

तदनन्तर देवताओं सहित इन्द्र ने ब्रह्मा कश्यप एवं उन सभी तपोधनों को शिर से प्रणाम किया । (३)

देवों सहित इन्द्र ने देवनाथ पितामह से कहा—हे पितामह ! बलवान् बलि ने मेरा राज्य छीन लिया है । (४)

ब्रह्मा ने कहा—हे इन्द्र ! यह तुम अपने किये हुए कर्म का फल भोग रहे हो । इन्द्र ने पूछा—आप बतलायें कि मैंने कौन सा दुष्कर्म किया है । (५)

कश्यप ने भी इन्द्र से कहा—तुमने भ्रूण हत्या की है ।

पितरं प्राह देवेन्द्र· स मातुर्दोषतो विभो।
कृन्तनं प्राप्तवान् गर्भो यदशौचा हि सा भवत् ॥ ७

ततोऽब्रवीत् कश्यपस्तु मातुर्दोषः स दासताम्।
गतस्ततो विनिहतो दासोऽपि कुलिशेन भो ॥ ८

तच्छ्रुत्वा कश्यपवचः प्राह शक्रः पितामहम्।
विनाशं पाप्मनो ब्रूहि प्रायश्चित्तं विभो मम ॥ ९

ब्रह्मा प्रोवाच देवेशं वशिष्ठः कश्यपस्तथा।
हितं सर्वस्य जगतः शक्रस्यापि विशेषतः ॥ १०

शङ्खचक्रगदापाणिर्माधव· पुरुषोत्तम·।
तं प्रपद्यस्व शरणं स ते श्रेयो विधास्यति ॥ ११

सहस्राक्षोऽपि वचनं गुरूणां स निशम्य वै।
प्रोवाच स्वल्पकालेन कस्मिन् प्राप्यो बहूदयः।
तमूचुर्देवता मर्त्ये स्वल्पकाले महोदयः ॥ १२

इत्येवमुक्तः सुरराड् विरिञ्चिना
मरीचिपुत्रेण च कश्यपेन।
तथैव मित्रावरुणात्मजेन
वेगान्महीपृष्ठमवाप्य तस्थौ ॥ १३

कालिञ्जरस्योत्तरतः सुपुण्य-
स्तथा हिमाद्रेरपि दक्षिणस्थः।
कुशस्थलात् पूर्वत एव विश्रुतो
वसोः पुरात् पश्चिमतोऽवतस्थे ॥ १४

पूर्वं गयेन नृवरेण यत्र
यज्ञोऽश्वमेधः शतकृत्सदक्षिणः।
मनुष्यमेधः शतकृत्सहस्रकृ-
न्नरेन्द्रसूयश्च सहस्रकृद् वै ॥ १५

तथा पुरा दुर्यजनः सुरासुरैः
ख्यातो महामेध इति प्रसिद्धः।
यत्रास्य चक्रे भगवान् मुरारिः
वास्तव्यमव्यक्ततनुः खमूर्तिमत्।
ख्यातिं जगामाथ गदाधरेति

तुमने दिति के उदर से गर्भ को बलपूर्वक अनेक टुकड़ों मे काट डाला था। (६)

इन्द्र ने पिता से कहा—हे विभो! जननी के दोष से वह गर्भ छिन्न हुआ था। क्योंकि वे अपवित्र हो गई थीं। (७)

तदनन्तर कश्यप ने कहा—माता के दोष से वह दासता को प्राप्त हो चुका था। तदुपरान्त तुमने दास को भी वज्र से मारा। (८)

कश्यप के उस वचन को सुनकर इन्द्र ने पितामह से कहा—हे विभो! मुझे पाप नाशक प्रायश्चित्त बतलायें। (९)

ब्रह्मा, वसिष्ठ एव कश्यप ने देवेश से समस्त जगत् एवं विशेषरूप से इन्द्र के लिये हितकर वचन कहा— (१०)

तुम शङ्खचक्र तथा गदाधारण करने वाले पुरुषोत्तम माधव की शरण में जाओ। वे तुम्हारा कल्याण करेंगे। (११)

उन सहस्राक्ष ने गुरुजनों का वचन सुनकर कहा—स्वल्पकाल में प्रचुर अभ्युदय की प्राप्ति कहाँ सम्भव है। देवों ने उनसे कहा—मर्त्यलोक मे स्वल्प समय मैं महान् अभ्युदय सम्भव है। (१२)

ब्रह्मा, मरीचिपुत्र कश्यप एव वसिष्ठ के ऐसा कहने पर सुरराज इन्द्र वेगपूर्वक पृथ्वीतल पर गए। (१३)

कालिञ्जर पर्वत के उत्तर, हिमाद्रि के दक्षिण, कुशस्थल के पूर्व एव वसुपुर के पश्चिम मे स्थित विख्यात पुण्य स्थान मे रहने लगे। (१४)

जहाँ पहले राजा गय ने दक्षिणा के साथ सौ अश्वमेध यज्ञ, ग्यारह सौ नरमेधयज्ञ तथा एक सहस्र राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया था। (१५)

पहले (गय ने) जहाँ पर सुरों एव असुरों से दुष्कर महामेध नामक प्रसिद्ध यज्ञ सम्पादित किया था तथा उसके लिये आकाशस्वरूप अव्यक्तशरीर मुरारि ने वहाँ निवास किया था। महान पापरूपी वृक्ष के लिये तीक्ष्ण कुठार स्वरूप वे

विनम्रमौलिः समुपाजगाम ।
प्रणम्य पादौ कमलोदराभौ
निवेदयामास तपस्तदात्मनः ॥ २७
पप्रच्छ सा कारणमीश्वरं तम्
आघ्राय चालिङ्ग्य सहाश्रुदृष्ट्या ।
स चाचचक्षे बलिना रणे जयं
तदात्मनो देवगणैश्च सार्धम् ॥ २८
श्रुत्वैव सा शोकपरिप्लुताङ्गी
ज्ञात्वा जितं दैत्यसुतैः सुतं तम् ।
दुःखान्विता देवमनाद्यमीड्यं
जगाम विष्णुं शरणं वरेण्यम् ॥ २९
नारद उवाच ।
कस्मिन् जनित्री सुरसत्तमानां
स्थाने हृषीकेशमनन्तमाद्यम् ।
चराचरस्य प्रभवं पुराण-
माराधयामास शुभे वद त्वम् ॥ ३०
पुलस्त्य उवाच ।
सुरारणिः शक्रमवेक्ष्य दीनं
पराजितं दानवनायकेन ।
सितेऽथ पक्षे मकरर्क्षगेऽर्के
धृतार्चिपः स्यादथ सप्तमेऽह्नि ॥ ३१
दृष्ट्वैव देवं त्रिदशाधिपं तं
महोदये शक्रदिशाधिरूढम् ।
निराशना संयतवाक् सुचित्ता
तदोपतस्थे शरणं सुरेन्द्रम् ॥ ३२
अदितिरुवाच ।
जयस्व दिव्याम्बुजकोशचौर
जयस्व संसारतरोः कुठार ।
जयस्व पापेन्धनजातवेद-
स्तमौघसंरोध नमो नमस्ते ॥ ३३
नमोऽस्तु ते भास्कर दिव्यमूर्ते
त्रैलोक्यलक्ष्मीतिलकाय ते नमः ।
त्वं कारणं सर्वचराचरस्य
नाथोऽसि मां पालय विश्वमूर्ते ॥ ३४
त्वया जगन्नाथ जगन्मयेन
नाथेन शक्रो निजराज्यहानिम् ।
अवाप्तवान् शत्रुपराभवं च
ततो भवन्तं शरणं प्रपन्ना ॥ ३५

कमलों में प्रणाम करने के उपरान्त उन्होंने अपने तप का वर्णन किया । (२७)

उन (अदिति) ने अश्रुपूर्ण दृष्टि से (इन्द्र को) सूँघ एवं उनका आलिङ्गन कर (तप का कारण) पूछा । इन्द्र ने बलि द्वारा देवों सहित अपने विजित होने का वृत्तान्त कहा । (२८)

यह सुनने के उपरान्त अपने उस पुत्र को दिति के पुत्रों द्वारा विजित जानकर शोकाविष्ट एवं दुःखान्वित (अदिति) वरेण्य, पूज्य एवं अनादि देव विष्णु की शरण में गयीं । (२९)

नारद ने कहा—आप यह बतलायें कि सुरजननी ने किस शुभ स्थान पर अनादि, अनन्त, चराचरोत्पादक एवं पुरातन हृषीकेश की आराधना की । (३०)

पुलस्त्य ने कहा—दानव नायक द्वारा पराजित हुए दीन इन्द्र को देखकर अदिति सूर्य के मकरस्थित होने पर शुक्लपक्षीय सूर्य सप्तमी के दिन उन सुराधिप (सूर्य) देव को महान् उदयाचल पर पूर्व दिशारूढ हुआ देखकर उपवास पूर्वक वाणी एवं मन को संयत कर सुरेन्द्र (सूर्य) की शरण में गयीं । (३१-३२)

अदिति ने कहा—हे दिव्याम्बुजकोश के चोर ! आप की जय हो । हे संसाररूपी वृक्ष के कुठार ! आपकी जय हो । हे पापरूपी इन्धन के लिए अग्नि ! आप की जय हो । हे तमसमूह के विनाशक ! आपको बारम्बार नमस्कार है । (३३)

हे भास्कर ! हे दिव्यमूर्ति ! आपको नमस्कार है । हे त्रैलोक्य लक्ष्मी के पति ! आपको नमस्कार है । आप समस्त चराचर जगत के कारण तथा नाथ हैं । हे विश्वमूर्ते ! मेरी रक्षा कीजिए । (३४)

हे जगन्नाथ ! जगन्मय आप नाथ के ही कारण इन्द्र को अपने राज्य की हानि एवं शत्रु से पराभव की प्राप्ति हुई है । अतः मैं आपकी शरण में आयी हूँ । (३५)

इत्येवमुक्त्वा सुरपूजितं सा
आलिख्य रक्तेन हि चन्दनेन ।
संपूजयित्वा करवीरपुष्पैः
संधूप्य धूपैः कणमर्कभोज्यम् ॥ ३६
निवेद्य चैवाज्ययुतं महार्हं
मन्नं महेन्द्रस्य हिताय देवी ।
स्तवेन पुण्येन च संस्तुवन्ती
स्थिता निराहारमथोपवासम् ॥ ३७
ततो द्वितीयेऽह्नि कृतप्रणामा
स्नात्वा विधानेन च पूजयित्वा ।
दत्त्वा द्विजेभ्यः कणकं तिलाज्यं
ततोऽग्रतः सा प्रयता बभूव ॥ ३८
ततः प्रीतोऽभवद् भानुर्घृतार्चि. सूर्यमण्डलात् ।
विनिःसृत्याग्रतः स्थित्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९
व्रतेनानेन सुप्रीतस्त्वाहं दक्षनन्दिनि ।
प्राप्स्यसे दुर्लभं कामं मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ४०

ऐसा कहने के उपरान्त रक्तचन्दन द्वारा सुरपूजित (सूर्य) को चित्रितकर उन देवी (अदिति) ने करवीर (कनेल) के पुष्पों से उनका पूजन किया एवं धूप से धूपित करने के पश्चात् महेन्द्र के हितार्थ अर्कभोज्य कण एवं घृतयुक्त उत्तम अन्न निवेदित किया तथा निराहार उपवास पूर्वक पवित्र स्तोत्रों से स्तुति करती हुई बैठी रहीं। (३६-३७)

तदनन्तर दूसरे दिन प्रणाम करने के उपरान्त विधान पूर्वक स्नान एवं पूजन कर ब्राह्मणों को कणक, तिल एवं घृत प्रदान किया और तदनन्तर वे प्रकृष्ट संयम करने लगीं। (३८)

इससे घृतार्चि भानु प्रसन्न हो गये। (वे) सूर्य मण्डल से निकले एवं अदिति के सम्मुख खड़े होकर यह वचन बोले— (३९)

हे दक्षनन्दिनि ! तुम्हारे इस व्रत से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अतः मेरी कृपा से तुम निःसन्देह मनोवांछित दुर्लभ वस्तु प्राप्त करोगी। (४०)

राज्यं स्वत्तनयानां वै दास्ये देवि सुरारणि ।
दानवान् ध्वंसयिष्यामि संभूयैवोदरे तव ॥ ४१
तद् वाक्यं वासुदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मन् सुरारणिः ।
प्रोवाच जगतां योनिं वेपमाना पुनः पुनः ॥ ४२
कथं त्वामुदरेणाहं वोढुं शक्ष्यामि दुर्धरम्
यस्योदरे जगत्सर्वं वसते स्थाणुजङ्गमम् ॥ ४३
कस्त्वां धारयितुं नाथ शक्तस्त्रैलोक्यधार्यसि ।
यस्य सप्तार्णवाः कुक्षौ निवसन्ति सहाद्रिभिः ॥ ४४
तस्माद् यथा सुरपतिः शक्रः स्यात् सुरराडिह ।
यथा च न मम क्लेशस्तथा कुरु जनार्दन ॥ ४५
विष्णुरुवाच ।
सत्यमेतन्महाभागे दुर्धरोऽस्मि सुरासुरैः ।
तथापि संभविष्यामि अहं देव्युदरे तव ॥ ४६
आत्मानं भुवनान् शैलांस्त्वाञ्च देवि सकश्यपाम् ।

हे देवि देवजननि ! मैं तुम्हारे उदर से उत्पन्न होकर तुम्हारे पुत्रों को राज्य दूँगा और दानवों का नाश करूँगा। (४१)

हे ब्रह्मन ! वासुदेव का यह वाक्य सुनकर बार-बार काँपती हुई देवजननी अदिति ने जगद्योनि विष्णु से कहा— (४२)

जिसके उदर में स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त जगत् निवास करता है ऐसे दुर्धर आपको मैं अपने उदर में कैसे धारण करूँगी। (४३)

हे नाथ ! आप त्रैलोक्य को धारण करने वाले हैं। जिसकी कुक्षि में पर्वतों सहित सातों समुद्र स्थित हैं ऐसे आपको कौन धारण कर सकता है। (४४)

अतः हे जनार्दन ! आप वैसा ही करें जिससे इन्द्र देवताओं के अधिपति बन जाँय एवं मुझे भी क्लेश न हो। (४५)

विष्णु ने कहा—हे महाभागे ! यह सत्य है कि समस्त सुर एवं असुर मुझे धारण नहीं कर सकते। तथापि हे देवि ! मैं आपके उदर से उत्पन्न होऊँगा। (४६)

हे देवि ! स्वयं को, भुवनों को, पर्वतों को एवं कश्यप सहित आपको मैं योग द्वारा धारण करूँगा। हे मातः !

धारयिष्यामि योगेन मा विषादं कृथाऽम्बिके ॥ ४७
तवोदरेऽहं दाक्षेयि संभविष्यामि वै यदा ।
तदा निस्तेजसो दैत्याः संभविष्यन्त्यसंशयम् ॥ ४८
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विवेश
तस्याश्च भूयोऽरिगणप्रमर्दी ।
स्वतेजसोंऽशेन विवेश देव्याः
तदोदरे शक्रहिताय विप्र ॥ ४९

इति श्रीवामनपुराणे पञ्चाशोऽध्यायः ॥५०॥

५१

पुलस्त्य उवाच ।
देवमातुः स्थिते देवे उदरे वामनाकृतौ ।
निस्तेजसोऽसुरा जाता यथोक्तं विश्वयोनिना ॥ १
निस्तेजसोऽसुरान् दृष्ट्वा प्रह्लादं दानवेश्वरम् ।
बलिर्दानवशार्दूल इदं वचनमब्रवीत् ॥ २
बलिरुवाच ।
तात निस्तेजसो दैत्याः केन जातास्तु हेतुना ।
कथ्यतां परमज्ञोऽसि शुभाशुभविशारद ॥ ३
पुलस्त्य उवाच ।
तत्पौत्रवचनं श्रुत्वा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।
किमर्थं तेजसो हानिरिति कस्मादतीव च ॥ ४
स ज्ञात्वा वासुदेवोत्थं भयं दैत्येष्वनुत्तमम् ।
चिन्तयामास योगात्मा क्व विष्णुः सांप्रतं स्थितः ॥ ५
अधो नाभेः स पातालान् सप्त संचिन्त्य नारद ।

आप विषाद मत करें । (४७)
हे दक्षात्मजा ! जब मैं आपके उदर में आऊँगा। उस समय दैत्य निस्सन्देह निस्तेज हो जायेंगे । (४८)
हे विप्र ! ऐसा कहकर शत्रुओं के नाशक भगवान् विष्णु इन्द्र के हितार्थ अपने तेज के अंशमात्र से उन देवी के उदर में प्रविष्ट हो गये । (४९)

श्रीवामनपुराणमें पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

५१

पुलस्त्य ने कहा—विश्वयोनि के कथनानुसार वामनाकार देव के देवमाता के गर्भ में स्थित होने पर असुरगण निस्तेज हो गये । (१)
असुरों को तेजहीन देखकर दानव श्रेष्ठ बलि ने दानवेश्वर प्रह्लाद से यह वचन कहा । (२)
बलि ने कहा—हे तात ! आप यह बतलावें कि दानव किस कारण से निस्तेज हो गये हैं ? हे शुभाशुभ के ज्ञाता ! आप परम ज्ञानी हैं । (३)
पुलस्त्य ने कहा—पौत्र के उस वचन को सुन कर (दानवोंके) तेज की अत्यधिक हानि किससे एवं क्यों हुई है । (यह जानने के लिये) प्रह्लाद क्षणभर ध्यानस्थ रहे । (४)
दैत्यों के लिये वासुदेव के कारण उत्पन्न भय को जानकर उन योगात्मा ने यह सोचा कि सम्प्रति विष्णु कहाँ स्थित हैं ? (५)

नाभेरुपरि भूरादींल्लोकांश्चर्तुमियाद् वशी ॥ ६
भूमिं स पङ्कजाकारां तन्मध्ये पङ्कजाकृतिम्।
मेरुं ददर्श शैलेन्द्रं शातकौम्भं महर्द्धिमत् ॥ ७
तस्योपरि महापुर्यस्त्वष्टौ लोकपतेस्तथा।
तेषामुपरि वैराजीं ददृशे ब्रह्मणः पुरीम् ॥ ८
तदधस्तान्महापुण्यमाश्रमं सुरपूजितम्।
देवमातुः स ददृशे मृगपक्षिगणैर्वृतम् ॥ ९
तां दृष्ट्वा देवजननीं सर्वतेजोधिकां मुने।
विवेश दानवपतिरन्वेष्टुं मधुसूदनम् ॥ १०
स दृष्टवाञ्जगन्नाथं माधवं वामनाकृतिम्।
सर्वभूतवरेण्यं तं देवमातुरथोदरे ॥ ११
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम्।
सुरासुरगणैः सर्वैः सर्वतो व्याप्तविग्रहम् ॥ १२
तेनैव क्रमयोगेन दृष्ट्वा वामनतां गतम्।
दैत्यतेजोहरं विष्णुं प्रकृतिस्थोऽभवत् ततः ॥ १३
अथोवाच महाबुद्धिर्विरोचनसुतं बलिम्।
प्रह्लादो मधुरं वाक्यं प्रणम्य मधुसूदनम् ॥ १४

प्रह्लाद उवाच।

श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यतो वो भयमागतम्।
येन निस्तेजसो दैत्या जाता दैत्येन्द्र हेतुना ॥ १५
भवता निर्जिता देवाः सेन्द्ररुद्रार्कपावकाः।
प्रयाताः शरणं देवं हरिं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ १६
स तेषामभयं दत्त्वा शक्रादीनां जगद्गुरुः।
अवतीर्णो महाबाहुरदित्या जठरे हरिः ॥ १७
हृतानि वस्तेन बले तेजांसीति मतिर्मम।
नालं तमो विशहितुं स्यातुं सूर्योदयं बले ॥ १८

पुलस्त्य उवाच।

प्रह्लादवचनं श्रुत्वा क्रोधप्रस्फुरिताधरः।
प्रह्लादमाह स बलिर्भाविकर्मप्रचोदितः ॥ १९

बलिरुवाच।

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम्।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिकाः ॥ २०

हे नारद! नाभि के अधोभाग में सात पातालों का चिन्तन कर वे वशी नाभि के ऊपर भूः आदि लोकों को देखने के लिये पहुँचे। (६)

उन्होंने पङ्कजाकार भूमि एवं उसके मध्य में महान् समृद्धि से सम्पन्न सुवर्णमय पङ्कजाकार पर्वतश्रेष्ठ मेरु को देखा। (७)

उसके ऊपर महापुरियों में आठ लोकपति एवं उनके ऊपर ब्रह्मा की वैराजपुरी को देखा। (८)

उसके नीचे उन्होंने महापुण्ययुक्त देवताओं से पूजित तथा पशु-पक्षियों से पूर्ण देवमाता अदिति के आश्रम को देखा। (९)

हे मुने! समस्त तेजों से अधिक तेजस्विनी अदिति को देखकर दानवपति (प्रह्लाद) मधुसूदन को खोजने के लिए (उनके उदर में) प्रविष्ट हुए। (१०)

उन्होंने समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ वामनाकृति उन जगन्नाथ माधव को देवमाता के उदर में देखा। (११)

समस्त सुरों एवं असुरों से सर्वतः व्याप्त शरीर वाले शङ्ख, चक्र, एवं गदा धारण करने वाले उन पुण्डरीकाक्ष को देख कर उसी यथाक्रम से वामनत्व को प्राप्त दैत्य-तेजोहर विष्णु को जानकर वे प्रकृतिस्थ हो गए। (१२-१३)

तदनन्तर मधुसूदन को प्रणाम कर महाबुद्धिमान् प्रह्लाद ने विरोचनपुत्र बलि से मधुर वचन कहा। (१४)

प्रह्लाद ने कहा—हे दैत्येन्द्र! आप लोगों को जिससे भय उत्पन्न हुआ है एवं जिस कारण दैत्यगण निस्तेज हो गये हैं वह सब मैं कहता हूँ। सुनो। (१५)

आपके द्वारा पराजित हुए इन्द्र सहित रुद्र, सूर्य एवं अग्नि आदि देवता त्रिभुवनेश्वर देव हरि की शरण में गए। (१६)

वे जगद्गुरु महाबाहु हरि इन्द्र आदि देवताओं को अभय देकर अदिति के उदर में अवतीर्ण हुए हैं। (१७)

हे बलि! मेरा ऐसा मत है कि उन्होंने तुम लोगों का तेजोहरण कर लिया है। हे बलि! अन्धकार सूर्योदय को सहन करने में समर्थ नहीं होता। (१८)

पुलस्त्य ने कहा—प्रह्लाद का वचन सुनकर क्रोध से प्रस्फुरित अधरोष्ठ वाले बलि ने भाविकर्म से प्रेरित होकर प्रह्लाद से कहा। (१९)

बलि ने कहा—हे तात! यह हरि कौन है? जिनके कारण हमें भय उपस्थित हुआ है। हमारे पास वासुदेव से अधिक बलवान् सैकड़ों दैत्य हैं। (२०)

सहस्रशो यैरमराः सेन्द्ररुद्राग्निमारुताः ।
निर्जित्य त्याजिताः स्वर्गं भग्नदर्पा रणाजिरे ॥ २१
येन सूर्यरथाद् वेगात् चक्रं कृष्टं महाजवम् ।
स विप्रचित्तिर्बलवान् मम सैन्यपुरस्सरः ॥ २२
अयःशङ्कुः शिवः शंभुरसिलोमा विलोमकृत् ।
त्रिशिरा मकराक्षश्च वृषपर्वा नतेक्षणः ॥ २३
एते चान्ये च बलिनो नानायुधविशारदाः ।
येषामेकैकशो विष्णुः कलां नार्हति षोडशीम् ॥ २४

पुलस्त्य उवाच ।

पौत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा प्रह्लादः क्रोधमूर्छितः ।
धिग्धिगित्याह स बलिं वैकुण्ठाक्षेपवादिनम् ॥ २५
धिक् त्वां पापसमाचारं दुष्टबुद्धिं सुबालिशम् ।
हरिं निन्दयतो जिह्वा कथं न पतिता तव ॥ २६
शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः ।
यत् त्रैलोक्यगुरुं विष्णुमभिनिन्दसि दुर्मते ॥ २७
शोच्यश्चास्मि न संदेहो येन जातः पिता तव ।
यस्य त्वं कर्कशः पुत्रो जातो देवावमान्यकः ॥ २८
भवान् किल विजानाति तथा चामी महासुराः ।
यथा नान्यः प्रियः कश्चिन्मम तस्माज्जनार्दनात् ॥ २९
जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम ।
सर्वेश्वरेश्वरं देवं कथं निन्दितवानसि ॥ ३०
गुरुः पूज्यस्तव पिता पूज्यस्तस्याप्यहं गुरुः ।
ममापि पूज्यो भगवान् गुरुर्लोकगुरुर्हरिः ॥ ३१
गुरोर्गुरुर्गुरुर्मूढ पूज्यः पूज्यतमस्तव ।
पूज्यं निन्दयसे पाप कथं न पतितोऽस्यधः ॥ ३२
शोचनीया दुराचारा दानवामी कृतास्त्वया ।
येषां त्वं कर्कशो राजा वासुदेवस्य निन्दकः ॥ ३३
यस्मात् पूज्योऽर्चनीयश्च भवता निन्दितो हरिः ।
तस्मात् पापसमाचार राज्यनाशमवाप्नुहि ॥ ३४
यथा नान्यत् प्रियतरं विद्यते मम केशवात् ।

उन लोगों ने इन्द्र सहित रुद्र, अग्नि एवं वायु आदि सहस्रों देवों को युद्ध में पराजित कर उनके दर्प को नष्ट किया एवं उन्हें स्वर्ग से भगा दिया । (२१)

वह बलवान् विप्रचित्ति मेरी सेना का अग्रगामी है जिसने वेगपूर्वक सूर्य के रथ से महावेगयुक्त चक्र को खींच लिया था । (२२)

अय शंकु, शिव, शंभु, असिलोमा, विलोमकृत्, त्रिशिरा, मकराक्ष, वृषपर्वा एवं नतेक्षण-ये तथा अन्य अनेकों नानायुद्ध-विशारद बलवान् (दैत्य मेरे सहायक हैं) जिनमें प्रत्येक की सोलहवीं कला के भी तुल्य विष्णु नहीं हैं । (२३-२४)

पुलस्त्य ने कहा—पौत्र के इस वचन को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध उन प्रह्लाद ने विष्णु निन्दक बलि से कहा—तुम पापी दुष्टबुद्धि मूर्ख को धिक्कार है। हरि की निन्दा करते हुए तुम्हारी जिह्वा क्यों नहीं गिर गयी? (२५-२६)

हे दुर्बुद्धि ! हे दुर्मति ! तुम सोचनीय एवं सज्जनों द्वारा निन्दनीय हो । क्योंकि तुम त्रिलोक के गुरु विष्णु की निन्दा कर रहे हो । (२७)

'निस्सन्देह मैं भी शोचनीय हूँ जिसने तुम्हारे उस पिता को उत्पन्न किया जिससे तुम देवनिन्दक तथा क्रूर पुत्र हुए । (२८)

निश्चय ही तुम एवं ये महासुर भी जानते हैं कि जनार्दन से अधिक कोई अन्य मेरा प्रिय नहीं है । (२९)

हरि मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं यह जानते हुए भी तुमने सर्वेश्वरेश्वर देव की निन्दा कैसे की ? (३०)

तुम्हारे पिता (तुम्हारे लिये) गुरु एवं पूज्य हैं । उनका भी गुरु एवं पूज्य मैं हूँ । लोकगुरु भगवान् हरि मेरे भी पूज्य एवं गुरु हैं । (३१)

हे मूढ पापी ! गुरु के गुरु के भी गुरु तुम्हारे लिए पूज्य एवं पूज्यतम हैं । तुम पूज्य की निन्दा करते हो अतः तुम अधः पतित क्यों नहीं हो गये । (३२)

तुमने इन दुराचारी दानवों को सोचनीय बना दिया । क्योंकि वासुदेव के निन्दक क्रूर तुम इनके राजा हो । (३३)

हे पापाचारी ! क्योंकि तुमने पूज्य एवं अर्चनीय हरि की निन्दा की है अतः तुम्हारे राज्य का नाश होगा । (३४)

क्योंकि मन, कर्म एवं वाणी से मेरा केशव से अधिक

मनसा कर्मणा वाचा राज्यभ्रष्टस्तया पत ॥ ३५
यथा न तस्मादपरं व्यतिरिक्तं हि विद्यते ।
चतुर्दशसु लोकेषु राज्यभ्रष्टस्तया पत ॥ ३६
सर्वेषामपि भूतानां नान्यल्लोके परायणम् ।
यथा तथाऽनुपश्येयं भवन्त राज्यविच्युतम् ॥ ३७
पुलस्त्य उवाच ।
एवमुच्चारिते वाक्ये बलिः सत्वरितस्तदा ।
अवतीर्यासनाद् ब्रह्मन् कृताञ्जलिपुटो बली ॥ ३८
शिरसा प्रणिपत्याह प्रसादं यातु मे गुरुः ।
कृतापराधानपि हि क्षमन्ति गुरवः शिशून् ॥ ३९
तत्साधु यदहं शप्तो भवता दानवेश्वर ।
न बिभेमि परेभ्योऽहं न च राज्यपरिक्षयात् ॥ ४०
नैव दुःखं मम विभो यदहं राज्यविच्युत ।
दुःखं कृतापराधत्वाद् भवतो मे महत्तरम् ॥ ४१
तत् क्षम्यतां तात ममापराधो
बालोऽप्यनाथोऽस्मि सुदुर्मतिश्च ।
कृतेऽपि दोषे गुरवः शिशूनां
क्षमन्ति दैन्यं समुपागतानाम् ॥ ४२
पुलस्त्य उवाच ।
स एवमुक्तो वचनं महात्मा
विमुक्तमोहो हरिपादभक्तः ।
चिरं विचिन्त्याद्भुतमेतदित्य-
मुवाच पौत्रं मधुरं वचोऽथ ॥ ४३
प्रह्लाद उवाच ।
तात मोहेन मे ज्ञानं विवेकश्च तिरस्कृतः ।
येन सर्वगतं विष्णुं जानंस्त्वां शप्तवानहम् ॥ ४४
नूनमेतेन भाव्यं वै भवतो येन दानव ।
ममाविशन्महामोहो विवेकप्रतिषेधकः ॥ ४५
तस्माद् राज्यं प्रति विभो न ज्वरं कर्तुमर्हसि ।
अवश्यं भाविनो ह्यर्था न विनश्यन्ति कर्हिचित् ॥ ४६
पुत्रमित्रकलत्रार्थे राज्यभोगधनाय च ।
आगमे निर्गमे प्राज्ञो न विषादं समाचरेत् ॥ ४७

अन्य कोई प्रिय नहीं है अत राज्य भ्रष्ट होकर तुम अध पतित हो जाओ । (३५)

क्योंकि चतुर्दश लोकों मे उनसे भिन्न दूसरा कोई नहीं है अत राज्य भ्रष्ट होकर तुम पतित हो जाओ । (३६)

क्योंकि ससार मे सभी भूतों का (वासुदेव के अतिरिक्त अन्य कोई) आश्रय नहीं है अत मैं तुम्हें राज्यच्युत हुआ देखूँ । (३७)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! ऐसा कहे जाने पर बलवान् बलि शीघ्र आसन से उतरा एव हाथ जोड कर शिर से प्रणाम कर कहा—हे गुरु ! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों । गुरुजन अपराध करने पर भी शिशुओं को क्षमा करते हैं । (३८-३९)

हे दानवेश्वर ! आपका मुझे शाप देना उचित है । मैं शत्रुओं एव राज्य के विनाश से भयभीत नहीं हूँ । (४०)

हे विभु ! मुझे राज्य से विच्युत हो जाने का दु ख नहीं है । आपका अपराध करने का मुझे सर्वाधिक दु ख है । (४१)

अत हे तात ! मेरे अपराध को क्षमा करें । मैं एक अनाथ दुष्टबुद्धि बालक हूँ । गुरुजन दोष करने पर भी दीन बने हुए शिशुओं को क्षमा करते हैं । (४२)

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा वचन कहने पर विष्णु के चरणों में भक्ति रखने वाले मोह-रहित महात्मा (प्रह्लाद) ने चिरकाल तक विचार कर पौत्र से इस प्रकार यह अद्भुत एव मधुर वचन कहा । (४३)

प्रह्लाद ने कहा—हे तात ! मोह ने मेरे ज्ञान एव विवेक को ढक दिया था । इसी से विष्णु को सर्वगत जानते हुए भी मैंने तुम्हें शाप दिया । (४४)

हे दानव ! निश्चय ही तुम्हारा ऐसा भविष्य था । इसी से विवेक का प्रतिबंधक महामोह मुझमें प्रविष्ट हुआ था । (४५)

अत हे विभो ! राज्य के लिए दु ख मत करो । अवश्यम्भावी विषय कदापि विनष्ट नहीं होते । (४६)

बुद्धिमान् व्यक्ति को पुत्र, मित्र, पत्नी, राज्यभोग और धन के आने तथा जाने पर दुःखी नहीं होना चाहिए । (४७)

यथा यथा समायान्ति पूर्वकर्मविधानतः ।
सुखदुःखानि दैत्येन्द्र नरस्तानि सहेत् तथा ॥ ४८
आपदामागमं दृष्ट्वा न विषण्णो भवेद् वशी ।
संपदं च सुविस्तीर्णां प्राप्य नोऽधृतिमान् भवेत् ॥ ४९
धनक्षये न मुह्यन्ति न हृष्यन्ति धनागमे ।
धीराः कार्येषु च सदा भवन्ति पुरुषोत्तमाः ॥ ५०
एवं विदित्वा दैत्येन्द्र न विषादं कथंचन ।
कर्तुमर्हसि विद्वांस्त्वं पण्डितो नावसीदति ॥ ५१
तथाऽन्यच्च महाबाहो हितं शृणु महार्थकम् ।
भवतोऽथ तथाऽन्येषां श्रुत्वा तच्च समाचर ॥ ५२
शरण्यं शरणं गच्छ तमेव पुरुषोत्तमम् ।
स ते त्राता भयादस्माद् दानवेन्द्र भविष्यति ॥ ५३
ये संश्रिता हरिमनन्तमनादिमध्यं
विष्णुं चराचरगुरुं हरिमीशितारम् ।
संसारगर्तपतितस्य करावलम्बं
नूनं न ते भुवि नरा ज्वरिणो भवन्ति ॥ ५४
तन्मना दानवश्रेष्ठ तद्भक्तश्च भवाधुना ।
स एव भवतः श्रेयो विधास्यति जनार्दनः ॥ ५५
अहं च पापोपशमार्थमीश-
माराध्य यास्ये प्रतितीर्थयात्राम् ।
विमुक्तपापश्च ततो गमिष्ये
यत्राच्युतो लोकपतिर्नृसिंहः ॥ ५६

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमाश्वास्य बलिं महात्मा
संस्मृत्य योगाधिपतिं च विष्णुम् ।
आमन्त्र्य सर्वान् दनुयूथपालान्
जगाम कर्तुं त्वथ तीर्थयात्राम् ॥ ५७

इति श्रीवामनपुराणे एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

हे दैत्येन्द्र ! पूर्वकर्मों के विधान से जैसे जैसे सुख और दुःख आते हैं, मनुष्य को उसी प्रकार उनको सहन करना चाहिये । (४८)

संयमी व्यक्ति को आपत्तियों का आगमन देखकर दुःखी नहीं होना चाहिए एवं अत्यन्त विपुल सम्पत्ति को देखकर धैर्यच्युत नहीं होना चाहिए । (४९)

उत्तम पुरुष धन का क्षय होने पर मोह एवं धन की प्राप्ति होने पर हर्ष नहीं करते । वे कर्त्तव्य के प्रति सदा धीर बने रहते हैं । (५०)

हे दैत्येन्द्र ! ऐसा जानकर तुम्हें किसी प्रकार का विषाद नहीं करना चाहिये । तुम विद्वान् हो । विद्वान् दुःखी नहीं होता । (५१)

हे महाबाहो ! तुम्हारे लिये तथा अन्यों के लिये महान् अर्थपूर्ण तथा हितकर (वचन) सुनो एवं सुनकर वैसा ही करो । (५२)

हे दानवेन्द्र ! तुम उन्हीं शरण्य पुरुषोत्तम की शरण में जाओ । वे ही इस भय से तुम्हारी रक्षा करेंगे । (५३)

आदिमध्यान्तहीन, चराचरगुरु, संसाररूपी गर्त्त में गिरे हुओं के हाथ को अवलम्ब देने वाले एवं सर्वनियामक हरि विष्णु की शरण में जाने वाले मनुष्य निश्चय ही संसार में दुःखी नहीं होते । (५४)

हे दानवश्रेष्ठ ! अब तुम उन्हीं में मन लगाकर उनके भक्त बनो । वे जनार्दन ही तुम्हारा कल्याण करेंगे । (५५)

मैं भी पापक्षय के लिए ईश्वर की आराधना कर तीर्थयात्रा करने जाऊँगा । पापविमुक्त होकर मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ लोकपति अच्युत नृसिंह हैं । (५६)

पुलस्त्य ने कहा—इस प्रकार बलि को आश्वासन देने के उपरान्त महात्मा (प्रह्लाद) ने योगाधिपति विष्णु का स्मरण किया एवं दानवसमूहों के पालकों से अनुमति ले कर तीर्थयात्रा करने चले गये । (५७)

श्रीवामनपुराण में इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५१॥

५२

नारद उवाच ।
कानि तीर्थानि विप्रेन्द्र प्रह्लादोऽनुजगाम ह ।
प्रह्लादतीर्थयात्रां मे सम्यगाख्यातुमर्हसि ॥ १
पुलस्त्य उवाच ।
शृणुष्व कथयिष्यामि पापपङ्कप्रणाशिनीम् ।
प्रह्लादतीर्थयात्रां ते शुद्धपुण्यप्रदायिनीम् ॥ २
संत्यज्य मेरुं कनकाचलेन्द्रं
तीर्थं जगामामरसंघजुष्टम् ।
ख्यातं पृथिव्यां शुभदं हि मानसं
यत्र स्थितो मत्स्यवपुः सुरेशः ॥ ३
तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः ।
संपूज्य च जगन्नाथमच्युतं श्रुतिभिर्युतम् ॥ ४
उपोष्य भूयः संपूज्य देवर्षिपितृमानवान् ।
जगाम कच्छपं द्रष्टुं कौशिक्यां पापनाशनम् ॥ ५
तस्यां स्नात्वा महानद्यां संपूज्य च जगत्पतिम् ।
समुपोष्य शुचिर्भूत्वा दत्त्वा विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ६
नमस्कृत्य जगन्नाथमथो कूर्मवपुर्धरम् ।
ततो जगाम कृष्णाख्यं द्रष्टुं वाजिमुखं प्रभुम् ।
तत्र देवह्रदे स्नात्वा तर्पयित्वा पितॄन् सुरान् ॥ ७
संपूज्य हयशीर्षं च जगाम गजसाह्वयम् ।
तत्र देवं जगन्नाथं गोविन्दं चक्रपाणिनम् ॥ ८
स्नात्वा संपूज्य विधिवत् जगाम यमुनां नदीम् ।
तस्यां स्नातः शुचिर्भूत्वा संतर्प्यर्षिसुरान् पितॄन् ।
ददर्श देवदेवेशं लोकनाथं त्रिविक्रमम् ॥ ९
नारद उवाच ।
साम्प्रतं भगवान् विष्णुस्त्रैलोक्याक्रमणं वपुः ।
करिष्यति जगत्स्वामी बलेर्बन्धनमीश्वरः ॥ १०
तत्कथं पूर्वकालेऽपि विश्रुतासीत् त्रिविक्रमः ।
कस्य वा बन्धनं विष्णुः कृतवांस्तच मे वद ॥ ११

नारद ने कहा—हे विप्रेन्द्र! प्रह्लाद किन तीर्थों में गये। आप मुझसे प्रह्लाद की तीर्थयात्रा का भली प्रकार वर्णन करें। (१)

पुलस्त्य ने कहा—सुनो, मैं तुमसे पापरूपी पङ्क को नष्ट करने वाली एवं शुद्ध पुण्य को प्रदान करने वाली प्रह्लाद की तीर्थयात्रा का वर्णन करता हूँ। (२)

श्रेष्ठ सुवर्णमय मेरु पर्वत को छोड़कर वे देवों से सेवित पृथ्वी में प्रसिद्ध कल्याणप्रद मानसतीर्थ में गये जहाँ मत्स्यशरीरधारी सुरेश निवास करते हैं। (३)

उस श्रेष्ठतीर्थ में स्नान एवं पितरों तथा देवों का तर्पण कर उन्होंने श्रुतियों से समन्वित अच्युत जगन्नाथ का पूजन किया। (४)

और पुन वहाँ उपवास पूर्वक देवों, ऋषियों पितरों एवं मानवों की पूजा कर कौशिकी में (अवस्थित) पापनाशक कच्छप का दर्शन करने गये। (५)

उस महानदी में स्नानकर उन्होंने जगत्पति जनार्दन की पूजा की एवं उपवास करके पवित्र होकर ब्राह्मणों को दक्षिणा दिया। (६)

तदनन्तर कूर्मशरीरधारी जगन्नाथ को नमस्कार कर वे वहाँ से कृष्ण नाम के अश्वमुख प्रभु का दर्शन करने गये। वहाँ देवह्रद में स्नान कर उन्होंने देवों एवं पितरों का तर्पण किया तथा हयग्रीव का पूजनकर वे हस्तिनापुर गये। वहाँ स्नान कर चक्रपाणि जगन्नाथ गोविन्द देव की विधिपूर्वक पूजा करने के बाद वे यमुना नदी के समीप गए। उसमें स्नान कर पवित्र होकर उन्होंने ऋषियों, पितरों एव देवों का तर्पण किया एवं देवदेवेश लोकनाथ त्रिविक्रम का दर्शन किया। (७-९)

नारद ने पूछा—सम्प्रति जगत्पति भगवान् विष्णु त्रैलोक्य को आक्रान्त करने वाला शरीर धारण करेंगे तथा बलि को बाँधेंगे। तो फिर भगवान् विष्णु कैसे पूर्व समय में त्रिविक्रम हुए थे और (उस समय) उन्होंने किसका बन्धन किया था? यह बात मुझे बताइये। (१०-११)

पुलस्त्य उवाच ।

श्रूयतां कथयिष्यामि योऽयं प्रोक्तस्त्रिविक्रमः ।
यस्मिन् काले संबभूव यं च वञ्चितवानसौ ॥ १२
आसीद् धुन्धुरिति ख्यातः कश्यपस्यौरसः सुतः ।
दनुगर्भसमुद्भूतो महाबलपराक्रमः ॥ १३
स समाराध्य वरदं ब्रह्माणं तपसाऽसुरः ।
अवध्यत्वं सुरैः सेन्द्रैः प्रार्थयत स तु नारद ॥ १४
तद् वरं तस्य च प्रादात् तपसा पङ्कजोद्भवः ।
परितुष्टः स च बली निर्जगाम त्रिविष्टपम् ॥ १५
चतुर्थस्य कलेरादौ जित्वा देवान् सवासवान् ।
धुन्धुः शक्रत्वमकरोद्धिरण्यकशिपौ सति ॥ १६
तस्मिन् काले स बलवान् हिरण्यकशिपुस्ततः ।
चचार मन्दरगिरौ दैत्यं धुन्धुं समाश्रितः ॥ १७
ततोऽसुरा यथा काम विहरन्ति त्रिविष्टपे ।
ब्रह्मलोके च त्रिदशाः संस्थिता दुःखसंयुताः ॥ १८
ततोऽमरान् ब्रह्मसदो निवासिनः
श्रुत्वाऽथ धुन्धुर्दितिजानुवाच ।
व्रजाम दैत्या वयमग्रजस्य
सदो विजेतुं त्रिदशान् सशक्रान् ॥ १९
ते धुन्धुवाक्य तु निशम्य दैत्याः
प्रोचुर्न नो विद्यति लोकपाल ।
गतिर्यया याम पितामहाजिरं
सुदुर्गमोऽयं परतो हि मार्गः ॥ २०
इतः सहस्रैर्बहुयोजनाख्यै-
र्लोको महर्नाम महर्षिजुष्टः ।
येषां हि दृष्ट्याऽर्पणचोदितेन
दह्यन्ति दैत्याः सहसेक्षितेन ॥ २१
ततोऽपरो योजनकोटिना वै
लोको जनो नाम वसन्ति यत्र ।
गोमातरोऽस्मासु विनाशकारि
यासां रजोऽपीह महासुरेन्द्र ॥ २२
ततोऽपरो योजनकोटिभिस्तु
षड्भिस्तपो नाम तपस्विजुष्टः ।
तिष्ठन्ति यत्रासुर साध्यवर्या
येषां हि निश्वासमरुत् त्वसह्यः ॥ २३
ततोऽपरो योजनकोटिभिस्तु

पुलस्त्य ने कहा—सुनो, मैं बतलाता हूँ कि वे त्रिविक्रम कौन हैं, किस समय हुए एवं उन्होंने किसकी वञ्चना की ।(१२) कश्यप का दनु के गर्भ से उत्पन्न धुन्धु नाम से प्रसिद्ध अत्यन्त बलवान् एवं पराक्रमी एक औरस पुत्र था । (१३) हे नारद ! उस असुर ने तपस्या के द्वारा वरदाता ब्रह्मा की आराधना करके उनसे इन्द्र आदि देवताओं से अवध्य होने की प्रार्थना की । (१४) (उसके) तप से प्रसन्न होकर कमलयोनि ब्रह्मा ने उसे वह वर दे दिया । तदनन्तर वह बलवान् धुन्धु स्वर्ग में गया । (१५) चतुर्थ कलि के आदि में हिरण्यकशिपु के वर्तमान रहते समय धुन्धु ने इन्द्र सहित देवों को जीतकर इन्द्र बन गया । (१६) उस समय धुन्धु का आश्रित होकर बलवान् दैत्य हिरण्यकशिपु मन्दर पर्वत पर विचरण करता था । (१७) असुर लोग भी इच्छानुसार स्वर्ग में विहार करने लगे । सभी देवता दुःखी होकर ब्रह्मलोक में रहने लगे । (१८)

तब देवताओं का ब्रह्मलोक में रहना सुनकर धुन्धु ने दैत्यों से कहा—हे दैत्यो ! इन्द्र सहित देवों को जीतने के लिये हमलोग ब्रह्मलोक चलें । (१९) धुन्धु का वचन सुनकर उन दैत्यों ने कहा—हे लोकपाल ! हम लोगों में वह गति नहीं है जिससे पितामह के लोक में जा सकें । (वहाँ का) मार्ग अत्यन्त दुर्गम एवं दूर है । (२०) यहाँ से सहस्रों योजन दूर महर्षियों के द्वारा सेवित 'मह' नामक लोक है । उन ऋषियों की सहसा दृष्टि पड़ते ही समस्त दैत्य जल जाते हैं । (२१) उससे भी आगे कोटि योजन दूर 'जन' नामक एक लोक है जहाँ गोमातायें रहती हैं । हे महासुरेन्द्र ! उनकी धूलि भी हमलोगों का विनाशक है । (२२) तदनन्तर छः कोटि योजन की दूरी पर तपस्वियों से सेवित 'तप' लोक है । हे असुर ! वहाँ श्रेष्ठ एवं साध्यगण निवास करते हैं । उनका निःश्वास पवन असह्य है । (२३) तदुपरान्त तीस कोटि योजन की दूरी पर सहस्र

त्रिंशद्भिरादित्यसहस्रदीप्तिः।
सत्याभिधानो भगवन्निवासो
वरप्रदोऽभूद् भवतो हि योऽसौ ॥ २४
यस्य वेदध्वनिं श्रुत्वा विकसन्ति सुरादयः।
संकोचमसुरा यान्ति ये च तेषां सधर्मिणः॥ २५
तस्मान्मा त्वं महाबाहो मतिमेवां ममादधः।
वैराजभुवनं धुन्धो दुरारोहं सदा नृभिः ॥ २६
तेषां वचनमाकर्ण्य धुन्धुः प्रोवाच दानवान्।
गन्तुकामः स सदनं ब्रह्मणो जेतुमीश्वरान् ॥ २७
कथं तु कर्मणा केन गम्यते दानवर्षभाः।
कथं तत्र सहस्राक्षः संप्राप्तः सह दैवतैः ॥ २८
ते धुन्धुना दानवेन्द्राः पृष्टाः प्रोचुर्वचोऽधिपम्।
कर्म तन्न वयं विद्मः शुक्रस्तद् वेत्त्यसंशयम् ॥ २९
दैत्यानां वचनं श्रुत्वा धुन्धुर्दैत्यपुरोहितम्।
पप्रच्छ शुक्रं किं कर्म कृत्वा ब्रह्मसदोगतिः ॥ ३०

आदित्यों के समान दीप्त 'सत्य' नामक लोक है। वह लोक उन्हीं भगवान् का निवास स्थान है जिन्होंने आपको वर प्रदान किया था। (२४)

उनकी वेदध्वनि सुनकर देवता आदि विकसित होते हैं और असुर तथा उनके समानधर्म वाले संकुचित होते हैं। (२५)

अतः हे महाबाहु धुन्धु! आप ऐसा विचार न करें। क्योंकि मनुष्यों के लिये ब्रह्मलोक सदैव दुरारोह है। (२६)

उनकी बात सुनकर देवों को जीतने के लिए ब्रह्मलोक को जाने की इच्छा वाले धुन्धु ने दानवों से कहा— (२७)

हे दानवश्रेष्ठो! वहाँ कैसे और किस कर्म से जाया जाता है? देवों के साथ इन्द्र वहाँ कैसे पहुँचे? (२८)

स्वामी धुन्धु के पूछने पर उन श्रेष्ठ दानवों ने कहा— हमलोग उस कर्म को नहीं जानते। शुक्राचार्य निस्सन्देह उसको जानते हैं। (२९)

दैत्यों की बात सुनकर धुन्धु ने दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य से पूछा—किस कर्म को करने से ब्रह्मलोक में जाया जा सकता है? (३०)

ततोऽस्मै कथयामास दैत्याचार्यः कलिप्रिय।
शक्रस्य चरितं श्रीमान् पुरा वृत्ररिपोः किल॥ ३१
शक्रः शतं तु पुण्यानां क्रतूनामजयत् पुरा।
दैत्येन्द्र वाजिमेधानां तेन ब्रह्मसदो गतः॥ ३२
तद्वाक्यं दानवपतिः श्रुत्वा शुक्रस्य वीर्यवान्।
यष्टुं तुरगमेधानां चकार मतिमुत्तमाम्।
अथामन्त्र्यासुरगुरुं दानवांश्चाप्युत्तमान्॥ ३३
प्रोवाच यक्ष्येऽहं यज्ञैरश्वमेधैः सदक्षिणैः।
तदागच्छध्वमवनीं गच्छामो वसुधाधिपान्॥ ३४
विजित्य हयमेधान् वै यथाक्रमगुणान्वितान्।
आहूयन्तां च निधयस्त्वाज्ञाप्यन्तां च गुह्यकाः ॥ ३५
आमन्त्र्यन्तां च ऋषयः प्रयामो देविकातटम्।
सा हि पुण्या सरिच्छ्रेष्ठा सर्वसिद्धिकरी शुभा।
स्थानं प्राचीनमासाद्य वाजिमेधान् यजामहे॥ ३६
इत्थं सुरारेर्वचनं निशम्यासुरयाजकः॥

हे कलिप्रिय! तदनन्तर उससे वृत्रशत्रु इन्द्र का चरित कहा। (उन्होंने कहा)—हे दैत्येन्द्र! प्राचीन काल में इन्द्र ने सौ पवित्र अश्वमेध यज्ञ किया था। इसी से वे ब्रह्मलोक चले गए। (३१-३२)

शुक्राचार्य का वह वाक्य सुनकर बलवान् दानवपति ने अश्वमेध यज्ञ करने की उत्तम इच्छा की। तदनन्तर असुर-गुरु तथा श्रेष्ठ दानवों को आमन्त्रित कर उसने कहा—मैं दक्षिणा सहित अश्वमेध यज्ञों को करूँगा। अतः आओ, हमलोग पृथ्वी पर चलें एवं राजाओं को जीतकर इच्छानुकूल गुणों से सम्पन्न अश्वमेधों का सम्पादन करें। निधियों को बुलाओ एवं गुह्यकों को आज्ञा दे दो। (३३-३५)

ऋषियों को आमन्त्रित करो, हमलोग देविका के तट पर चलें। वह पवित्र श्रेष्ठ नदी कल्याणप्रद एवं सर्वसिद्धिकरी है। उस प्राचीन स्थान पर पहुँचकर हम अश्वमेध यज्ञ करेंगे। (३६)

सुर-शत्रु के उस वचन को सुनकर असुरयाजक (शुक्र) ने 'ठीक है' ऐसा कहा एवं प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने निधियों

बाढमित्यब्रवीद् हृष्टो निधय. मदिदेश सः ॥ ३७
ततो धुन्धुर्देविकायाः प्राचीने पापनाशने ।
भार्गवेन्द्रेण शुक्रेण वाजिमेधाय दीक्षित. ॥ ३८
सदस्या ऋत्विजश्चापि तत्रासन् भार्गवा द्विजाः ।
शुक्रस्यानुमते ब्रह्मन् शुक्रशिष्याश्च पण्डिताः ॥ ३९
यज्ञभागभुजस्तत्र स्वर्भानुप्रमुखा मुने ।
कृताश्चासुरनाथेन शुक्रस्यानुमतेऽसुराः ॥ ४०
ततः प्रवृत्तो यज्ञस्तु समुत्सृष्टस्तथा हयः ।
हयस्यानुययौ श्रीमानसिलोमा महासुरः ॥ ४१
ततोऽग्निधूमेन मही सशैला
व्याप्ता दिशः ख विदिशश्च पूर्णाः ।
तेनोग्रगन्धेन दिवस्पृशेन
मरुद् ववौ ब्रह्मलोके महर्षे ॥ ४२
त गन्धमाघ्राय सुरा विषण्णा
जानन्त धुन्धु हयमेधदीक्षितम् ।
ततः शरण्यं शरण जनार्दनं
जग्मु. सशक्रा जगत. परायणम् ॥ ४३
प्रणम्य वरद देव पद्मनाभ जनार्दनम् ।
प्रोचुः सर्वे सुरगणा भयगद्गदया गिरा ॥ ४४
भगवन् देवदेवेश चराचरपरायण ।
विज्ञप्ति. श्रूयता विष्णो सुराणामार्तिनाशन ॥ ४५
धुन्धुर्नामासुरपतिर्बलवान् वरबृंहित ।
सर्वान् सुरान् विनिर्जित्य त्रैलोक्यमहरद् बलिः ॥ ४६
ऋते पिनाकिनो देवात् त्राताऽस्मान् न यतो हरे ।
अतो विवृद्धिमगमद् यथा व्याधिरुपेक्षित. ॥ ४७
साम्प्रत ब्रह्मलोकस्थानपि जेतु समुद्यतः ।
शुक्रस्य मतमास्थाय सोऽश्वमेधाय दीक्षित. ॥ ४८
शत क्रतूनामिष्ट्वाऽसौ ब्रह्मलोक महासुरः ।
आरोढुमिच्छति वशी विजेतु त्रिदशानपि ॥ ४९
तस्मादकालहीन तु चिन्तयस्व जगद्गुरो ।

को आदेश दिया । (३७)

तदनन्तर देविका के प्राचीन पापनाशक तट पर भार्गव श्रेष्ठ शुक्र ने अश्वमेध यज्ञ के लिये धुन्धु को दीक्षित किया । (३८)

हे ब्रह्मन् ! शुक्र की अनुमति से शुक्र के शिष्य तथा भार्गव-गोत्रीय विद्वान् ब्राह्मण उस यज्ञ में सदस्य एव ऋत्विज बने । (३९)

हे मुने ! शुक्राचार्य की अनुमति से असुरनाथ ने स्वर्भानु आदि असुरों को यज्ञभाग का भोगी बनाया । (४०)

तदनन्तर यज्ञ आरम्भ हुआ एव अश्व छोड़ा गया । असिलोमा नामक महान् असुर अश्व के पीछे चला । (४१)

हे महर्षे ! तदुपरान्त यज्ञ क धूम से पर्वतों सहित पृथ्वी, आकाश, दिशायें एव विदिशायें व्याप्त हो गई । आकाश स्पर्शी उस उग्र गन्ध से सुगन्धित वायु ब्रह्मलोक में प्रवाहित होने लगा । (४२)

उस गन्ध को सूँघ कर देवगण विषण्ण हो गए । उन्हें यह ज्ञात हो गया कि धुन्धु ने अश्वमेध की दीक्षा ग्रहण की है । तदुपरान्त वे इन्द्र सहित जगदाश्रय शरण्य जनार्दन की शरण में गए । (४३)

वरदाता पद्मनाभ जनार्दन देव को प्रणाम कर सभी देवों ने भय से गद्गद् वाणी मे कहा — (४४)

हे देवों के दु ख को दूर करने वाले चराचर हितकारी भगवान् देवदेवेश विष्णु ! आप हमारा निवेदन सुनें । (४५)

धुन्धु नामक बलवान् असुरपति वर से बढ़ गया है । उस बलवान् ने सभी देवों को जीतकर त्रैलोक्य को छीन लिया । (४६)

हे हरि ! पिनाकी देव के अतिरिक्त हम देवों का कोई रक्षक न होने से वह असुर उपेक्षित व्याधि के सदृश बढ़ गया है । (४७)

सम्प्रति ब्रह्मलोक मे हम रहने वालों को भी जीतने के लिये उद्यत होकर वह शुक्र के मतानुसार अश्वमेध यज्ञ में दीक्षित हुआ है । (४८)

सौ अश्वमेध यज्ञ करके वह महासुर देवताओं पर विजय पाने के लिए ब्रह्मलोक में आरोहण करना चाहता है । (४९)

अत हे जगद्गुरु ! आप शीघ्र यज्ञ को विध्वस्त करने

उपायं मखविध्वंसे येन स्याम सुनिर्वृताः ॥ ५०
श्रुत्वा सुराणां वचनं भगवान् मधुसूदनः।
दत्त्वाऽभयं महाबाहुः प्रेषयामास साम्प्रतम् ।
विसृज्य देवताः सर्वा ज्ञात्वाऽजेयं महासुरम् ॥ ५१
बन्धनाय मतिं चक्रे धुन्धोर्धर्मध्वजस्य वै ।
ततः कृत्वा स भगवान् वामनं रूपमीश्वरः ॥ ५२
देहं त्यक्त्वा निरालम्बं काष्ठवद् देविकाजले ।
क्षणान्मज्जंस्तथोन्मज्जन्मुक्तकेशो यदृच्छया ॥ ५३
दृष्टोऽथ दैत्यपतिना दैत्यैश्चान्यैस्तथर्षिभिः ।
ततः कर्म परित्यज्य यज्ञियं ब्राह्मणोत्तमाः ॥ ५४
समुत्तारयितुं विप्रमाद्रवन्त समाकुलाः ।
सदस्या यजमानश्च ऋत्विजोऽथ महौजसः ॥ ५५
निमज्जमानमुज्जह्रुः सर्वे ते वामनं द्विजम् ।
समुत्तार्य प्रसन्नास्ते पप्रच्छुः सर्व एव हि ।
किमर्थं पतितोऽसीह केनाक्षिप्तोऽसि नो वद ॥ ५६
तेषामाकर्ण्य वचनं कम्पमानो मुहुर्मुहुः ।
प्राह धुन्धुपुरोगांस्ताञ्छ्रूयतामत्र कारणम् ॥ ५७

ब्राह्मणो गुणवानासीत् प्रभास इति विश्रुत ।
सर्वशास्त्रार्थवित् प्राज्ञो गोत्रतश्चापि वारुणः ॥ ५८
तस्य पुत्रद्वयं जातं मन्दप्रज्ञं सुदुःखितम् ।
तत्र ज्येष्ठो मम भ्राता कनीयानपरस्त्वहम् ॥ ५९
नेत्रभास इति ख्यातो ज्येष्ठो भ्राता ममासुर ।
मम नाम पिता चक्रे गतिभासेति कौतुकात् ॥ ६०
रम्यश्चावसथो बन्धो शुभश्चासीत् पितुर्मम ।
त्रिविष्टपगुणैर्युक्तश्चारुरूपो महासुर ॥ ६१
ततः कालेन महता आवयोः स पिता मृत ।
तस्यौर्ध्वदैहिकं कृत्वा गृहमावां समागतौ ॥ ६२
ततो मयोक्तः स भ्राता विभजाम गृहं वयम् ।
तेनोक्तो नैव भवतो विद्यते भाग इत्यहम् ॥ ६३
कुब्जवामनपङ्गूनां क्लीबानां श्वित्रिणामपि ।
उन्मत्तानां तथान्धानां धनभागो न विद्यते ॥ ६४
शय्यासनस्थानमात्रं स्वेच्छयान्नभुजक्रिया ।

का उपाय सोचें जिससे हमलोग निश्चिन्त हो सकें। (५०)

सभी देवों को अभयदान देकर उन महाबाहु ने उन्हें विसर्जित किया एवं उस महान् असुर धर्मध्वज धुन्धु को अजेय जानकर उन्होंने उसे बाँधने का विचार किया। तदनन्तर भगवान् विष्णु ने वामन का रूप धारण किया एवं देविका के जल में अपने शरीर को काष्ठवत् निरालम्ब छोड़ दिया। क्षणमात्र में खुले हुये केशों वाले वे अपने आप डूबने उतराने लगे। (५१-५३)

तदनन्तर दैत्यपति, दैत्यों एवं अन्य ऋषियों ने उन्हें देखा। तदुपरान्त यज्ञकर्म को छोड़कर श्रेष्ठ ब्राह्मण व्यग्रतापूर्वक उस ब्राह्मण को निकालने के लिये दौड़े। सभी सदस्य, यजमान एवं अति ओजस्वी ऋत्विजों ने डूब रहे वामनाकार ब्राह्मण को निकाला एवं उससे पूछा—हमें यह बतलाओ कि तुम यहाँ क्यों गिरे अथवा तुम्हें किसने फेंका ? (५४-५६)

उनके वचन को सुनकर बारम्बार काँपते हुए उन्होंने धुन्धु आदि से कहा—आप लोग इसका कारण सुनें। (५७)

वरुण गोत्रोत्पन्न प्रभास नामक एक ब्राह्मण थे। सर्वशास्त्रों के अर्थ के ज्ञाता तथा बुद्धिमान् थे। (५८)

उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों ही अल्पबुद्धि और अत्यन्त दुःखभरत थे। उनमें मेरा भाई बड़ा और मैं छोटा हूँ। (५९)

हे असुर! मेरा बड़ा भाई नेत्रभास नाम से विख्यात है। मेरे पिता ने कुतूहलवश मेरा नाम गतिभास रखा। (६०)

हे महासुर धुन्धु! मेरे पिता का गृह रमणीय, सुखद, स्वर्गीय गुणों से युक्त एवं सुन्दर था। (६१)

तदनन्तर बहुत दिनों के बाद हम दोनों के पिता दिवंगत हो गये। उनका प्रेतकर्म कर हम दोनों भाई घर आये। (६२)

तदुपरान्त मैंने बड़े भाई से कहा—हम दोनों गृह का विभाजन कर लें। उसने मुझसे कहा—तुम्हारा भाग नहीं है। (६३)

क्योंकि कुब्ज, वामन, लँगड़े, नपुंसक, श्वेतकुष्ठी, उन्मत्त और अन्धों का धन में भाग नहीं होता। (६४)

उन्हें केवल शय्यासन का स्थान एवं स्वेच्छानुसार

एतावद् दीयते तेभ्यो नार्थभागहरा हि ते ॥ ६५
एवमुक्ते मया सोक्तः किमर्थं पैतृकाद् गृहात् ।
धनार्धभागमर्हामि नाहं न्यायेन केन वै ॥ ६६
इत्युक्तवति वाक्येऽसौ भ्राता मे कोपसंयुतः ।
समुत्क्षिप्याक्षिपन्नद्यामस्यां मामिति कारणात् ॥ ६७
ममास्यां निम्नगायां तु मध्येन प्लवतो गतः ।
कालः संवत्सराख्यस्तु युष्माभिरिह चोद्धृतः ॥ ६८
के भवन्तोऽत्र संप्राप्ताः सस्नेहा बान्धवा इव ।
कोऽयं च शक्रप्रतिमो दीक्षितो यो महाभुजः ॥ ६९
तन्मे सर्वं समाख्यात याथातथ्यं तपोधना ।
महर्द्धिसंयुता यूयं सानुकम्पाश्च मे भृशम् ॥ ७०
तद् वामनवचः श्रुत्वा भार्गवा द्विजसत्तमाः ।
प्रोचुर्वयं द्विजा ब्रह्मन् गोत्रतश्चापि भार्गवाः ॥ ७१
असावपि महातेजा धुन्धुर्नाम महासुरः ।
दाता भोक्ता विभक्ता च दीक्षितो यज्ञकर्मणि ॥ ७२
इत्येवमुक्त्वा देवेशं वामनं भार्गवास्ततः ।
प्रोचुर्दैत्यपतिं सर्वे वामनार्थकरं वचः ॥ ७३
दीयतामस्य दैत्येन्द्र सर्वोपस्करसंयुतम् ।
श्रीमदावसथं दास्यो रत्नानि विविधानि च ॥ ७४
इति द्विजानां वचनं श्रुत्वा दैत्यपतिर्वचः ।
प्राह द्विजेन्द्र ते दद्मि यावदिच्छसि वै धनम् ॥ ७५
दास्ये गृहं हिरण्यं च वाजिनः स्यन्दनान् गजान् ।
प्रयच्छाम्यद्य भवतो व्रियतामीप्सितं विभो ॥ ७६
तद्वाक्यं दानवपतेः श्रुत्वा देवोऽथ वामनः ।
प्राहासुरपतिं धुन्धुं स्वार्थसिद्धिकरं वचः ॥ ७७
सोदरेणापि हि भ्रात्रा ह्रियन्ते यस्य संपदः ।
तस्याक्षमस्य यद्दत्तं किमन्यो न हरिष्यति ॥ ७८
दासीदासांश्च भृत्यांश्च गृहं रत्नं परिच्छदम् ।
समर्थेषु द्विजेन्द्रेषु प्रयच्छस्व महाभुज ॥ ७९
मम प्रमाणमालोक्य मामकं च पदत्रयम् ।

अन्नभोग का अधिकार दिया जाता है। वे अर्थ के भाग के अधिकारी नहीं होते। (६५)

ऐसा कहने पर मैंने उससे कहा कि मैं किस न्याय से और क्यों पैतृक गृह के धन के अर्धभाग का अधिकारी नहीं हूँ? (६६)

इस प्रकार का वाक्य कहने पर कोपयुक्त मेरे भ्राता ने इसी कारण मुझे उठाकर इस नदी में फेंक दिया। (६७)

मुझे इस नदी में तैरते हुए एक वर्ष का समय व्यतीत हो गया। आप लोगों ने यहाँ मेरा उद्धार किया है। (६८)

स्नेह युक्त बान्धवों के सदृश यहाँ स्थित आप लोग कौन हैं तथा यज्ञ के लिए दीक्षित इन्द्रतुल्य ये महापराक्रमी कौन हैं? (६९)

हे तपोधनो! आप मुझे यह सब यथार्थ रूप में बतलायें। आपलोग महान् ऐश्वर्य से युक्त एवं मेरे ऊपर अतिशय अनुकम्पा करने वाले हैं। (७०)

वामन का यह वाक्य सुनकर भार्गवकुल के ब्राह्मण-श्रेष्ठों ने कहा—हे ब्रह्मन्! हमलोग भार्गवगोत्रीय ब्राह्मण हैं। (७१)

ये धुन्धु नामक अति तेजस्वी दाता, भोक्ता एवं विभक्ता महान् असुर हैं। ये यज्ञकर्म में दीक्षित हुए हैं। (७२)

देवेश वामन से ऐसा कहकर सभी भार्गवगोत्रीय (ब्राह्मणों ने) दैत्यपति धुन्धु से वामन के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला वचन कहा— (७३)

हे दैत्येन्द्र! इन्हें समस्त सामग्रियों से युक्त श्रीसम्पन्न गृह, दासियाँ एवं विविध प्रकार के रत्न प्रदान करें। (७४)

ब्राह्मणों के उस वचन को सुनकर दैत्यपति ने यह वचन कहा—हे द्विजेन्द्र! मैं आपकी इच्छानुसार धन दूँगा। (७५)

हे विभु! आप अपने ईप्सित पदार्थ का वरण करें। मैं आज आपको गृह, स्वर्ण, अश्व, रथ एवं हाथी प्रदान करूँगा। (७६)

दानवपति का यह वाक्य सुनकर वामनदेव ने असुरपति धुन्धु से अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाला वचन कहा— (७७)

सहोदर भाई ने जिसकी सम्पत्ति का अपहरण कर लिया उस असमर्थ को जो दिया जायेगा क्या उसे कोई दूसरा नहीं छीन लेगा? (७८)

हे महाबाहु! आप समर्थ श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दासी, दास, भृत्य, गृह, रत्न एवं अच्छे वस्त्र प्रदान करें। (७९)

हे दैत्येन्द्र! मेरा परिमाण देखकर मुझे तीन

संप्रयच्छस्व दैत्येन्द्र नाधिकं रक्षितुं क्षमः ॥ ८०
इत्येवमुक्ते वचने महात्मना
निहस्य दैत्याधिपतिः मऋत्विजः।
प्रादाद् द्विजेन्द्राय पदत्रय तदा
यदा स नान्यं प्रगृहाण किंचित् ॥ ८१
क्रमत्रयं तावदवेक्ष्य दत्तं
महासुरेन्द्रेण विभुर्यशस्वी।
चक्रे ततो लङ्घयितुं त्रिलोकीं
त्रिविक्रमं रूपमनन्तशक्तिः ॥ ८२
कृत्वा च रूपं दितिजांश्च हत्वा
प्रणम्य चर्षीन् प्रथमक्रमेण।
महीं महीध्रैः सहितां सहार्णवां
जहार रत्नाकरपत्तनैर्युताम् ॥ ८३
भुवं सनाकं त्रिदशाधिवासं
सोमार्कऋक्षैरभिमण्डितं नभः।
देवो द्वितीयेन जहार वेगात्
क्रमेण देवप्रियमीप्सुरीश्वरः ॥ ८४
क्रमं तृतीयं न यदाऽस्य पूरितं
तदाऽतिक्रोधाद् दनुपुंगवस्य।
पपात पृष्ठे भगवांस्त्रिविक्रमो
मेरुप्रमाणेन तु विग्रहेण ॥ ८५
पतता वासुदेवेन दानवोपरि नारद।
त्रिंशद्योजनसाहस्री भूमेर्गर्ता दृढीकृता ॥ ८६
ततो दैत्यं समुत्पाट्य तस्यां प्रक्षिप्य वेगतः।
अवर्षत् सिकतावृष्ट्या तां गर्तामपूरयत ॥ ८७
ततः स्वर्गं सहस्राक्षो वासुदेवप्रसादतः।
सुराश्च सर्वे त्रैलोक्यमवापुर्निरुपद्रवाः ॥ ८८
भगवानपि दैत्येन्द्रं प्रक्षिप्य सिकतार्णवे।
कालिन्द्या रूपमाधाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८९
एव पुरा विष्णुरभूच्च वामनो
धुन्धुं विजेतुं च त्रिविक्रमोऽभूत्।
यस्मिन् स दैत्येन्द्रसुतो जगाम
महाश्रमे पुण्ययुतो महर्षे ॥ ९०

इति श्रीवामनपुराणे द्विपञ्चाशोऽध्याय ॥५२॥

पग (भूमि) प्रदान करें। मैं अधिक की रक्षा करने में समर्थ नहीं हूँ। (८०)

उन महात्मा के ऐसा वचन कहने पर जब उन्होंने अन्य कुछ ग्रहण नहीं किया तो ऋत्विजों सहित दैत्याधिपति ने हँसकर उन द्विजेन्द्र को तीन पग (भूमि) प्रदान की। (८१)

महान् असुरेन्द्र द्वारा तीन पग भूमि प्रदान की हुई देखकर अनन्त शक्ति वाले यशस्वी विभु ने त्रिलोकी का लङ्घन करने के लिये त्रिविक्रम रूप धारण किया। (८२)

(त्रिविक्रम) रूप धारण करने के उपरान्त उन्होंने दैत्यों का वधकर ऋषियों को प्रणाम किया एवं प्रथम पादन्यास में पर्वत, सागर, रत्नों की खान एवं नगरों से युक्त पृथ्वी को हरण कर लिया। (८३)

देवों का प्रिय करने की इच्छा वाले ईश्वर वामनदेव ने द्वितीय पादक्रम से वेगपूर्वक देवताओं के निवास स्वर्ग के सहित भुवर्लोक, चन्द्र, सूर्य एवं नक्षत्रों से मण्डित आकाश का हरण कर लिया। (८४)

उनका तृतीय पादक्रम जब पूरा नहीं हुआ तो अत्यन्त कोप से भगवान् त्रिविक्रम मेरु के तुल्य शरीर से दानवश्रेष्ठ की पीठ पर गिरे। (८५)

हे नारद! दानव के ऊपर वासुदेव के गिरने से भूमि में तीस सहस्र योजन का दृढ़ गर्त बन गया। (८६)

तदनन्तर उन्होंने दैत्य को उठाकर वेग से उसमें फेंक दिया एवं बालु की वृष्टि से उस गर्त को भर दिया। (८७)

तदनन्तर वासुदेव के अनुग्रह से इन्द्र ने स्वर्ग पाया एवं उपद्रव रहित समस्त देवों को त्रैलोक्य की प्राप्ति हुई। (८८)

कालिन्दी के बालुकार्णव में दैत्येन्द्र को फेंकने के उपरान्त भगवान् भी अपना रूप धारण कर वहीं अन्तर्हित हो गए। (८९)

प्राचीन काल में इस प्रकार धुन्धु को जीतने के लिये विष्णु वामन तथा त्रिविक्रम हुए थे। हे महर्षि! वह पुण्यात्मा दैत्येन्द्र पुत्र प्रह्लाद उसी आश्रम में गया। (९०)

श्रीवामनपुराण में बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५२॥

५३

पुलस्त्य उवाच ।
कालिन्दीसलिले स्नात्वा पूजयित्वा त्रिविक्रमम् ।
उपोष्य रजनीमेकां लिङ्गभेदं गिरिं ययौ ॥ १
तत्र स्नात्वा च विमले भवं दृष्ट्वा च भक्तितः ।
उपोष्य रजनीमेकां तीर्थं केदारमाव्रजत् ॥ २
तत्र स्नात्वाऽर्च्य चेशानं माधवं चाप्यभेदतः ।
उषित्वा वासरान् सप्त कुब्जाम्रं प्रजगाम ह ॥ ३
ततः सुतीर्थे स्नात्वा च सोपवासी जितेन्द्रियः ।
हृषीकेशं समभ्यर्च्य ययौ बदरिकाश्रमम् ॥ ४
तत्रोष्य नारायणमर्च्य भक्त्या
स्नात्वाऽथ विद्वान् स सरस्वतीजले ।
वराहतीर्थे गरुडासनं स
दृष्ट्वाऽथ संपूज्य सुभक्तिमांश्च ॥ ५
भद्रकर्णे ततो गत्वा जयेशं शशिशेखरम् ।
दृष्ट्वा संपूज्य च शिवं विपाशामभितो ययौ ॥ ६
तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य देवदेवं द्विजप्रियम् ।
उपवासी इरावत्यां ददर्श परमेश्वरम् ॥ ७
यमाराध्य द्विजश्रेष्ठ शाकले वै पुरूरवाः ।
समवाप परं रूपमैश्वर्यं च सुदुर्लभम् ॥ ८
कुष्ठरोगाभिभूतश्च यं समाराध्य वै भृगुः ।
आरोग्यमतुलं प्राप संतानमपि चाक्षयम् ॥ ९
नारद उवाच ।
कथं पुरूरवा विष्णुमाराध्य द्विजसत्तम ।
विरूपत्वं समुत्सृज्य रूपं प्राप श्रिया सह ॥ १०
पुलस्त्य उवाच ।
श्रूयतां कथयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
पूर्वं त्रेतायुगस्यादौ यथावृत्तं तपोधन ॥ ११
मद्रदेश इति ख्यातो देशो वै ब्रह्मणः सुत ।

५३

पुलस्त्य ने कहा—यमुनाजल में स्नान कर प्रह्लाद ने त्रिविक्रम की पूजा की एवं एक रात उपोषण करने के उपरान्त लिङ्गभेदनामक पर्वत पर चले गए। (१)

वहाँ विमल (जल) में स्नान कर उन्होंने भक्ति पूर्वक शङ्कर का दर्शन किया एवं एक रात निवास कर केदार नामक तीर्थ में गए। (२)

वहाँ स्नानोपरान्त (उन्होंने) अभेद बुद्धि से शिव एवं विष्णु का अर्चन किया एवं सात दिनों तक निवास कर कुब्जाम्र में चले गये। (३)

तदनन्तर उस सुन्दर तीर्थ में स्नान कर उपवास करने वाले जितेन्द्रिय (प्रह्लाद) हृषीकेश का अर्चन कर बदरिका आश्रम चले गये। (४)

वहाँ निवास करते हुए सरस्वती के जल में स्नानकर उन विद्वान् (प्रह्लाद) ने नारायण का पूजन किया। तदनन्तर अत्यन्त भक्तिपूर्वक उन्होंने वराहतीर्थ में गरुडासन विष्णु का दर्शन एवं पूजन किया। (५)

वहाँ से भद्रकर्ण में जाकर जयेश शशिशेखर शिव का दर्शन एवं पूजन करने के उपरान्त विपाशा की ओर चले गये। (६)

उस विपाशा में स्नानोपरान्त द्विजप्रिय देवाधिदेव का अर्चन कर (प्रह्लाद) उपवास करते हुए इरावती की ओर गए। हे द्विजश्रेष्ठ! (उन्होंने) वहाँ उन परमेश्वर का दर्शन किया जिनकी शाकल में आराधना करने से पुरूरवा को श्रेष्ठ रूप एवं सुदुर्लभ ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था। (७-८)

कुष्ठरोगाभिभूत भृगु ने उन परमेश्वर की आराधना कर अतुल आरोग्य एवं अक्षय सन्तान प्राप्त किया था। (९)

नारद ने कहा—हे द्विजसत्तम! पुरूरवा ने विष्णु की आराधना करने के उपरान्त किस प्रकार विरूपता को छोड़कर ऐश्वर्य के साथ सुदुर्लभ रूप प्राप्त किया। (१०)

पुलस्त्य ने कहा—हे तपोधन! सुनो, मैं प्राचीनकाल में त्रेतायुग के आदि में घटित पापनाशिनी कथा कहता हूँ। (११)

हे ब्रह्मपुत्र! प्रसिद्ध मद्रदेश में शाकल नाम से प्रख्यात

शाकलं नाम नगरं ख्यातं स्थानीयमुत्तमम् ॥ १२ ॥
तस्मिन् विपणिवृत्तिस्थः सुधर्मोऽख्योऽभवद् वणिक् ।
धनाढ्यो गुणवान् भोगी नानाशास्त्रविशारदः ॥ १३
स त्वेकदा निजाद् राष्ट्रात् सुराष्ट्रं गन्तुमुद्यतः ।
सार्थेन महता युक्तो नानाविपणपण्यवान् ॥ १४
गच्छतः पथि तस्याथ मरुभूमौ कलिप्रिय ।
अभवद् दस्युतो रात्रौ अवस्कन्दोऽतिदुःसहः ॥ १५
ततः स हृतसर्वस्वो वणिग् दुःखसमन्वितः ।
असहायो मरौ तस्मिंश्चचारोन्मत्तवद् वशी ॥ १६
चरता तदरण्यं वै दुःखाक्रान्तेन नारद ।
आत्मा इव शमीवृक्षो मरावासादितः शुभः ॥ १७
तं मृगैः पक्षिभिश्चैव हीनं दृष्ट्वा शमीतरुम् ।
श्रान्तः क्षुत्तृट्परीतात्मा तस्याधः समुपाविशत् ॥ १८
सुप्तश्चापि सुविश्रान्तो मध्याह्ने पुनरुत्थितः ।
समपश्यदथायान्तं प्रेतं प्रेतशतैर्वृतम् ॥ १९
उह्यमानमथान्येन प्रेतेन प्रेतनायकम् ।
पिण्डाशिभिश्च पुरतो धावद्भी रूक्षविग्रहैः ॥ २०
अथाजगाम प्रेतोऽसौ पर्यटित्वा वनानि च ।
उपागम्य शमीमूले वणिक्पुत्रं ददर्श सः ॥ २१
स्वागतेनाभिवाद्यैनं समाभाष्य परस्परम् ।
सुखोपविष्टश्छायायां पृष्ट्वा कुशलमाप्तवान् ॥ २२
ततः प्रेताधिपतिना पृष्टः स तु वणिक्सुतः ।
कुत आगम्यते ब्रूहि क्व साधो वा गमिष्यसि ॥ २३
कथं चेदं महारण्यं मृगपक्षिविवर्जितम् ।
समापन्नोऽसि भद्रं ते सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ २४
एवं प्रेताधिपतिना वणिक् पृष्टः समासतः ।
सर्वमाख्यातवान् ब्रह्मन् स्वदेशधनविच्युतिम् ॥ २५
तस्य श्रुत्वा स वृत्तान्तं तस्य दुःखेन दुःखितः ।
वणिक्पुत्रं ततः प्राह प्रेतपालः स्वबन्धुवत् ॥ २६
एवं गतेऽपि मा शोकं कर्तुमर्हसि सुव्रत ।

उत्तम नगर है। (१२)

वहाँ सुधर्मा नामक एक धनाढ्य गुणवान्, भोगी एवं नानाशास्त्र विशारद व्यापारी रहता था। (१३)

वह एक समय अपने राष्ट्र से सुराष्ट्र जाने को प्रस्तुत हुआ। हे कलिप्रिय! अनेक विभिन्न वस्तुओं से सम्पन्न व्यापारियों के महान् समूह के साथ मार्गस्थ मरुभूमि में से जाते समय रात्रि में (उसके ऊपर) डाकुओं का अति-दु सह आक्रमण हुआ। (१४-१५)

तदनन्तर सर्वस्व अपहृत हो जाने से दुःखित वह संयमी वणिक् मरुभूमि में उन्मत्तवत विचरण करने लगा। (१६)

हे नारद! दुःखाक्रान्त होकर उस वन में विचरण करते हुए उसे मरुभूमि में आत्मीय के तुल्य एक शुभ शमी वृक्ष मिला। (१७)

उस शमीवृक्ष को पशु-पक्षियों से रहित देखकर थका तथा भूख प्यास से अभिभूत वह वणिक् उसके नीचे बैठ गया। (१८)

शयन द्वारा पर्याप्त विश्राम कर वह मध्याह्न में उठा एवं सैकड़ों प्रेतों से आवृत एक प्रेत को आते हुए देखा। (१९)

उस प्रेतनायक को एक अन्य प्रेत ढो रहा था। एवं रूक्ष शरीरवाले पिण्डाशी (प्रेत) उसके आगे दौड़ रहे थे। (२०)

वनों में पर्यटन करने के उपरान्त वह प्रेत लौटा एवं शमी वृक्ष के नीचे पहुँच कर उसने वणिक् पुत्र को देखा। (२१)

स्वागत के साथ उसे अभिवादन करने के उपरान्त परस्पर वार्तालाप करके वह छाया में सुखपूर्वक बैठ गया और कुशल पूछकर जाना। (२२)

तदनन्तर प्रेताधिपति ने वणिक् बन्धु से पूछा— हे साधु! यह बतलाओ कि तुम कहाँ से आये हो एवं कहाँ जाओगे? (२३)

तुम्हारा कल्याण हो। मुझे यह बतलाओ कि पशु एवं पक्षियों से शून्य इस महान् अरण्य में कैसे आये। (२४)

हे ब्रह्मन्! प्रेतराज के ऐसा पूछने पर वणिक् ने संक्षेप में उसे अपने देश तथा धन-नाश का पूरा विवरण बतलाया। (२५)

उसका वृत्तान्त सुनने के उपरान्त उसके दुःख से दुःखित होकर प्रेतपति ने स्वबन्धु के सदृश उस वणिक् पुत्र से कहा— (२६)

हे सुव्रत! ऐसा होने पर भी तुम्हें शोक नहीं करना

भूयोऽप्यर्थाः भविष्यन्ति यदि भाग्यबलं तव ॥ २७
भाग्यक्षयेऽर्थाः क्षीयन्ते भवन्त्यभ्युदये पुनः ।
क्षीणस्यास्य शरीरस्य चिन्तया नोदयो भवेत् ॥ २८
इत्युच्चार्य समाहूय स्वान् भृत्यान् वाक्यमब्रवीत् ।
अद्यातिथिरयं पूज्य: सदैव स्वजनो मम ॥ २९
अस्मिन् दृष्टे वणिक्पुत्रे यथा स्वजनदर्शनम् ।
अस्मिन् समागते प्रेता: प्रीतिर्जाता ममातुला ॥ ३०
एवं हि वदतस्तस्य मृत्पात्रं सुदृढं नवम् ।
दध्योदनेन संपूर्णमाजगाम यथेप्सितम् ॥ ३१
तथा नवा च सुदृढा संपूर्णा परमाम्भसा ।
वारिधानी च संप्राप्ता प्रेतानामग्रतः स्थिता ॥ ३२
तमागतं ससलिलमन्नं वीक्ष्य महामतिः ।
प्राहोत्तिष्ठ वणिक्पुत्र त्वमाह्निकमुपाचर ॥ ३३
ततस्तु वारिधान्यास्तौ सलिलेन विधानतः ।
कृताह्निकावुभौ जातौ वणिक् प्रेतपतिस्तथा ॥ ३४

ततो वणिक्सुतायादौ दध्योदनमथेच्छया ।
दत्त्वा तेभ्यश्च सर्वेभ्यः प्रेतेभ्यो व्यददात् ततः ॥ ३५
भुक्तवत्सु च सर्वेषु कामतोऽम्भसि सेविते ।
अनन्तरं स बुभुजे प्रेतपालो वराशनम् ॥ ३६
प्रकामतृप्ते प्रेते च वारिधान्योदनं तथा ।
अन्तर्धानमगाद् ब्रह्मन् वणिक्पुत्रस्य पश्यतः ॥ ३७
ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा स मतिमान् वणिक् ।
पप्रच्छ तं प्रेतपालं कौतूहलमना वशी ॥ ३८
अरण्ये निर्जने साधो कुतोऽन्नस्य समुद्भवः ।
कुतश्च वारिधानीयं संपूर्णा परमाम्भसा ॥ ३९
तथामी तव ये भृत्यास्त्वत्तस्ते वर्णतः कृशाः ।
भवानपि च तेजस्वी किंचित्पुष्टवपुः शुभः ॥ ४०
शुक्लवस्त्रपरीधानो बहूनां परिपालकः ।
सर्वमेतन्ममाचक्ष्व को भवान् का शमी त्वियम् ॥४१
इत्थं वणिक्सुतवचः श्रुत्वाऽसौ प्रेतनायकः ।

चाहिये। यदि तुम्हारा भाग्यबल होगा तो सम्पत्तियाँ पुन हो जायेंगी। (२७)

भाग्य का क्षय होने पर धनों का क्षय हो जाता है एव पुन भाग्योदय होने से धनागम भी हो जाता है। इस क्षीण शरीर की चिन्ता करने से उदय (वृद्धि) नहीं होता। (२८)

ऐसा कहकर उसने अपने भृत्यों को बुलाया एव उनसे कहा—मेरे स्वजन के सदृश सर्वथा इस अतिथि का पूजन करो। (२९)

हे प्रेतो! स्वजन दर्शन के तुल्य मुझे इस वणिक् पुत्र का दर्शन हुआ है। इसके समागम से मुझे अतुल प्रीति हुई है। (३०)

उसके इस प्रकार कहने पर यथेच्छ दधि और ओदन से पूर्ण अत्यन्त दृढ़ एक नया मिट्टी का बर्तन आ गया। इसी प्रकार उत्तम जल से पूर्ण एक जलपात्र प्रेतों के सम्मुख उपस्थित हुआ। (३१-३२)

उस अन्न एवं जल को उपस्थित देखकर महामति प्रेत ने कहा—हे वणिक्पुत्र! तुम उठो एवं आह्निक कृत्य करो। (३३)

तदनन्तर वणिक् एवं प्रेतपति दोनों ने घट के जल से विधिपूर्वक नित्य कर्म किया। (३४)

तदुपरान्त (प्रेतपति ने) पहले वणिक् पुत्र को यथेच्छ दधि एव ओदन दिया तथा तदनन्तर उन प्रेतों को दिया। (३५)

सभी के यथेच्छ भोजन एव जलपान करने के पश्चात् उस प्रेतपति ने उत्तम भोजन किया। (३६)

हे ब्रह्मन्! प्रेत के पूर्ण रूप से तृप्त हो जाने पर वणिक्पुत्र के देखते ही देखते जलपात्र एव ओदन तिरोहित हो गया। (३७)

तदनन्तर उस अत्यन्त अद्भुत दृश्य को देखकर उस बुद्धिमान् संयमी वणिक् ने कौतूहल पूर्वक उस प्रेतपति से पूछा— (३८)

हे साधु! इस निर्जन अरण्य में अन्न एव उत्तम जल से पूर्ण घट कहाँ से आया? (३९)

तुम्हारी अपेक्षा वर्ण की दृष्टि से कृश तुम्हारे ये भृत्य कौन हैं? किञ्चित् पुष्ट शरीर युक्त सुन्दर तेज सम्पन्न शुक्लवस्त्रधारी बहुतों का परिपालन करने वाले आप भी कौन हैं? आप मुझे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलायें कि आप कौन हैं एवं यह शमीवृक्ष कौन है? (४०-४१)

वणिक्पुत्र के इस प्रकार के वचन को सुनकर उस

शशंस सर्वमस्यार्थं यथावृत्तं पुरातनम् ॥ ४२
अहमासं पुरा विप्रः शाकले नगरोत्तमे ।
सोमशर्मेति विख्यातो बहुलागर्भसंभवः ॥ ४३
ममास्ति च वणिक् धीमान् प्रातिवेश्यो महाधनः ।
स तु सोमश्रवा नाम विष्णुभक्तो महायशाः ॥ ४४
सोऽहं कदर्यो मूढात्मा धनेऽपि सति दुर्मतिः ।
न ददामि द्विजातिभ्यो न चाश्नाम्यन्नमुत्तमम् ॥ ४५
प्रमादाद् यदि भुञ्जामि दधिक्षीरघृतान्वितम् ।
ततो रात्रौ नृभिर् घोरैस्ताड्यते मम विग्रहः ॥ ४६
प्रातर्भवति मे घोरा मृत्युतुल्या विषूचिका ।
न च कश्चिन्ममाभ्यासे तत्र तिष्ठति बान्धवः ॥ ४७
कथं कथमपि प्राणा मया संप्रतिधारिताः ।
एवमेतादृशः पापी निवसाम्यतिनिर्घृणः ॥ ४८
सौवीरतिलपिण्याकसक्तुशाकादिभोजनैः ।
क्षपयामि कदन्नाद्यैरात्मानं कालयापनैः ॥ ४९

एवं तत्रासतो मह्यं महान् कालोऽभ्यगादथ ।
श्रवणद्वादशी नाम मासि भाद्रपदेऽभवत् ॥ ५०
ततो नागरिको लोको गतः स्नातुं हि संगमम् ।
इरावत्या नड्वलाया ब्रह्मक्षत्रपुरस्सरः ॥ ५१
प्रातिवेश्यप्रसंगेन तत्राप्यनुगतोऽस्म्यहम् ।
कृतोपवासः शुचिमानेकादश्यां यतव्रतः ॥ ५२
ततः संगमतोयेन वारिधानीं दृढां नवाम् ।
संपूर्णां वस्तुसंवीतां छत्रोपानहसंयुताम् ॥ ५३
मृत्पात्रमपि मिष्टस्य पूर्णं दध्योदनस्य ह ।
प्रदत्तं ब्राह्मणेन्द्राय शुचये ज्ञानधर्मिणे ॥ ५४
तदेव जीवता दत्तं मया दानं वणिक्सुत ।
वर्षाणां सप्ततीनां वै नान्यद् दत्तं हि किंचन ॥ ५५
मृतः प्रेतत्वमापन्नो दत्त्वा प्रेतान्नमेव हि ।
अमी चादत्तदानास्तु मदन्नेनोपजीविनः ॥ ५६
एतत्ते कारणं प्रोक्तं यत्तदन्नं मयाम्भसा ।

प्रेतनायक ने उससे सम्पूर्ण प्राचीन वृत्तान्त कहा। (४२)

(उसने कहा—)प्राचीनकाल में मैं उत्तम शाकल नामक नगर में बहुला के गर्भ से उत्पन्न सोमशर्मा नामक विख्यात ब्राह्मण था। (४३)

मेरा पड़ोसी एक अतिधनवान्, लक्ष्मीवान् सोमश्रवा नामक वणिक् था। वह महान् यशस्वी एवं विष्णुभक्त था। (४४)

कृपण एवं मूर्ख मैं धन होते हुये भी न तो द्विजातियों को दान करता था और न उत्तम अन्न का भोग ही करता था। (४५)

यदि प्रमादवश मैं दधि, क्षीर एवं घृतयुक्त पदार्थ भोजन करता था तो रात्रि में भयङ्कर मनुष्य मेरे शरीर को पीटते थे। (४६)

प्रातः काल मुझे मृत्युतुल्य घोर विषूचिका (हैजा) हो जाया करती थी। उस समय कोई भी बन्धु मेरे समीप नहीं ठहरता था। (४७)

किसी प्रकार मैं अपने प्राणों को धारण करता था। इस प्रकार मैं अति निर्लज्ज पापयुक्त जीवन व्यतीत कर रहा था। (४८)

बेर, तिलपिण्याक, सत्तू एवं शाकादि खराब अन्नों को खाकर कालयापन करते हुए मैं स्वयं को क्षीण कर रहा था। (४९)

मुझे इस प्रकार वहाँ रहते हुए बहुत काल व्यतीत हो गया। (एक बार) भाद्रपदमास में श्रवणद्वादशी की तिथि आई। (५०)

तदनन्तर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नागरिक लोग इरावती और नड्वला नदियों के संगम में स्नान करने के लिये गये। (५१)

पड़ोसी के कारण मैं भी उनके पीछे-पीछे गया। एकादशी के दिन व्रत धारण कर पवित्रतापूर्वक मैंने उपवास किया। (५२)

तदनन्तर मैंने अनेक वस्तुओं, छाता एवं जूता सहित सङ्गम के जल से पूर्ण नवीन एवं दृढ़ जलपात्र तथा मिष्टान्न, दधि एवं ओदन से पूर्ण मिट्टी का पात्र ज्ञान एवं धर्म से युक्त पवित्र श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रदान किया। (५३-५४)

हे वणिक् पुत्र! मैंने अपने सत्तर वर्षों के जीवन में यही दान दिया था। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं दान किया। (५५)

प्रेतान्न दान करके मृत्यु के उपरान्त मैं प्रेत हुआ। मेरे अन्न से जीवन धारण करने वाले इन लोगों ने कभी दान नहीं किया है। (५६)

मैंने तुम्हें यह कारण बतलाया जिससे मेरे द्वारा दिया गया जल एवं अन्न प्रतिदिन मध्याह्न के समय

दत्तं तदिदमायाति मध्याह्नेऽपि दिने दिने ॥ ५७
यावन्नाहं च भुञ्जामि न तावत् क्षयमेति वै ।
मयि भुक्ते च पीते च सर्वमन्तर्हितं भवेत् ॥ ५८
यच्चातपत्रमददं सोऽयं जातः शमीतरुः ।
उपानद्युगले दत्ते प्रेतो मे वाहनोऽभवत् ॥ ५९
इयं तवोक्ता धर्मज्ञ मया कीनाशतात्मनः ।
श्रवणद्वादशीपुण्यं तवोक्तं पुण्यवर्धनम् ॥ ६०
इत्येवमुक्ते वचने वणिक्पुत्रोऽब्रवीद् वचः ।
यन्मया तात कर्त्तव्यं तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ६१
तत् तस्य वचनं श्रुत्वा वणिक्पुत्रस्य नारद ।
प्रेतपालो वचः प्राह स्वार्थसिद्धिकरं ततः ॥ ६२
यत् त्वया तात कर्त्तव्यं मद्धितार्थं महामते ।
कथयिष्यामि तत् सम्यक् तव श्रेयस्करं मम ॥ ६३
गयायां तीर्थजुष्टायां स्नात्वा शौचसमन्वितः ।
मम नाम समुद्दिश्य पिण्डनिर्वपणं कुरु ॥ ६४
तत्र पिण्डप्रदानेन प्रेतभावादहं सखे ।

मुक्तस्तु सर्वदातॄणां यास्यामि सहलोकताम् ॥ ६५
यथेयं द्वादशी पुण्या मासि प्रौष्ठपदे सिता ।
बुधश्रवणसंयुक्ता साऽतिश्रेयस्करी स्मृता ॥ ६६
इत्येवमुक्त्वा वणिजं प्रेतराजोऽनुगैः सह ।
स्वनामानि यथान्यायं सम्यगाख्यातवाञ्छुचिः॥६७
प्रेतस्कन्धे समारोप्य त्याजितो मरुमण्डलम् ।
रम्येऽथ शूरसेनाख्ये देशे प्राप्तः स वै वणिक् ॥ ६८
स्वकर्मधर्मयोगेन धनमुच्चावचं बहु ।
उपार्जयित्वा प्रययौ गयाशीर्षमनुत्तमम् ॥ ६९
पिण्डनिर्वपणं तत्र प्रेतानामनुपूर्वशः ।
चकार स्वपितॄणां च दायादानामनन्तरम् ॥ ७०
आत्मनश्च महाबुद्धिर्महाबोध्यं तिलैर्विना ।
पिण्डनिर्वपणं चक्रे तथान्यानपि गोत्रजान् ॥ ७१
एवं प्रदत्तेष्वथ वै पिण्डेषु प्रेतभावतः ।
विमुक्तास्ते द्विज प्रेता ब्रह्मलोकं ततो गताः ॥ ७२
स चापि हि वणिक्पुत्रो निजमालयमाव्रजत् ।

(मेरे समीप) उपस्थित होता है । (५७)

जब तक मैं नहीं खाता तब तक उसका क्षय नहीं होता। मेरे खाने और पीने के उपरान्त सभी कुछ तिरोहित हो जाता है। (५८)

मैंने जो छत्र दान किया था वही इस शमी वृक्ष के रूप में उत्पन्न हुआ है। एक जोड़ी जूता का दान करने से प्रेत मेरा वाहन बना है। (५९)

हे धर्मज्ञ ! अपने प्रेतत्व प्राप्ति का यह समस्त विवरण मैंने तुमसे कहा तथा परम पवित्र और पुण्य को बढ़ाने वाली श्रवणद्वादशी का भी वर्णन किया है। (६०)

प्रेत के ऐसा कहने पर वणिक्-पुत्र ने कहा—हे तात ! मुझे जो करना हो उसकी आज्ञा दें। (६१)

हे नारद ! वणिक्-पुत्र का यह वचन सुनकर प्रेतपति ने अपने स्वार्थ को सिद्ध करने वाला वचन कहा। (६२)

हे महामति ! मेरे हित के लिये तुम्हारे द्वारा किये जाने योग्य कर्म मैं तुम्हें बतलाता हूँ। भली भाँति उसको सम्पादित करने से तुम्हारा और मेरा कल्याण होगा। (६३)

गया तीर्थ में स्नान से पवित्र होकर मेरे नाम से तुम पिण्डदान करो। (६४)

हे सखा ! वहाँ पिण्डदान करने से मैं प्रेतभाव से मुक्त होकर सर्वस्व दान करने वालों के लोक को प्राप्त करूँगा। (६५)

पौष मास के शुक्लपक्ष की बुध एवं श्रवण नक्षत्र से युक्त पुण्य वर्द्धिनी द्वादशी अत्यन्त माङ्गलिक कही गई है। (६६)

वणिक् से ऐसा कहकर प्रेतराज ने अपने अनुगामियों सहित पवित्रतापूर्वक यथोचित रीति से अपने नामों को बताया। (६७)

प्रेत के कन्धे पर आरूढ़ कराकर उसे मरुभूमि से बाहर विसर्जित किया गया। इस प्रकार वह वणिक रमणीक शूरसेन नामक देश में पहुँचा। (६८)

अपने कर्म तथा धर्म के द्वारा उसने प्रचुर मात्रा में उत्कृष्ट एवं हीन धन उपार्जित किया। तदनन्तर वह उत्तम गयाशीर्ष नामक तीर्थ में गया। (६९)

वहाँ क्रमशः प्रेतों के उद्देश्य से पिण्डदान करने के उपरान्त उसने अपने पितरों एवं दायादों को पिण्ड दान किया। (७०)

उस महाबुद्धि ने अपने लिये तिलरहित महाबोध्यसंज्ञक पिण्डदान किया। तदनन्तर अन्य गोत्रजों के निमित्त भी पिण्डदान किया। (७१)

हे द्विज ! इस प्रकार पिण्डदान करने पर वे प्रेत प्रेतभाव से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को चले गये। (७२)

वह वणिक् पुत्र भी अपने घर चला गया और अप-

श्रवणद्वादशीं कृत्वा कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ७३
गन्धर्वलोके सुचिरं भोगान् भुक्त्वा सुदुर्लभान् ।
मानुष्य जन्ममासाद्य स बभौ शाकले विराट् ॥ ७४
स्वधर्मकर्मवृत्तिस्थः श्रवणद्वादशीरतः ।
कालधर्ममवाप्यासौ गुह्यकावासमाश्रयत् ॥ ७५
तत्रोष्य सुचिरं कालं भोगान् भुक्त्वाऽथ कामतः ।
मर्त्यलोकमनुप्राप्य राजन्यतनयोऽभवत् ॥ ७६
तत्रापि क्षत्रवृत्तिस्थो दानभोगरतो वशी ।
गोग्रहेऽरिगणाञ्जित्वा कालधर्ममुपेयिवान् ।
शक्रलोकं स संप्राप्य देवैः सर्वैः सुपूजितः ॥ ७७
पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टः शाकले सोऽभवद् द्विजः ।
ततो विकटरूपोऽसौ सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ ७८
विवाहयद् द्विजसुतां रूपेणानुपमां द्विज ।
सावमेने च भर्तारं सुशीलमपि भामिनी ॥ ७९
विरूपमिति मन्वाना ततस्सोभूत् सुदुःखितः ।
ततो निर्वेदसंयुक्तो गत्वाश्रमपदं महत् ॥ ८०
इरावत्यास्तटे श्रीमान् रूपधारिणमासदत् ।
तमाराध्य जगन्नाथं नक्षत्रपुरुषेण हि ॥ ८१
सुरूपतामवाप्याग्र्यां तस्मिन्नेव च जन्मनि ।
ततः प्रियोऽभूद् भार्याया भोगवांश्चाभवद् वशी ।
श्रवणद्वादशीभक्तः पूर्वाभ्यासादजायत ॥ ८२

एवं पुराऽसौ द्विजपुंगवस्तु
कुरूपरूपो भगवत्प्रसादात् ।
अनङ्गरूपप्रतिमो बभूव
मृतश्च राजा स पुरूरवाऽभूत् ॥ ८३

इति श्रीवामनपुराणे त्रिपञ्चाशोऽध्याय ॥ ५३ ॥

द्वादशी का पालन करते हुए वह भी यथासमय मर गया। (७३)

गन्धर्वलोक में चिरकाल तक अत्यन्त दुर्लभ भोगों का उपभोग करने के उपरान्त मनुष्य जन्म प्राप्त कर वह शाकलपुरी का सम्राट् बना। (७४)

अपने धर्म तथा कर्म में रत रहते हुए वह श्रवणद्वादशी में अनुरक्त रहा। मृत्यु के उपरान्त उसने गुह्यकों के लोक को प्राप्त किया। (७५)

वहाँ बहुत समय रहकर इच्छानुसार अनेक भोग्य पदार्थों का भोग करने के पश्चात् मर्त्यलोक में आकर वह राजपुत्र बना। (७६)

वहाँ भी क्षत्रियों की वृत्ति से निर्वाह करते हुए वह संयमपूर्वक दान और भोग में लगा रहा। एक समय गौवों का अपहरण होने पर उसने शत्रुओं को जीत कर मृत्यु प्राप्त की। तदनन्तर वह इन्द्र लोक में गया एवं सभी देवों से पूजित हुआ। (७७)

पुण्य का क्षय होने से स्वर्गच्युत होकर वह शाकल देश में ब्राह्मण हुआ। उसका रूप अत्यन्त भयङ्कर था, किन्तु वह सर्वशास्त्रपारगत था। (७८)

हे द्विज! उस ने अनुपम सुन्दरी ब्राह्मण कन्या से विवाह किया। वह भामिनी अत्यन्त शीलवान् पति को भी कुरूप समझ कर अनादर करती थी। इससे वह अत्यन्त दुःखित हुआ। तदनन्तर निर्वेदयुक्त होकर वह इरावती के तटपर स्थित महान् आश्रम में पहुँचा एवं नक्षत्र-पुरुष द्वारा तत्रस्थ रूपधारी जगन्नाथ की आराधना की। (७९-८१)

इस प्रकार उसी जन्म में परम सुन्दर रूप प्राप्त कर वह अपनी भार्या का प्रिय एवं ऐश्वर्यसम्पन्न हो गया। पूर्व के अभ्यास से वह संयमी श्रवणद्वादशी का भक्त बना रहा। (८२)

इस प्रकार पहले कुरूप रहने पर भी भगवान् की कृपा से वह द्विजश्रेष्ठ कामदेव के समान रूपवान् हो गया और मृत्यु के बाद राजा पुरूरवा हुआ। (८३)

श्रीवामनपुराण में तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५३॥

५४

नारद उवाच ।

पुरूरवा द्विजश्रेष्ठ यथा देवं श्रियः पतिम् ।
नक्षत्रपुरुषाख्येन आराधयत तद् वद ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।

श्रूयतां कथयिष्यामि नक्षत्रपुरुषव्रतम् ।
नक्षत्राङ्गानि देवस्य यानि यानीह नारद ॥ २
मूलर्क्षं चरणौ विष्णोर्जङ्घे द्वे रोहिणी स्मृते ।
द्वे जानुनी तथाश्विन्यौ संस्थिते रूपधारिणः ॥ ३
आषाढे द्वे द्वयं चोर्वोर्गुह्यस्थं फाल्गुनीद्वयम् ।
कटिस्थाः कृत्तिकाश्चैव वासुदेवस्य संस्थिताः ॥ ४
प्रौष्ठपद्याद्वयं पार्श्वे कुक्षिस्थ्यां रेवती स्थिता ।
उरःसंस्था त्वनुराधा श्रविष्ठा पृष्ठसंस्थिता ॥ ५
विशाखा भुजयोर्हस्तः करद्वयमुदाहृतम् ।
पुनर्वसुरथाङ्गुल्यो नखाः सार्पं तथोच्यते ॥ ६
ग्रीवास्थिता तथा ज्येष्ठा श्रवणं कर्णयोः स्थितम् ।
मुखसंस्थस्तथा पुष्यः स्वातिर्दन्ताः प्रकीर्तिताः ॥ ७
हनू द्वे वारुणश्चोक्तो नासा पैत्र उदाहृतः ।
मृगशीर्षं नयनयो रूपधारिणि तिष्ठति ॥ ८
चित्रा चैव ललाटे तु भरणी तु तथा शिरः ।
शिरोरुहस्था चैवार्द्रा नक्षत्राङ्गमिदं हरेः ॥ ९
विधानं संप्रवक्ष्यामि यथायोगेन नारद ।
संपूजितो हरिः कामान् विदधाति यथेप्सितान् ॥ १०
चैत्रमासे सिताष्टम्यां यदा मूलगतः शशी ।
तदा तु भगवत्पादौ पूजयेत् तु विधानतः ।
नक्षत्रसन्निधौ दद्याद् विप्रेन्द्राय च भोजनम् ॥ ११
जानुनी चाश्विनीयोगे पूजयेदथ भक्तितः ।
दोहदे च हविष्यान्नं पूर्ववद् द्विजभोजनम् ॥ १२

५४

नारद ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! पुरूरवा ने जिस प्रकार लक्ष्मीपति वासुदेव की नक्षत्रपुरुष नामक व्रत के द्वारा आराधना की थी उसका वर्णन करें । (१)

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद ! मैं नक्षत्रपुरुष व्रत एवं देव के सभी नक्षत्ररूपी अङ्गों का वर्णन करता हूँ । आप सुनें । (२)

मूलनक्षत्र भगवान् विष्णु के दोनों चरण, रोहिणी दोनों जङ्घा एवं अश्विनी दोनों जानुओं का रूपधारण कर स्थित है । (३)

पूर्वाषाढ एवं उत्तराषाढ नामक दो नक्षत्र वासुदेव के दोनों ऊरु में, पूर्वाफाल्गुनी एवं उत्तराफाल्गुनी नामक दोनों नक्षत्र गुह्य प्रदेश में एवं कृत्तिका नक्षत्र कटि में स्थित है । (४)

पूर्वभाद्रपद तथा उत्तरभाद्रपद भगवान् के दोनों पार्श्व में, रेवती दोनों कुक्षियों में, अनुराधा हृदय में तथा धनिष्ठा नक्षत्र पृष्ठदेश में स्थित है । (५)

दोनों भुजाओं के स्थान में विशाखा है । हस्त नक्षत्र को भगवान् का दोनों हाथ कहा गया है । पुनर्वसु भगवान् की अँगुलियाँ और आश्लेषा उनके नख है । (६)

ग्रीवा में ज्येष्ठा, दोनों कानों में श्रवण तथा मुख में पुष्य नक्षत्र स्थित है । स्वाति नक्षत्र दाँत को कहा गया है । (७)

शतभिषा नक्षत्र दोनों हनु तथा मघा को नाक कहा गया है । रूपधारी भगवान् के दोनों नेत्रों में मृगशिरा का निवास है । (८)

चित्रा ललाट में, भरणी शिर में तथा आर्द्रा नक्षत्र केश में रहता है । भगवान् विष्णु का यह नक्षत्र-शरीर है । (९)

हे नारद ! अब मैं उस व्रत के विधान का कथन करूँगा । जिनके द्वारा विधिपूर्वक पूजित भगवान् विष्णु अभिलषित फलों को प्रदान करते हैं । (१०)

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में चन्द्रमा के मूल नक्षत्र में होने पर भगवान् के दोनों चरणों की विधिवत् पूजा करनी चाहिये और नक्षत्र के वर्तमान रहने पर श्रेष्ठ ब्राह्मण को भोजन देना चाहिए । (११)

अश्विनी नक्षत्र के योग में भक्तिपूर्वक भगवान् के दोनों घुटनों की पूजा करनी चाहिए एवं हविष्यान्न का दोहद तथा पूर्ववत् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । (१२)

आषाढाभ्यां तथा द्वाभ्यां द्वावूरू पूजयेद् बुधः।
सलिलं शिशिरं तत्र दोहदे च प्रकीर्त्तितम् ॥ १३
फाल्गुनीद्वितये गुह्यं पूजनीयं विचक्षणैः।
दोहदे च पयो गव्य देयं च द्विजभोजनम् ॥ १४
कृत्तिकासु कटिः पूज्या सोपवासो जितेन्द्रियः।
देयश्च दोहदं विष्णोः सुगन्धकुसुमोदकम् ॥ १५
पार्श्वे भाद्रपदायुग्मे पूजयित्वा विधानतः।
गुडं सलेहकं दद्याद् दोहदे देवकीर्त्तितम् ॥ १६
द्वे कुक्षी रेवतीयोगे दोहदे मुद्गमोदकाः।
अनुराधासु जठरं षष्टिकान्नं च दोहदे ॥ १७
श्रविष्ठायां तथा पृष्ठं शालिभक्तं च दोहदे।
भुजयुग्मं विशाखासु दोहदे परमोदनम् ॥ १८
हस्ते हस्तौ तथा पूज्यौ यावकं दोहदे स्मृतम्।
पुनर्वसावङ्गुलीश्च पटोलस्तत्र दोहदे ॥ १९
आश्लेषासु नखान् पूज्य दोहदे तित्तिरामिषम्।
ज्येष्ठायां पूजयेद् ग्रीवा दोहदे तिलमोदकम् ॥ २०
श्रवणे श्रवणौ पूज्यौ दधिभक्त च दोहदे।
पुष्ये मुखं पूजयेत दोहदे घृतपायसम् ॥ २१
स्वातियोगे च दशना दोहदे तिलशष्कुली।
दातव्या केशवप्रीत्यै ब्राह्मणस्य च भोजनम् ॥ २२
हनू शतभिषायोगे पूजयेच्च प्रयत्नतः।
प्रियङ्गुरक्तशाल्यन्नं दोहदं मधुविद्विषः ॥ २३
मघासु नासिका पूज्या मधु दद्याच्च दोहदे।
मृगोत्तमाङ्गे नयने मृगमासं च दोहदे ॥ २४
चित्रायोगे ललाटं च दोहदे चारुभोजनम्।
भरणीषु शिरः पूज्यं चारु भक्तं च दोहदे ॥ २५

पूर्वाषाढ तथा उत्तराषाढा के योग मे ऊरुद्वय की विद्वान् पूजा करें तथा दोहद मे शीतल जल का विधान है। (१३)

विचारवान् पुरुष दोनों फाल्गुनी नक्षत्रों में भगवान् के गुह्य प्रदेश की पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन कराये एवं पय एवं घृत का दोहद दे। (१४)

कृत्तिका नक्षत्र मे उपवास पूर्वक जितेन्द्रिय रहकर भगवान् के कटि देश की पूजा करे एवं सुगन्धित कुसुम युक्त जल का दोहद दान करे। (१५)

दोनों भाद्रपदा-युगल में कथित विधान से भगवान् के दोनों पार्श्व की पूजा करके दोहद में देव द्वारा प्रशसित लेहयुक्त गुड देना चाहिए। (१६)

रेवती नक्षत्र के योग मे भगवान् की दोनों कुक्षियों की पूजा के अनन्तर दोहद म मूंग के लड्डू प्रदान करना चाहिए। अनुराधा नक्षत्र में जठर की पूजा करके दोहद मे साठी का चावल देना चाहिए। (१७)

धनिष्ठा नक्षत्र में पृष्ठ की पूजा करके दोहद मे शालि का भात देना चाहिए। विशाखा नक्षत्र में भगवान् की दोनों भुजाओं की पूजा कर दोहद में उत्तम अन्न देना चाहिये। (१८)

हस्त में भगवान् के दोनों हाथों की पूजा कर दोहद में जौ से बना पक्वान्न देना चाहिए। पुनर्वसु नक्षत्र में अँगुलियों की पूजा कर दोहद में पटोल प्रदान करना चाहिए। (१९)

आश्लेषा नक्षत्र मे नख की पूजा कर दोहद मे तित्तिर का मास प्रदान करे। ज्येष्ठा में ग्रीवा की पूजा कर दोहद मे तिल का लड्डू प्रदान करे। (२०)

श्रवण नक्षत्र मे दोनों कर्णों की पूजा कर दोहद मे दही और भात प्रदान करे। पुष्यनक्षत्र मे मुख की पूजा करे और दोहद मे घृत-युक्त पायस प्रदान करे। (२१)

स्वाति नक्षत्र के योग मे भगवान् के दातों का पूजन कर तिल और शष्कुली (पूड़ी) का दोहद दे एवं केशव को प्रसन्न करने के लिये ब्राह्मण को भोजन कराये। (२२)

शतभिषा नक्षत्र में प्रयत्नपूर्वक भगवान् के ठुड्डी की पूजा करे एवं विष्णु को अतिप्रिय प्रियङ्गु एवं रक्तशालि अन्न का दोहद दे। (२३)

मघा म नासिका की पूजा करनी चाहिए एवं दोहद मे मधु देनी चाहिए। मृगशिरा नक्षत्र में मस्तक में स्थित नेत्रद्वय की पूजा करके दोहद मे मृग का मास देना चाहिए। (२४)

चित्रा नक्षत्र के योग मे ललाट की पूजा करके दोहद मे सुन्दर भोजन देना चाहिए। भरणी नक्षत्र में शिर की पूजा करनी चाहिए और दोहद में सुन्दर भात प्रदान करे। (२५)

संपूजनीया विद्वद्भिरार्द्रायोगे शिरोरुहाः ।
विप्रांश्च भोजयेद् भक्त्या दोहदे च गुडार्द्रकम् ॥ २६
नक्षत्रयोगेष्वेतेषु सम्पूज्य जगतः पतिम् ।
पारिते दक्षिणां दद्यात् स्त्रीपुंसोश्चारुवाससी ॥ २७
छत्रोपानद्युगं श्वेतयुगं सप्तधान्यानि काञ्चनम् ।
घृतपात्रं च मतिमान् ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ २८
प्रतिनक्षत्रयोगेन पूजनीया द्विजातयः ।
नक्षत्रमय एवैष पुरुषः शाश्वतो मतः ॥ २९
नक्षत्रपुरुषाख्यं हि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
पूर्वं कृतं हि भृगुणा सर्वपातकनाशनम् ॥ ३०
अङ्गोपाङ्गानि देवर्षे पूजयित्वा जगद्गुरोः ।
सुरूपाण्यभिजायन्ते प्रत्यङ्गाङ्गानि चैव हि ॥ ३१
सप्तजन्मकृतं पापं कुलसंगागतं च यत् ।
पितृमातृसमुत्थं च तत्सर्वं हन्ति केशवः ॥ ३२
सर्वाणि भद्राण्याप्नोति शरीरारोग्यमुत्तमम् ।
अनन्तां मनसः प्रीतिं रूपं चातीव शोभनम् ॥ ३३
वाङ्माधुर्यं तथा कान्तिं यच्चान्यदभिवाञ्छितम् ।
ददाति नक्षत्रपुमान् पूजितस्तु जनार्दनः ॥ ३४
उपोष्य सम्यगेतेषु क्रमेणर्क्षेषु नारद ।
अरुन्धती महाभागा ख्यातिमग्र्यां जगाम ह ॥ ३५
आदित्यस्तनयार्थाय नक्षत्राङ्गं जनार्दनम् ।
संपूजयित्वा गोविन्दं रेवन्तं पुत्रमाप्तवान् ॥ ३६
रम्भा रूपमवापाग्र्यं वाङ्माधुर्यं च मेनका ।
कान्तिं विधुरवापाग्र्यां राज्यं राजा पुरूरवाः ॥ ३७
एवं विधानतो ब्रह्मन्नक्षत्राङ्गो जनार्दनः ।
पूजितो रूपधारी यैस्तैः प्राप्ता तु सुकामिता ॥ ३८

एतत् तवोक्तं परमं पवित्रं
धन्यं यशस्यं शुभरूपदायि ।
नक्षत्रपुंसः परमं विधानं
शृणुष्व पुण्यामिह तीर्थयात्राम् ॥ ३९

इति श्रीवामनपुराणे चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ॥५४॥

आर्द्रा के योग में विद्वानों को (भगवान् के) केशों की पूजा करनी चाहिए एवं भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराना तथा दोहद में गुड़ एवं अदरख का दान करना चाहिए । (२६)

इन नक्षत्रयोगों में जगत्पति (विष्णु) का पूजन करने के पश्चात् पारण पर स्त्री और पुरुष को दो सुन्दर वस्त्र प्रदान करे । (२७)

बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मण को छत्र, एक जोड़ी श्वेत जूता, सप्तधान्य, स्वर्ण एवं घृतपात्र का दान करे । (२८)

प्रत्येक नक्षत्र के योग में ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए । यही नक्षत्रमय शाश्वत पुरुष हैं । (२९)

नक्षत्र पुरुष नामक व्रत सभी व्रतों में श्रेष्ठ है । प्राचीन समय में भृगु ने इस सर्व पापनाशक व्रत को किया था । (३०)

हे देवर्षि ! भगवान् के अंगों और उपांगों की पूजा करने से (मनुष्य के) सभी अंग प्रत्यंग सुन्दर होते हैं । (३१)

सात जन्मों में (मनुष्य के स्वयं) कृत पाप को, कुल-संगवश प्राप्त पाप को एवं माता पिता के कारण प्राप्त पापों को केशव पूर्णतया नष्ट कर देते हैं । (३२)

यह पूजन करने से समस्त प्रकार के कल्याण प्राप्त होते हैं शरीर उत्तम आरोग्य से सम्पन्न होता है, मन में अनन्त प्रीति की प्राप्ति होती है और रूप भी अत्यन्त शोभन हो जाता है । (३३)

पूजित होने पर नक्षत्रपुरुष जनार्दन मधुर वाणी, कान्ति एवं अन्य अभिवाञ्छित पदार्थ प्रदान करते हैं । (३४)

हे नारद ! इन नक्षत्रों के योग में क्रमश उपवास कर महाभागा अरुन्धती ने उत्तम ख्याति प्राप्त की थी ।(३५)

आदित्य ने पुत्र की कामना से नक्षत्र पुरुष जनार्दन की पूजा कर रेवन्त नामक पुत्र प्राप्त किया था । (३६)

(नक्षत्राङ्ग जनार्दन की पूजा करके) रम्भा ने श्रेष्ठ रूप, मेनका ने वाणी की मधुरता, चन्द्र ने उत्तम कान्ति तथा पुरुरवा ने राज्य प्राप्त किया था । (३७)

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार जिसने नक्षत्राङ्ग रूपधारी जनार्दन की पूजा की उसने अपनी कामनाओं की सुन्दर पूर्ति प्राप्त की । (३८)

मैंने तुम से भगवान् नक्षत्रपुरुष के परम पवित्र धन्य, यशस्कर और सुन्दररूप को देने वाले व्रत के विधान का वर्णन किया । अब पवित्र तीर्थयात्रा का वर्णन सुनो । (३९)

श्रीवामनपुराण में चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥५४॥

५५.

पुलस्त्य उवाच ।
इरावतीमनुप्राप्य पुण्यां तामृषिकन्यकाम् ।
स्नात्वा संपूजयामास चैत्राष्टम्यां जनार्दनम् ॥ १
नक्षत्रपुरुषं चीर्त्वा व्रतं पुण्यप्रदं शुचिः ।
जगाम स कुरुक्षेत्रं प्रह्लादो दानवेश्वरः ॥ २
ऐरावतेन मन्त्रेण चक्रतीर्थं सुदर्शनम् ।
उपामन्त्र्य ततः सस्नौ वेदोक्तविधिना मुने ॥ ३
उपोष्य क्षणदां भक्त्या पूजयित्वा कुरुध्वजम् ।
कृतशौचो जगामाथ द्रष्टुं पुरुषकेसरिम् ॥ ४
स्नात्वा तु देविकायां च नृसिंहं प्रतिपूज्य च ।
तत्रोष्य रजनीमेकां गोकर्णं दानवो ययौ ॥ ५
तस्मिन् स्नात्वा तथा प्राचीं पूज्येशं विश्वकर्मिणम् ।
प्राचीने चापरे दैत्यो द्रष्टुं कामेश्वरं ययौ ॥ ६
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च पूजयित्वा च शंकरम् ।
द्रष्टुं ययौ च प्रह्लादः पुण्डरीकं महाम्भसि ॥ ७
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च संतर्प्य पितृदेवताः ।
पुण्डरीकं च संपूज्य उवास दिवसत्रयम् ॥ ८
विशाखयूपे तदनु दृष्ट्वा देवं तथाजितम् ।
स्नात्वा तथा कृष्णतीर्थे त्रिरात्रं न्यवसच्छुचिः ॥ ९
ततो हंसपदे हंसं दृष्ट्वा सपूज्य चेश्वरम् ।
जगामासौ पयोष्ण्यायामखण्डं द्रष्टुमीश्वरम् ॥ १०
स्नात्वा पयोष्ण्याः सलिले पूजयाखण्डं जगत्पतिम् ।
द्रष्टुं जगाम मतिमान् वितस्तायां कुमारिलम् ॥ ११
तत्र स्नात्वाऽर्च्य देवेशं वालखिल्यैर्मरीचिपैः ।
आराध्यमानं यत्रत्र कृत पापप्रणाशनम् ॥ १२
यत्र सा सुरभिर्देवी स्वसुतां कपिलां शुभाम् ।
देवप्रियार्थमसृजद्धितार्थं जगतस्तथा ॥ १३
तत्र देवह्रदे स्नात्वा शंभुं संपूज्य भक्तितः ।

५५

पुलस्त्य ने कहा—प्रह्लाद ने परम पवित्र ऋषिकन्या उस इरावती में जाकर स्नान किया और चैत्र मास की अष्टमी तिथि में जनार्दन की पूजा की । (१)

वहाँ पवित्रतापूर्वक पुण्यदायक नक्षत्रपुरुष व्रत का अनुष्ठान कर दानवेश्वर प्रह्लाद कुरुक्षेत्र गये । (२)

हे मुने ! उन्होंने ऐरावत मन्त्र से सुदर्शनचक्रतीर्थ का आवाहन करके वेदविहित विधि से उसमें स्नान किया । (३)

वहाँ एक रात्रि निवास कर भक्ति से कुरुध्वज का पूजन किया एवं पवित्र होकर नृसिंह का दर्शन करने गये । (४)

दानव ने वहाँ देविका में स्नान कर नृसिंह की पूजा की एवं एक रात्रि निवास कर (प्रह्लाद) गोकर्ण तीर्थ चले गये । (५)

वहाँ प्राची अहाने में स्नान कर पहले उन्होंने विश्वकर्मा भगवान् की पूजा की । तदुपरान्त दूसरे प्राचीन में कामेश्वर का दर्शन करने के लिए गए । (६)

वहाँ स्नानोपरान्त शङ्कर का दर्शन और पूजन कर प्रह्लाद श्रेष्ठ जल में स्थित पुण्डरीक का दर्शन करने गए । (७)

वहाँ स्नानोपरान्त पितरों का तर्पण कर उन्होंने पुण्डरीक का दर्शन और पूजन किया तथा तीन दिन तक वहाँ निवास किया । (८)

तदनन्तर विशाखयूप में देव अजित का दर्शन कर उन्होंने कृष्णतीर्थ में स्नान किया तथा तीन रात्रि तक वहाँ पवित्रता पूर्वक निवास किया । (९)

तदनन्तर हंसपद में भगवान् हंस का दर्शन एवं पूजन कर वे पयोष्णी में अखण्डेश्वर का दर्शन करने गए । (१०)

पयोष्णी के जल में स्नानकर उन्होंने जगत्पति अखण्ड की पूजा की तदनन्तर बुद्धिमान (प्रह्लाद) वितस्ता में कुमारिल के दर्शनार्थ गये । (११)

वहाँ स्नानोपरान्त (सूर्य की) किरणों का पान करने वाले बालखिल्यों द्वारा आराध्यमान पापनाशक देवेश का पूजन किया । (१२)

वहाँ देवी सुरभि ने देव की प्रीति एवं जगत् के हितार्थ अपनी पुत्री कल्याणी कपिला का त्याग किया था । (१३)

वहाँ देवह्रद में स्नान कर उन्होंने भक्तिपूर्वक शम्भु

विधिवद्दधि च प्राश्य मणिमन्तं ततो ययौ ॥ १४
तत्र तीर्थवरे स्नात्वा प्राजापत्ये महामतिः ।
ददर्श शंभुं ब्रह्माणं देवेशं च प्रजापतिम् ॥ १५
विधानतस्तु तान् देवान् पूजयित्वा तपोधन ।
षड्रात्रं तत्र च स्थित्वा जगाम मधुनन्दिनीम् ॥ १६
मधुमत्सलिले स्नात्वा देवं चक्रधरं हरम् ।
शूलबाहुं च गोविन्दं ददर्श दनुपुंगवः ॥ १७
नारद उवाच ।
किमर्थं भगवान् शम्भुर्दधाराथ सुदर्शनम् ।
शूलं तथा वासुदेवो ममैतद् ब्रूहि पृच्छतः ॥ १८
पुलस्त्य उवाच ।
श्रूयतां कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम् ।
कथयामास यां विष्णुर्भविष्यमनवे पुरा ॥ १९
जलोद्भवो नाम महासुरेन्द्रो
घोरं स तप्त्वा तप उग्रवीर्यः ।
आराधयामास विरञ्चिमारात्
स तस्य तुष्टो वरदो बभूव ॥ २०
देवासुराणामजयो महाहवे
निजैश्च शस्त्रैरमरैरवध्यः ।
ब्रह्मर्षिशापैश्च निरीप्सितार्थो
जले च वह्नौ स्वगुणोपहर्त्ता ॥ २१
एवंप्रभावो दनुपुंगवोऽसौ
देवान् महर्षीन् नृपतीन् समग्रान् ।
आराधमानो विचचार भूम्यां
सर्वाः क्रिया नाशयदुग्रमूर्तिः ॥ २२
ततोऽमरा भूमिभवाः सभूपाः
जग्मुः शरण्यं हरिमीशितारम् ।
तैश्चापि सार्द्धं भगवाञ्जगाम
हिमालयं यत्र हरस्त्रिनेत्रः ॥ २३
संमन्त्र्य देवर्षिहितं च कार्यं
मतिं च कृत्वा निधनाय शत्रोः ।
निजायुधानां च विपर्ययं तौ

का पूजन किया एव विधिपूर्वक दधि खाने के बाद मणिमान् तीर्थ में गए । (१४)

प्रजापति के उस श्रेष्ठतीर्थ में स्नान कर महामति (प्रह्लाद) ने शङ्कर, ब्रह्मा एव देवेश प्रजापति का दर्शन किया । (१५)

हे तपोधन ! विधानपूर्वक उन देवों का पूजन करने के पश्चात् छ रात्रियों तक वहाँ निवास कर (प्रह्लाद) मधुनन्दिनी में गए । (१६)

मधुमत् के जल में स्नान कर दनुपुङ्गव (प्रह्लाद) ने चक्रधर शिव एव शूलधारी गोविन्द का दर्शन किया । (१७)

नारद ने कहा—मुझ प्रश्नकर्त्ता को आप यह बतलायें कि भगवान् शम्भु ने सुदर्शन और वासुदेव ने शूल क्यों धारण किया था ? (१८)

पुलस्त्य ने कहा—सुनो, मैं इस प्राचीन कथा को कहता हूँ । पूर्वकाल में इसे भगवान् विष्णु ने भावी मनु से कहा था । (१९)

जलोद्भव नामक एक महान् असुरपति था । उस शक्तिशाली असुर ने घोर तपस्या कर ब्रह्मा की परिश्रम से आराधना की । ब्रह्मा ने सतुष्ट होकर उसे वर दिया कि युद्ध मे उसे देवता एव असुर नहीं जीत सकेंगे । देवों के अपने शस्त्रों से भी उसका वध नहीं होगा । ब्रह्मर्षि के शापों का भी उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं होगा तथा जल एव अग्नि का भी प्रभाव नहीं होगा । (२०-२१)

इस प्रकार का प्रभावशाली वह दनुश्रेष्ठ सभी देवताओं, महर्षियों और राजाओं को कष्ट पहुँचाता हुआ पृथ्वी पर विचरण करने लगा । उस क्रूर ने समस्त क्रियाओं का विनाश कर दिया । (२२)

तदनन्तर भूमि पर प्रादुर्भूत देवगण राजाओं के सहित शरण्य तथा नियामक विष्णु की शरण में गए । भगवान् भी उन सभी के साथ हिमालय पर गए जहाँ त्रिनेत्र हर अवस्थित थे । (२३)

देवता एव ऋषियों के हितकारी कार्य की मन्त्रणा करने के उपरान्त शत्रु को मारने का निश्चय कर उन दोनों देवाधिपों ने अपने आयुधों का परिवर्तन क्रमशः

देवाधिपौ चक्रतुरुग्रकर्मिणौ ॥ २४
ततस्तथासौ दानवो विष्णुशर्वौ
समायातौ तज्जिघांसू सुरेशौ।
मत्वाऽजेयौ शत्रुभिर्घोररूपौ
भयात्तोये निम्नगायां विवेश ॥ २५
ज्ञात्वा प्रनष्टं त्रिदिवेन्द्रशत्रुं
नदीं विशालां मधुमत्सुपुण्याम्।
द्वयोः सशस्त्रौ तटयोर्हरीशौ
प्रच्छन्नमूर्ती सहसा बभूवतुः ॥ २६
जलोद्भवश्चापि जलं विमुच्य
ज्ञात्वा गतौ शंकरवासुदेवौ।
दिशस्समीक्ष्य भयकातराक्षो
दुर्गं हिमाद्रिं च तदारुरोह ॥ २७
महीध्रशृङ्गोपरि विष्णुशम्भू
चङ्क्रूर्यमाणं स्वरिपुं च दृष्ट्वा।
वेगादुभौ दुद्रुवतुः सशस्त्रौ
विष्णुस्त्रिशूली गिरिशश्च चक्री ॥ २८
ताभ्यां स दृष्टस्त्रिदशोत्तमाभ्यां
चक्रेण शूलेन च भिन्नदेहः।
पपात शैलात् तपनीयवर्णो
यथान्तरिक्षाद् विमला च तारा ॥ २९
एवं त्रिशूलं च दधार विष्णु-
श्चक्रं त्रिनेत्रोऽप्यरिसूदनार्थम्।
यत्राघहन्त्री ह्यभवद् वितस्ता
हराङ्घ्रिपाताच्छिशिराचलात्तु ॥ ३०
तत्प्राप्य तीर्थं त्रिदशाधिपाभ्यां
पूजां च कृत्वा हरिशंकराभ्याम्।
उपोष्य भक्त्या हिमवन्तमागाद्
द्रष्टुं गिरीशं शिवविष्णुगुप्तम् ॥ ३१
तं समभ्यर्च्य विधिवद् दत्त्वा दानं द्विजातिषु।
विस्तृते हिमवत्पादे भृगुतुङ्गं जगाम सः ॥ ३२
यत्रेश्वरो देववरस्य विष्णोः
प्रादाद्रथाङ्गप्रवरायुधं वै।
येन प्रचिच्छेद त्रिधैव शंकरं
जिज्ञासमानोऽस्त्रबलं महात्मा ॥ ३३

इति श्रीवामनपुराणे पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥५५॥

किया। (२४)

तदनन्तर मारने की इच्छा से आ रहे देवाधिप शङ्कर एवं विष्णु को देखकर तथा उन भयङ्कर मूर्त्तिधारियों को शत्रुओं से अजेय जानकर वह दानव भय से नदी के जल में प्रविष्ट हो गया। (२५)

देवशत्रु को पुण्यशालिनी मधुमती विशाला नदी में छिपा हुआ जानकर शस्त्र सहित शङ्कर और विष्णु सहसा नदी के दोनों तटों पर छिप गये। (२६)

शङ्कर एवं वासुदेव को गया हुआ जानकर जलोद्भव जल से बाहर निकला एवं भय से चञ्चल नेत्रों से दिशाओं में देखकर दुर्गम हिमालय पर्वत पर चढ़ गया। (२७)

पर्वत के शृङ्ग पर अपने शत्रु को विचरण करते हुए देखकर त्रिशूलधारी विष्णु एवं चक्रधारी शिव शस्त्र लिये हुए वेगपूर्वक दौड़े। (२८)

उन सुरोत्तमों ने उसे देखकर चक्र और शूल से उसके शरीर का भेदन किया। वह सुवर्ण के समान कान्ति वाला अन्तरिक्ष से गिरने वाले विमल तारे के सदृश पर्वत से गिरा। (२९)

इस प्रकार शत्रु के विनाश के लिए विष्णु ने त्रिशूल तथा शङ्कर ने चक्र धारण किया था। जहाँ शङ्कर का चरण गिरा था उस हिमालय पर्वत से पापविनाशिनी वितस्ता उत्पन्न हुई। (३०)

उस तीर्थ में पहुँचकर प्रह्लाद ने उन विष्णु एवं शङ्कर इन दोनों देवों की पूजा की एवं भक्तिपूर्वक वहाँ निवास कर वे शिव एवं विष्णु से रक्षित गिरिराज हिमालय का दर्शन करने गए। (३१)

प्रह्लाद वहाँ विधि के अनुसार उसकी पूजा करने के उपरान्त ब्राह्मणों को दान देकर हिमालय के विस्तृत चरण में (विद्यमान) भृगुतुङ्ग तीर्थ में गये। (३२)

वहाँ भगवान् शम्भु ने देव श्रेष्ठ विष्णु को श्रेष्ठ अस्त्र दिया था। उस अस्त्र चक्र के बल को जानने की इच्छा से उन महात्मा ने उससे शङ्कर को तीन टुकड़ों में काट दिया था। (३३)

श्रीवामनपुराण में पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥

५६

नारद उवाच ।
भगवँल्लोकनाथाय विष्णवे विषमेक्षणः ।
किमर्थमायुधं चक्रं दत्तवाँल्लोकपूजितम् ॥ १
पुलस्त्य उवाच ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
चक्रप्रदानसंबद्धां शिवमाहात्म्यवर्धिनीम् ॥ २
आसीद् द्विजातिप्रवरो वेदवेदाङ्गपारगः ।
गृहाश्रमी महाभागो वीतमन्युरिति स्मृतः ॥ ३
तस्यात्रेयी महाभागा भार्यासीच्छीलसंमता ।
पतिव्रता पतिप्राणा धर्मशीलेति विश्रुता ॥ ४
तस्यामस्य महर्षेस्तु ऋतुकालाभिगामिनः ।
संबभूव सुतः श्रीमान् उपमन्युरिति स्मृतः ॥ ५
तं माता मुनिशार्दूल शालिपिष्टरसेन वै ।
पोषयामास वदती क्षीरमेतत् सुदुर्गता ॥ ६

सोऽजानानोऽथ क्षीरस्य स्वादुतां पय इत्यथ ।
संभावनामप्यकरोच्छालिपिष्टरसेऽपि हि ॥ ७
स त्वेकदा समं पित्रा कुत्रचिद् द्विजमेश्मनि ।
क्षीरोदनं च बुभुजे सुस्वादु प्राणपुष्टिदम् ॥ ८
स लब्ध्वानुपमं स्वादं क्षीरस्य ऋषिदारकः ।
मात्रा दत्तं द्वितीयेऽह्नि नादत्ते पिष्टवारि तत् ॥ ९
रुरोदाथ ततो बाल्यात् पयोऽर्थी चातको यथा ।
तं माता रुदती प्राह बाष्पगद्गदया गिरा ॥ १०
उमापतौ पशुपतौ शूलधारिणि शंकरे ।
अप्रसन्ने विरूपाक्षे कुतः क्षीरेण भोजनम् ॥ ११
यदीच्छसि पयो भोक्तुं सद्यः पुष्टिकरं सुत ।
तदाराधय देवेशं विरूपाक्षं त्रिशूलिनम् ॥ १२
तस्मिंस्तुष्टे जगद्धाम्नि सर्वकल्याणदायिनि ।

५६

नारद ने कहा—भगवन्! त्रिनेत्र शंकर ने लोकपति विष्णु को लोकपूजित आयुध चक्र क्यों दिया था? (१)

पुलस्त्य ने कहा—आप सावधान होकर चक्रप्रदान से सम्बद्ध और शिव की महिमा को बढ़ाने वाली इस प्राचीन कथा को सुनिये। (२)

वीतमन्यु नामक एक वेद-वेदांग-पारग, गृहस्थ और महाभाग्यशाली श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। (३)

महाभाग्यवती, शीलसम्पन्ना, पतिव्रता एवं पतिप्राणा आत्रेयी धर्मशीला नामक उनकी पत्नी थी। (४)

ऋतुकाल में उसके साथ समागम करने वाले उन महर्षि को उससे उपमन्यु नामक एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। (५)

हे मुनिशार्दूल! अत्यन्त दुर्गतिग्रस्त माता पिसे हुए चावल के रस को दूध कहकर उससे उस (पुत्र) का पालन करती थी। (६)

दुग्ध के स्वाद से अनभिज्ञ होने के कारण वह पिसे चावल के रस में ही दूध की संभावना करता था। (७)

एक दिन पिता के साथ उसने किसी द्विज के गृह में प्राण को पुष्ट करने वाला सुस्वादु क्षीर का भोजन किया। (८)

उस ऋषिपुत्र ने दूध के अनुपम स्वाद को पाकर दूसरे दिन माता के द्वारा दिए गये पिसे चावल के उस रस को नहीं लिया। (९)

तदनन्तर बालस्वभाववश दुग्धार्थी बालक तृषित चातक की भाँति रोने लगा। रोती हुई माता ने उससे आँसू से गद्गद वाणी में कहा। (१०)

उमापति पशुपति शूलधारी विरूपाक्ष शंकर के अप्रसन्न रहते क्षीर का भोजन कहाँ से हो सकता है? (११)

हे पुत्र! यदि तुम तत्क्षण पुष्टिकारक दूध पीना चाहते हो तो त्रिशूलधारी विरूपाक्ष महादेव की आराधना करो। (१२)

उन जगत् के आधार सर्वकल्याणदायक शंकर के संतुष्ट

प्राप्यतेऽमृतपायित्वं किं पुन. क्षीरभोजनम् ॥ १३
तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा वीतमन्युसुतोऽब्रवीत् ।
कोऽयं विरूपाक्ष इति त्वयाराध्यस्तु कीर्तितः ॥ १४
तत. सुत धर्मशीला धर्माढ्यं वाक्यमब्रवीत् ।
योऽयं विरूपाक्ष इति श्रूयतां कथयामि ते ॥ १५
आसीन्महासुरपतिः श्रीदाम इति विश्रुतः ।
तेनाक्रम्य जगत्सर्वं श्रीर्नीता स्ववश पुरा ॥ १६
निःश्रीकास्तु त्रयो लोकाः कृतास्तेन दुरात्मना ।
श्रीवत्सं वासुदेवस्य हर्तुमैच्छन्महानल. ॥ १७
तमस्य दुष्ट भगवानभिप्राय जनार्दनः ।
ज्ञात्वा तस्य वधाकाङ्क्षी महेश्वरमुपागमत् ॥ १८
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्योगमूर्तिधरोऽव्ययः ।
तस्थौ हिमाचलप्रस्थमाश्रित्य श्लक्ष्णभूतलम् ॥ १९
अथाभ्येत्य जगन्नाथ सहस्रशिरसं विभुम् ।
आराधयामास हरिः स्वयमात्मानमात्मना ॥ २०

होने पर अमृतपान प्राप्त हो सकता है, दूध पीने की क्या बात है ? (१३)

माता के उस वचन को सुनकर वीतमन्यु के पुत्र ने कहा—आप जिनकी आराधना करने को कहती हैं वे विरूपाक्ष कौन हैं ? (१४)

तदनन्तर धर्मशीला ने पुत्र से धर्मयुक्त वचन कहा—सुनो, मैं तुम्हें बतलाती हूँ कि वे विरूपाक्ष कौन हैं ? (१५)

प्राचीनकाल में श्रीदाम नाम से प्रसिद्ध एक महान् असुरपति था। उसने समस्त जगत को आक्रान्त कर लक्ष्मी को अपनी वशवर्तिनी बना लिया। (१६)

उस दुरात्मा ने तीनों लोकों को श्रीहीन कर दिया। तदनन्तर उस महाबलशाली असुर ने वासुदेव के श्रीवत्स को छीनने की इच्छा की। (१७)

उसके उस दूषित अभिप्राय को जानकर भगवान् जनार्दन उसके वध की कामना से महेश्वर के समीप गए। (१८)

उस समय योगमूर्तिधारी अविनाशी शम्भु हिमालय के शिखर के चिकने भूतल पर बैठे थे। (१९

तदनन्तर सहस्रशीर्ष विभु जगन्नाथ के समीप जाकर

साग्रं वर्षसहस्र तु पादाङ्गुष्ठेन तस्थिवान् ।
गृणंस्तत्परमं ब्रह्म योगिज्ञेयमलक्षणम् ॥ २१
तत. प्रीत. प्रभुः प्रादाद् विष्णवे परमं वरम् ।
प्रत्यक्षं तैजस श्रीमान् दिव्य चक्र सुदर्शनम् ॥ २२
तद् दत्त्वा देवदेवाय सर्वभूतभयप्रदम् ।
कालचक्रनिभ चक्रं शङ्करो विष्णुमब्रवीत् ॥ २३
वरायुधोऽयं देवेश सर्वायुधनिबर्हणः ।
सुदर्शनो द्वादशारः षण्णाभिर्द्वियुगो जवी ॥ २४
आरासंस्थास्त्वमी चास्य देवा मासाश्च राशयः ।
शिष्टानां रक्षणार्थाय संस्थिता ऋतवश्च षट् ॥ २५
अग्नि. सोमस्तथा मित्रो वरुणोऽथ शचीपति. ।
इन्द्राग्नी चाप्यथो विश्वे प्रजापतय एव च ॥ २६
हनूमांश्चाथ बलवान् देवो धन्वन्तरिस्तथा ।
तपश्चैव तपस्यश्च द्वादशैते प्रतिष्ठिताः ॥
चैत्राद्याः फाल्गुनान्ताश्च मासास्तत्र प्रतिष्ठिताः ॥ २७

विष्णु ने अपने द्वारा स्वय अपनी ही आराधना की। (२०)

उस योगिज्ञेय अलक्षण परम ब्रह्म का जप करते हुए वे एक सहस्र वर्ष पर्यन्त से अधिक समय तक पैर के अँगूठे पर खड़े रहे। (२१)

तदनन्तर श्रीमान् महादेव ने प्रसन्न होकर विष्णु को परमश्रेष्ठ प्रत्यक्ष तेजयुक्त दिव्य सुदर्शनचक्र प्रदान किया। (२२)

देवाधिदेव विष्णु को सभी प्राणियों को भय देने वाला कालचक्रतुल्य वह चक्र देकर शङ्कर ने उनसे कहा— (२३)

हे देवेश ! सुदर्शन नामक द्वादश अरों, छः नाभियों एवं दो युगों से युक्त वेगवान् यह श्रेष्ठ आयुध समस्त आयुधों का नाशक है। (२४)

सज्जनों के रक्षणार्थ इसके अरों में देवता, मास, राशियाँ, छः ऋतुएं, अग्नि, सोम, मित्र, वरुण, शचीपति इन्द्र, अग्नि, विश्वेदेव, प्रजापति बलवान् हनुमान, धन्वन्तरि देव, तप एवं तपस्य य द्वादश तथा चैत्र से लेकर फाल्गुन तक वे द्वादश मास प्रतिष्ठित हैं। (२५-२७)

त्वमेवमाधाय विभो वरायुधं
शत्रुं सुराणां जहि मा विशङ्किथाः।
अमोघ एषोऽमरराजपूजितो
धृतो मया नेत्रगतस्तपोबलात्॥ २८
इत्युक्तः शम्भुना विष्णुः भवं वचनमब्रवीत्।
कथं शम्भो विजानीयाममोघो मोघ एव वा॥ २९
यद्यमोघो विभो चक्रः सर्वत्राप्रतिघस्तव।
जिज्ञासार्थं तवैवेह प्रक्षेप्स्यामि प्रतीच्छ भोः॥ ३०
तद्वाक्यं वासुदेवस्य निशम्याह पिनाकधृक्।
यद्येवं प्रक्षिपस्वेति निर्विशङ्केन चेतसा॥ ३१
तन्महेशानवचनं श्रुत्वा विष्णुः सुदर्शनम्।
मुमोच तेजोजिज्ञासुः शंकरं प्रति वेगवान्॥ ३२
मुरारिकरविभ्रष्टं चक्रमभ्येत्य शूलिनम्।
त्रिधा चकार विश्वेशं यज्ञेशं यज्ञयाजकम्॥ ३३
हरं हरिस्त्रिधाभूतं दृष्ट्वा कृत्तं महाभुजः।
व्रीडोपप्लुतदेहस्तु प्रणिपातपरोऽभवत्॥ ३४
पादप्रणामावनतं वीक्ष्य दामोदरं भवः।
प्राह प्रीतिपरः श्रीमानुत्तिष्ठेति पुनः पुनः॥ ३५
प्राकृतोऽयं महाबाहो विकारश्चक्रनेमिना।
निकृत्तो न स्वभावो मे सोऽच्छेद्योऽदाह्य एव च॥३६
यद्यदेतानि चक्रेण त्रीणि भागानि केशव।
कृतानि तानि पुण्यानि भविष्यन्ति न संशयः॥ ३७
हिरण्याक्षः स्मृतो ह्येकः सुवर्णाक्षस्तथा परः।
तृतीयश्च विरूपाक्षस्त्रयोऽमी पुण्यदा नृणाम्॥ ३८
उत्तिष्ठ गच्छस्व विभो निहन्तुममरार्दनम्।
श्रीदाम्नि निहते विष्णो नन्दयिष्यन्ति देवताः॥ ३९
इत्येवमुक्तो भगवान् हरेण गरुडध्वजः।
गत्वा सुरगिरिप्रस्थं श्रीदामानं ददर्श ह॥ ४०
तं दृष्ट्वा देवदर्पघ्नं दैत्यं देववरो हरिः।
मुमोच चक्रं वेगाढ्यं हतोऽसीति मुहुर्मुहुः॥ ४१

हे विभो! तुम इस श्रेष्ठ आयुध को लेकर निःशङ्क-भाव से देवों के शत्रु का वध करो। मैंने सुरराज से पूजित इस अमोघ आयुध को तप के बल से अपने नेत्र में धारण किया था। (२८)

शम्भु के ऐसा कहने पर विष्णु ने शङ्कर से यह वचन कहा—हे शम्भु! मुझे यह कैसे ज्ञात होगा कि यह अमोघ या मोघ अस्त्र है? (२९)

हे विभो! यदि आपका यह चक्र अमोघ तथा सर्वत्र अप्रतिहतगति है तो इसको जानने के लिये मैं आपके ही ऊपर इसे चलाता हूँ। आप इसे ग्रहण करें। (३०)

वासुदेव के उस वचन को सुनकर पिनाकधारी ने कहा—यदि ऐसा है तो निःशङ्क भाव से मेरे ऊपर चलाओ। (३१)

महेश के उस वचन को सुनकर विष्णु ने सुदर्शन के तेज को जानने की इच्छा से उसे वेगपूर्वक शङ्कर के ऊपर चलाया। (३२)

विष्णु के हाथ से छोड़ा गया वह चक्र शङ्कर के समीप गया और उन विश्वेश, यज्ञेश तथा यज्ञयाजक को तीन भागों में काट कर विभक्त कर दिया। (३३)

शङ्कर को तीन खण्डों में कटा हुआ देखकर महाबाहु हरि लज्जित हो गये। वे (शङ्कर को) प्रणाम करने लगे। (३४)

चरणों में प्रणत दामोदर को देखकर श्रीमान् भव शङ्कर ने प्रीतिपूर्वक बार बार 'उठो उठो' कहते हुये कहा— (३५)

हे महाबाहु! चक्र की नेमि द्वारा मेरा यह प्राकृत विकार ही काटा गया है। इसके द्वारा मेरा स्वभाव नहीं खण्डित हुआ है। वह तो अच्छेद्य एवं अदाह्य है। (३६)

हे केशव! चक्र द्वारा किये गये ये तीनों भाग निस्सन्देह पुण्यदायक होंगे। (३७)

एक भाग हिरण्याक्ष नामधारी, द्वितीय सुवर्णाक्ष नामधारी एवं तृतीय विरूपाक्ष नामक होगा। तीनों भाग मनुष्यों के लिये पुण्यदायक होंगे। (३८)

हे विभो! उठो और देवशत्रु को मारने के लिये जाओ। हे विष्णु! श्रीदामा के मारे जाने पर देवता प्रसन्न होंगे। (३९)

शङ्कर के ऐसा कहने पर भगवान् गरुडध्वज ने गिरि-शिखर पर जाकर श्रीदामा को देखा। (४०)

देवदर्पनाशक उस दैत्य को देखकर देवश्रेष्ठ विष्णु ने बार बार 'तुम मारे गये' यह कहते हुये वेगयुक्त चक्र चलाया। (४१)

ततस्तु तेनाप्रतिपौरुषेण
चक्रेण दैत्यस्य शिरो निकृत्तम् ।
संछिन्नशीर्षो निपपात शैलाद्
वज्राहतं शैलशिरो यथैव ॥ ४२
तस्मिन् हते देवरिपौ मुरारि-
रीशं समाराध्य विरूपनेत्रम् ।
लब्ध्वा च चक्रं प्रवरं महायुधं
जगाम देवो निलयं पयोनिधिम् ॥ ४३

सोऽयं पुत्र विरूपाक्षो देवदेवो महेश्वरः ।
तमाराधय चेत् साधो क्षीरेणेच्छसि भोजनम् ॥ ४४
तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा वीतमन्युसुतो बली ।
तमाराध्य विरूपाक्षं प्राप्तः क्षीरेण भोजनम् ॥ ४५
एवं तवोक्तं परमं पवित्रं
संछेदनं शर्वतनोः पुरा वै ।
तत्तीर्थवर्यं स महासुरो वै
समाससादाथ सुपुण्यहेतोः ॥ ४६

इति श्रीवामनपुराणे षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥५६॥

५७

पुलस्त्य उवाच ।
तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं त्रिलोचनम् ।
पूजयित्वा सुवर्णाक्षं नैमिषं प्रययौ ततः ॥ १
तत्र तीर्थसहस्राणि त्रिंशत्पापहराणि च ।
गोमत्याः काञ्चनाक्ष्याश्च गुरुदायाश्च मध्यतः ॥ २
तेषु स्नात्वार्च्य देवेशं पीतवाससमच्युतम् ।
ऋषीनपि च संपूज्य नैमिषारण्यवासिनः ॥ ३
देवदेवं तथेशानं संपूज्य विधिना ततः ।

तदनन्तर निरुपम पौरुषवाले उस चक्र ने दैत्य का शिर काट डाला। छिन्नमस्तक दैत्य पर्वत के ऊपर से इस प्रकार गिरा जैसे वज्र से आहत शैलशिखर गिरता है। (४२)

उस देवशत्रु के मारे जाने पर मुरारि ने विरूपाक्ष शङ्कर की आराधना की एवं चक्ररूपी श्रेष्ठ महायुध लेकर वे देव क्षीरसागर में स्थित अपने गृह को चले गये। (४३)

हे पुत्र! ये वही देव देव महेश्वर विरूपाक्ष हैं। हे साधो! यदि तुम दूध के साथ भोजन करना चाहते हो तो उनकी आराधना करो। (४४)

माता के उस वचन को सुनकर वीतमन्यु के बलशाली पुत्र ने उन विरूपाक्ष शंकर की आराधना कर दुग्धयुक्त भोजन प्राप्त किया। (४५)

इस प्रकार प्राचीन काल में घटित शङ्कर के शरीर-छेदन विषयक परम पवित्र कथा को मैंने तुमसे कहा। वे महान् असुर प्रह्लाद सुन्दर पुण्य के लिये उस श्रेष्ठ तीर्थ में गए। (४६)

श्रीवामनपुराण में छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

५७

पुलस्त्य ने कहा—प्रह्लाद ने उस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नानकर त्रिलोचन महादेव का दर्शन किया तथा सुवर्णाक्ष की पूजा कर वे नैमिषारण्य चले गये। (१)

वहाँ गोमती, काञ्चनाक्षी और गुरुदा के मध्य में तीस हजार पाप नाशक तीर्थ हैं। (२)

उनमें स्नान कर उन्होंने पीताम्बरधारी देवेश्वर अच्युत की पूजा की। नैमिषारण्यवासी ऋषियों की पूजा करने के उपरान्त देवाधिदेव महेश का विधिपूर्वक अर्चन कर वे

गयायां गोपतिं द्रष्टुं जगाम स महासुरः ॥ ४
तत्र ब्रह्मध्वजे स्नात्वा कृत्वा चास्य प्रदक्षिणाम् ।
पिण्डनिर्वपणं पुण्यं पितॄणां स चकार ह ॥ ५
उदपाने तथा स्नात्वा तत्राभ्यर्च्य पितॄन् वशी ।
गदापाणिं समभ्यर्च्य गोपतिं चापि शंकरम् ॥ ६
इन्द्रतीर्थे तथा स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः ।
महानदीजले स्नात्वा सरयूमाजगाम सः ॥ ७
तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य गोप्रतारे कुशेशयम् ।
उपोष्य रजनीमेकां विरजां नगरीं ययौ ॥ ८
स्नात्वा विरजसे तीर्थे दत्त्वा पिण्डं पितॄंस्तथा ।
दर्शनार्थं ययौ श्रीमान् अजितं पुरुषोत्तमम् ॥ ९
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षमक्षरं परमं शुचिः ।
षड्रात्रमुष्य तत्रैव महेन्द्रं दक्षिणं ययौ ॥ १०
तत्र देववरं शंभुमर्द्धनारीश्वरं हरम् ।
दृष्ट्वाभ्यर्च्य संपूज्य पितॄन् महेन्द्रं चोत्तरं गतः ॥ ११

तत्र देववरं शंभुं गोपालं सोमपायिनम् ।
दृष्ट्वा स्नात्वा सोमतीर्थे सह्याचलमुपागतः ॥ १२
तत्र स्नात्वा महोदक्यां वैकुण्ठं चार्च्य भक्तितः ।
सुरान् पितॄन् समभ्यर्च्य पारियात्रं गिरिं गतः ॥ १३
तत्र स्नात्वा लाङ्गलिन्यां पूजयित्वाऽपराजितम् ।
कशेरुदेशं चाभ्येत्य विश्वरूपं ददर्श सः ॥ १४
यत्र देववरः शंभुर्गणानां तु सुपूजितम् ।
विश्वरूपमथात्मानं दर्शयामास योगवित् ॥ १५
तत्र मङ्कुणिकातोये स्नात्वाभ्यर्च्य महेश्वरम् ।
जगामाद्रिं स सौगन्धिं प्रह्लादो मलयाचलम् ॥ १६
महाह्रदे ततः स्नात्वा पूजयित्वा च शंकरम् ।
ततो जगाम योगात्मा द्रष्टुं विन्ध्ये सदाशिवम् ॥ १७
ततो विपाशासलिले स्नात्वाभ्यर्च्य सदाशिवम् ।
त्रिरात्रं समुपोष्याथ अवन्तीं नगरीं ययौ ॥ १८

महासुर गोपति का दर्शन करने के लिये गयातीर्थ में गये । (३-४)

वहाँ ब्रह्मध्वज में स्नान और उसकी प्रदक्षिणा कर उन्होंने पितरों के निमित्त पवित्र पिण्डदान किया । (५)

वहाँ उदपान में स्नान कर जितेन्द्रिय (प्रह्लाद) ने पितरों, गदापाणि (विष्णु) एवं गोपति शङ्कर की पूजा किया । (६)

इन्द्रतीर्थ में स्नान कर उन्होंने पितरों एवं देवों का तर्पण किया एवं महानदी के जल में स्नान कर वे सरयू के समीप पहुँचे । (७)

उसमें स्नान कर उन्होंने गोप्रतार में कुशेशय की पूजा की एवं वहाँ एक रात्रि निवास कर वे विरजा नगरी में गए । (८)

विरजातीर्थ में स्नान करने के पश्चात् पितरों को पिण्डदान कर वे श्रीमान् पुरुषोत्तम अजित का दर्शन करने गये । (९)

वे पापरहित प्रह्लाद अक्षर पुण्डरीकाक्ष का दर्शन करने के उपरान्त छः रात्रियों तक वहाँ निवास कर दक्षिण दिशा में स्थित महेन्द्र पर्वत पर गए । (१०)

(वे) वहाँ देवश्रेष्ठ अर्धनारीश्वर महादेव का दर्शन एवं पूजन कर पितरों की अर्चना किये एवं उत्तर दिशा की ओर चले गये । (११)

वहाँ देववर शम्भु और सोमपायी गोपाल का दर्शन करने के पश्चात् सोमतीर्थ में स्नान कर वे सह्याचल पर गए । (१२)

वहाँ महोदकी में स्नान करने के उपरान्त भक्तिपूर्वक विष्णु, देवों एवं पितरों का अर्चन कर वे पारियात्र पर्वत पर गए । (१३)

वहाँ लाङ्गलिनी में स्नान करने के उपरान्त उन्होंने अपराजित का पूजन किया एवं कशेरुदेश में जाकर विश्वरूप का दर्शन किया । (१४)

वहाँ योगवित् देववर शम्भु ने गणों से पूजित अपना विश्वरूप प्रदर्शित किया था । (१५)

वहाँ मङ्कुणिका के जल में स्नान करने के उपरान्त महेश्वर का पूजन कर प्रह्लाद सुगन्धिपूर्ण मलयाचल पर गए । (१६)

तदनन्तर महाह्रद में स्नान करने के उपरान्त शंकर की पूजा कर योगात्मा प्रह्लाद सदाशिव का दर्शन करने विन्ध्यपर्वत पर गये । (१७)

तदनन्तर विपाशा के जल में उन्होंने स्नान किया एवं सदाशिव का पूजन किया । तदुपरान्त तीन रात्रियों तक वहाँ निवास कर वे अवन्ती नगरी में गए । (१८)

तत्र शिप्राजले स्नात्वा विष्णुं संपूज्य भक्तितः ।
श्मशानस्थं ददर्शाथ महाकालवपुर्धरम् ॥ १९
तस्मिन् हि सर्वसत्त्वानां तेन रूपेण शंकरः ।
तामसं रूपमास्थाय संहारं कुरुते वशी ॥ २०
तत्रस्थेन सुरेशेन श्वेतकिर्नाम भूपतिः ।
रक्षितस्त्वन्तकं दग्ध्वा सर्वभूतापहारिणम् ॥ २१
तत्रातिहृष्टो वसति नित्यं शर्वः सहोमया ।
वृतः प्रमथकोटीभिर्बहुभिस्त्रिदशार्चितः ॥ २२
तं दृष्ट्वाथ महाकालं कालकालान्तकान्तकम् ।
यमसंयमनं मृत्योर्मृत्युं चित्रविचित्रकम् ॥ २३
श्मशाननिलयं शंभुं भूतनाथं जगत्पतिम् ।
पूजयित्वा शूलधरं जगाम निषधान् प्रति ॥ २४
तत्रामरेश्वरं देवं दृष्ट्वा संपूज्य भक्तितः ।
महोदयं समभ्येत्य हयग्रीवं ददर्श सः ॥ २५
अश्वतीर्थे ततः स्नात्वा दृष्ट्वा च तुरगाननम् ।
श्रीधरं चैव संपूज्य पञ्चालविषयं ययौ ॥ २६

तत्रेश्वरगुणैर्युक्तं पुत्रमर्थपतेरथ ।
पाञ्चालिकं वशी दृष्ट्वा प्रयागं परतो ययौ ॥ २७
स्नात्वा सन्निहिते तीर्थे यामुने लोकविश्रुते ।
दृष्ट्वा वटेश्वरं रुद्रं माधवं योगशायिनम् ॥ २८
द्वावेव भक्तितः पूज्यौ पूजयित्वा महासुरः ।
माघमासमथोपोष्य ततो वाराणसीं गतः ॥ २९
ततोऽस्यां वरणायां च तीर्थेषु च पृथक् पृथक् ।
सर्वपापहराद्येषु स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः ॥ ३०
प्रदक्षिणीकृत्य पुरीं पूज्याविमुक्तकेशवौ ।
लोलं दिवाकरं दृष्ट्वा ततो मधुवनं ययौ ॥ ३१
तत्र स्वयंभुवं देवं ददर्शासुरसत्तमः ।
तमभ्यर्च्य महातेजाः पुष्करारण्यमागमत् ॥ ३२
तेषु त्रिष्वपि तीर्थेषु स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः ।
पुष्कराक्षमयोगन्धि ब्रह्माणं चाप्यपूजयत् ॥ ३३
ततो भूयः सरस्वत्यास्तीर्थे त्रैलोक्यविश्रुते ।
कोटितीर्थे रुद्रकोटिं ददर्श वृषभध्वजम् ॥ ३४

वहाँ शिप्रा के जल में स्नान करने के उपरान्त भक्तिपूर्वक विष्णु का पूजन कर उन्होंने श्मशान में स्थित महाकाल शरीरधारी का दर्शन किया। (१९)

वहाँ उस रूप में स्थित आत्मवशी शङ्कर तामसरूप धारण कर समस्त प्राणियों का संहार करते हैं। (२०)

वहाँ स्थित सुरेश ने सर्वभूतापहारी अन्तक को जला कर श्वेतकि नामक राजा की रक्षा की थी। (२१)

करोड़ों गणों से आवृत एवं देवों से पूजित भगवान शङ्कर उमा के साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वहाँ नित्य निवास करते हैं। (२२)

उन कालकाल, अन्तकान्तक, यमनियामक, मृत्यु के मृत्यु, चित्रविचित्र, श्मशानवासी, भूतनाथ जगत्पति, शूलधारी शङ्कर का दर्शन एवं पूजन कर वे निषध देश की ओर गए। (२३-२४)

वहाँ भक्तिपूर्वक अमरेश्वर देव का दर्शन एवं पूजन करने के उपरान्त उन्होंने महोदय में जाकर हयग्रीव का दर्शन किया। (२५)

तदनन्तर अश्वतीर्थ में स्नान कर अश्वमुख का दर्शन एवं श्रीधर का पूजन कर वे पाञ्चाल देश गए। (२६)

वहाँ अर्थपति कुबेर के पुत्र ईश्वर-गुण सम्पन्न पांचालिक का दर्शन कर जितेन्द्रिय प्रह्लाद प्रयाग चले गये। (२७)

निकटस्थ यमुना के प्रसिद्ध तीर्थ में स्नानोपरान्त वटेश्वर रुद्र एवं योगशायी माधव का दर्शन एवं भक्तिपूर्वक उन दोनों पूज्यों का पूजन कर उन महासुर ने माघमास में वहाँ निवास किया। तदनन्तर वे वाराणसी गए। (२८-२९)

तदनन्तर असी और वरणा के सर्वपापहारीविभिन्न तीर्थों में स्नानोपरान्त पितरों एवं देवों का पूजन कर उन्होंने पुरी की प्रदक्षिणा की। तदनन्तर अविमुक्तेश्वर एवं केशव की पूजा तथा लोलार्क का दर्शन कर वे मधुवन चले गए। (३०-३१)

महातेजस्वी असुरश्रेष्ठ प्रह्लाद वहाँ स्वयम्भू देव का दर्शन एवं पूजन कर पुष्करारण्य में गए। (३२)

उन तीनों तीर्थों में स्नान करने के उपरान्त पितरों एवं देवों का अर्चन कर उन्होंने अयोगन्धि पुष्कराक्ष तथा ब्रह्मा का पूजन किया। (३३)

तदनन्तर सरस्वती के तीर पर स्थित त्रैलोक्यविश्रुत कोटितीर्थ में उन्होंने रुद्रकोटि वृषभध्वज का दर्शन किया। (३४)

नैमिषेया द्विजवरा मागधेयाः ससैन्धवाः ।
धर्मारण्याः पौष्करेया दण्डकारण्यकास्तथा ॥ ३५
चाम्पेया भारुकच्छेया देविकातीरगाश्च ये ।
ते तत्र शंकरं द्रष्टुं समायाता द्विजातयः ॥ ३६
कोटिसंख्यास्तपःसिद्धा हरदर्शनलालसाः ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येवं वादिनो मुने ॥३७
तान् संक्षुब्धान् हरो दृष्ट्वा महर्षीन् दग्धकिल्बिषान् ।
तेषामेवानुकम्पार्थं कोटिमूर्तिरभूद् भवः ॥ ३८
ततस्ते मुनयः प्रीताः सर्व एव महेश्वरम् ।
संपूजयन्तस्तस्थुर्वै तीर्थं कृत्वा पृथक् पृथक् ।
इत्येवं रुद्रकोटीति नाम्ना शंभुरजायत ॥ ३९
तं ददर्श महातेजाः प्रह्लादो भक्तिमान् वशी ।
कोटितीर्थे ततः स्नात्वा तर्पयित्वा वसून् पितॄन् ।
रुद्रकोटिं समभ्यर्च्य जगाम कुरुजाङ्गलम् ॥ ४०
तत्र देववरं स्थाणुं शंकरं पार्वतीप्रियम् ।
सरस्वतीजले मग्नं ददर्श सुरपूजितम् ॥४१

सारस्वतेऽम्भसि स्नात्वा स्थाणुं संपूज्य भक्तितः ।
स्नात्वा दशाश्वमेधे च संपूज्य च सुरान् पितॄन् ॥ ४२
सहस्रलिङ्गं संपूज्य स्नात्वा कन्याह्रदे शुचिः ।
अभिवाद्य गुरुं शुक्रं सोमतीर्थं जगाम ह ॥ ४३
तत्र स्नात्वाऽर्च्य च पितॄन् सोमं संपूज्य भक्तितः ।
क्षीरिकावासमभ्येत्य स्नानं चक्रे महायशाः ॥ ४४
प्रदक्षिणीकृत्य तरुं वरुणं चार्च्य बुद्धिमान् ।
भूयः कुरुध्वजं दृष्ट्वा पद्माख्यां नगरीं गतः ॥ ४५
तत्रार्च्य मित्रावरुणौ भास्करौ लोकपूजितौ ।
कुमारधारामभ्येत्य ददर्श स्वामिनं वशी ॥ ४६
स्नात्वा कपिलधारायां संतर्प्यार्च्य पितॄन् सुरान् ।
दृष्ट्वा स्कन्दं समभ्यर्च्य नर्मदायां जगाम ह ॥ ४७
तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य वासुदेवं श्रियः पतिम् ।
जगाम भूधरं द्रष्टुं वाराहं चक्रधारिणम् ॥ ४८

(प्राचीन समय में) नैमिषारण्य, मगध, सिन्धु प्रदेश, धर्मारण्य, पुष्कर, दण्डकारण्य, चम्पा, भरुकच्छ एवं देविकातीर निवासी श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ शङ्कर का दर्शन करने आये। (३५-३६)

हे मुनि! शिव के दर्शन इच्छा वाले करोड़ों सिद्ध तपस्वी 'मैं पहले दर्शन करूँगा' 'मैं पहले दर्शन करूँगा' इस विवाद करने लगे। (३७)

उन पापरहित महर्षियों को संक्षुब्ध हुआ देखकर शङ्कर ने उन पर अनुकम्पा कर कोटि मूर्त्तियाँ धारण कीं। (३८)

तदनन्तर वे सभी मुनि प्रसन्नतापूर्वक पृथक्-पृथक् तीर्थ बनाकर महेश्वर की पूजा करते हुए रहने लगे। इस प्रकार शम्भु का नाम रुद्रकोटि हुआ। (३९)

महातेजस्वी भक्तिमान् जितेन्द्रिय प्रह्लाद ने उनका दर्शन किया एवं कोटितीर्थ में स्नान कर वसुओं एवं पितरों का अर्चन तथा रुद्रकोटि का पूजन कर वे कुरुजाङ्गल में चले गए। (४०)

उन्होंने वहाँ सरस्वती के जल में मग्न सुरपूजित पार्वतीप्रिय स्थाणु शङ्कर का दर्शन किया। (४१)

सरस्वती के जल में स्नान कर उन्होंने भक्तिपूर्वक स्थाणु की पूजा की तथा दशाश्वमेध में स्नान कर देवों एवं पितरों का पूजन किया। (४२)

कन्याह्रद में स्नान करने के पश्चात् पवित्र होकर उन्होंने सहस्रलिङ्ग का पूजन किया एवं (शुक्रतीर्थ में) गुरु शुक्राचार्य को प्रणाम कर वे सोमतीर्थ चले गये। (४३)

वहाँ स्नान कर भक्तिपूर्वक पितरों एवं सोम का पूजन कर वे महायशस्वी क्षीरिकावास में जाकर वहाँ स्नान किये। (४४)

वहाँ के वृक्ष की प्रदक्षिणा कर तथा वरुण की पूजा करने के बाद बुद्धिमान् प्रह्लाद पुनः कुरुध्वज का दर्शन कर पद्मा नामक नगरी में गये। (४५)

वहाँ लोकपूजित तेजस्वी मित्रावरुण का अर्चन करने के उपरान्त कुमारधारा में जाकर जितेन्द्रिय प्रह्लाद ने स्वामी का दर्शन किया। (४६)

कपिलधारा में स्नान कर पितृतर्पण, देवपूजन एवं स्कन्द का दर्शन एवं अर्चन कर वे नर्मदा के समीप गए। (४७)

उसमें स्नान तथा लक्ष्मीपति वासुदेव की पूजा कर वे चक्रधारी भूधर वाराह देव का दर्शन करने गये। (४८)

स्नात्वा कोकामुखे तीर्थे संपूज्य धरणीधरम् ।
त्रिसौवर्णं महादेवमर्बुदेशं जगाम ह ॥ ४९
तत्र नारीहृदे स्नात्वा पूजयित्वा च शंकरम् ।
कालिञ्जरं समभ्येत्य नीलकण्ठं ददर्श सः ॥ ५०
नीलतीर्थजले स्नात्वा पूजयित्वा ततः शिवम् ।
जगाम सागरानूपे प्रभासे द्रष्टुमीश्वरम् ॥ ५१
स्नात्वा च संगमे नद्याः सरस्वत्यार्णवस्य च ।
सोमेश्वरं लोकपतिं ददर्श स कपर्दिनम् ॥ ५२
यो दक्षशापनिर्दग्धः क्षयी ताराधिपः शशी ।
आप्यायितः शङ्करेण विष्णुना सकपर्दिना ॥ ५३
तावर्च्य देवप्रवरौ प्रजगाम महालयम् ।
तत्र रुद्रं समभ्यर्च्य प्रजगामोत्तरान् कुरून् ॥ ५४
पद्मनाभं स तत्रार्च्य सप्तगोदावरं ययौ ।
तत्र स्नात्वाऽर्च्य विश्वेशं भीमं त्रैलोक्यवन्दितम् ॥ ५५
गत्वा दारुवने श्रीमान् लिङ्गं स ददर्श ह ।
तमर्च्य ब्राह्मणीं गत्वा स्नात्वाऽर्च्य त्रिदशेश्वरम् ॥५६
प्लक्षावतरणं गत्वा श्रीनिवासमपूजयत् ।
ततश्च कुण्डिनं गत्वा संपूज्य प्राणतृप्तिदम् ॥ ५७
शूर्पारके चतुर्बाहुं पूजयित्वा विधानतः ।
मागधारण्यमासाद्य ददर्श वसुधाधिपम् ॥ ५८
तमर्चयित्वा विश्वेशं स जगाम प्रजामुखम् ।
महातीर्थे ततः स्नात्वा वासुदेवं प्रणम्य च ॥ ५९
शोणं संप्राप्य संपूज्य रुक्मवर्माणमीश्वरम् ।
महाकोश्यां महादेवं हंसाख्यं भक्तिमानथ ॥ ६०
पूजयित्वा जगामाथ सैन्धवारण्यमुत्तमम् ।
तत्रेश्वरं सुनेत्राख्यं शङ्खशूलधरं गुरुम् ॥
पूजयित्वा महाबाहुः प्रजगाम त्रिविष्टपम् ॥ ६१
तत्र देवं महेशानं जटाधरमिति श्रुतम् ।
तं दृष्ट्वाऽर्च्य हरिं चासौ तीर्थं कनखलं ययौ ॥ ६२
तत्रार्च्य भद्रकालीशं वीरभद्रं च दानवः ।

कोकामुख तीर्थ में स्नान और धरणीधर की पूजा कर वे अर्बुदेश त्रिसौवर्ण महादेव के पास गये। (४९)

वहाँ नारीह्रद में स्नान तथा शङ्कर की पूजा करने के उपरान्त कालिञ्जर में आकर उन्होंने नीलकण्ठ का दर्शन किया। (५०)

नीलतीर्थ के जल में स्नान करने के उपरान्त शिव का पूजन कर वे समुद्र के किनारे प्रभासतीर्थ में भगवान् का दर्शन करने गए। (५१)

वहाँ सरस्वती नदी और सागर के संगम में स्नान कर उन्होंने लोकपति कपर्दी सोमेश्वर का दर्शन किया। (५२)

कपर्दी शङ्कर एवं विष्णु ने दक्ष के शाप से दग्ध एवं क्षय रोगग्रस्त ताराधिप चन्द्रमा को पूर्ण किया था। (५३)

उन दोनों श्रेष्ठ देवों का अर्चन कर वे महालय गए। वहाँ रुद्र का पूजन कर वे उत्तरकुरु गए। (५४)

वहाँ पद्मनाभ का पूजन कर वे सप्तगोदावर तीर्थ में गए। वहाँ स्नानोपरान्त उन्होंने त्रैलोक्यवन्दित भीम विश्वेश्वर का अर्चन किया। (५५)

दारुवन में जाकर श्रीमान् प्रह्लाद ने लिङ्ग का दर्शन किया। उनकी पूजा करने के उपरान्त ब्राह्मणी (नदी) में जाकर उन्होंने स्नान और त्रिदशेश्वर महादेव की पूजा की। (५६)

तदनन्तर प्लक्षावतरण में जाकर उन्होंने श्रीनिवास की पूजा की। तत्पश्चात् कुण्डिन में जाकर प्राणों को तृप्ति देने वाले देव का अर्चन किया। (५७)

शूर्पारक में चतुर्भुज देव की विधिवत् पूजा कर मागधारण्य में जाकर उन्होंने वसुधाधिप का दर्शन किया। (५८)

उन विश्वेश का पूजन कर वे प्रजामुख में गए। तदनन्तर महातीर्थ में स्नान कर उन्होंने वासुदेव को प्रणाम किया। (५९)

शोणतट पर जाकर उन्होंने स्वर्णकवच धारण करने वाले ईश्वर का अर्चन किया। तदनन्तर भक्तिमान् (प्रह्लाद) ने महाकोशी में हंस नामक महादेव का पूजन किया एवं श्रेष्ठ सैन्धवारण्य में जाकर शङ्ख तथा शूलधारी सुनेत्र नामक पूज्य ईश्वर का अर्चन किया। तदनन्तर वे महाबाहु त्रिविष्टप चले गए। (६०-६१)

वहाँ जटाधर नाम से प्रसिद्ध महेशान देव का दर्शन और विष्णु की पूजा कर वे कनखल तीर्थ गये। (६२)

दानव प्रह्लाद वहाँ भद्रकालीश एवं वीरभद्र तथा धनाधिप

धनाधिपं च मेधाङ्कं ययावथ गिरिव्रजम् ॥ ६३
तत्र देवं पशुपतिं लोकनाथं महेश्वरम् ।
संपूजयित्वा विधिवत्कामरूपं जगाम ह ॥ ६४
शशिप्रभं देववरं त्रिनेत्रं
संपूजयित्वा सह वै मृडान्या ।
जगाम तीर्थप्रवरं महाख्यं
तस्मिन् महादेवमपूजयत् सः ॥ ६५
ततस्त्रिकूटं गिरिमत्रिपुत्रं
जगाम द्रष्टुं स हि चक्रपाणिनम् ।
तमीड्य भक्त्या तु गजेन्द्रमोक्षणं
जजाप जप्यं परमं पवित्रम् ॥ ६६
तत्रोष्य दैत्येश्वरसूनुरादरा-
न्मासत्रयं मूलफलाम्बुभक्षी ।
निवेद्य विप्रप्रवरेषु काञ्चनं
जगाम घोरं स हि दण्डकं वनम् ॥ ६७
तत्र दिव्यं महाशाखं वनस्पतिवपुर्धरम् ।
ददर्श पुण्डरीकाक्षं महाश्वापदवारणम् ॥ ६८
तस्याधस्थात् त्रिरात्रं स महाभागवतोऽसुरः ।
स्थितः स्थण्डिलशायी तु पठन् सारस्वतं स्तवम् ॥ ६९
तस्मात् तीर्थवरं विद्वान् सर्वपापप्रमोचनम् ।
जगाम दानवो द्रष्टुं सर्वपापहरं हरिम् ॥ ७०
तस्याग्रतो जजापासौ स्तवौ पापप्रणाशनौ ।
यौ पुरा भगवान् प्राह क्रोडरूपी जनार्दनः ॥ ७१
तस्मादथागाद् दैत्येन्द्रः शालग्रामं महाफलम् ।
यत्र संनिहितो विष्णुश्चरेषु स्थावरेषु च ॥ ७२
तत्र सर्वगतं विष्णुं मत्वा चक्रे रतिं बली ।
पूजयन् भगवत्पादौ महाभागवतो मुने ॥ ७३
इयं तवोक्ता मुनिसंघजुष्टा
प्रह्लादतीर्थानुगतिः सुपुण्या ।
यत्कीर्तनाच्छ्रवणात् स्पर्शनाच्च
विमुक्तपापा मनुजा भवन्ति ॥ ७४

इति श्रीवामनपुराणे सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥५७॥

मेधाङ्क की अर्चना कर गिरिव्रज गए। (६३)

वहाँ विधिवत् लोकनाथ महेश्वर पशुपति देव का पूजन कर वे कामरूप गए। (६४)

वहाँ चन्द्र की काँति से युक्त देवश्रेष्ठ त्रिनेत्र शङ्कर की मृडानी (पार्वती) के साथ विधिवत् पूजा कर प्रह्लाद श्रेष्ठ महाख्य तीर्थ में गये और वहाँ पर उन्होंने महादेव की पूजा की। (६५)

तदनन्तर अत्रिपुत्र चक्रपाणि विष्णु के दर्शनार्थ वे त्रिकूट पर्वत पर गये और भक्ति पूर्वक उनकी अर्चना कर उन्होंने परम पवित्र जपने योग्य गजेन्द्रमोक्षण स्तव का पाठ किया। (६६)

मूल, फल एवं जल का भक्षण करते हुए दैत्येश्वर पुत्र प्रह्लाद ने वहाँ तीन मास तक आदर पूर्वक निवास किया। तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सुवर्ण दान कर वे घोर दण्डक वन चले गए। (६७)

उन्होंने वहाँ महान् हिंस्र पशुओं के निवारक, महान् शाखाओं से युक्त वनस्पतिशरीरधारी पुण्डरीकाक्ष का दर्शन किया। (६८)

सारस्वत स्तोत्र का पाठ करते हुए महान् विष्णुभक्त असुर प्रह्लाद ने तीन रात्रि पर्यन्त उसके नीचे आस्तरणहीन चबूतरे पर शयन किया। (६९)

विद्वान् दानव (प्रह्लाद) वहाँ से सर्वपापहारी हरि का दर्शन करने सर्वपापनाशक श्रेष्ठ तीर्थ में गए। (७०)

उन्होंने उनके सम्मुख प्राचीनकाल में क्रोडरूपी जनार्दन से कहे गए पापनाशक दो स्तोत्रों का पाठ किया। (७१)

तदनन्तर वहाँ से दैत्येन्द्र (प्रह्लाद) महाफलदायक शालग्राम तीर्थ में गये। विष्णु वहाँ समस्त चर और स्थावर पदार्थों में विराजमान हैं। (७२)

हे मुने ! वहाँ महान् विष्णुभक्त बलवान् प्रह्लाद विष्णु को सर्वगत जानकर भगवान् के चरणों की पूजा करते हुए उनमें अनुरक्त हुए। (७३)

मैंने तुमसे मुनियों के समूहों से सेवित अत्यन्त पवित्र प्रह्लाद की तीर्थयात्रा का वर्णन किया। इनके कीर्तन, श्रवण एवं स्पर्श से मनुष्य पापरहित हो जाते हैं। (७४)

श्रीवामनपुराण में सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥

५८

नारद उवाच ।
यान् जप्यान् भगवद्भक्त्या प्रह्लादो दानवोऽजपत् ।
गजेन्द्रमोक्षणादींस्तु चतुरस्तान् वदस्व मे ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।
शृणुष्व कथयिष्यामि जप्यानेतांस्तपोधन ।
दुःस्वप्ननाशो भवति यैरुक्तैः संश्रुतैः स्मृतैः ॥ २
गजेन्द्रमोक्षणं त्वादौ शृणुष्व तदनन्तरम् ।
सारस्वतं ततः पुण्यौ पापप्रशमनौ स्तवौ ॥ ३
सर्वरत्नमयः श्रीमांस्त्रिकूटो नाम पर्वतः ।
सुतः पर्वतराजस्य सुमेरोर्भास्करद्युतेः ॥ ४
क्षीरोदजलवीच्यग्रैर्धौतामलशिलातलः ।
उत्थितः सागरं भित्त्वा देवर्षिगणसेवितः ॥ ५
अप्सरोभिः परिवृतः श्रीमान् प्रस्रवणाकुलः ।
गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैः सिद्धचारणपन्नगैः ॥ ६
विद्याधरैः सपत्नीकैः संयतैश्च तपस्विभिः ।
वृकद्वीपिगजेन्द्रैश्च वृतगात्रो विराजते ॥ ७
पुन्नागैः कर्णिकारैश्च बिल्वामलकपाटलैः ।
चूतनीपकदम्बैश्च चन्दनागुरुचम्पकैः ॥ ८
शालैस्तालैस्तमालैश्च सरलार्जुनपर्पटैः ।
तथान्यैर्विविधैर्वृक्षैः सर्वतः समलंकृतः ॥ ९
नानाधात्वङ्कितैः शृङ्गैः प्रस्रवद्भिः समन्ततः ।
शोभितो रुचिरप्रख्यैस्त्रिभिर्विस्तीर्णसानुभिः ॥ १०
मृगैः शाखामृगैः सिंहैर्मातङ्गैश्च सदामदैः ।
जीवंजीवकसंघुष्टैश्चकोरशिखिनादितैः ॥ ११
तस्यैकं काञ्चनं शृङ्गं सेवते यं दिवाकरः ।
नानापुष्पसमाकीर्णं नानागन्धाधिवासितम् ॥ १२
द्वितीयं राजतं शृङ्गं सेवते यं निशाकरः ।

५८

नारद ने कहा—दानव प्रह्लाद ने भगवद्भक्तिपूर्वक जिन गजेन्द्रमोक्षणादि जपनीय स्तोत्रों का जप किया था उन चार जपों को आप मुझे बतलायें। (१)

पुलस्त्य ने कहा—हे तपोधन! मैं उन स्तोत्रों का वर्णन करता हूँ, आप सुनें। इनके कहने, सुनने और स्मरण करने से दुःस्वप्नों का नाश होता है। (२)

प्रथम गजेन्द्रमोक्षण स्तोत्र सुनिए। तदनन्तर सारस्वत स्तोत्र एवं तत्पश्चात् दो पवित्र पापप्रशमन स्तवों का वर्णन करूँगा। (३)

सर्वरत्नमय सुन्दर त्रिकूट नामक पर्वत, सूर्य के समान प्रभावाले पर्वतराज सुमेरु का पुत्र है। (४)

क्षीरसागर के जलतरङ्गों से प्रक्षालित निर्मल शिलातलवाला यह पर्वत समुद्र का भेदन कर ऊपर निकला है एवं देवता और ऋषिगण वहाँ सर्वदा निवास करते हैं। (५)

अप्सराओं से परिवृत, झरनों से परिपूर्ण, गन्धर्वों, किन्नरों, यक्षों, सिद्धों, चारणों, पन्नगों, पत्नीयुक्त विद्याधरों, संयमी तपस्वियों और वृक, व्याघ्र एवं गजेन्द्रों से आवृतशरीर वाला वह श्रीमान् पर्वत अत्यन्त सुशोभित होता है। (६-७)

पुन्नाग, कर्णिकार, बिल्व, आमलक, पाटल, आम्र, नीप, कदम्ब, चन्दन, अगुरु, चम्पक, शाल, ताल, तमाल, सरल, अर्जुन, पर्पट एवं अन्य अनेक प्रकार के वृक्षों से यह पर्वत पूर्णतया अलङ्कृत है। (८-९)

वह पर्वत अनेक प्रकार के धातुओं से अङ्कित चोटियों, चारों ओर से बहने वाले झरनों और अत्यन्त रुचिर तथा विस्तृत तीन शिखरों से शोभित है। (१०)

यह पर्वत निरन्तर मृग, वानर, सिंह, मदमत्त हाथी, चातक, चकोर एवं मयूर आदि के शब्दों से निनादित होता रहता है। (११)

अनेक प्रकार के पुष्पों से व्याप्त एवं विविध सुगन्धों से सुवासित उसके एक सुवर्णमय शृङ्ग का सूर्य सेवन करते हैं। (१२)

शुक्लवर्ण मेघ की तरह एवं तुषार-समूह-सदृश उसके

पाण्डुराम्बुदसंकाशं तुषारचयसंनिभम् ॥ १३
वज्रेन्द्रनीलवैदूर्यतेजोभिर्भासयन् दिशः ।
तृतीयं ब्रह्मसदनं प्रकृष्टं शृङ्गमुत्तमम् ॥ १४
न तत्कृतघ्नाः पश्यन्ति न नृशंसा न नास्तिकाः ।
नातप्ततपसो लोके ये च पापकृतो जनाः ॥ १५
तस्य सानुमतः पृष्ठे सरः काञ्चनपङ्कजम् ।
कारण्डवसमाकीर्णं राजहंसोपशोभितम् ॥ १६
कुमुदोत्पलकह्लारैः पुण्डरीकैश्च मण्डितम् ।
कमलैः शतपत्रैश्च काञ्चनैः समलङ्कृतम् ॥ १७
पत्रैर्मरकतप्रख्यैः पुष्पैः काञ्चनसंनिभैः ।
गुल्मैः कीचकवेणूनां समन्तात् परिवेष्टितम् ॥ १८
तस्मिन् सरसि दुष्टात्मा विरूपोऽन्तर्जलेशयः ।
आसीद् ग्राहो गजेन्द्राणां रिपुराकेकरेक्षणः ॥ १९
अथ दन्तोज्ज्वलमुखः कदाचिद् गजयूथपः ।
मदस्रावी जलाकाङ्क्षी पादचारीव पर्वतः ॥ २०
वासयन्मदगन्धेन गिरिमैरावतोपमः ।
गजो ह्यञ्जनसंकाशो मदाचलितलोचनः ॥ २१
तृषितः पातुकामोऽसौ अवतीर्णश्च तज्जलम् ।
सलीलः पङ्कजवने यूथमध्यगतश्चरन् ॥ २२
गृहीतस्तेन रौद्रेण ग्राहेणाव्यक्तमूर्तिना ।
पश्यन्तीनां करेणूनां क्रोशन्तीनां च दारुणम् ॥ २३
ह्रियते पङ्कजवने ग्राहेणातिबलीयसा ।
वारुणैः संयतः पाशैर्निष्प्रयत्नगतिः कृतः ॥ २४
वेष्टयमानः सुघोरैस्तु पाशैर्नागो दृढैस्तथा ।
विस्फूर्य च यथाशक्ति विक्रोशंश्च महारवान् ॥ २५
व्यथितः स निरुत्साहो गृहीतो घोरकर्मणा ।
परमापदमापन्नो मनसाऽचिन्तयद्धरिम् ॥ २६
स तु नागवरः श्रीमान् नारायणपरायणः ।
तमेव शरणं देवं गतः सर्वात्मना तदा ॥ २७
एकात्मा निगृहीतात्मा विशुद्धेनान्तरात्मना ।
जन्मजन्मान्तराभ्यासात् भक्तिमान् गरुडध्वजे ॥ २८
नान्यं देवं महादेवात् पूजयामास केशवात् ।

दूसरे रजतमय शृङ्ग का सेवन चन्द्रमा करते हैं। (१३)

हीरा, इन्द्रनील, वैदूर्य आदि रत्नों की ज्योति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाला उसका अत्यन्त उत्तम तृतीय शृङ्ग ब्रह्मा का निवास स्थान है। (१४)

कृतघ्न, क्रूर, नास्तिक, तपस्या से हीन एवं लोक में पापकर्म करने वाले मनुष्य उसे नहीं देख सकते। (१५)

उस पर्वत के पृष्ठभाग में सुवर्णकमलों से युक्त, कारण्डवों से आकीर्ण, राजहंसों से सुशोभित, कुमुद, उत्पल, कह्लार, पुण्डरीक आदि नानाजातीय कमलों से मण्डित, शतपत्रों वाले सुवर्ण कमलों से अलंकृत तथा मरकत के सदृश पत्रों वाले काञ्चन के समान पुष्पों एवं कीचक नामक बाँस के गुल्मों से चारों ओर से परिवेष्टित एक सरोवर है। (१६-१८)

उस सरोवर में जल में गजेन्द्रों का शत्रु एक कुरूप दुरात्मा अर्धनिमीलित नेत्रोंवाला ग्राह रहता था। (१९)

एक समय दाँतों से उज्ज्वल मुखवाला, मदस्रावयुक्त, जलाभिलाषी, पादचारी पर्वत तुल्य, ऐरावत के सदृश, अञ्जन-तुल्य, मद के कारण चञ्चल नेत्रों वाला, तृषायुक्त एक गजयूथपति अपने मद की सुगन्ध से पर्वत को सुवासित करते हुए जल पीने की इच्छा से उस सरोवर के जल में उतरा एवं कमलों के समूह में अपने झुण्ड के साथ क्रीडा करने लगा। (२०-२२)

प्रच्छन्न शरीर वाले ग्राह ने उसे पकड़ लिया। करुण रूप से आर्तनाद कर रही हथिनियों के देखते ही देखते अतिबलवान् ग्राह उसे पङ्कजवन में खींच ले गया एवं वरुण के पाशों से बाँधकर उसे निष्प्रयत्न तथा गतिहीन कर दिया। (२३-२४)

वह गजराज दृढ और भयङ्कर पाशों से आबद्ध हो जाने के कारण यथाशक्ति फड़फड़ाकर ऊँचे स्वर से चीत्कार करने लगा। (२५)

क्रूर कर्म वाले (उस ग्राह) के द्वारा पकड़े जाने पर वह व्यथित तथा निरुत्साह हो गया। अत्यन्त विपत्ति में पड़कर वह मन से भगवान् हरि का ध्यान करने लगा। (२६)

वह सुन्दर गजराज नारायण का भक्त था। अतः उस समय वह सर्वात्मना उन्हीं देव की शरण में गया। (२७)

वह हाथी जन्म-जन्मान्तर के अभ्यास से एकाग्र और संयत चित्त होकर विशुद्ध अन्तःकरण से गरुडध्वज विष्णु का भक्त हुआ। (२८)

उसने महान् देव केशव के अतिरिक्त अन्य देवता

क्षीरोदकार्णवनिकेतयशोधराय ।
नानाविचित्रमुकुटाङ्गदभूषणाय
सर्वेश्वराय वरदाय नमो वराय ॥ ४१
भक्तिप्रियाय वरदीप्तसुदर्शनाय
फुल्लारविन्दविपुलायतलोचनाय ।
देवेन्द्रविघ्नशमनोद्यतपौरुषाय
योगेश्वराय विरजाय नमो वराय ॥ ४२
ब्रह्मायनाय त्रिदशायनाय
लोकाधिनाथाय भवापनाय ।
नारायणायात्महितायनाय
महावराहाय नमस्करोमि ॥ ४३
कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्यरूपं
नारायणं कारणमादिदेवम् ।
युगान्तशेषं पुरुषं पुराणं
तं देवदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ४४
योगेश्वरं चारुविचित्रमौलि-
मज्ञेयमग्र्यं प्रकृतेः परस्थम् ।
क्षेत्रज्ञमात्मप्रभवं वरेण्यं
तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ४५
अदृश्यमव्यक्तमचिन्त्यमव्ययं
महर्षयो ब्रह्ममयं सनातनम् ।
वदन्ति यं वै पुरुषं सनातनं
तं देवगुह्यं शरणं प्रपद्ये ॥ ४६
यदक्षरं ब्रह्म वदन्ति सर्वगं
निशम्य यं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ।
तमीश्वरं तृप्तमनुत्तमैर्गुणैः
परायणं विष्णुमुपैमि शाश्वतम् ॥ ४७
कार्यं क्रिया कारणमप्रमेयं
हिरण्यबाहुं वरपद्मनाभम् ।
महाबलं वेदनिधिं सुरेशं
व्रजामि विष्णुं शरणं जनार्दनम् ॥ ४८
किरीटकेयूरमहार्हनिष्कै-
र्मण्युत्तमालङ्कृतसर्वगात्रम् ।
पीताम्बरं काञ्चनभक्तिचित्रं
मालाधरं केशवमभ्युपैमि ॥ ४९
भवोद्भवं वेदविदां वरिष्ठं
योगात्मनां सांख्यविदां वरिष्ठम् ।
आदित्यरुद्राश्विवसुप्रभावं

वरदाता एवं वरस्वरूप सर्वेश्वर को नमस्कार है। (४१)

भक्तिप्रिय, श्रेष्ठ दीप्ति से सम्पन्न, सुन्दर दिखलाई देने वाले, विकसित कमल के समान विशाल नेत्रों वाले, देवेन्द्र के विघ्नों का नाश करने के लिये पुरुषार्थ करने को उद्यत, वरस्वरूप, विरज योगेश्वर को नमस्कार है। (४२)

ब्रह्मा एवं अन्य देवों के आश्रय स्वरूप, लोकाधिनाथ, भवहर्त्ता, नारायण, आत्महित के आश्रयस्थान महावराह को नमस्कार करता हूँ। (४३)

मैं कूटस्थ, अव्यक्त, अचिन्त्य रूप वाले, कारणस्वरूप, आदिदेव नारायण, युगान्त में शेष रहने वाले पुराण पुरुष, देवाधिदेव की शरण ग्रहण करता हूँ। (४४)

मैं योगेश्वर, सुन्दर विचित्र वर्णयुक्त मुकुटधारी, अज्ञेय, सर्वश्रेष्ठ, प्रकृति के परे अवस्थित क्षेत्रज्ञ, आत्मप्रभव, वरेण्य उन वासुदेव की शरण ग्रहण करता हूँ। (४५)

ब्रह्मर्षि लोग जिसे अदृश्य, अव्यक्त, अचिन्तनीय, अव्यय, ब्रह्ममय और सनातन पुरुष कहते हैं, उन देव गुह्य की शरण ग्रहण करता हूँ। (४६)

(*ब्रह्मवेत्ता*) जिसे अक्षर एवं सर्वव्यापी ब्रह्म कहते हैं तथा जिसके श्रवण से मृत्यु के मुख से मुक्ति प्राप्त होती है मैं उसी श्रेष्ठ गुणों से युक्त, आत्मतृप्त, शाश्वत आश्रय *स्वरूप ईश्वर की शरण ग्रहण करता हूँ।* (४७)

मैं कार्य, क्रिया और कारणस्वरूप, प्रमाण से अगम्य, हिरण्यबाहु, नाभि में श्रेष्ठ कमल धारण करने वाले, महाबलशाली, वेदनिधि, सुरेश्वर जनार्दन विष्णु की शरण में जाता हूँ। (४८)

मैं किरीट, केयूर एवं अतिमूल्यवान श्रेष्ठ मणियों से *अलङ्कृत समस्त शरीर वाले, पीताम्बरधारी, स्वर्णिम पत्र रचना* से सुशोभित, माला धारण करने वाले केशव की शरण में जाता हूँ। (४९)

मैं संसार के उत्पादक, वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ,

प्रभुं प्रपद्येऽच्युतमात्मवन्तम् ॥ ५०
श्रीवत्साङ्कं महादेवं देवगुह्यमनौपमम् ।
प्रपद्ये सूक्ष्ममचलं वरेण्यमभयप्रदम् ॥ ५१
प्रभवं सर्वभूतानां निर्गुणं परमेश्वरम् ।
प्रपद्ये मुक्तसंगानां यतीनां परमां गतिम् ॥ ५२
भगवन्तं गुणाध्यक्षमक्षरं पुष्करेक्षणम् ।
शरण्यं शरणं भक्त्या प्रपद्ये भक्तवत्सलम् ॥ ५३
त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं सर्वेषां प्रपितामहम् ।
योगात्मानं महात्मानं प्रपद्येऽहं जनार्दनम् ॥ ५४
आदिदेवमजं शंभुं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ।
नारायणमणीयांसं प्रपद्ये ब्राह्मणप्रियम् ॥ ५५
नमो वराय देवाय नमः सर्वसहाय च ।
प्रपद्ये देवदेवेशमणीयांसमणोः सदा ॥ ५६
एकाय लोकतत्त्वाय परतः परमात्मने ।
नमः सहस्रशिरसे अनन्ताय महात्मने ॥ ५७
त्वामेव परमं देवमृषयो वेदपारगाः ।
कीर्तयन्ति च यं सर्वे ब्रह्मादीनां परायणम् ॥ ५८
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयप्रद ।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम् ॥ ५९

पुलस्त्य उवाच ।

भक्तिं तस्यानुसंचिन्त्य नागस्यामोघसंभवः ।
प्रीतिमानभवद् विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ६०
सान्निध्यं कल्पयामास तस्मिन् सरसि केशवः ।
गरुडस्थो जगत्स्वामी लोकाधारस्तपोधनः ॥ ६१
ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं तं तं च ग्राहं जलाशयात् ।
उज्जहाराप्रमेयात्मा तरसा मधुसूदनः ॥ ६२
स्थलस्थं दारयामास ग्राहं चक्रेण माधवः ।
मोक्षयामास नागेन्द्रं पाशेभ्यः शरणागतम् ॥ ६३
स हि देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः ।
ग्राहत्वमगमत् कृष्णाद् वधं प्राप्य दिवं गतः ॥ ६४

योगात्माओं तथा सांख्यज्ञों में श्रेष्ठ, आदित्य, रुद्र, अश्विनीकुमार एवं वसुओं के प्रभाव से युक्त, अच्युत, आत्मस्वरूप प्रभु की शरण ग्रहण करता हूँ। (५०)

मैं श्रीवत्स चिह्न धारण करने वाले, महान् देव, देवताओं में गुह्य, उपमा रहित, सूक्ष्म, अचल तथा अभय देनेवाले वरेण्य देव की शरण ग्रहण करता हूँ। (५१)

मैं समस्त प्राणियों के उत्पादक, निर्गुण, निःसङ्ग यतियों की परम गति स्वरूप परमेश्वर की शरण ग्रहण करता हूँ। (५२)

मैं गुणाध्यक्ष, अक्षर, पद्मलोचन, आश्रयणीय, शरण देने वाले भक्तवत्सल भगवान् की भक्तिपूर्वक शरण ग्रहण करता हूँ। (५३)

मैं त्रिविक्रम, त्रिलोकेश्वर, सभी के प्रपितामह, योगात्मा, महात्मा जनार्दन की शरण ग्रहण करता हूँ। (५४)

मैं आदिदेव, अजन्मा, शम्भु, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप, सनातन, परम सूक्ष्म, ब्राह्मणप्रिय नारायण की शरण ग्रहण करता हूँ। (५५)

श्रेष्ठ देव को नमस्कार है। सर्वशक्तिमान् को नमस्कार है। मैं सदा सूक्ष्म से सूक्ष्म देवदेवेश का शरणागत हूँ। (५६)

लोकतत्त्वस्वरूप, एकमात्र, परात्पर परमात्मा, सहस्रशीर्ष महात्मा अनन्त को नमस्कार है। (५७)

वेदपारगामी ऋषिगण आपको ही परम देव एवं ब्रह्मादि देवों का आश्रयस्थान कहते हैं। (५८)

हे पुण्डरीकाक्ष! हे भक्तों के अभयदाता! आपको नमस्कार है। हे सुब्रह्मण्य! आपको नमस्कार है। आप मुझ शरणागत की रक्षा करें। (५९)

पुलस्त्य ने कहा—शङ्ख-चक्र एवं गदा धारण करने वाले अमोघसम्भव विष्णु उस गजेन्द्र की भक्ति का विचार कर प्रसन्न हो गए। (६०)

तदनन्तर लोकाधार जगत्स्वामी तपोधन केशव गरुड़ पर सवार होकर उस सरोवर के समीप गये। (६१)

अप्रमेयात्मा मधुसूदन ने ग्राह से ग्रस्त उस गजेन्द्र तथा उस ग्राह को वेगपूर्वक जलाशय से बाहर निकाला। (६२)

माधव ने पृथ्वी पर स्थित ग्राह को चक्र द्वारा विदीर्ण कर शरणागत गजेन्द्र को पाशों से मुक्त किया। (६३)

देवल के शाप से ग्राह बना हुआ गन्धर्वश्रेष्ठ हूहू कृष्ण से मृत्यु पाकर स्वर्ग चला गया। (६४)

गजोऽपि विष्णुना स्पृष्टो जातो दिव्यवपुः पुमान् ।
आपद्विमुक्तौ युगपद् गजगन्धर्वसत्तमौ ॥ ६५
प्रीतिमान् पुण्डरीकाक्षः शरणागतवत्सलः ।
अभवत् स च देवेशस्ताभ्यां चैव प्रपूजितः ॥ ६६
इदं च भगवान् योगी गजेन्द्रं शरणागतम् ।
प्रोवाच मुनिशार्दूल मधुरं मधुसूदनः ॥ ६७

श्रीभगवानुवाच ।

यो मां त्वाञ्च सरश्चैव ग्राहस्य च विदारणम् ।
गुल्मकीचकरेणूनां रूपं मेरोः सुतस्य च ॥ ६८
अश्वत्थं भास्करं गङ्गां नैमिषारण्यमेव च ।
संस्मरिष्यन्ति मनुजाः प्रयताः स्थिरबुद्धयः ॥ ६९
कीर्तयिष्यन्ति भक्त्या च श्रोष्यन्ति च शुचिव्रताः ।
दुःस्वप्नो नश्यते तेषां सुस्वप्नश्च भविष्यति ॥ ७०
मात्स्यं कौर्मञ्च वाराहं वामनं तार्क्ष्यमेव च ।
नारसिंहं च नागेन्द्रं सृष्टिप्रलयकारकम् ॥ ७१
एतानि प्रातरुत्थाय संस्मरिष्यन्ति ये नराः ।
सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते पुण्यं लोकमवाप्नुयुः ॥ ७२

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशो गजेन्द्रं गरुडध्वजः ।
स्पर्शयामास हस्तेन गजं गन्धर्वमेव च ॥ ७३
ततो दिव्यवपुर्भूत्वा गजेन्द्रो मधुसूदनम् ।
जगाम शरणं विप्र नारायणपरायणः ॥ ७४
ततो नारायणः श्रीमान् मोक्षयित्वा गजोत्तमम् ।
पापबन्धाच्च शापाच्च ग्राहं चाद्भुतकर्मकृत् ॥ ७५
ऋषिभिः स्तूयमानश्च देवगुह्यपरायणैः ।
गतः स भगवान् विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ॥ ७६
गजेन्द्रमोक्षणं दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ववन्दिरे महात्मानं प्रभुं नारायणं हरिम् ॥ ७७
महर्षयश्चारणाश्च दृष्ट्वा गजविमोक्षणम् ।
विस्मयोत्फुल्लनयनाः संस्तुवन्ति जनार्दनम् ॥ ७८
प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा चक्रपाणिविचेष्टितम् ।
गजेन्द्रमोक्षणं दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७९
य इदं शृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः ।
प्राप्नुयात् परमां सिद्धिं दुःस्वप्नस्तस्य नश्यति ॥ ८०

विष्णु का स्पर्श होने से वह हाथी भी दिव्यशरीरधारी पुरुष हो गया। इस प्रकार हाथी एवं गन्धर्वश्रेष्ठ दोनों एक ही साथ आपत्ति से मुक्त हो गए। (६५)

तदनन्तर उन दोनों से पूजित होकर शरणागतवत्सल पुण्डरीकाक्ष देवेश प्रसन्न हुए। (६६)

हे मुनिशार्दूल! योगी भगवान् मधुसूदन ने शरणागत गजेन्द्र से यह मधुर वचन कहा- (६७)

श्रीभगवान् ने कहा—जो स्थिरबुद्धि से शुचिव्रत मनुष्य प्रयत्नपूर्वक मेरा तुम्हारा तथा सरोवर, ग्राह के विदारण, गुल्म, कीचक, रेणु एवं मेरु पुत्र के रूप, अश्वत्थ, भास्कर, गङ्गा तथा नैमिषारण्य का स्मरण एवं भक्तिपूर्वक कीर्तन तथा श्रवण करेंगे उनके दुःस्वप्न का विनाश एवं सुस्वप्न की सृष्टि होगी। (६८-७०)

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, वामनावतार, गरुड, नरसिंहावतार, गजेन्द्र और सृष्टिप्रलयकारक (भगवान्) का स्मरण करेंगे वे समस्त पापों से मुक्त होकर पुण्य लोक को प्राप्त करेंगे। (७१-७२)

पुलस्त्य ने कहा—गजेन्द्र से ऐसा कहकर गरुड़ध्वज हृषीकेश ने हाथ से गजेन्द्र और गन्धर्व दोनों का स्पर्श किया। (७३)

हे विप्र! तदनन्तर नारायणपरायण गजेन्द्र दिव्य शरीर धारण कर मधुसूदन की शरण में गया। (७४)

तदुपरान्त श्रीमान् अद्भुतकर्मा नारायण ने गजोत्तम एवं ग्राह को पापबन्ध एवं शाप से मुक्त किया। (७५)

भगवद्भक्त ऋषियों द्वारा स्तुत होते हुए वे अविज्ञेय गति वाले प्रभु भगवान् विष्णु चले गये। (७६)

गजेन्द्र के मोक्ष को देखकर इन्द्रादि देवों ने महात्मा प्रभु नारायण हरि की वन्दना की। (७७)

गज-विमोक्षण को देखकर विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाले महर्षियों एवं चारणों ने जनार्दन की स्तुति की। (७८)

गजेन्द्रमोक्षण रूपी चक्रपाणि के कर्म को देखकर प्रजापति ब्रह्मा ने यह वचन कहा— (७९)

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन इसे सुनेगा, वह परमसिद्धि प्राप्त करेगा और उसका दुःस्वप्न विनष्ट हो जायेगा। (८०)

गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
कथितेन स्मृतेनाथ श्रुतेन च तपोधन ॥
गजेन्द्रमोक्षणेनेह सद्यः पापात् प्रमुच्यते ॥ ८१
एतत्पवित्रं परमं सुपुण्यं
संकीर्तनीयं चरितं मुरारेः ।
यस्मिन् किलोक्ते बहुपापबन्धनात्
लभ्येत मोक्षो द्विरदेन यद्वत् ॥ ८२
अजं वरेण्यं वरपद्मनाभं
नारायणं ब्रह्मनिधिं सुरेशम् ।
तं देवगुह्यं पुरुषं पुराणं
वन्दाम्यहं लोकपतिं वरेण्यम् ॥ ८३
पुलस्त्य उवाच ।
एतत्तवोक्तं प्रवरं स्तवानां
स्तवं मुरारेर्वरनागकीर्तनम् ।
यं कीर्त्य संश्रुत्य तथा विचिन्त्य
पापापनोदं पुरुषो लभेत ॥ ८४

इति श्रीवामनपुराणे अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥५८॥

५९

पुलस्त्य उवाच ।
कश्चिदासीद् द्विजद्रोग्धा पिशुनः क्षत्रियाधमः ।
परपीडारुचिः क्षुद्रः स्वभावादपि निर्घृणः ॥ १
पर्यामिताः सदा तेन पितृदेवद्विजातयः ।
स त्वायुषि परिक्षीणे जज्ञे घोरो निशाचरः ॥ २
तेनैव कर्मदोषेण स्वेन पापकृतां वरः ।
क्रूरैश्चक्रे ततो वृत्तिं राक्षसत्वाद् विशेषतः ॥ ३
तस्य पापरतस्यैवं जग्मुर्वर्षशतानि तु ।
तेनैव कर्मदोषेण नान्यां वृत्तिमरोचयत् ॥ ४
यं यं पश्यति सत्त्वं स तं तमादाय राक्षसः ।

हे तपोधन! गजेन्द्र-मोक्ष पवित्र और सभी प्रकार के पापों का विनाशक है। इस गजेन्द्रमोक्ष के कहने, स्मरण करने और सुनने से मनुष्य तत्काल पाप से मुक्त हो जाता है। (८१)

मुरारि विष्णु का यह पवित्र चरित्र परम पुण्यदायक तथा कीर्तन करने योग्य है। इसे कहने से मनुष्य गजेन्द्र के सदृश अनेक पापों के बन्धन से मुक्त हो जाता है। (८२)

मैं अज, वरेण्य, श्रेष्ठ, पद्मनाभ, नारायण, ब्रह्मनिधि, सुरेश, देवगुह्य पुराणपुरुष उन लोकपति की वन्दना करता हूँ। (८३)

पुलस्त्य ने कहा—स्तुतियों में श्रेष्ठ गजेन्द्र द्वारा कीर्तित मुरारि के इस श्रेष्ठ स्तोत्र को मैंने तुमसे कहा। इसके कीर्तन, श्रवण तथा चिन्तन करने से मनुष्य पापों से मुक्ति पाता है। (८४)

श्री वामनपुराण में अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥

५९

पुलस्त्य ने कहा—ब्राह्मण विद्वेषी, चुगलखोर, दूसरों को पीड़ा देने वाला, नीच, स्वभाव से भी निष्ठुर एक क्षत्रियाधम था। (१)

उसने सदा पितरों, देवों एवं द्विजातियों का निरादर किया। आयु समाप्त होने पर वह घोर निशाचर हुआ। (२)

अपने उसी कर्म के दोष एवं विशेषकर राक्षस होने से वह जघन्य पापी क्रूर कर्मों द्वारा जीवन निर्वाह करने लगा। (३)

पापकर्म करते हुये उसके सौ वर्ष व्यतीत हो गये। उसी कर्म में दोष से अन्य वृत्ति में इसकी रुचि नहीं होती थी। (४)

चखाद रौद्रकर्मासौ बाहुगोचरमागतम् ॥ ५
एव तस्यातिदुष्टस्य कुर्वतः प्राणिनां वधम् ।
जगाम च महान् कालः परिणामं तथा वयः ॥ ६
स कदाचित् तपस्यन्तं ददर्श सरित्तटे ।
महाभागमूर्ध्वभुजं यथावत्संयतेन्द्रियम् ॥ ७
अनया रक्षया ब्रह्मन् कृतरक्षं तपोनिधिम् ।
योगाचार्यं शुचिं दक्षं वासुदेवपरायणम् ॥ ८
विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री विष्णुर्दक्षिणतो गदी ।
प्रतीच्यां शार्ङ्गधृग्विष्णुर्विष्णुः खड्गी ममोत्तरे ॥ ९
हृषीकेशो विकोणेषु तच्छिद्रेषु जनार्दनः ।
क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नारसिंहोऽम्बरे मम ॥ १०
क्षुरान्तममल चक्रं भ्रमत्येतत् सुदर्शनम् ।
अस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्तुं प्रेतनिशाचरान् ॥ ११
गदा चेयं सहस्रार्चिरुद्वमन् पावको यथा ।
रक्षोभूतपिशाचानां डाकिनीनां च शातनी ॥ १२
शार्ङ्गं विस्फूर्जितं चैव वासुदेवस्य मद्रिपून् ।
तिर्यङ्मनुष्यकूष्माण्डप्रेतादीन् हन्त्वशेषतः ॥ १३
खड्गधाराज्वलज्ज्योत्स्नानिर्धूता ये ममाहिताः ।
ते यान्तु सौम्यतां सद्यो गरुडेनेव पन्नगाः ॥ १४
ये कूष्माण्डास्तथा यक्षा दैत्या ये च निशाचराः ।
प्रेता विनायकाः क्रूरा मनुष्या जृम्भकाः खगाः ॥१५
सिंहादयो ये पशवो दन्दशूकाश्च पन्नगाः ।
सर्वे भवन्तु मे सौम्या विष्णुचक्ररवाहताः ॥ १६
चित्तवृत्तिहरा ये च ये जनाः स्मृतिहारकाः ।
बलौजसां च हर्तारश्छायाविध्वंसकाश्च ये ॥ १७
ये चोपभोगहर्तारो ये च लक्षणनाशकाः ।
कूष्माण्डास्ते प्रणश्यन्तु विष्णुचक्ररवाहताः ॥ १८
बुद्धिस्वास्थ्यं मनःस्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियकं तथा ।

यह रौद्रकर्मा राक्षस जिस प्राणी को देखता उसे अपनी भुजाओं से पकड़ कर खा जाता था। (५)

इस प्रकार प्राणियों का वध करते हुए उस अतिदुष्ट का अधिक समय व्यतीत हो गया एवं उसकी अवस्था ढलने लगी। (६)

किसी समय उसने नदी तट पर एक ऊर्ध्वभुज, विधिवत् इन्द्रियों पर सयम किये हुए महाभाग्यवान् ऋषि को तपस्या करते देखा। (७)

हे ब्रह्मन्! नीचे लिखे रक्षामन्त्रों द्वारा उस तपोनिधि, पवित्र, निपुण, वासुदेव परायण योगाचार्य ने अपनी रक्षा कर ली थी— (८)

पूर्वदिशा मे चक्रधारी विष्णु, दक्षिण दिशा में गदाधर विष्णु, पश्चिम दिशा मे शार्ङ्ग धनुर्धारी विष्णु एव उत्तर दिशा मे खड्गधारी विष्णु मेरी रक्षा करें। (९)

दिक्कोणों मे हृषीकेश, उन (दिशाओं एवं विदिशाओं) के छिद्रों में जनार्दन, भूमि में वराह रूपधारी हरि एवं आकाश मे नृसिंह मेरी रक्षा करें। (१०)

प्रेतों एव निशाचरों के वध के लिए यह अति तीक्ष्ण निर्मल सुदर्शन चक्र घूम रहा है। इसकी किरणमाला दुष्प्रेक्ष्य है। (११)

ज्वाला उगलने वाले अग्नि की भाँति सहस्रों किरणों से युक्त यह गदा राक्षसों, भूतों, पिशाचों और डाकिनियों का विनाश करे। (१२)

वासुदेव का चमकने वाला शार्ङ्ग धनुष मेरे शत्रुभूत हिंस्र पशु पक्षियों, मनुष्यों, दानवों तथा प्रेतों का पूर्णतया विनाश करे। (१३)

जैसे गरुड को देखकर सर्प शान्त हो जाते हैं उसी प्रकार (विष्णु) के खड्ग की धार के तीव्र तेज से मेरे अहितकारी हतप्रभ होकर तत्काल सौम्य बन जाँय। (१४)

समस्त कूष्माण्ड, यक्ष, दैत्य, निशाचर, प्रेत, विनायक, क्रूर मनुष्य, जृम्भक, पक्षी, सिंहादि पशु एव तीव्र दंश वाले सर्प ये सभी विष्णु के चक्र के वेग से आहत होकर मेरे प्रति सौम्य हो जाँय। (१५-१६)

सभी चित्त की वृत्तियों का हरण करने वाले, स्मृतिहारी, बल एवं ओज के अपहारक, कान्ति व विध्वसक, सुखों के विनाशक एव लक्षणों के विनाशक सभी कूष्माण्डादि (भूत प्रेत) विष्णु के चक्र के वेग से आहत होकर नष्ट हो जाँय। (१७-१८)

देवदेव वासुदेव के कीर्तन से मुझे बुद्धि, मन तथा

ममास्तु देवदेवस्य वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥ १९

पृष्ठे पुरस्तादथ दक्षिणोत्तरे
विकोणकश्चास्तु जनार्दनो हरिः ।
तमीड्यमीशानमनन्तमच्युतं
जनार्दनं प्रणिपतितो न सीदति ॥ २०

यथा परं ब्रह्म हरिस्तथा परः
जगत्स्वरूपश्च स एव केशवः ।
ऋतेन तेनाच्युतनामकीर्तना-
त्प्रणाशमेतु त्रिविधं ममाशुभम् ॥ २१

इत्यात्मानस्य रक्षार्थं कृत्वा वै विष्णुपञ्जरम् ।
संस्थितोऽसावपि बली राक्षसः समुपाद्रवत् ॥ २२
ततो द्विजनियुक्तायां रक्षायां रजनीचरः ।
निर्धूतवेगः सहसा तस्थौ मासचतुष्टयम् ॥ २३
यावद् द्विजस्य देवर्षे समाप्तिं समाधितः ।
जाते जप्यावसानेऽसौ तं ददर्श निशाचरम् ॥ २४
दीनं हतबलोत्साहं कान्दिशीकं हतौजसम् ।
तं दृष्ट्वा कृपयाविष्टः समाश्वास्य निशाचरम् ॥ २५
पप्रच्छागमने हेतुं स चाचष्ट यथातथम् ।
स्वभावमात्मनो दृष्ट्वा रक्षया तेजसः स्थितिम् ॥ २६
कथयित्वा च तद्रक्षः कारणं विविधं ततः ।
प्रसीदेत्यब्रवीद् विप्रं निर्विण्णः स्वेन कर्मणा ॥ २७
बहूनि पापानि मया कृतानि बहवो हताः ।
कृताः स्त्रियो मया बह्व्यो विधवाः पुत्रवर्जिताः ।
अनागसां च सत्त्वानामनन्तानां क्षयः कृतः ॥ २८
तस्मात् पापादहं मोक्षमिच्छामि त्वत्प्रसादतः ।
पापप्रशमनायालं कुरु मे धर्मदेशनम् ॥ २९
पापस्यास्य क्षयकरमुपदेशं प्रयच्छ मे ।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राक्षसस्य द्विजोत्तमः ॥ ३०
वचनं प्राह धर्मात्मा हेतुमच्च सुभाषितम् ।
कथं क्रूरस्वभावस्य सतस्तव निशाचर ।
सहसैव समायाता जिज्ञासा धर्मवर्त्मनि ॥ ३१

राक्षस उवाच ।

त्वां वै समागतोऽस्म्यद्य क्षिप्तोऽहं रक्षया बलात् ।
तव संसर्गतो ब्रह्मन् जातो निर्वेद उत्तमः ॥ ३२

इन्द्रियों की स्वस्थता प्राप्त हो । (१९)

जनार्दन हरि मेरे पीछे, आगे, दायें, बायें एवं दिकोणों में स्थित रहें । स्तुति करने योग्य ईशान अनन्त अच्युत उन जनार्दन को प्रणिपात करने वाला मनुष्य दुःखी नहीं होता । (२०)

जैसे ब्रह्म श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार हरि भी श्रेष्ठ हैं । वे केशव ही जगत्स्वरूप हैं । अच्युत के नाम के कीर्तन के इस सत्य द्वारा मेरे त्रिविध अशुभ नष्ट हो जाँय । (२१)

इस प्रकार अपनी रक्षा हेतु विष्णुपञ्जर का विन्यास कर वे अवस्थित थे । वह बलवान राक्षस उनकी ओर दौड़ा । (२२)

हे देवर्षि ! तदनन्तर द्विज द्वारा विनियोजित रक्षा (की सीमा) में पहुँचने पर वह राक्षस गतिहीन होकर चार मास तक जब तक ब्राह्मण की समाधि समाप्त नहीं हुई पड़ा रहा । जप समाप्त होने पर उन्होंने, उस निशाचर को देखा । (२३-२४)

उन्होंने दीन, बलहीन, हतोत्साह, भयाकुल, तथा तेजोहीन उस निशाचर को देखकर कृपापूर्वक उसे आश्वासन प्रदान किया और उसके आने का कारण पूछा । उसने अपने यथार्थ स्वभाव देखने के (रक्षा के) निकट आने पर तेज का नाश होना बताया । तदनन्तर अन्य अनेक कारणों का उल्लेख कर अपने कर्म से दुःखी उस राक्षस ने ब्राह्मण से कहा आप प्रसन्न हो जायें । (२५-२७)

मैंने बहुत पाप किया है । मैंने अनेक मनुष्यों को मारा । मैंने बहुत सी स्त्रियों को विधवा एवं पुत्रहीन कर दिया तथा निरपराध अन्य प्राणियों का नाश किया है । (२८)

आपकी कृपा से मैं इन पापों से मुक्त होना चाहता हूँ । अतः आप मुझे पापों का नाश करने में समर्थ धर्म का उपदेश दें । (२९)

आप मुझे इस पाप को नष्ट करने वाला उपदेश प्रदान करें । उस राक्षस के उस वचन को सुनकर धर्मात्मा द्विजोत्तम ने हेतुयुक्त मधुर वचन कहा— (३०)

हे निशाचर ! क्रूर स्वभाव के होते हुए भी सहसा धर्ममार्ग में तुम्हारी जिज्ञासा कैसे उत्पन्न हुई ? (३१)

राक्षस ने कहा—मैं आज जैसे ही आपके समीप आया रक्षा द्वारा बलपूर्वक फेंक दिया गया । हे ब्रह्मन् ! आपके संसर्ग से मुझे उत्तम वैराग्य हो गया । (३२)

का सा रक्षा न तां वेद्मि वेद्मि नास्याः परायणम् ।
यस्याः संसर्गमासाद्य निर्वेदं प्रापितं परम् ॥ ३३
त्वं कृपां कुरु धर्मज्ञ मय्यनुक्रोशमावह ।
यथा पापापनोदो मे भवत्यार्य तथा कुरु ॥ ३४
पुलस्त्य उवाच ।
इत्येवमुक्तः स मुनिस्तदा वै तेन रक्षसा ।
प्रत्युवाच महाभागो विमृश्य सुचिरं मुनिः ॥ ३५
ऋषिरुवाच ।
यन्ममाहोपदेशार्थं निर्विण्णः स्वेन कर्मणा ।
युक्तमेतद्धि पापानां निवृत्तिरुपकारिका ॥ ३६
करिष्ये यातुधानानां नत्वहं धर्मदेशनम् ।
तान् संपृच्छ द्विजान् सौम्य ये वै प्रवचने रताः ॥ ३७
एवमुक्त्वा ययौ विप्रश्चिन्तामाप स राक्षसः ।
कथं पापापनोदः स्यादिति चिन्ताकुलेन्द्रियः ॥ ३८
न चखाद स सत्त्वानि क्षुधा संबाधितोऽपि सन् ।
षष्ठे षष्ठे तदा काले जन्तुमेकमभक्षयत् ॥ ३९

मैं यह नहीं जानता कि जिसका संसर्ग पाकर मुझे श्रेष्ठ वैराग्य हुआ है वह रक्षा कैसी है एवं उसका आश्रय कौन है ? (३३)

हे धर्मज्ञ ! हे आर्य ! आप कृपा करें। मेरे ऊपर दया लावें। आप वह कार्य करें जिससे मेरे पापों का विनाश हो जाय। (३४)

पुलस्त्य ने कहा—उस राक्षस के ऐसा कहने पर उन महाभाग मुनि ने बहुत देर विचार कर उत्तर दिया। (३५)

ऋषि ने कहा—अपने कर्म से दुःखी होकर तुमने मुझसे जो उपदेश के लिये कहा है वह उचित ही है। पापों की निवृत्ति से उपकार होता है। (३६)

परन्तु मैं राक्षसों को धर्मोपदेश नहीं दूँगा। अतः हे सौम्य ! तुम उन ब्राह्मणों से पूछो जो प्रवचन करते हैं। (३७)

ऐसा कहकर वह ब्राह्मण चला गया। वह राक्षस चिन्तामग्न हो गया। 'मेरे पाप कैसे दूर होंगे' इस विषय की चिन्ता से उसकी इन्द्रियाँ आकुल हो गईं। (३८)

भूख से क्लेश पाने पर भी उसने प्राणियों को नहीं खाया। प्रत्येक छठवें समय एक जन्तु का आहार करने लगा। (३९)

स कदाचित्क्षुधाविष्टः पर्यटन् विपुले वने ।
ददर्शाथ फलाहारमागतं ब्रह्मचारिणम् ॥ ४०
गृहीतो रक्षसा तेन स तदा मुनिदारकः ।
निराशो जीविते प्राह सामपूर्वं निशाचरम् ॥ ४१
ब्राह्मण उवाच ।
भो भद्र ब्रूहि यत् कार्यं गृहीतो येन हेतुना ।
तदनुब्रूहि भद्रं ते अयमस्म्यनुशाधि माम् ॥ ४२
राक्षस उवाच ।
षष्ठे काले त्वमाहारः क्षुधितस्य समागतः ।
निःश्रीकस्यातिपापस्य निर्घृणस्य द्विजद्रुहः ॥ ४३
ब्राह्मण उवाच ।
यद्यवश्यं त्वया चाहं भक्षितव्यो निशाचर ।
आयास्यामि तवाद्यैव निवेद्य गुरवे फलम् ॥ ४४
गुर्वर्थमेतदागत्य यत्फलग्रहणं कृतम् ।
ममात्र निष्ठा प्राप्तस्य फलानि विनिवेदितुम् ॥ ४५
स त्वं मुहूर्तमात्रं मामत्रैव प्रतिपालय ।

किसी समय भूख से पीड़ित होकर विशाल वन में घूमते हुए उसने फल लेने के लिए आए हुए एक ब्रह्मचारी को देखा। (४०)

राक्षस ने मुनिपुत्र को पकड़ लिया। तदनन्तर जीवन से निराश होकर उस ब्रह्मचारी ने सामयुक्त वचन कहा। (४१)

ब्राह्मण ने कहा—हे भद्र ! यह बतलाओ कि तुम्हारा क्या कार्य है और तुमने मुझे क्यों पकड़ा है ? तुम्हारा कल्याण हो। मैं उपस्थित हूँ। मुझे आज्ञा दो। (४२)

राक्षस ने कहा—श्रीहीन, अतिपापी, क्रूर एवं ब्राह्मणद्रोही मुझ भूखे के समीप छठवें समय तुम आहार के रूप में आये हो। (४३)

ब्राह्मण ने कहा—हे निशाचर ! यदि अवश्य ही तुम मुझे खाना चाहते हो तो मैं यह फल गुरु को निवेदित करके अभी आता हूँ। (४४)

गुरु के लिए यहाँ आकर जो मैंने फल संग्रह किया है, उसे उन्हें समर्पित करने के लिए मुझे श्रद्धा है। (४५)

अतः तुम यहाँ मुहूर्त मात्र मेरी प्रतीक्षा करो जब तक मैं

निवेद्य गुरवे यावदिहागच्छाम्यहं फलम् ॥ ४६
राक्षस उवाच ।
षष्ठे काले न मे ब्रह्मन् कश्चिद् ग्रहणमागतः ।
प्रविमुच्येत देवोऽपि इति मे पापजीविका ॥ ४७
एक एवात्र मोक्षस्य तव हेतुः शृणुष्व तत् ।
मुञ्चाम्यहमसंदिग्धं यदि तत्कुरुते भवान् ॥ ४८
ब्राह्मण उवाच ।
गुरोर्यन्न विरोधाय यन्न धर्मोपरोधकम् ।
तत्करिष्याम्यहं रक्षो यन्न व्रतहरं मम ॥ ४९
राक्षस उवाच ।
मया निसर्गतो ब्रह्मन् जातिदोषाद् विशेषतः ।
निर्विवेकेन चित्तेन पापकर्म सदा कृतम् ॥ ५०
आबाल्यान्मम पापेषु न धर्मेषु रतं मनः ।
तत्पापसंक्षयान्मोक्षं प्राप्नुयां येन तद् वद ॥ ५१
यानि पापानि कर्माणि बालत्वाच्चरितानि च ।
दुष्टां योनिमिमां प्राप्य तन्मुक्तिं कथय द्विज ॥ ५२
यद्येतद् द्विजपुत्र त्वं समाख्यास्यस्यशेषतः ।
ततः क्षुधार्तान्मत्तस्त्वं नियतं मोक्षमाप्स्यसि ॥ ५३
न चेत् तत्पापशीलोऽहमत्यर्थं क्षुत्पिपासितः ।
षष्ठे काले नृशंसात्मा भक्षयिष्यामि निर्घृणः ॥ ५४
पुलस्त्य उवाच ।
एवमुक्तो मुनिसुतस्तेन घोरेण रक्षसा ।
चिन्तामवाप महतीमशक्तस्तदुदीरणे ॥ ५५
स विमृश्य चिरं विप्रः शरणं जातवेदसम् ।
जगाम ज्ञानदानाय संशयं परमं गतः ॥ ५६
यदि शुश्रूषितो वह्निर्गुरुशुश्रूषणाद्व्रतु ।
व्रतानि वा सुचीर्णानि सप्तार्चिः पातु मां ततः ॥ ५७
न मातरं न पितरं गौरवेण यथा गुरुम् ।
सर्वदैवावगच्छामि तथा मा पातु पावकः ॥ ५८
यथा गुरुं न मनसा कर्मणा वचसाऽपि वा ।
अवजानाम्यहं तेन पातु सत्येन पावकः ॥ ५९
इत्येवं मनसा सत्यान् कुर्वतः शपथान् पुनः ।

इस फल को गुरु को देकर लौट आऊँ। (४६)

राक्षस ने कहा—हे ब्रह्मन्! छठवें समय मेरी पकड़ में आया हुआ कोई देवता भी मुक्त नहीं हो सकता। यही मेरी पापजीविका है। (४७)

तुम्हारी मुक्ति का एक ही उपाय है, उसे सुनो। यदि आप उसे करें तो निस्सन्देह मैं आपको छोड़ दूँगा। (४८)

ब्राह्मण ने कहा—हे राक्षस! यदि वह कार्य गुरु का विरोधी, धर्म का अवरोधक एवं मेरे व्रत को खण्डित करने वाला न होगा तो मैं उसे करूँगा। (४९)

राक्षस ने कहा—हे ब्रह्मन्! मैंने स्वभावत एवं विशेषत जातिदोषवश तथा विवेकरहित चित्त के कारण सदा पापकर्म किया। (५०)

बचपन से ही मेरा मन धर्म में नहीं अपितु पाप मे लगा रहा। अत वह उपाय बतलाओ जिससे पाप का क्षय होकर मेरा मोक्ष हो जाय। (५१)

हे द्विज! इस दुष्ट योनि को पाकर अज्ञतावश मैंने जिन पापकर्मों का आचरण किया है, उनसे मुक्ति का उपाय बतलाओ। (५२)

हे ब्राह्मणपुत्र! यदि तुम यह पूर्णरूप से मुझे बतलाओ तो मुझ क्षुधार्त्त से अवश्य छुटकारा पा जाओगे। (५३)

यदि ऐसा नहीं हुआ तो अत्यधिक भूखा प्यासा निष्ठुर मैं छठवें समय (प्राप्त हुए) आपको खा जाऊँगा। (५४)

पुलस्त्य ने कहा—इस भयकर राक्षस के ऐसा कहने पर मुनिपुत्र (राक्षस की पापमुक्ति का उपाय) कहने मे असमर्थ होने से बहुत चिन्तित हुआ। (५५)

चिरकाल तक विचार करने के उपरान्त अत्यन्त संशयापन्न ब्राह्मण ज्ञानदान के निमित्त अग्नि की शरण में गया। (५६)

(उसने कहा—) हे अग्नि! गुरु की सेवा के पश्चात् यदि मैंने आपकी सेवा की हो तथा व्रतों का भली भाँति पालन किया हो तो आप सप्तार्चि मेरी रक्षा करें। (५७)

हे अग्नि! यदि मैंने माता और पिता से गौरव में गुरु को सदा ही अधिक महत्त्व दिया हो तो आप मेरी रक्षा करें। (५८)

यदि मन, कर्म एवं वाणी से भी मैंने गुरु का अपमान न किया हो तो उस सत्य के कारण अग्नि मेरी रक्षा करें। (५९)

इस प्रकार मन से सत्य शपथों को लेने वाले उसके

सप्तर्चिषा समादिष्टा प्रादुरासीत् सरस्वती ॥ ६०
सा प्रोवाच द्विजसुतं राक्षसग्रहणाकुलम् ।
मा भैर्द्विजसुताहं त्वां मोक्षयिष्यामि संकटात् ॥ ६१
यदस्य रक्षसः श्रेयो जिह्वाग्रे संस्थिता तव ।
तत् सर्वं कथयिष्यामि ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ ६२
अदृश्या रक्षसा तेन प्रोक्त्वेत्थं सा सरस्वती ।
अदर्शनं गता सोऽपि द्विजः प्राह निशाचरम् ॥ ६३

ब्राह्मण उवाच ।

श्रूयतां तव यच्छ्रेयस्तथाऽन्येषां च पापिनाम् ।
समस्तपापशुद्ध्यर्थं पुण्योपचयदं च यत् ॥ ६४
प्रातरुत्थाय जप्तव्यं मध्याह्नेऽह्नःक्षयेऽपि वा ।
असंशयं सदा जप्यो जपतां पुष्टिशान्तिदः ॥ ६५
ॐ हरिं कृष्णं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम् ।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे पापं व्यपोहतु ॥ ६६
चराचरगुरुं नाथं गोविन्दं शेषशायिनम् ।
प्रणतोऽस्मि परं देवं स मे पापं व्यपोहतु ॥ ६७
शङ्खिनं चक्रिणं शार्ङ्गधारिणं स्रग्धरं परम् ।
प्रणतोऽस्मि पतिं लक्ष्म्याः स मे पापं व्यपोहतु ॥ ६८
दामोदरमुदाराक्षं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् ।
प्रणतोऽस्मि स्तुतं स्तुत्यैः स मे पापं व्यपोहतु ॥ ६९
नारायणं नरं शौरिं माधवं मधुसूदनम् ।
प्रणतोऽस्मि धराधारं स मे पापं व्यपोहतु ॥ ७०
केशवं चन्द्रसूर्याक्षं कंसकेशिनिषूदनम् ।
प्रणतोऽस्मि महाबाहुं स मे पापं व्यपोहतु ॥ ७१
श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं श्रीधरं श्रीनिकेतनम् ।
प्रणतोऽस्मि श्रियः कान्तं स मे पापं व्यपोहतु ॥ ७२
यमीशं सर्वभूतानां ध्यायन्ति यतयोऽक्षरम् ।
वासुदेवमनिर्देश्यं तमस्मि शरणं गतः ॥ ७३
समस्तालम्बनेभ्यो यं व्यावृत्य मनसो गतिम् ।
ध्यायन्ति वासुदेवाख्यं तमस्मि शरणं गतः ॥ ७४

समक्ष अग्नि के आदेश से सरस्वती प्रकट हुईं । (६०)

उन्होंने राक्षस के द्वारा पकड़े जाने के कारण व्याकुल ब्राह्मण-पुत्र से कहा—हे ब्राह्मणपुत्र ! डरो मत । मैं तुम्हें सङ्कट से मुक्त करूँगी । (६१)

तुम्हारे जिह्वाग्र पर स्थित होकर मैं राक्षस के श्रेयस्कर समस्त विषयों का कथन करूँगी । तदनन्तर तुम मुक्त हो जाओगे । (६२)

उस राक्षस से अदृश्य रहती हुई सरस्वती ऐसा कहने के उपरान्त तिरोहित हो गईं । उस ब्राह्मण ने निशाचर से कहा । (६३)

ब्राह्मण ने कहा—सुनो ! तुम्हारे और अन्य पापियों के लिए श्रेयस्कर, समस्त पापों की शुद्धि एवं पुण्यवर्द्धन करने वाला (तत्त्व मैं कहता हूँ ।) (६४)

प्रातःकाल उठ कर, मध्याह्न में अथवा सायंकाल इस जपनीय स्तोत्र का सदा जप करना चाहिए । यह जप जपकर्त्ता को निस्सन्देह शान्ति एवं पुष्टि प्रदान करता है । (६५)

ओं हरि, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दन, जगन्नाथ को मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पाप को दूर करें । (६६)

चराचर के गुरु, नाथ, शेषशायी, परम देव गोविन्द को मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पाप को दूर करें । (६७)

शंखधारी, चक्रधारी, शार्ङ्गधारी एवं उत्तम मालाधारी, लक्ष्मीपति को मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पाप को दूर करें । (६८)

दामोदर, उदाराक्ष, पुण्डरीकाक्ष, स्तुतिपात्रों से स्तुत अच्युत को मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पापों को दूर करें । (६९)

नारायण, नर, शौरि, माधव, मधुसूदन एवं धराधार को मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पाप को दूर करें । (७०)

चन्द्र एवं सूर्यरूपी नेत्रों वाले, कंस और केशिनिषूदन महाबाहु केशव को प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पापों को दूर करें । (७१)

वक्षःस्थल पर श्रीवत्स धारण करने वाले, श्रीश, श्रीधर, श्रीनिकेतन एवं श्रीकान्त को मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पापों को दूर करें । (७२)

संयमी लोग जिन सर्वभूतों के स्वामी, अक्षर एवं अनिर्देश्य वासुदेव का ध्यान करते हैं मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ । (७३)

(यतिगण) अन्य समस्त आलम्बनों से मन की गति को लौटा कर जिस वासुदेव नामक ईश्वर का ध्यान करते हैं मैं उनकी शरण में आता हूँ । (७४)

सर्वगं सर्वभूतं च सर्वस्याधारमीश्वरम् ।
वासुदेवं परं ब्रह्म तमस्मि शरणं गतः ॥ ७५
परमात्मानमव्यक्तं य प्रयान्ति सुमेधसः ।
कर्मक्षयेऽक्षयं देवं तमस्मि शरणं गतः ॥ ७६
पुण्यपापविनिर्मुक्ता यं प्रविश्य पुनर्भवम् ।
न योगिनः प्राप्नुवन्ति तमस्मि शरणं गतः ॥ ७७
ब्रह्मा भूत्वा जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
यः सृजत्यच्युतो देवस्तमस्मि शरणं गतः ॥ ७८
ब्रह्मत्वे यस्य वक्त्रेभ्यश्चतुर्वेदमयं वपुः ।
प्रभुः पुरातनो जज्ञे तमस्मि शरणं गतः ॥ ७९
ब्रह्मरूपधरं देवं जगद्योनिं जनार्दनम् ।
स्रष्टृत्वे संस्थितं सृष्टौ प्रणतोऽस्मि सनातनम् ॥ ८०
स्रष्टा भूत्वा स्थितो योगी स्थित्यावसुरसूदनः ।
तमादिपुरुषं विष्णुं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥ ८१
धृता मही हता दैत्याः परित्रातास्तथा सुराः ।
येन तं विष्णुमाद्येशं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥ ८२
यज्ञैर्यजन्ति य विप्रा यज्ञेश यज्ञभावनम् ।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं प्रणतोऽस्मि सनातनम् ॥ ८३
पातालवीथीभूतानि तथा लोकान् निहन्ति यः ।
तमन्तपुरुषं रुद्रं प्रणतोऽस्मि सनातनम् ॥ ८४
संभक्षयित्वा सकलं यथासृष्टमिदं जगत् ।
यो वै नृत्यति रुद्रात्मा प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥ ८५
सुरासुराः पितृगणाः यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
संभूता यस्य देवस्य सर्वगं तं नमाम्यहम् ॥ ८६
समस्तदेवाः सकला मनुष्याणां च जातयः ।
यस्यांशभूता देवस्य सर्वगं त नतोऽस्म्यहम् ॥ ८७
वृक्षगुल्मादयो यस्य तथा पशुमृगादयः ।
एकांशभूता देवस्य सर्वगं तं नमाम्यहम् ॥ ८८
यस्मान्नान्यत् परं किंचिद् यस्मिन् सर्वं महात्मनि ।
यः सर्वमध्यगोऽनन्तः सर्वगं तं नमाम्यहम् ॥ ८९

मैं सर्वगत, सर्वभूत, सर्वाधार, ईश्वर एव वासुदेव नामक पर ब्रह्म की शरण जाता हूँ। (७५)

उत्तम मेधायुक्त लोग कर्म का क्षय होने पर जिन अव्यक्त, अक्षय, परमात्मदेव को प्राप्त करते हैं, मैं उनका शरणागत हूँ। (७६)

पुण्य पाप से मुक्त योगि लोग जिन्हे पाकर पुन जन्म नहीं लेते, मैं उनकी शरण मे जाता हूँ। (७७)

ब्रह्मा का रूप धारण कर देवता, असुर एव मनुष्यों से युक्त समस्त जगत की सृष्टि करने वाले अच्युत देव की मैं शरण मे जाता हूँ। (७८)

ब्रह्मा का रूप धारण करने पर जिनके मुखों से चतुर्वेदात्मक शरीरधारी पुरातन प्रभु का प्रादुर्भाव हुआ था मैं उनकी शरण मे जाता हूँ। (७९)

मैं सृष्टि के लिये स्रष्टारूप से स्थित ब्रह्मरूपधारी सनातन जगद्योनि जनार्दन को प्रणाम करता हूँ। (८०)

सृष्टि कर्ता होकर योगी रूप में विद्यमान एवं स्थिति-काल मे राक्षसों का नाश करने वाले आदिपुरुष जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ। (८१)

मैं उन आदि ईश्वर जनार्दन विष्णु को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने पृथ्वी को धारण किया है, दैत्यों को मारा है एवं देवों का परित्राण किया है (८२)

ब्राह्मण लोग यज्ञों द्वारा जिनकी आराधना करते हैं मैं उन यज्ञपुरुष यज्ञभावन, यज्ञेश सनातन विष्णु को प्रणाम करता हूँ। (८३)

मैं पाताललोक निवासी प्राणियों तथा लोकों का विनाश करने वाले उन अन्त पुरुष सनातन रुद्र को प्रणाम करता हूँ। (८४)

यथासृष्ट इस समस्त जगत का भक्षण कर नृत्य करने वाले रुद्रात्मा जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ। (८५)

मैं उन सर्वगामी देव को प्रणाम करता हूँ जिनसे समस्त सुर, असुर, पितृगण, यक्ष, गन्धर्व एवं राक्षस उत्पन्न हुए हैं। (८६)

मैं उन सर्वगामी देव को प्रणाम करता हूँ जिनके अंश से समस्त देव एव मनुष्यों की सभी जातियाँ उत्पन्न हुई हैं। (८७)

वृक्ष, गुल्म आदि तथा पशु, मृग आदि जिन परमदेव के एक अंश रूप हैं मैं उन सर्वगामी देव को प्रणाम करता हूँ। (८८)

मैं उन सर्वव्यापी देव को प्रणाम करता हूँ जिनसे

यथा सर्वेषु भूतेषु गूढोऽग्निरिव दारुषु ।
विष्णुरेवं तथा पापं ममाशेषं प्रणश्यतु ॥ ९०

यथा विष्णुमयं सर्वं ब्रह्मादि सचराचरम् ।
यच्च ज्ञानपरिच्छेद्यं पापं नश्यतु मे तथा ॥ ९१

शुभाशुभानि कर्माणि रजःसत्त्वतमांसि च ।
अनेकजन्मकर्मोत्थं पापं नश्यतु मे तथा ॥ ९२

यन्निशायां च यत्प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः ।
संध्ययोश्च कृतं पापं कर्मणा मनसा गिरा ॥ ९३

यत् तिष्ठता यद् व्रजता यच्च शय्यागतेन मे ।
कृतं यदशुभं कर्म कायेन मनसा गिरा ॥ ९४

अज्ञानतो ज्ञानतो वा मदाचलितमानसैः ।
तत् क्षिप्रं विलयं यातु वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥ ९५

परदारपरद्रव्यवाञ्छाद्रोहोद्भवं च यत् ।
परपीडोद्भवां निन्दां कुर्वता यन्महात्मनाम् ॥ ९६

यच्च भोज्ये तथा पेये भक्ष्ये चोष्ये विलेहने ।
तद् यातु विलयं तोये यथा लवणभाजनम् ॥ ९७

यद् बाल्ये यच्च कौमारे यत् पाप यौवने मम ।
वयःपरिणतौ यच्च यच्च जन्मान्तरे कृतम् ॥ ९८

तन्नारायण गोविन्द हरिकृष्णेश कीर्तनात् ।
प्रयातु विलयं तोये यथा लवणभाजनम् ॥ ९९

विष्णवे वासुदेवाय हरये केशवाय च ।
जनार्दनाय कृष्णाय नमो भूयो नमो नमः ॥ १००

भविष्यन्नरकघ्नाय नमः कंसविघातिने ।
अरिष्टकेशिचाणूरदेवारिक्षयिणे नमः ॥ १०१

कोऽन्यो बलेर्वञ्चयिता त्वामृते वै भविष्यति ।
कोऽन्यो नाशयति बलाद् दर्पं हैहयभूपतेः ॥ १०२

कः करिष्यत्यथाऽन्यो वै सागरे सेतुबन्धनम् ।
वधिष्यति दशग्रीवं कः सामात्यपुरःसरम् ॥ १०३

कस्त्वामृतेऽन्यो नन्दस्य गोकुले रतिमेष्यति ।
प्रलम्बपूतनादीनां त्वामृते मधुसूदन ।

भिन्न कोई वस्तु नहीं है एव जिन महात्मा मे समस्त पदार्थ स्थित हैं तथा जो सभी के अन्त प्रविष्ट और अनन्त हैं । (८९)

काष्ठ मे अग्नि सदृश सर्वभूतों मे निगूढ विष्णु मेरे समस्त पापों को नष्ट करें । (९०)

क्योंकि विष्णु से ब्रह्मादि सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् व्याप्त है तथा जो ज्ञानपरिच्छेद्य है अत मेरे पाप नष्ट हो जाँय । (९१)

(विष्णु की कृपा से) मेरे शुभाशुभ कर्म, सत्त्व, रज एव तमोगुण तथा अनेक जन्मों के कर्म से उत्पन्न पाप नष्ट हो जायँ । (९२)

शरीर, कर्म, मन एव वाणी द्वारा रात्रि, प्रात, मध्याह्न, अपराह्न एव सन्ध्याओं में चलने, बैठने एव सोते हुए ज्ञान या अज्ञान पूर्वक अथवा अहङ्कार विचलित मन से मैंने जो शुभ या अशुभ पाप कर्म किये हों वे वासुदेव के कीर्तन से शीघ्र विलीन हो जाँय । (९३-९५)

परस्त्री एवं परद्रव्य की आकांक्षा, द्रोह, परपीड़ा, महात्माओं की निन्दा तथा भोज्य, पेय, भक्ष्य चोष्य एवं विलेहन के कारण उद्भूत समस्त पाप इस प्रकार विलीन हो जाँय जैसे जल मे लवण पात्र विलीन हो जाता है । (९६-९७)

नारायण, गोविन्द, हरिकृष्ण, ईश का कीर्तन करने से बाल्यकाल, कौमार्य, यौवन, वार्द्धक्य एव जन्मान्तर मे किये गये मेरे समस्त पाप इस प्रकार विलीन हो जाँय जैसे जल में लवणभाजन विलीन हो जाता है । (९८-९९)

हरि, विष्णु, वासुदेव, केशव, जनार्दन, कृष्ण को पुन पुन नमस्कार है । (१००)

भावी नरक का नाश करने वाले कंसविघाती को नमस्कार है । अरिष्ट, केशि एवं चाणूर आदि राक्षसों के क्षयकर्त्ता को नमस्कार है । (१०१)

आपके अतिरिक्त कौन बलि को छल सकता था एवं आपके बिना हैहयनरेश के दर्प को कौन नष्ट कर सकता था ? (१०२)

आपके अतिरिक्त सागर मे सेतुबन्धन कौन कर सकता है तथा अमात्य आदि सहित दशग्रीव का वध कौन कर सकता था ? (१०३)

हे मधुसूदन ! आपके अतिरिक्त ऐसा कौन है जो नन्द के गोकुल में स्नेहमयी क्रीड़ा कर सके ? देवदेव ! आपके

निहन्ताऽप्यथवा शास्ता देवदेव भविष्यति ॥ १०४
जपन्नेवं नरः पुण्यं वैष्णवं धर्ममुत्तमम् ।
इष्टानिष्टप्रसंगेभ्यो ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥ १०५
कृतं तेन तु यत् पापं सप्तजन्मान्तराणि वै ।
महापातकसंज्ञं वा तथा चैवोपपातकम् ॥ १०६
यज्ञादीनि च पुण्यानि जपहोमव्रतानि च ।
नाशयेद् योगिनां सर्वमामपात्रमिवाम्भसि ॥ १०७
नरः संवत्सरं पूर्णं तिलपात्राणि षोडश ।
अहन्यहनि यो दद्यात् पठत्येतच्च तत्समम् ॥ १०८
अविलुप्तब्रह्मचर्यं संप्राप्य स्मरणं हरेः ।
विष्णुलोकमवाप्नोति सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ १०९
यथैतत् सत्यमुक्तं मे न ह्यल्पमपि मे मृषा ।
राक्षसस्त्रस्तसर्वाङ्गं तथा मामेष मुञ्चतु ॥ ११०

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुच्चारिते तेन मुक्तो विप्रस्तु रक्षसा ।
अकामेन द्विजो भूयस्तमाह रजनीचरम् ॥ १११

ब्राह्मण उवाच ।

एतद् भद्र मया ख्यातं तव-पातकनाशनम् ।
विष्णोः सारस्वतं स्तोत्रं यज्जगाद सरस्वती ॥ ११२
हुताशनेन प्रहिता मम जिह्वाग्रसंस्थिता ।
जगादैनं स्तवं विष्णोः सर्वेषां चोपशान्तिदम् ॥ ११३
अनेनैव जगन्नाथं त्वमाराधय केशवम् ।
ततः शापापनोदं तु स्तुते लप्स्यसि केशवे ॥ ११४
अहर्निशं हृषीकेशं स्तवेनानेन राक्षस ।
स्तुहि भक्तिं दृढां कृत्वा ततः पापाद् विमोक्ष्यसे ॥ ११५
स्तुतो हि सर्वपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम् ।
स्तुतो हि भक्त्या नृणां वै सर्वपापहरो हरिः ॥ ११६

पुलस्त्य उवाच ।

ततः प्रणम्य तं विप्रं प्रसाद्य स निशाचरः ।
तदैव तपसे श्रीमान् शालग्राममगाद् वशी ॥ ११७
अहर्निशं स एवैनं जपन् सारस्वतं स्तवम् ।
देवक्रियारतिर्भूत्वा तपस्तेपे निशाचरः ॥ ११८

अतिरिक्त प्रलम्ब एवं पूतनादि का वध एवं नियमन कौन कर सकता था ? (१०४)

इस धर्ममय उत्तम वैष्णव मन्त्र का जप करने वाला मनुष्य इष्टानिष्ट-प्रसङ्गवश तथा ज्ञान या अज्ञानपूर्वक सात जन्मों में किये अपने महापातकों, उपपातकों, यज्ञ, होम एवं व्रतादि के पुण्य कर्मों के भी योग को इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे जल में मिट्टी का कच्चा घड़ा नष्ट हो जाता है। (१०५-१०७)

मैं यह सत्य कहता हूँ कि अखण्डित ब्रह्मचर्य एवं हरि-स्मरणपूर्वक एक वर्ष तक इस स्तोत्र के पाठ के साथ प्रतिदिन सोलह तिलपूर्ण पात्रों का दान करने वाला मनुष्य विष्णुलोक प्राप्त करता है। (१०८-१०९)

यदि मैंने यह सत्य कहा हो एवं इसमें अल्पमात्र भी असत्य न हो तो यह राक्षस सर्वाङ्गपीड़ित मुझे छोड़ दे। (११०)

पुलस्त्य ने कहा—उसके ऐसा कहते ही राक्षस ने ब्राह्मण को छोड़ दिया। पुनः द्विज ने निष्काम भाव से राक्षस से कहा। (१११)

ब्राह्मण ने कहा—हे भद्र ! सरस्वती देवी ने जिस पापनाशक सारस्वत विष्णु स्तोत्र को कहा है उसे मैंने तुमसे कह दिया। (११२)

अग्निदेव से भेजी गयी एवं मेरी जिह्वा के अग्रभाग में स्थित (सरस्वती) ने सभी को शान्ति देने वाले इस विष्णु-स्तोत्र को कहा है। (११३)

तुम इसीसे जगत्स्वामी केशव की आराधना करो। तदनन्तर केशव की स्तुति करने से तुम शाप से मुक्त हो जाओगे। (११४)

हे राक्षस ! इस स्तुति के द्वारा दृढ़ भक्तिपूर्वक अहर्निश हृषीकेश की स्तुति करो। तदनन्तर केशव की स्तुति करने पर तुम पापमुक्त हो जाओगे। (११५)

स्तुति किये गये हरि निस्सन्देह सभी पापोंको नष्ट करेंगे। भक्तिपूर्वक स्तुति करने से सर्वपापहारी हरि मनुष्यों के समस्त पापों का नाश कर देते हैं। (११६)

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर आत्मवशी वह राक्षस ब्राह्मण को प्रणाम एवं प्रसन्न करने के उपरान्त उसी समय तपस्या के लिये शालग्राम नामक स्थान में चला गया। (११७)

वह निशाचर अहोरात्र इसी सारस्वत स्तोत्र का जप करते हुये देवक्रिया में अनुरक्त होकर तप करने लगा। (११८)

समाराध्य जगन्नाथं स तत्र पुरुषोत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥ ११९
एतत् ते कथितं ब्रह्मन् विष्णोः सारस्वतं स्तवम् ।
विप्रवक्त्रस्थया सम्यक्सरस्वत्या समीरितम् ॥ १२०
य एतत् परमं स्तोत्रं वासुदेवस्य मानवः ।
पठिष्यति स सर्वेभ्यः पापेभ्यो मोक्षमाप्स्यति ॥ १२१

इति श्रीवामनपुराणे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

६०

पुलस्त्य उवाच ।
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ देवदेव नमोऽस्तु ते ।
वासुदेव नमस्तेऽस्तु बहुरूप नमोऽस्तु ते ॥ १
एकशृङ्ग नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं वृषाकपे ।
श्रीनिवास नमस्तेऽस्तु नमस्ते भूतभावन ॥ २
विष्वक्सेन नमस्तुभ्यं नारायण नमोऽस्तु ते ।
ध्रुवध्वज नमस्तेऽस्तु सत्यध्वज नमोऽस्तु ते ॥ ३
यज्ञध्वज नमस्तुभ्यं धर्मध्वज नमोऽस्तु ते ।
तालध्वज नमस्तेऽस्तु नमस्ते गरुडध्वज ॥ ४
वरेण्य विष्णो वैकुण्ठ नमस्ते पुरुषोत्तम ।
नमो जयन्त विजय जयानन्त पराजित ॥ ५
कृतावर्त महावर्त महादेव नमोऽस्तु ते ।
अनाद्याद्यन्त मध्यान्त नमस्ते पद्मजप्रिय ॥ ६
पुरंजय नमस्तुभ्यं शत्रुंजय नमोऽस्तु ते ।

वहाँ पुरुषोत्तम जगन्नाथ की आराधना कर समस्त पापों से मुक्त होकर उसने विष्णुलोक प्राप्त किया । (११९)

हे ब्रह्मन् ! मैंने तुमसे विप्रमुखस्थ सरस्वती द्वारा सम्यक्तया कथित विष्णु का यह सारस्वत स्तोत्र कहा । (१२०)

वासुदेव के इस श्रेष्ठ स्तोत्र को पढ़ने वाला मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जायेगा । (१२१)

श्रीवामनपुराण में उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥

६०

पुलस्त्य ने कहा—हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है । हे देवदेव ! आपको नमस्कार है । हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है । हे बहुरूपी ! आपको नमस्कार है । (१)

हे एकशृङ्ग ! आपको नमस्कार है । हे वृषाकपि ! आपको नमस्कार है । हे श्रीनिवास ! आपको नमस्कार है । हे भूतभावन ! आपको नमस्कार है । (२)

हे विष्वक्सेन ! आपको नमस्कार है । हे नारायण ! आपको नमस्कार है । हे ध्रुवध्वज ! आपको नमस्कार है । हे सत्यध्वज ! आपको नमस्कार है । (३)

हे यज्ञध्वज ! आपको नमस्कार है । हे धर्मध्वज ! आपको नमस्कार है । हे तालध्वज ! आपको नमस्कार है । हे गरुड़ध्वज ! आपको नमस्कार है । (४)

हे वरेण्य ! हे विष्णु ! हे वैकुण्ठ ! हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है । हे जयन्त ! हे विजय ! हे जय ! हे अनन्त ! हे पराजित ! आपको नमस्कार है । (५)

हे कृतावर्त ! हे महावर्त ! हे महादेव ! आपको नमस्कार है । हे अनाद्याद्यन्त ! हे मध्यान्त ! हे पद्मजप्रिय ! आपको प्रणाम है । (६)

हे पुरञ्जय ! आपको नमस्कार । हे शत्रुञ्जय ! आपको

शुभंजय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु धनंजय ॥ ७
सृष्टिगर्भ नमस्तुभ्यं शुचिश्रवः पृथुश्रवः ।
नमो हिरण्यगर्भाय पद्मगर्भाय ते नमः ॥ ८
नमः कमलनेत्राय कालनेत्राय ते नमः ।
कालनाभ नमस्तुभ्यं महानाभ नमो नमः ॥ ९
वृष्टिमूल महामूल मूलावास नमोऽस्तु ते ।
धर्मावास जलावास श्रीनिवास नमोऽस्तु ते ॥ १०
धर्माध्यक्ष प्रजाध्यक्ष लोकाध्यक्ष नमो नमः ।
सेनाध्यक्ष नमस्तुभ्यं कालाध्यक्ष नमोऽस्तु ते ॥ ११
गदाधर श्रुतिधर चक्रधारिन् श्रियो धर ।
वनमालाधर हरे नमस्ते धरणीधर ॥ १२
आर्चिषेण महासेन नमस्तेऽस्तु पुरुष्टुत ।
बहुकल्प महाकल्प नमस्ते कल्पनामुख ॥ १३
सर्वात्मन् सर्वग विभो विरिञ्चे श्वेत केशव ।
नील रक्त महानील अनिरुद्ध नमोऽस्तु ते ॥ १४
द्वादशात्मक कालात्मन् सामात्मन् परमात्मक ।
व्योमकात्मक सुब्रह्मन् भूतात्मक नमोऽस्तु ते ॥ १५
हरिकेश महाकेश गुडाकेश नमोऽस्तु ते ।
मुञ्जकेश हृषीकेश सर्वनाथ नमोऽस्तु ते ॥ १६
सूक्ष्म स्थूल महास्थूल महासूक्ष्म शुभंकर ।
श्वेतपीताम्बरधर नीलवास नमोऽस्तु ते ॥ १७
कुशेशय नमस्तेऽस्तु पद्मेशय जलेशय ।
गोविन्द प्रीतिकर्ता च हंस पीताम्बरप्रिय ॥ १८
अधोक्षज नमस्तुभ्यं सीरध्वज जनार्दन ।
वामनाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते मधुसूदन ॥ १९
सहस्रशीर्षाय नमो ब्रह्मशीर्षाय ते नमः ।
नमः सहस्रनेत्राय सोमसूर्यानलेक्षण ॥ २०
नमश्चाथर्वशिरसे महाशीर्षाय ते नमः ।
नमस्ते धर्मनेत्राय महानेत्राय ते नमः ॥ २१
नमः सहस्रपादाय सहस्रभुजमन्यवे ।

प्रणाम है। हे शुभञ्जय! आपको प्रणाम है। हे धनञ्जय! आपको प्रणाम है। (७)

हे सृष्टिगर्भ! हे शुचिश्रव! हे पृथुश्रव! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ को नमस्कार है। पद्मगर्भ को नमस्कार है। (८)

कमलनेत्र को प्रणाम है। आप कालनेत्र को प्रणाम है। हे कालनाभ! आपको प्रणाम है। हे महानाभ! आपको बारम्बार प्रणाम है। (९)

हे वृष्टिमूल! हे महामूल! हे मूलावास! आपको प्रणाम है। हे धर्मावास! हे जलावास! हे श्रीनिवास! आपको प्रणाम है। (१०)

हे धर्माध्यक्ष! हे प्रजाध्यक्ष! हे लोकाध्यक्ष! आपको बारम्बार प्रणाम है। हे सेनाध्यक्ष! आपको प्रणाम है। हे कालाध्यक्ष! आपको प्रणाम है। (११)

हे गदाधर! हे श्रुतिधर! हे चक्रधर! हे श्रीधर! हे वनमालाधर! हे धरणीधर हरि! आपको प्रणाम है। (१२)

हे आर्चिषेण! हे महासेन! हे पुरुष्टुत! आपको प्रणाम है। हे बहुकल्प! हे महाकल्प! हे कल्पनामुख! आपको प्रणाम है। (१३)

हे सर्वात्मन्! हे सर्वग! हे विभु! हे विरिञ्चि! हे श्वेत! हे केशव! हे नील! हे रक्त! हे महानील! हे अनिरुद्ध! आपको नमस्कार है। (१४)

हे द्वादशात्मक! हे कालात्मन्! हे सामात्मन्! हे परमात्मक! हे व्योमकात्मक! हे सुब्रह्म! हे भूतात्मक! आपको प्रणाम है। (१५)

हे हरिकेश! हे महाकेश! हे गुडाकेश! आपको प्रणाम है। हे मुञ्जकेश! हे हृषीकेश! हे सर्वनाथ! आपको प्रणाम है। (१६)

हे सूक्ष्म! हे स्थूल! हे महास्थूल! हे महासूक्ष्म! हे शुभंकर! हे श्वेतपीताम्बरधर! हे नीलवास! आपको प्रणाम है। (१७)

हे कुशेशय! हे पद्मेशय! हे जलेशय! हे गोविन्द! हे प्रीतिकर्त्ता! हे हंस! हे पीताम्बरप्रिय! आपको नमस्कार है। (१८)

हे अधोक्षज! हे सीरध्वज! हे जनार्दन! आपको प्रणाम है। हे वामन! आपको प्रणाम है। हे मधुसूदन! आपको प्रणाम है। (१९)

सहस्रशीर्ष को नमस्कार है। तुम ब्रह्मशीर्ष को प्रणाम है। सहस्र नेत्र और चन्द्रसूर्यानलेक्षण को प्रणाम है। (२०)

अथर्वशिरा को नमस्कार है। महाशीर्ष को प्रणाम है। धर्मनेत्र का प्रणाम है। महानेत्र को प्रणाम है। (२१)

सहस्रपाद को नमस्कार है सहस्रभुजाओं एवं सहस्र

नमो यज्ञवराहाय महारूपाय ते नमः ॥ २२
नमस्ते विश्वदेवाय विश्वात्मन् विश्वसंभव ।
विश्वरूप नमस्तेऽस्तु त्वत्तो विश्वमभूदिदम् ॥ २३
न्यग्रोधस्त्वं महाशाखस्त्वं मूलकुसुमार्चितः ।
स्कन्धपत्राङ्कुरलतापल्लवाय नमोऽस्तु ते ॥ २४
मूलं ते ब्राह्मणा ब्रह्मन् स्कन्धस्ते क्षत्रियाः प्रभो ।
वैश्याः शाखा दलं शूद्रा वनस्पते नमोऽस्तु ते ॥ २५
ब्राह्मणाः साग्नयो वक्त्राः दोर्दण्डाः सायुधा नृपाः ।
पार्श्वाद् विशश्चोरुयुगाज्जाताः शूद्राश्च पादतः ॥ २६
नेत्राद् भानुरभूत् तुभ्यं पद्भ्यां भूः श्रोत्रयोर्दिशः ।
नाभ्या ह्यभूदन्तरिक्षं शशाङ्को मनसस्तव ॥ २७
प्राणाद् वायुः समभवत् कामाद् ब्रह्मा पितामहः ।
क्रोधात् त्रिनयनो रुद्रः शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ॥ २८
इन्द्राग्नी वदनात् तुभ्यं पशवो मलसंभवाः ।
ओषध्यो रोमसंभूता विराजस्त्वं नमोऽस्तु ते ॥ २९

यज्ञों वाले को नमस्कार है। यज्ञवराह को नमस्कार है। आप महारूप को नमस्कार है। (२२)

विश्वदेव को प्रणाम है। हे विश्वात्मन्! हे विश्वसम्भव! हे विश्वरूप! आपको नमस्कार है। आप से यह विश्व उत्पन्न हुआ है। (२३)

आप न्यग्रोध, महाशाख तथा आप ही मूलकुसुमार्चित हैं। स्कन्ध, पत्र अंकुर, लता एवं पल्लव स्वरूप आपको नमस्कार है। (२४)

हे ब्रह्मन्! ब्राह्मण आपके मूल हैं। हे प्रभु! क्षत्रिय आपके स्कन्ध, वैश्य शाखा एवं शूद्र पत्र हैं। हे वनस्पति! आपको नमस्कार है। (२५)

अग्नि सहित ब्राह्मण आपके मुख एवं शस्त्रसहित क्षत्रिय आपकी भुजाएँ हैं। वैश्य आपके ऊरुद्वय के पार्श्व भाग से तथा शूद्र आपके चरण से उत्पन्न हुए हैं। (२६)

आपके नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुए। आपके पैरों से पृथ्वी, कानों से दिशाएँ, नाभि से अन्तरिक्ष तथा मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुए हैं। (२७)

आपके प्राण से वायु, काम से पितामह ब्रह्मा, क्रोध से त्रिनेत्र रुद्र एवं शिर से द्युलोक आविर्भूत हुआ। (२८)

आपके मुख से इन्द्र और अग्नि, मल से पशु तथा रोम से ओषधियाँ उत्पन्न हुई। आप विराज हैं। आपको

पुष्पहास नमस्तेऽस्तु महाहास नमोऽस्तु ते ।
ॐकारस्त्वं वषट्कारो वौषट् त्वं च स्वधा सुधा ॥३०
स्वाहाकार नमस्तुभ्यं हन्तकार नमोऽस्तु ते ।
सर्वाकार निराकार वेदाकार नमोऽस्तु ते ॥ ३१
त्वं हि वेदमयो देवः सर्वदेवमयस्तथा ।
सर्वतीर्थमयश्चैव सर्वयज्ञमयस्तथा ॥ ३२
नमस्ते यज्ञपुरुष यज्ञभागभुजे नमः ।
नमः सहस्रधाराय शतधाराय ते नमः ॥ ३३
भूर्भुवःस्वःस्वरूपाय गोदायामृतदायिने ।
सुवर्णब्रह्मदात्रे च सर्वदात्रे च ते नमः ॥ ३४
ब्रह्मेशाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मादे ब्रह्मरूपधृक् ।
परब्रह्म नमस्तेऽस्तु शब्दब्रह्म नमोऽस्तु ते ॥ ३५
विद्यास्त्वं वेद्यरूपस्त्व वेदनीयस्त्वमेव च ।
बुद्धिस्त्वमपि बोध्यश्च बोधस्त्वं च नमोऽस्तु ते ॥ ३६
होता होमश्च हव्यं च हूयमानश्च हव्यवाट् ।

नमस्कार है। (२९)

हे पुष्पहास! आपको प्रणाम है। हे महाहास! आपको प्रणाम है। आप ओंकार, वषट्कार और वौषट् हैं। आप स्वधा और सुधा हैं। (३०)

हे स्वाहाकार! आपको प्रणाम है। हे हन्तकार! आपको प्रणाम है। हे सर्वाकार! हे निराकार! हे वेदाकार! आपको प्रणाम है। (३१)

आप वेदमय देव तथा सर्वदेवमय हैं। आप सर्वतीर्थमय और सर्वयज्ञमय हैं। (३२)

हे यज्ञपुरुष! आपको प्रणाम है। यज्ञभागभोगी को प्रणाम है। सहस्रधार और शतधार को प्रणाम है। (३३)

भूर्भुवः स्वः स्वरूप, गोदाता, अमृतदाता, सुवर्णब्रह्म-दाता तथा सर्वदाता आपको प्रणाम है। (३४)

आप ब्रह्मेश को नमस्कार है! हे ब्रह्मादि! हे ब्रह्मरूपधारी! हे परब्रह्म! आपको प्रणाम है। हे शब्दब्रह्म! आपको प्रणाम है। (३५)

आप ही विद्या, आप ही वेद्यरूप तथा आप ही वेदनीय हैं। आप ही बुद्धि, बोध्य और बोधरूप हैं। आपको प्रणाम है। (३६)

आप होता, होम, हव्य, हूयमान तथा हव्यवाट्,

पाता पोता च पूतश्च पावनीयश्च ॐ नमः ॥ ३७

हन्ता च हन्यमानश्च ह्रियमाणस्त्वमेव च।
हर्ता नेता च नीतिश्च पूज्योऽग्र्यो विश्वधार्यसि ॥ ३८

स्रुक्स्रुवौ परधामासि कपालोलूखलोऽरणिः।
यज्ञपात्रारणेयस्त्वमेकधा बहुधा त्रिधा ॥ ३९

यज्ञस्त्वं यजमानस्त्वमीड्यस्त्वमसि याजकः।
ज्ञाता ज्ञेयस्तथा ज्ञानं ध्येयो ध्याताऽसि चेश्वर ॥ ४०

ध्यानयोगश्च योगी च गतिर्मोक्षो धृतिः सुखम्।
योगाङ्गानि त्वमीशानः सर्वगस्त्वं नमोऽस्तु ते ॥ ४१

ब्रह्मा होता तथोद्गाता साम यूपोऽथ दक्षिणा।
दीक्षा त्वं त्वं पुरोडाशस्त्वं पशुः पशुवाह्यसि ॥ ४२

गुह्यो धाता च परमः शिवो नारायणस्तथा।
महाजनो निरयनः सहस्रार्केन्दुरूपवान् ॥ ४३

द्वादशारोऽथ षण्णाभिस्त्रिव्यूहो द्वियुगस्तथा।

कालचक्रो भगवानीशो नमस्ते पुरुषोत्तमः ॥ ४४

पराक्रमो विक्रमस्त्वं हयग्रीवो हरीश्वरः।
नरेश्वरोऽथ ब्रह्मेशः सूर्येशस्त्वं नमोऽस्तु ते ॥ ४५

अश्ववक्त्रो महामेधाः शंभुः शक्रः प्रभञ्जनः।
मित्रावरुणमूर्तिस्त्वममूर्तिरनघः परः ॥ ४६

प्राग्वंशकायो भूतादिर्महाभूतोऽच्युतो द्विजः।
त्वमूर्ध्वकर्ता ऊर्ध्वश्च ऊर्ध्वरेता नमोऽस्तु ते ॥ ४७

महापातकहा त्वं च उपपातकहा तथा।
अनीशः सर्वपापेभ्यस्त्वामहं शरणं गतः ॥ ४८

इत्येतत् परमं स्तोत्रं सर्वपापप्रमोचनम्।
महेश्वरेण कथितं वाराणस्यां पुरा मुने ॥ ४९

केशवस्याग्रतो गत्वा स्नात्वा तीर्थे सितोदके।
उपशान्तस्तथा जातो रुद्रः पापवशात् ततः ॥ ५०

पाता, पोता, पूत तथा पावनीय ओंकार हैं। आपको नमस्कार है। (३७)

आप हन्ता, हन्यमान, ह्रियमाण, हर्ता, नेता, नीति, पूज्य, श्रेष्ठ तथा विश्वधारी हैं। (३८)

आप स्रुक्, स्रुव, परधाम, कपाली, उलूखल, अरणि, यज्ञपात्र आरणेय, एकधा, त्रिधा और बहुधा हैं। (३९)

आप यज्ञ हैं और आप यजमान हैं। आप ईड्य और याजक हैं। आप ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान, ध्येय, ध्याता तथा ईश्वर हैं। (४०)

आप ध्यानयोग, योगी, गति, मोक्ष, धृति सुख, योगाङ्ग, ईशान एवं सर्वग हैं। आपको नमस्कार है। (४१)

आप ब्रह्मा, होता, उद्गाता, साम, यूप, दक्षिणा तथा दीक्षा हैं। आप पुरोडाश हैं एवं आप ही पशु तथा पशुवाही हैं। (४२)

आप गुह्य, धाता, परम, शिव, नारायण, महाजन, निरामय तथा सहस्र सूर्य-चन्द्र सदृश्य रूपवान् हैं। (४३)

आप द्वादश अरों, छः नाभियों, तीन व्यूहों एवं दो युगों वाले कालचक्र तथा ईश एवं पुरुषोत्तम हैं। आपको नमस्कार है। (४४)

आप पराक्रम, विक्रम, हयग्रीव, हरीश्वर, नरेश्वर, ब्रह्मेश और सूर्येश हैं। आपको नमस्कार है। (४५)

आप अश्ववक्त्र, महामेधा, शम्भु, शक्र, प्रभञ्जन, मित्रावरुणमूर्ति, अमूर्ति, अनघ और श्रेष्ठ हैं। (४६)

आप प्राग्वंशकाय, भूतादि, महाभूत, अच्युत और द्विज हैं। आप ऊर्ध्वकर्त्ता, ऊर्ध्व और ऊर्ध्वरेता हैं। आपको नमस्कार है। (४७)

आप महापातकों के विनाशक तथा उपपातकों के नाशक हैं। आप सर्वपापों से निर्लिप्त हैं। मैं आपकी शरण में आया हूँ। (४८)

हे मुनि! प्राचीन काल में महेश्वर ने इस समस्त पापों से मुक्ति देने वाले श्रेष्ठ स्तोत्र को वाराणसी में कहा था। (४९)

तीर्थ के स्वच्छ जल में स्नानकर केशव का दर्शन करने से रुद्र पाप के प्रभाव से मुक्त एवं शान्त हुए थे। (५०)

एतत् पवित्रं त्रिपुरघ्नभाषितं
पठन् नरो विष्णुपरो महर्षे ।
विमुक्तपापो ह्युपशान्तमूर्तिः
संपूज्यते देववरैः प्रसिद्धैः ॥ ५१

इति श्रीवामनपुराणे षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

६१

पुलस्त्य उवाच ।
द्वितीयं पापशमनं स्तवं वक्ष्यामि ते मुने ।
येन सम्यगधीतेन पापं नाशं तु गच्छति ॥ १
मत्स्यं नमस्ये देवेशं कूर्मं गोविन्दमेव च ।
हयशीर्षं नमस्येऽहं भवं विष्णुं त्रिविक्रमम् ॥ २
नमस्ये माधवेशानौ हृषीकेशकुमारिणौ ।
नारायणं नमस्येऽहं नमस्ये गरुडासनम् ॥ ३
ऊर्ध्वकेशं नृसिंहं च रूपधारं कुरुध्वजम् ।
कामपालमखण्डं च नमस्ये ब्राह्मणप्रियम् ॥ ४
अजितं विश्वकर्माणं पुण्डरीकं द्विजप्रियम् ।
हंसं शंभुं नमस्ये च ब्रह्माणं सप्रजापतिम् ॥ ५
नमस्ये शूलबाहुं च देवं चक्रधरं तथा ।
शिवं विष्णुं सुवर्णाक्षं गोपतिं पीतवाससम् ॥ ६
नमस्ये च गदापाणिं नमस्ये च कुशेशयम् ।
अर्धनारीश्वरं देवं नमस्ये पापनाशनम् ॥ ७
गोपालं च सवैकुण्ठं नमस्ये चापराजितम् ।
नमस्ये विश्वरूपं च सौगन्धिं सर्वदाशिवम् ॥ ८
पाञ्चालिकं हयग्रीवं स्वयम्भुवममरेश्वरम् ।

हे महर्षि ! त्रिपुरारि के द्वारा कहे गये इस स्तोत्र का पाठ करने से विष्णुभक्त मनुष्य पापमुक्त और सौम्य होकर प्रसिद्ध तथा श्रेष्ठ देवताओं से पूजित होता है । (५१)

श्रीवामनपुराण में साठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥

६१

पुलस्त्य ने कहा—हे मुनि ! मैं आपसे पापों का शमन करने वाला दूसरा स्तोत्र कहता हूँ । इसका भलीभाँति अध्ययन करने से पाप नष्ट हो जाता है । (१)

मैं देवेश मत्स्य एवं कूर्मरूपधारी गोविन्द को नमस्कार करता हूँ । मैं हयशीर्ष, भव एवं त्रिविक्रम विष्णु को नमस्कार करता हूँ । (२)

मैं माधव, ईशान, हृषीकेश और कुमार को नमस्कार करता हूँ । मैं नारायण को नमस्कार करता हूँ । मैं गरुडासन को नमस्कार करता हूँ । (३)

मैं ऊर्ध्वकेश, नरसिंह, रूप धारण करने वाले, कुरुध्वज, कामपाल, अखण्ड और ब्राह्मणप्रिय देव को नमस्कार करता हूँ । (४)

मैं अजित, विश्वकर्मा, पुण्डरीक, द्विजप्रिय, हंस, शम्भु तथा प्रजापति सहित ब्रह्मा को नमस्कार करता हूँ । (५)

मैं शूलबाहु, चक्रधर देव, शिव, विष्णु, सुवर्णाक्ष, गोपति एवं पीतवासा को प्रणाम करता हूँ । (६)

मैं गदाधारी को नमस्कार करता हूँ । मैं कुशेशय को नमस्कार करता हूँ । मैं अर्धनारीश्वर तथा पापनाशक देव को नमस्कार करता हूँ । (७)

मैं वैकुण्ठसहित गोपाल तथा अपराजित को नमस्कार करता हूँ । मैं विश्वरूप, सौगन्धि, सदाशिव को प्रणाम करता हूँ । (८)

मैं पाञ्चालिक, हयग्रीव, स्वायम्भुव, अमरेश्वर, पुष्कराक्ष,

नमस्ये पुष्कराक्षं च पयोगन्धिं च केशवम् ॥ ९
अविमुक्तं च लोलं च ज्येष्ठेशं मध्यमं तथा ।
उपशान्तं नमस्येऽहं मार्कण्डेयं सजम्बुकम् ॥ १०
नमस्ये पद्मकिरणं नमस्ये वडवामुखम् ।
कार्तिकेयं नमस्येऽहं बाह्लीकं शिखिनं तथा ॥ ११
नमस्ये स्थाणुमनघं नमस्ये वनमालिनम् ।
नमस्ये लाङ्गलीशं च नमस्येऽहं श्रियः पतिम् ॥ १२
नमस्ये च त्रिनयनं नमस्ये हव्यवाहनम् ।
नमस्ये च त्रिसौवर्णं नमस्ये धरणीधरम् ॥ १३
त्रिणाचिकेतं ब्रह्मेशं नमस्ये शशिभूषणम् ।
कपर्दिनं नमस्ये च सर्वामयविनाशनम् ॥ १४
नमस्ये शशिनं सूर्यं ध्रुवं रौद्रं महौजसम् ।
पद्मनाभं हिरण्याक्षं नमस्ये स्कन्दमव्ययम् ॥ १५
नमस्ये भीमहंसौ च नमस्ये हाटकेश्वरम् ।
सदा हंसं नमस्ये च नमस्ये प्राणतर्पणम् ॥ १६

नमस्ये रुक्मकवचं महायोगिनमीश्वरम् ।
नमस्ये श्रीनिवासं च नमस्ये पुरुषोत्तमम् ॥ १७
नमस्ये च चतुर्बाहुं नमस्ये वसुधाधिपम् ।
वनस्पतिं पशुपतिं नमस्ये प्रभुमव्ययम् ॥ १८
श्रीकण्ठं वासुदेवं नीलकण्ठं सदण्डिनम् ।
नमस्ये सर्वमनघं गौरीशं नकुलीश्वरम् ॥ १९
मनोहरं कृष्णकेशं नमस्ये चक्रपाणिनम् ।
यशोधरं महाबाहुं नमस्ये च कुशप्रियम् ॥ २०
भूधरं छादितगदं सुनेत्रं शूलशङ्खिनम् ।
भद्राक्षं वीरभद्रं च नमस्ये शङ्कुकर्णिकम् ॥ २१
वृषध्वजं महेशं च विश्वामित्रं शशिप्रभम् ।
उपेन्द्रं चैव गोविन्दं नमस्ये पङ्कजप्रियम् ॥ २२
सहस्रशिरसं देवं नमस्ये कुन्दमालिनम् ।
कालाग्निं रुद्रदेवेशं नमस्ये कृत्तिवाससम् ॥ २३
नमस्ये छागलेशं च नमस्ये पङ्कजासनम् ।

पयोगन्धि और केशव को नमस्कार करता हूँ। (९)

मैं अविमुक्त, लोल, ज्येष्ठेश, मध्यम, उपशान्त तथा जम्बुक सहित मारकण्डेय को नमस्कार करता हूँ। (१०)

मैं पद्मकिरण को नमस्कार करता हूँ। मैं वड़वामुख को नमस्कार करता हूँ। मैं कार्तिकेय बाह्लीक, तथा शिखी को प्रणाम करता हूँ। (११)

मैं स्थाणु एवं अनघ को नमस्कार करता हूँ तथा वनमाली को नमस्कार करता हूँ। मैं लाङ्गलीश तथा लक्ष्मीपति को नमस्कार करता हूँ। (१२)

मैं त्रिनेत्र को प्रणाम करता हूँ तथा हव्यवाहन को नमस्कार करता हूँ। मैं त्रिसौवर्ण को नमस्कार करता हूँ तथा धरणीश्वर को नमस्कार करता हूँ। (१३)

मैं त्रिणाचिकेत, ब्रह्मेश तथा शशिभूषण को प्रणाम करता हूँ। मैं सर्वरोगविनाशक कपर्दी को प्रणाम करता हूँ। (१४)

मैं चन्द्र, सूर्य, ध्रुव, तथा महान् ओजस्वी रुद्र को प्रणाम करता हूँ। मैं पद्मनाभ, हिरण्याक्ष तथा अव्यय स्कन्द को प्रणाम करता हूँ। (१५)

मैं भीम और हंस को प्रणाम करता हूँ। मैं हाटकेश्वर को प्रणाम करता हूँ। मैं सदाहंस को प्रणाम करता हूँ तथा प्राणतर्पण को प्रणाम करता हूँ। (१६)

मैं रुक्मकवच, महायोगी एवं ईश्वर को नमस्कार करता हूँ। मैं श्रीनिवास को नमस्कार करता हूँ तथा पुरुषोत्तम को नमस्कार करता हूँ। (१७)

मैं चतुर्भुज देव को प्रणाम करता हूँ। मैं वसुधाधिप को प्रणाम करता हूँ। मैं वनस्पति, पशुपति और अव्यय प्रभु को प्रणाम करता हूँ। (१८)

मैं श्रीकण्ठ, वासुदेव, दण्डी सहित नीलकण्ठ, सर्व, अनघ, गौरीश तथा नकुलीश्वर को नमस्कार करता हूँ। (१९)

मैं मनोहर कृष्णकेश तथा चक्रपाणि को नमस्कार करता हूँ। मैं यशोधर, महाबाहु और कुशप्रिय को नमस्कार करता हूँ। (२०)

मैं भूधर, छादितगद, सुनेत्र, शूलशंखी, भद्राक्ष, वीरभद्र तथा शङ्कुकर्णिक को नमस्कार करता हूँ। (२१)

मैं वृषध्वज, महेश, विश्वामित्र, शशिप्रभ, उपेन्द्र, गोविन्द तथा पङ्कजप्रिय को नमस्कार करता हूँ। (२२)

मैं सहस्रशीर्ष तथा कुन्दमाली देव को नमस्कार करता हूँ। मैं कालाग्नि, रुद्रदेवेश तथा कृत्तिवासा को प्रणाम करता हूँ। (२३)

मैं छागलेश को नमस्कार करता हूँ तथा पङ्कजासन को

सहस्राक्षं कोकनदं नमस्ये हरिशंकरम् ॥ २४
अगस्त्यं गरुडं विष्णुं कपिलं ब्रह्मवाङ्मयम् ।
सनातनं च ब्रह्माणं नमस्ये ब्रह्मतत्परम् ॥ २५
अप्रतर्क्यं चतुर्बाहुं सहस्रांशुं तपोमयम् ।
नमस्ये धर्मराजानं देवं गरुडवाहनम् ॥ २६
सर्वभूतगतं शान्तं निर्मलं सर्वलक्षणम् ।
महायोगिनमव्यक्तं नमस्ये पापनाशनम् ॥ २७

निरञ्जनं निराकारं निर्गुणं निर्मलं पदम् ।
नमस्ये पापहन्तारं शरण्यं शरणं व्रजे ॥ २८
एतत् पवित्रं परमं पुराणं
प्रोक्तं त्वगस्त्येन महर्षिणा च ।
धन्यं यशस्यं बहुपापनाशनं
संकीर्तनात् स्मरणात् संश्रवाच्च ॥ २९

इति श्रीवामनपुराणे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

६२

पुलस्त्य उवाच ।
गतेऽथ तीर्थयात्रायां प्रह्लादे दानवेश्वरे ।
कुरुक्षेत्रे समभ्यागाद् यष्टुं वैरोचनो बलिः ॥ १
तस्मिन् महाधर्मयुते तीर्थे ब्राह्मणपुंगवः ।
शुक्रो द्विजातिप्रवरानामन्त्रयत भार्गवान् ॥ २
भृगूनामन्त्र्यमाणान् वै श्रुत्वात्रेयाः सगौतमाः ।
कौशिकाङ्गिरसश्चैव तत्यजुः कुरुजाङ्गलान् ॥ ३
उत्तराशां प्रजग्मुस्ते नदीमनु शतद्रुकाम् ।

नमस्कार करता हूँ। मैं सहस्राक्ष, कोकनद तथा हरिशंकर को नमस्कार करता हूँ। (२४)

मैं अगस्त्य, गरुड, विष्णु, कपिल, ब्रह्मवाङ्मय, सनातन, ब्रह्मा तथा उस ब्रह्म तत्पर को नमस्कार करता हूँ। (२५)

मैं अप्रतर्क्य, चतुर्भुज, सहस्रांशु, तपोमय, धर्मराज एवं गरुड़वाहन देव को नमस्कार करता हूँ। (२६)

मैं सर्वभूतगत, शान्त, निर्मल, सर्वलक्षण, महायोगी, अव्यक्त एवं पापनाशन को नमस्कार करता हूँ। (२७)

मैं निरंजन, निराकार, निर्गुण, निर्मलपदस्वरूप, पापहारक को नमस्कार करता हूँ तथा शरण्य की शरण में जाता हूँ। (२८)

महर्षि अगस्त्य ने इस परम पवित्र पुरातन स्तोत्र को कहा था। इसके कथन, स्मरण तथा श्रवण करने से अनेक पापों का नाश होता है और मनुष्य धन्य एवं यशस्वी होता है। (२९)

श्रीवामनपुराण में एकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६१॥

६२

पुलस्त्य ने कहा—दानवेश्वर प्रह्लाद के तीर्थयात्रा के लिये चले जाने पर विरोचन-पुत्र बलि कुरुक्षेत्र में यज्ञ करने के लिए गये। (१)

उस महान् धर्मयुक्त तीर्थ में ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्राचार्य ने द्विजातिश्रेष्ठ भार्गवों को आमन्त्रित किया। (२)

भृगुवंशीय ब्राह्मणों का आमन्त्रित किया जाना सुनकर अत्रि, गौतम, कौशिक एवं अंगिरा गोत्रिय ब्राह्मणों ने कुरुजाङ्गल का त्याग कर दिया। (३)

वे उत्तर दिशा में शतद्रु नदी के तट पर पहुँचे।

शतद्रवे जले स्नात्वा विपाशां प्रययुस्ततः ॥ ४
विशाय तत्राप्यरतिं स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः ।
प्रजग्मुः किरणां पुण्यां दिनेशकिरणच्युताम् ॥ ५
तस्यां स्नात्वाऽर्च्य देवर्षे सर्व एव महर्षयः ।
ऐरावतीं सुपुण्योदां स्नात्वा जग्मुरथेश्वरीम् ॥ ६
देविकाया जले स्नात्वा पयोष्ण्यां चैव तापसाः ।
अवतीर्णा मुने स्नातुमात्रेयाद्याः शुभां नदीम् ॥ ७
ततो निमग्ना ददृशुः प्रतिबिम्बमथात्मनः ।
अन्तर्जले द्विजश्रेष्ठ महदाश्चर्यकारकम् ॥ ८
उन्मज्जने च ददृशुः पुनर्विस्मितमानसाः ।
ततः स्नात्वा समुत्तीर्णा ऋषयः सर्व एव हि ॥ ९
जग्मुस्ततोऽपि ते ब्रह्मन् कथयन्तः परस्परम् ।
चिन्तयन्तश्च सततं किमेतदिति विस्मिताः ॥ १०
ततो दूरादपश्यन्त वनषण्डं सुविस्तृतम् ।
घनं हरगलश्यामं खगरवनिनिनादितम् ॥ ११
अतितुङ्गतया व्योम आवृण्वानं नगोत्तमम् ।
विस्तृताभिर्जटाभिस्तु अन्तर्भूमिश्च नारद ॥ १२
काननं पुष्पितैर्वृक्षैरविभाति समंततः ।
दशार्द्धवर्णैः सुखदैर्नभस्तारागणैरिव ॥ १३
स दृष्ट्वा कमलैर्व्याप्तं पुण्डरीकैश्च शोभितम् ।
तद्वत् कोकनदैर्व्याप्तं वनं पद्मवनं यथा ॥ १४
प्रजग्मुस्तुष्टिमतुलां ते ह्लादं परमं ययुः ।
विविशुः प्रीतमनसो हंसा इव महासरः ॥ १५
तन्मध्ये ददृशुः पुण्यमाश्रमं लोकपूजितम् ।
चतुर्णां लोकपालानां वर्गाणां मुनिसत्तम ॥ १६
धर्माश्रमं प्राङ्मुखं तु पलाशविटपावृतम् ।
प्रतीच्यभिमुखं ब्रह्मन् अर्थस्येक्षुवनावृतम् ॥ १७
दक्षिणाभिमुखं काम्यं रम्भाशोकवनावृतम् ।

शतद्रु के जल में स्नान कर वे वहाँ से विपाशा नदी के समीप गये। (४)

वहाँ भी मनोनुकूलता न होने के कारण वे लोग स्नान करने के बाद पितरों एवं देवों का अर्चन कर सूर्य की किरणों से उद्भूत किरणा नदी के निकट गये। (५)

हे देवर्षि! उसमें स्नान एवं अर्चन कर सभी महर्षि पुण्योदका ऐरावती नदी के समीप गये एवं उसमें स्नान कर ईश्वरी नदी के तट पर पहुँचे। (६)

हे मुने! देविका और पयोष्णी में स्नान कर आत्रेय आदि तपस्वी शुभा नदी में स्नान करने के लिए उतरे। (७)

हे द्विजश्रेष्ठ! जल में निमग्न उन लोगों ने जल के भीतर महान् आश्चर्यकारक अपना-अपना प्रतिबिम्ब देखा। (८)

विस्मयान्वित महर्षियों ने बाहर निकलने पर पुनः वैसा ही देखा। तदनन्तर स्नान कर सभी ऋषि बाहर निकले। (९)

हे ब्रह्मन्! तदनन्तर वे सभी लोग 'यह क्या है?' इस विषय में आश्चर्यपूर्वक परस्पर वार्तालाप एवं विचार करते हुए चले गये। (१०)

तदुपरान्त उन लोगों ने दूर से ही अतिविस्तृत, शङ्कर के कण्ठ की तरह श्यामवर्ण एवं पक्षियों की ध्वनि से निनादित एक वनराजि देखा। (११)

हे नारद! यह वन अत्यधिक ऊँचा होने के कारण आकाश को आवृत करने वाला था तथा उसकी नीचे की भूमि विस्तृत मूलों से व्याप्त थी। (१२)

यह कानन पाँच वर्णों वाले पुष्पित वृक्षों से तारागणों से सुशोभित आकाश के तुल्य अत्यन्त सुशोभित हो रहा था। (१३)

पद्मवन के सदृश कमलों से व्याप्त, पुण्डरीकों से अलङ्कृत एवं कोकनदों से आकीर्ण उस वन को देखकर वे अत्यन्त सन्तुष्ट एवं आह्लादित हो गये। प्रसन्न मन से वे लोग उसमें इस प्रकार प्रविष्ट हुए जैसे हंस महासरोवर में प्रवेश करते हैं। (१४-१५)

हे मुनिसत्तम! उन लोगों ने उसके मध्य में लोकपालक चार वर्गों धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) का लोकपूजित पवित्र आश्रम देखा। (१६)

हे ब्रह्मन्! पूर्व दिशा की ओर मुख वाला पलाशवृक्ष से आवृत धर्माश्रम, पश्चिमाभिमुख इक्षुवन से घिरा अर्थाश्रम, दक्षिणाभिमुख कदली एवं अशोक के वन से आवृत कामाश्रम तथा उत्तराभिमुख पुन्नाग-वृक्ष से आवृत मोक्षाश्रम

उदङ्मुखं च मोक्षस्य शुद्धस्फटिकवर्चसम् ॥ १८
कृतान्ते त्वाश्रमी मोक्षः कामस्त्रेतान्तरे श्रमी ।
आश्रम्यर्थो द्वापरान्ते तिष्यादौ धर्म आश्रमी ॥ १९
तान्याश्रमाणि मुनयो दृष्ट्वात्रेयादयोऽव्ययाः ।
तत्रैव च रतिं चक्ररखण्डे सलिलाप्लुते ॥ २०
धर्माद्यैर्भगवान् विष्णुरखण्ड विश्रुतः ।
चतुर्मूर्तिर्जगन्नाथः पूर्वमेव प्रतिष्ठितः ॥ २१
समर्चयन्ति ऋषयो योगात्मानो बहुश्रुताः ।
शुश्रूषयाऽथ तपसा ब्रह्मचर्येण नारद ॥ २२
एवं ते न्यवसंस्तत्र समेता मुनयो वने ।
असुरेभ्यस्तदा भीताः स्वाश्रित्याखण्डपर्वतम् ॥ २३
तथाऽन्ये ब्राह्मणा ब्रह्मन् अश्मकुट्टा मरीचिपाः ।
स्नात्वा जले हि कालिन्द्याः प्रजग्मुर्दक्षिणामुखाः ॥ २४
अवन्तिविषयं प्राप्य विष्णुमासाद्य संस्थिताः ।
विष्णोरपि प्रसादेन दुष्प्रवेशं महासुरैः ॥ २५
वालखिल्यादयो जग्मुरवशा दानवाद् भयात् ।
रुद्रकोटिं समाश्रित्य स्थितास्ते ब्रह्मचारिणः ॥ २६
एवं गतेषु विप्रेषु गौतमाङ्गिरसादिषु ।
शुक्रस्तु भार्गवान् सर्वान् निन्ये यज्ञविधौ मुने ॥ २७
अधिष्ठिते भार्गवैस्तु महायज्ञेऽमितद्युते ।
यज्ञदीक्षां बलेः शुक्रश्चकार विधिना स्वयम् ॥ २८
श्वेताम्बरधरो दैत्यः श्वेतमाल्यानुलेपनः ।
मृगाजिनावृतः पृष्ठे बर्हिपत्रविचित्रितः ॥ २९
समास्ते वितते यज्ञे सदस्यैरभिसंवृतः ।
हयग्रीवप्रलम्बाद्यैर्मयबाणपुरोगमैः ॥ ३०
पत्नी विन्ध्यावली चास्य दीक्षिता यज्ञकर्मणि ।
ललनानां सहस्रस्य प्रधाना ऋषिकन्यका ॥ ३१
शुक्रेणाश्वः श्वेतवर्णो मधुमासे सुलक्षणः ।

स्थित था। (१७-१८)

कृतयुग के अन्त मे मोक्ष अपने आश्रम मे निवास करने लगता है, त्रेता में काम आश्रमवासी हो जाता है, द्वापर के अन्त में अर्थ आश्रमी बन जाता है एवं कलि के आदि मे धर्म आश्रम मे रहना प्रारम्भ करता है। (१९)

अव्यय आत्रेय आदि मुनियों ने इन आश्रमों को देखकर उस अखण्ड जलपूर्ण स्थान में सुख से रहने का निश्चय किया। (२०)

धर्म आदि के द्वारा भगवान् विष्णु अखण्ड नाम से विख्यात हैं। जगन्नाथ चार मूर्तियों वाले हैं यह पहले से ही प्रतिष्ठित है। (२१)

हे नारद! बहुश्रुत योगात्मा ऋषि लोग सेवा, तप और ब्रह्मचर्य द्वारा उनकी पूजा करते हैं। (२२)

असुरों से भयभीत वे मुनिगण सम्मिलित रूप से उस अखण्ड पर्वत का भलीभाँति आश्रयण कर रहने लगे। (२३)

हे ब्रह्मन्! अश्मकुट्ट तथा सूर्य रश्मि पीने वाले आदि अन्य ब्राह्मण कालिन्दी के जल में स्नान कर दक्षिण की ओर चले गये। (२४)

वे विष्णु की कृपा के कारण महान् असुरों से दुष्प्रवेश्य अवन्ति नगरी में पहुँचे एवं विष्णु के समीप रहने लगे। (२५)

वालखिल्य आदि ब्रह्मचारी ऋषि दानवों के भय से विवश होकर रुद्रकोटि चले गए और वहीं रहने लगे। (२६)

हे मुने! इस प्रकार गौतम एवं आंगिरस आदि ब्राह्मणों के चले जाने पर शुक्राचार्य सभी भार्गव वंशीय ब्राह्मणों को यज्ञ-कार्य में ले गये। (२७)

हे अमिततेजस्वी! भार्गववंशीय ब्राह्मणों से अधिष्ठित महायज्ञ में स्वयं शुक्राचार्य ने बलि को विधिवत् यज्ञदीक्षा दी। (२८)

श्वेतवस्त्रधारी, श्वेत माल्य एवं अनुलेपन से युक्त, मृगचर्मावृत एवं मयूरपुच्छ से अलङ्कृत, दैत्य बलि हयग्रीव, प्रलम्ब, मय एवं बाण आदि सदस्यों से आवृत होकर विस्तृत यज्ञ-मण्डप में समासीन हुआ। (२९-३०)

उसकी पत्नी विन्ध्यावली भी यज्ञकर्म में दीक्षित हुई। वह ऋषिकन्या सहस्रों ललनाओं में प्रधान थी। (३१)

शुक्राचार्य ने चैत्रमास में सुलक्षण अश्व पृथ्वी पर घूमने के लिये छोड़ा। तारकाक्ष नाम का असुर उसका

महीं विहर्तुमुत्सृष्टस्तारकाक्षोऽन्वगाद्ध तम् ॥ ३२
एवमश्वे समुत्सृष्टे वितते यज्ञकर्मणि ।
गते च मासत्रितये हूयमाने च पावके ॥ ३३
पूज्यमानेषु दैत्येषु मिथुनस्थे दिवाकरे ।
सुषुवे देवजननी माधवं वामनाकृतिम् ॥ ३४

तं जातमात्रं भगवन्तमीशं
नारायणं लोकपतिं पुराणम् ।
ब्रह्मा समभ्येत्य समं महर्षिभिः
स्तोत्रं जगादाथ विभोर्महर्षे ॥ ३५

नमोऽस्तु ते माधव सत्त्वमूर्ते
नमोऽस्तु ते शाश्वत विश्वरूप ।
नमोऽस्तु ते शत्रुवनेन्धनाग्ने
नमोऽस्तु वै पापमहादवाग्ने ॥ ३६

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्ते जगदाधार नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ ३७
नारायण जगन्मूर्ते जगन्नाथ गदाधर ।
पीतवासः श्रियःकान्त जनार्दन नमोऽस्तु ते ॥ ३८
भवांस्त्राता च गोप्ता च विश्वात्मा सर्वगोऽव्ययः ।
सर्वधारी धराधारी रूपधारी नमोऽस्तु ते ॥ ३९
वर्धस्व वर्धिताशेषत्रैलोक्य सुरपूजित ।
कुरुष्व देवपते मघोनोऽश्रुप्रमार्जनम् ॥ ४०
त्वं धाता च विधाता च संहर्ता त्वं महेश्वरः ।
महालय महायोगिन् योगशायिन् नमोऽस्तु ते ॥ ४१
इत्थं स्तुतो जगन्नाथः सर्वात्मा सर्वगो हरिः ।
प्रोवाच भगवान् मह्यं कुरूपनयनं विभो ॥ ४२
ततश्चकार देवस्य जातकर्मादिकाः क्रियाः ।
भरद्वाजो महातेजा बार्हस्पत्यस्तपोधनः ॥ ४३
व्रतबन्धं तथेशस्य कृतवान् सर्वशास्त्रवित् ।
ततो ददुः प्रीतियुताः सर्व एव वरान् क्रमात् ॥ ४४
यज्ञोपवीतं पुलहस्त्वहं च सितवाससी ।
मृगाजिनं कुम्भयोनिर्भरद्वाजस्तु मेखलाम् ॥ ४५
पालाशमददद् दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।

अनुसरण करने लगा। (३२)

इस प्रकार अश्व छोड़े जाने पर, यज्ञ कर्म के चलते रहने पर, अग्नि में हवन करते हुए तीन मास व्यतीत होने पर, दैत्यों के पूजित होने पर तथा सूर्य के मिथुन राशि में सङ्क्रमण करने पर देवमाता अदिति ने वामनाकार माधव को जन्म दिया। (३३-३४)

हे महर्षि ! उन भगवान्, ईश, नारायण, लोकपति पुराणपुरुष के उत्पन्न होते ही ब्रह्मा महर्षियों के साथ उनके समीप गए एवं विभु की स्तुति करने लगे— (३५)

हे सत्त्वमूर्ते ! हे माधव ! आपको नमस्कार है, हे शाश्वत ! हे विश्वरूप ! आपको नमस्कार है। हे शत्रुवनेन्धन के लिए अग्निस्वरूप ! आपको नमस्कार है। हे पापरूपी वन के लिये महादवाग्निस्वरूप ! आपको नमस्कार है। (३६)

हे पुण्डरीकाक्ष ! हे आपको नमस्कार है। हे विश्व भावन ! आपको नमस्कार है। हे जगदाधार ! आपको नमस्कार है। हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है। (३७)

हे नारायण ! हे जगन्मूर्ते ! हे जगन्नाथ ! हे गदाधर ! हे पीताम्बरधारी ! हे लक्ष्मीपति ! हे जनार्दन ! आपको नमस्कार है। (३८)

आप त्राणकर्ता, रक्षक, विश्वात्मा, सर्वगामी, अव्यय, सर्वधारक, धराधारक तथा रूपधारक हैं। आप को नमस्कार है। (३९)

हे देवपूजित ! हे अशेष त्रैलोक्य को बढ़ाने वाले ! आपका अभ्युदय हो। हे देवपति ! आप इन्द्र के अश्रुओं का मार्जन करें। (४०)

आप धाता, विधाता, संहर्ता, महेश्वर, महालय, महायोगी और योगशायी हैं। आप को नमस्कार है। (४१)

इस प्रकार स्तुति किए जाने पर सर्वात्मा, सर्वगामी जगन्नाथ भगवान् हरि ने कहा—हे विभो ! मेरा उपनयन संस्कार कीजिए। (४२)

तदनन्तर महातेजस्वी तपोधन बृहस्पतिवंशीय भरद्वाज ने वामन की जातकर्म आदि क्रियायें सम्पन्न कीं। (४३)

तदुपरान्त सर्वशास्त्रवेत्ता भरद्वाज ने ईश्वर का व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) किया। तदनन्तर अन्य सभी ने प्रसन्न होकर बटुक को क्रमशः वरदान दिया। (४४)

पुलह ने यज्ञोपवीत, मैं (पुलस्त्य) ने दो शुक्ल वस्त्र, अगस्त्य ने मृगचर्म तथा भरद्वाज ने मेखला दी। (४५)

ब्रह्मा के पुत्र मरीचि ने पलाशदण्ड, वारुणि (वसिष्ठ) ने

अक्षसूत्रं वारुणिस्तु कौश्यं वेदमथाङ्गिराः ॥ ४६
छत्रं प्रादाद् रघू राजा उपानद्युगलं नृगः ।
कमण्डलुं बृहत्तेजाः प्रादाद्विष्णोर्बृहस्पतिः ॥ ४७
एवं कृतोपनयनो भगवान् भूतभावनः ।
संस्तूयमानो ऋषिभिः साङ्गं वेदमधीयत ॥ ४८
भरद्वाजादाङ्गिरसात् सामवेदं महाध्वनिम् ।
महदाख्यानसंयुक्तं गन्धर्वसहितं मुने ॥ ४९
मासेनैकेन भगवान् ज्ञानश्रुतिमहार्णवः ।
लोकाचारप्रवृत्त्यर्थमभूच्छ्रुतिविशारदः ॥ ५०
सर्वशास्त्रेषु नैपुण्यं गत्वा देवोऽक्षयोऽव्ययः ।
प्रोवाच ब्राह्मणश्रेष्ठं भरद्वाजमिदं वचः ॥ ५१
श्रीवामन उवाच ।
ब्रह्मन् व्रजामि देह्याज्ञां कुरुक्षेत्रं महोदयम् ।
तत्र दैत्यपतेः पुण्यो हयमेधः प्रवर्तते ॥ ५२
समाविष्टानि पश्यस्व तेजांसि पृथिवीतले ।
ये संनिधानाः सततं मदंशाः पुण्यवर्धनाः ।
तेनाहं प्रतिजानामि कुरुक्षेत्रं गतो बलिः ॥ ५३
भरद्वाज उवाच ।
स्वेच्छया तिष्ठ वा गच्छ नाहमाज्ञापयामि ते ।
गमिष्यामो वयं विष्णो बलेरध्वरं मा खिद ॥ ५४
यद् भवन्तमहं देव परिपृच्छामि तद् वद ।
केषु केषु विभो नित्यं स्थानेषु पुरुषोत्तम ।
सान्निध्यं भवतो ब्रूहि ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ५५
वामन उवाच ।
श्रूयतां कथयिष्यामि येषु येषु गुरो अहम् ।
निवसामि सुपुण्येषु स्थानेषु बहुरूपवान् ॥ ५६
ममावतारैर्वसुधा नभस्तलं
पातालमम्भोनिधयो दिवश्च ।
दिशः समस्ता गिरयोऽम्बुदाश्च
व्याप्ता भरद्वाज ममानुरूपैः ॥ ५७

अक्षसूत्र एवं अंगिरा ने रेशमी वस्त्र तथा वेद दिया।(४६) राजा रघु ने छत्र, नृग ने एक जोड़ा जूता एवं अति तेजस्वी बृहस्पति ने विष्णु को कमण्डलु दिया। (४७)

इस प्रकार उपनयन संस्कार हो जाने पर ऋषियों से संस्तुत भगवान् भूतभावन ने (शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) इन अंगों के साथ चारों वेदों का अध्ययन किया। (४८)

हे मुनि! उन्होंने आङ्गिरस भरद्वाज से गन्धर्वविद्या सहित महान् आख्यानों से पूर्ण महाध्वन्यात्मक सामवेद का अध्ययन किया। (४९)

इस प्रकार ज्ञानस्वरूप-श्रुति के महासमुद्र भगवान् एक मास में लोकाचार की प्रवृत्ति हेतु श्रुतिविशारद हो गये। (५०)

समस्त शास्त्रों में निपुण होकर अक्षय, अव्यय वामन ने ब्राह्मण श्रेष्ठ भरद्वाज से यह वचन कहा। (५१)

श्रीवामन ने कहा—हे ब्रह्मन्! मैं अत्यन्त उत्कृष्ट कुरुक्षेत्र तीर्थ जाना चाहता हूँ। आप आज्ञा दीजिए। वहाँ दैत्यराज बलि का पवित्र अश्वमेध यज्ञ हो रहा है। (५२)

देखिये, पृथ्वीतल पर जो पुण्यवर्धक मेरे स्थान हैं उनमें तेजों का समावेश हो रहा है। अत मुझे यह ज्ञात हो रहा है कि बलि कुरुक्षेत्र में स्थित है। (५३)

भरद्वाज ने कहा—आप अपनी इच्छा से यहाँ रहें अथवा जायँ। मैं आप को आदेश नहीं दूँगा। हे विष्णु! हमलोग बलि के यज्ञ में जायेंगे। आप चिन्ता न करें। (५४)

हे देव! मैं आप से जो पूछता हूँ उसे बतलायें। हे विभु! हे पुरुषोत्तम! मैं यथार्थरूप से यह जानना चाहता हूँ कि आप किन किन स्थानों में रहते हैं। (५५)

वामन ने कहा—हे गुरु! आप सुनें। अनेक रूपयुक्त मैं जिन-जिन स्थानों में मैं बहुत से रूपों को धारण कर रहता हूँ उनका वर्णन कर रहा हूँ। (५६)

हे भरद्वाज! मेरे अनुरूप मेरे अवतारों से पृथिवी, आकाश, पाताल, समुद्र, स्वर्ग, सभी दिशायें, पर्वत, तथा मेघ व्याप्त हैं। (५७)

ये दिव्या ये च भौमा जलगगनचराः स्थावरा जङ्गमाश्च
सेन्द्राः सार्काः सचन्द्रा यमवसुवरुणा ह्यग्नयः सर्वपालाः।
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ता द्विजखगसहिता मूर्तिमन्तो ह्यमूर्ताः
ते सर्वे मत्प्रसूता बहु विविधगुणाः पूरणार्थं पृथिव्याः॥५८

एते हि मुख्याः सुरसिद्धदानवैः
पूज्यास्त्वया संनिहिता महीतले।
यैर्दृष्टमात्रैः सहसैव नाशं
प्रयाति पापं द्विजवर्य कीर्तनैः॥ ५९

इति श्रीवामनपुराणे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

६३

श्रीभगवानुवाच।
आद्यं मात्स्यं महद्रूपं संस्थितं मानसे ह्रदे।
सर्वपापक्षयकरं कीर्तनस्पर्शनादिभिः॥ १
कौर्ममन्यत्सन्निधानं कौशिक्यां पापनाशनम्।
हयशीर्षं च कृष्णांशे गोविन्दं हस्तिनापुरे॥ २
त्रिविक्रमं च कालिन्द्यां लिङ्गभेदे भवं विभुम्।
केदारे माधवं शौरिं कुब्जाम्रे हृषमूर्धजम्॥ ३
नारायणं बदर्यां च वाराहे गरुडासनम्।
जयेशं भद्रकर्णे च विपाशायां द्विजप्रियम्॥ ४
रूपधारमिरावत्यां कुरुक्षेत्रे कुरुध्वजम्।
कृतशौचे नृसिंहं च गोकर्णे विश्वकर्मिणम्॥ ५
प्राचीने कामपालं च पुण्डरीकं महाम्भसि।
विशाखयूपे ह्यजितं हंसं हंसपदे तथा॥ ६
पयोष्णायामखण्डं च वितस्तायां कुमारिलम्।

हे ब्रह्मन्! दिव्य, पार्थिव, जलचर, आकाशचर, स्थावर, जङ्गम, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, वसु, वरुण, सभी अग्नियाँ, समस्तपालक, ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक पशु-पक्षी सहित समस्त मूर्तिमान् और अमूर्त विविध गुण सम्पन्न ये सभी पदार्थ पृथ्वी की पूर्ति के लिए मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं। (५८)

पृथ्वी पर स्थित ये सभी मुख्य पदार्थ देवों, सिद्धों एवं दानवों से पूजनीय हैं। हे द्विजवर्य! इनके कीर्तन एवं दर्शनमात्र से पाप सहसा नष्ट हो जाता है। (५९)

श्रीवामनपुराण में बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥

६३

श्रीभगवान् ने कहा—कीर्तन और स्पर्श आदि से सभी पापों का विनाश करने वाला मेरा प्रथम विग्रह मत्स्यरूप मानस सरोवर में स्थित है। (१)

दूसरा पापनाशक कूर्मावतार कौशिकी नदी में स्थित है। कृष्णांश में हयशीर्ष अवतार तथा हस्तिनापुर में गोविन्दमूर्ति विराजमान है। (२)

कालिन्दी में त्रिविक्रम, लिङ्गभेद में व्यापक भव, केदार तीर्थ में माधव शौरि और कुब्जाम्र में हृषमूर्धज रूप स्थित है। (३)

बदरिकाश्रम में नारायण, वाराह में गरुडासन, भद्रकर्ण में जयेश एवं विपाशा नदी के तट पर द्विजप्रिय रूप विद्यमान् है। (४)

इरावती में रूपधार, कुरुक्षेत्र में कुरुध्वज, कृतशौच में नृसिंह और गोकर्ण में विश्वकर्मा रूप वर्तमान है। (५)

प्राचीन स्थान में कामपाल, महाम्भस् में पुण्डरीक, विशाखयूप में अजित तथा हंसपद में हंस रूप विद्यमान है। (६)

पयोष्णी में अखण्ड, वितस्ता में कुमारिल, मणिमान्

मणिमत्पर्वते शम्भुं ब्रह्मण्ये च प्रजापतिम् ॥ ७

मधुनद्यां चक्रधरं शूलबाहुं हिमालये ।
विद्धि विष्णुं मुनिश्रेष्ठ स्थितमोषधिसानुनि ॥ ८

भृगुतुङ्गे सुवर्णाक्षं नैमिषे पीतवाससम् ।
गयायां गोपतिं देवं गदापाणिनमीश्वरम् ॥ ९

त्रैलोक्यनाथं वरदं गोप्रतारे कुशेशयम् ।
अर्द्धनारीश्वरं पुण्ये माहेन्द्रे दक्षिणे गिरौ ॥ १०

गोपालमुत्तरे नित्यं महेन्द्रे सोमपीथिनम् ।
वैकुण्ठमपि सह्याद्रौ पारियात्रेऽपराजितम् ॥ ११

कशेरुदेशे देवेशं विश्वरूपं तपोधनम् ।
मलयाद्रौ च सौगन्धिं विन्ध्यपादे सदाशिवम् ॥ १२

अवन्तिविषये विष्णुं निषधेष्वमरेश्वरम् ।
पाञ्चालिकं च ब्रह्मर्षे पाञ्चालेषु व्यवस्थितम् ॥ १३

महोदये हयग्रीवं प्रयागे योगशायिनम् ।
स्वयंभुवं मधुवने अयोगन्धिं च पुष्करे ॥ १४

तथैव विप्रप्रवर वाराणस्यां च केशवम् ।
अविमुक्तकमत्रैव लोलश्चात्रैव गीयते ॥ १५

पद्मायां पद्मकिरणं समुद्रे वडवामुखम् ।
कुमारधारे वाह्लीशं कार्तिकेयं च बर्हिणम् ॥ १६

अजेशे शंभुमनघं स्थाणुं च कुरुजाङ्गले ।
वनमालिनमाहुर्मां किष्किन्धावासिनो जनाः ॥ १७

वीरं कुवलयारूढं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
श्रीवत्साङ्कमुदाराङ्गं नर्मदायां श्रियः पतिम् ॥ १८

माहिष्मत्यां त्रिनयनं तत्रैव च हुताशनम् ।
अर्बुदे च त्रिसौपर्णं क्ष्माधरं सूकराचले ॥ १९

त्रिणाचिकेतं ब्रह्मर्षे प्रभासे च कपर्दिनम् ।
तत्रैवान्यापि विख्यातं तृतीयं शशिशेखरम् ॥ २०

उदये शशिनं सूर्यं ध्रुवं च त्रितयं स्थितम् ।
हेमकूटे हिरण्याक्षं स्कन्दं शरवणे मुने ॥ २१

महालये स्मृतं रुद्रमुत्तरेषु कुरुष्वथ ।

पर्वत में शम्भु एवं ब्रह्मण्य में प्रजापति रूप स्थित है। (७)

हे मुनिश्रेष्ठ ! मधुनदी में चक्रधर, हिमालय में शूलबाहु और ओषधिप्रस्थ में मेरे विष्णु रूप को अवस्थित जानें। (८)

भृगुतुंग में सुवर्णाक्ष, नैमिष में पीतवासा एवं गया में गोपति गदाधर ईश्वर रूप वर्तमान है। (९)

गोप्रतार में वरदायक त्रैलोक्यनाथ कुशेशय एवं पवित्र महेन्द्र पर्वत पर दक्षिण में अर्धनारीश्वर रूप विद्यमान है। (१०)

महेन्द्र पर्वत पर उत्तर में सोमपीथी गोपाल, सह्याद्रि पर्वत में वैकुण्ठ एवं पारियात्र में अपराजित रूप स्थित है। (११)

कशेरु देश में तपोधन विश्वरूप देवेश, मलय पर्वत में सौगन्धि तथा विन्ध्यपाद में सदाशिव रूप वर्तमान है। (१२)

हे महर्षि ! अवन्ति देश में विष्णु, निषध देश में अमरेश्वर और पांचाल देश में मेरा पांचालिक रूप व्यवस्थित है। (१३)

महोदय में हयग्रीव, प्रयाग में योगशायी, मधुवन में स्वयम्भुव और पुष्कर में अयोगन्धि रूप विद्यमान है। (१४)

हे विप्रश्रेष्ठ ! उसी प्रकार वाराणसी में मेरा केशव रूप तथा यहीं पर अविमुक्तक तथा लोल रूप को स्थित कहा गया है। (१५)

पद्मा में पद्मकिरण, समुद्र में वडवामुख तथा कुमारधार में बाह्लीश और वहीं कार्तिकेय रूप स्थित है। (१६)

अजेश में अनघ शम्भु तथा कुरुजांगल में स्थाणु मूर्ति है। किष्किन्धा के निवासी लोग मुझे वनमाली कहते हैं। (१७)

नर्मदा के क्षेत्र में मुझे वीर, कुवलयारूढ, शङ्खचक्र-गदाधर, श्रीवत्साङ्क एवं उदाराङ्ग श्रीपति कहा जाता है। (१८)

माहिष्मती में मेरा त्रिनयन एवं हुताशन रूप विद्यमान है। इसी प्रकार अर्बुद में त्रिसौपर्ण एवं सूकराचल में मेरा क्ष्माधर रूप अवस्थित है। (१९)

हे महर्षि ! प्रभास में मेरा त्रिणाचिकेत, कपर्दी एवं तृतीय शशिशेखर रूप विख्यात है। (२०)

उदयगिरि में चन्द्र, सूर्य और ध्रुव ये तीन मूर्तियाँ अवस्थित हैं। हे मुनि ! हेमकूट में हिरण्याक्ष एवं शरवण में स्कन्द नामक रूप विद्यमान है। (२१)

हे मुनिश्रेष्ठ ! महालय में रुद्र एवं उत्तरकुरु में सर्व-

पद्मनाभं मुनिश्रेष्ठ सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥ २२
समगोदावरे ब्रह्मन् विख्यातं हाटकेश्वरम् ।
तत्रैव च महाहंसं प्रयागेऽपि वटेश्वरम् ॥ २३
शोणे च रुक्मकवचं कुण्डिने प्राणतर्पणम् ।
भिल्लीवने महायोग माद्रेषु पुरुषोत्तमम् ॥ २४
प्लक्षावतरणे विश्वं श्रीनिवासं द्विजोत्तम ।
शूर्पारके चतुर्बाहुं मगधायां सुधापतिम् ॥ २५
गिरिव्रजे पशुपतिं श्रीकण्ठं यमुनातटे ।
वनस्पतिं समाख्यात दण्डकारण्यवासिनम् ॥ २६
कालिञ्जरे नीलकण्ठं सरय्वां शंभुमुत्तमम् ।
हंसयुक्तं महाकोश्यां सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २७
गोकर्णे दक्षिणे शर्वं वासुदेवं प्रजामुखे ।
विन्ध्यशृङ्गे महाशौरिं कन्यायां मधुसूदनम् । २८
त्रिकूटशिखरे ब्रह्मन् चक्रपाणिनमीश्वरम् ।
लौहदण्डे हृषीकेशं कोसलायां मनोहरम् ॥ २९
महाबाहुं सुराष्ट्रे च नवराष्ट्रे यशोधरम् ।
भूधरं देविकानद्यां महोदायां कुशप्रियम् ॥ ३०
गोमत्यां छादितगदं शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम् ।
सुनेत्रं सैन्धवारण्ये शूरं शूरपुरे स्थितम् ॥ ३१
रुद्राख्यं च हिरण्वत्यां वीरभद्रं त्रिविष्टपे ।
शङ्कुकर्णं च भीमायां भीमं शालवने विदुः ॥ ३२
विश्वामित्रं च गदितं कैलासे वृषभध्वजम् ।
महेशं महिलाशैले कामरूपे शशिप्रभम् ॥ ३३
वलभ्यामपि गोमित्रं कटाहे पङ्कजप्रियम् ।
उपेन्द्रं सिंहलद्वीपे शक्राह्वे कुन्दमालिनम् ॥ ३४
रसातले च विख्यातं सहस्रशिरसं मुने ।
कालाग्निरुद्रं तत्रैव तथाऽन्यं कृत्तिवाससम् ॥ ३५
सुतले कूर्ममचलं वितले पङ्कजासनम् ।
महातले गुरो ख्यात देवेशं छागलेश्वरम् ॥ ३६
तले सहस्रचरणं सहस्रभुजमीश्वरम् ।
सहस्राक्षं परिख्यातं मुसलाकृष्टदानवम् ॥ ३७
पाताले योगिनामीशं स्थितश्च हरिशंकरम् ।

सौख्यप्रद पद्मनाभ रूप विख्यात है। (२२)

हे ब्रह्मन्! समगोदावर मे विख्यात हाटकेश्वर एव महाहंस तथा प्रयाग में वटेश्वर रूप अवस्थित है। (२३)

शोण मे रुक्मकवच, कुण्डिन मे प्राणतर्पण, भिल्लीवन में महायोग, माद्र मे पुरुषोत्तम रूप विद्यमान है। (२४)

हे द्विजोत्तम! प्लक्षावतरण मे विश्वात्मक श्रीनिवास, शूर्पारक में चतुर्बाहु एवं मगधा में सुधापति रूप स्थित है। (२५)

गिरिव्रज मे पशुपति, यमुनातट पर श्रीकण्ठ एव दण्डकारण्य मे मेरा वनस्पति रूप विख्यात है। (२६)

कालिंजर में नीलकण्ठ, सरयू मे उत्तम शम्भु एव महाकोशी मे सर्वपापविनाशक हंसयुक्तरूप स्थित है। (२७)

दक्षिण गोकर्ण में शर्व, प्रजामुख में वासुदेव, विन्ध्य पर्वत के शिखर में महाशौरि एव कन्या में मधुसूदन रूप विद्यमान है। (२८)

हे ब्रह्मन्! त्रिकूटपर्वत के शिखर पर चक्रपाणि ईश्वर, लौहदण्ड मे हृषीकेश तथा कोशला मे मनोहर रूप वर्तमान है। (२९)

सुराष्ट्र मे महाबाहु, नवराष्ट्र में यशोधर, देविका नदी मे भूधर तथा महोदा मे कुशप्रिय रूप स्थित है। (३०)

गोमती में छादितगद, शंखोद्धार मे शंखी, सैन्धवारण्य मे सुनेत्र एव शूरपुर मे शूर रूप विद्यमान है। (३१)

हिरण्वती में रुद्र, त्रिविष्टप मे वीरभद्र, भीमा मे शंकुकर्ण और शालवन में भीम नामक रूप को लोग जानते है। (३२)

कैलास मे वृषभध्वज विश्वामित्र, महिलाशैल मे महेश एव कामरूप मे शशिप्रभ रूप वर्तमान है। (३३)

वलभी मे गोमित्र, कटाह मे पङ्कजप्रिय, सिंहलद्वीप में उपेन्द्र एव शक्राह्व मे कुन्दमाली नामक रूप स्थित है। (३४)

हे मुने! रसातल मे विख्यात सहस्रशीर्ष एव कालाग्नि रुद्र तथा कृत्तिवासा नामक रूप विद्यमान है। (३५)

हे गुरु! सुतल मे अचल कूर्म, वितल मे पङ्कजासन तथा महातल में छागलेश्वर नामक विख्यात देवेश रूप स्थित है। (३६)

तल में सहस्रचरण, सहस्रबाहु एव मुसल से दानव का आकृष्ट करने वाला मेरा सहस्राक्ष रूप अवस्थित है। (३७)

धरातले कोकनदं मेदिन्यां चक्रपाणिनम् ॥ ३८
भुवर्लोके च गरुडं स्वर्लोके विष्णुमव्ययम् ।
महर्लोके तथाऽगस्त्यं कपिलं च जने स्थितम् ॥ ३९
तपोलोकेऽखिलं ब्रह्मन् वाङ्मयं सत्यसंयुतम् ।
ब्रह्माणं ब्रह्मलोके च सप्तमे वै प्रतिष्ठितम् ॥ ४०
सनातनं तथा शैवे परं ब्रह्म च वैष्णवे ।
अप्रतर्क्यं निरालम्बे निराकाशे तपोमयम् ॥ ४१
जम्बूद्वीपे चतुर्बाहुं कुशद्वीपे कुशेशयम् ।
प्लक्षद्वीपे मुनिश्रेष्ठ ख्यातं गरुडवाहनम् ॥ ४२
पद्मनाभं तथा क्रौञ्चे शाल्मले वृषभध्वजम् ।
सहस्रांशुः स्थितः शाके धर्मराट् पुष्करे स्थितः ॥ ४३
तथा पृथिव्यां ब्रह्मर्षे शालग्रामे स्थितोऽस्म्यहम् ।
सजलस्थलपर्यन्तं चरेषु स्थावरेषु च ॥ ४४
एतानि पुण्यानि ममालयानि
ब्रह्मन् पुराणानि सनातनानि ।
धर्मप्रदानीह महौजसानि
संकीर्तनीयान्यघनाशनानि ॥ ४५
संकीर्तनात् स्मरणाद् दर्शनाच्च
संस्पर्शनादेव च देवतायाः ।
धर्मार्थकामाद्यमवर्गमेव
लभन्ति देवा मनुजाःससाध्याः ॥ ४६
एतानि तुभ्यं निनिवेदितानि
ममालयानीह तपोमयानि ।
उत्तिष्ठ गच्छामि महासुरस्य
यज्ञं सुराणां हि हिताय विप्र ॥ ४७
पुलस्त्य उवाच ।
इत्येवमुक्त्वा वचनं महर्षे
विष्णुर्भरद्वाजमृषिं महात्मा ।
विलासलीलागमनो गिरीन्द्रात्
स चाभ्यगच्छत् कुरुजाङ्गलं हि ॥ ४८

इति श्रीवामनपुराणे त्रिषष्टितमोऽध्याय ॥६३॥

पाताल में योगीश हरिशङ्कर, धरातल पर कोकनद तथा मेदिनी में चक्रपाणि रूप वर्तमान हैं। (३८)

भुवर्लोक में गरुड़, स्वर्लोक में अव्यय विष्णु, महर्लोक में अगस्त्य तथा जनलोक में कपिल नामक रूप विद्यमान हैं। (३९)

हे ब्रह्मन्! तपोलोक में सत्यसंयुक्त अखिल वाङ्मय एवं सप्तम ब्रह्मलोक में ब्रह्मा नामक रूप प्रतिष्ठित हैं। (४०)

शिवलोक में सनातन, विष्णुलोक में परम ब्रह्म, निरालम्ब में अप्रतर्क्य एवं निराकाश में तपोमय नामक रूप स्थित हैं। (४१)

हे मुनिश्रेष्ठ! जम्बू द्वीप में चतुर्बाहु, कुशद्वीप में कुशेशय एवं प्लक्षद्वीप में गरुडवाहन नाम से विख्यात रूप वर्तमान हैं। (४२)

क्रौञ्चद्वीप में पद्मनाभ, शाल्मलद्वीप में वृषभध्वज, शाकद्वीप में सहस्रांशु तथा पुष्कर द्वीप में धर्मराज नामक रूप विद्यमान हैं। (४३)

हे ब्रह्मर्षि! इसी प्रकार पृथ्वी में मैं शालग्राम के भीतर अवस्थित हूँ। इस प्रकार जल, स्थल से लेकर समस्त चराचर में मैं वर्तमान हूँ। (४४)

हे ब्रह्मन्! ये ही मेरे पुण्य, पुरातन एवं सनातन धर्मप्रद, अत्यन्त ओजस्वी, सङ्कीर्तन योग्य एवं अघनाशक निवास स्थान हैं। (४५)

देवता के कीर्तन, स्मरण, दर्शन और स्पर्श करने से ही देव, मनुष्य और साध्य लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करते हैं। (४६)

हे विप्र! मैंने आप से अपने इन तपोमय स्थानों को कहा। उठिए, देवताओं का हित साधन करने के लिए मैं बलि के यज्ञ में जाता हूँ। (४७)

पुलस्त्य ने कहा—हे महर्षि! महात्मा विष्णु महर्षि भरद्वाज से इस प्रकार का वचन कहकर विलासपूर्वक चलते हुए उस गिरीन्द्र से कुरुजांगल में पहुँचे। (४८)

श्रीवामनपुराण में तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥

६४

पुलस्त्य उवाच ।

ततः समागच्छति वासुदेवे
मही चकम्पे गिरयश्च चेलुः ।
क्षुब्धाः समुद्रा दिवि ऋक्षमण्डलो
बभौ विपर्यस्तगतिर्मर्हर्षे ॥ १

यज्ञः समागात् परमाकुलत्वं
न वेद्मि किं मे मधुहा करिष्यति ।
यथा प्रदग्धोऽस्मि महेश्वरेण
किं मां न संधक्ष्यति वासुदेवः ॥ २

ऋक्सामामन्त्राहुतिभिर्हुताभि-
र्वितानकीयान् ज्वलनास्तु भागान् ।
भक्त्या द्विजेन्द्रैरपि संप्रपादितान्
नैव प्रतीच्छन्ति विभोर्भयेन ॥ ३

तान् दृष्ट्वा घोररूपांस्तु उत्पातान् दानवेश्वरः ।
पप्रच्छोशनसं शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ ४

किमर्थमाचार्य मही सशैला
रम्भेव वाताभिहता चचाल ।
किमासुरीयान् सुहुतानपीह
भागान् न गृह्णन्ति हुताशनाश्च ॥ ५

क्षुब्धाः किमर्थं मकरालयाश्च भो
ऋक्षा न खे किं प्रचरन्ति पूर्ववत् ।
दिशः किमर्थं तमसा परिप्लुता
दोषेण कस्याद्य वदस्व मे गुरो ॥ ६

पुलस्त्य उवाच ।

शुक्रस्तद् वाक्यमाकर्ण्य विरोचनसुतेरितम् ।
अथ ज्ञात्वा कारणं च बलिं वचनमब्रवीत् ॥ ७

शुक्र उवाच ।

शृणुष्व दैत्येश्वर येन भागान्
नामी प्रतीच्छन्ति हि आसुरीयान् ।
हुताशना मन्त्रहुतानपीह
नूनं समागच्छति वासुदेवः ॥ ८

तदङ्घ्रिविक्षेपमपारयन्ती

पुलस्त्य ने कहा—हे महर्षि! तदनन्तर वामन रूपधारी वासुदेव के आने पर पृथ्वी कम्पित होने लगी, पर्वत विचलित हो उठे, समुद्र आन्दोलित हो गये एवं आकाश में तारा समूह की गति अस्त-व्यस्त हो गयी। (१)

यज्ञ भी अत्यन्त व्याकुल होकर सोचने लगा—*न जाने मधुसूदन वासुदेव आकर मेरा क्या करेंगे?* जैसे महेश्वर ने मुझे दग्ध कर दिया था, क्या वासुदेव भी तो मुझे वैसे ही दग्ध नहीं कर देंगे? (२)

द्विजेन्द्रों द्वारा भक्ति पूर्वक ऋग्वेद एवं सामवेद के मन्त्रों की आहुतियों से हुत यज्ञीय भागों को अग्नि विष्णु के भय से नहीं ग्रहण कर रहे थे। (३)

उन भयङ्कर उत्पातों को देखकर दानवेश्वर (बलि) ने उशना शुक्राचार्य को प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर उनसे पूछा— (४)

हे आचार्य! पर्वतों सहित पृथ्वी वायु से आहत केले के वृक्ष सदृश क्यों कम्पित हो रही है एवं अग्नि भी भली भाँति आहुत आसुरीय भागों को क्यों नहीं ग्रहण कर रहे हैं? (५)

समुद्र क्यों क्षुब्ध हो उठे हैं? आकाश में नक्षत्र पूर्ववत् क्यों नहीं सचार कर रहे हैं एवं दिशाएँ क्यों *अन्धकार से आवृत हो गयी हैं? हे गुरु! मुझे यह* बतलाएँ कि किसके दोष से यह सब हो रहा है? (६)

पुलस्त्य ने कहा—विरोचन पुत्र द्वारा कहे गये उस वाक्य को सुनने के उपरान्त कारण को जानकर शुक्र ने बलि से कहा। (७)

शुक्राचार्य ने कहा—हे दैत्येश्वर! सुनो। निश्चय ही वासुदेव आ रहे हैं। इसीलिये अग्नि मन्त्र के द्वारा हुत होने पर भी आसुरीय भागों को नहीं ग्रहण कर रहे हैं। (८)

हे दितीश! उनके पदक्षेप का भार सहन न कर सकने के कारण पर्वतों सहित पृथ्वी कम्पित हो रही है।

महीं सशैला चलिता दितीश ।
तस्यां चलत्यां मकरालयामी
उद्वृत्तवेला दितिजाद्य जाताः ॥ ९

पुलस्त्य उवाच ।

शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा बलिर्भार्गवमब्रवीत् ।
धर्मं सत्यं च पथ्यं च सर्वोत्साहसमीरितम् ॥ १०

बलिरुवाच ।

आयाते वासुदेवे वद मम भगवन् धर्मकामार्थतत्त्वं
किं कार्यं किं च देयं मणिकनकमयो भूगजाश्वादिकं वा ।
किं वा वाच्यं मुरारेर्निजहितमथवा तद्धितं वा प्रयुञ्जे
तथ्यं पथ्यं प्रियं भो मम वद शुभदं तत्करिष्ये न चान्यत् ॥ ११

पुलस्त्य उवाच ।

तद् वाक्यं भार्गवः श्रुत्वा दैत्यनाथेरितं वरम् ।
विचिन्त्य नारद प्राह भूतभव्यविदीश्वरः ॥ १२

त्वया कृता यज्ञभुजोऽसुरेन्द्रा
बहिष्कृता ये श्रुतिदृष्टमार्गे ।
श्रुतिप्रमाणं मखभोजिनो बहिः
सुरास्तदर्थं हरिरभ्युपैति ॥ १३

तस्याध्वरं दैत्यसमागतस्य
कार्यं हि किं मां परिपृच्छसे यत् ।
कार्यं न देयं हि विभो तृणाग्रं
यदध्वरे भूकनकादिकं वा ॥ १४

वाच्यं तथा साम निरर्थकं विभो
कस्ते वरं दातुमलं हि शक्नुयात् ।
यस्योदरे भूर्भुवनाकपाल-
रसातलेशा निवसन्ति नित्यशः ॥ १५

बलिरुवाच ।

मया न चोक्तं वचनं हि भार्गव
न चास्ति मह्यं न च दातुमुत्सहे ।
ममागतेऽप्यर्थिनि हीनवृत्ते
जनार्दने लोकपतौ कथं तु ॥ १६

एवं च श्रूयते श्लोकः सतां कथयतां विभो ।
सद्भावो ब्राह्मणेष्वेव कर्त्तव्यो भूतिमिच्छता ।
दृश्यते हि तथा तच्च सत्यं ब्राह्मणसत्तम ॥ १७

हे दितिज ! पृथिवी के विचलित होने से ये समुद्र आज सीमा का उल्लंघन कर गये हैं । (९)

पुलस्त्य ने कहा—शुक्र का वचन सुनकर बलि ने भार्गव से धर्मयुक्त, सत्य, हितप्रद और सभी प्रकार के उत्साह से युक्त वचन कहा । (१०)

बलि ने कहा—हे भगवन् ! वासुदेव के आने पर मेरे करने योग्य धर्म, काम एवं अर्थ के तत्त्व को बतलाएँ । मैं उन्हें मणि, स्वर्ण, पृथ्वी, हाथी अथवा अश्व में से क्या दान करूँ ? मैं मुरारि से क्या कहूँ ? अपना अथवा उनका क्या हित साधन करूँ ? आप मुझे हितकारी, शुभ तथा प्रिय तथ्य बतलाएँ । मैं वही करूँगा, अन्य कुछ नहीं करूँगा । (११)

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद ! दैत्यनाथ द्वारा कहे गए परम श्रेष्ठ वचन को सुनने के उपरान्त विचार कर भूत एवं भविष्य के ज्ञाता भार्गव ने कहा— (१२)

तुमने श्रुति द्वारा प्रतिपादित मार्ग में बहिष्कृत असुरेन्द्रों को यज्ञभोजी बनाया है एवं श्रुति प्रमाणानुसार मखभोगी देवों को बहिष्कृत कर दिया है । इसी कारण से हरि आ रहे हैं । (१३)

हे दैत्य ! तुमने मुझसे जो यह पूछा है कि यज्ञ में उनके आने पर क्या करना चाहिए, (उसके विषय में मेरा यह कहना है कि) यज्ञ में तृण के अग्रभाग के बराबर भी पृथ्वी या सुवर्णादि उन्हें नहीं देना चाहिए । (१४)

उनसे इस प्रकार का अर्थहीन सामयुक्त वचन कहना चाहिए कि 'हे विभो ! जिसके उदर में भूर्लोक, भुवर्लोक एवं स्वर्लोक के अधिपति तथा रसातल के स्वामी नित्य निवास करते हैं ऐसे आप को दान देने में कौन समर्थ है ? (१५)

बलि ने कहा—हे भार्गव ! आचारहीन याचक के आने पर भी मैंने यह वचन नहीं कहा कि मेरे पास नहीं है और मैं देना नहीं चाहता । अतः लोकस्वामी जनार्दन के याचक बनकर आने पर मैं ऐसा कैसे कह सकता हूँ ? (१६)

हे विभो ! सज्जनों के द्वारा कहा गया इस प्रकार का श्लोक सुना जाता है कि ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले

पूर्वाभ्यासेन कर्माणि संभवन्ति नृणां स्फुटम् ।
वाक्कायमानसानीह योन्यन्तरगतान्यपि ॥ १८
किं वा त्वया द्विजश्रेष्ठ पौराणी न श्रुता कथा ।
या वृत्ता मलये पूर्वं कोशकारसुतस्य तु ॥ १९
शुक्र उवाच ।
कथयस्व महाबाहो कोशकारसुताश्रयाम् ।
कथां पौराणिकीं पुण्यां महाकौतूहलं हि मे ॥ २०
बलिरुवाच ।
शृणुष्व कथयिष्यामि कथामेतां मखान्तरे ।
पूर्वाभ्यासनिबद्धां हि सत्यां भृगुकुलोद्वह ॥ २१
मुद्गलस्य मुनेः पुत्रो ज्ञानविज्ञानपारगः ।
कोशकार इति ख्यात आसीद् ब्रह्मंस्तपोरतः ॥ २२
तस्यासीद् दयिता साध्वी धर्मिष्ठा नामतः श्रुता ।
सती वात्स्यायनसुता धर्मशीला पतिव्रता ॥ २३

तस्यामस्य सुतो जातः प्रकृत्या वै जडाकृतिः ।
मूकवन्नालपति स न च पश्यति चान्धवत् ॥ २४
तं जातं ब्राह्मणी पुत्रं जडं मूकं त्वचक्षुषम् ।
मन्यमाना गृहद्वारि षष्ठेऽहनि समुत्सृजत् ॥ २५
ततोऽभ्यागाद् दुराचारा राक्षसी जातहारिणी ।
स्वं शिशुं कृशमादाय सूर्पाक्षी नाम नामतः ॥ २६
तत्रोत्सृज्य स्वपुत्रं सा जग्राह द्विजनन्दनम् ।
तमादाय जगामाथ भोक्तुं शालोदरे गिरौ ॥ २७
ततस्तामागतां वीक्ष्य तस्या भर्ता घटोदरः ।
नेत्रहीनः प्रत्युवाच किमानीतस्त्वया प्रिये ॥ २८
साऽब्रवीत् राक्षसपते मया स्थाप्य निजं शिशुम् ।
कोशकारद्विजगृहे तस्यानीतः प्रभो सुतः ॥ २९
स प्राह न त्वया भद्रे भद्रमाचरितं त्विति ।
महाज्ञानी द्विजेन्द्रोऽसौ ततः शप्स्यति कोपितः ॥ ३०

मनुष्य को ब्राह्मणों के प्रति सद्भाव रखना चाहिए। हे ब्राह्मणपुंगव! और यह सत्य भी प्रतीत होता है। (१७)

वचन, शरीर एवं मन द्वारा किये गये मनुष्यों के कर्म दूसरी योनियों में भी पूर्व के अभ्यासवश स्फुटरूप से प्रकट होते हैं। (१८)

हे द्विजश्रेष्ठ! प्राचीनकाल में मलयाचल पर घटित कोशकार के पुत्र की प्राचीन कथा को क्या आपने नहीं सुना है? (१९)

शुक्र ने कहा—हे महाबाहु! कोशकार के पुत्र सम्बन्धी पवित्र प्राचीन कथा को कहो। मुझे महान् कौतूहल हो रहा है। (२०)

बलि ने कहा—हे भृगुकुलश्रेष्ठ! पूर्वाभ्यास से संबद्ध इस सत्य कथा को मैं यज्ञ में कह रहा हूँ। आप श्रवण करें। (२१)

हे ब्रह्मन्! महर्षि मुद्गल का कोशकार नाम से विख्यात ज्ञान विज्ञान सम्पन्न एक तपस्वी पुत्र था। (२२)

उसकी पत्नी का नाम धर्मिष्ठा था। वह वात्स्यायन की कन्या, साध्वी, सती, धर्मशीला तथा पतिव्रता थी। (२३)

उसी स्त्री के गर्भ से उसको एक पुत्र हुआ, जो स्वभाव से ही जड़ आकार वाला था। गूंगे व्यक्ति की भाँति न वह बोलता था और न अन्धे की भाँति देखता ही था। (२४)

अपने उस उत्पन्न पुत्र को जड़, गूंगा और अन्धा समझकर ब्राह्मणी ने छठे दिन उसे घर के द्वार पर फेंक दिया। (२५)

तदनन्तर सूर्पाक्षी नाम की एक दुराचारिणी, नवजात बालकों को चुराने वाली राक्षसी अपने दुबले-पतले पुत्र को लेकर वहाँ आयी। (२६)

वहाँ अपने पुत्र को छोड़कर उसने ब्राह्मणपुत्र को उठा लिया। उसे लेकर खाने के लिए शालोदर नामक पर्वत पर गयी। (२७)

तदुपरान्त उसे आयी हुई जानकर घटोदर नामक उसके नेत्रहीन पति ने पूछा—हे प्रिये! तुम क्या लायी हो? (२८)

उसने कहा—हे राक्षसपति! हे प्रभो! मैं अपने शिशु को कोशकार मुनि के घर में रखकर उनके पुत्र को लायी हूँ। (२९)

राक्षस ने कहा—हे भद्रे! तुमने यह अच्छा नहीं किया। वह द्विजेन्द्र महाज्ञानी है। अतः वह क्रोधित होकर शाप दे देगा। (३०)

तस्माच्छीघ्रमिमं त्यक्त्वा मनुजं घोररूपिणम् ।
अन्यस्य कस्यचित् पुत्रं शीघ्रमानय सुन्दरि ॥ ३१
इत्येवमुक्ता सा रौद्रा राक्षसी कामचारिणी ।
समाजगाम त्वरिता समुत्पत्य विहायसम् ॥ ३२
स चापि राक्षससुतो निसृष्टो गृहबाह्यतः ।
रुरोद सुस्वरं ब्रह्मन् प्रक्षिप्याङ्गुष्ठमानने ॥ ३३
सा क्रन्दितं चिराच्छ्रुत्वा धर्मिष्ठा पतिमब्रवीत् ।
पश्य स्वयं मुनिश्रेष्ठ सशब्दस्तनयस्तव ॥ ३४
त्रस्ता सा निर्जगामाथ गृहमध्यात् तपस्विनी ।
स चापि ब्राह्मणश्रेष्ठः समपश्यत तं शिशुम् ॥ ३५
वर्णरूपादिसंयुक्तं यथा स्वतनयं तथा ।
ततो विहस्य प्रोवाच कोशकारो निजां प्रियाम् ॥ ३६
एतेनाविश्य धर्मिष्ठे भाव्यं भूतेन साम्प्रतम् ।
कोऽप्यस्माकं छलयितुं सुरूपी भुवि संस्थितः ॥ ३७
इत्युक्त्वा वचनं मन्त्री मन्त्रैस्तं राक्षसात्मजम् ।
बबन्धोल्लिख्य वसुधां सकुशेनाथ पाणिना ॥ ३८
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता सूर्पाक्षी विप्रबालकम् ।
अन्तर्धानगता भूमौ चिक्षेप गृहदूरतः ॥ ३९
तं क्षिप्तमात्रं जग्राह कोशकारः स्वकं सुतम् ।
सा चाभ्येत्य ग्रहीतुं स्वं नाशकद् राक्षसी सुतम् ॥ ४०
इतश्चेतश्च विभ्रष्टा सा भर्तारमुपागमत् ।
कथयामास यद् वृत्तं स्वद्विजात्मजहारिणम् ॥ ४१
एवं गतायां राक्षस्यां ब्राह्मणेन महात्मना ।
स राक्षसशिशुर्ब्रह्मन् भार्यायै विनिवेदितः ॥ ४२
स चात्मतनयः पित्रा कपिलायाः सवत्सयाः ।
दध्ना संयोजितोऽत्यर्थं क्षीरेणेक्षुरसेन च ॥ ४३
द्वावेव वर्धितौ बालौ संजातौ समवार्षिकौ ।
पित्रा च कृतनामानौ निशाकरदिवाकरौ ॥ ४४
नैशाचरिर्दिवाकीर्तिर्निशाकीर्तिः स्वपुत्रकः ।
तयोश्चकार विप्रोऽसौ व्रतबन्धक्रियां क्रमात् ॥ ४५

हे सुन्दरी ! इसलिए शीघ्र इस भयंकर रूप वाले मनुष्य को छोड़ कर तुम किसी दूसरे के पुत्र को लाओ। (३१)

ऐसा कहे जाने पर वह कामचारिणी भयङ्कर राक्षसी आकाश में उड़ती हुई शीघ्र वहाँ गयी। (३२)

हे ब्रह्मन् ! गृह के बाहर छोड़ा गया वह राक्षस पुत्र भी मुख में अँगूठा डालकर उच्च स्वर से रोने लगा। (३३)

चिरकालोपरान्त क्रन्दन को सुनकर उस धर्मिष्ठा ने पति से कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! देखो यह, आपका पुत्र शब्द करने लगा। (३४)

डरकर वह तपस्विनी गृह के भीतर से बाहर गयी। उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने भी उस शिशु को देखा। (३५)

अपने पुत्र के समान ही रंग रूप आदि से युक्त उस बालक को देखने के उपरान्त कोशकार मुनि ने हँस कर अपनी पत्नी से कहा। (३६)

हे धर्मिष्ठे ! इस बालक के भीतर अवश्य भूत प्रविष्ट हो गया है। हम लोगों को धोखा देने के लिए सुन्दर रूपवाला कोई यहाँ विद्यमान है। (३७)

ऐसा कहकर उस मन्त्रवेत्ता ने हाथ में कुश लेकर मन्त्रों के द्वारा भूमि को रेखाङ्कित कर राक्षसपुत्र को बाँध दिया। (३८)

इसी बीच सूर्पाक्षी वहाँ पहुँची एवं अदृश्य रूप में गृह से दूर स्थित होकर उसने ब्राह्मण के बालक को फेंका। (३९)

फेंकते ही कोशकार ने अपने उस पुत्र को पकड़ लिया। किन्तु वह राक्षसी वहाँ जाकर अपने पुत्र को नहीं पकड़ सकी। (४०)

दोनों ओर से भ्रष्ट होकर वह अपने पति के पास गयी और अपने पुत्र तथा ब्राह्मणपुत्र दोनों के खोने का वृत्तान्त कह सुनाया। (४१)

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार राक्षसी के चले जाने पर महात्मा ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को वह राक्षस-पुत्र दे दिया। (४२)

और पिता ने अपने पुत्र को सवत्सा कपिला गाय के दूध, दधि एवं ईख के रस से पाला-पोसा। (४३)

दोनों ही बालक बढ़कर सात वर्ष के हो गए। पिता ने उन दोनों का नाम निशाकर एवं दिवाकर रखा। (४४)

राक्षसपुत्र का नाम दिवाकीर्ति और ब्राह्मण पुत्र का नाम निशाकीर्ति था। ब्राह्मण ने क्रमशः दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार किया। (४५)

व्रतबन्धे कृते वेदं पपाठासौ दिवाकरः ।
निशाकरो जडतया न पपाठेति नः श्रुतम् ॥ ४६
तं बान्धवाश्च पितरौ माता भ्राता गुरुस्तथा ।
पर्यनिन्दंस्तथा ये च जना मलयवासिनः ॥ ४७
ततः स पित्रा क्रुद्धेन क्षिप्तः कूपे निरुदके ।
महाशिलां चोपरि च पिधानमवरोपयत् ॥ ४८
एवं क्षिप्तस्तदा कूपे बहुवर्षगणान् स्थितः ।
तत्रास्त्यामलकीगुल्मः पोषाय फलितोऽभवत् ॥ ४९
ततो दशसु वर्षेषु समतीतेषु भार्गव ।
तस्य माताऽगमत् कूपं तमन्धं शिलयाचितम् ॥ ५०
सा दृष्ट्वा निचितं कूपं शिलया गिरिकल्पया ।
उच्चैः प्रोवाच केनेयं कूपोपरि शिला कृता ॥ ५१
कूपान्तस्थः स तां वाणीं श्रुत्वा मातुर्निशाकरः ।
प्राह प्रदत्ता पित्रा मे कूपोपरि शिला त्वियम् ॥ ५२

साऽतिभीताऽब्रवीत् कोऽसि कूपान्तस्थोऽद्भुतस्वरः ।
सोऽप्याह तव पुत्रोऽस्मि निशाकरेति विश्रुतः ॥ ५३
माऽब्रवीत् तनयो मह्यं नाम्ना ख्यातो दिवाकरः ।
निशाकरेति नाम्नाऽहो न कश्चित् तनयोऽस्ति मे ॥ ५४
स चाह पूर्वचरितं मातुर्निरवशेषतः ।
सा श्रुत्वा तां शिलां सुभ्रूः समुत्क्षिप्यान्यतोऽक्षिपत् ॥५५
सोत्तीर्य कूपात् भगवन् मातुः पादाववन्दत ।
सा स्वानुरूपं तनयं दृष्ट्वा स्वजनमग्रतः ॥ ५६
ततस्तमादाय सुतं धर्मिष्ठा पतिमेत्य च ।
कथयामास तत्सर्वं चेष्टितं स्वसुतस्य च ॥ ५७
ततोऽन्वपृच्छद् विप्रोऽसौ किमिदं तात कारणम् ।
नोक्तवान् यद्भवान् पूर्वं महत्कौतूहलं मम ॥ ५८
तच्छ्रुत्वा वचनं धीमान् कोशकारं द्विजोत्तमम् ।
प्राह पुत्रोऽद्भुतं वाक्यं मातरं पितरं तथा ॥ ५९

व्रत-बन्ध हो जाने पर दिवाकर वेदपाठ करने लगा। किन्तु निशाकर जड़ता के कारण वेदपाठ नहीं करता था। ऐसा हम लोगों ने सुना है। (४६)

माता, पिता, भाई, बन्धुजन, गुरु एव अन्य मलयवासी लोग उसकी निन्दा करने लगे। (४७)

तदनन्तर पिता ने क्रुद्ध होकर उसे निर्जल कूप में फेंक दिया एवं उसे एक बड़ी शिला से ढँक दिया। (४८)

इस प्रकार कुएँ में फेंके जाने पर वह बालक वहाँ अनेक वर्षों तक रहा। उस कुएँ में एक आँवले का वृक्ष था। उस बालक के पोषण के लिए उसमें फल लग गये। (४९)

हे भार्गव! तदनन्तर दस वर्ष बीत जाने पर उसकी माँ उस अन्धकार पूर्ण तथा पत्थर से ढके हुये कुएँ के पास गयी। (५०)

उसने पर्वत के समान शिला से ढँके कुएँ को देखकर ऊँचे स्वर से कहा—कुएँ के ऊपर इस पत्थर को किसने रखा है? (५१)

कुएँ के भीतर अवस्थित पुत्र निशाकर ने माता की वाणी सुनकर कहा—मेरे पिताजी ने कुएँ पर इस शिला को रखा है। (५२)

वह अत्यन्त भयभीत होकर बोलीं—कुएँ के भीतर इस अपूर्व स्वर वाले तुम कौन हो? उसने कहा—मैं निशाकर नामक तुम्हारा पुत्र हूँ। (५३)

उसने कहा—मेरे पुत्र का नाम तो दिवाकर है। निशाकर नाम का मेरा कोई पुत्र नहीं है। (५४)

उस बालक ने माता से अपना समस्त पूर्व वृत्तान्त कहा। उसे सुनने के उपरान्त माता ने उस शिला को उठाकर दूसरी ओर फेंक दिया। (५५)

हे भगवन्! उस बालक ने कुएँ से ऊपर उठकर माता के चरणों की वन्दना की। उसने अपने से उत्पन्न एवं अपने अनुरूप पुत्र को सम्मुख देखा। (५६)

तदनन्तर उस पुत्र को लेकर धर्मिष्ठा पति के समीप गयी एव अपने पुत्र के सम्पूर्ण चरित को उससे कहा। (५७)

तदनन्तर उस ब्राह्मण ने पूछा—हे पुत्र! तुम पहले नहीं बोले, इसका क्या कारण है? मुझे बहुत कुतूहल हो रहा है। (५८)

उस बात को सुनकर बुद्धिमान पुत्र ने ब्राह्मण श्रेष्ठ कोशकार तथा माता से अद्भुत वचन कहा। (५९)

निशाकर उवाच ।

श्रूयतां कारणं तात येन मूकत्वमाश्रितम् ।
मया जडत्वमनघ तथाऽन्धत्वं स्वचक्षुषः ॥ ६०
पूर्वमासमहं विप्र कुले वृन्दारकस्य तु ।
वृषाकपेश्च तनयो मालागर्भसमुद्भवः ॥ ६१
ततः पिता पाठयन्मां शास्त्रं धर्मार्थकामदम् ।
मोक्षशास्त्रं परं तात सेतिहासश्रुतिं तथा ॥ ६२
सोऽहं तात महाज्ञानी परावरविशारदः ।
जातो मदान्धस्तेनाहं दुष्कर्मा निरतोऽभवम् ॥ ६३
मदात् समभवल्लोभस्तेन नष्टा प्रगल्भता ।
विवेको नाशमगमत् मूर्खभावमुपागतः ॥ ६४
मूढभावतया चाथ जातः पापरतोऽस्म्यहम् ।
परदारपरार्थेषु मतिर्मे च सदाऽभवत् ॥ ६५
परदाराभिमर्शित्वात् परार्थहरणादपि ।
मृतोऽस्म्युद्बन्धनेनाहं नरकं रौरवं गतः ॥ ६६

निशाकर ने कहा—हे निष्पाप पिता! मेरे द्वारा मूकता, जड़ता एवं अपने नेत्रों के अन्धत्व का आश्रय करने का कारण सुनिये। (६०)

हे विप्र! मैं पहले वृन्दारक (सम्मानित) वंश में माला के गर्भ से उत्पन्न वृषाकपि का पुत्र था। (६१)

हे तात! पिता ने मुझे धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि देने वाले शास्त्र तथा इतिहास और वेद सहित मोक्षदायक शास्त्र को पढ़ाया। (६२)

हे तात! मैं महाज्ञानी तथा लोक ज्ञान और परलोक-ज्ञान में विशारद था। उससे मैं अहंकार से अन्धा होकर दुष्कर्म में प्रवृत्त हो गया। (६३)

मद से मुझे लोभ हुआ। उससे मेरी प्रगल्भता नष्ट हो गयी। विवेक का नाश हो गया जिससे मैं मूढ़ हो गया। (६४)

मूढ़ता के कारण मैं पापी बन गया। मेरा मन सदा दूसरे की स्त्री एवं दूसरे के धन में आसक्त रहने लगा। (६५)

परस्त्री के साथ संसर्ग करने एवं परार्थ का हरण करने के कारण बन्धनग्रस्त होने पर मैं मर कर रौरव नरक में गया। (६६)

तस्माद् वर्षसहस्रान्ते भुक्तशिष्टे तदागसि ।
अरण्ये मृगहा पापः संजातोऽहं मृगाधिपः ॥ ६७
व्याघ्रत्वे मंस्थितस्तात बद्धः पञ्जरगः कृतः ।
नराधिपेन विभुना नीतश्च नगरं निजम् ॥ ६८
बद्धस्य पिञ्जरस्थस्य व्याघ्रत्वेऽधिष्ठितस्य ह ।
धर्मार्थकामशास्त्राणि प्रत्यभासन्त सर्वशः ॥ ६९
ततो नृपतिशार्दूलो गदापाणिः कदाचन ।
एकवस्त्रपरीधानो नगरान्निर्ययौ बहिः ॥ ७०
तस्य भार्या जिता नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
सा निर्गते तु रमणे ममान्तिकमुपागता ॥ ७१
तां दृष्ट्वा ववृधे मह्यं पूर्वाभ्यासान्मनोभवः ।
यथैव धर्मशास्त्राणि तथाहमवदं च ताम् ॥ ७२
राजपुत्रि सुकल्याणि नवयौवनशालिनि ।
चित्तं हरसि मे भीरु कोकिला ध्वनिना यथा ॥ ७३
सा मद्वचनमाकर्ण्य प्रोवाच तनुमध्यमा ।

उस सहस्र वर्ष के उपरान्त भोग से अवशिष्ट उस पाप के कारण मैं पशुघाती पापी व्याघ्र होकर अरण्य में उत्पन्न हुआ। (६७)

हे तात! उस प्रभावयुक्त राजा ने व्याघ्रयोनि में स्थित मुझे बाँध कर पिंजड़े में डाल दिया एवं अपने नगर में ले गया। (६८)

व्याघ्रयोनिप्राप्त, बन्धन ग्रस्त एवं पिंजरस्थ मुझे समस्त धर्म, अर्थ एवं काम सम्बन्धी शास्त्र प्रतिभासित हो रहे थे। (६९)

तदनन्तर वह श्रेष्ठ राजा किसी समय हाथ में गदा लिये एक वस्त्र धारण कर नगर से बाहर चला गया। (७०)

पृथ्वी में अप्रतिम रूप वाली उसकी जिता नामक भार्या थी। पति के बाहर जाने पर वह मेरे समीप आयी। (७१)

उसे देखकर पूर्वाभ्यास के कारण धर्मशास्त्रों के ज्ञान की वृद्धि की भाँति मेरे मन में काम की वृद्धि हुई। तदनन्तर मैंने उससे कहा— (७२)

हे भीरु सुकल्याणी नवयौवनशालिनी राजपुत्री! तुम मेरा चित्त उसी प्रकार हरण करती हो जैसे कोकिल अपनी ध्वनि से लोगों के चित्त का हरण करती है। (७३)

उस सुन्दरी ने मेरा वचन सुनकर कहा—हे व्याघ्र!

कथमेवावयोर्व्याघ्र रतियोगमुपेष्यति ॥ ७४
ततोऽहमब्रुवं तात राजपुत्रीं सुमध्यमाम् ।
द्वारमुद्घाटयस्वाद्य निर्गमिष्यामि सत्वरम् ॥ ७५
साऽप्ययमब्रवीद् दिवा व्याघ्र लोकोऽयं परिपश्यति ।
रात्रावुद्घोटयिष्यामि ततो रंस्याव स्वेच्छया ॥ ७६
तामेवाहमवोचं वै कालक्षेपेऽहमक्षमः ।
तस्मादुद्घाटय द्वारं मा बन्धाच्च विमोचय ॥ ७७
ततः सा पीवरश्रोणी द्वारमुद्घाटयन्मुने ।
उद्घाटिते ततो द्वारे निर्गतोऽहं बहिः क्षणात् ॥ ७८
पाशानि निगडादीनि छिन्नानि हि बलान्मया ।
सा गृहीता च नृपतेर्भार्या रमितुमिच्छता ॥ ७९
ततो दृष्टोऽस्मि नृपतेर्भृत्यैरतुलविक्रमैः ।
शस्त्रहस्तैः सर्वतश्च तैरहं परिवेष्टित ॥ ८०
महापाशैः शृङ्खलाभिः समाहत्य च मुद्गरैः ।
वध्यमानोऽब्रुवमहं मा मा हिंसध्वमाकुलाः ॥ ८१

ते मद्वचनमाकर्ण्य मत्वैव रजनीचरम् ।
दृढं वृक्षे समुद्बध्य घातयन्त तपोधन ॥ ८२
भूयो गतश्च नरकं परदारनिषेवणात् ।
मुक्तो वर्षसहस्रान्ते जातोऽहं श्वेतगर्दभः ॥ ८३
ब्राह्मणस्याग्निवेश्यस्य गेहे बहुकलत्रिणः ।
तत्रापि सर्वविज्ञानं प्रत्यभासत् ततो मम ॥ ८४
उपवाह्यः कृतश्चास्मि द्विजयोषिद्भिरादरात् ।
एकदा नवराष्ट्रीया भार्या तस्याग्रजन्मनः ॥ ८५
विमतिर्नामतः ख्याता गन्तुमैच्छद् गृहं पितुः ।
तामुवाच पतिर्गच्छ आरुह्य श्वेतगर्दभम् ॥ ८६
मासेनागमनं कार्यं न स्थेयं परतस्तत' ।
इत्येवमुक्ता सा भर्त्रा तन्वी मामधिरुह्य च ॥ ८७
बन्धनादवमुच्याथ जगाम त्वरिता मुने ।
ततोऽर्धपथि सा तन्वी मत्पृष्ठादवरुह्य वै ॥ ८८
अवतीर्णा नदीं स्नातुं स्वरूपा चार्द्रवाससा ।

हम दोनों का सम्भोग कैसे सम्भव है ? (७४)

हे तात ! तदनन्तर मैंने उस सुन्दरी राजपुत्री से कहा— तुम अभी पिंजड़े का द्वार खोलो, मैं शीघ्र बाहर निकल आऊँगा । (७५)

उसने कहा—हे व्याघ्र ! दिन में लोग देखेंगे। रात्रि में खोलूँगी, तब इच्छानुसार दोनों विहार करेंगे। (७६)

मैंने पुन उससे कहा देर करने में मैं असमर्थ हूँ। अत द्वार खोलो और मुझे बन्धन से मुक्त करो। (७७)

तदनन्तर उस सुन्दरी ने द्वार खोल दिया। द्वार खुलने पर मैं क्षणमात्र में बाहर निकला। (७८)

मैंने बलपूर्वक बेड़ी आदि बन्धनों को तोड डाला और उस राजा की पत्नी को रमण करने की इच्छा से पकड़ लिया। (७९)

तदनन्तर राजा के अतुल पराक्रमशाली अनुचरों ने मुझे देखा और हाथ मे शस्त्र लेकर उन लोगों ने मुझे चारों ओर से घेर लिया। (८०)

मोटी रस्सियों और साँकलों से बाँधकर उन लोगों ने मुझे मुद्गरों से बहुत पीटा। मारे जाते समय मैंने उनसे कहा—तुम लोग मुझे मत मारो। (८१)

हे तपोधन ! मेरा वचन सुनकर उन लोगों ने मुझे राक्षस समझा और वृक्ष में कसकर बाँध कर मार डाला। (८२)

परस्त्री सेवन के कारण पुन मैं नरक में गया। सहस्र वर्ष के उपरान्त मुक्त होने पर मैं श्वेतगर्दभ हुआ। (८३)

उस अवस्था में मैं अनेक स्त्रियों वाले अग्निवेश्य नामक ब्राह्मण के घर मे रहता था। वहाँ भी पूर्वजन्मार्जित समस्त ज्ञान मुझे प्रतिभासित हो रहे थे। (८४)

ब्राह्मण के घर की स्त्रियों ने मुझे आदर से सवारी के कार्य में लगाया। एक समय उस ब्राह्मण की नवराष्ट्र देशीय विमति नामक पत्नी अपने पिता के घर जाने के लिए उत्सुक हुई। उसके पति ने उससे कहा—इस श्वेत गदहे पर आरूढ होकर चली जाओ। (८५ ८६)

एक महीने के भीतर चली आना। उससे अधिक समय तक न रहना। पति के ऐसा कहने पर वह सुन्दरी मेरे ऊपर सवार हुई। (८७)

हे मुने। बन्धन खोलकर वह तुरन्त चल पड़ी। तदनन्तर आधे मार्ग मे वह सुन्दरी मेरी पीठ से उतरकर नदी मे नहाने के लिए उतरी। भींगे वस्त्र में होने से

साङ्गोपाङ्गां रूपवतीं दृष्ट्वा तामहमाद्रवम् ॥ ८९
मया चाभिद्रुता तूर्णं पतिता पृथिवीतले ।
तस्यामुपरि भो तात पतितोऽहं भृशातुरः ॥ ९०
दृष्टो भर्त्रानुसृष्टेन नृणा तदनुसारिणा ।
प्रोत्क्षिप्य यष्टिं मां ब्रह्मन् समाधावत् त्वरान्वितः ॥ ९१
तद्भयात् तां परित्यज्य प्रद्रुतो दक्षिणामुखः ।
ततोऽभिद्रवतस्तूर्णं खलीनरसना मुने ॥ ९२
समासक्ता वंशगुल्मे दुर्मोक्षे प्राणनाशने ।
तत्रासक्तस्य दशरात्रान्ममाभूज्जीवितक्षयः ॥ ९३
गतोऽस्मि नरकं भूयस्तस्मान्मुक्तोऽभवं शुकः ।
महारण्ये तथा बद्धः शबरेण दुरात्मना ॥ ९४
पञ्जरे क्षिप्य विक्रीतो वणिक्पुत्राय शालिने ।
तेनाप्यन्तःपुरवरे युवतीनां समीपतः ॥ ९५
शब्दशास्त्रविदित्येव दोषज्ञश्चेत्यवस्थितः ।
तत्रासतस्तर्प्यस्ता ओदनाम्बुफलादिभिः ॥ ९६
भक्ष्यैश्च दाडिमफलैः पुष्णन्त्यहरहः पितः ।
कदाचित् पद्मपत्राक्षी श्यामा पीनपयोधरा ॥ ९७
सुश्रोणी तनुमध्या च वणिक्पुत्रप्रिया शुभा ।
नाम्ना चन्द्रावली नाम समुद्घाट्याथ पञ्जरम् ॥ ९८
मां जग्राह सुचार्वङ्गी कराभ्यां चारुहासिनी ।
चकारोपरि पीनाभ्यां स्तनाभ्यां सा हि मां ततः ॥ ९९
ततोऽहं कृतवान् भावं तस्यां विलसितुं प्लवन् ।
ततोऽनुप्लवतस्तत्र हारे मर्कटबन्धनम् ॥ १००
बद्धोऽहं पापसंयुक्तो मृतश्च तदनन्तरम् ।
भूयोऽपि नरकं घोरं प्रपन्नोऽस्मि सुदुर्मतिः ॥ १०१
तस्माच्चाहं वृषत्वं वै गतश्चाण्डालपक्कणे ।
स चैकदा मां शकटे नियोज्य स्वां विलासिनीम् ॥ १०२
समारोप्य महातेजा गन्तुं कृतमतिर्वनम् ।
ततोऽग्रतः स चण्डालो गतस्तेनाम्य पृष्ठतः ॥ १०३
गायन्ती याति तच्छ्रुत्वा जातोऽहं व्यथितेन्द्रियः ।
पृष्ठतस्तु समालोक्य विपर्यस्तस्तथोत्प्लुतः ॥ १०४
पतितो भूमिमगमम् तदक्षे क्षणविभ्रमात् ।

उसका रूप स्पष्ट दिखाई पड़ा। उसे अङ्गोपांगों सहित रूपवती देखकर मैं उस पर दौड़ा। (८८-८९)

मेरे झपटने पर वह तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ी। हे तात! मैं अत्यधिक आतुर होकर उसके ऊपर गिर गया। (९०)

हे ब्रह्मन्! स्वामी के आदेश से उस स्त्री के पीछे पीछे आने वाले अनुचर ने मुझे देख लिया और डंडा उठाकर वह वेग से मेरी ओर दौड़ पड़ा। (९१)

उसके भय से उस स्त्री को छोड़कर मैं शीघ्र ही दक्षिण की ओर भागा। हे मुने! तेजी से दौड़ते हुए मेरे लगाम की रस्सी बाँस की प्राणघातक विकट झाड़ी में फँस गयी। वहाँ फँसा हुआ मैं दस रात्रि के बाद मर गया। (९२-९३)

मुझे पुनः नरक में जाना पड़ा। वहाँ से मुक्त होकर मैं शुक पक्षी हुआ। महान् अरण्य में एक दुरात्मा व्याध ने मुझे बाँध लिया। (९४)

पिंजड़े में रखकर (व्याध ने मुझे) एक शालीन वणिक् पुत्र को बेच दिया। उसने भी मुझे महल में युवतियों के निकट मुझे शब्दशास्त्रविद् तथा दोष दूर करने वाला समझकर रख दिया। हे पिता! वहाँ रहते समय वे युवतियाँ प्रतिदिन मुझे चावल, जल तथा अनार के फलों के भोजन से पुष्ट करने लगीं। एक समय वणिक्पुत्र की कमलदल तुल्य नेत्रों वाली श्यामा, विशाल स्तनों तथा सुन्दर जघन एवं क्षीणकटि वाली कल्याणी चन्द्रावली नामक प्रिया ने पिंजड़े को खोला। (९५-९८)

उस चारुहासिनी सुन्दरी ने मुझे दोनों हाथों में ले लिया और अपने दोनों स्तनों पर मुझे रख लिया। (९९)

उसके बाद मैंने चन्द्रावली के साथ विहार करने का भाव प्रकट किया। तब पापागार में घूमता हुआ उसके हार में मर्कट-बन्धन की भाँति बँधकर मर गया। मैं पुनः अत्यन्त पापबुद्धि होने के कारण घोर नरक में गया। (१००-१०१)

तदनन्तर मैं बैल होकर चाण्डाल के घर में पहुँचा। उसने एक दिन मुझे गाड़ी में जोतकर उस गाड़ी पर अपनी भार्या को चढ़ाया। इस प्रकार वन में जाने की इच्छा से वह महातेजस्वी चाण्डाल आगे चला एवं उसके पीछे वह गाती हुई चली। उसका गान सुनकर मेरी इन्द्रियाँ विचलित हो गयीं। मैंने पीछे घूम कर देखा और कूद कर उलट गया। (१०२-१०४)

क्षणिक विभ्रम के कारण मैं भूमि पर गिर पड़ा एवं

यौवने सुमहद् एवास्मि पञ्चत्वमगमं ततः ॥ १०५
भूयो निमग्नो नरके दशवर्षशतान्यपि ।
अवतस्तव गृहे जातस्त्वहं जातिमनुस्मरन् ॥ १०६
तावन्त्येवाद्य जन्मानि स्मरामि ह्यानुपूर्वशः ।
पूर्वाभ्यासाच्च शास्त्राणि चिन्तनं चागतं मम ॥ १०७
तदहं ज्ञातविज्ञानो नाचरिष्ये कथंचन ।
पापानि घोररूपाणि मनसा कर्मणा गिरा ॥ १०८
शुभं वाप्यशुभं वापि स्वाध्यायं शास्त्रजीविका ।
चिन्तनं वा धनं वाऽपि पूर्वाभ्यासेन जायते ॥ १०९
जातिं यदा पौर्विकीं तु स्मरते तात मानवः ।
तदा स तेभ्यः पापेभ्यो निवृत्तिं हि करोति वै ॥ ११०
तस्माद् गमिष्ये शुभवर्धनाय
पापक्षयायाथ मुने शरण्यम् ।
भवान् दिवाकीर्तिमिमं सुपुत्रं
गार्हस्थ्यधर्मे विनियोजयस्व ॥ १११
पुलस्त्य उवाच ।
इत्येवमुक्त्वा स निशाकरस्तदा
प्रणम्य मातापितरौ महर्षे ।
जगाम पुण्यं सदनं मुरारेः
ख्यातं यदर्थाश्रममाद्यमीड्यम् ॥ ११२
एवं पुराभ्यासरतस्य पुंसो
भवन्ति दानाध्ययनादिकानि ।
तस्माच्च भूयो द्विजवर्य मे यथा
अभ्यस्तमासीदनु ते ब्रवीमि ॥ ११३
दानं तपो वाऽध्ययनं महर्षे
स्तेयं महापातकमग्निदाहम् ।
ज्ञानानि चैवाभ्यसतां हि पूर्वे
भवन्ति धर्मार्थयशांसि नाथ ॥ ११४
पुलस्त्य उवाच ।
इत्येवमुक्त्वा बलवान् स शुभ्रं
दैत्येश्वरः स्वं गुरुमीक्षितारम् ।
ध्यायंस्तदास्ते मधुकैटभघ्नं
नारायणं चक्रगदासिपाणिम् ॥ ११५

इति श्रीवामनपुराणे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

रात्री में अत्यन्त मैंथ जाने से मैं मर गया। (१०५)

मैं पुनः सहस्र वर्ष पर्यन्त नरक में पड़ा रहा। वहाँ से मैं अपने पूर्व जन्म का स्मरण करता हुआ आपके गृह में उत्पन्न हुआ हूँ। (१०६)

मैं आज उन्हीं जन्मों का क्रमशः स्मरण कर रहा हूँ। पूर्व अभ्यास से मुझे शास्त्रों का ज्ञान तथा चिन्तन मिला है। अतः ज्ञानी होकर मैं मन, कर्म और वाणी से कभी घोर पापकर्मों का आचरण नहीं करूँगा। (१०७-१०८)

शुभ, अशुभ, स्वाध्याय, शास्त्रजीविका चिन्तन या धन पूर्व अभ्यास से ही होते हैं। (१०९)

हे तात! मनुष्य को जब अपने पूर्व जन्म का स्मरण होता है तो वह उन पापों से दूर रहता है। (११०)

अतः हे मुने! शुभ की वृद्धि एवं पाप के क्षय के लिए मैं वन में जाऊँगा। आप इस सुपुत्र दिवाकीर्ति को गृहस्थ धर्म में नियुक्त करें। (१११)

बलि ने कहा—हे महर्षि! ऐसा कहने के उपरान्त माता-पिता को प्रणाम कर वह निशाकर भगवान् नारायण के श्रेष्ठ सुविख्यात पवित्र निवास बदरिकाश्रम में चला गया। (११२)

इसी प्रकार पूर्वाभ्यासवश मनुष्य के दान एवं अध्ययन आदि कार्य होते हैं। हे द्विजवर! इसी से निमग्न हो मैं आपसे अपने पूर्व अभ्यास के तथ्य को कह रहा हूँ। (११३)

हे महर्षि! हे नाथ! दान, तप, अध्ययन, चोरी, महापातक, अग्निदाह, ज्ञान, धर्म, अर्थ एवं यश आदि सभी पूर्वजन्मों के अभ्यास से उत्पन्न होते हैं। (११४)

पुलस्त्य ने कहा—दैत्येश्वर बलवान् बलि अपने गुरु और निरीक्षक शुक्राचार्य से ऐसा कह कर मधुकैटभ के नाशक चक्र-गदा-खड्गधारी नारायण का ध्यान करने लगा। (११५)

श्रीवामनपुराण में चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६४॥

६५

पुलस्त्य उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो भगवान् वामनाकृतिः ।
यज्ञवाटमुपागम्य उच्चैर्वचनमब्रवीत् ॥ १

ॐकारपूर्वाः श्रुतयो मखेऽस्मिन्
तिष्ठन्ति रूपेण तपोधनानाम् ।
यज्ञोऽश्वमेधः प्रवरः क्रतूनां
सुरत्यस्तथा सत्रिषु दैत्यनाथः ॥ २

इत्थं वचनमाकर्ण्य दानवाधिपतिर्वशी ।
सार्घपात्रः समभ्यागाद्यत्र देवः स्थितोऽभवत् ॥ ३

ततोऽर्घ्य देवदेवेशमर्घ्यमर्घादिनासुरः ।
भरद्वाजर्षिणा सार्धं यज्ञवाटं प्रवेशयत् ॥ ४

प्रविष्टमात्रं देवेशं प्रतिपूज्य विधानतः ।
प्रोवाच भगवन् ब्रूहि किं ददामि तव मानद ॥ ५

ततोऽब्रवीत् सुरश्रेष्ठो दैत्यराजानमव्ययः ।
विहस्य सुचिरं कालं भरद्वाजमवेक्ष्य च ॥ ६

गुरोर्मदीयस्य गुरुस्तस्यास्त्यग्निपरिग्रहः ।
न स धारयते भूम्यां पारक्यां जातवेदसम् ॥ ७

तदर्थमभियाचेऽहं मम दानवपार्थिव ।
मच्छरीरप्रमाणेन देहि राजन् पदत्रयम् ॥ ८

मुरारेर्वचनं श्रुत्वा बलिर्भार्यामवेक्ष्य च ।
बाणं च तनयं वीक्ष्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ ९

न केवलं प्रमाणेन वामनोऽयं लघुः प्रिये ।
येन क्रमत्रयं मौर्ख्याद् याचते बुद्धितोऽपि च ॥ १०

प्रायो विधाताऽल्पधियां नराणां
महिष्कृतानां च महानुभागैः ।
धनादिकं भूरि न वै ददाति

६५

पुलस्त्य ने कहा—इतने में वामनाकार भगवान् आ गये । यज्ञशाला के समीप आकर वे ऊँचे स्वर से कहने लगे— (१)

ओंकार पूर्वक वेदमन्त्र तपोधन ऋषियों के रूप में इस यज्ञ में स्थित हैं । यज्ञों में अश्वमेधयज्ञ सर्वश्रेष्ठ है और दैत्यस्वामी बलि यज्ञकर्ताओं में प्रधान है । (२)

इस प्रकार के वचन को सुनकर जितेन्द्रिय दानवाधिपति बलि अर्घ्यपात्र लेकर जहाँ वामनदेव खड़े थे वहाँ गये । (३)

तदनन्तर अर्घ्य आदि से देवदेवेश्वर की पूजा करके असुरपति बलि ने भरद्वाज ऋषि के साथ उन्हें यज्ञशाला में प्रविष्ट किया । (४)

यज्ञशाला में प्रवेश करते ही बलि ने देवेश की विधिपूर्वक पूजा की और कहा—हे भगवन् ! हे मानद ! कहिये मैं आपको क्या दूँ ? (५)

अविनाशी देवश्रेष्ठ ने देर तक हँस कर तथा भरद्वाज को देखकर दैत्यराज से कहा— (६)

मेरे गुरु के गुरु अग्निहोत्री हैं । वे दूसरे की भूमि में अग्निस्थापन नहीं करते । (७)

हे दानवपति ! हे राजन् ! उनके लिए मैं आपसे याचना करता हूँ कि मेरे शरीर के परिमाण से आप तीन पग (भूमि) मुझे प्रदान करें । (८)

मुरारि का वचन सुनने के उपरान्त बलि ने पत्नी को और पुत्र बाण को देखकर यह वचन कहा— (९)

हे प्रिये ! यह वामन केवल प्रमाण से ही छोटा नहीं है, अपितु बुद्धि का भी छोटा है । क्योंकि मूर्खतावश यह मुझसे केवल तीन पग (भूमि) माँगता है । (१०)

विधाता प्रायः अल्पबुद्धि वाले भाग्यहीन व्यक्तियों को अधिक धनादि नहीं देते । इसी से विष्णु ने अधिक का

११ ॥ अथेह विष्णोर्न महुप्रयासं ॥ ११
न ददाति विधिस्तस्य यस्य भाग्यविपर्ययः।
मयि दातरि यश्चायमद्य याचेत् पदत्रयम् ॥ १२
इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा
भूयोऽप्युवाचाथ हरिं दनुजः।
याचस्व विष्णो गजवाजिभूमिं
दासीहिरण्यं यदमीप्सितं च॥ १३
भवान् याचयिता विष्णो अहं दाता जगत्पतिः।
दातुर्याचयितुर्लज्जा कथं न स्यात् पदत्रये ॥ १४
रसातलं वा पृथिवीं भुवं नाकमथापि वा।
एतेभ्यः कतमं दद्यां स्थानं याचस्व वामन ॥ १५
वामन उवाच
गजाश्वभूहिरण्यादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्।
एतावता त्वहं चार्थी देहि राजन् पदत्रयम् ॥ १६
इत्येवमुक्ते वचने वामनेन महासुरः।
वलिर्भृङ्गारमादाय ददौ विष्णोः क्रमत्रयम् ॥ १७
पाणौ तु पतिते तोये दिव्यं रूपं चकार ह।
त्रैलोक्यक्रमणार्थाय बहुरूपं जगन्मयम् ॥ १८
पद्भ्यां भूमिस्तथा जङ्घे नभस्त्रैलोक्यवन्दितः।
सत्यं तपो जानुयुग्मे ऊरुभ्यां मेरुमन्दरौ ॥ १९
विश्वेदेवाः कटीभागे मरुतो वस्तिशीर्षगाः।
लिङ्गे स्थितो मन्मथश्च वृषणाभ्यां प्रजापतिः ॥ २०
कुक्षिभ्यामर्णवाः सप्त जठरे भुवनानि च।
वलिषु त्रिषु नद्यश्च यज्ञास्तु जठरे स्थिताः ॥ २१
इष्टापूर्तादयः सर्वाः क्रियास्तत्र तु संस्थिताः।
पृष्ठस्था वसवो देवाः स्कन्धौ रुद्रैरधिष्ठितौ ॥ २२
बाहवश्च दिशः सर्वा वसवोऽष्टौ करे स्मृताः।
हृदये संस्थितो ब्रह्मा कुलिशो हृदयास्थिषु ॥ २३
श्रीसमुद्रा उरोमध्ये चन्द्रमा मनसि स्थितः।
ग्रीवादितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलिषु स्थिताः ॥ २४
मुखे तु साग्नयो विप्राः संस्कारा दशनच्छदाः।
धर्मकामार्थमोक्षीयाः शास्त्राः शौचसमन्विताः ॥ २५

प्रयास नहीं किया। (११)

जिसका भाग्य विपरीत होता है, उसे विधाता नहीं देते हैं। मेरे ऐसा दाता होने पर भी आज ये तीन पग की याचना करते हैं। (१२)

ऐसा कह कर महात्मा बलि ने पुनः हरि से कहा—हे विष्णु! हाथी, घोड़ा, भूमि, दासी तथा सुवर्ण आदि जो आप चाहते हों, वह माँगिये। (१३)

आप विष्णु याचक और मैं जगत्पति दाता हूँ। ऐसी स्थिति में केवल तीन पग का दान करने में दाता एवं याचक को क्यों लज्जा न होगी? (१४)

हे वामन! आप याचना करें। रसातल, पृथ्वी, भुवर्लोक अथवा स्वर्गलोक में से मैं किस स्थान का दान करूँ। (१५)

वामन ने कहा—हाथी, घोड़ा, भूमि, सुवर्ण आदि वस्तुएँ इनके प्रार्थियों को दीजिये। हे राजन्! मैं इतने का ही प्रार्थी हूँ। अतः मुझे तीन पग प्रदान करें। (१६)

वामन के ऐसा वचन कहने पर महान् असुर बलि ने कमण्डलु लेकर विष्णु को तीन पग दान दिया। (१७)

हाथ पर जल गिरते ही तीनों लोकों को नापने के लिये विष्णु ने बृहद् दिव्य विश्वमय रूप धारण किया। (१८)

उनके पैर में भूमि, जंघाओं में त्रैलोक्य-पूजित आकाश, दोनों जानुओं में सत्यलोक और तपोलोक, दोनों ऊरुओं में मेरु और मन्दर पर्वत, कटिप्रदेश में विश्वेदेव, वस्ति प्रदेश के शीर्षस्थान पर मरुद्गण, लिङ्ग में कामदेव, वृषणों में प्रजापति, कुक्षियों में सप्त समुद्र, जठर में समस्त भुवन, त्रिवली में नदियाँ एवं उनके जठर में यज्ञ स्थित थे। (१९–२१)

जठर में ही इष्टापूर्त आदि समस्त क्रियाएँ अवस्थित थीं। उनकी पीठ में वसुगण और देवगण और कन्धों में रुद्रगण अधिष्ठित थे। (२२)

सभी दिशायें उनके बाहुस्वरूप थीं। उनके हाथ में आठ वसुगण, हृदय में ब्रह्मा एवं हृदय की अस्थियों में कुलिश स्थित था। (२३)

उर के मध्य श्री तथा समुद्र, मन में चन्द्रमा, ग्रीवा में देवमाता अदिति, तथा वलयों में सारी विद्यायें अवस्थित थीं। (२४)

मुख में अग्नि के सहित ब्राह्मण, ओष्ठ में सभी धार्मिक संस्कार, ललाट में लक्ष्मीसहित तथा पवित्रता

लक्ष्म्या सह ललाटस्थाः श्रवणाभ्योमर्माश्विनौ ।
श्वासस्थो मातरिश्वा च मरुतः सर्वसन्धिषु ॥ २६ ॥
सर्वसूक्तानि दशना जिह्वा देवी सरस्वती ।
चन्द्रादित्यौ च नयने पक्ष्मस्थाः कृत्तिकादयः ॥ २७ ॥
शिखायां देवदेवस्य ध्रुवो राजा न्यषीदत ।
तारका रोमकूपेभ्यो रोमाणि च महर्षयः ॥ २८ ॥
गुणैः सर्वमयो भूत्वा भगवान् भूतभावनः ।
क्रमेणैकेन जगतीं जहार सचराचराम् ॥ २९ ॥
भूमिं विक्रममाणस्य महारूपस्य तस्य वै ।
दक्षिणोऽभूत् स्तनश्चन्द्रः सूर्योऽभूदथ चोत्तरः ।
नभश्चाक्रमतो नाभिं सूर्येन्दू सव्यदक्षिणौ ॥ ३० ॥
द्वितीयेन क्रमेणाथ स्वर्महर्जनतापसाः ।
क्रान्तार्धार्धेन वैराज मध्येनापूर्यताम्बरम् ॥ ३१ ॥
ततः प्रतापिना ब्रह्मन् बृहद्विष्णुङ्घ्रिणाम्बरे ।
ब्रह्माण्डोदरमाहत्य निरालोकं जगाम ह ॥ ३२ ॥
विश्वाङ्घ्रिणा प्रसरता कटाहो भेदितो बलात् ।
कुटिला विष्णुपादे तु समेत्य कुटिला ततः ॥ ३३ ॥
तस्या विष्णुपदीत्येवं नामाख्यातमसून्मुने ।
तथा सुरनदीत्येवं तामसेवन्त तापसाः ।
भगवानप्यसम्पूर्णे तृतीये तु क्रमे विभुः ॥ ३४ ॥
समभ्येत्य बलिं प्राह ईषत्प्रस्फुरिताधरः ।
ऋणाद् भवति दैत्येन्द्र बन्धनं घोरदर्शनम् ।
त्वं पूरय पदं तन्मे नो चेद् बन्धं प्रतीच्छ भोः ॥ ३५ ॥
तन्मुरारिवचः श्रुत्वा विहस्याथ बलेः सुतः ।
बाणः प्राहामरपतिं वचनं हेतुसयुतम् ॥ ३६ ॥

बाण उवाच

कृत्वा महीमल्पतरां जगत्पते
स्वायम्भुवादिभुवनानि वै षट् ।
कथं बलिं प्रार्थयसे सुविस्तृतां
यां प्राग्भवान् नो विपुलामथाकरोत् ॥ ३७ ॥
विभो मही यावतीयं त्वयाऽद्य
सृष्टा समेता भुवनान्तरालैः ।

के साथ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष सम्बन्धी शास्त्र, कर्णों में अश्विनीकुमार, श्वास में वायु एवं सभी सन्धियों में मरुद्गण स्थित थे। (२५-२६)

उनके दाँतों में समस्त सूक्त, जिह्वा में सरस्वती देवी, दोनों नेत्रों में चन्द्र और सूर्य एवं बरौनियों में कृत्तिका आदि नक्षत्र स्थित थे। (२७)

देवदेव की शिखा में राजा ध्रुव, रोमकूपों में तारे और रोमों में महर्षि लोग अवस्थित थे। (२८)

भूतभावन भगवान ने गुणों के द्वारा सर्वमय होकर एक पद में ही चराचर सहित पृथ्वी का हरण कर लिया। (२९)

भूमि को नापते समय उन विशाल रूपधारी के चन्द्रमा एवं सूर्य दक्षिण तथा उत्तर स्तन हो गए। इसी प्रकार आकाश का अतिक्रमण करते समय सूर्य एवं चन्द्रमा उनकी नाभि के वाम एवं दक्षिण भाग में अवस्थित हुए। (३०)

तदनन्तर उन्होंने द्वितीय चरण के आधे से स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक और तपोलोक आक्रान्त कर शेष आधे से वैराजलोक तथा मध्यभाग से आकाश को आपूरित किया। (३१)

हे ब्रह्मन्! तदुपरान्त विष्णु का प्रतापी विशाल चरण आकाश में ब्रह्माण्ड के उदर भाग को आहत कर निरालोक में चला गया। (३२)

विष्णु के फैल रहे चरण ने बलपूर्वक कटाह का भेदन कर दिया। विष्णु का चरण कुटिला नदी के समीप पहुँच गया। हे मुने! इससे कुटिला विष्णुपदी नाम से प्रसिद्ध हुई। तपस्वीजन सुरनदी के रूप में उसकी सेवा करने लगे। व्यापक भगवान् तीसरे चरण के पूर्ण न होने पर बलि के पास गए एवं अधर को किंचित् स्फुरित करते हुए बोले—हे दैत्येन्द्र! ऋण न चुकाने से भयंकर बन्धन होता है। अतः तुम मेरे पद को पूर्ण करो अन्यथा बन्धन स्वीकार करो। (३३-३५)

मुरारि के उस वचन को सुनकर बलि के पुत्र बाण ने अमर पति से हँस कर हेतुयुक्त वचन कहा— (३६)

बाण ने कहा—हे जगत्पति! आपने स्वायम्भुवादि छः भुवनों का ही निर्माण कर पृथ्वी को छोटा बनाया है। आपने पहले ही भूमि को विपुल नहीं बनाया अतः आप बलि से अधिक विस्तृत भूमि कैसे माँगते हैं। (३७)

हे विभो! भुवनान्तरालों सहित जितनी पृथ्वी की सृष्टि आपने की थी उसे मेरे पिता ने आज आप को दे

दत्ता च तातेन हि सार्वतोयं
किं वाक्छलेनैष निबध्यतेऽद्य ॥ ३८

या नैव शक्या भवता हि पूरितुं
कथं वितन्याद् दितिजेश्वरोऽसौ ।
शक्तस्तु संपूजयितुं मुरारे
प्रसीद मा बन्धनमादिशस्व ॥ ३९

प्रोक्तं श्रुतौ भवतापीश वाक्यं
दानं पात्रे भवते सौख्यदायि ।
देशे सुपुण्ये वरद यच्च काले
तच्चाशेषं दृश्यते चक्रपाणे ॥ ४०

दानं भूमिः सर्वकामप्रदेयं
भवान् पात्रं देवदेवो जितात्मा ।
कालो ज्येष्ठामूलयोगे मृगाङ्कः
कुरुक्षेत्रं पुण्यदेशं प्रसिद्धम् ॥ ४१

किं वा देवोऽस्मद्विधैर्बुद्धिहीनैः
शिक्षापनीयः साधु वाऽसाधु चैव ।
स्वयं श्रुतीनामपि चादिकर्त्ता
व्याप्य स्थितः सदसद् यो जगद् वै ॥ ४२

कृत्वा प्रमाणं स्वयमेव हीनं
पदत्रयं याचितवान् महत्त्वम् ।
किं त्वं न गृह्णासि जगत्त्रयं भो
रूपेण लोकत्रयवन्दितेन ॥ ४३

नात्राश्चर्यं यज्जगद् वै समग्रं
क्रमत्रयं नैव पूर्णं तवाद्य ।
क्रमेण त्वं लङ्घयितुं समर्थो
लीलामेतां कृतवान् लोकनाथ ॥ ४४

प्रमाणहीनां स्वयमेव कृत्वा
वसुंधरां माधव पद्मनाभ ।
विष्णो न बध्नासि बलिं न दूरे
प्रभुर्यदेवेच्छति तत्करोति ॥ ४५

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्ते वचने बाणेन बलिसूनुना ।
प्रोवाच भगवान् वाक्यमादिकर्त्ता जनार्दनः ॥ ४६

त्रिविक्रम उवाच ।

यान्युक्तानि वचांसीत्थं त्वया बालेय साम्प्रतम् ।
तेषां वै हेतुसंयुक्तं शृणु प्रत्युत्तरं मम ॥ ४७

दिया। अतः आप वाक्छल द्वारा उन्हें क्यों बाँधते हैं? (३८)

हे मुरारे! जिस पृथ्वी की कमी को आप पूर्ण नहीं कर सकते, उसको ये दानवपति कैसे विस्तृत कर सकेंगे? ये आपकी पूजा करने में समर्थ हैं। अतः आप प्रसन्न हों और बाँधने का आदेश न दें। (३९)

हे ईश! आपने ही श्रुति में यह कहा है कि पवित्र देश, काल एवं वरदाता पात्र में दिया गया दान सुखदायक होता है। हे चक्रपाणि! वह सम्पूर्ण (योग) दिखलाई पड़ रहा है। (४०)

सर्वकामप्रदा भूमि का दान हो रहा है, देवाधिदेव जितात्मा आप पात्र हैं, ज्येष्ठा एवं मूल के योग में स्थित चन्द्रमा से युक्त काल है तथा प्रसिद्ध पवित्र कुरुक्षेत्र का देश है। (४१)

अथवा हम जैसे बुद्धिहीन लोगों द्वारा आप भगवान् को उचित और अनुचित शिक्षा क्या दी जाय? आप स्वयं वेदों के भी आदिकर्ता और सदसद् विश्व को व्याप्त कर अवस्थित हैं। (४२)

आपने स्वयं अपने प्रमाण (शारीरिक आकार) को छोटा बनाकर तीन पग भूमि की याचना की थी। हे देव! क्या आप अपने त्रैलोक्य वन्दितरूप से तीनों लोकों को ग्रहण नहीं कर लिए हैं? (४३)

आपके तीन पगों को समग्र जगत् पूर्ण नहीं कर सका, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि अपने एक पग से ही आप इसका उल्लङ्घन करने में समर्थ हैं। हे लोकनाथ! आपने तो यह लीला ही की है। (४४)

हे माधव! हे पद्मनाभ! हे विष्णु! पृथ्वी को स्वयं ही लघुप्रमाण की बनाकर बलि को बाँधना उचित नहीं। प्रभु जो चाहते हैं वही करते हैं। (४५)

पुलस्त्य ने कहा—बलिपुत्र बाण के ऐसा कहने पर आदिकर्त्ता भगवान् जनार्दन ने यह वचन कहा। (४६)

त्रिविक्रम ने कहा—हे बलिनन्दन! तुमने संप्रति इस प्रकार जिन वचनों को कहा है उनका हेतुसंयुक्त प्रत्युत्तर मुझ से सुनो। (४७)

पूर्वमुक्तस्तव पिता मया राजन् पदत्रयम् ।
देहि मह्यं प्रमाणेन तदेतत् समनुष्ठितम् ॥ ४८

किं न वेत्ति प्रमाणं मे बलिस्तव पितासुर ।
प्रायच्छद् येन निःशङ्कं ममानन्तं क्रमत्रयम् ॥ ४९

सत्यं क्रमेण चैकेन क्रमेयं भूर्भुवादिकम् ।
बलेरपि हितार्थाय कृतमेतत् क्रमत्रयम् ॥ ५०

तस्माद् यन्मम बालेय त्वत्पित्राम्बु करे मदत् ।
दत्तं तेनायुरेतस्य कल्पं यावद्-भविष्यति ॥ ५१

गते मन्वन्तरे बाण श्राद्धदेवस्य साम्प्रतम् ।
सावर्णिके च संप्राप्ते बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥ ५२

इत्थं प्रोक्त्वा बलिसुतं बाणं देवस्त्रिविक्रमः ।
प्रोवाच बलिमभ्येत्य वचनं मधुराक्षरम् ॥ ५३

श्रीभगवानुवाच ।

आपूरणाद् दक्षिणाया गच्छ राजन् महाफलम् ।
सुतलं नाम पातालं वस तत्र निरामयः ॥ ५४

बलिरुवाच

सुतले वसतो नाथ मम भोगाः कुतोऽव्ययाः ।
भविष्यन्ति तु येनाहं निवत्स्यामि निरामयः ॥ ५५

त्रिविक्रम उवाच ।

सुतलस्थस्य दैत्येन्द्र यानि भोगानि तेऽधुना ।
भविष्यन्ति महार्हाणि तानि वक्ष्यामि सर्वशः ॥ ५६

दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च ।
तथाधीतान्यव्रतिभिर्दास्यन्ति भवतः फलम् ॥ ५७

तथान्यमुत्सवं पुण्यं वृत्ते शक्रमहोत्सवे ।
द्वारप्रतिपदा नाम तव भावी महोत्सवः ॥ ५८

तत्र त्वां नरशार्दूला हृष्टाः पुष्टाः स्वलंकृताः ।
पुष्पदीपप्रदानेन अर्चयिष्यन्ति यत्नतः ॥ ५९

तत्रोत्सवो मुख्यतमो भविष्यति
दिवानिशं हृष्टजनाभिरामम् ।
यथैव राज्ये भवतस्तु साम्प्रतं

मैंने प्रथम ही तुम्हारे पिता से यह कहा था कि हे राजन्! मेरे प्रमाणानुसार मुझे तीन पग भूमि दो। उन्होंने भलीभाँति इसका अनुष्ठान किया। (४८)

हे असुर! क्या तुम्हारे पिता बलि मेरा प्रमाण नहीं जानते थे जो उन्होंने निःशङ्कभाव से मेरे अनन्त तीन पगों का दान किया। (४९)

वस्तुतः अपने एक पैर से ही मैं समस्त भूः भुवः आदि जगत् को आक्रान्त कर सकता हूँ। बलि के हित के लिए ही मैंने तीन पगों को किया है। (५०)

अतः हे बलिपुत्र! क्योंकि तुम्हारे पिता ने मेरे हाथ में प्रशस्त जल दिया है अतः इनकी आयु एक कल्प की होगी। (५१)

हे बाण! श्राद्धदेव का साम्प्रतिक मन्वन्तर व्यतीत हो जाने के उपरान्त सावर्णिक मन्वन्तर के आने पर बलि इन्द्र बनेंगे। (५२)

बलि के पुत्र बाण से ऐसा कहने के उपरान्त त्रिविक्रम देव बलि के समीप गये एवं उससे मधुर वचन कहा। (५३)

श्रीभगवान् ने कहा—हे राजन्! दक्षिणा की पूर्ति होने तक तुम्हें यह महाफल प्राप्त करना होगा। तुम सुतल नामक पाताल में व्याधि रहित होकर निवास करो। (५४)

बलि ने कहा—हे नाथ! सुतल में निवास करते समय निरामय रूप से रहने के लिये मुझे अक्षय भोग कहाँ से प्राप्त होंगे? (५५)

त्रिविक्रम ने कहा—हे दैत्येन्द्र! मैं इस समय तुम्हारे सम्मुख उन समस्त बहुमूल्य भोगों का वर्णन करता हूँ जो सुतल में निवास करते समय तुम्हें उपलब्ध होंगे। (५६)

अविधिपूर्वक किए गये दान, अश्रोत्रिय द्वारा किये गए श्राद्ध एवं ब्रह्मचर्यव्रत-रहित अध्ययन आप को फल प्रदान करेंगे। (५७)

इन्द्र पूजन के अनन्तर आने वाली प्रतिपदा को तुम्हारे पूजन के निमित्त दूसरा उत्सव मनाया जायगा, जिसका नाम द्वारप्रतिपदा होगा। (५८)

उस उत्सव के समय हृष्ट-पुष्ट, नरश्रेष्ठ लोग सुन्दर रूप से सज धज कर पुष्प और दीप देकर प्रयत्नपूर्वक आपकी पूजा करेंगे। (५९)

आप के राज्य में इस समय जिस प्रकार अहोरात्र

तथैव सा भाव्यथ कौमुदी च ॥ ६०
इत्येवमुक्त्वा मधुहा दितीश्वरं
विसर्जयित्वा सुतलं सभार्यम् ।
यज्ञं समादाय जगाम तूर्णं
स शक्रसद्मामरसंघजुष्टम् ॥ ६१
दत्त्वा मघोने च विभुस्त्रिविष्टपं
कृत्वा च देवान् मखभागभोक्तॄन् ।
अन्तर्दधे विश्वपतिर्महर्षे
संपश्यतामेव सुराधिपानाम् ॥ ६२
स्वर्गं गते धातरि वासुदेवे
शाल्वोऽसुराणां महता बलेन ।
कृत्वा पुरं सौभमिति प्रसिद्धं
तदान्तरिक्षे विचचार कामात् ॥ ६३
मयस्तु कृत्वा त्रिपुरं महात्मा
सुवर्णताम्रायसमप्रधृष्यम् ।
सतारकाक्षः सह वैद्युतेन
संतिष्ठते भृत्यकलत्रवान् सः ॥ ६४

बाणोऽपि देवेन हृते त्रिविष्टपे
बद्धे बलौ चापि रसातलस्थे ।
कृत्वा सुगुप्तं भुवि शोणिताख्यं
पुरं स पाल्ये सह दानवेन्द्रैः ॥ ६५
एवं पुरा चक्रधरेण विष्णुना
बद्धो बलिर्वामनरूपधारिणा ।
शक्रप्रियार्थं सुरकार्यसिद्धये
हिताय विप्रर्षभगोद्विजानाम् ॥ ६६
प्रादुर्भवस्ते कथितो महर्षे
पुण्यः शुचिर्वामनस्यापहारी ।
श्रुते यस्मिन् संस्मृते कीर्तिते च
पापं याति प्रशमं पुण्यमेति ॥ ६७
एतत् प्रोक्तं भवतः पुण्यकीर्तेः
प्रादुर्भावो बलिबन्धोऽव्ययस्य ।
यथाप्यन्यत् श्रोतुकामोऽसि विप्र
तत्प्रोच्यतां कथयिष्याम्यशेषम् ॥ ६८

इति श्रीवामनपुराणे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

उत्सव जनसमुदाय के कारण रमणीय महोत्सव बना रहता है उसी प्रकार उत्सवों में श्रेष्ठ यह कौमुदी नाम का उत्सव होगा। (६०)

मधुसूदन ने दानवेश्वर बलि से इस प्रकार कहकर उसे पत्नी सहित सुतल लोक में भेज दिया। वे यज्ञ को लेकर शीघ्र देव-समूह से सेवित इन्द्र भवन गये। (६१)

हे महर्षे! इसके बाद विश्वपति व्यापक भगवान् विष्णु, इन्द्र को स्वर्ग देकर और देवगणों को यज्ञ भाग का भोक्ता बनाकर देवताओं के देखते ही देखते अदृश्य हो गये। (६२)

विधाता वासुदेव के स्वर्ग चले जाने पर दानव शाल्व असुरों की बड़ी सेना लेकर सौभ नामक प्रसिद्ध नगर बनाकर इच्छानुसार आकाश में विचरण करने लगा। (६३)

भृत्यकलत्रयुक्त महात्मा मय स्वर्ण, ताम्र एवं लौह का अजेय पुर निर्माण कर तारकाक्ष तथा वैद्युत के साथ अच्छी तरह सुखपूर्वक उसमें रहने लगा। (६४)

बाणासुर भी विष्णु के द्वारा स्वर्ग छीन लिये जाने पर तथा बलि के बँधने तथा रसातल में रहने पर अत्यन्त सुरक्षित शोणित नामक पुर का निर्माण कर दानवेन्द्रों के साथ रहने लगा। (६५)

इस प्रकार प्राचीन समय में चक्रधारी विष्णु ने वामन रूप धारण कर इन्द्र की भलाई, देवताओं की कार्यसिद्धि तथा ब्राह्मणों, ऋषियों, गौओं और द्विजों के हित के लिए बलि को बाँधा था। (६६)

हे महर्षि! मैंने आप से वामन के पापहारी, पुण्ययुक्त एवं पवित्र प्रादुर्भाव का वर्णन किया। इसके श्रवण, स्मरण एवं कीर्तन से पाप का नाश एवं पुण्य की प्राप्ति होती है। (६७)

हे विप्र! मैंने अविनाशी पुण्यकीर्ति देव वामन के आविर्भाव तथा बलि को बाँधने की कथा का आप से वर्णन किया। अब आप अन्य कुछ सुनना चाहते हों, उसे कहिए। मैं पूर्णरूप से उसका वर्णन करूँगा। (६८)

श्रीवामनपुराण में पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥

६६

नारद उवाच।

श्रुतं यथा भगवता बलिर्बद्धो महात्मना।
किंचस्त्वन्यं तु प्रष्टव्यं तच्छ्रुत्वा कथयाद्य मे ॥ १
भगवान् देवराजाय दत्त्वा विष्णुस्त्रिविष्टपम्।
अन्तर्धानं गतः क्वासौ सर्वात्मा तात कथ्यताम् ॥ २
सुतलस्थश्च दैत्येन्द्रः किमकार्षीत् तथा वद।
का चेष्टा तस्य विप्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३

पुलस्त्य उवाच।

अन्तर्धाय सुरावासं वामनोऽभूदवामनः।
जगाम ब्रह्मसदनमधिरुह्योरगाशनम् ॥ ४
वासुदेवं समायान्तं ज्ञात्वा ब्रह्माऽव्ययात्मकः।
समुत्थायाथ सौहार्दात् सस्वजे कमलासनः ॥ ५
परिष्वज्यार्च्य विधिना वेधाः पूजादिना हरिम्।
पप्रच्छ किं चिरेणेह भवतागमनं कृतम् ॥ ६
अथोवाच जगत्स्वामी मया कार्यं महत्कृतम्।
सुराणां क्रतुभागार्थं स्वयंभो बलिबन्धनम् ॥ ७
पितामहस्तद् वचनं श्रुत्वा मुदितमानसः।
कथं कथमिति प्राह त्वं मां दर्शितुमर्हसि ॥ ८
इत्येवमुक्ते वचने भगवान् गरुडध्वजः।
दर्शयामास तद्रूपं सर्वदेवमयं लघु ॥ ९
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं योजनायुतविस्तृतम्।
तावानेवोर्ध्वमानेन ततोऽजः प्रणतोऽभवत् ॥ १०
ततः प्रणम्य सुचिरं साधु साध्वित्युदीर्य च।
भक्तिनम्रो महादेवं पद्मजः स्तोत्रमीरयत् ॥ ११

ॐ नमस्ते देवाधिदेव वासुदेव
एकशृङ्ग बहुरूप वृषाकपे भूतभावन
सुरासुरवृष सुरासुरमथन पीतवासः
श्रीनिवास असुरनिर्मितान्त अमितनिर्मित

६६

नारद ने कहा—महात्मा भगवान् ने जिस प्रकार बलि को बाँधा था उसे मैंने सुना। किन्तु, अन्य विषय भी पूछना है। उसे सुनकर आज आप मुझसे कहिये। (१)

हे तात! यह बतलाइए कि देवराज इन्द्र को स्वर्ग देने के उपरान्त वे सर्वात्मा भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो कर कहाँ चले गये। इसके अतिरिक्त यह बतलाइए कि सुतलस्थ दैत्येन्द्र ने क्या किया एवं हे विप्रर्षि! मुझे विशेषरूप से यह सूचित करें कि तदुपरान्त वह कौन-सी चेष्टाएँ करता था? (२ ३)

पुलस्त्य ने कहा—तिरोहित होने के उपरान्त वामन देव ने अपना वामन स्वरूप त्याग दिया एवं गरुड पर आरूढ होकर सुरावास ब्रह्मलोक गये। (४)

वासुदेव को आया जानकर अव्ययात्मक कमलासन ब्रह्मा (अपने आसन से) उठे एवं सौहार्दपूर्वक (विष्णु का) आलिङ्गन किये। (५)

आलिङ्गनोपरान्त विधिपूर्वक पूजादि द्वारा हरि की अर्चना कर ब्रह्मा ने पूछा—'चिरकालोपरान्त आपके यहाँ आने का क्या कारण है?' (६)

तदनन्तर जगत्स्वामी ने कहा—मैंने महान् कार्य किया है? हे स्वयम्भो! सुरों के यज्ञ भाग के लिए मैंने बलि को बाँधा है। (७)

यह वचन सुनकर ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर कहा—कैसे! कैसे! आप उस रूप को मुझे दिखलावें। (८)

ऐसा वचन कहे जाने पर भगवान् गरुडध्वज ने शीघ्रता से वह सर्वदेवमय रूप दिखाया। (९)

अयुत योजन विस्तृत तथा उतने ही ऊँचे पुण्डरीकाक्ष को देखकर पितामह ने प्रणाम किया। (१०)

तदनन्तर देर तक प्रणाम कर ब्रह्मा ने 'साधु, साधु' कहा एवं भक्तिपूर्ण नम्रता से महादेव की स्तुति करने लगे—(११)

हे देवाधिदेव! वासुदेव! एकशृङ्ग! बहुरूप! वृषाकपि! भूतभावन! सुरासुरश्रेष्ठ! सुरासुरमथन! पीतवास! श्रीनिवास! असुरनिर्मितान्त! अमितनिर्मित! कपिल!

कपिल महाकपिल विष्वक्सेन नारायण [5]
ध्रुवध्वज सत्यध्वज खड्गध्वज तालध्वज
वैकुण्ठ पुरुषोत्तम वरेण्य विष्णो अपराजित
जय जयन्त विजय कृतावर्त महादेव
अनादे अनन्त आद्यन्तमध्यनिधन
पुरञ्जय धनंजय शुचिश्रव पृश्निगर्भ [10]
कमलगर्भ कमलायताक्ष श्रीपते विष्णुमूल
मूलाधिवास धर्माधिवास धर्मवास
धर्माध्यक्ष प्रजाध्यक्ष गदाधर
श्रीधर श्रुतिधर वनमालाधर
लक्ष्मीधर धरणीधर पद्मनाभ [15]
विरिञ्चे आर्ष्टिषेण महासेन सेनाध्यक्ष
पुरुष्टुत बहुकल्प महाकल्प
कल्पनामुख अनिरुद्ध सर्वग सर्वात्मन्
द्वादशात्मक सूर्यात्मक सोमात्मक
कालात्मक व्योमात्मक भूतात्मक [20]
रसात्मक परमात्मन् सनातन

मुञ्जकेश हरिकेश गुडाकेश केशव
नील सूक्ष्म स्थूल पीत रक्त श्वेत श्वेताधिवास
रक्ताम्बरप्रिय प्रीतिकर प्रीतिवास हंस
नीलवास सीरध्वज सर्वलोकाधिवास [25]
कुशेशय अधोक्षज गोविन्द जनार्दन
मधुसूदन वामन नमस्ते ।
सहस्रशीर्षोऽसि सहस्रदृगसि सहस्रपादोऽसि
त्वं कमलोऽसि महापुरुषोऽसि सहस्रबाहुरसि
सहस्रमूर्तिरसि त्वां देवाः प्राहुः सहस्रवदनं [30]
ते नमस्ते ।
ॐ नमस्ते विश्वदेवेश विश्वभूः विश्वात्मक
विश्वरूप विश्वसंभव त्वत्तो विश्वमिदमभवद्
ब्राह्मणास्त्वन्मुखेभ्योऽभवन् क्षत्रिया दोःसंभूताः
ऊरुयुग्माद् विशोऽभवन् शूद्राश्चरणकमलेभ्यः [35]
नाभ्या भवतोऽन्तरिक्षमजायत इन्द्राग्नी वक्त्रतो
नेत्राद् भानुरभून्मनसः शशाङ्कः अहं प्रसादजस्तव
श्रोत्रात् त्र्यम्बकः प्राणाज्जातो भवतो मातरिश्वा

महाकपिल ! विष्वक्सेन ! नारायण ! आपको नमस्कार है ।

ध्रुवध्वज ! सत्यध्वज ! खड्गध्वज ! तालध्वज ! वैकुण्ठ ! पुरुषोत्तम ! वरेण्य ! विष्णु ! अपराजित ! जय ! जयन्त ! विजय ! कृतावर्त ! महादेव ! अनादि ! अनन्त ! आद्यन्त ! मध्यनिधन ! पुरञ्जय ! धनञ्जय ! शुचिश्रव ! पृश्निगर्भ ! (आपको नमस्कार है ।) [10]

कमलगर्भ ! कमलायताक्ष ! श्रीपति ! विष्णुमूल ! मूलाधिवास ! धर्माधिवास ! धर्मवास ! धर्माध्यक्ष ! प्रजाध्यक्ष ! गदाधर ! श्रीधर ! श्रुतिधर ! वनमालाधर ! लक्ष्मीधर ! धरणीधर ! पद्मनाभ ! (आपको नमस्कार है ।) [15]

विरिञ्चि ! आर्ष्टिषेण ! महासेन ! सेनाध्यक्ष ! पुरुष्टुत ! बहुकल्प ! महाकल्प ! कल्पनामुख ! अनिरुद्ध ! सर्वग ! सर्वात्मक ! द्वादशात्मक ! सूर्यात्मक ! सोमात्मक ! कालात्मक ! व्योमात्मक ! भूतात्मक ! (आपको नमस्कार है ।) [20]

हे रसात्मक ! परमात्मन् ! सनातन ! मुञ्जकेश ! हरिकेश ! गुडाकेश ! केशव ! नील ! सूक्ष्म ! स्थूल ! पीत ! रक्त ! श्वेत ! श्वेताधिवास ! रक्ताम्बरप्रिय ! प्रीतिकर ! प्रीतिवास ! हंस ! नीलवास ! सीरध्वज ! सर्वलोकाधिवास ! कुशेशय ! अधोक्षज ! गोविन्द ! जनार्दन ! मधुसूदन ! वामन ! आपको नमस्कार है । [27]

आप सहस्रशीर्ष, सहस्रनेत्र, सहस्रपाद, कमल, महापुरुष, सहस्रबाहु एवं सहस्रमूर्ति हैं । आपको देवगण सहस्रवदन कहते हैं । आपको नमस्कार है । [31]

ॐ विश्वदेवेश ! विश्वभू ! विश्वात्मक ! विश्वरूप ! विश्वसंभव ! आपको नमस्कार है । आपसे यह विश्व उत्पन्न हुआ है । आपके मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरुयुग्म से वैश्य एवं चरणकमलों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं । [35]

हे भगवन् ! आपकी नाभि से अन्तरिक्ष, मुख से इन्द्र एवं अग्नि, नेत्र से भानु, मन से शशाङ्क एवं आपके प्रसाद से मैं हुआ हूँ । आपके श्रोत्र से त्र्यम्बक, प्राण से मातरिश्वा, शिर से द्युलोक, कर्ण से दिशाएँ, चरणों से यह

शिरसो द्यौरजायत श्रोत्राद् दिशो भूरियं चरणा-
दभूच्छ्रोत्रोद्भवादिशोभवत.स्वयंभोनक्षत्रास्तेजोद्भवा:[40]
मूर्त्तयश्चामूर्तयश्च सर्वे त्वत्तः समुद्भूताः ।
अतो विश्वात्मकोऽसि ॐ नमस्ते पुष्पहासोऽसि
महाहासोऽसि परमोऽसि ॐकारोऽसि वषट्कारोऽसि
स्वाहाकारोऽसि वौषट्कारोऽसि स्वधाकारोऽसि
वेदमयोऽसि तीर्थमयोऽसि यजमानमयोऽसि [45]
यज्ञमयोऽसि सर्वधाताऽसि यज्ञभोक्ताऽसि
शुक्रधाताऽसि भूर्द भुवर्द स्वर्द स्वर्णद गोद
अमृतदोऽसीति । ॐ ब्रह्मादिरसि ब्रह्ममयोऽसि
यज्ञोऽसि वेदकामोऽसि वेद्योऽसि यज्ञधारोऽसि
महामीनोऽसि महासेनोऽसि महाशिरा असि [50]
नृकेसर्यसि होताऽसि होम्योऽसि हव्योऽसि हूयमानोऽसि
हयमेधोऽसि पोताऽसि पावयिताऽसि पूतोऽसि
पूज्योऽसि दाताऽसि हन्यमानोऽसि ह्रियमाणोऽसि
हर्त्तासीति ॐ । नीतिरसि नेताऽसि अग्र्योऽसि
विश्वधामाऽसिशुभाण्डोऽसिध्रुवोऽसिआरणेयोऽसि[55]
ध्यानोऽसि ध्येयोऽसि ज्ञेयोऽसि ज्ञानोऽसि यष्टाऽसि
दानोऽसि भूमाऽसि ईड्योऽसि ब्रह्माऽसि होताऽसि
उद्गाताऽसि गतिमतां गतिरसि ज्ञानिनां ज्ञानमसि
योगिनां योगोऽसि मोक्षगामिनां मोक्षोऽसि
श्रीमतां श्रीरसि गुह्योऽसि पाताऽसि परमसि [60]
सोमोऽसि सूर्योऽसि दीक्षाऽसि दक्षिणाऽसि नरोऽसि
त्रिनयनोऽसि महानयनोऽसि आदित्यप्रभवोऽसि
सुरोत्तमोऽसि शुचिरसि शुक्रोऽसि नभोऽसि
नभस्योऽसि इषोऽसि ऊर्जोऽसि सहोऽसि
सहस्योऽसि तपोऽसि तपस्योऽसि मधुरसि [65]
माधवोऽसि कालोऽसि संक्रमोऽसि विक्रमोऽसि
पराक्रमोऽसि अश्वग्रीवोऽसि महामेधोऽसि
शंकरोऽसि हरीश्वरोऽसि शंभुरसि ब्रह्मेशोऽसि
सूर्योऽसि मित्रावरुणोऽसि प्राग्वंशकायोऽसि
भूतादिरसि महाभूतोऽसि ऊर्ध्वकर्माऽसि कर्त्ताऽसि [70]
सर्वपापविमोचनोऽसि त्रिविक्रमोऽसि ॐ नमस्ते

पुलस्त्य उवाच ।

इत्थं स्तुतः पद्मभवेन विष्णु-
स्तपस्विभिश्चाद्भुतकर्मकारी ।

पृथ्वी, श्रवण से दिशाएँ एवं तेज से नक्षत्र उत्पन्न हुए हैं। समस्त मूर्त एवं अमूर्त पदार्थ आपसे समुद्भूत हुए हैं। [41]

अत आप विश्वात्मक हैं ॐ आपको नमस्कार है। आप पुष्पहास, महाहास, परम, ॐकार, वषट्कार, स्वाहाकार, वौषट्कार, स्वधाकार, वेदमय, तीर्थमय, यजमानमय, यज्ञमय, सर्वधाता, यज्ञभोक्ता, शुक्रधाता, भूर्द, भुवर्द, स्वर्द, स्वर्णद गोद एवं अमृतद हैं। ॐ आप ब्रह्मादि, ब्रह्ममय, यज्ञ, वेदकाम, वेद्य, यज्ञधार, महामीन, महासेन, महाशिरा, नृकेसरी, होता, होम्य, हव्य, हूयमान, हयमेध, पोता, पावयिता, पूत, पूज्य, दाता, हन्यमान, ह्रियमाण एवं हर्त्ता हैं। ॐ आप नीति, नेता, अग्र्य, विश्वधाम, शुभाण्ड, ध्रुव, आरणेय, ध्यान, ध्येय, ज्ञेय, ज्ञान, यष्टा, दान, भूमा, ईड्य, ब्रह्मा, होता, उद्गाता, गतिमानों की गति, ज्ञानियों के ज्ञान, योगियों के योग, मोक्षार्थियों के मोक्ष, श्रीमानों की श्री, गुह्य, पाता एवं परम हैं। [60]

आप, सोम, सूर्य, दीक्षा, दक्षिणा, नर, त्रिनयन, महानयन, आदित्यप्रभव, सुरोत्तम, शुचि, शुक्र, नभ, नभस्य, इष, ऊर्ज, सह, सहस्य, तप, तपस्य, मधु, माधव, काल, सक्रम, विक्रम, पराक्रम, अश्वग्रीव, महामेध, शङ्कर, हरीश्वर, शम्भु, ब्रह्मेश, सूर्य, मित्रावरुण, प्राग्वंशकाय, भूतादि, महाभूत, ऊर्ध्वकर्मा, कर्त्ता, सर्वपापविमोचन एवं त्रिविक्रम हैं। ॐ आपको नमस्कार है। [70]

पुलस्त्य ने कहा—ब्रह्मा एवं तपस्वियों के इस प्रकार स्तुति करने पर अद्भुत कर्मकारी विष्णु ने प्रपितामह देव से कहा—हे अमलसत्त्ववृत्ति ! आप वर माँगिये। (१२)

पितामह ने प्रीतिपूर्वक उनसे कहा—हे विभो ! हे मुरारि ! आप मुझे यह वर प्रदान करें कि आप इस

प्रोवाच देवं प्रपितामहं तु
वरं वृणीष्वामलसत्त्ववृत्ते ॥ १२
तमब्रवीत् प्रीतियुतः पितामहो
वरं ममेहाद्य विभो प्रयच्छ।
रूपेण पुण्येन विभो ह्यनेन
संस्थीयतां मद्भवने मुरारे ॥ १३
इत्थं वृते देववरेण प्रादात्
प्रभुस्तथास्त्विति तमव्ययात्मा।
तस्थौ हि रूपेण हि वामनेन
संपूज्यमानः सदने स्वयंभोः ॥ १४
नृत्यन्ति तत्राप्सरसां समूहा
गायन्ति गीतानि सुरेन्द्रगायनाः।
विद्याधरास्तूर्यवरांश्च वादयन्
स्तुवन्ति देवासुरसिद्धसङ्घाः ॥ १५
ततः समाराध्य विभुं सुराधिपः
पितामहो धौतमलः स शुद्धः।
स्वर्गे विरिञ्चिः सदनात् सुपुष्पा-
ण्यानीय पूजां प्रचकार विष्णोः ॥ १६
स्वर्गे सहस्रं स तु योजनानां
विष्णोः प्रमाणेन हि वामनोऽभूत्।
तत्रास्य शक्रः प्रचकार पूजां
स्वयंभुवस्तुल्यगुणां महर्षे ॥ १७
एतत् तवोक्तं भगवांस्त्रिविक्रम-
श्चकार यद् देवहितं महात्मा।
रसातलस्थो दितिजश्चकार
यत्तच्छृणुष्वाद्य वदामि विप्र ॥ १८

इति श्रीवामनपुराणे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

पवित्र रूप से मेरे भवन में स्थित रहें। (१३)

देवश्रेष्ठ के ऐसा वर माँगने पर अव्ययात्मा प्रभु ने उनसे कहा—ऐसा ही होगा। तदनन्तर वे स्वयम्भू के भवन में वामनरूप से पूजित होते हुए रहने लगे। (१४)

वहाँ अप्सराओं का समूह नृत्य करने लगा, सुरेन्द्र के गायक गान करने लगे, विद्याधर श्रेष्ठ तूर्य बजाने लगे एवं देव, असुर तथा सिद्धों के संघ स्तुति करने लगे। (१५)

विभु की समाराधना के उपरान्त पितामह ब्रह्मा निष्पाप एवं शुद्ध हो गए। स्वर्ग में ब्रह्मा ने घर में से सुन्दर पुष्पों को लाकर उनसे विष्णु का पूजन किया। (१६)

विष्णु स्वर्ग में वामन रूप से सहस्र योजन विस्तृत हो गये। हे महर्षे! वहाँ इन्द्र ने ब्रह्मा के समान गुणयुक्त पदार्थों से उनकी पूजा की। (१७)

हे विप्र! महात्मा भगवान् त्रिविक्रम ने बलि को रसातल में भेजकर देवताओं का जो हितसाधन किया था, वह मैंने आप से कहा। दैत्य ने रसातल में रहते हुए जो कार्य किया उसका वर्णन मैं आज कर रहा हूँ। उसे सुनो। (१८)

श्रीवामनपुराण में छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥

६७

पुलस्त्य उवाच।

गत्वा रसातलं दैत्यो महार्हमणिचित्रितम्।
शुद्धस्फटिकसोपानं कारयामास वै पुरम्॥ १
तत्र मध्ये सुविस्तीर्णः प्रासादो वज्रवेदिकः।
मुक्ताजालान्वरद्वारो निर्मितो विश्वकर्मणा॥ २
तत्रास्ते विविधान् भोगान् भुञ्जन् दिव्यान् समानुषान्।
नाम्ना विन्ध्यावलीत्येवं भार्याऽस्य दयिताऽभवत्॥ ३
युवतीनां सहस्रस्य प्रधाना शीलमण्डिता।
तया सह महातेजा रेमे वैरोचनिर्मुने॥ ४
भोगासक्तस्य दैत्यस्य वसतः सुतले तदा।
दैत्यतेजोहरः प्राप्तः पाताले वै सुदर्शनः॥ ५
चक्रे प्रविष्टे पातालं दानवानां पुरे महान्।
बभौ हलहलाशब्दः क्षुभितार्णवसंनिभः॥ ६
तं च श्रुत्वा महाशब्दं बलिः खड्गं समाददे।
आः किमेतदितीत्यश्च पप्रच्छासुरपुंगव.॥ ७
ततो विन्ध्यावली प्राह सान्त्वयन्ती निजं पतिम्।
कोशे खड्गं समावेश्य धर्मपत्नी शुचिव्रता॥ ८
एतद् भगवतश्चक्रं दैत्यचक्रक्षयंकरम्।
संपूजनीयं दैत्येन्द्र वामनस्य महात्मनः।
इत्येवमुक्त्वा चार्वङ्गी सार्घपात्रा विनिर्ययौ॥ ९
अथाभ्यागात् सहस्रारं विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम्।
ततोऽसुरपतिः प्रह्वः कृताञ्जलिपुटो मुने।
संपूज्य विधिवच्चक्रमिदं स्तोत्रमुदीरयत्॥ १०

बलिरुवाच।

नमस्यामि हरेश्चक्रं दैत्यचक्रविदारणम्।
सहस्रांशुं सहस्राभं सहस्रारं सुनिर्मलम्॥ ११
नमस्यामि हरेश्चक्रं यस्य नाभ्यां पितामहः।
तुण्डे त्रिशूलधृक् शर्व आरामूले महाद्रयः॥ १२

पुलस्त्य ने कहा—रसातल में जाकर दैत्य ने बहुमूल्य मणियों से चित्रित शुद्ध स्फटिक के सोपान से भूषित नगर बनवाया। (१)

विश्वकर्मा ने उसके मध्य में सुविस्तीर्ण वज्रमय वेदियों वाला एवं मुक्ताजालयुक्त द्वार वाला प्रासाद बनाया। (२)

बलि अनेक प्रकार के दिव्य तथा मनुष्यों के योग्य भोगों का उपभोग करते हुए वहाँ रहने लगा। विन्ध्यावली नाम की उसकी प्रिय पत्नी थी। (३)

हे मुनि! वह सहस्रों युवतियों में प्रधान एक शीलसम्पन्न स्त्री थी। महातेजस्वी विरोचन पुत्र बलि उसके साथ रमण करने लगा। (४)

भोगासक्त दैत्य के सुतल में रहते समय एक दिन दैत्यतेजोहर सुदर्शन चक्र पाताल में प्रविष्ट हुआ। (५)

चक्र के पाताल में प्रविष्ट होने पर दानवों के पुर में क्षुब्धसागर के तुल्य महान् हलहलाशब्द उत्पन्न हुआ। (६)

उस महान् शब्द को सुनकर असुरश्रेष्ठ बलि ने हाथ में एक तलवार लिया और इस प्रकार पूछा—अरे! यह क्या है? (७)

तदनन्तर शुचिव्रता धर्मपत्नी विन्ध्यावली ने अपने पति को सान्त्वना देकर तथा खड्ग को कोश में समाविष्ट कर यह कहा— (८)

यह भगवान् महात्मा वामन का दैत्यसमूह का विनाश करने वाला पूजनीय चक्र है। ऐसा कहकर वह सुन्दरी अर्घपात्र सहित बाहर गयी। (९)

उसी बीच विष्णु का सहस्र अरों वाला सुदर्शन चक्र आ पहुँचा। हे मुनि! असुरपति ने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर विधिवत् चक्र का पूजन किया एवं यह स्तुति की। (१०)

बलि ने कहा—दैत्य-समूह को विदीर्ण करने वाले सहस्रांशुयुक्त, सहस्र आभा वाले, सहस्र अरों से युक्त निर्मल विष्णु के सुदर्शन चक्र को मैं नमस्कार करता हूँ। (११)

विष्णु के उस चक्र को मैं नमस्कार करता हूँ, जिसकी

ओरेषु संस्थिता देवाः सेन्द्राः सार्काः सपावकाः ।
अङ्गे यस्य स्थितो वायुरापोऽग्निः पृथिवी नभः ॥ १३
आस्यान्तेषु स्थिता: सौदामिन्युडुतारकाः ।
पादतो मुनयो यस्य वालखिल्यादयस्तथा ॥ १४
गदायुधवरं वन्दे वासुदेवस्य भक्तितः ।
हन्तु पापं शरीरोत्थं वाच्यं मानसमेव च ॥ १५
हन्तु दहन दीप्तांशो विष्णोश्चक्र सुदर्शन ।
हन्तु दुष्कृतं पापं पैतृकं मातृकं तथा ॥ १६
हन्तु दुःखं शरणं नमस्ते ऽच्युतायुध ।
आपदो मम नश्यन्तु व्याधयो यान्तु संक्षयम् ॥
त्वन्नामकीर्तनात्क्षिप्रं दुरितं यातु संक्षयम् ॥ १७
इत्येवमुक्त्वा मतिमान समभ्यर्च्याथ भक्तितः ।
संस्मरन् पुण्डरीकाक्षं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १८
पूजितं बलिना चक्रं कृत्वा निर्भर्त्सितासुरान् ।
निष्क्रान्तमथ पातालाद् विधुरे दक्षिणे मुने ॥ १९
सुदर्शने निर्गते तु बलिर्विह्वलतां गतः ।
परमापदं प्राप्य सस्मार स्वपितामहम् ॥ २०
स चापि संस्मृतः प्राप्तः सुतलं दानवेश्वरः ।
दृष्ट्वा तस्थौ महातेजाः सार्घपात्रो बलिस्तदा ॥ २१
समर्च्य विधिना भक्त्या पितुः पितरमीश्वरम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ २२
संस्मृतोऽसि मया तात सुविषण्णेन चेतसा ।
तन्मे हितं च पथ्यं च श्रेयोऽर्थं वद तात मे ॥ २३
किं कार्यं तात संसारे वसता पुरुषेण हि ।
कृतेन येन वै नास्य बन्धः समुपजायते ॥ २४
संसारार्णवमग्नानां नराणामल्पचेतसाम् ।
तरणे यो भवेत् पोतस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २५

पुलस्त्य उवाच ।

एतद्वचनमाकर्ण्य तत्पौत्राद् दानवेश्वरः ।
विचिन्त्य प्राह वचनं संसारे यद्धितं परम् ॥ २६

प्रह्लाद उवाच ।

साधु दानवशार्दूल यत्ते जाता मतिस्त्वियम् ।

नाभि में पितामह, चोटी पर त्रिशूलधारी महादेव, अंगों के मूल में समस्त पर्वत, ऊरुओं में इन्द्र, सूर्य, अग्नि, आदि देवता, अंग में वायु, जल, अग्नि, पृथिवी और आकाश, आस्यों के किनारों में मेघ, विद्युत् नक्षत्र एवं ताराओं के समूह तथा पादभाग में वालखिल्य आदि मुनि स्थित हैं। (१२-१४)

मैं भक्तिपूर्वक वासुदेव के श्रेष्ठ आयुध को नमस्कार करता हूँ। हे विष्णु के दीप्तांशु सुदर्शन चक्र! मेरे शारीरिक वाचिक एवं मानसिक पापों का नाश किया करें। हे अच्युतायुध! मेरे कुल में हुए पैतृक एवं मातृक पापों का वेग से आप हरण करें। आपको नमस्कार है। मेरी समस्त आधि व्याधियों का नाश हो जाय। हे चक्र! आपके नाम का कीर्तन करने से पापों का नाश हो जाय। (१४-१७)

ऐसा कहकर मतिमान् (बलि) ने भक्तिपूर्वक चक्र की पूजा कर सर्वपापनाशक पुण्डरीकाक्ष का स्मरण किया। (१८)

हे मुनि! बलि से पूजित चक्र असुरों को निस्तेज कर पाताल से निकल कर दक्षिण की ओर गया। (१९)

सुदर्शन के निकल जाने पर बलि अत्यन्त विकल हो गए। घोर आपत्ति आने पर उन्होंने अपने पितामह को स्मरण किया। (२०)

स्मरण करते ही दैत्येश्वर (प्रह्लाद) सुतल में आ गये। (उन्हें) देखते ही महातेजस्वी बलि तत्काल हाथ में अर्घ लिये उठ खड़े हुए। (२१)

हे ब्रह्मन्! अपने समर्थ पितामह की विधिपूर्वक पूजा करने के उपरान्त बलि ने हाथ जोड़ कर यह वचन कहा— (२२)

हे तात! अत्यन्त विषण्ण चित्त से मैंने आपका स्मरण किया है। अब हे तात! मुझे हितकर, पथ्य एवं श्रेयस्कर उत्तम उपदेश दें। (२३)

हे तात! मनुष्य को संसार में रहते हुए क्या करना चाहिए जिसको करने से उसे बन्धन न हो। (२४)

आप मुझसे संसार समुद्र में मग्न अल्पमति मनुष्यों को तरने के लिये पोतस्वरूप क्या है इसे बतायें। (२५)

पुलस्त्य ने कहा—अपने पौत्र के इस वचन को सुनने के उपरान्त दानवेश्वर (प्रह्लाद) ने विचार कर संसार में हितकर श्रेष्ठ वचन कहा। (२६)

प्रह्लाद ने कहा—हे दानवश्रेष्ठ! तुम धन्य हो कि तुम्हें ऐसी मति उत्पन्न हुई। हे बलि! अब मैं तुम्हारे एवं

प्रवक्ष्यामि हितं तेऽद्य तथाऽन्येषां हितं वले ॥ २७
भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम्।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥ २८
ये संश्रिता हरिमनन्तमनादिमध्यं
नारायणं सुरगुरुं शुभदं वरेण्यम्।
शुद्धं खगेन्द्रगमनं कमलालयेशं
ते धर्मराजकरणं न विशन्ति धीराः ॥ २९
स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान्
प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ ३०
तथाऽन्यदुक्तं नरसत्तमेन
इक्ष्वाकुणा भक्तियुतेन नूनम्।
ये विष्णुभक्ताः पुरुषाः पृथिव्यां
यमस्य ते निर्विषया भवन्ति ॥ ३१

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पितम्।
तावेव केवलं श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ ॥ ३२
नूनं न तौ करौ प्रोक्तौ वृक्षशाखाग्रपल्लवौ।
न यौ पूजयितुं शक्तौ हरिपादाम्बुजद्वयम् ॥ ३३
नूनं तत्कण्ठशालूकमथवा प्रतिजिह्वका।
रोगो वाऽन्यो न सा जिह्वा या न वक्ति हरेर्गुणान् ॥ ३४
शोचनीयः स बन्धूनां जीवन्नपि मृतो नरः।
यः पादपङ्कजं विष्णोर्न पूजयति भक्तितः ॥ ३५
ये नरा वासुदेवस्य सततं पूजने रताः।
मृता अपि न शोच्यास्ते सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ ३६
शारीरं मानसं वाग्जं मूर्तामूर्तं चराचरम्।
दृश्यं स्पृश्यमदृश्यञ्च तत्सर्वं केशवात्मकम् ॥ ३७
येनार्चितो हि भगवान् चतुर्धा वै त्रिविक्रमः।
तेनार्चिता न संदेहो लोकाः सामरदानवाः ॥ ३८
यथा रत्नानि जलधेरसङ्ख्येयानि पुत्रक।

दूसरों के लिए हितकर वचन कहता हूँ। (२७)

संसार रूपी समुद्र में निमग्न, द्वन्द्वरूपी वायु से आहत, पुत्र, कन्या, पत्नी आदि की रक्षा के भार से दुःखी, भयंकर विषयरूपी जल में मग्न हो रहे नौकारहित मनुष्यों के लिये विष्णु रूप नौका ही एकमात्र शरण होती है। (२८)

आदि, मध्य एवं अन्त रहित, शुभदाता, वरेण्य, गरुड़ वाहन, लक्ष्मीपति, शुद्ध, सुरगुरु, नारायण हरि का आश्रय ग्रहण करने वाले धीर मनुष्य यमराज के शासन में नहीं पड़ते। (२९)

यमराज पाश हाथ में लिये खड़े अपने दूत को देखकर उसके कान में कहते हैं कि मधुसूदन की शरण में गये हुये मनुष्यों को छोड़ देना। क्योंकि मैं अन्य मनुष्यों का ही प्रभु हूँ, वैष्णवों का नहीं। (३०)

इसके अतिरिक्त भक्तियुक्त नरपुंगव इक्ष्वाकु ने कहा था कि पृथ्वी में विष्णुभक्त व्यक्ति यम की गति से बाहर हैं। (३१)

वही जिह्वा है जो हरि की स्तुति करती है, वही चित्त है जो उनमें रत है, वही करयुगल प्रशंसनीय हैं जो उनकी पूजा करते हैं। (३२)

जो करयुगल श्रीहरि के चरणारविन्द युगल की पूजा नहीं करते, वे हाथ नहीं हैं, अपितु वृक्षशाखा के अग्रपल्लव हैं। (३३)

जो जिह्वा हरि के गुणों का वर्णन नहीं करती, वह जिह्वा नहीं अपितु कण्ठशालूक (मेढक का कंठ), प्रतिजिह्वा अथवा अन्य कोई रोग है। (३४)

भक्तिपूर्वक विष्णु के चरणकमल का पूजन न करने वाला मनुष्य जीवित ही मृत तुल्य है एवं बन्धुजनों के लिये शोचनीय है। (३५)

मैं यह सत्य कहता हूँ कि वासुदेव के पूजन में निरन्तर रत मनुष्य मरने पर भी शोचनीय नहीं होते। (३६)

समस्त शारीरिक, मानसिक, वाचिक, मूर्त, अमूर्त, चर, अचर, दृश्य, स्पृश्य एवं अदृश्य पदार्थ विष्णु स्वरूप हैं। (३७)

त्रिविक्रम भगवान् की चार प्रकार से अर्चना करने वाले मनुष्यों ने निस्सन्देह सुरासुर सहित समस्त लोकों का अर्चन कर लिया है। (३८)

हे पुत्र! जिस प्रकार समुद्र के रत्न असंख्य

तथा गुणा हि देवस्य ह्यसंख्यातास्तु चक्रिणः ॥ ३९
ये शङ्खचक्राब्जकरं सशार्ङ्गिणं
खगेन्द्रकेतुं वरदं श्रियः पतिम्।
समाश्रयन्ते भवभीतिनाशनं
संसारगर्ते न पतन्ति ते पुनः ॥ ४०
येषा मनसि गोविन्दो निवासी सततं बले।
न ते परिभव यान्ति न मृत्योरुद्विजन्ति च ॥ ४१
देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्नाः परायणम्।
न तेषां यमसालोक्यं न च ते नरकौकसः ॥ ४२
न तां गतिं प्राप्नुवन्ति श्रुतिशास्त्रविशारदाः।
विप्रा दानवशार्दूल विष्णुभक्ता व्रजन्ति याम् ॥ ४३
या गतिर्दैत्यशार्दूल हतानां तु महाहवे।
ततोऽधिकां गतिं यान्ति विष्णुभक्ता नरोत्तमाः ॥ ४४
या गतिर्धर्मशीलानां सात्त्विकानां महात्मनाम्।
सा गतिर्गदिता दैत्य भगवत्सेविनामपि ॥ ४५
सर्वावासं वासुदेवं सूक्ष्ममव्यक्तविग्रहम्।
प्रविशन्ति महात्मानं तद्भक्ता नान्यचेतसः ॥ ४६
अनन्यमनसो भक्त्या ये नमस्यन्ति केशवम्।
शुचयस्ते महात्मानस्तीर्थभूता भवन्ति ते ॥ ४७
गच्छन् तिष्ठन् स्वपन् जाग्रत् पिबन्नश्नन्नभीक्ष्णशः।
ध्यायन् नारायणं यस्तु न ततोऽन्योऽस्ति पुण्यभाक्।
वैकुण्ठं खड्गपरशुं भवबन्धसमुच्छिदम् ॥ ४८
प्रणिपत्य यथान्यायं संसारे न पुनर्भवेत्।
क्षेत्रेषु वसते नित्यं क्रीडन्नास्तेऽमितद्युतिः ॥ ४९
आसीनः सर्वदेहेषु कर्मभिर्न स बध्यते।
येषां विष्णुः प्रियो नित्यं ते विष्णोः सततं प्रियाः ॥ ५०
न ते पुनः सम्भवन्ति तद्भक्तास्तत्परायणाः।
ध्यायेद् दामोदरं यस्तु भक्तिनम्रोऽर्चयेत वा ॥ ५१
न स संसारपङ्केऽस्मिन् मज्जते दानवेश्वर।
कल्यमुत्थाय ये भक्त्या स्मरन्ति मधुसूदनम्।
स्तुवन्त्यप्यभिशृण्वन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ५२

हैं, उसी प्रकार चक्रधारी विष्णु के गुण भी असंख्य हैं। (३९)

हाथों में शङ्ख, चक्र, कमल एवं शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले, गरुडध्वज भवभीतिनाशक, वरदाता श्रीपति का आश्रय ग्रहण करने वाले मनुष्य पुनः संसार गर्त में नहीं गिरते। (४०)

हे बलि! गोविन्द जिनके मन में सतत निवास करते हैं, उनका पराभव नहीं होता एवं वे मृत्यु से उद्विग्न नहीं होते। (४१)

श्रेष्ठ शरणस्थान, शार्ङ्गधर देव विष्णु की शरण में पहुँचे मनुष्यों को यमलोक या नरक में नहीं जाना पड़ता। (४२)

हे दानवश्रेष्ठ! श्रुतिशास्त्रविशारद विप्रों को वह गति नहीं प्राप्त होती जो गति विष्णुभक्त प्राप्त करते हैं। (४३)

हे दैत्यश्रेष्ठ! महान् युद्ध में निहत व्यक्ति जो गति प्राप्त करते हैं, विष्णुभक्त नरश्रेष्ठ को उससे भी उत्तम गति प्राप्त होती है। (४४)

हे दैत्य! धर्मशील, सात्त्विक, महात्माओं को जो गति प्राप्त होती है, भगवद्भक्तों की भी वही गति कही गई है। (४५)

अनन्यभाव से भगवान की भक्ति करने वाले सर्वावास, सूक्ष्म, अव्यक्त शरीर वाले महात्मा वासुदेव में प्रवेश करते हैं। (४६)

अनन्यमन से भक्तिपूर्वक केशव को नमस्कार करने वाले मनुष्य पवित्र एवं तीर्थस्वरूप होते हैं। (४७)

चलते, खड़े, सोते, जागते, एवं खाते पीते हुए निरन्तर नारायण का ध्यान करने वाले से अधिक पुण्य का भाजन कोई नहीं होता। यथाविधि भवबन्धन का समुच्छेद करने वाले खड्गपरशु वैकुण्ठ देव को प्रणाम करने से संसार में पुनर्जन्म नहीं होता। क्षेत्र में निवास करते हुए नित्य क्रीडा करने वाला अमितद्युति कृष्णभक्त समस्त शरीरों में रहने पर भी उनके कर्मों के बन्धन में नहीं पड़ता। विष्णु जिन्हें नित्य प्रिय हैं वे सर्वदा विष्णु के प्रिय होते हैं। (४८-५०)

दामोदर का ध्यान करने वाले उनके भक्त, उनके शरणागत अथवा भक्तिपूर्वक उनका अर्चन करने वाले मनुष्य पुनः जन्म ग्रहण नहीं करते। (५१)

हे दानवेश्वर! प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक मधुसूदन का स्मरण करने वाले इस संसारपङ्क में निमग्न नहीं होते। उनकी स्तुति करनेवाले एवं गुणश्रवण करने वाले मनुष्य दुर्गों को पार कर जाते हैं। (५२)

हरिवाक्यामृतं पीत्वा विमलैः श्रोत्रभाजनैः ।
प्रहृष्यति मनो येषां दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ५३
येषां चक्रगदापाणौ भक्तिरव्यभिचारिणी ।
ते यान्ति नियतं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः ॥ ५४
विष्णुकर्मप्रसक्तानां भक्तानां या परा गतिः ।
सा तु जन्मसहस्रेण न तपोभिरवाप्यते ॥ ५५
किं जप्यैस्तस्य मन्त्रैर्वा किं तपोभिः किमाश्रमैः ।
यस्य नास्ति परा भक्तिः सततं मधुसूदने ॥ ५६
वृथा यज्ञा वृथा वेदा वृथा दानं वृथा श्रुतम् ।
वृथा तपश्च कीर्तिश्च यो द्वेष्टि मधुसूदनम् ॥ ५७
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने ।
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ५८
विष्णुरेव गतिर्येषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ ५९
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं वरेण्यं वरदं प्रभुम् ।
नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत् ॥ ६०

विष्टयो व्यतिपाताश्च येऽन्ये दुर्नीतिसम्भवाः ।
ते नाम स्मरणाद्विष्णोर्नाशं यान्ति महासुर ॥ ६१
तीर्थकोटिसहस्राणि तीर्थकोटिशतानि च ।
नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ६२
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥ ६३
प्राप्नुवन्ति न तांल्लोकान् व्रतिनो वा तपस्विनः ।
प्राप्यन्ते ये तु कृष्णस्य नमस्कारपरैर्नरैः ॥ ६४
योऽप्यन्यदेवताभक्तो मिथ्यार्चयति केशवम् ।
सोऽपि गच्छति साधूनां स्थानं पुण्यकृतां महत् ॥ ६५
सातत्येन हृषीकेशं पूजयित्वा तु यत्फलम् ।
सुचीर्णतपसां नृणां तत् फलं न कदाचन ॥ ६६
त्रिसन्ध्यं पद्मनाभं तु ये स्मरन्ति सुमेधसः ।
ते लभन्त्युपवासस्य फलं नास्त्यत्र संशयः ॥ ६७
सततं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा हरिमर्चय ।

विमल कर्णरूपी पात्रों से हरिवाक्यामृत का पान कर जिनका मन अत्यन्त प्रसन्न होता है वे कठिनाइयों को पार कर जाते हैं । (५३)

चक्रगदापाणि विष्णु में स्थिर भक्ति रखने वाले मनुष्य निश्चय ही योगेश्वर हरि के स्थान में जाते हैं । (५४)

विष्णु की सेवा में आसक्त भक्तों को जो श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है वह सहस्र जन्मों के भी तप से नहीं प्राप्त हो सकती । (५५)

मधुसूदन में सतत पराभक्ति से रहित मनुष्यों के जप, मन्त्र, तप एवं आश्रमों से क्या लाभ ? (५६)

मधुसूदन से द्वेष करने वाले मनुष्यों के यज्ञ, वेद, दान, ज्ञान, तप एवं कीर्ति व्यर्थ हैं । (५७)

जनार्दन में भक्ति रखने वालों को बहुत से मन्त्रों से क्या लाभ ? "नमो नारायणाय" मन्त्र सभी अर्थों का साधक है । (५८)

जिनकी गति विष्णु हैं एवं जिनके हृदय में इन्दीवर श्याम जनार्दन अवस्थित हैं उनकी पराजय कहाँ सम्भव है ? (५९)

सभी मङ्गलों के मङ्गलस्वरूप, वरणीय, वरदाता प्रभु नारायण को नमस्कार कर समस्त कर्म करना चाहिए । (६०)

हे महासुर ! विष्टियाँ, व्यतिपात एवं दुर्नीति से उत्पन्न अन्य समस्त आपत्तियाँ विष्णु के नाम का स्मरण करने से विनष्ट हो जाती हैं । (६१)

शत कोटि एवं सहस्र कोटि तीर्थ भी नारायण को प्रणाम करने की सोलहवीं कला के भी तुल्य नहीं हैं । (६२)

पृथ्वी में जितने तीर्थ और पवित्र देवालय हैं, वे सभी विष्णु के नाम के संकीर्तन से प्राप्त होते हैं । (६३)

श्रीकृष्ण को नमस्कार करने वाले मनुष्य जिन लोकों को प्राप्त करते हैं उन्हें व्रती या तपस्वी लोग नहीं प्राप्त करते । (६४)

अन्य देवता का भक्त होते हुए केशव का मिथ्या अर्चन करने वाला मनुष्य भी पुण्यकर्मा साधुओं के महान् स्थान को प्राप्त करता है । (६५)

हृषीकेश के सतत पूजन से जो फल प्राप्त होता है घोर तप करने वाले मनुष्यों को वह फल कभी नहीं प्राप्त होता । (६६)

तीनों सन्ध्याकाल में पद्मनाभ का स्मरण करने वाले बुद्धिमान् पुरुषों को निस्सन्देह उपवास का फल प्राप्त होता है । (६७)

हे बलि ! शास्त्रों में प्रतिपादित कर्म द्वारा सतत हरि का

तत्प्रसादात् परां सिद्धिं बले प्राप्स्यसि शाश्वतीम् ॥ ६८
तन्मना भव तद्भक्तस्तद्याजी तं नमस्कुरु ।
तमेवाश्रित्य देवेशं सुखं प्राप्स्यसि पुत्रक ॥ ६९
आद्यं ह्यनन्तमजरं हरिमव्ययं च
ये वै स्मरन्त्यहरहर्नृवरा भुविस्थाः ।
सर्वत्रगं शुभदं ब्रह्ममयं पुराणम्
ते यान्ति वैष्णवपदं ध्रुवमक्षयञ्च ॥ ७०
ये मानवा विगतरागपरापरज्ञा
नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति ।
ते धौतपाण्डुरपुटा इव राजहंसाः
संसारसागरजलस्य तरन्ति पारम् ॥ ७१
ध्यायन्ति ये सततमच्युतमीशितारं
निष्कल्मषं प्रवरपद्मदलायताक्षम् ।
ध्यानेन तेन हतकिल्बिषवेदनास्ते
मातुः पयोधररसं न पुनः पिबन्ति ॥ ७२
ये कीर्तयन्ति वरदं वरपद्मनाभं
शङ्खाब्जचक्रवरचापगदासिहस्तम् ।
पद्मालयावदनपङ्कजषट्पदाख्यं
नूनं प्रयान्ति सदनं मधुघातिनस्ते ॥ ७३
शृण्वन्ति ये भक्तिपरा मनुष्याः
संकीर्त्यमानं भगवन्तमाद्यम् ।
ते मुक्तपापाः सुखिनो भवन्ति
यथाऽमृतप्राशनतर्पितास्तु ॥ ७४
तस्माद् ध्यानं स्मरणं कीर्तनं वा
नाम्नां श्रवणं पठतां सज्जनानाम् ।
कार्यं विष्णोः श्रद्धानैर्मनुष्यैः
पूजातुल्यं तत् प्रशंसन्ति देवाः ॥ ७५
बाह्यैस्तथाऽन्तःकरणैरविक्लवै-
र्यो नार्चयेत् केशवमीशितारम् ।
पुष्पैश्च पत्रैर्जलपल्लवादिभि-
र्नूनं स मुष्टो विधितस्करेण ॥ ७६

इति श्रीवामनपुराणे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

अर्चन करो। उनके प्रसाद से श्रेष्ठ शाश्वती सिद्धि प्राप्त करोगे। (६८)

हे पुत्र! तुम तन्मना, तद्भक्त एवं उनका भजन करने वाला होकर उन्हें नमस्कार करो। उन देवेश का ही आश्रय ग्रहण कर तुम सुख प्राप्त करोगे। (६९)

आद्य, अनन्त, अजर, सर्वत्रगामी, शुभदाता, ब्रह्ममय पुराण, अव्यय हरि का अहोरात्र स्मरण करने वाले पृथ्वीवासी श्रेष्ठ मनुष्य ध्रुव एवं अक्षय वैष्णव पद प्राप्त करते हैं। (७०)

जो वीतराग एवं परापरज्ञ मनुष्य सतत सुरगुरु नारायण का स्मरण करते हैं वे धुले हुए श्वेत पक्षों वाले राजहंसों के सदृश संसार रूपी सागर के जल को पार कर जाते हैं। (७१)

जो मनुष्य सतत उत्तम कमलदल तुल्य विस्तृत नेत्रों वाले निष्कल्मष, नियामक अच्युत का ध्यान करते हैं वे उस ध्यान से पापवेदना का नाश हो जाने से पुनः माता के पयोधर का रस नहीं पान करते। (७२)

हाथों में शङ्ख, कमल, चक्र, श्रेष्ठ धनुष, गदा एवं असि धारण करने वाले, लक्ष्मी के वदनपङ्कज के भ्रमर, वरदाता पद्मनाभ का कीर्तन करने वाले मनुष्य निश्चय ही मधुसूदन का लोक प्राप्त करते हैं। (७३)

अमृतप्राशन से तृप्त होने वाले प्राणी के सदृश भक्तिपरायण मनुष्य आद्य भगवान् का कीर्तन सुनकर पापमुक्त एवं सुखी होते हैं। (७४)

अतः श्रद्धालु मनुष्य को विष्णु का ध्यान, स्मरण, कीर्तन अथवा पाठ करने वाले मनुष्यों से विष्णु के नामों का श्रवण करना चाहिये। देवगण पूजा के तुल्य उसकी प्रशंसा करते हैं। (७५)

स्वस्थ, बाह्य तथा आन्तरिक इन्द्रियों से जो मनुष्य पुष्प, पत्र, जल एवं पल्लवादि द्वारा नियामक केशव का अर्चन नहीं करता निश्चय ही विधिरूपी तस्कर ने उसे लूट लिया है। (७६)

श्रीवामनपुराण में सड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥

६८

बलिरुवाच ।
भवता कथितं सर्वं समाराध्य जनार्दनम् ।
या गतिः प्राप्यते लोके तां मे वक्तुमिहार्हसि ॥ १
केनार्चनेन देवस्य प्रीतिः समुपजायते ।
कानि दानानि शस्तानि प्रीणनाय जगद्गुरोः ॥ २
उपवासादिकं कार्यं कस्यां तिथ्यां महोदयम् ।
कानि पुण्यानि शस्तानि विष्णोस्तुष्टिप्रदानि वै ॥ ३
यचान्यदपि कर्त्तव्यं हृष्टरूपैरनालसैः ।
तदप्यशेषं दैत्येन्द्र समाख्यातुमिहार्हसि ॥ ४
प्रह्लाद उवाच ।
श्रद्दधानैर्भक्तिपरैर्यान्युद्दिश्य जनार्दनम् ।
पले दानानि दीयन्ते तानूचुर्मुनयोऽक्षयान् ॥ ५
ता एव तिथयः शस्ता यास्वभ्यर्च्य जगत्पतिम् ।
तच्चित्तस्तन्मयो भूत्वा उपवासी नरो भवेत् ॥ ६
पूजितेषु द्विजेन्द्रेषु पूजितः स्याज्जनार्दनः ।
एतान् द्विषन्ति ये मूढास्ते यान्ति नरकं ध्रुवम् ॥ ७
तानर्चयेन्नरो भक्त्या ब्राह्मणान् विष्णुतत्परः ।
एवमाह हरिः पूर्वं ब्राह्मणा मामकी तनुः ॥ ८
ब्राह्मणो नावमन्तव्यो बुधो वाप्यबुधोऽपि वा ।
सोऽपि दिव्या तनुर्विष्णोस्तस्मात् तामर्चयेन्नरः ॥ ९
तान्येव च प्रशस्तानि कुसुमानि महासुर ।
यानि स्युर्वर्णयुक्तानि रसगन्धयुतानि च ॥ १०
विशेषतः प्रवक्ष्यामि पुष्पाणि तिथयस्तथा ।
दानानि च प्रशस्तानि माधवप्रीणनाय तु ॥ ११
जाती शताह्वा सुमनाः कुन्दं बहुपुटं तथा ।
बाणश्च चम्पकाशोकं करवीरं च यूथिका ॥ १२
पारिभद्रं पाटला च बकुलं गिरिशालिनी ।
तिलकं च जपाकुसुमं पीतकं नागरं त्वपि ॥ १३

६८

बलि ने कहा—आपने सब कुछ वर्णन किया। अब आप जनार्दन की आराधना करने से प्राप्त होने वाली गति का वर्णन करें। (१)

किस प्रकार की पूजा से वासुदेव की प्रीति उत्पन्न होती है? जगद्गुरु को प्रसन्न करने के लिये किस प्रकार के दान प्रशस्त हैं? (२)

किस तिथि में उपवास आदि करने से महान् उन्नति होती है? कौन पुण्य कार्य विष्णु के प्रीतिजनक कहे गये हैं? (३)

हे दैत्येन्द्र! आलस्यरहित होकर प्रसन्नतापूर्वक करने योग्य अन्य कार्यों को भी पूर्णतया आप मुझे बतलायें। (४)

प्रह्लाद ने कहा—हे बलि! श्रद्धासम्पन्न और भक्तियुक्त होकर जनार्दन के उद्देश्य से जो दान दिये जाते हैं उन्हें मुनियों ने अक्षय कहा है। (५)

वे ही तिथियाँ प्रशस्त होती हैं जिनमें मनुष्य विष्णु की पूजा करने के अनन्तर उनमें चित्त एवं मन लगाकर उपवास करता है। (६)

ब्राह्मणों की पूजा करने से जनार्दन की पूजा होती है। उनसे द्वेष करने वाले मूढ़ व्यक्ति निश्चय ही नरक में जाते हैं। (७)

विष्णुभक्त मनुष्य को भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। पूर्वकाल में विष्णु ने यह कहा था कि ब्राह्मण मेरे शरीर हैं। (८)

ज्ञानी अथवा अज्ञानी भी ब्राह्मण की अवमानना नहीं करनी चाहिये। वह विष्णु का दिव्य शरीर होता है। अतः उसकी पूजा करनी चाहिये। (९)

हे महासुर! वर्ण, रस एवं गन्ध से युक्त पुष्प ही प्रशस्त होते हैं। (१०)

अब मैं माधव के प्रीणनार्थ कहे गये विशेष पुष्पों, तिथियों एवं दानों का वर्णन करता हूँ। (११)

अच्युत के अर्पणार्थ—मालती, शताह्वा, सुमना, कुन्द, बहुपुट, बाण, चम्पक, अशोक, करवीर, (कनेर), यूथिका (जूही), पारिभद्र, पाटल, बकुल (मौलसरी), *गिरिशालिनी*, तिलक, जपा, पीतक एवं नागर नामक पुष्प प्रशस्त हैं।

एतानि हि प्रशस्तानि कुसुमान्यच्युतार्चने ।
सुरभीणि तथान्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम् ॥ १४
बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गमृगाङ्कयोः ।
तमालामलकीपत्रं शस्तं केशवपूजने ॥ १५
येषामपि हि पुष्पाणि प्रशस्तान्यच्युतार्चने ।
पल्लवान्यपि तेषां स्युः पत्राण्यर्चाविधौ हरेः ॥ १६
वीरुधां च प्रवालेन बर्हिषा चार्चयेत्तथा ।
नानारूपैश्चाम्बुभवैः कमलेन्दीवरादिभिः ॥ १७
प्रवालैः शुचिभिः श्लक्ष्णैर्जलप्रक्षालितैर्बले ।
वनस्पतीनामर्च्येत तथा दूर्वाग्रपल्लवैः ॥ १८
चन्दनेनानुलिम्पेत कुङ्कुमेन प्रयत्नतः ।
उशीरपद्मकाभ्यां च तथा कालीयकादिना ॥ १९
महिषाख्यं कणं दारु सिह्लकं सागरुं सिता ।
शङ्खं जातीफलं श्रीशे धूपानि स्युः प्रियाणि वै ॥ २०
हविषा संस्कृता ये तु यवगोधूमशालयः ।
तिलमुद्गादयो माषा व्रीहयश्च प्रिया हरेः ॥ २१

गोदानानि पवित्राणि भूमिदानानि चानघ ।
वस्त्रान्नस्वर्णदानानि प्रीतये मधुघातिनः ॥ २२
माघमासे तिला देयास्तिलधेनुश्च दानव ।
इन्धनादीनि च तथा माधवप्रीणनाय तु ॥ २३
फाल्गुने व्रीहयो मुद्गा वस्त्रकृष्णाजिनादिकम् ।
गोविन्दप्रीणनार्थाय दातव्यं पुरुषर्षभैः ॥ २४
चैत्रे चित्राणि वस्त्राणि शयनान्यासनानि च ।
विष्णोः प्रीत्यर्थमेतानि देयानि ब्राह्मणेष्वथ ॥ २५
गन्धमाल्यानि देयानि वैशाखे सुरभीणि वै ।
देयानि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये ॥ २६
उदकुम्भाम्बुधेनुं च तालवृन्तं सुचन्दनम् ।
त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं साधुभिः सदा ॥ २७
उपानद्युगलं छत्रं लवणामलकादिकम् ।
आषाढे वामनप्रीत्यै दातव्यानि तु भक्तितः ॥ २८
घृतं च क्षीरकुम्भाश्च घृतधेनुफलानि च ।

इनके अतिरिक्त केतकी को छोड़कर अन्य सुगन्धित पुष्प भी प्रशस्त हैं। (१२-१४)

केशव के पूजन मे बिल्वपत्र, शमीपत्र, भृङ्ग एवं मृगाङ्क के पत्र, तमाल तथा आमलकी के पत्र प्रशस्त हैं। (१५)

अच्युत के अर्चन मे जिन वृक्षों के पुष्पों का प्रयोग होता है उनके पल्लव एवं पत्र भी हरिपूजनार्थ प्रशस्त होते हैं। (१६)

वीरुधों के किसलय एव कुश तथा जल में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के कमल एव इन्दीवरादि से विष्णु का पूजन करना चाहिए। (१७)

हे बलि! वनस्पतियों के चिकने, पवित्र एवं जल से प्रक्षालित कोपलों तथा दूर्वाग्रपल्लवों से (विष्णु का) पूजन करना चाहिए। (१८)

प्रयत्नपूर्वक चन्दन, कुङ्कुम, उशीर, पद्मक एवं कालीयकादि से विष्णु का अनुलेपन करना चाहिए। (१९)

श्रीविष्णु को महिष नामक कण, दारु, सिह्लक, अगरु, सिता, शङ्ख एवं जातीफल का धूप प्रिय होता है। (२०)

घृत से संस्कृत यव, गेहूँ, शालिधान्य, तिल, मूँग उड़द और अन्न हरि को प्रिय हैं। (२१)

हे अनघ! मधुसूदन को गौ, पवित्र भूमि, वस्त्र, अन्न एवं स्वर्ण के दान प्रिय होते हैं। (२२)

हे दानव! माधव के प्रीणनार्थ माघमास मे तिल, तिलधेनु एवं इन्धनादि का दान करना चाहिए। (२३)

श्रेष्ठ पुरुषों को गोविन्द के प्रीणनार्थ फाल्गुन मास मे चावल, मूँग, वस्त्र एव कृष्णमृग का चर्म दान करना चाहिए। (२४)

चैत्र मास मे विष्णु के प्रीत्यर्थ ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के वस्त्र, शय्या एव आसनों का दान करना चाहिए। (२५)

मधुसूदन की तुष्टि हेतु वैशाख मास मे श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सुगन्धित गन्ध एवं माल्यों का दान करना दान करे। (२६)

त्रिविक्रम की प्रीति हेतु सज्जन व्यक्ति जल का घड़ा, जलधेनु, ताल का पत्ता तथा सुन्दर चन्दन का चाहिए। (२७)

वामन की प्रीति हेतु आषाढ़ मास मे भक्तिपूर्वक जूते का जोड़ा, छत्र, लवण एव आमलकादि का दान करना चाहिए। (२८)

बुद्धिमान् मनुष्य को श्रीधर की प्रसन्नता हेतु श्रावण

श्रावणे श्रीधरप्रीत्यै दातव्यानि विपश्चिता ॥ २९
मासि भाद्रपदे दद्यात् पायसं मधुसर्पिषी ।
हृषीकेशप्रीणनार्थं लवणं सगुडोदनम् ॥ ३०
तिलास्तुरङ्गं वृषभं दधि ताम्रायसादिकम् ।
प्रीत्यर्थं पद्मनाभस्य देयमाश्वयुजे नरैः ॥ ३१
रजतं कनकं दीपान् मणिमुक्ताफलादिकम् ।
दामोदरस्य तुष्ट्यर्थं प्रदद्यात् कार्तिके नरः ॥ ३२
खरोष्ट्राश्वतरान् नागान् यानयुग्यमजाविकम् ।
दातव्यं केशवप्रीत्यै मासि मार्गशिरे नरैः ॥ ३३
प्रासादनगरादीनि गृहप्रावरणादिकम् ।
नारायणस्य तुष्ट्यर्थं पौषे देयानि भक्तितः ॥ ३४
दासीदासमलङ्कारमन्नं षड्रससंयुतम् ।
पुरुषोत्तमस्य तुष्ट्यर्थं प्रदेयं सार्वकालिकम् ॥ ३५
यद्यदिष्टतमं किंचिद्यद्वाप्यस्ति शुचि गृहे ।
तत्तद्धि देयं प्रीत्यर्थं देवदेवाय चक्रिणे ॥ ३६
यः कारयेन्मन्दिरं केशवस्य
पुण्यांल्लोकान् स जयेच्छाश्वतान् वै ।
दत्त्वारामान् पुष्पफलाभिपन्नान्
भोगान् भुङ्क्ते कामतः श्लाघनीयान् ॥ ३७
पितामहस्य पुरतः कुलान्यष्टौ तु यानि च ।
तारयेदात्मना सार्धं विष्णोर्मन्दिरकारकः ॥ ३८
इमाश्च पितरो दैत्य गाथा गायन्ति योगिनः ।
पुरतो यदुसिंहस्य ज्यामघस्य तपस्विनः ॥ ३९
अपि नः स कुले कश्चिद् विष्णुभक्तो भविष्यति ।
हरिमन्दिरकर्ता यो भविष्यति शुचिव्रतः ॥ ४०
अपि नः सन्ततौ जायेद् विष्ण्वालयविलेपनम् ।
सम्मार्जनं च धर्मात्मा करिष्यति च भक्तितः ॥ ४१
अपि नः सन्ततौ जातो ध्वजं केशवमन्दिरे ।

मास में घृत, दुग्ध का कुम्भ, घृतधेनु एवं फलों का दान करना चाहिए। (२९)

भाद्रपद मास में हृषीकेश के प्रीणनार्थ पायस, मधु, घृत, लवण एवं गुडयुक्त ओदन का दान करना चाहिए। (३०)

मनुष्यों को पद्मनाभ की प्रीति हेतु आश्विन मास में तिल, अश्व, वृषभ, दधि, ताम्र एवं लौह आदि का दान करना चाहिए। (३१)

मनुष्य दामोदर की तुष्टि हेतु कार्तिक मास में रजत, स्वर्ण, दीप, मणि, मुक्ता एवं फलादि का दान करे। (३२)

मनुष्यों को केशव की प्रीतिहेतु मार्गशीर्ष मास में खर, उष्ट्र, खच्चर, हाथी, यानवाहक बकरा एवं भेड़ का दान करना चाहिए। (३३)

नारायण की तुष्टि हेतु पौष मास में भक्तिपूर्वक प्रासाद, नगर, गृह एवं प्रावरणादि का दान करना चाहिए। (३४)

पुरुषोत्तम की तुष्टि हेतु सभी समय दासी, दास, अलङ्कार एवं षड् रसों से युक्त अन्न का दान करना चाहिए। (३५)

चक्रधारी देवाधिदेव की प्रीति हेतु अपना जो सर्वाधिक इष्ट हो अथवा गृह में जो वस्तु पवित्र हो उसका दान करना चाहिए। (३६)

केशव का मन्दिर बनवाने वाला मनुष्य शाश्वत पुण्यलोकों को प्राप्त करता है। पुष्प एवं फलों से युक्त उद्यानों का दान करने वाला इच्छापूर्वक श्लाघ्य भोगों का उपभोग करता है। (३७)

विष्णु के मन्दिर का निर्माण करवाने वाला पुरुष अपने पितामह से आगे के आठ कुलपुरुषों का उद्धार करता है। (३८)

हे दैत्य! यदुश्रेष्ठ योगयुक्त तपस्वी ज्यामघ के सम्मुख पितरों ने इस गाथा का गान किया था। (३९)

क्या हमारे कुल में पवित्र व्रतधारी ऐसा कोई विष्णु भक्त उत्पन्न होगा जो हरि का मन्दिर बनवायेगा? (४०)

क्या हमारी सन्तति में कोई विष्णुमन्दिर में भक्तिपूर्वक लेप और झाड़ू देने वाला धर्मात्मा उत्पन्न होगा? (४१)

क्या हमारी सन्ततियों में ऐसा कोई होगा जो केशव के मन्दिर में ध्वजा दान करेगा एवं देवदेवेश्वर को

दास्यते देवदेवाय दीपं पुष्पानुलेपनम् ॥ ४२ ॥
महापातकयुक्तो वा पातकी चोपपातकी ।
विमुक्तपापो भवति विष्ण्वायतनचित्रकृत् ॥ ४३
इत्थं पितॄणां वचनं श्रुत्वा नृपतिसत्तमः ।
चकारायतनं भूम्यां स्वयं च लिम्पतासुर ॥ ४४
विभूतिभिः केशवस्य केशवाराधने रतः ।
नानाधातुविकारैश्च पञ्चवर्णैश्च चित्रकैः ॥ ४५
ददौ दीपानि विधिवद् वासुदेवालये बले ।
सुगन्धितैलपूर्णानि घृतपूर्णानि च स्वयम् ॥ ४६
नानावर्णा वैजयन्त्यो महारजनरञ्जिताः ।
मञ्जिष्ठा नवरङ्गीयाः श्वेतपाटलिकाश्रिताः ॥ ४७
आरामा विविधा हृद्याः पुष्पाढ्याः फलशालिनः ।
लतापल्लवसंछन्ना देवदारुभिरावृताः ॥ ४८
कारिताश्च महामश्चाधिष्ठिताः कुशलैर्जनैः ।
पौरोगवविधानज्ञै रत्नसंस्कारिभिर्दृढैः ॥ ४९
तेषु नित्यं प्रपूज्यन्ते यतयो ब्रह्मचारिणः ।
श्रोत्रिया ज्ञानसम्पन्ना दीनान्धविकलादयः ॥ ५०
इत्थं स नृपतिः कृत्वा श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
ज्यामघो विष्णुनिलयं गत इत्यनुशुश्रुमः ॥ ५१
तमेव चाद्यापि बले मार्गं ज्यामघकारितम् ।
व्रजन्ति नरशार्दूल विष्णुलोकजिगीषवः ॥ ५२
तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र कारयस्वालयं हरेः ।
तमर्चयस्व यत्नेन ब्राह्मणांश्च बहुश्रुतान् ।
पौराणिकान् विशेषेण सदाचाररतान्शुचीन् ॥ ५३
वासोभिर्भूषणै रत्नैर्गोभिर्भूकनकादिभिः ।
विभवे सति देवस्य प्रीणनं कुरु चक्रिणः ॥ ५४
एवं क्रियायोगरतस्य तेऽद्य
नूनं मुरारिः शुभदो भविष्यति ।
नरा न सीदन्ति बले समाश्रिता
विभुं जगन्नाथमनन्तमच्युतम् ॥ ५५

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा वचनं दितीश्वरो

दीप, पुष्प और अनुलेपन प्रदान करेगा ? (४२)

महापातकी, पातकी अथवा उपपातकी व्यक्ति विष्णु मन्दिर को चित्रित कर पापमुक्त हो जाता है। (४३)

हे असुर ! पितृगण के इस प्रकार के वचन को सुनकर उस नृपश्रेष्ठ ने पृथ्वी पर मन्दिर निर्माण करवाया एवं स्वयं उसमें लेप करता था। (४४)

वह केशव की विभूतियों, नाना प्रकार की धातुओं से निर्मित वस्तुओं तथा पाँच वर्ण के चित्रकों से केशव की पूजा करने लगा। (४५)

हे बलि! उसने वासुदेव के मन्दिर में स्वयं विधिपूर्वक सुगन्धित तैल एवं घृत से पूर्ण दीप का दान किया। (४६)

(उसने विष्णु मन्दिर में) कुसुम्भ मञ्जिष्ठा के रङ्ग में रञ्जित श्वेत एवं रक्त वर्ण के तथा नव रङ्गों वाले विविध प्रकार के ध्वजों का आरोपण किया। (४७)

(उसने) पुष्पों, फलों, लतापल्लवों तथा देवदारु आदि विविध प्रकार के वृक्षों से पूर्ण उद्यानों का निर्माण कराया। (४८)

(उसने) पाकशालाध्यक्ष के विधान को जानने वाले एवं रत्नसंस्कार करने वाले अत्यन्त कुशल पुरुषों से अधिष्ठित बड़े-बड़े मञ्चों का निर्माण करवाया। (४९)

उनमें प्रतिदिन यतियों, ब्रह्मचारियों, ज्ञानसम्पन्न श्रोत्रियों, दीनों, अन्धों एवं विकलेन्द्रिय पुरुषों का पूजन होता था। (५०)

हम लोगों ने सुना है कि ऐसा कार्य करने से श्रद्धालु एवं जितेन्द्रिय राजा ज्यामघ विष्णु लोक गये। (५१)

हे बलि ! विष्णुलोक जाने की कामना वाले पुरुष आज भी ज्यामघ द्वारा प्रदर्शित उसी मार्ग का अवलम्बन करते हैं। (५२)

अतः हे राजेन्द्र ! तुम भी हरि का मन्दिर बनवाओ एवं यत्नपूर्वक उन हरि, बहुश्रुत ब्राह्मणों एवं विशेष रूप से सदाचारपरायण पवित्र पौराणिकों का अर्चन करो। (५३)

ऐश्वर्य रहने पर वस्त्र, आभूषण, रत्न, गौ, पृथ्वी एवं स्वर्णादि द्वारा चक्रधर देव को प्रसन्न करो। (५४)

तुम्हारे इस प्रकार की क्रिया करने में रत रहने पर मुरारि निश्चय ही तुम्हारा कल्याण करेंगे। हे बलि ! अनन्त अच्युत विभु जगन्नाथ का आश्रय ग्रहण करने वाले व्यक्ति दुःखी नहीं होते। (५५)

पुलस्त्य ने कहा—बलि से इस प्रकार सत्य एवं श्रेष्ठ वचन कहने के उपरान्त पूर्णकाम, हरिचरणानुरागी

वैरोचनं सत्यमनुत्तमं हि ।
संपूजितस्तेन विमुक्तिमाययौ
संपूर्णकामो हरिपादभक्तः ॥ ५६
गते हि तस्मिन् मुदिते पितामहे
बलेर्बभौ मन्दिरमिन्दुवर्णम् ।
महेन्द्रशिल्पिप्रवरोऽथ केशवं
स कारयामास महामहीयान् ॥ ५७
स्वयं स्वभार्यासहितश्चकार
देवालये मार्जनलेपनादिकाः ।
क्रिया महात्मा यवशर्करायां
बलिं चकाराप्रतिमां मधुद्रुहः ॥ ५८
दीपप्रदानं स्वयमायताक्षी
विन्ध्यावली विष्णुगृहे चकार ।
गेयं स धर्म्यश्रवणं च धीमान्
पौराणिकैर्विप्रवरैरकारयत् ॥ ५९
तथाविधस्यासुरपुंगवस्य
धर्म्ये सुमार्गे प्रतिसंस्थितस्य ।
जगत्पतिर्दिव्यवपुर्जनार्दन-
स्तस्थौ महात्मा बलिरक्षणाय ॥ ६०
सूर्यायुताभं मुसलं प्रगृह्य
निघ्नन् स दुष्टानरियूथपालान् ।
द्वारि स्थितो न प्रददौ प्रवेशं
प्राकारगुप्ते बलिनो गृहे तु ॥ ६१
द्वारि स्थिते धातरि रक्षपाले
नारायणे सर्वगुणाभिरामे ।
प्रासादमध्ये हरिमीशितार-
मभ्यर्चयामास सुरर्षिमुख्यम् ॥ ६२
स एवमास्तेऽसुरराड् बलिस्तु
समर्चयन् वै हरिपादपङ्कजौ ।
सस्मार नित्यं हरिभषितानि
स तस्य जातो विनयाङ्कुशस्तु ॥ ६३
इदं च वृत्तं स पपाठ दैत्यराट्
स्मरन् सुवाक्यानि गुरोः शुभानि ।
तथ्यानि पथ्यानि परत्र चेह
पितामहस्येन्द्रसमस्य वीरः ॥ ६४
ये वृद्धवाक्यानि समाचरन्ति
श्रुत्वा दुरुक्तान्यपि पूर्वतस्तु ।
स्निग्धानि पश्चान्नवनीवशुद्धा

दितीश्वर प्रह्लाद बलि द्वारा की गयी पूजा स्वीकार कर विमुक्तिमार्गगामी हो गए । (५६)

प्रसन्न पितामह प्रह्लाद के चले जाने पर बलि का भवन चन्द्रवत् प्रकाशित होने लगा । महामहिम उस (बलि ने) विश्वकर्मा से केशव का मन्दिर बनवाया । (५७)

बलि स्वयं अपनी पत्नी के साथ उस देवालय में मार्जन, लेपन आदि क्रियाएँ करने लगा । मधुसूदन के लिए महात्मा बलि ने जौ एवं शक्कर आदि का उत्तम नैवेद्य अर्पित किया । (५८)

विशालाक्षी विन्ध्यावली स्वयं विष्णुमन्दिर में दीपदान करने लगी । बुद्धिमान् बलि पुराणवेत्ता श्रेष्ठ ब्राह्मणों से धर्मयुक्त प्रवचन कराते थे । (५९)

उस प्रकार के धर्ममार्ग में स्थित असुरश्रेष्ठ बलि के रक्षणार्थ दिव्यशरीरधारी जगत्पति महात्मा जनार्दन स्थित हुए । (६०)

वे द्वार पर रहते हुए अयुत सूर्यों के तुल्य आभा वाले मुसल को लेकर दुष्ट शत्रुओं के यूथपतियों का विनाश करते एवं प्राकारों से रक्षित बलि के गृह में किसी को प्रवेश नहीं करने देते थे । (६१)

सर्वगुणाभिराम विधाता नारायण के द्वारपाल होने पर बलि अपने प्रासाद के मध्य निरन्तर सुरों एवं ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ नियामक हरि का अर्चन करने लगा । (६२)

असुरराज बलि इस प्रकार हरि के पादपङ्कजों का पूजन करते हुए नित्य हरि के वचनों को स्मरण करता था । यह (नियम) उसके लिये विनयाङ्कुश हो गया । (६३)

इन्द्रतुल्य श्रेष्ठ अपने पितामह के कल्याणप्रद इस लोक तथा परलोक में हितकारी एवं तथ्य सुन्दर वचनों का स्मरण करते हुए यह वीर दैत्यराज इस वृत्त का पाठ करता था । (६४)

पूर्व में कठोरता पूर्वक कहे गए एवं बाद में नवनीत के सदृश स्निग्ध एवं शुद्ध वृद्धवाक्यों का श्रवण कर

मोदन्ति ते नात्र विचारमस्ति ॥ ६५
आपद्भुजंगदष्टस्य मन्त्रहीनस्य सर्वदा ।
वृद्धवाक्यौषधा नूनं कुर्वन्ति किल निर्विषम् ॥ ६६
वृद्धवाक्यामृतं पीत्वा तदुक्तमनुमान्य च ।
या तृप्तिर्जायते पुंसां सोमपाने कुतस्तथा ॥ ६७
आपत्तौ पतितानां येषां वृद्धा न सन्ति शास्तारः ।
ते शोच्या बन्धूनां जीवन्तोऽपीह मृततुल्याः ॥ ६८
आपद्ग्राहगृहीतानां वृद्धाः सन्ति न पण्डिताः ।
येषां मोक्षयितारो वै तेषां शान्तिर्न विद्यते ॥ ६९
आपज्जलनिमग्नानां ह्रियतां व्यसनोर्मिभिः ।
वृद्धवाक्यैर्विना नूनं नैवोत्तारः कथंचन ॥ ७०
तस्माद् यो वृद्धवाक्यानि शृणुयाद् विदधाति च ।
स सद्यः सिद्धिमाप्नोति यथा वैरोचनो बलिः ॥ ७१

इति श्रीवामनपुराणे अष्टषष्टितमोऽध्याय ॥ ६८ ॥
॥ इति त्रिविक्रमचरितं समाप्तम् ॥

६९

पुलस्त्य उवाच ।
एतन्मया पुण्यतमं पुराणं
तुभ्यं तथा नारद कीर्तितं वै ।
श्रुत्वा च कीर्त्या परया समेतो
भक्त्या च विष्णोः पदमभ्युपैति ॥१
यथा पापानि पूयन्ते गङ्गावारिविगाहनात् ।
तथा पुराणश्रवणाद् दुरितानां विनाशनम् ॥ २
न तस्य रोगा जायन्ते न विषं चाभिचारिकम् ।

तदनुकूल आचरण करने वाले निस्सन्देह आनन्दित होते हैं। (६५)

वृद्धवाक्यरूपी औषधि आपत्ति रूपी सर्प से दंशित मन्त्रहीन पुरुष को निस्सन्देह विषरहित कर देती है। (६६)

वृद्धवाक्यरूपी अमृत को पीने एवं उनके कथनानुसार आचरण करने से मनुष्यों को जो तृप्ति होती है वैसी सोमपान में कहाँ है ? (६७)

आपत्ति में पड़े हुए जिन मनुष्यों का शासन वृद्धजन नहीं करते वे बन्धुओं के लिये शोचनीय तथा जीवित ही मृतक तुल्य होते हैं। (६८)

आपत्तिरूपी ग्राह से गृहीत जिन व्यक्तियों को वृद्ध पण्डित लोग मुक्त करने वाले नहीं होते उन्हें शान्ति की प्राप्ति नहीं होती। (६९)

आपत्तिरूपी जल में निमग्न एवं व्यसनरूपी लहरों से आकृष्ट हो रहे पुरुषों का उद्धार वृद्धवाक्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार नहीं हो सकता। (७०)

अतः वृद्धवाक्यों को सुनने एवं तदनुसार आचरण करने वाला मनुष्य विरोचन-पुत्र बलि के सदृश शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है। (७१)

श्रीवामनपुराण में अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥
॥ त्रिविक्रम चरित समाप्त ॥

६९

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद ! मैंने तुमसे इस अत्यन्त पवित्र पुराण का वर्णन किया। इसको सुनने से मनुष्य परम कीर्ति एवं भक्ति-युक्त होकर विष्णुलोक को जाता है। (१)

जिस प्रकार गंगाजल में स्नान करने से सारे पाप धुल जाते हैं, उसी प्रकार पुराण का श्रवण करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। (२)

हे महान् ! वामन पुराण का श्रवण करने वाले मनुष्य के

शरीरे च कुले ब्रह्मन् यः शृणोति च वामनम् ॥ ३

शृणोति नित्यं विधिवच्च भक्त्या
संपूजयन् यः प्रणतश्च विष्णुम् ।
स चाश्वमेधस्य सदक्षिणस्य
फलं समग्रं परिहीनपापः ॥ ४

प्राप्नोति दत्तस्य सुवर्णभूमे-
रश्वस्य गोनागरथस्य चैव ।
नारी नरश्चापि च पादमेकं
शृण्वन् शुचिः पुण्यतमः पृथिव्याम् ॥ ५

स्नाने कृते तीर्थवरे सुपुण्ये
गङ्गाजले नैमिषपुष्करे वा ।
कोकामुखे यत् प्रवदन्ति विप्राः
प्रयागमासाद्य च माघमासे ॥ ६

स तत्फलं प्राप्य च वामनस्य
संकीर्तयन् नान्यमनाः पदं हि ।
गच्छेन्मया नारद तेऽद्य चोक्तं
यद् राजसूयस्य फलं प्रयच्छेत् ॥ ७

यद् भूमिलोके सुरलोकलभ्ये
महत्सुखं प्राप्य नरः समग्रम् ।
प्राप्नोति चास्य श्रवणान्महर्षे
सौत्रामणेर्नास्ति च संशयो मे ॥ ८

रत्नस्य दानस्य च यत्फलं भवेद्
यत्सूर्यस्य चेन्दोर्ग्रहणे च राहोः ।
अन्नस्य दानेन फलं यथोक्तं
बुभुक्षिते विप्रवरे च साग्निके ॥ ९

दुर्भिक्षसंपीडितपुत्रभार्ये
यामी सदा पोषणतत्परे च ।
देवाग्निविप्रर्षिरते च पित्रोः
शुश्रूषके भ्रातरि ज्येष्ठसाम्ने ।
यत्तत्फलं संप्रवदन्ति देवाः
स तत् फलं लभते चास्य पाठात् ॥ १०

चतुर्दशं वामनमाहुरग्र्यं
श्रुते च यस्याघचयाश्च नाशम् ।
प्रयान्ति नास्त्यत्र च संशयो मे
महान्ति पापान्यपि नारदाशु ॥ ११

पाठात् संश्रवणाद् विप्र श्रावणादपि कस्यचित् ।

शरीर एवं कुल में रोग तथा अभिचार-कर्म जनित विष का प्रभाव नहीं होता। (३)

नम्रतापूर्वक विष्णु का पूजन करते हुए भक्तिपूर्वक विधिवत् नित्य इस पुराण का श्रवण करने वाले मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं एवं उसे दक्षिणासहित अश्वमेध यज्ञ करने तथा सुवर्ण, भूमि, अश्व, गौ, हाथी एवं रथ के दान का फल प्राप्त होता है। इस (पुराण) का एक चरण भी श्रवण करने वाला पुरुष तथा स्त्री पृथ्वी में शुचिता युक्त एवं अत्यन्त पुण्यवान् हो जाता है। (४-५)

विप्रगण अत्यन्त पवित्र श्रेष्ठ तीर्थ के जल, गङ्गाजल, नैमिषारण्य, पुष्कर, कोकामुख एवं माघमास में प्रयाग में जाकर स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति का होना बतलाते हैं, अनन्यमन से वामनपुराण के एक पद का कीर्तन करते हुए गमन करने वाले पुरुष को वही फल प्राप्त होता है। हे नारद ! मैंने आज तुमसे यह पुराण कहा है जो राजसूय यज्ञ का फल प्रदान करता है। (६-७)

हे महर्षि ! मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि इसका श्रवण करने से मनुष्य पृथ्वी एवं सुरलोक में उपलब्ध होने योग्य समस्त महान् सुखों को प्राप्त कर सौत्रामणि नामक यज्ञ का फल प्राप्त करता है। (८)

देवगण रत्नदान, राहु द्वारा सूर्यग्रहण एवं चन्द्र का ग्रहण होने के समय किये गए दान, भूखे अग्निहोत्री श्रेष्ठ ब्राह्मण को दिये गये अन्नदान, दुर्भिक्ष से पीड़ित पुत्र, भार्या एवं बान्धव के पोषण में तत्पर पुरुष को दिये गए दान, देवता, अग्नि एवं विप्र की परिचर्या में लगे व्यक्ति को दिये गए दान, माता पिता, तथा ज्येष्ठ भ्राता को दिए गये दान से जिस फल का होना बतलाते हैं वह फल मनुष्य इसका पाठ करने से प्राप्त कर लेता है। (९-१०)

हे नारद ! वामनपुराण चौदहवाँ श्रेष्ठ पुराण है। इसमें मुझे सन्देह नहीं है कि इसका श्रवण करने से पाप समूह एवं महापाप भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। (११)

सर्वपापानि नश्यन्ति वामनस्य सदा मुने ॥ १२
इदं रहस्य परमं तवोक्तं
न वाच्यमेतद्धरिभक्तिवर्जिते ।
द्विजस्य निन्दारतिहीनदक्षिणे
सहेतुवाक्यावृतपापसत्त्वे ॥ १३
नमो नमः कारण वामनाय नित्यं यो वदेन्नियतं द्विजः ।
तस्य विष्णुः पदं मोक्षं ददाति सुरपूजितः ॥ १४
वाचकाय प्रदातव्य गोभूस्वर्णविभूषणम् ।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कुर्वन् श्रवणनाशकम् ॥ १५
त्रिसध्यं च पठन् शृण्वन् सर्वपापप्रणाशनम् ।
असूयारहितं विप्र सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥ १६

इति श्रीवामनपुराणे एकोनसप्ततितमोऽध्याय ॥६९॥

॥ इति श्रीवामनपुराणं समाप्तम् ॥

हे मुनि । हे विप्र ! वामन पुराण का पाठ करने, सुनने एवं सुनाने से सर्वदा समस्त पाप नष्ट होते हैं। (१२)

मैंने तुमसे यह परम रहस्य तत्त्व कहा है इसे हरिभक्तिरहित व्यक्ति, ब्राह्मण की निन्दा करने वाले आचारहीन तथा तर्कशील पापी मनुष्य के सम्मुख नहीं कहना चाहिए। (१३)

'नमो नम: कारणवामनाय' इस मन्त्र का नियमपूर्वक जप करने वाले द्विज को सुरपूजित विष्णु मोक्ष पद प्रदान करते हैं। (१४)

इस पुराण के वाचक को गो, पृथ्वी एव स्वर्णाभूषण प्रदान करना चाहिए। इसमे वित्तशाठ्य नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से श्रवण के फल का नाश हो जाता है। (१५)

हे विप्र ! तीनों सध्याओं मे असूयारहित होकर सर्वपापनाशक इस पुराण का पाठ करने एवं श्रवण करने से सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। (१६)

श्रीवामनपुराण मे उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥६९ ॥

वामनपुराण समाप्त

परिशिष्ट

APPENDIX

वामनपुराण के विषयों के साथ अन्य पुराणों के तथा रामायण महाभारत के समान विषयों का निर्देश

SUBJECT-CONCORDANCE OF THE VĀMANA PURĀNA WITH THE OTHER PURANAS AND THE EPICS

[Some of the Puranic topics of the Vāmana Purana are also met with in the other Purānas, Harivamśa and the two Epics The contents of these common topics in these works are generally similar, and their concordance also helps in deciding a text There are however certain common topics in the Vāmana and the other Puranas which differ in their contents, for example, the story of the birth of *Mahisa given in the Nāgara-Khanda of the Skanda Purana differs from the story given* in the Vamana According to the Vāmana Purāna Mahisa is the son of the Asura Rambha and was born in the form of a white buffalo from a she buffalo (*Mahisi*) ('अजीजनत् सुत शुभ्र महिष कामरूपिणं' Vām P 18 60) while in the Skanda Purāna (VI 119 4 14) Mahisa is said to be the son of Hiraṇyākṣa, his name was Citrasama, but owing to the curse of Sage Durvāsas his handsome form was changed to an ugly form of a buffalo Such common topics differing in their contents as found in some of the Purānas are also noted here in this Concordance for the sake of a comparative study of such common topics This concordance may not be treated as exhaustive

The topics are given here in the order of the Adhyāyas of the Critical Edition of the Vāmana Purāna The other Puranas are referred to, *below that* in the alphabetical order in two columns, and then the Rāmāyaṇa, Mahābhārata and the Harivamśa are referred to In the beginning, the scheme of reference is also given.]

[वामन पुराण के कुछ विषय अन्य पुराणो म तथा रामायण-महाभारत म भी पाये जाते हैं। यहाँ इन सभी समान विषयो का एकत्र निर्देश किया गया है। इस साम्य निर्देश के द्वारा पाठनिर्णय मे सहायता मिलती है। कभी कभी इन समान विषयों में आख्यानादि के प्रसङ्ग मे विभिन्न पुराणों म भेद परिलक्षित होता है, जैसे स्कन्द पुराण के नागर खण्ड (अ० ११९, श्लो० ४-१७) में महिषासुर की उत्पत्ति की कथा वामन, पुराण की उक्त कथा से भिन्न है। किन्तु ऐसे विषय भी यहाँ तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से दिए गये हैं। तथापि यह संवाद सर्वथा पूर्ण है ऐसा नहीं मानना चाहिए।

यहाँ विषयों का क्रम वामन पुराण के पाठसमीक्षित संस्करण के अध्यायों के क्रमानुसार है। उसके नीचे अन्य पुराणों के निर्देश अकारादि के क्रम से हैं जिनके अनन्तर रामायण, महाभारत तथा हरिवंश के निर्देश है। इस साम्य निर्देश में प्रयुक्त स्थलनिर्देश की पद्धति की प्रारम्भ मे व्याख्या कर दी गई है।]

Scheme of Reference

1 The reference figures for the main divisions adhyāyas and the ślokas are given in Devanāgarī numerals But in the case of the भविष्यपुराण, शिवपुराण, and the स्कन्दपुराण the reference figures for the subdivisions (other than the adhyāyas) are given in the International forms of the numerals

2 The number of a śloka referred to is printed in smaller type

3 In the case of the अग्निपुराण, ब्रह्मपुराण, मत्स्यपुराण मार्कण्डेयपुराण, वराहपुराण and वामनपुराण there are two reference numerals, the first denotes the number of the adhyāya and the second the number of the śloka referred to

Abbreviations and Reference Details

(प्रयुक्त संकेतों की व्याख्या तथा निर्देश विवरण)

अग्नि = अग्निपुराण, Published by (Pub) आनन्दाश्रम, पूना [Ref अध्याय श्लोक]

कूर्म = कूर्मपुराण, Pub वेङ्कटेश्वरप्रेस मुम्बई [Ref अर्ध (१ पूर्वार्ध, २ उत्तरार्ध) अध्याय श्लोक]

गरुड = गरुडपुराण Pub जीवानन्द, कलकत्ता [Ref खण्ड (१ पूर्वखण्ड, २. उत्तरखण्ड called प्रेतकल्प) अध्याय श्लोक]

देवी भा = देवीभागवतपुराण, Pub मोर (गुरुमण्डल ग्रन्थमाला), कलकत्ता [Ref स्कन्ध अध्याय श्लोक]

नार = नारदीयपुराण, Pub वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई Ref भाग (१ पूर्वभाग, २ उत्तरभाग) अध्याय श्लोक]

पद्म = पद्मपुराण Pub मोर, कलकत्ता (= वेङ्कटेश्वर प्रेससंस्करण) [Ref खण्ड अध्याय श्लोक]

Khandas —

१ सृष्टिखण्ड (= आनन्दाश्रम, ५) २ भूमिखण्ड (= आनन्दाश्रम, २) ३ स्वर्ग खण्ड (= आनन्दाश्रम, १ आदिखण्ड) ४ ब्रह्म खण्ड (= आनन्दाश्रम, ३), ५ पातालखण्ड (= आनन्दाश्रम, ४), ६ उत्तरखण्ड (= आनन्दाश्रम, ६)

ब्रह्म = ब्रह्मपुराण, Pub मोर, कलकत्ता [Ref खण्ड अध्याय श्लोक]

Khandas —

१ ब्रह्मखण्ड २ प्रकृतिखण्ड, ३ गणपतिखण्ड, ४ श्रीकृष्णजन्मखण्ड

ब्रह्माण्ड = ब्रह्माण्डपुराण, Pub वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई [Ref. भाग (१ पूर्वभाग, २ मध्यभाग ३ उत्तरभाग) अध्याय श्लोक]

भविष्य = भविष्यपुराण; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई, [Ref पर्व अध्याय श्लोक]

Parvans —

१ ब्राह्मपर्व २ मध्यमपर्व [1 प्रथम भाग, 2 द्वितीय भाग 3 तृतीय भाग]; ३ प्रतिसर्गपर्व [1 प्रथम खण्ड, 2 द्वितीय खण्ड, 3 तृतीय खण्ड 4 चतुर्थ खण्ड], ४ उत्तरपर्व

भाग = भागवतपुराण Pub गीताप्रेस, गोरखपुर [Ref स्कन्ध अध्याय श्लोक]

मत्स्य = मत्स्यपुराण; Pub मोर, कलकत्ता [Ref अध्याय श्लोक]

महाभा = महाभारत, Pub चित्रशाला प्रेस, पूना [Ref पर्व अध्याय श्लोक]

Parvans —

१ आदि, २ सभा, ३ वन, ४ विराट, ५ उद्योग ६ भीष्म, ७ द्रोण, ८ कर्ण, ९ शल्य, १० सौप्तिक, ११ स्त्री, १२ शान्ति १३ अनुशासन १४ आश्वमेधिक, १५ आश्रमवासिक, १६ मौसल, १७ महाप्रास्थानिक १८ स्वर्गारोहण

मार्क = मार्कण्डेयपुराण, Pub जीवानन्द, कलकत्ता [Ref अध्याय श्लोक]

रामा = रामायण Printed by M L G Press मद्रास, 1950. [Ref काण्ड सर्ग श्लोक]

Kandas —

१ बाल, २ अयोध्या, ३. अरण्य, ४. किष्किन्धा, ५ सुन्दर, ६ युद्ध, ७ उत्तर.

लिङ्ग = लिङ्गपुराण, Pub मोर, कलकत्ता [Ref अर्ध (१ पूर्वार्ध, २ उत्तरार्ध) अध्याय श्लोक]

वराह = वराहपुराण Bibliotheca Indica Series Pub Asiatic Society of Bengal, कलकत्ता 1897 [Ref अध्याय श्लोक]

वाम = वामनपुराण पाठसमालोचनात्मकसंस्करण (Critical Edition) Pub सर्वभारतीयकाशिराजन्यास, रामनगर, वाराणसी, 1967 Ref अध्याय श्लोक]

वायु॰ = वायुपुराण; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई [Ref. अर्ध (१. पूर्वार्ध; २. उत्तरार्ध). अध्याय श्लोक]

विष्णु = विष्णुपुराण; Pub गीताप्रेस, गोरखपुर [Ref. अंश अध्याय. श्लोक].

विष्णु-ध. = विष्णुधर्मोत्तरपुराण; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई. [Ref. खण्ड (१. प्रथमखण्ड २. द्वितीयखण्ड; ३. तृतीयखण्ड). अध्याय. श्लोक].

शिव. = शिवपुराण; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई. [Ref. संहिता अध्याय श्लोक]

Samhitās :—

१ विद्येश्वर-संहिता; २. रुद्र-संहिता [-1. सृष्टि-खण्ड; 2. सती-खण्ड; 3 पार्वती-खण्ड; 4 कुमार-खण्ड; 5 युद्ध-खण्ड], ३ शतरुद्र-संहिता; ४. कोटिरुद्र-संहिता; ५. उमा-संहिता, ६. कैलास-संहिता, ७. वायवीय-संहिता [-1. पूर्वभाग; 2 उत्तरभाग].

स्कन्द = स्कन्दपुराण; Pub मोर, (for the first five Khandas, १-५. खण्ड —माहेश्वर; वैष्णव; ब्राह्म; काशी; अवन्ती) and वेङ्कटेश्वरप्रेस (for the last two Khandas, ६-७ खण्ड—नागर; प्रभास). [Ref. खण्ड अध्याय. श्लोक].

Khandas :—

१. माहेश्वर-खण्ड [-1 केदारखण्ड; 2 कौमारिकाखण्ड; 3 अरुणाचलमाहात्म्य—(i) पूर्वार्ध, (ii) उत्तरार्ध];

२. वैष्णव-खण्ड [-1. वेङ्कटाचलमाहात्म्य 2. पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्य 3 बदरिकाश्रममाहात्म्य, 4. कार्तिकमासमाहात्म्य, 5 मार्गशीर्षमाहात्म्य 6. भागवतमाहात्म्य; 7. वैशाखमाहात्म्य; 8. अयोध्यामाहात्म्य; 9 वासुदेवमाहात्म्य]

३. ब्राह्म-खण्ड [-1 सेतुमाहात्म्य, 2 धर्मारण्यखण्ड; 3. चातुर्मास्यमाहात्म्य; 4 ब्रह्मोत्तरखण्ड]

४ काशी-खण्ड (पूर्वार्ध = अ० १-५०, उत्तरार्ध = अ० ५१-१००)

५ अवन्ती-खण्ड [-1 अवन्तीक्षेत्रमाहात्म्य, 2. चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्य 3 रेवाखण्ड]

६. नागरखण्ड

७. प्रभास-खण्ड [-1. प्रभासक्षेत्रमाहात्म्य, 2. वस्त्रापथ (गिरनार) क्षेत्रमाहात्म्य, 3. अर्बुदखण्डमाहात्म्य, 4 द्वारकामाहात्म्य]

हरिवं = हरिवंश, Pub चित्रशालाप्रेस, पूना. [Ref. पर्व. अध्याय. श्लोक]

Parvans:—

१ हरिवंश-पर्व २. विष्णु पर्व ३. भविष्य-पर्व.

वसन्तवर्णन (Des ription of Spring)—वाम ६ ६-२१
शिव २ [-2].२१ २६-१६

कामदाह (Burning of Kāma-deva)—वाम ६ २४-१०७
ब्रह्म. १८ १०-२१.२७ २.[7].८ ८१-६२ ;
ब्रह्मवै. ४ ३९.४२-६४ ५ [-1].४१.६-४० ;
लिङ्ग. १०१.३१-४६ ७.[-1].१९९ १-२००.३१ ;
स्कन्द. १.[-1].२१.३७-७३ , ७.[-3].४०.१-२५
१.[-2]२४.१-४६ ,

अन्धकवृत्तान्त (Legend of Andhaka)—
वाम. ९.१-१०.५७ , ३३.१६-४४.६६
कूर्म १.१६.६५-२३८
पद्म. १.४८ १-६२ शिव. २.[-5].४२ ८-४९.५२
मत्स्य. १७९.१-३१ स्कन्द, ५ [-1] ४७.६-४९.४१ ;
लिङ्ग. ९२ १८७-६३.२६ ५.[-3].४५.१-४८.४६ ,
वराह २७.१-४३ ६.१४६.१३-१५१ :
विष्णु-ध. १ २२६.१-३७ ७.[-2].९.१५१-१६६
हरिव. २.८६.१-८७.३६

भुवनकोश (Bhuvanakośa)-वाम. ११.३१-४६ ; १३ १-५८
अग्नि. ११८.१-८ लिङ्ग ४६.१-६२.४२
कूर्म. १ ४०.१-५०.२६ वराह. ७४.१-८९.४
गरुड. १.५४.१-५७ ६ वायु. १ ३३.११-५३.१२३
देवी-भा. ८.४.१३-२० ३७ विष्णु. २.२.१-५ २७ ,
पद्म. ३.३.१-९.४२ २.७.१-१२ ४७
ब्रह्म. १८.१० २१-२७ विष्णु ध. ३.१५९ १ १६१.७
ब्रह्माण्ड. १ १४ १०-१९ १६७ शिव ५.१७ १-१६ ४४
भविष्य. २ [-1].३.१-४ ४४ स्कन्द १ [-1] ३७ १-३८.६४ ;
भाग. ५ १६ १-२४ ३१ ३ [-3] २६ ३७ ५५ ;
मत्स्य ११२.१-१२७ ८५ ६ २६१.३६-५१ ,
मार्क ५३ ११-६० १५ ७ [1] ११ ६-४४
महाभा. ६ ५.१-११.३८

नरकवर्णन (Description of Narakas)—
वाम. ११ ४७-१२.५६
अग्नि. २०३ १-२३ ब्रह्मवै. २ २६ १-३३.१२१ ;
गरुड. १ ५७.४-७ २.५१.४५-५२.४०
देवी-भा. ८ २१ १५-२३.३१ ब्रह्माण्ड. ३.२.१४५-१५१
नार. १.१५.१-२० भविष्य. १ १९.५१
ब्रह्म- २१.१-५६ ; भाग. ३.३० १-३४ ;
२१४ १-२१५ १४२ ५.२६ १-४०

मार्क. १२ १-१५.४६ स्कन्द. १ [-2].३९.८-२५ ;
वराह. २०० १-५७ १.[-2].४१.११-७८ ;
वायु २ ३९.१४६-१८७ १ [-3].(ii) ५.१-२५ ;
विष्णु. २.६.१-५१ ; २.[-1].१२.३-४६ ;
६.५ १-५८ ४ ८.५०-६० ;
विष्णु-ध. २.१११.१-२० ; ५.[-1].३९.५-४३ ;
२.११८.१-१२१.१३ ; ५.[-3].१५५ ६७-११० ;
३.२४०.१-२५३.४५ ६.२६.१८-६१ ;
शिव. ५.५.१-१०.५७ ; ६.२२६.१८-८४ ;
५.१६.१-४० ७.[-1].२२५.१४-३६
महाभा १३ १३.१६-८३

सदाचार (Virtuous conduct)—वाम १४.१-१५.६६
अग्नि. १५२.१-५ ; मत्स्य. ४०.१-१७ ;
१५५.१-१५७.४२ १७४.३२-४४
कूर्म. १.२.३८-३ २८ ; मार्क. २८.१-२९.४८ ;
२.१२.१-२४.२१ ; ३४.१-३५ ६५
२.३४.११०-१४१ लिङ्ग. ८५.१२७-२१७ ;
गरुड. १.२०५.१-१५४ ८९.१-१२२
देवी-भा. ११.१.४-२.४२ विष्णु. ३ ८.६-१२ ४५
नार. १.४३.५१-४४.२० ; विष्णु ध २.७९ १-९५.३० ;
१.६६ १-७८ २.१३०.१-१३१.६४ ;
पद्म. १.५१.१-६०.४३ ; ३.२५०.१-५ ;
२.१३.१-३५ ; ३.२५८.१-७ ;
२.६७.१-११२ ; ३.२६३.१-२६६-२२,
३.५१.१-५५.६४ ; ३.२६९.१-२७२.३
३.५६.१-४६ ; ३.२८७.१-२८९.५ ;
३.५७.१-६० ४३. ३.३३९.१-३४०.४०
ब्रह्म. २२१.१-२२५.६३ शिव. १.१३.१-८५
ब्रह्मवै. १.२६ ५-१०४ ; स्कन्द. १.[-2].४१.११७-१७४ ;
४.७५.१-८१ ; २.[9].२०.११-२३.४३
४.८३.१-८४.४० ३.[-2] ५.१-७ १०० ;
ब्रह्माण्ड. २.१४.५०-११७ ३ [-2].४०.१-१५२ ;
भवि. १.३.१ ४ २२२ ; ४.३५.१४-३६.६६ ;
१.११.१ २१ ; ४.३८.१-११५ ;
४.२०५.१-५३ ६.२२३.१-३६ ,
भाग. ७.११ १-१५.८० ; ७.[-1].२०७.३-२०८.५२
११.१७.१-१८.४८
महाभा. ३.२०७.६२-६६ ; १२.१८९.१-१९३.३३ ;
१२.२८७ १-५६ ; १३.९७.१-२५ ;
१३.१०४.१-१५७ ; १३.१४१.३४-१४५.६३ ;
१४.४५.१३-४७.१७
हरिवं. ३.२४.१-१५

अश्वत्थमाहात्म्य (Glorification of the holy fig tree)—वाम १४.३७

स्कन्द. ६.२४७.२४-४४

अशून्यशयनद्वितीयाव्रत (Aśūnyaśayana-dvitīyā-Vrata)—वाम १७.१६-२६

अग्नि. १७७.३-१२ — विष्णु-ध. १.१४५.५-२० ;
नार. २.११.७-१० — ३.१३२.१-१२
पद्म. २.८७.१-३७ — स्कन्द. २.[-7] १०.१-२६ ;
भवि. १.२०.१-३३ ; — ६.४१.१-५४ ;
४.१५.१-२३ — ६.२६५.२१-३६
मत्स्य. ७०.१-१६

विष्णुपञ्जरस्तोत्र (Viṣṇupañjara stotra)—
वाम १८.२६-३७ ; ५९.६-२१

अग्नि. २७०.१-१५ — ब्रह्मवै. ४.१२.१७-४२
गरुड. १.१३.१-१३ — विष्णु-ध. १.१९५.१-१७ ;
भाग. ६.८.४-४० — १.२३७.१-२६
ब्रह्मवै. ३.३१.१-५७ ;

महिषोत्पत्तिवृत्तान्त (Story of the birth of Mahiṣa)—वाम १८.४२-६०

देवी-भा. ५.२.१६-४८ — स्कन्द ६.११६ ४-१८

देवीमाहात्म्य तथा महिषवध (*Glorification of Devī* and killing of Mahiṣa)—वाम १८.३६-२१.५०

देवी-भा. ५.२.३-१९ ४४ — स्कन्द. १[-3](i).१०.१-११.४६;
मार्क. ८२.१-८४.३६ — ३.[-1] ६.१-७.४४ ;
वराह. ९२.१-९५ ६५ — ६.११८ १-१२१.८६ ;
शिव. ५ ४६.१-६३ — ७ [-1] ८३ १-६०
७ [-3].३६.३-१६३

अगस्त्य के द्वारा विन्ध्य का निम्नीकरण (Lowering of Vindhya mountain by sage Agastya)—
वाम १९ २२-३७

देवी भा. १०-२.५-७.२६ — विष्णु-ध १.२१३.६-२१
पद्म. १.१९ ४७-१५६ — स्कन्द ४.५.५३-६८ ;
६.३३.५-४३

महाभा. ३.१०४.१-११५

कुरुक्षेत्रतीर्थमाहात्म्य (Glorification of Kurukṣetra and its Tīrthas)—वाम २२.२३-स.मा. २८.४६

अग्नि १०९.१४-१६ — ब्रह्म. २५.३५-४४
नार. २.६४.१-६५.११२ — ब्रह्माण्ड. २.१३ ६५-६६ ;
पद्म. ३.२६.१-२७.६७ — २.४७ १-३३

महाभा. ३.८३.१-२०८ ; ९.३७.१-४३.४६

तपती संवरण का उपाख्यान (Story of Tapatī and Saṁvaraṇa)—वाम २१.२६-६१

महाभा. १.१७१.१-१७३.५०

वामन-चरित (Story of Vāmana)—
वाम. स. मा. २.१-१०.६१ ; अ. ५०,५१,६२ ६६

अग्नि. ४.५-११ — वायु. २.३६.७४-८६
कूर्म. १ १७.१-६६ — विष्णु ध. १.२१.४-३२ ;
नार. १.१०.१ ११.६७ — १.५५ १-५६ ;
पद्म. १.३०.१-२०३ ; — ३.३४.१-११
६.२३९.१-२४०.६१ — स्कन्द. १.[-1].१७.२७६-१९.६३;
ब्रह्म. ७३.१-६६ ; — ५.[-1].७४ २३५-२७० ;
२१३ ८०-१०५. — ५.[-3] १५१.११-१३ ;
भवि ४ ७६.१.२७ — ७.[-1].११४ १-११ ;
७ [-2] १४.८-८३ ;
भाग. ८.१५.१-२३.३१ — ७.[-2].१८.२०१-१९.४
मत्स्य. २४३.६-२४५.६६ — ७.[-4] १८.१०-१४

महाभा. ३.२७२.६१-७६ ; हरिवं. ३.६५.१-७२.१०७

सरस्वतीवृत्तान्त (*Story of the origin of the* Sarasvatī)—वाम स.मा. ११.१-१४ ; स.मा. १२.२

नार. २ ६४.१७-१८ — स्कन्द. ६.४६.१५-४५
पद्म. १-१८.१२७-४७६ — ६.१७२.१-१७३.१६

सरस्वती-स्तोत्र (Eulogy of the Sarasvatī)—
वाम. स मा. ११.६-२२

मार्क २३.३०-४७

परशुराम के द्वारा रामह्रद का निर्माण (Creation of Rāmahrada by Paraśurāma)—वाम. स.मा. १४.१-१४

नार. २.६४.१५-१७ — स्कन्द. ५.[-3].२१८.२७-५७ ;
६.६६.१-६९ २७ ;
७ [-3].४९.१-१६

महाभा. ३-८३.२६-४०

सुरभियों की उत्पत्ति (Birth of Surabhis)—
वाम स.मा. १४.२६-३०

महाभा. १३.७७.१६-१८

मानुषतीर्थ (Mānuṣa Tīrtha)—
वाम. स मा. १४.५०-५६

स्कन्द. ६.२३.१-१५ ;
७.[-3].२८.१-११

शरभावतार (Śarabha-Incarnation of Śiva)—
वाम. स.मा. १५.२६-३६

शिव. ३.११.१-१२.४७

वेदवती-वृत्तान्त (Story of Vedavati)–
वाम. स.मा. १६. ८-१२.

देवी-भा. ३. ३०. ६-१२; विष्णु-ध. १. २२१. १७-४६
९. २६. ३-५३ स्कन्द. १. [-1-]. ८. १०५-११०;
ब्रह्मवै. २. १४. १-६४ २. [-1-]. ५. १८-३०
रामा. ७. १७. १-३१

मङ्कणक का आख्यान (Story of Mankanaka)–
वाम. स.मा. १७. १-२३; ३६. ४५-५८

कूर्म. २. ३५. ४४-७६ स्कन्द. ६. ४०. २७-५२
पद्म. १. १८. १३४-१५६ ७. [-1-]. २७०. १-४६
महाभा. ३.८३. १६-३४, ६. ३८. ३३-५६

कपालमोचन माहात्म्य (औशनसतीर्थ) (Glorification of Kapalmocana)–वाम स.मा. १८.१-१३

महाभा. ३ ८३. १३३-१३७, ६. ३६. ४ २२

रहोदरचरित (Story of Rahodara)–
वाम. स.मा. १८. ३-१३

महाभा. ६.३६. ४-२२

रुषङ्गुचरित (Story of Rusangu)–
वाम. स.मा. १८ १६-२०

महाभा. ३.८३. १४१-१४६; ९. ३९. २७-३४

दाल्भ्यबकचरित (Story of Dālbhyabaka)–
वाम. स.मा. १८. २५-३५

महाभा. ६. ४१ १-२७

वसिष्ठ-प्रवाह की कथा (Legend of Vasistha s taking away by the Sarasvati)–वाम स.मा. १९ १-४३

स्कन्द. ६. १७२. १-१७३. १६
महाभा. ९.४२. १-४१

सरस्वती-स्तुति (Eulogy of the Sarasvati)–
वाम. स.मा. १६. १२-१७

महाभा. ९ ४२-२६-३३

ऋषियों के यज्ञोपवीत से कुञ्जतीर्थ का निर्माण (Building of Kunja Tirth by the sacred threads of the Rsis)–वाम. स.मा. २१. १-६

महाभा. ९.३७. ४१-५८

स्थाणुतीर्थ माहात्म्य (Glorification of Sthānutirtha)–
वाम. स.मा. २२. १-२४. ३१

महाभा. ३. ८३. १७८-१७६; ९.४२. ४-७

सृष्टिनिर्माण (Creation)–वाम. स.मा. २२.१६-४३

नार. १. ४२. १-२३ मत्स्य. ३. १-५५
पद्म १. २. ८-३. २०६ मार्क. ४७. १-३६
ब्रह्म. १. ३३-५६ वायु. ६. १-१०. ५८
ब्रह्माण्ड. १. ३. ७-५. १४१ शिव. २. [-1-]. ६. ४-५६
भवि. १ २. १-११२

महाभा. १२.१८२ १-१८३.१७

देवदारुवन में शिवलिङ्ग का पतन (Fall of Śivalinga in Dāruvana)–वाम. स.मा. २२.४४ स.मा. २३.३६

कूर्म. २.३७. ४३-३९ ८० स्कन्द.३.[-3] २६.१-२७.१६१,
ब्रह्माण्ड. १.२७ १-१२६ ६.१.२-७२ ;
शिव. ४.१२.४-५४ ६.२५८.६-२९ ;
७.[-1].१८७.१५-४६ ;
७ [3].३९.१-६६

वेनपृथु-चरित (Legend of king Vena and Pithu)–वाम स.मा. २६.५-१६३

पद्म. १.८.३-३५, मत्स्य. १०.३-३५
२.२७.१-३६ ३७ विष्णु. १.१३.१-६५
ब्रह्म. ४.२८-१२२ विष्णु-ध १.१०८.१-६६
ब्रह्माण्ड १.३६.१०८-२२७ स्कन्द. ६.२३.१-३०,
भाग. ४ १३.१७-१६.१५ ७.[-1]. ३३६ ६७-२८७
हरिवं १.२.२०-२७

शिव स्तुति (Eulogy of Śaṁkara)–
वाम. स.मा २६.६३-१६३ (वेनकृता)

ब्रह्म. ४० २-१०० वायु. १.३०.१८०-२८४
(दक्षकृता) (दक्षकृता)

महाभा. १२.२८४.७३-१८६
(दक्षकृता)

पार्वती-चरित (Story of Pārvati)–वाम २५.१-२८.२६

पद्म. १.४५.१-४६.१२१ वायु. २.११.७-२६
ब्रह्म. ३४.७०-३६.१३५ शिव. २ [-3].५.१-६.५४,
ब्रह्माण्ड. २.१०.८-२६ २.[-3]. २२.१-५०.४५
मत्स्य. १५३.२६१-४६८ स्कन्द. १.[-2]२२.१-२८.१५,
वराह. २१.१-५४ २.[-7].८.३१-९.५२,
६.७७.१-३०;
६.७७.१-३०,
७.[-2].९.४३-७२

रामा. १.३५.२३-३६.२६;

\- बालखिल्य-चरित (Story of Bālakhilyas)-
वाम. २७.५६-५६

पद्म. १.१८.६१-१११ शिव. २.[-3].४६ १-४७
ब्रह्माण्ड. १,३५.६४ स्कन्द. ६.७७.३०-७६ ;
६.७९.१-५४
महाभा. ९.३७ ४१-५८

विनायक-जन्म (वीरक) (Birth of Vināyaka)-
वाम. २८.५६-७५

पद्म. १.४५.४४५-५३० वराह. २३.१-३८
मत्स्य. १५३.४६६-१५७.२१ शिव. २.[-4].१३.१-१७-५६
लिङ्ग. १०४.१-१०५.२८ स्कन्द. १.[-2]. २७.१-२३ ,
७.[-3].३२.३-२२

शुम्भनिशुम्भवध (Slaying of Śumbha and Niśumbha by Devi)-वाम.२९.१-३०.७३

देवी.भा.५.२१.१-३१.६८ स्कन्द. ७.[-3].२४.१.२२
शिव. ५.४७.१-४८.५०

स्कन्द-जन्म तथा तारकवध (Birth of Skanda and Killing of Tāraka by him) वाम ३१.१-३२.१२०

देवी-भा. ७.३१.६-४०.४० शिव. २.[-4].१.६-५.६७
पद्म. १ ४५.५-४६-२१६ स्कन्द. १.[-1].२७.३०-३०.५१,
ब्रह्माण्ड. २.१०.६ ५२ २.[-7].९.५३-६६ ,
मत्स्य. १४५ १-१५९.३३ ३.[3].१३.६.५१ ,
लिङ्ग. १०१.२६-३० ६.७०.१.७१-२० ;
वराह. २५.१-५२ ६.२४५.१-२४६ २२ ;
विष्णु-ध. १.२२३.१-२० ; ६.२६४.१-४११
१.२२८.१-१२ ७.[-1].२०८-३-२६ ;
७.[-2].९.१६६-१७३
महाभा. ३.२२४.१-२० ; ९.४४.१-४६.११५;
१३.८४.५६-८६.३५
रामा १.३५.२३-३७.३३

क्रौञ्च-महिषवध (Destruction of mount Krauñca and Mahiṣa by Skanda)—वाम. ३२.८६-१२१

महाभा. ३.२२५.२१-२३१.११२

गालव-वृत्तान्त (story of sage Gālava)-वाम. ३३.१-१४
स्कन्द. ३. [-1].३.११-११७

सनकादि की उत्पत्ति (Birth of Sanaka etc.)-
वाम. ३४.६८-७९

लिङ्ग. ७०.१७०.१७७

हरि-हर का अभेदवर्णन (Oneness of Hari & Hara)-
वाम. ३६.२०-३२

कूर्म. २.४.१-३४ स्कन्द. ६.२४७.८-१६ ;
७.[-2].९.१४३-१४८

शुक्रवृत्तान्त (Legend of Śukra)—
वाम. ३६.४०-४४ ; ४३.१-४५

देवी-भा. ४.१०.४२-१४.४७ मत्स्य. ४७.७१-१६७
पद्म. १.१३.२०७-२६८ शिव. २[-5].४७.१-५०.५३
ब्रह्म. ६५.१-२६ स्कन्द. ६.१५०.१-१३
ब्रह्माण्ड. २.७२.६२-७३.५६
महाभा. १२.२८९ १-३८

दण्ड का आख्यान (Story of Daṇḍa)-
वाम. ३७.१६-४०.१८

पद्म. १.३९.१-६० ब्रह्म. ८८.१८-८६
रामा. ७.७६.१-८१.२२

भैरवों की उत्पत्ति (Birth of Bhairavas)-वाम. ४४.२८-४५
शिव. ३ ८.४४-९.७२ स्कन्द. ४.३१.१-१५७

मरुतों की उत्पत्ति (*Origin of Maruts*)-
वाम.४५.१८-४६.७९

देवी.भा. ४.३.२१-५५ मत्स्य. ७.१-६५
पद्म.१.७.१-६४ ; वायु. २.६.८६-१३५
२.२६.१-३२ विष्णु. १.२१.३०-४१
ब्रह्म. ३.११०-१२२ ; विष्णु-ध. १.१२७.१-३२
१२४.१-१४० शिव. ५.३३.१-१५
ब्रह्माण्ड. २.३.४५-१०६ स्कन्द. १.[-2]. १४.३०-४५ ;
भाग. ६.१८.१६-७८ ६.२२.१-३७

बलिशक्रयुद्ध, शक्रपराजय (War between Bali and Indra, Indra's defeat)-वाम. ४७.१-४८.२३

भाग. ८.१५.१-३६ स्कन्द. १[1].१७. २७८-२६२
हरिवं. ३.४८.१-६४.३२

विष्णुद्वारा कालनेमिवध (Killing of Kālanemi by Viṣṇu)-वाम. ४७. ३५-५०

मत्स्य. १७०. ४७-१७७. ५० स्कन्द. १.[-1].१३.६०-१४.१८;
विष्णु-ध. १.१२४.१-१२५.२५ १ [-2]. १९. १-८२
हरिवं. १.४६. ४८-४८.५०

धुन्धु-वध (Slaying of Dhundhu)—
वाम. ५२. १०-६०

ब्रह्माण्ड. २. ६३. ३१-६१ शिव. ५. ३७. ६-३८
वायु २. २६. २६-५८ स्कन्द. ६. ३८. ६-१५
महाभा. ३. २०१ १-२०४. १५

श्रवणद्वादशीव्रतकथा (Śravana-dvādaśī-vrata-kathā)
वाम. ५३. ११-८३

अग्नि. १८६. १-१५ वराह. १७४. ५३-८४
गरुड. १ ८४. ३२-३६ वायु. २. ५०. २०-२५
पद्म. ६. ६६. १-७५ विष्णुध. १. १६२. १-७०
भविष्य. ४. ७५. १-६७

गयामाहात्म्य (Glorification of Gayā Tīrtha)
वाम. ५३. ६२-७२

अग्नि. ११४. १-४१ स्कन्द ६. २०५. १-२०६. ६६
वायु. २. ४३. १-५०. ८०

नक्षत्रपुरुषव्रत (Naksatra-Puruṣa-Vrata)
वाम. ५४. १-३६

अग्नि १९६. १-२३ भविष्य. ४. १०८. १७-४२
महाभा. १३ ११०. १-१० (अत्र चन्द्रनक्षत्रव्रतम्)

उपमन्यु-चरित (Story of Upamanyu)
वाम. ५६. १-४८

लिङ्ग. १०७. १-६४ शिव ३. ३२. १-७८ ;
५. १. १-७१ ;
७. [-1]. ३४. १-३५. ६५
महाभा. १३. १४. १११-३६७

हर द्वारा हरि को चक्रदान (Presentation of Cakra to Hari by Hara)—वाम. ५६. १६-४५
ब्रह्म. १०९. १-१५७

चन्द्रमा को दक्ष का शाप तथा निवारण (Curse against the Moon afflicted with by Dakṣa and its removal) वाम. ५७. ५३
शिव. ३. [-2]. ६. ५६-६२ ; स्कन्द. ६. ६३. १-६३ ;
४. १४. १-६२ ७.[-1].२१.३५-२२.११५

गजेन्द्र मोक्ष (Liberation of Gajendra)
वाम. ५८. १-८४

भाग. ८. २. १-४. २६ विष्णुध. १. १९४. १-७५
वराह. १४४. ११६-१३४ स्कन्द, २. [-4]. २८. १-३२

विष्णु-पूजा के योग्य पुष्प (Name of the flowers prescribed for the worship of Viṣṇu)
वाम. ६८. १०-२०

नार. १. ६७. ६०-७०

परिशिष्ट २

APPENDIX 2

(वामनपुराण में वर्णित आख्यान, स्तोत्र, व्रत एव उपवास की सूची)

(Lists of the Episodes Stotras and Vrata Upavāsas mentioned in the Vamana Purana)

(1)

वामनपुराण की आख्यानसूची (List of the Episodes of the Vamana Purana)

क्र.	आख्यान	स्थल
1	दक्षयज्ञविध्वस	**2** 7 **5** 61
2	शिवस्य कपालित्वम्	**2** 18–**4** 1
3	उर्वशीजन्म	**6** 1–**7** 20
4	कामस्य अनङ्गत्वप्राप्ति	**6** 23–107
5	शिवलिङ्गपातनम्	**6** 60–93
		स मा **22** 41–**24** 31
6	नरनारायणाभ्यां प्रह्लादस्य युद्धम्	**7** 2? **8** 72
7	अन्धकविजय	**9** 1–**10** 57
8	सुकेशिचरितम्	**11** 1–**16** 53
9	कात्यायनीचरिते महिषादिवधोपाख्यानम्	**18** 39–**21** 52
10	अगस्त्येन विन्ध्यस्य निम्नीकरणम्	**19** 21–35
11	सवरणतपत्युपाख्यानम्	**22** 23–61
12	कुरुक्षेत्रनिर्माणवृत्तान्तम्	**23** 1–45
13	बलिवामनचरितम्	स मा **2** 1–स मा **10** 91
		म **48** **51** **62** **66**
14	मङ्कणकोपाख्यानम्	स मा **17** 1–23 **36** 45 59
15	रहोदरोपाख्यानम्	स मा **18** 5–13
16	जातिस्मर रुपङ्गूपाख्यानम्	स मा **18** 16–26
17	वसिष्ठापवाह	स मा **19** 1–43
18	वेनोपाख्यानम्	स मा **26** 1–स मा **27** 35
19	पार्वतीजन्मादिवृत्तान्त	**24** 1 **29** 77
20	स्कन्दोत्पत्तिवृत्तान्त	**28** 30–**29** 77 **31** 1–52
21	नमुचि चण्ड मुण्डादिवधोपाख्यानम्	**29** 1–**30**.32
22	शुम्भनिशुम्भवध	**30** 33–73
23	स्कन्दकृतमहिषादिवधोपाख्यानम्	**32** 45–120
24	कुवलयाश्वकृत-पातालकेतुवधोपाख्यानम्	**33** 1–15
25	गौरीं प्रति कामार्तस्यान्धकस्य तद्धरणोद्योगोपाख्यानम्	**33** 16–47
26	मुरवधोपाख्यानम्	**34** 26–**35** 77
27	शुक्रस्य सजीवनीप्राप्त्युपाख्यानम्	**36** 40–45
28	अन्धकपराजयोपाख्यानम्	**37** 1–**44** 96
29	अन्धकोपाख्याने अरजा-दण्डोपाख्यानम्	**37** 19–**40** 18
30	अरजोपाख्याने चित्राङ्गदाद्युपाख्यानम्	**37** 64–**39** 169
31	अन्धकपराजयोपाख्यानम्	**40** 42–**44** 96
32	मातलिवृत्तान्त	**43** 122–147
33	मरुद्गणोत्पत्तिवृत्तान्त	**45** 18–**46** 76
34	कालनेमिवधोपाख्यानम्	**47** 1–51
35	धुन्धुवधोपाख्यानम्	**52** 13–90
36	प्रेतवणिजोरुपाख्यानम्	**53** 11–73
37	जलोद्भववधोपाख्यानम्	**55** 18–29
38	श्रीदामवधोपाख्यानम्	**56** 15–46
39	उपमन्यूपाख्यानम्	**56** 5–46
40	गजग्राहयोरुपाख्यानम्	**58** 1–84
41	कोशकारसुतोपाख्यानम्	**64** 19–115

(2)

(वामनपुराणान्तर्गत स्तोत्रों की सूची—List of the Stotras of the Vamana Purana)

विष्णुस्तोत्राणि

	स्तोत्रम् (स्तुति)	स्तुत्यन्विता	स्तुतिकर्ता	स्थलनिर्देश
1	विष्णुस्तोत्रम्	विष्णु	शिव	**3** 14–73
2	विष्णुपञ्जरस्तोत्रम्			**18** 26–36
3	नारायणस्तव	नारायण	ब्रह्मा	स मा **5** (गद्यम्)

4. विष्णुस्तव:	विष्णु:	अदिति:	स.मा. 6.17–36
5. अदितिगर्भस्थ-विष्णुस्तव.	,,	प्रह्लाद.	स.मा. 8.17–28
6. गजेन्द्रमोक्षणस्तोत्रम्	,,	गजेन्द्र:	58.31–59
7. सारस्वतस्तोत्रम्	,,	ब्राह्मण:	59.66–110
8. पापप्रशमनस्तव. (प्रथम:)	,,	महेश्वर:	60.1–51
9. पापप्रशमनस्तव: (द्वितीय)	,,	अगस्त्य:	61.2–29

वामनस्तोत्राणि

1. वामनस्तुति.	वामन:	ब्रह्मा	स.मा. 9.18–31
2. ,,	,,	,,	62.36–41
3. ,,	,,		प्र० 66 (गद्यम्)

शिवस्तोत्राणि

1. शिवस्तुति:	शिव:	ब्रह्मा	स.मा. 23.5–8
2. ,,	,,	ऋषय.	स.मा. 23. (गद्यम्)
3. ,,	,,	वेन:	स.मा. 26.63–163
4. ,,	,,	ब्रह्मा	स.मा. 28.11–18
5. ,,	(हाटकेश्वर ,,)	कन्यका.	प्र० 39. (गद्यम्)
6. ,,	,,	शुक	43.29–31
7. ,,	,,	,,	43.40–42
8. ,,	,,	मङ्कणक:	44.52–66

देवी (दुर्गा) स्तोत्राणि

1. कात्यायनीस्तुति:	कात्यायनी	देवा:	19.19–20
2. देवीस्तुति	देवी	,,	30.56–63
3. पार्वतीस्तुति:	पार्वती	मङ्कणक:	प्र० 44. (गद्यम्)

अन्यस्तोत्राणि

1. सरस्वतीस्तोत्रम्	सरस्वती	मार्कण्डेय:	स.मा. 11.6–22
2. सुदर्शनस्तुति:	सुदर्शनचक्र	बलि:	67.11–17

(3)

वामनपुराणे समागतानां व्रतोपवासानां सूची

(वामनपुराण में वर्णित व्रत एवं उपवास, The Vratas and Fasts mentioned in the Vāmana Purāṇa) ,

1. अशून्यशयनद्वितीयाव्रतम्	16.21–23 , 17.19–29	4. [illegible]	36.9–19
2. कालाष्टमीव्रतम् (कालाष्टमी)	16.24–25 , 17.30–54	5. श्रवणद्वादशीव्रतम्	53.60–75
3. अखण्डद्वादशीव्रतम्	16.26 ; 18.11–25	6. [illegible]	53.61–54.39

परिशिष्ट ३

APPENDIX 3

(वामनपुराण में आये हुए व्यक्तियों—मनुष्य तथा ऋषियों, देवों, देवयोनि—गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गण, नागादि तथा असुरों के नाम की सूची)

(List of proper names of Persons—Men and Sages, Gods, Demigods—Gandharvas, Yakṣas, Rākṣasas Ganas, Nāgas and Asuras mentioned in the Vāmana Purāna)

(1)

मनुष्यनामानि

(मनुष्य तथा ऋषिओं के नाम—Names of Men and Sages)

(2)

सुर-नामानि

(देवों के नाम, Names of Gods)

(वामनस्वरूप-महालय-सहित)

(Forms of Vāmana with the Places or His Sacred Abodes)

(3)

देवयोनि-नामानि

(गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गण, नागादि के नाम—Names of Demigods)

(4)
असुरनामानि
(असुरों के नाम, Names of Asuras)

A 5

परिशिष्ट ४

APPENDIX 4

(वामनपुराणान्तर्गत भौगोलिक-नामसूची—Lists of Geographical Names of the Vamana Purāna)

(1)

द्वीप-उपद्वीप-वर्ष-समुद्र-पुष्करद्वीपस्थनरक-नामानि

(द्वीप समुद्र-वर्ष-उपद्वीपादि के नाम—Names of Dvipas or Continents, Oceans, Varṣas etc)

अन्धतामिस्र-क (पुष्करद्वीपस्थ-नरक) **11** 53 , **12** 41
अप्रतिष्ठ (नरक) **11** 54
असिपत्रवन (नरक) **11**.55 , **12** 41
इक्षुरसोद **11** 36
इन्द्रद्वीप (उपद्वीप भा.) **13** 9
इलावृत (वर्ष ज. द्वी.) **13** 3,6
वराह (उपद्वीप भा.) **13**.9 , **63** 34
करपत्र (नरक) **11** 56
करम्भसिकता (नरक) **11**.57 ; **12** 7
कसेरुमान् (उपद्वीप भा.) **13** 9
कालचक्र (नरक) **11**.54
किंनर (वर्ष) **13** 4
कुमार (= भारतद्वीप) **13** 10,58
कुरुवर्ष (ज द्वी. वर्ष) **13** 5
कुश (द्वीप) **11** 37 , **63** 42
कूटशाल्मलि (नरक) **11** 56
कृमिभोजन (नरक) **11** 57
केतुमाल (ज द्वी. वर्ष) **13** 5
क्रौञ्च (द्वीप) **11**.38 , **63** 43
क्षारनदी (नरक) **11** 57
क्षीराब्धि **11** 40
—क्षीरोद **6** 69 , स.मा **26**.113 , **34** 59
—दुग्धाब्धि **11** 39 **34** 62
गभस्तिमान् (उपद्वीप भा.) **13** 9
घटीयन्त्र (नरक) **11** 54 , **12** 42
घृतोद **11**.37,38
चक्रक (नरक) **11**.58
जम्बू (द्वीप) **11** 34 40 , **13** 1,2, **63** 42
तप्तकुम्भ (नरक) **11**.56 , **12** 16,42
तामिस्र-क (नरक) **11** 53 , **12** 41
ताम्रवर्ण (उपद्वीप भा.) **13** 9
दधिसमुद्र **11** 38
दुग्धाब्धि see क्षीराब्धि
नागद्वीप (उपद्वीप भा) **13** 9
पुन्नाम (नरक) **34** 77,78 , **35** 19
पुष्कर (द्वीप) **11** 41,42,46–48 ; **13** 1 , **63** 43
प्लक्ष (द्वीप) **11** 35,44 , **63** 42
भद्राश्व (ज द्वी वर्ष) **13** 3
भारत (ज द्वी. वर्ष उपद्वीप) **13** 4,6,8
महारौरव (नरक) **11** 52 , **12** 40
रम्यक (ज द्वी वर्ष) **13** 5
रौद्र (जलनिधि) **11** 35
रौरव (नरक) **11**.48,50,51 , **12** 19,43 ; **40** 35, 38 , **64** 66
लोहपिण्ड (नरक) **11** 57
वारुण (उपद्वीप भा) **13** 9
विड्भोजन (नरक) **12** 14
वृकभक्ष (नरक) **12** 37
वृश्चिकाशन (नरक) **12** 29
वैतरणी (नरक) **11**.57 , **12**.55
शाक (द्वीप) **11** 39,44 ; **63** 43
शाल्मलि (द्वीप = शाल्मल) **11** 36
शाल्मली (नरक) **12**.30
शोणितपूयभोजन (नरक) **11**.58
श्लेष्मभोजन (नरक) **12**.15
श्वभोज्य (नरक) **12**.26
—श्वानभोजन (नरक) **11** 56
श्वेत (द्वीप) **22**.12 , स.मा **4**.16 , **34**.57
संदंश (नरक) **11**.57
सशोषण (नरक) **11** 58
सिंहल (उप द्वीप भा) **13**.9 , **63** 34

(2)

जनपदनामानि

(जनपदों तथा जातियों के नाम, Names of Janapadas and Tribes)

(3)

पर्वतनामानि

(पर्वतों के नाम, Names of Mountains)

(4)

नदीनामानि

(नदियों के नाम, Names of Rivers)

(5)

स्थाननामानि

(स्थान—नगर, ग्राम, वन, आश्रम इत्यादि के नाम, Names of Places-Cities, Villages, Forests, Aśramas etc)

(6)

तीर्थनामानि

(तीर्थों के नाम—Names of Tirthas)

परिशिष्ट ५

APPENDIX 5

वनस्पतिनामानि जन्तुनामानि च (Flora and Fauna of the Vāmana Purāṇa)

A

वनस्पतियों के नाम, Floral names

[The following is the list of plants and herbs mentioned in the Vāmana Purāṇa This list also includes the various parts of the plants—such as flowers, fruits, seeds, exudus etc —if mentioned in the text The reference of the Adhyaya and Śloka is given within brackets Hindi names and also the scientific botanical names are also given Synonyms have cross references]

अगुरु (17 60, 36.13,26, 58.8, 68.20), हि० अगर.
Aquilaria agallocha Roxb. (Fam Thymelaeaceae)

अकोल (6 19) हि० अकोट, ढेरा
Alangium salviifolium (Linn f) Wang (Fam Alangiaceae)

अतसी (44 34), हि० अलसी, तीसी.
Linum usitatissimum Linn. (Fam Linaceae)

अतिमुक्त (36 13), हि० माधवी; see माधवी.

अब्जिनी (38 57) see पद्मिनी

अम्बुज (36 25) see कमल

अरविन्द (58 42) see कमल

अर्क (17 55, 44 86), हि० मदार.
Calotropis gigantea (Linn) R Br ex Ait. (Fam Asclepiadaceae)

अर्जुन (1 18, 58 9) हि० अर्जुन, कोहा
Terminalia arjuna (Roxb ex Dc) Wight & Arn (Fam Combretaceae)

अशोक (12 51, 62 18, 68 12), हि० अशोक
Saraca indica Linn (Fam Caesalpiniaceae)

अश्वत्थ (14 37, 18 8, स० मा 15 32,38, 58 69), हि० पीपल
Ficus religiosa Linn (Fam Moraceae)

आमलक (17 55, 58 8, 68 28), हि० आमला.
Emblica officinalis Gaertn (Fam Euphorbiaceae)

आमलकी (64 49, 68 15), see आमलक.

इक्षु (62 17, 64 43), हि० ईख, गन्ना

इन्दीवर (22 32, 68 17), हि० नीलोफर.
Nymphaea stellata Willd (Fam. Nymphaeaceae)

उत्पल (3 47, 58 17), हि० कमल का एक भेद.
Nymphaea species (Fam Nymphaeaceae)

उदुम्बर (15 13, 17.49), हि० गूलर.
Ficus glomerata Roxb (Fam Moraceae)

उशीर (12 7, 68 19), हि० खस.
Vetiveria zizanioides (Linn) Nash (Fam Gramineae)

कदम्ब (1 18 17 9,42; 18 2, 26 71, 58 8), हि० कदम्ब.
Anthocephalus indicus A Rich (Fam Rubiaceae)

कदली (7 11) हि० केला
Musa paradisiaca Linn (Fam Musaceae)

कमल (6 17 22 37 31 20, 36 12, 58 17, 62 14 68 17), हि० कमल.
Nelumbo nucifera Gaertn (Fam. Nymphaeaceae)

करवीर (17.36, 50 36, 68 12), हि० कनेर.
Nerium indicum Mill (Fam Apocynaceae)

कर्णिकार (6 12, स. मा 26 135, 58.8), हि० मुचकुन्द, कनकचम्पा, अमलतास, फरहद
1 *Pterospermum acerifolium* Willd (Fam. Sterculiaceae) 2. *Abroma augusta* Linn. f. (Fam Sterculiaceae) 3 *Cassia fistula* Linn (Fam. Leguminosae) 4 *Erythrina variegata* Linn var orientalis (Linn.) Merrill (Fam. Leguminosae)

कलम (**27** 46, **58** 17) A type of शालि, cf शालि.

कल्हार (**18** 17, **22** 32, **58** 17), कमल का एक भेद.
Nymphaea rubra Roxb (Fam Nymphaeaceae) cf कमल.

काकमाची (**12** 53), हि० छोटी मकोय.
Solanum nigrum Linn (Fam Solanaceae)

काञ्चन (**58** 17), हि० चम्पा, नागकेसर इत्यादि.

कार्पास (**12** 52, **15** 6), हि० कपास.
Gossypium arboreum Linn (Fam Malvaceae)

कालीयक (**68** 19), हि० झाड की हल्दी.
1 *Coscinium fenestratum* (Gaertn) Colebr (Fam Menispermaceae)
2. *Jateorhiza palmata* Miers (Fam Menispermaceae)

कालेय (**36** 13) see कालीयक.

किंशुक (**4** 29, **6**.9,17, **16** 46), हि० पलाश.
Butea monosperma (Lam) Kuntze (Fam Leguminosae)

कीचक (**58** 18,68), हि० नरकट, बाँस
1 *Phragmites Karka* (Retz) Trin ex Steud (Fam Gramineae)
2 *Bambusa bambos* Druce Syn B. arundinacea Willd. (Fam. Gramineae)

कुङ्कुम (**68** 19), हि० केसर.
Crocus sativus Linn (Fam Iridaceae)

कुन्द (**6**.11,18, **17** 47 **18** 6, **27** 12, **68** 12,19), हि० कुन्द.
Jasminum pubescens Willd (Fam. Oleaceae)

कुमुद (**22** 32, **58** 17), हि० कुंई.
Nymphaea sp (Fam Nymphaeaceae) cf कमल

कुश (**17** 42, स. मा. **17**.7, स. मा. **26** 17, **25** 42, **46** 45, **64** 38), हि० कुश, दाभ.
Desmostachya bipinnata Stapf (Fam Gramineae)

कृष्णोदुम्बरक (**18**.7), हि० कठूमर.
Ficus hispida Linn f (Fam Moraceae)

केतकी (**1** 18, **68**.14) हि० केवडा
Pandanus odoratissimus Roxb (Fam Pandanaceae)

केसर (**6** 99), हि० केसर, see बकुल.

कोकनद (**22** 32, **62** 14), कमल का एक भेद.
Nelumbium speciosum Willd (Fam Nymphaeaceae)

खदिर (**18** 5), हि० खैर
Acacia catechu Willd (Fam Leguminosea)

गिरिशालिनी (**68** 13), हि० कोयल, अपराजिता.
Clitoria ternatea Linn. (Fam Leguminosea)

गुग्गुलु (**17** 49), हि० गूगल.
Commiphora mukul (Hook ex Stocks) Engl (Fam Burseraceae)

गोधूम (**68** 21), हि० गेहूँ
Triticum aestivum Linn (Fam Gramineae)

चन्दन (**12** 7, **17** 47, **25** 6, **36** 12,13, **41**.37 **42** 8, **45** 5, **58** 8, **68**.19); हि० सफेद चन्दन.
Santalum album Linn (Fam Santalaceae)

चम्पक (**6** 98, **58** 8, **68** 12), हि० पीला चम्पा.
Michelia champaca Linn (Fam Magnoliaceae)

चूत (**6** 103, **12** 51, **17**.52, **58** 8), हि० आम
Mangifera indica Linn (Fam Anacardiaceae)

जपाकुसुम (**68** 13), अडौल.
Hibiscus rosa sinensis Linn (Fam Malvaceae)

जाती (**6** 101, **12** 50, **68** 12,20), हि० चमेली, मालती.
Jasminum officinale Linn var. grandiflorum Bailey (Fam Oleaceae)

जातीफल (**68** 20), हि० जायफल.
Myristica fragrans Houtt (Fam Myristicaceae)

तगर (**17** 40), हि० सुगन्धबाला.
Valeriana wallichii DC (Fam Valerianaceae)

तमाल (**58** 9), हि० तमाल.
Garcinia morella Desr (Fam Guttiferae)

ताल (**2** 49, **12**.54, **16** 47, **42** 48; **47** 48, (**47** 49 मुण्डताल); **58** 9, **68**.27), हि० ताड.
Borassus flabellifer Linn (Fam Palmae)

तिन्दुक (स मा **26** 122), हि. तेंद, तिंदुआ.
Diospyros peregrina Gurke (Fam. Ebenaceae)

तिल (**15** 6, **17** 35,42, **18** 13,17, स मा. **15** 5,60, स मा **24** 27, **24** 9, **50** 38, **53** 49, **54** 20,22, **59** 18, **68** 21, **23** 31), हि० तिल्ली.
Sesamum indicum Linn (Fam Pedaliaceae)

तिलक (68 13), हि० तिलवा.
Wendlandia exerta DC (Fam Rubiaceae)

दर्भ (सभा. 10 80), see कुश

दाडिम (64 97), हि० अनार.
Punica granatum Linn (Fam Punicaceae)

दारु (68 20) see देवदारु

दूर्वा (14 36 18 9 68 18) हि० दूब
Cynodon dactylon (Linn) Pers (Fam Gramineae)

देवदारु (68 48), हि० देवदार
Cedrus deodara (Roxb) Loud (Fam Pinaceae)

धत्तूर (16 32 17 32 58 18 4 36 12) हि० धतूरा
Datura metel Linn (Fam Solanaceae)

नलिनी (12 54) हि० कमलिनी Water lilies in general

नागर (68 13) हि० अदरख
Zingiber officinale Rosc (Fam Zingiberaceae)

नीप (1 22 6 13 58 8) हि० कदम, हलदू
This is Kadamba or one of the allied trees of the same family which are *Mytragyna parvifolia* Korth and *Adina cordifolia* (Roxb) Benth & Hook f

नीलाशोक (6 17) sa अशोक
Amherstia nobilis Wall

नीलेन्दीवर (6 18 25 4) हि० नीलोफर
Nymphaea stellata Willd (Fam Nymphaeaceae)

नीलोत्पल (17 15) हि० नीलकमल see नीलेन्दीवर

न्यग्रोध (38 68 60 24) हि० बड़
Ficus benghalensis Linn (Fam Moraceae)

पङ्कज (2 3 17 34 18 31 51 7 58 2) हि० कमल
Nelumbo nucifera Gaertn (Fam Nymphaeaceae)

पटोल (54 19), हि० परवल
Trichosanthes dioica Roxb (Fam Cucurbitaceae)

पथ्या (12 51) हि० हर्रा
Terminalia chebula Retz (Fam Combretaceae)

पद्म (1 4,22,25, 2 2,4, 3 47, 12 45, 18 1; 22 32,50, सभा 26 3, 25 3, 28 23; 44 32); हि० कमल का एक भेद.
Nelumbo nucifera Gaertn. (Fam Nymphaeaceae)

पद्मक (68 19), हि० पद्माख, पदुमकाठ
Prunus cerasoides D Don (Fam Rosaceae)

पद्मिनी (37 39), हि० नलिनी.
This word denotes the whole plant of Kamala including root, stem flower and fruit

पर्पट (58 9), हि० पापरी, पापड़ा, पाफर
Gardenia latifolia Ait (Fam Rubiaceae)

पलाश (= पालाश) (6 10 100 18 7 62 17) see किंशुक

पाटल (पाटला) (6 100 58 3 68 13), हि० पाडर
Stereospermum suaveolens DC (Fam Bignoniaceae)

पारिजात (36 13); हि० पारिजाता
Nyctanthes arbortristis Linn (Fam Oleaceae)

पारिभद्र (68 15) हि० फरहद
Erythrina variegata Linn Var orientalis (Linn) Merrill Fam Leguminosae)

पीतक (68 13)

पुण्डरीक (58 17 62 14) हि० कमल (सफेद)

पुत्रजीव (6 21), हि० जियापोता
Putranjiva roxburghii Wall (Fam Euphorbiaceae)

पुन्नाग (58 8); हि० सुलतानचम्पा
Calophyllum inophyllum Linn

पुष्कर (41 40 58 53) see कमल

प्रियङ्गु (54 23) हि० कंगुनी, कागुन
Setaria italica Beauv (Fam Gramineae)

प्लक्ष (सभा 11 35), हि० पाखर.
Ficus infectoria Roxb (Fam Moraceae)

बकुल (6 99 68 13), हि० मौलसिरी
Mimusops elengi Linn (Fam Sapotaceae)

बन्धुजीव (6 19 18 8 39 44); हि० दुपहरी
Pentapetes phoenicea Linn (Fam Sterculiaceae)

बर्हिस् (68 17) see कुश

बाण (68 1.) ; हि० नीली सैरेयक.
Barleria strigosa Willd. (Fam. Acanthaceae)

बिल्व (1 22, 6 18, 18 8, 36 12,25, 58 8, 68 15); हि० बेल.
Aegle marmelos Corr (Fam. Rutaceae)

भद्रा (17 38) ; हि० दूब ; see दूर्वा.

भृङ्ग (6 21, 68 15) ; हि० भगरैया, पीली भंगरैया.
(i) *Eclipta alba* Hassk. (Fam. Compositae)
(ii) *Wedelia calendulacea* Less (Fam Compositae)

मधुक (17.40) ; हि० महुआ.
Madhuca indica J. F. Gmel. (Fam. Sapotaceae)

मन्दारक (17.49, 36 13) see अर्क.

मल्ली (6 102), हि० मोगरा, मोतिया.
Jasminum sambac Ait (Fam. Oleaceae)

माधवी (45 5) ; हि० माधवी.
Hiptage benghalensis Kurz (Fam. Malpighiaceae)

माष (17.61, 68 21) ; हि० उरद.
Phaseolus mungo var. *radiatus* (Fam. Leguminosae)

मुद्ग (16 41, स.मा. 26 122, 54 17, 68 21,24) ; हि० मूंग.
Phaseolus aureus Roxb. (Fam Leguminosae)

यव (17.59, 18.13, 68 21,58) ; हि० जव.
Hordeum vulgare Linn. (Fam Gramineae)

यूथिका (68.12) ; हि० जूही.
Jasminum auriculatum Vahl (Fam. Oleaceae)

रक्तचन्दन (50 36) ; हि० लालचन्दन.
Pterocarpus santalinus, Linn f (Fam Leguminosae)

रक्तशालि (17 39, 54 23) see शालि, A type of rice

रक्ताशोक (6 17) see अशोक.

रम्भा (39 26, 62 18, 64 5) see कदली.

वंश (64 93), हि० बास.
Bambusa bambos Druce (Fam Gramineae) and other species of different genera.

वट (12 54; 18.3, स. मा. 22 4, 8, 38, स.मा. 24 25,31, स. मा. 25.1,2,8,9,11,12,25, 38 20,22,26,36,69,72,75; 39.95) see न्यग्रोध.

वेतस (6 16) ; हि० बेंत, बलमाला.
1. *Calamus tenuis* Roxb. (Fam. Palmae)
2. *Salix tetrasperma* Roxb (Fam Salicaceae)

व्रीहि (15 2, 18 13; 68.21,24) see शालि.

शतपत्र (58 17) see कमल.

शताह्व (68 12) ; हि० सोवा.
Anethum sowa Kurz (Fam Umbelliferae)

शमी (18 8, 53 17, 18, 21, 41, 59 ; 68.15, 31) ; हि० शमी. *Prosopis spicigera* Linn. (Fam. Leguminosae)

शर (18 9), हि० सरकण्डा.
Saccharum munja Roxb. (Fam. Gramineae)

शाल (7 43, 58 9) ; हि० सखुआ, साल.
Shorea robusta Gaertn. f. (Fam Dipterocarpaceae)

शालि (12 50; 54 18; 56 6,7, 68.21) ; हि० धान, चावल.
Oryza sativa Linn. (Fam Gramineae)

शाल्मली (12.30), हि० सेमर.
Salmalia malabarica Schott & Endl. (Fam. Bombacaceae)

शैवाल (9.37) ; हि० सेवार.
1. *Ceratophyllum demersum* Linn. (Ceratophyllaceae)
2. *Vallisneria spiralis* Linn. (Fam. Hydrocharitaceae)

श्रीफल (17.58) ; हि० बिल्व.

श्रीवास (17.36) ; सरल, गन्धो, बिरोजा.
The oleoresin of Pinus roxburghii Sargent (Fam. Pinaceae)

श्रीवृक्ष (17.39,60) see बिल्व.

श्वेतार्क (43 95, 44.85) see अर्क.

षष्टिक (54 17) see शालि.
A kind of rice ripening in about 60 days.

सरल (58 9) ; हि० धूपसरल, चीड.
Pinus roxburghii Sargent (Fam. Pinaceae)

सर्ज (1,18,22, 17.34,53, 26 71) ; हि० बड़ा साल.
Vateria indica Linn (Fam Dipterocarpaceae)

सिद्धार्थक (18 17) ; हि० सफेद सरसों.
Brassica pirta Moench (Syn. B alba (L.) Boiss.)

सिन्दुवार (सिन्धुवारक) (6 19 18 6) हि० निर्गुण्डी म्योडी *Vitex negundo* Linn (Fam Verbenaceae)

सिह्लक (68 20) हि० शिलारस, लोबान
1 *Altingia excelsa* Noronha (Fam Hamamelidaceae)
2 *Liquidambar orientalis* Miller (Fam Hamamelidaceae)

सुचन्दन (68 27) see चन्दन

सुमना (68 12) हि० मालती जाती का एक भेद, हि० गुलाब
1 *Aganosma dichotoma* (Roth) K Schum (Fam Apocynaceae)
2 *Rosa centifolia* Linn (Fam Rosaceae)

B

जन्तुओं के नाम, Faunal names

अजा (5 46 18 54 21 20 68 33) हि० बकरी
Genus-*Capra* Class Mammalia Fam *Bovida*

अलि see भृग

अवि (-अविक) (4 46 21 20 68 33), हि० भेड
Mammalia Order-Artiodactyla
Genus-*Ovis*

अश्व (18 54 21 4 स मा 10 41 स मा 26 158 29 50 58 32 52 33 8 13 39 112 42 32 43 129 145 154 49 32, 62 32 33 68 33 69 5 32 65 16) हि० घोडा
—तुरग (9 29 46 22.38 33 3 44 6 8 12 15
—तुरङ्ग (21 26 29 60 32 40 33 7 10 39 114 42.58 68 31)
—तुरङ्गम (9 28 22 35 29 60)
—वाजि -जी (9 11 26 45 10 37 32 57 33 7 9 39 11 43.146 47 11 16 49 23, 52.76 65 13)
—हय (9 21,27 28 21 19 40 59 47 19 52.41 43 127 154 46 74, 47 19,40)
—हरि (9 20 43 125)
Genus *Equnus caballus* Fam Equidae

अहि (1 25 7 34 स मा 9 44 27 33 29 82 36 29 40 8), हि० सर्प
—उरग (स मा 8 11 45 5)
—दन्दशूक (59 16)
—नाग (1 26 4 54 7 27 28,30 44 12.49 स मा 9 44 29 76 58 25 79 5)
Genus *Naja*
—नागराज (29 83) : king cobra
Najabungarus
—पन्नग (7 29 29 74 59 14 16)
—भुजग (-गेन्द्र) (1 25 9 21 29 72 45 26)
—भुजङ्ग (3 39 7 10 27 6 44 26 45 26 68 66)
—भोगिन् (स मा 26 112)
—महाहि (27 6,32 30 4 34 5)
—महोरग (9 29 10 54)
—सरीसृप (स मा 8 13)
Class Reptilia Order Squamata Suborder Ophidia

आखु (21 20); हि० चूहा
(1) *Rattus rattus*
(2) *Bandicota bengalensis* Gray and Hardw

इभ see करिन्

उरग see अहि

उरगाशन see खगपति

उष्ट्र (40 59 ; 49.33 ; 68 33) हि० ऊँट.
Camelus dromedarius

ऋक्ष (राज) (12 54) ; हि० भालू, जाम्बवत
Melursus ursinus shaw

एण (43.158) हि० कृष्णमृग
Indian Antelope *Antilope cervicapra* (Linnaeus)

कङ्क (2 2 ; 9 38 ; 17 18) ; हि० बगुला, बक
Ardaea cinerea Linn (Genus Ardea Fam Ardeidae, Sub-order Ardae)

कच्छप (15.3) हि० कछुआ
—कूर्म महा (9 36)
Genera *Trionynx* and *Testudo*

कपि 16 47 ; 27 11 38 7,10 13 14,26,35,37 39,45, 64,71,75 39 41 90,91 98 100 101,104,107,109, 128,131,135,136 41.6) ; हि० बन्दर.
—प्लवङ्गम (39 46 108)

—मर्कट (**64** 100)
—वानर (**38** 12 ; **39**.44,84,88,90,93,95,110, 133,134,144 , **47**.27)
—शाखामृग (**37**.75 , **38**.11 ; **58** 11)
(i) *Macaca mulatta* Zimmerman.
(ii) Macacus , *Semnopithecus entellus*

करिणी (**6**.54) हि० हथिनी.
—करेणु (**33**.35 , **58**.73)
Elephas maximus

करिन् (**3** 37 **6** 11 ; **22** 49) , हि० हाथी.
—इभ (**9**.45 , **10** 10)
—करीन्द्र (**21** 42)
—कुञ्जर (**6**.54 , **9**.21,29 , **10** 33,34 , **21** 13,16, **27**.20 ; **29**.59 , **30**.54 ; **32**.57,60 ; ***33*** *35* ; ***34***.*43* ; ***39***.*108* ; ***49***.*22*)
—गज (**9**.11,28,33,36 , **10**.27,31,33,47 ; **18**.54 ; **21**.4 ; **27** 10,12,14, स मा. **10** 41, **29**.13,50,58, **30** 52, **32**.52, **40**.59, **43**.120,154, **52** 76, **47**.10,14 ; **49** 32, **58** 30,65,73 75,78)
—गजेन्द्र (**9** 33 , **10** 11,12,31,32 , **21** 15 ; **40** 26)
—दन्तिन् (**10**.29)
—द्विप (**6** 29 , **16**.36 , **30**.51)
—द्विपेन्द्र (**43**.121)
—द्विरद (**29** 74,76,77 , **58** 82)
—नाग (**58**.25,60 ; **68**.33 , **69** 5)
—नागवर (**58** 27)
—नागेन्द्र (**32**.103 , **58**.53)
—मातङ्ग (**6**.10 , **58** 11)
—हस्तिन् (**21** 42 , स मा. **23**.23,29,33,36 , स.मा **26** 15 , **47** 27)
Elephas maximus , *Elephas indicus*

करीन्द्र see करिन्
करेणु see करिणी
कादम्ब (**9**.38) , हि० वत्तक
कारण्डव (**58**.16) , A sort of Duck.
कुक्कुट (**21**.20 ; **42**.50) , एक जङ्गली मुर्गा.
Gallus (Genus)
कुञ्जर see करिन्
कूर्म see कच्छप
कृष्णमृग see मृग

केसरी (**6**.10 ; **10**.40 ; **16** 36 , **21**.9)
—मृगाधिप (**9**.29 , **28** 16 , **64**.67)
—मृगारि (**1** 24 ; **25** 64 , **27**.32 , **44**.26)
—मृगेन्द्र (**4**.40 , **12**.50 , **19**.16,21 , **29**.79)
—सिंह (**5** 13 , **10**.47 , **21**.14,37,40,46 ; **22**.49 ; स मा. **15** 29 , **27**.5 , **29** 28 , **29** 52,53,88 , **37**.62 ; **40**.26 , **42** 50 , **43**.16,25,158 ; **58**.11 ; **59** 16)
Panthera leo persica (Meyer) ; Felis leo

कोकिल (**38** 54) , हि० कोयल.
Endynamys scolopacea Linn.
—कोकिला (**63** 73 ; **64** 73)

कौशिक (**3** 38 , **16** 11) , हि० उल्लू
(i) *Bubo bubo*
(ii) *Ketupa zeylonensis*

क्रोष्टुक (**21**.29 , **40** 26) , हि० सियार, शृगाल, गीदड़.
—गोमायु (**9** 38)
—शिवा (**9**.43,44)
Canis aureus Linn

खगपति (**30** 62) , हि० गरुड, श्रोकाब.
—उरगाशन (**66**.4)
—खगेन्द्र (**29**.76,80 , **40**.39)
—खगोत्तम (**47** 50)
—गरुड (**3** 42 , **29**.70,74,75 , **30**.5 , **58**.61 , **56**.14)
—तार्क्ष्य (स.मा. **26** 112 , **29**.78)
—पन्नगराट् (**32**.12)
—विनतातनूज (**12**.44 , **31**.102)
—वैनतेय (**18** 34 , **27**.9 , **47**.21,34,50)
(i) *Aquila rapax* (Jemminck).
(ii) *The Francoline patridge*

खर (**49**.33 , **68** 33) ; हि० गधा.
—गर्दभ (**15**.15)
—गर्दभ (श्वेत) (**64**.53,86)
—रासभ (**29**.70,73,87 , **30**.50)
(i) *Equus orager indicus* Blyth.
(ii) *Equus asinus*

गज (गजेन्द्र) see करिन्
खगेन्द्र (गरुड) see खगपति

गृध्र (9.38) ; हि० गिद्ध
Gps bengalensis Gmelin.
गो (12 25,38,39.50,56, 14.30,36; 15.20,34 ; 18.54 ; 21.20, स.मा. 10.41, 30.56; 32.92 ; 44.82 ; 49.33 ; 68.54 , 69.5,15) ; हि० गाय.
—धेनु (7.52 , 14.36 ; 17.52 ; 68.27,29)
Genus—Bos ; (Fam. Bovidae).
गोधा (15.3) ; हि० गोह.
Gavialis gangeticus.
गोमायु see कोष्टुक
ग्राह (9.37, 18.45, 46.33 ; 58.19,24,62-64,68, 75) ; हि० मगर.
—ग्राही (46.34)
Crocodilus palustris.
चकोर (58.11) ; हि० चकोर.
Genus-*Alectoris.*
चक्र (16.13) ; हि० चकवा.
—चक्राह्वन् (16. 14)
—चक्राह्व (9.33, 16.16)
Tedorna ferruginea (Pallas)
चातक (56.10) ; हि० चातक, पपीहा.
(i) *Cuculus varius* Vahl
(ii) *Clamtor jacobinus*
जलौका (स.मा. 26.125) ; हि० जोंक, जलूका.
Hirudinaria granulosa.
जीवञ्जीवक (58.11) ; हि० चकोर.
Polyplectron bicalcaratum
ताम्रचूड (31.107) ; हि० राजगिद्ध.
Gyps bengalensis Gmelin.
तार्क्ष्य see खगपति.
तित्तिर (54.70) ; हि० तीतिर.
(i) *Francolinus francolinus* Linn
(ii) *Francolinus pictus* Jardine & Selby
(iii) *Francolinus pondicerianus* Gmelin
तिमि see मत्स्य
तुरग see अश्व
तुरङ्ग "
तुरङ्गम "
दन्तिन् see करिन्
दन्दशूक see अहि
द्विप } see करिन्
द्विपेन्द्र }
द्विरद "

धेनु see गो
नाग see अहि
नाग } see करिन्
नागवर }
नागराज see अहि
नागेन्द्र see करिन्
पतङ्ग (10 38 ; स.मा. 10.60, 29.55, 40.26), हि० पतंग.
Phylum—Arthropoda ; order-Sepidoptera.
पन्नग see अहि
पन्नगशत्रु see खगपति
पिपीलक (43 36)
—पिपीलिका (12 35)
A member of the Phylum—Arthropoda Order-Hymenoptera.
पुंस्कोकिल (6.18) , हि० कोयल ; see कोकिल
प्लवङ्गम see कपि
बक (1.18) ; हि० बगुला ; see कंक
बर्हिण (10 2 ; 30 43 , 43 152) ; हि० मयूर.
—बर्हिन् (1.17 , 6.20 ; 30 5 , 62.29)
—मयूर (30 5 ; 31.102,104 ; 32 86,102)
—शिखण्डि (32.87)
—शिखिन् (30 62 , 41.7 ; 58.11)
Pavo cristatus Linn,
बलाका (1.18 , 17.18) हि० बगुला (करचिया).
Egretta gazetta Linn.
भुजग (-गेन्द्र) see अहि
भुजङ्ग "
भृङ्ग (3.34 ; 6.21,31,100, 7 9 ; 16.30) ; हि० भौंरा.
—अलि(38 28)
—षट्पद (स.मा 3 20)
Phylum-Arthropoda ; Order-Coleoptera.
भोगिन् see अहि
मकर (5 57 , 9.37) , हि० मगर.
मक्षिका (15.12) ; हि० मक्खी.
(i) *Musca domestica.*
(ii) *Apis mellifica.*
मत्स्य 15.31 , स.मा. 26 125 ; 39.20,25 , 46 35), हि० मछली.
—तिमि (मत्स्यभेद) (39.21,24)
Class mammalia ; Order-*catacea.*
—महामत्स्य (59.20)
—मीन (5.59 , 9 36)
class—*Pisces.*

मयूर see बर्हिण

मर्कट see कपि

मशक (40.26) , हि० मच्छर.
Phylum—Arthropoda , order-Diptera

महामत्स्य see मत्स्य

महाहंस see हंस

महिष 9.16,46 , 18.54,61,62,64,69 ; 21.19, 29 13, 71) ; हि० भैंसा.
—महिषी (18.55,59 , 49.33)
Bos bubalus ; Bubalus bubalis Linn

महोरग see अहि

मातङ्ग see करिन्

मीन see मत्स्य

मूषिक (14.32) ; हि० मूस, चूहा.
Mus musculus.

मृग 1.20 ; 5.13 ; 6.15 ; 15.15 ; 17.42 ; 21.29, 22.30, स मा. 14.52 ; 24.7, 31.19 ; 33.23; 37.85 ; 43.25 ; 53.18,24 ; 54.2 ; 58.11 , 62 29) ; हि० हरिण.
—एण see एण
—कृष्णमृग (स.मा. 14.51) see एण.
—रुरु (2.2)
= सारङ्ग (9.22) हि. मृग, चीतल ; cervus axis
Axis axis Exrl.

मृगाधिप see केसरी,

मृगारि "

मृगेन्द्र "

मेष (31.29), हि० भेंड़ा.
Genus-*ovis*

राजहंस see हंस.

रासभ see खर.

रुरु see मृग.

वराह (21.19); हि० सूअर.
Sus cristatus Wagn.

वाजि see अश्व.

वानर see कपि.

वायस (2 2, 12.10,25, 16.11, 17.18) ; हि० कौवा.
Corvus splendens Vieillot.
—वनवायस (9.38) ; हि० जङ्गली कौआ.
Corvus macrorhynchos Wagler.

विनतातनूज see खगपति.

वृक (12.37, 21.19; 58.7) ; हि० भेड़िया.
Canis lepus

वृश्चिक (5.55) ; हि० बिच्छू.
Terrestrial Scorpious.
Phylum Arthropoda ; *Palamneus, Scorpio, Buthus*
Class-Arachnoda ; Order-Scorpionidea.

वृषभ (वृष) (5.10 9.19, 12.55, 14.36, (17.62 श्वेत-); 27.7,29, 30.4, 41.48,59, 42.11,50, 44.24, 64.102, 68.31) ; हि० बैल.
Bos indicus,

वैनतेय see खगपति

व्याघ्र (21.19, स.मा. 26 112, 28.14,15,19,20,21; 37.62, 42.55, 64.69,74,76) ; हि० बाघ, शेर.
—शार्दूल (41.6).
Felis tigris

शलभ (स मा. 15.31) , टिड्डी, हाथी का बच्चा इत्यादि.
Locusta migratoria

शल्यक (15.3) A porcupine , हि० साही ; see श्वाविध.

शशक (15.3), हि० खरगोश, खरहा.
Lepus ruficandatus Geoff.

शाखामृग see कपि

शार्दूल see व्याघ्र

शिखण्डि, शिखिन् } see बर्हिण

शिवा see क्रोष्टुक

शिशुमार (9.17 , 10.25) , हि० सूँस
Platanista gangetica

शुक (9.22 , 64 94) हि० तोता ; हीरामन तोता.
(i) *Psittacula eupatria* Linn
(ii) *Psittacula krameri* Scopoli.
(iii) *Psittacula cyano cephala* Linn

श्येन (9.38), हि० बाज
(i) *Falco biarmicus* Gray
(ii) *Falco chicquera* Daudin
(iii) *Falco linnunculus* Linn

श्वा (15.15, स.मा. 26 55,59,61, स.मा. 27.18,25); हि० कुत्ता.
Canis demesticus.

श्वाविध (15.3) ; हि० साही.
Hystrix leucura Gray & Hardwicke.

षट्पद A hexapoda. see भृङ्ग.

सरीसृप see अहि.

सारङ्ग see मृग.

सारस (6.20); हि० सारस.
(i) *Grus antigone* Linn.
(ii) *Anthropoides Virgo* Linn

सिंह see केसरी.

सूकर (32 38), हि० सूअर.
(Fam *Suidae*)

हंस (1.19; 6.20; 9.20,38; 27.9,12; 28.40,41; 30.3; 62.15); हि० हंस.

महाहंस (9 38)
(*Cygnus olor*)

राजहंस (58.16; 67.71)
Phoenicopterus roseus Pallas

हय see अश्व

हरि "

हस्तिन् see करिन्

हारीत (= हारित) (42.15); हि० हारियल.
Treron phoenicoptera Latham.

परिशिष्टों में अतिरिक्त संनिवेश एवं संशोधन

ADDENDA AND CORRIGENDA IN THE APPENDICES

A. अतिरिक्त संनिवेश Addenda

1. अतिरिक्त नाम-सूची Additional List of Names

अश्वतर (नाग) 1.26
कम्बल (नाग) 1.25
कुज (=भौम, मंगल ग्रह) 44.48
चित्रगु (=अग्नि) 46.59
द्वीपिन् (=व्याघ्र) 59.7

धनंजय (नाग) 1.25
निषध (जनपद) 57.24
नील (नाग) 1.26
पद्म (नाग) 1.25
पिङ्गल (नाग) 1.25

2. परिशिष्ट ३ में 'सुरनाम-सूची' शीर्षक के नीचे यह टिप्पणी जोड़िये—

In Appendix 3 the following note is to be added below the heading 'Names of Gods'—

(यहाँ सुरनामों की इस सूची में भूल से राशि, नक्षत्र, ग्रह इत्यादि के नाम भी सन्निविष्ट हो गये हैं।

Here in this list of gods the names of Rāśis, Nakṣatras, Grahas etc have also been included due to oversight).

3. परिशिष्ट ४ में 'जनपदनाम-सूची' शीर्षक के नीचे यह टिप्पणी जोड़िये—

In Appendix 4 add the following note below the heading 'List of the Janapadas'—

(जनपदवाची नाम संस्कृत में बहुवचनान्त होते हैं। Names of Janapadas in Sanskrit are in plural number).

4. परिशिष्ट ५ में 'वनस्पतिनाम-सूची' शीर्षक के नीचे यह हिन्दी-टिप्पणी जोड़िये—

In Appendix 5 the following Hindi note is to be added below the heading 'Flora —

[वामनपुराणोक्त वनस्पतियों की इस सूची में वनस्पतियों के उन विभिन्न अंगों—पुष्प, फल, बीज, निर्यास आदि—का भी यथास्थान अन्तर्भाव कर दिया गया है जिनका उल्लेख वामनपुराण में है। वनस्पति-नाम के आगे कोष्ठक में वामनपुराण के अध्याय तथा श्लोक का निर्देश है। संस्कृतनाम के आगे वनस्पति का हिन्दी नाम तथा वनस्पति-शास्त्रीय लैटिन नाम भी दिया गया है। पर्यायवाची में उसके मूलशब्द का निर्देश कर दिया है जहाँ उसे देखना चाहिये]।

B. संशोधन Corrigenda

(a = स्तम्भ १, column 1, b = स्तम्भ २, column 2; L = Line, पंक्ति)

परिशिष्ट-पृष्ठ Appendix-page	स्तम्भ अथवा पंक्ति Column, Line	अशुद्ध Incorrect	शुद्ध Correct
7	b., L. 9	afflicated with	inflicted
12	b	-कुज	हटाइये delete
13	a	कुज	हटाइये delete
,,	b	चित्रगं	हटाइये delete
14	b	मित्रावरुण (विप्र)	मित्रावरुणात्मज (विप्र, वसिष्ठ)
15	b	सोमशर्मा (वणिक् प्रेतनायक)	सोमशर्मा (शाकलस्य विप्र)
18	a	वैवस्वद	वैवस्वत
20	a	केदार (वृद्धकेदार)	वृद्धकेदार
21	a	शलिलेश्वर	सलिलेश्वर
22	a	ध्रुव (देव) 25.24	ध्रुव (नक्षत्र) 32.24
26	b	वैवश्वत	वैवस्वत
27	a	शलिलेश्वर	सलिलेश्वर
,,	b	सरस्वती (देवी)	सरस्वती (देवी कात्यायनी)
28	b	हिमतेश्वर	हिमवतेश्वर (शिवलिङ्ग)
30	b	मदालसा (विश्वावसु-पत्नी)	मदालसा (विश्वावसु-कन्या)
36	a	अश्मकूट आङ्गिरस	हटाइये delete
,,	,,	आत्रेय 6 61 etc.	आत्रेय 13 41
,,	b	कौशिक	हटाइये delete
37	a	दण्डकारण्यक देविकातीरग धर्मारण्य नैमिषारण्य नैमिषेय भाश्कच्छेय	हटाइये delete
,,	,,	निषाव	निषाद (जाति)
,,	,,	पुलिन्द	पुलिन्द (जाति)
37	b	मरीचिप मागधेय	हटाइये delete
38	b	सैन्धव	हटाइये delete

वामनपुराणस्य श्लोकार्धसूची

अ

श्लोकार्धसूची

ई

उ

ख

तस्मादुद्घाटय द्वार ६४ ७७c
तस्मादेन समुद्दिश्य स मा २६ ४८c
तस्माद् गच्छत पुण्य तत् २२ २०a
तस्माद् गच्छस्व शोघ्र त्व ३७ ६७c
तस्माद् गमिष्ये शुभवधनाय ६४ १११a
तस्माद्दारुवनाल्लिङ्ग स मा २३ १७a
तस्माद्द्विजाग्र्या श्रुतिशास्त्रयुक्ता[ ] ४८ ४३a
तस्माद्धर्मो न सत्याज्यो ४० ३५a
तस्माद्ध्यान स्मरण कीर्तन वा ६७ ७५a
तस्माद्बहुपुटा मह्ली ६ १०२c
तस्माद्बहूनामर्थाय ३२ ६७a
तस्माद्भजस्व स्व स्व हि २५ २८a
तस्माद् भजस्व मा वा त्व २६ ३४c
तस्माद्भजस्वेह जगत्पति मा २० २६c
तस्माद्यज्ञैश्च देवैश्च स मा २६ १५a
तस्माद् यथा सुरपति ५० ४५a
तस्माद्यथते निवसन्ति पुन ४८ ४१a
तस्माद्यदिच्छसि जय ८ ४२a
तस्माद्यन्मम बालेय ६५ ५१a
तस्माद् यूय श्रद्धाना स मा १४ ५४c
तस्माद् गो वृद्धवाक्यानि ६८ ७१a
तस्माद्राज्य प्रति विभो ५१ ४६a
तस्माद् वर त्वा प्रतिपूजनाय ६ ५१c
तस्माद्वर्णा स्वधमस्यास ४८ ४९a
तस्माद्वर्षसहस्रान्ते ६४ ६७a
तस्माद् विधत्त न श्रयो स मा ३ १४c
तस्माद् विनिर्गता वर्णा[ ] स मा २२ ३८c
तस्माद् विमुच्यते पापाद् स मा २५ १७c
तस्माद् विरोचनो जज्ञे स मा २ ५a
तस्माद् व्रजामि देवेश २८ ६a
तस्मान्न दास्याम्यात्मान ३७ ६३a
तस्मान्निपादा उत्पन्ना[ ] स मा २६ २०a
तस्मान्मच्छापनिदग्धा २५ १३c
तस्मान्मद्वचन शीघ्र ४४ ११c
तस्मान्मरीचिरभवन् स मा २६ ४a
तस्मान्मा त्वं महाबाहो ५२ २६a
तस्मान्मामपि सुश्रोणि २७ ५०a
तस्माल्लोके तव ख्यातिन् २६ ८५c
तस्मिस्तदा दैत्यबले च भग्ने ४४ १a
तस्मिस्तदा स्वे तनये ऋतध्वजस् ३८ ७६a
तस्मिस्तीर्थवरे पुण्ये स मा १६ २४a

तस्मिस्तीर्थवरे स्नातो स मा १५ ११a
तस्मिस्तीर्थवरे स्नात्वा[ब्राह्मण्य]
स मा १८ १५a
तस्मिस्तीर्थवरे स्नात्वा[सतप्य] ५२ ४a
तस्मिस्तीर्थवरे स्नात्वा[दृष्ट्वा] ५७ १a
तस्मिस्तीर्थे च सप्लाव्य स मा १४ १६a
तस्मिस्तीर्थे तु य स्नाति स मा १८ ३६a
तस्मिस्तीर्थे नर स्नात्वा स मा १५ ७१c
तस्मि तुष्ट जगद्धाम्नि ५६ १३a
तस्मिञ्छक्रोऽसृजद् वज्र २६ ६c
तस्मिञ्जिते हि विजित ३४ ४८c
तस्मिन्नासति दैत्येन्द्रे ७ २३a
तस्मिञ्छवा घोररवे प्रवृत्ते ६ ४४a
तस्मिन् काले निराहारा[ ] स मा २५ ५५a
तस्मिन् काले स बलवान् ५२ १७a
तस्मिन् गोदावरीतीर्थे ३६ १५४a
तस्मिन् तीर्थे नर स्नात्वा स मा १३ २६a
तस्मिन्नण्डे स्थितो ब्रह्मा स मा २२ १८a
तस्मिन्नरपति श्रीमान् ३६ ५८a
तस्मिन्निपतिते रौद्र ३० ४६a
तस्मिन्निवृत्ते गणपे ४२ ५६a
तस्मिन् निशाचर द्वीपे ११ ४८a
तस्मिन् प्रयाते भगवाञ्जिनेश्वो ६ ५६c
तस्मिन् प्रविष्टमात्रस्तु स मा २६ ५७c
तस्मिन् प्लक्षे स्थिता दृष्ट्वा स मा ११ ५a
तस्मिन् ब्रह्मा समुद्भूत स मा २६ ३c
तस्मिन् मध्ये स्थाणुरूपी स मा २२ ३८a
तस्मि महाधर्मयुते ६२ २a
तस्मिन्महाश्रमे पुण्ये २८ १०a
तस्मिन् विपरिवृत्तिस्थ ५३ १३a
तस्मिन् विवरद्वारे तु स मा १४ ३३a
तस्मिन् विनष्टे दनुसैन्यनाथे ३० ३१a
तस्मिन् विष्णु सुरश्रेष्ठ[ ] ४७ २१c
तस्मिन् शुद्धे ह्यन्तरात्मा स मा २२ ८०a
तस्मिन् समाश्रित सत्सु ११ १३c
तस्मिन् सरसि दुष्टात्मा ५८ १६a
तस्मिन् सरस्तटे विप्रो स मा १५ ३३a
तस्मिन् सरे च य स्नात्वा स मा १५ २२c
तस्मिन् स शेते भगवान् २ २२a
तस्मिन् सुपुण्ये विषये निविष्टा ६ ५६a
तस्मिन् सेनापतौ क्षुण्णे २१ ३१a

तस्मिन् स्नात सर्वतीर्थे स मा २५ १५a
तस्मिन् स्नात सर्वतीथ स मा २४ १३c
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुष स मा १५ २७c
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो[गो°] स मा १५ ५०c
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो[यशसा] स मा २० ७a
तस्मिन् स्नातो नरो भक्त्या स मा १८ ३८a
तस्मिन् स्नात्वा तथा प्राचा ५५ ६a
तस्मिन् स्नात्वा नरो भक्त्या स मा १८ ३६c
तस्मिन् स्नात्वा भक्तियुक्त स मा १५ ७३c
तस्मिन् स्नात्वा विमुक्तस्तु स मा १८ २a
तस्मिन् स्नात्वा श्रद्दधान स मा १३ ३२c
तस्मिन् हतेऽथ तनये बलवान्
सुनाभो ३२ ११०a
तस्मिन्हते दानवसैन्यपाले ४७ ५१a
तस्मिन् हते देवरिपौ मुरारिर् ५६ ४३a
तस्मिन् हते भ्रातरि भग्नदर्पो ३२ ८४a
तस्मिन् हते भ्रातरि मातुलेये ४२ ५८a
तस्मिन् हते भ्रातरि माधवेन ४३ १५८a
तस्मिन् हि सर्वसत्त्वाना ५७ २०a
तस्मै त्रिलोचनेनासीद् ३७ ७a
तस्मै दत्त्वैव ता भिक्षा स मा २२ ६०c
तस्मै निवेदयात्मानम् ३८ ४८c
तस्मै स चासन दत्त्वा स मा २६ २७a
तस्मै समस्तजगताम् स मा ६ २४a
तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं २३ ३६a
तस्य घोरेण तपसा स मा २० १५a
तस्य चानयने न्याय स मा २३ ३१c
तस्य चोत्तरदिग्भागे[रावणेन]
स मा २५ १५c
तस्य चोत्तरदिग्भागे[लिङ्ग] स मा.२५ २०a
तस्य ज्ञान ब्रह्ममयम् स मा १२ ११c
तस्य तद्वचन श्रुत्वा[कृपा°] स मा १६ ११a
तस्य तद्वचन श्रुत्वा[राक्ष°] ५६ ३०c
तस्य तीर्थे सरस्वत्या स मा १४ ३७c
तस्य तीर्थस्य सभूति स मा २१ १c
तस्य तुष्टस्तथेशान ११ ५a
तस्य तौ वरदौ देवौ स मा २५ २४c
तस्य दक्षिणतो लिङ्ग[हारीत°]
स मा २५ २६a
तस्य दक्षिणतो लिङ्ग[वज्रिणा]
स मा २५ ३६a

न

श्लोकार्धसूची

फ

ब

य

र

10

11

12

Addenda (परिशेष)

४६ [हरय हुतोयाहमे १७ पाश्चात्यमते प्रक्षेपम्—
हृषवाने महासुमाः स मा ११ ८१